

55





सृजत्येष जगत्सृष्टौ सिंधतौ पाति सनातनः। हन्ति चैवान्तकत्वेन रजःसत्त्वादिसंश्रयः॥



जय गणेश, जय ग्रुभ-आगारा। जय-जय दुर्गा, जय मा 'तारा।। दुर्मति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय। उसा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिण जय जय।। स्ताम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर। हर हर शंकर दुखहर सुखकर अव-तम-हर हर हर शंकर ॥ इरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। जयति शिवाशिव जानिकराम। गौरीशंकर सीताराम ॥ जय रघुनन्दन जय सियाराम । व्रज-गोपो-प्रिय राघेक्याम ॥ रघुपति राघव राजाराम । पतितपावन सीताराम ॥

(संस्करण १,६०,०००)

***** 'नारायणं नतोऽसम्यहम्'

张兴兴兴兴兴 नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायगं पूरुषमाद्यमञ्ययम्।

2995 विन्दकोशाद् त्र माऽऽविरासीद् यत एव लोकः॥ (श्रीमद्भागवत १० । ४० । १)

भाप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण Kalyan: Bhaeladtatt- मूळ तत्त्व अविनाशो पुरुशोतम नारायग हैं तथा आपके न ब्रह्माजीका आविर्माव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ।

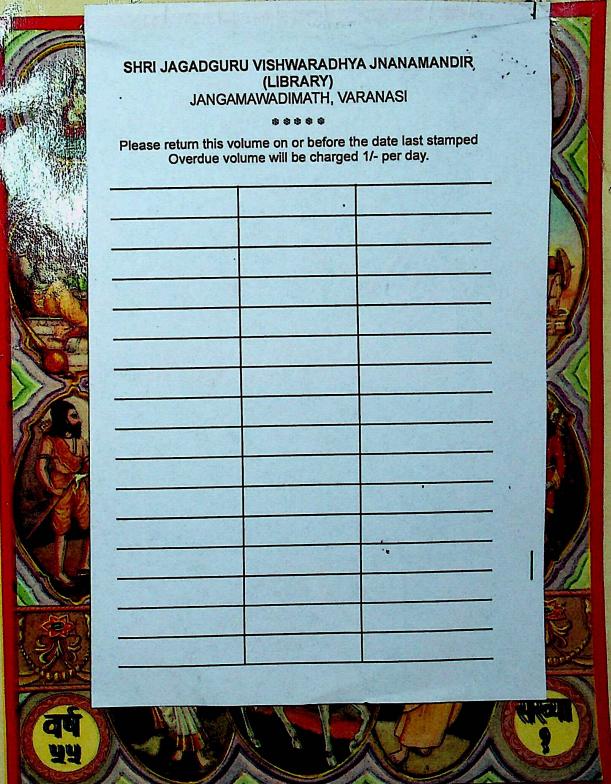
R65,7mN 152M1.55 Vank

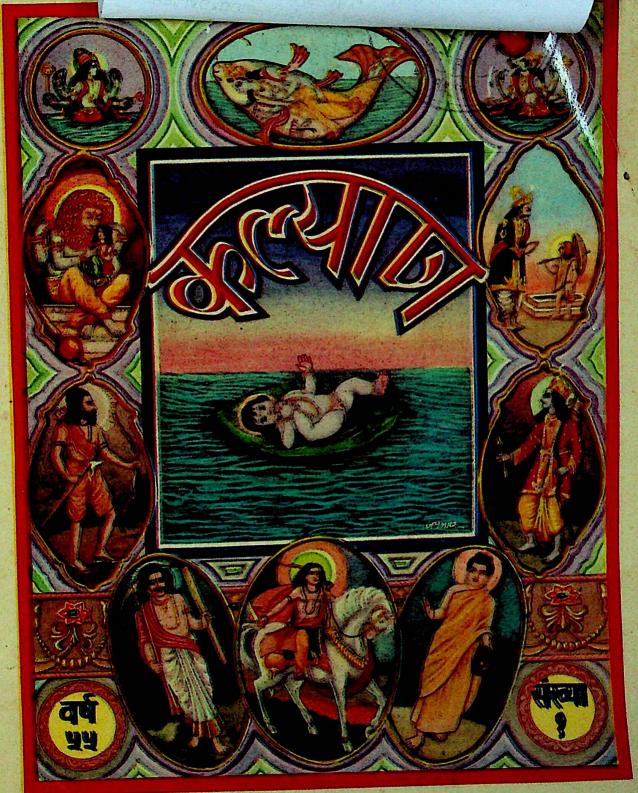
इस अञ्चल मृख्य जयति जय। सत-चित-आनँद भूमा जय जय।। भारतमें २०.००६० हरि जय। जय हर अखिलात्मत् जय जय।। विदेशमें ३६.१५ जगत्यते। गौरीपति रमापते ॥ (२ पौण्ड) जय

प्रलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरसपुर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दशावतार





भगवत्तत्त्वाङ्क

R65,7mH 152M1.55

'कल्याण'के ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१—'कल्याण'के ५५वें वर्ष (सन् १९८१) का विदोषाङ्ग—'भगवत्तत्वाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४३२ पृष्ठोंमें पाठ्यसामग्री है और८ पृष्ठोंमें सूची आदि है तथा यथास्थान कई बहुरंगे चित्र भी दिये गये हैं।

२—जिन ब्राहक-महानुभावोंके मनीआर्डर आ गये हैं, उनको विशेषाङ्क फरवरी एवं मार्चके अङ्कोंके साथ रजिस्ट्रीद्वारा तथा जिनके रुपये नहीं प्राप्त हुए हैं, उनको वी० पी० द्वारा ब्राहक-संख्याके कमानुसार भेजा जा सकेगा।

३—कल्याणका वार्षिक शुल्क २०.०० रु० मात्र है, जो विशेषाङ्कका ही मूल्य है। मनीआईर-कूपनमें अथवा वी० पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें अपना पूरा पता और प्राहक-संख्या रूपया स्पष्टकपसे अवश्य लिखें। प्राहक-संख्या स्मरण न रहनेकी स्थितिमें 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नया प्राहक बनना हो तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी रूपा करें। मनीआईर 'व्यवस्थापक—'कल्याण'—कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर'के पतेपर भेजें, किसी व्यक्तिके नामसे न भेजें।

४—ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिख जायगाः इससे आपकी सेवामें 'भगवत्तत्वाङ्क' नये। ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे इसकी वी० पी० भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप वी० पी० लौटायें नहीं, कृपापूर्वक प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको नया ग्राहक बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका 'कल्याण' व्यर्थ डाक-व्ययकी हानिसे बचेगा और आप 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहायक बनेंगे।

५—विशेषाङ्क—'भगवत्तत्त्वाङ्क' फरवरी और मार्च १९८१ के साधारण अङ्कोंके साथ सब ग्राहकोंके पास रिजस्टर्ड-पोस्टसे भेजा जा रहा है। शीव्रातिशीव्र भेजनेकी चेष्टा करनेपर भी सभी ग्राहकोंको भेजनेमें लगभग ४-५ सप्ताह तो लग ही जाते हैं। ग्राहक-प्रहानुभावोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके कमानुसार ही जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थित समझकर कृपालु ग्राहक हमें क्षमा करेंगे। उनसे धेर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनेकी प्रार्थना है।

६—आपके 'विद्योषाङ्क'के लिफाफे-(या रैपर-) पर आपका जो ब्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूव सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्रीया वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये, जिससे आवश्यकता होनेपर उसके उल्लेख-सहित पत्र-व्यवहार किया जा सके।

७—'कल्याण-व्यवस्था-विभाग'को अलग, तथा 'व्यवस्थापक-गीताप्रेस'को अलग पत्र, पार्सल, पैकेट, रिजस्ट्री, मनीआर्डर, वीमा आदि मेजने चाहिये। पतेकी जगह केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)—इस प्रकार लिखना चाहिये।

८—'कल्याण-सम्पादन-विभागः' 'साधक-सङ्घ' तथा 'नाम-जप-विभाग' को भेजे जानेवाळे पत्रादिपर भी अभिप्रेत विभागका नाम लिखनेके बाद 'पत्रालय-गीताप्रेसः, गोरखपुर-२७३००५ (उ० प्र०)-इस प्रकार पूरा पता लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचिरतमानस विश्व-साहित्यके अमृत्य ग्रन्थरत हैं; दोनों ही यसे प्रासादिक एवं आशीर्वादातमक ग्रन्थ हैं, जिनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक— ऐसे प्रासादिक एवं आशीर्वादात्मक ग्रन्थ हैं, जिनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक— दोनोंका आत्म-कल्याण कर सकता है। इनके खाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था इत्यादिकी कोई बाधा नहीं है। आजके अनेकविधके भयसे आकान्त, भोगतमसाच्छन्न समयमें इन दिन्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है; अतः धर्मप्राण जनताको इन मङ्गलमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' की स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंको—जिनकी संख्या इस समय लगभग पैतालीस हजार है—श्रीगीताके छः प्रकारके, श्रीरामचिरतमानसके तीन प्रकारके एवं उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इप्टेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंको श्रेणीमें यथाकम रखा गया है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचिरतमानसके नियमित अध्ययन एवं उपासनाकी सत्येरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई ग्रुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचयपुक्तिका निःग्रुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यक्कमें समिमलित होवं।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम-(२४९३०४) ऋषिकेश, जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्मविकासपर ही अवलम्वित है । आत्मविकासके लिये सदाचार, सत्यता, सरलता, निष्कपटता, भगवत्परायणता इत्यादि देवी गुणोंका संग्रह और असत्य, कोध, लोभ, मोह, द्वेप, हिंसा इत्यादि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है । मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ३२ वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना की गयी थी। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य वननेके इच्छुक भाई-वहनोंको मात्र४५ पैसेके डाक-टिकट या मनीआर्डर अग्रिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। सदस्यताका कोई ग्रुल्क नहीं है । सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इनका सदस्य वनना चाहिये। विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क नियमावली मँगवाइये। संघसे सम्बद्ध सव प्रकारका पत्र-व्यवहार नीचे लिखे प्रतेपर करना चाहिये।

संयोजक—साधक-संघ, द्वारा—'कल्याण'-सम्पादकीय विभाग, पत्रालय—ंगीताप्रेस, जनपद— गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानस मङ्गलमय दिव्यतम जीवन-ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारसे लोकमानसको अधिकाधिक उदात्त करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रवन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें वैठनेवाले लगभग १५,००० परीक्षार्थियोंके लिये ४०० परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये रुपया निम्नलिखित प्रतेपर कार्ड भेजें—

न्यवस्थापकं—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (२४९३०४) ऋषिकेश, जनपद—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

श्रीहरिः

'भगवत्तत्त्वाङ्क' की विषय-सूची

वृष्ट-सं	ख्या	विषय पृष्ठ-तार्थ	
१-देवाय तस्मै नमः [संकल्प्ति] १-देवाय तस्मै नमः [संकल्प्ति] २-परमपुरुप-(भगवत्-) स्तवन [संकल्प्ति] ३-वैदिक तस्त्व-चिन्तनका नासदीय-सूक्त (पद्यानुवादक-पं० श्रीरामनारायणदक्तजी शास्त्री परामः)	?	१३—भगवत्तस्य और भगवद्रामानुजाचार्य (अनन्त- श्रीत्रभूषित अयोध्या-कोसलेशसदन-पीठाषीश्वर श्रीमन्जगहुरु रामानुजाचार्य वेदान्तमार्तण्ड यतीन्द्र श्रीरामनारायणाचार्य त्रिदण्डी स्वामीजी महाराज) १९	3
४-भगवत्स्तुति [संकलित] ५-पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम् (आचार्य शंकर) ६-ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति (दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी-	५ ६	१४धान्तं शिवं अद्वैतम् (श्रीकवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर)	•
शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्त- श्रीविभूषित स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका शुभाशीर्वाद) · · ·	9	गोयन्दकाके अमृत वचन) २ १६-भगवत्तत्त्वसाधिका कृपैव केवलम् (अनन्तश्री	
७-भगवत्तत्त्व-चिग्तन (पश्चिमाम्नाय द्वारका- शारदापीठाधीश्वर जगद्गुर शंकराचार्य अनन्त-		स्वामी श्रीअखण्डानन्द् सरस्वतीजी महाराज) २ १७-रामकृपाकी महिमा [संकलित] ःः ३ १८-भगवती-तत्त्व (नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय	0
श्रीविभूषित स्वामी श्रीअभिनवसिश्चदानन्द- तीर्थजी महाराजका ग्रुभाशीर्वाद) ८-भगवत्तस्व-विमर्श (धर्मसम्राट् अनन्त-	6	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोहारका शक्ति- तस्व-चिन्तन) ३	2
श्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद) ९-भगवान् श्रीकृष्णद्वारा उपदिष्ट भगवत्तस्व	6	२०-गीतामें भगवत्तस्य एवं उसभी प्राप्तिके उपाय	Ę
(जगद्गुरु इांकराचार्य तमिलनाडुक्षेत्रस्य काञ्चीकामकोटिपीठाघीश्वर श्रीमत्परमहंस परित्राजकाचार्यवर्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी		(परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) है २१-योगेश्वर पिप्पलायनद्वारा भगवत्तस्वका वर्णन (पल्यपाट संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी	6
श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद) । १०-भगवत्तत्त्वका स्वरूप (ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी- सुमे क्पीठाधीश्वर जगद्गुक शंकराचार्य अनन्त-	१०	महाराज) · · · · · · · ४ २२—मराण-निर्राण ब्रह्म (महामण्डलेश्वर स्वामी	
श्रीविभूषित स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराजका आशीर्वाद) ११—गोपालमन्त्रोपदिष्ट भगवत्तस्व (अनन्तश्री-	१३	श्रीभजनानन्दजी सरस्वती) रह-सगुण-निर्गुणका समन्वय र४-परमात्मा और उनके अवतारोंका रहस्य	
विभूषित जगद्गुर श्रीनिम्बार्काचार्य पीठा- धीश्वर श्रीश्रीजीः श्रीराघासर्वेश्वरद्यारण देवा-	9.4	(स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी महाराजः फ्रारिडाः, अमेरिका) [अनुवादकः—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा]	५१
१२-भगवत्तत्त्व क्या हे ? (अनन्तश्रीजगद्गुर	28	२५-तत्त्व एक दृष्टियाँ अनेक (स्वामी श्रीसनातन-	48
रामानुजाचार्य स्वामी श्रीघराचार्यजी महाराज)	१७	देवजी महाराज)	. 1

२६ -भगवत्तत्वकी चर्चा (आचार्य पं०श्रीबलदेवजी		३९-ब्रह्मका सम्यक् और समन्वयात्मक रूप
उपाच्याय) · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	46	(डॉ॰ श्रीअवधिवहारीलालजी कपूर एम्॰
२७-सो भगवत असरन-सरन (भगवतरसिक)	६१	ए०, डी० फिल्०) ९८
२८-तत्त्व क्या है ! (श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)	६२	४०-भगवत्तत्त्वकी साधना (आचार्य डॉ॰
२९-भगवत्तत्वका छोकिक खरूप (श्रीगोपाल-		श्रीउमाक्षान्तजी 'ऋपिध्वजः एम०ए०, वी-
दत्तजी पाण्डेय, एमू० ए०, एल० टी०,		एच्० डी०, काव्यरत्न) १०१
व्याकरणाचार्य)	६६	४१-सवका सार-तत्त्व [संकलित] १०४
३०-भगवत्तत्त्वका अन्वेषण-भगवत्तत्त्व क्या है !		४२-मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भगवत्तत्त्वकी मीमांसा
('ततः पदं तत्परिमागितव्यम्) (आचार्य		(आचार्य पं० श्रीसीतारामजी चतुर्वेदी) १०५
पण्डित श्रीराजवलिजी त्रिपाठी एम्० ए०,		४३-श्रीमद्भगवत्तत्त्व-विमर्श (डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी
साहित्यरात्न, साहित्यशास्त्री, शास्त्राचार्य)	७१	भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, पी-
३१-अदा और प्रेमके क्षेत्रमें भगवत्तत्व—		एच्॰ डी॰) १०७
भागवतधर्म (१) (रा॰ व॰ त्रिपाठी)	७६	४४-वेदमें भगवत्तत्त्वका स्रोत (श्रीशिवकुमारजी
३२-आचार्य शंकर-प्रदर्शित ब्रह्मोपलब्धिके सहज		शास्त्रा, व्याकरणाचार्य, दर्शनालङार) · · · १०९
साधन (श्रीनीरजाकान्त चौधुरी, देवशर्मा,		४५-आपानषद भगवत्तत्व (श्रीतेत्रात्राक्ती
एम्॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी, पी-एच्॰ डी॰, विद्यार्णव) · · · · · · · · ·		आग्नहात्रा) 903
३३-ईशर. जीव और गंच रे	99	४ ६ -वर्षणवागमामे भगवत्तत्त्व (डॉ० श्रीमियानाराजी
३३-ईंश्वर जीव और संसारके सम्बन्धमें भगवान् श्रीआद्यशंक्षराचार्यके विचार (ब्रह्मलीन		सक्सेना 'प्रवर' एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ११६
מין ביייי ווווה שודי אוייי		४७-पुराणोंमें भगवत्तत्त्व (डॉ॰ श्रीसियारामजी सक्सेना
	40	'प्रवर' एम्० ए०, पी-एच्० डी०) १२१
१० भाराष्ट्राहत्।सङ्गान्तका उपानि /	64	४८-सर्वें व्यापक और सूक्ष्म [संकल्प्ति] · १२६
जाजानगपद्वासानजसम्बद्धाः		४९-श्रीमद्भागवतके 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'
भागानाय स्वामाना महारान)	16	पर तास्विक विमर्श (महाकवि श्रीवनमालिदास
भगवसन्य भगवसन्य	64	
(अभिन्मध्वसम्प्रदायाचार्यः हार्वाचिक गार्ट्री		५०-'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'का समीक्षात्मक
ताहित्यदशनाद्याचार्यः तर्करत्यः		1 40 2111-1-1-1
स्व॰ गोस्वामी श्रीदामोदरजी शास्त्री)	40	मिश्र 'विनय' एम्० ए०) १३०
५-जगत्मे सबसे उत्तम और अवक्य करने	c2	भ्रम्बनयं एम्० ए०) १३० ५१-श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवत्तत्त्व-निरूपण (डॉ० श्रीमहानामवत्त्री उपार्ट
तत्त्व कौन है !—ईश्वर (स्व० पूच्य श्रीमहामना		
पण्यानदन्माहन् मालवीयजी गुन्तर्भ		"र्वं ६।०)। प्रेयर जन्म
उन्श्वर था भगवत्सत्ता (महामनेतन		
ा अभिक्षानाथजा ह्या एए		५२-श्रीवेखानस भगवन्त्रास्त्रते ००
-श्रीभगवत्तत्त्वका स्वरूप (हाँ केट्रिक	8	71,114,117,124,24
" राजावरदावजा स्ट्रा	९५	
	. 7	५३-मूर्त-अमूर्त ब्रह्म [संकलित] १३८
		7.00

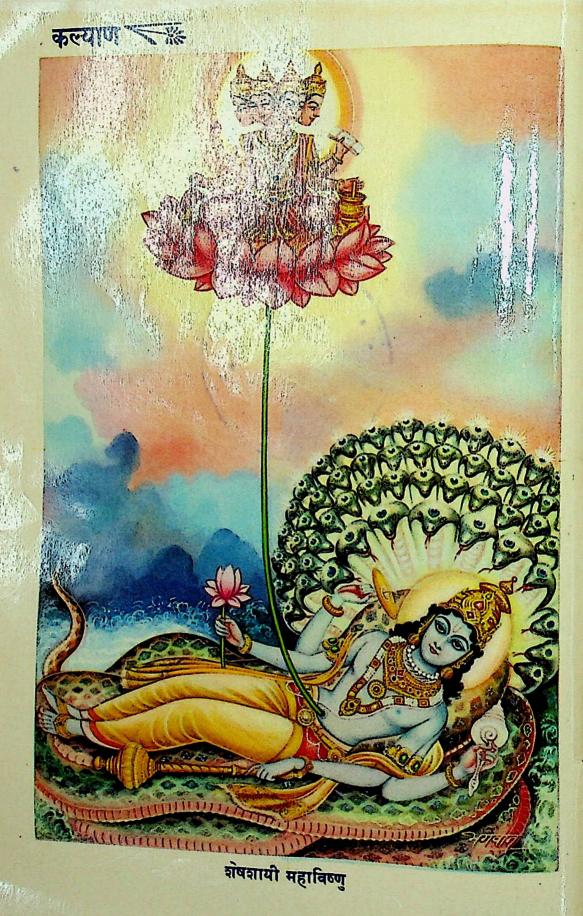
५४-वेद-पुराणादिमें श्रीभग़वत्तत्त्व (पं •	७०-भागवत-जीवन-दर्शन (पं० श्रीरामजी उपाध्याय)
श्रीजानकीनाथजी शर्मा) · · · १४१	एम्॰ ए॰, डी॰ लिट्॰) १८४
५५-रामचरितमानसमें भगवत्तत्त्वकी व्यापकता	७१-भारतीय जीवनमें भगवान् या ईश्वर (प्रो॰
(पं० श्रीश्रीकान्तदारणजी महाराज) · · १४५	श्रीरञ्जनसूरिदेवजी) " १८६
५६मानसमें भगवत्तत्त्वका व्यापक रूप-विधान	७२-भगवत्तत्त्वएक विवेचन (श्रीरवीन्द्रनाथबी
(सुश्री मंजुश्री, एम्० ए०) *** १४७	बी॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰) " १८९
५७-शांकर-अद्वेत-वेदान्तमें भगवत्तत्त्व (श्री र०	७३-सर्वे खिलवदं ब्रह्म (श्रीमती राधादेवी
वेङ्कटरत्नम्) · · · १५२	७३—सर्वे खस्विदं ब्रह्म (श्रीमती राधादेवी भालोटिया) " १९१
५८-जगहुर रामानन्दाचार्यका भगवत्तत्त्व-	७४-अनुभूति [कविता] (रचयिता—डॉ॰
निरूपण (श्रीव्रजिकशोरप्रसादजी साही) *** १५४	श्रीरामकुमारजी वर्मा, एम्० ए०, पी-एच्०
५९-महाप्रभु वछभाचार्यका भगवत्तत्व-दर्शन	डी॰, साहित्यवाचस्पति, पद्मभूषण) · १९३
(श्रीकृष्णगोपालजी माथुर, साहित्यकार) · · · १५८	७५-भगवान् और भक्तका सम्बन्ध (श्रीकृष्णरामनी
६०-भगवत्तत्त्वकी विभुता [कविता] (कविसम्राट्	दुवे, एम्॰ ए॰, एल्॰ टी॰, साहित्यरत्न) १९४
६०-भगवत्तत्वकी विभुता [कविता] (कविसम्राट् स्व० श्रीहरिऔधजी) · · · १६०	७६-ईश्वर और उसकी प्राप्ति (श्रीआनन्दस्वरूपनी
६१-श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें उपास्य भगवत्तत्त्व	(साहेबजी महाराज) दयालवाग) · १९७
(पं० श्रीगोविन्ददासजी 'सन्त' धर्मशास्त्री,	७७-भगवत्तत्व-एक विचार (श्रीजोरावरसिंहजी
पुराणतीर्थ) · · · १६१	भादला) १९९
६२-श्रीचैतन्य-सम्प्रदायमें भगवत्तत्त्व (आचार्य	७७-भगवत्तत्व—एक विचार (श्रीजोरावरसिंहजी भादला) १९९ ७८-भगवत्-प्रेम (स्वामी रामतीर्थ) २०२ ७९-स्वामी रामतीर्थका आत्मावबोध २०३
डॉ॰ श्रीग्रुकरत्नजी उपाध्याय एम्॰ ए॰,	७९-स्वामी रामतीर्थका आत्मावबीय २०३
पी-एच्० डी॰, साहित्याचार्य, शिक्षा-शास्त्री,	क अनुसार कार्य स्वापियो अस्टिका गाँग (श्रास्पन्टला
तीर्थद्वयः, रत्नद्वय) · · · १६३	पाण्डेय, शास्त्री) २०४
६३-सनातनधर्ममें भगवत्तत्त्वकी व्यापकता	पाण्डेय, शास्त्री)
(डॉ॰ श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्॰ ए॰,	८२-सगुणोपासना-भारतीय दृष्टिकी अनुपम
पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, साहित्यायुर्वेदरत्न,	उपलिब्ध (कु॰ स्वेताम्बरी सहगल) २०६
विद्याभास्कर, डी॰ एस्-सी॰) "१६६	८३—भगवान विष्ण (श्रीवावरामजी अवस्थी,
६४-भागवतमें श्रीरामकृष्णकी तात्विक एकता	प्रम॰ प्र॰, साहित्याचार्य) २१०
(पं॰ श्रीहरिनामदासजी 'वेदान्ती') ''' १७० ६५-अध्यात्मरामायण और रामचरितमानसमें	८३-भगवान् विष्णु (श्रीवाबूरामजी अवस्थी, एम्० ए०, साहित्याचार्य) २१० ८४-नमस्तुभ्यमनन्ताय [संकल्प्ति] २१२
	८५-परम शिव-तत्त्व (श्रीराजिन्द्रसिंहजी भान्ः)
भगवत्तत्त्व (डॉ॰ श्रीगोपीनाथजी तिवारी) ःः १७३	एम्॰ ए॰, बी॰ एड्॰) २१३
६६ - जगत्तस्व और ब्रह्मत्तस्य [संकल्प्ति]	८६-प्रपद्ये परं पावनं द्वेतहीनम् (आचार्यशंकर) २१६
६७-परमात्मा और जीवात्मा (स्व॰ आचार्यवर्य	८७-भगवत्तत्त्व और शक्तितत्त्व (पं श्रीजानकी-
पं॰ आनन्दशंकर बापूभाई प्रुव) "१७७	नाथजी द्यमी) २१७
६८-अनिर्वचनीय और अनुभवगम्य तस्त्व (प्रो॰	८८-तत्त्व-चिन्तन और तत्त्व-निष्ठा (डॉ॰
चन्दुलाल व॰ डकराल, एम्॰ ए॰ (सं॰	श्रीभवानीशंकरजी पंचारियाः एम्॰ ए॰।
अं०) कान्यतीर्थ) १७९	पी-एच्० डी०) २१९
६९-भगवत्तत्त्वका सामान्य परिचय (डॉ॰	
श्रीरखनजी एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰) · १८०	८९-माया क्या है ! [संकल्प्ति] " २२१

९०-भगवत्तत्व (शा० रा० शारङ्गपाणि एम्० ए०) २२२	१०७-सत-मतम मगवत्तत्वका भागाता (आपर्टन
९१-भगवत्तत्त्व और अवतारवाद (डॉ॰	दासजी विन्नानी 'ब्रजेश,' साहित्यरत्न, धर्मरत्न,
श्रीविश्वम्भरदयालजी अवस्थी, एम्० ए०	विज्ञानरत्न, आगम-वाचस्पति) ःः २६
[हिन्दी, संस्कृत], पी-एच्० डी०, डी० लिट्) २२३	१०८-सत्सङ्गके विना भगवत्प्राप्ति सहज नहीं [कविता]
९२-भगवत्तत्व और जीव-जगत्का दार्शनिक	(संत यल्ड्रूदास) · · · २६
विवेचन (स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज) २२८	१०९-सामाजिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमिमें भगवत्तस्व
९३-भगवत्तत्व और माया (श्रीवलरामजी	(प्रो॰ श्रीप्रफुल्लचन्द्रजी तायल) ःः २६
शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न) २२९	११०-विनयपत्रिकामें भगवत्तत्त्व (श्रीविजयकुमारजी
९४-भगवत्तत्त्वकी ब्यापकता (आचार्य श्रीरेवा-	शुक्ल, एम्॰ ए॰, (हिन्दी, संस्कृत)) · · २६
नन्दन्ती गौड़) ःः २३१	१११-किसको भजूँ ! (प्रभुपाद श्रीप्राणिकशोरजी
९५-भगवत्तस्व और उसकी उपादेयता	गोखामी) २७७
(श्रीहर्षदराय प्राणशंकरजी बधेका) ः २३४	११२-श्रीकृष्णकी भक्ति ही श्रेष्ठ है [संकलित] · · २७।
९६-सनातन परमपदकी आकाङ्क्षा [संकल्पित] २३७	११३-सबमें रमता राम तुही (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) २७६
९७-भगवत्त्वरूपक्षी भजनीयता (श्रीरामलालजी	११४-प्रणव-भगवत्तत्त्व (डॉ० श्रीसर्वानन्दजी पाठक,
श्रीवास्तव) २३८	एम्॰ ए॰ (द्वय), पी-एच्॰ डी॰ (द्वय),
९८-भगवत्त्वरूप अविद्यासे सर्वथा परेहै [संकल्प्ति] २४१	डी॰ छिट्॰) २७८
'९९-भगवत्तत्त्व एवं सगुणोपासना (पं० श्रीरवीन्द्र-	११५-भगवत्तत्व और नामतत्त्व (श्रीरामपदारथसिंहजी) २७९
क्रमारची पारक प्रक्रियान्य १ ५० श्रीस्वान्द्र-	११६-कर्मतत्त्व और भगवत्तत्त्व (याज्ञिकसम्राट्
कुमारजी पाठक, साहित्याचार्य) · · · २४२ १००-भगवत्तत्त्व और मृर्तिपूजाबाद (पं॰ श्रीआद्या-	ंपं० श्रीवेणीरायनी नार्म गौन वेस्टर्स
न्याची ह्या न्यावराय चित्र १ १	ंपं० श्रीवेणीरामजी दार्मा गौड़, वेदाचार्य, कान्यतीर्थ) ··· २८३
चरणजी झा, ब्याकरण-साहित्याचार्य) २४४	११७-भगवत्तस्वके महत्त्वका गीत [कविता]
१०१-भगवत्तत्त्व-प्राप्तिमें नामजपकी उपादेयता	(गोलोकवासी पंत समानामा (क्लिका) २ ११
(डॉ॰ श्रीभागीरथप्रसादजी त्रिपाठी, 'वागीश' शास्त्री) ··· २४४	(गोलोकवासी पं॰ सत्यनारायण कविरत्नः) २८५
१०२—भगवत्तव और अग्रवतार / भी	११८-भगवद्भावनासे हीन मनुष्य शून्यवत् है
१०२—भगवत्तस्व और भगवन्नाम (श्रीकृष्णकान्तजी यत्र) · · · २४७	बी० एल० ।
०३ — वाहाणा-ग्रह्मों अगुल्या - ०	(आचार्य श्रीशिशिरकुमार सेन, एम्॰ ए॰, बी॰ एल्॰) २८६
॰ ३ - ब्राह्मण-प्रन्थों में अमृतमय जीवनका पथ (प्रो॰	११५-मगवत्स्या (भागवततीर्थे श्रीग हराजिक्कारजी
श्रीइन्द्रदेवसिंहजी आर्थ, एम्० एस्० सी०,	2//
एम्० ए०, एल-एल० बी, साहित्यरत्न) २५१	१२०-भगवत्तस्व-ईश्वरत्वके साधक प्रमाण [संकलित] २९०
०४-पाञ्चरात्र आगममें भगवत्तत्व (डॉ० श्रीकृपा-	१२१-ब्रह्मानुसंधान (दीवानवहादुर ख० के० एस०
शंकरजी शुक्छ, एम्० ए०, पी-एच्० डी) २५४	पालामा शास्त्रा, बीं एक, बीं एक) २९४
०५—ज्योतिषशास्त्रमं भगवत्तत्त्व (डॉ॰ श्रीनागेन्द्रजी	११ (नगवहरानका सत्र (आनार्थ केन्य्राची) २०४
पाण्डेय, ज्योतिषाचार्य (सिद्धान्त एवं फलित)	सर्ग भगवत्तव (आचार्य श्रीमुंशीरामजी
स्वर्णपदक प्राप्तः, विद्यावारिधि, पी-एच्० डी०) २५६	700
र विवास दाशानकाका हिएम भगवत्तल / हो	१२४-सर्वन्यापक तस्त [संकल्पित] ३०१
श्रीरामनारायणजी त्रिपाटी, न्याकरण-वेदान्त-	रचानाच्यानद् सदम—विश्वहरूपाः
धर्मशास्त्राचार्य) २५९	I HO HO HO DO SARE
	रामांजी चतुर्वेदी)

१२६-'सत्यलोकका वासी' [कविता] (हरिऔध) ३०४	१४६ – वह तुम ही हो (जा० रा०)
१२७-ध्अनायास उनको मिल जाते, पूर्ण परात्पर	१४७-देवताओंका अभिमान और परमेश्वर-तत्त्व · · रे४०
श्रीभगवानः विवता । (रचियता—श्रीरतन-	१४८-भगवान् श्रीरामद्वारा लक्ष्मणजीको भगवत्तत्त्वका
ञाञ्ज्या ग्रेस) रु०४	उपदेश ३४१
१२८-भगवत्तत्त्व-विवेचन (वीतराग स्वामी १०८	१४९-(गाड़ीवाले) रैक्व मुनिका ज्ञानतस्य
श्रीनारायणाश्रमजी महाराज) ३०५	(जा० द्य०) २४२
१२९-भगवत्तस्य एवं भक्तियोग (श्रीसोमचैतन्यजी	१५०-श्रीविष्णु-तत्त्व और लक्ष्मी-तत्त्व *** ३४३
श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एल्०) ३०७	१५१-परम भागवत ही वैकुण्ठधामके अधिकारी
१३०-भगवत्तत्व और भगवद्भक्ति (आचार्य खामी	[संकलित] ३४६
श्रीसीतारामशरणजी महाराज) ३१२	१५२-भगवद्धाम, श्रीभगवान् और उनका चतुर्व्यूह ३४७
१३१-तमाराधय गोविन्दम् [संकल्प्ति] ः ३१५	१५३-सभीका ईश्वर एक (शिव तथा कृष्णकी
१३२-भगवत्तस्व और जीवन-दर्शन (क॰ श्रीगोकुला-	तात्विक एकरूपता) (गो० न० वैजापुरकर) ३४९
नन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न) :: ३१६	१५४-भगवान् इरिहर सबकी रक्षा करें [संकल्प्ति] ३४९
१३३-शरणं प्रपद्ये (यामुनाचार्य) ३१७	१५५-भगवान्के परात्पर स्वरूप-श्रीकृष्णकी महिमा ३५०
१३४-भगवत्तस्व-लीलादर्शन (डॉ० श्रीलक्ष्मीप्रसादजी	१५६-परात्परतत्त्वकी शिशु-छीछा ३५२
दीक्षित, एम्० एस्-सी० [टैक्नॉला०]	१५७ -ब्रह्मज्ञानका अधिकारी *** ३५३
पी-एच्० डी०, वैज्ञानिक) ३१८	१५८-परमतत्त्वकी प्राप्तिके उपाय *** ३५४
१३५-पुराणोंमें भगवत्तत्त्वका प्रकाश (श्रीरतनलालजी	१५९-भगवत्तस्वकी प्राप्तिका उपाय *** ३५५
गुप्त) ३२१	१६०-परमपद-प्राप्तिके उपाय *** ३५६
१३६-पुराणोंका मिथतार्थ (रा० व० त्रिपाठी) ३२६	१६१—नारदजीद्वारां पुण्डरीकको भगवत्तत्त्वका
१३७-वैष्णवधर्ममें भगवत्तस्य (स्वामी श्रीदिावा-	उपदेश और पुण्डरीकको भगवत्प्राप्ति * * * ३५७
नन्दजी) ३२७	१६२-राजा यलिको भगवत्तत्त्वका साक्षात्कार " ३५९
१३८-पश्चिमकी एक उत्कट जिज्ञासा-भगवत्साक्षात्कार	१६३—तत्त्वज्ञ संत एवं उनकी सङ्गतिकी महिमा · · ३६१
(डॉ॰ श्रीमोतीलालजी गुप्त, एम्॰ ए॰,	१६४-गो-सेवासे ब्रह्मज्ञान (जा०२०) ३६२
पी-एन्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰) ३२९	१६५-अग्नियोद्वारा ब्रह्मतत्त्वका उपदेश (जा०श०) : ३६४
१३९-ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्यका गार्गीको भगवत्तत्त्वका	१६६-दृश्य जगत्की चैतन्यरूपता, अनिर्वचनीयता,
उपदेश · · · · ३३२ · · · ३३२	असत्ता तथा ब्रह्मसे अभिन्नताका प्रतिपादन *** ३६४
	१६७-भगवत्तत्त्वके साधकधर्म-जहाँ भगवान्
	रहते हैं ३६५
१४२—परम गृढ परमात्मतत्त्व :: ३३६ :: ३३६	१६८-भगवत्तत्त्वका स्वरूप ३७२
१४४-अश्विनीकुमारोंको ब्रह्मविद्या या भगवत्तत्त्व-	१६९-भगवत्तस्व आत्मत्तस्वसे अभिन्न है ः ३७३
शानकी प्राप्ति "" ३३७	१७०-दीर्घायुष्य एवं मोक्षतत्त्वके हेतु शिवकी
१४५-तत्त्वज्ञानके अवणका अधिकारी *** ३३८	उपासना ३७६

		(९) श्रीगौडपादाचार्य	V95
१७१-सगवत्तरवके उपासक—			2 12 14
(1) 43(1, (1))	२७७		883
(२) महर्षि वसिष्ठ	३७८	(११) श्रीमाधवाचार्य या विद्यारण्यमुनि	
(३) अष्टावक	३८०	(१२) अप्पय्य दीक्षित	141
(४) अगस्त्य	३८१	(१३) श्रीचित्सुखाचार्य	
(५) सुतीक्ण	३८२	(१४) भट्टोनि दीक्षित	४२०
	३८३	१७४-सगवत्तत्त्व-दर्शनके आधुनिक साधक और	
(७) परमभागवत उद्भव · · ·	358	ब्याख्याता —	
(८) महाराज पृथु	३८५	(१) योगिराज अरविन्द · · ·	158
(१) श्रेव	366	(२) स्वामी रामतीर्थ	४२३
१७२-५इरिं शरणमाभ्रेयत् [संकल्प्ति]	१८६	(३) महामना पूज्य पं० मदनमोहन जी मालवीय	
१७३—भगवत्तस्व-चिन्तक—		(श्री विनय एप्० ए०)	858
(१) महर्षि वेदच्यास	३९०	(४) (क) ब्रह्मलीन स्वामी अन्युतमुनिजी	
(२) आचार्य शंकर		महाराज (श्रीराधेश्यामजी लेमका	
(३) आचार्य रामानुज	396	पम्॰ ए॰, साहित्यरत्न)	४२६
(४) श्रीमध्वाचार्य (रा०व०त्रिपाठी) 😁		(ख) अच्युतमुनिजीकी ब्रह्मनिष्ठताकी कथा	४२७
	868	(५) म॰ म॰ गिरिधर द्यामी चतुर्वेदी	
	808	(श्री विनयः एम्० ए०)	886
(७) मण्डन मिश्र अथवा सुरेखराचार्यः		१७५-जर्मनदार्शनिक कॉन्ट और उसके तत्त्व-	
(८) अन्यतम भगवत्तत्त्व-चिन्तक एवं भावुव			
भक्त मधुसूदन सरस्वती (रा० ब		चिन्तनका संक्षिप्त परिचय (श्रीकौशलकिशोरजी	
£ 0;		पाण्डेय, एम्० ए० (द्वय)	
	. 805		४३१
	-90		
	6		
	।पत्र	' सूची	
बहुरंगे चित्र		६—भगवान् विष्णु	
१-दशावतार	Dia ma		२१०
२-शेषशायी महाविष्णु	मुख-पृष्ठ	७—भगवान् शिव	२१६
३-देवताओंद्वारा महाशक्तिका स्तवन	. 4	८-तत्त्वज्ञ देवर्षि नारद	३७७
४-तत्त्वज्ञोंके परमोपास्य श्रीकृष्ण	₹X	९-श्रुवको भगवान् श्रीहरिका दर्शन	३८९
५-भगवान् श्रीसीताराम	१३०	रेखा चित्र	
	१४७	१-प्रणव-प्रतीक भगवत्तत्त्वके त्रिरूप प्रथम आवरण	I-48
	-04	मनग आगर	





CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri



वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।। (श्रीमद्भा॰ १।२।११)

वर्ष ५५

गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०६, जनवरी १९८१

संख्या १ पूर्ण संख्या ६५०

देवाय तस्मै नमः

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-वदः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः। ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

(श्रीमद्भागवत १२ । १३ । १)

'ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्रण दिव्य स्तुतियोंके द्वारा जिनके गुणगानमें संख्यन रहते हैं, साम-संगीतके मर्म इ ऋषि-मुनि अङ्ग, पद, क्रम एवं उपनिषदोंके सिहत वेदोंद्वारा जिनका गानकरते रहते हैं, योगी छोग ध्यानके द्वारा निश्चय एवं तल्छीन मनसे जिनका भावमय दर्शन प्राप्त करते रहते हैं, किंतु यह सब करते रहनेपर भी देवता, दैत्य मनुष्य कोई भी जिनके वास्तविक खरूपको पूर्णतया न जान सका, उन खयम्प्रकाश (भगवत्तस्व) प्रमात्माको नमस्कार है।

परमपुरुष-(भगवत्-)स्तवन

(व्यवस्त)

सहस्रशीर्था पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रायात्। स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुरूथ् ॥

उन परमपुरुषके सहस्रों (अनन्त) मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं । वे इस सम्पूर्ण विश्वकी समस्त भूमि-(पूरे स्थान-) को सब ओरसे व्याप्त करके इससे दस अङ्कुळ (अनन्त योजन) ऊपर स्थित हैं । अर्थात् वे ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए उससे परे भी हैं । (यह मन्त्र भगवान् विष्णुके देशगत विभुत्वका प्रतिपादक है ।)

पुरुष प्रवेदं सर्वं यक्तृतं यश्च अन्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदम्मेनातिरोष्ट्रति॥

यह जो इस समय वर्तमान (जगत्) है, जो बीत गया और जो आनेवाला है, ये सब वे परमपुरुष ही हैं। इसके अतिरिक्त वे देवताओं के तथा जो अनसे (मोजनद्वारा) जीवित रहते हैं, उन सबके भी ईश्वर (अधीश्वर—शासक) हैं। (यह मन्त्र भगवान् के सर्वकालन्यापी रूपका वर्णन करता है।)

पतावानस्य महिमातो ज्यायाश्श्य पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

यह भूत, भविष्य, वर्तमानसे सम्बद्ध समस्त जगत् इन परमपुरुपका वैभव है। वे अपने इस विभूति-विस्तारसे भी महान् हैं। उन परमेश्वरकी एकपाद्विभृति (चतुर्थारा)-में ही यह पश्चभूतात्मक विश्व है। उनकी रोप त्रिपाद्विभूतिमें शाश्वत दिन्यलोक (वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, शिवलोक आदि) हैं। (यह मन्त्र भगवान्के वैभवका वर्णन करता है और नित्य लोकोंके वर्णनद्वारा उनके त्रिपाद् विभूति वैष्णव पदको सूचित करता है।)

त्रिपाद्ध्वं उदैत् पुरुषः पादोऽस्येद्दाभवत् पुनः। ततो विष्वङ् व्यकामत् सारानानराने अभि॥

वे परमपुरुष खरूपतः इस मायिक जगत्से परे त्रिपाद्विभूतिमें प्रकाशमान हैं। (वहाँ मायाका प्रवेश न होनेसे उनका खरूप नित्य प्रकाशमान है।) हम विश्वके रूपमें उनका एकपाद ही प्रकट हुआ है, अर्थात् एकपादसे वे ही विश्वरूप भी हैं, इसिक्टिये वे ही सम्पूर्ण जड एवं चेतनमय—उभयात्मक जगत्को पिल्याम किये हुए हैं। (इस मन्त्रमें भगवान्के चतुर्व्यूहरूपके अन्तिम अनिरुद्धरूपका वर्णन हुआ है। यही रूप एकपाद ब्रह्माण्ड-वैभवका अधिष्ठान है।)

तस्माब् विराष्टजायत विराजो अधि पूरुवः। स जातो मत्यरिच्यत पद्धाब् भूमिमधो पुरः॥

उन्हीं आदिपुरुषसे बिराट् (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ । वे. परमपुरुष ही विराट्के अधिपुरुष—अधिदेवता (हिरण्यगर्भ)-रूपसे उत्पन्न होकर अत्यन्त प्रकाशित हुए । पीछे उन्होंने सूमि (छोकादि) तथा शरीर (देव, मानव, तिर्यक् आदि) उत्पन्न किये । (इस मन्त्रमें श्रीनारायणसे माया एवं जीवोंकी उत्पत्तिका वर्णन है ।)

यत् पुरुषेण इविषा देवा यश्चमतन्वत । वसन्तो अस्यासीदाज्यं त्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥

जिस सगय पुरुष-रूप मानस हिनसे देवताओंने मानसिक यज्ञ किया, उस समय यज्ञमें वसन्तऋतु ही घृत हुआ, ग्रीष्म-ऋतु काष्ठ हुआ और शरद्ऋतु हब्य-रूपसे कल्पित हुआ।

तं यद्धं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥

जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुए, उन्हीं (यज्ञ-साधक पुरुष)को यज्ञीय-पशुरूपसे मानस -यज्ञमें दिया गया। हन पुरुषके द्वारा देवों, साध्यों (प्रजापति आदि) और ऋषियोंने यज्ञ किया ।

तसाद्यक्षात् सर्वेहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पश्चन् ताँश्चके वायव्यानारण्यान् प्रास्याश्च ये॥

जिस यज्ञमें सर्वात्मक पुरुषका हवन हो रहा था, उस मानस-यज्ञसे दिधिमिश्रित घृत आदि उत्पन्न हुए । उससे बायु-देवतावाले वन्य (हरिण आदि) और प्राम्य (कुक्कुर आदि) पशु उत्पन्न हुए ।

तसाद्यज्ञात् सर्वद्वत ऋचः सामानि जिह्नरे । छन्दांसि जिह्नरे तसाद्यजुस्तसाद्जायत ॥

सर्वात्मक पुरुषके होमसे युक्त उस यज्ञसे ऋक् और साम उत्पन्न हुए उससे गायती आदि छन्द उत्पन्न हुए जौर उसीसे यज्ञःकी भी उत्पत्ति हुई ।

सस्ताद्भ्या अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो इ जिह्नरे तस्नात् तस्नाजाता अजावयः॥

उस यज्ञसे अश्व और अन्य नीचे-ऊपर दाँतोंवाले पञ्च उत्पन्न हुए । गी, अज और मेष भी उत्पन्न हुए ।

यत् पुरुषं व्यद्धुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य कौ वाह्न का ऊरू पादा उच्येते॥

जो विराट पुरुष उत्पन्न किये गये, वे कितने प्रकारोंसे उत्पन्न किये गये ! इनके मुख, दो हाथ, दो ऊरु और दो चरण कौन हुए !

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाह्न राजन्यः कृतः। ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

ब्राह्मण इसका मुख था (मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए) दोनों मुजाएँ क्षत्रिय बनीं (दोनों मुजाओंसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए)। इस पुरुषकी जो दोनों जङ्घाएँ थीं, वे ही वैश्य हुई, अर्थात् उनसे वैश्य उत्पन्न हुए और पैरोंसे शूद्रवर्ण प्रकट हुआ। चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥

इस प्रमपुरुषके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रोंसे सूर्य प्रकट हुए, मुखसे इन्द्र और अग्नि तथा प्राणसे वायुकी उत्पत्ति हुई।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीष्णों द्यौः समवर्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥

उन्हीं परमपुरुषकी नामिसे अन्तरिक्षलोक उत्पन्न हुआ, मस्तकसे खर्ग प्रकट हुआ, पैरोंसे पृथिवी, कानोंसे दिशाएँ हुईँ । इस प्रकार समस्त लोक उस पुरुषमें ही कल्पित हुए ।

सप्तास्यालन् परिषयिकाः सप्त समिषः इताः। देवा यद्यद्यं तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पद्यस्॥

देवताओंने जब यज्ञ करते समय (संकल्पसे पुरुषक्षप)
पशुकां बन्धन किया, तब सात समुद्र इसकी परिधि
(मेखलाएँ) बने । इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी (गायत्री,
अतिजगती और कृतिमेंसे प्रत्येकके सात-सात प्रकारसे)
समिधाएँ वनीं । (इस मन्त्रमें सृष्टि-यज्ञकी समिधाका
वर्णन है ।)

यहोन यहामयजन्त देवा-स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

देवताओंने (पूर्वोक्त रूपसे) यज्ञके द्वारा यज्ञस्क्रप परमपुरुष भगवान्का यजन (आराधन) किया। इस यज्ञसे सर्वप्रथम सब धर्म उत्पन्न हुए। उन धर्मोंके आचरणसे वे देवता महान् महिमावाले होकर उस स्वर्गलोकका सेवन करते हैं, जहाँ प्राचीन साध्य-देवता निवास करते हैं। (ऋग्वेद १०। ९०। १-१६)

वैदिक तत्व-चिन्तनका नासदीय-सूक्त

(ऋग्वेद १० । १२९ । १-७)

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो ब्योमा परो यत्। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्

अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥ १॥

असत् नहीं उस प्रलयकालमें, 'सत् भी नहीं रहा कारण, हुआ भूमि-याताल प्रभृति भुवनोंकी सत्ताका वारण। अन्तरिक्ष भी नहीं, नहीं वे रवर्ग आदि रह गये प्रदेश, क्या आचरण कहाँ, किसके हित, गहन गभीर नीर था शेष॥

> न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न राज्या अह्न आसीत् प्रकेतः। आनीदवार्तं स्वधया तदेकं

> > तकादान्यन्त परः किं चनास ॥ २ ॥

मृत्यु नहीं थी, नहीं अमरता, रात-दिवसका ज्ञान नहीं, या चेतन, बस, एक ब्रह्म ही, हैं जिसके मन-प्रान नहीं। या मायाके साथ विराजित ब्रह्ममात्र ही सत्तावान् विद्यमान थी वस्तु यहाँ पर उससे भिन्न न कोई आन॥ र॥

तम आसीत्तमसा गृहमग्रे अप्रकेतं सिल्लं सर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३॥

आवृत हो अज्ञान तिमिरसे पहले यह सब या तमरूप, दुग्धराशिमें मिलित सलिल-सा अखिल विश्व अज्ञात अरूप। तुच्छ अविद्यासे छादित जो तमसे एकीभूत हुआ, बही विश्व विभुक्ते तपकी महिमासे फिर उद्भृत हुआ॥३॥

> कामस्तद्ग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसति निरविन्दन् इदि प्रतीच्या कवयो मनीषा॥ ४॥

हुआ सृष्टि-रचनाके पहले ईश्वरके सनमें संकल्प, क्योंकि पुरातन कर्मराधि थी बीजरूपमें उदित अनल्प। ज्ञानी पुरुषोंने मेघासे निज उरमें जब किया विचार, 'सत्'के साधनभूत कर्मका हुआ 'असत्' मैं साक्षात्कार ॥॥

तिरइचीनो विततो रहिमरेषा-

मधः स्विज्ञासी३्दुपरिस्वज्ञासी३त्। रैतोधा आसन् महिमान आसन्-

त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥ ५॥
तना सृष्टिका सूर्यरिक्षम-सा सहसा ही सब ओर वितानः
पहले मध्यलोकमें, ऊपर या नीचे—कुछ हुआ न भान ।
कर्मोंके कर्ता-भोक्ता थे अगणित जीव हुए उत्पन्नः
भोग्य-स्थान महान् भूत भी, भोक्ता उच्च, अधम है अन्न॥५॥

को अद्धा देद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत ह्यं विसृष्टिः। अवौग् देवा अस्य विसर्जनेना-

ऽथाको वेद यत आबसूव॥६॥

किस निमित्त, किस उपादानसे हुई प्रकट नानाविध सृष्टि— कौन जानता, कौन यताये, किसकी वहाँ पहुँचती दृष्टि । पैदा हुए देवगण भी तो भृत-सर्गके ही पश्चात्। फिर किससे सब सृष्टि हुई है, यह रहस्य किसकी है ज्ञात ॥६॥

> ह्यं विसृष्टिर्यंत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न। स्रो अस्याध्यक्षः परमे स्योमन्-त्सोअङ्ग वेद यदि वा न वेद्॥७॥

जिस विभुसे इस विविध सृष्टिका हुआ प्रकट अतिशय विस्तार, वही इसे धारण करता है, रखता या कि विना आधार । जो इस जगका परम अधीक्वर रहता परम व्योममय देश, वही जानता या न जानता, नहीं अन्यका यहाँ प्रवेश ॥७॥ पद्मानुवादक—पं० श्रीरामनारायणदत्त्रजी शास्त्री शाम

भगवत्स्तुति

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च देवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।।

CARTER CA हम उन प्रकाशखरूप, स्तुति करने योग्य, अखिठलोकपति भगवान्को जान गये हैं, जो ईश्वरोंक भी परम महेश्वर हैं, जो देवताओंके भी परमाराध्य देव हैं, जो खामियोंके भी खामी हैं और जो महान्से भी अति महान् हैं।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्राभ्यधिकश्च द्रश्यते। शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलिकया च ।।

उन परमेश्वरका न तो कोई शरीर है, न उनकी इन्द्रियाँ ही हैं। न तो कोई उनके समान है, न उनसे ददकर ही है। उनकी परमाशक्ति विविध प्रकारकी सुनी जाती है; क्योंकि वे खाभाविक अर्थात् अनादिसिद्ध शक्तियुक्त हैं। उन परमेश्वरके ज्ञान और बलके अनुसार ही क्रिया होती है।

> न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्। स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिजानिता न चाधिपः ॥

उन परमेश्वरका इस संसारमें न तो कोई पति है, न नियामक है और न कोई कारण अथवा अनुमापक ही है। वे खयं ही सबके कारण हैं, वे इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवताओंके भी अधिष्ठाता हैं, उनका न तो कोई उत्पादक है और न खामी ही है।

> प्रधानजैः तन्तुभिः स्वभावतः। यस्तन्तुनाभ इव स्वमात्रणोत् नो द्धाह्रुह्माप्ययम् ॥ स देव एक:

जिस प्रकार मकड़ी अपने ही शरीरमेंसे निकले हुए तन्तुओंसे अपने आपको वेष्टित कर लेती है, उसी प्रकार इन अद्वितीय परमात्माने अपनी ही प्रकृतिसे इस सृष्टिको उत्पन-कर उसकें द्वारा अपनेको आवृत कर लिया। वे परमेश्वर हमारा उस परब्रह्मके साथ एकीमाव प्रदान करें।

यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्वं यो वे वेदांश्व प्रहिणोति तस्मै। देवमात्मवुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये।।

जो सर्गारम्भमें पहले ब्रह्माकी रचना करते हैं; और फिर जो उन्हें वेदका ज्ञान कराते हैं, मैं मोक्षकी इच्छासे उन खप्रकाशखरूप परत्रह्मकी शरण प्रहणं करता हूँ ।

(इवेताश्वतरोपनिषद् ६ । ७-१०, १८)

नाहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गो नाहंकारः प्राणवर्गो न युद्धिः । दारापत्यक्षेत्रवित्तादिदृरः साद्यी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम् ।। रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जो यथाहिः खात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः । आप्तोक्त्याहिभ्रान्तिनाशे स रज्जुजींचो नाऽहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम् ।। आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानन्दरूपे विमोहात् । निद्रामोहात् खप्नवत् तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम् ।। नाहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः । कर्वत्वादिश्वन्मयस्यास्ति नाहंकारस्येव द्यात्मनो मे शिवोऽहम् ।। मत्तो नान्यत् किंचिदत्रास्ति विश्वं सत्यं बाद्यं वस्तु मायोपक्रुप्तम् । आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ।। आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ।।

'न में देह हूँ न इन्द्रिय हूँ, न अन्तःकरण, न अहङ्कार, न प्राणसमुदाय और न बुद्धि ही हूँ । बी, संतान, खेत और धन आदिसे दूर, नित्यसाक्षी अन्तरात्मा एवं शिवखरूप ब्रह्म हूँ । जैसे रस्तीको न जाननेके कारण भ्रमवश उसमें सर्प भासित होने लगता है, उसी प्रकार अपने खरूपको न जाननेसे उसमें जीवभावकी प्रतीति होती है । किसी विश्वसनीय व्यक्तिके कहनेसे सर्पके भ्रमका निवारण हो जानेपर जैसे वह रस्ती स्पष्ट हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञानी गुरुके उपदेशसे मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि मैं जीव नहीं हूँ, शिवखरूप परमात्मा हूँ । आत्मा सत्य, ज्ञान एवं आनन्दखरूप है, उसीमें मोहवश इस मिथ्या जगत्की प्रतीति हो रही है । निद्राजनित मोहसे दीखनेवाले खप्नकी माँति वह सत्य नहीं है । अतः यही निश्चय करे कि मैं गुद्ध (मायालेश्श्रून्य), पूर्ण (अखण्ड), नित्य (अविनाशी), एक (अद्वितीय) शिवखरूप परमात्मा हूँ । न मेरा जन्म हुआ है, न मैं बढ़ा हूँ और न मेरा नाश ही हुआ है । समस्त प्राकृत धर्म शरीरके ही कहे गये हैं । किर्तुलादि धर्म अहङ्कारके ही हैं, चिन्मय आत्माके नहीं । अतः मैं शिवखरूप परमात्मा हूँ । मुझसे मिन यहाँ जगत् नामकी कोई सत्य वस्तु नहीं है । वास्तवमें सारी बाह्य वस्तु एँ मायासे ही कल्पित हैं । दर्पणके मीतर भासित होनेवाले प्रतिविन्वके समान यह सब कुछ मुझ करेंत परमात्मामें ही प्रतीत हो रहा है । अतः मैं शिव हूँ ।

(आचार्य शंकरकृत अद्वैतपद्धरत्न १-५)

ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति

दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी-शारदापीठाधीश्वर जगतुरु शङ्कराचार्य अनन्त श्रीविभ्षित खामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका ग्रुभाशीर्वाद)

'ब्रह्मिवद्राप्नोति परम्'-(तैत्तिरीयोप०२।१) ब्रह्मको जाननेत्राला साधक परतत्त्रसे निर्देश्य सर्वोत्कृष्ट 'ब्रह्म'को प्राप्त करता है। ब्रह्मसे बढ़कर कोई दूसरा सर्वोत्कृष्ट पदार्थ नहीं है। इससे पूर्वोक्त श्रुतिवाक्यका निष्कृष्टार्थ हुआ कि ब्रह्मको जाननेयाला ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मको ही प्राप्त होता है। अब जिज्ञासा होती है कि यह ब्रह्मका ज्ञान कैसे प्राप्त हो ? श्रुतिने ब्रह्मका लक्षण इस प्रकार बतलाया है— 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—अर्थात् 'ब्रह्म सत्य ज्ञानखरूप और अनन्त है। सत्य वही हो सकता है, जो भूत, भवत् और भविष्यत्रूप तीनों कालोंमें जिसका अभाव न हो, सदा सत्ता बनी रहे । काल्त्रयाबाघित पदार्थ ही सत्य कहा जाता है। ब्रह्मके अतिरिक्त कोई भी पदार्थ तीनों कालोंमें नहीं रह सकता । सारे पदार्थ उत्पत्तिविनाशशील हैं। ये थोड़े समयतक टिकेंगे और नष्ट हो जायँगे। किंतु ब्रह्मकी न उत्पत्ति है न विनाश । वह अनादि, अविनाशी और ध्रुव सत्य खयम्प्रकाशरूप चैतन्य-खरूप है । इसीके द्वारा सारा संसार प्रकाशित होता है । ब्रह्म अनन्त है । ब्रह्ममें किसी भी पदार्थका परिच्छेद मेद नहीं है। ब्रह्मसे अतिरिक्त कोई वास्तविक पदार्थ होता तो उसका मेद ब्रह्ममें आ सकता था। परिदृश्यमान जगत्का कारण भी ब्रह्म ही है । कारणकी सत्तासे अतिरिक्त सत्ता कार्यमें है ही नहीं, अतः कारण ही कार्यस्पसे दीखता है। ऐसी परिस्थितिमें ब्रह्मसे अत्यन्त भिन्न पदार्थ कोई भी नहीं हो सकता तो किसका मेद ब्रह्ममें आ सकता है। वह अनन्त भद्रय है। यहाँतक निर्दिष्ट

ब्रह्मका लक्षण 'ख्ररूप-लक्षण' कहा जाता है । जो सदा लक्ष्यमें स्थित रहे वह खरूप-लक्षण है ।

जिससे लक्ष्यका परिचय हो और लक्ष्यमें सदा रहनेका नियम न हो, त्रह 'तटस्थ लक्षण' है । भगवान् व्यासने 'शारीरक-मीमांसा-दर्शनके''--जन्माचस्य यतः' (१।१।२) इस द्वितीय-सूत्रसे ब्रह्मके तटस्य छक्षणका निरूपण किया । जो संसार दीखता है, थोड़े समयतक टिकता है और अन्तमें नष्ट होता है, उसके ये जन्म-स्थिति-नाश जिससे हुआ करते हैं, वही ब्रह्म या परमात्मा है । जगज्जन्म-स्थिति-नाश-कर्तृत्व भी प्रमात्माका उक्षण है । यह तटस्य लक्षण कहलाता है । परमात्मामें यह लक्षण तभी हो सकता है, जब जगत्के जन्म-स्थिति-नाश बनते हों। जब तीनों नहीं, तभी परमात्मा है। यह लक्षण प्रमारमाका परिचय कराता हुआ भी सार्वकालिक नहीं है। सत्य-ज्ञानानन्तरूप परमात्माको निर्गुण और जगजन्मादि-कारण परमारंमाको सगुण कहते हैं। परंतु दोनों अद्वय परब्रह्म ही हैं। एक ही ब्रह्म दो रूपोंमें भासता है। सगुण ब्रह्मकी उपासनासे चित्त निर्मल होकर विक्षेप-रहित हो जाता है। निर्मल चित्त पुरुष ही वेदान्तशास्त्र-विचारका अधिकारी है। ज्यासजीने—'शास्त्रयोनित्वात्' (त्र० सू०१।१।३) इस सूत्रसे ब्रह्म जाननेमें वेदान्त-शास्त्रको ही प्रमाण बतलाया । वेदान्त-विचारसे निर्गुण परमात्माका साक्षात्कार होता है । साक्षात्कारसे अविद्याकी निवृत्ति होती है । अविद्या-निवृत्तिसे जीव काम-कर्मादि सारे वन्धनोंसे मुक्त होकर खयं ब्रह्मं बनेगा। यही 'ब्रह्म-विदाप्नोति परम्'— (तै० स्प० २ । १)का अर्थ है।

भगवत्तत्त्व-चिन्तन

(पश्चिमाम्नाय द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगदुरु शंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीअभिनवसचिदानन्दतीर्थजी महाराजका ग्रुभाशीर्वाद)

श्रीभगवान्के सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी भगवत्तस्य अवतक निगृढ़ ही रहा है । भगवान् तो—'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्यते'—इस श्रीमद्भागवतके वचनानुसार सर्वेश्वर, सर्व-शास्ता, परात्पर, परब्रह्म, परमतत्त्व, पराशक्ति आदि नामसे प्रख्यात एवं पूजित हैं । योगियोंकी दृष्टिसे तथा भगवान्की गीता-वचनानुसार—'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनितप्टिति—(गीता १८ । ६१)—सभीके हृदयमें निवास करते हैं । कृष्णयजुर्वेदीयोपनिषद् चतुर्वेदोपनिषद् मन्त्र—जिन्हें पण्डितगण मन्त्र-पुष्पाञ्चलिमें उचारण करते हैं—इसमें प्रमाण हैं—पद्मकोशप्रतीकाशं लम्बत्याकाशसंनिभम् । स तस्य शिकराभिश्च हृद्यं चाप्यधोमुखम् । अधोनिष्टवावितस्यान्ते नाभ्यामुपरि तिष्ठति । ज्वालमालाकुलं भाति विश्वस्याप्तनं महत् । "तस्य मध्ये विद्विशिखा अणीयोध्वां

व्यवस्थिता । नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा । नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा। तस्याः शिखाया मध्ये परभात्मा व्यवस्थितः । स ब्रह्मा स शिवः साक्षात् स हरिः सोऽक्षरः स्वराङ् ॥ (नारायगोपनिषद् ७ । ११ । १३)

— 'इत्यादिके मतानुसार हृदयाकाशान्तर्गत सूक्ष्मीभागमें परमात्मा रहते हैं। भगवान् सर्वगुणसम्पन्न तथा निर्गुण-निराकार भी शास्त्रमें वर्णित है। 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्ते चामूर्ते च।' (मुण्डक) अतः सभीको भगवत्तत्त्वका चिन्तन-मनन सर्वदा करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही संसार-वन्धनसे छुटकारा मिळता है। अतः भगवत्तत्त्वका यथार्थ प्रचार-प्रसार पूर्विभया अधिक आवश्यक है; क्योंकि आज छोग विशेषतया भौतिकवादमें पड़कर दुःखित हो गये हैं। भगवान् सबको सद्बुद्धि-सत्प्रेरणा देकर विश्वकी रक्षा करें; यही हमारा ग्रुभाशीष है।

भगवत्तत्त्व-विमर्श

(धर्मसम्राट् अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद)

तत्त्ववेत्ता लोग सजातीय-विजातीय-खगतभेदशून्य अद्वयज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। निरितशय बृहत् होनेके कारण यही तत्त्व ब्रह्म, सर्वोत्कृष्ट एवं सबका अन्तरात्मा होनेसे परमात्मा और सर्वविध भजनीय गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण भगवान् कहा जाता है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ञ्ञानमद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ (श्रीमद्रा०१।२।१२)

'शिशुपालवध'के प्रारम्भमें उसके रचयिता महाकवि माघकी उक्ति है—'द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णकी सभामें श्रीनारदजी पश्चार रहे हैं। उस समय पहले यदुवंशियोंको आकाशमें एक तेज:पुञ्ज मात्र नीचे अवतीर्ण होता दृष्टिगोचर होता है। कुछ और संनिधान होनेपर उस तेज:पुञ्जमें हस्त-पादादि शरीरके अवयव भी दृष्टिगोचर होने लगते हैं। उस तेज:पुञ्जके अत्यन्त समीप आनेपर श्रीभगवान् एवं यदुवंशी लोगोंको पता चलता है कि ये तो देविषें नारद हैं—

चयस्त्वषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्। विभुविभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद् इत्यवोधि सः॥*

*-(क) पूर्व दीप्तिपुद्धः, किंचित्सामीप्याङ्गक्षिताकारम्, ततोऽपि सामीप्याद्विभक्तावयवं पुमान्, अतिनैकट्याद् नारद इति अवोधि । (वरळभदेवः)

(ख) छोकद्दरये भुक्तिम्, दृरिस्तु सर्वे येद एव इति तस्त्वम् । (मिल्छिनाथ) (ग) अत्र निपातेनापिद्दिते कर्मणि न कर्मविभक्तिः। (वामन)

इसी प्रकार तत्त्वसे अति दूर अधिकारी साधकको सर्वप्रथम केवल चिन्मात्र ब्रह्मका ही बोध होता है। कुछ और सामीप्य होनेपर कतिपय गुण-विशिष्ट परमात्माका तथा अत्यन्त सामीप्य होनेपर अनन्त कल्याणगुणगण-विशिष्ट भगवान्के रूपमें उसी तत्त्वका उपलम्भ होता है। वैदिकोंकी दृष्टिमें वेदोंका महान् तात्पर्य ब्रह्ममें ही है और वही सब प्रकारसे सर्वोत्कृष्ट है।

'वृह्' या वृहि-वृद्धों (धातुपाठ २८ । ५७ माधवीया धातुवृति ६ । ५७) धातुसे उणादि मनिन् प्रत्यय होकर 'ब्रह्म' शब्द निष्पन्न होता है । इसका अर्थ है—'बृहत्' (बड़ा)। इसके समवधान (समीप)में कोई संकोचक पद नहीं पढ़ा गया है तथा संकोचका कोई कारण भी उपस्थित नहीं है, अतः ब्रह्मका अर्थ होगा——निरतिशय बृहत्, कल्पनातीत बृहत् । जो पदार्थ देशपरिच्छिन्न, कालपरिच्छित्र और वस्तुपरिच्छित्र होगा, वह परिच्छित्र होनेके कारण क्षुद्र ही होगा, निरितशय बृहत् नहीं।यदि वह क्षुद्र जड़ द्रव्य होगा तो दश्यादि होनेसे अल्प भी होगा और अल्प होनेसे मर्च होगा। अतः अनन्त खप्रकाश प्रमानन्द तत्त्व ही निरतिशय बृहत् होनेके कारण ब्रह्म शब्दका वाच्यार्थ या तात्पर्य हो सकता है और वही शुद्ध तत्त्व है। एक वाक्यमें यों भी कहा जा सकता है कि अतिशयताकी कल्पना करते-करते जहाँ वाचस्पति एवं प्रजापतिकी मित भी विरत हो जाय, अर्थात् जिससे आगे कभी भी कोई कल्पना ही न कर सके, उसी अनन्त अखण्ड खप्रकाशखरूप शुद्ध-मुक्त-परमानन्दघन भगवान्को वेदान्तीलोग ब्रह्मतत्त्व कहते हैं। इसीका विचार 'अथातो ब्रह्मजिश्चासा'(व्र०१।१।१)आदि वैयासिक-सूत्रोंद्वारा किया गया है। तत्त्वमात्र भी इसीको कहा गया है। इसका ही लक्षण ऊपर किया गया है—'तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'इस तत्त्वका ही नाम ब्रह्म, परमात्मा अथवा भगवान् है। ये शब्द एक

ही पदार्थके वाचक हैं, भिन्न-भिन्न पदार्थिके नहीं। क्योंकि इन सभीका एक ही लक्षण है—'यज्ज्ञानमद्धयम्'।

लक्षणके भेदसे ही लक्ष्यमें भेद होता है, नामभेदसे नहीं। जैसे घटका लक्षण कम्बुग्रीवादिमत्व, पृथुवध्नोदरत्व आदि किया गया है। यह लक्षण घट, कलश, कुम्म समीका है। अतः घट, कलश, कुम्म आदि शब्द एक ही पदार्थके वाचक हैं। हाँ, व्यवस्थाको बुद्धचारूढ़ करनेके लिये कई प्रकारके ब्रह्म शास्त्रोंमें वतलाये गये हैं। यथा (१) कार्यब्रह्म (२) कारणब्रह्म (३) कार्यब्रह्म और कारणब्रह्मको लेकर कपरवाली कल्पना कही जा सकती है, कार्यब्रह्मों लेकर करारवाली बहुकों लेकर नहीं।

प्रायः यह भी कहा जाता है कि निर्गुण हस भगवान्का धाम है । यद्यपि धाम शब्द ऐसे स्थलोंमें खरूपभूत आत्मज्योतिका ही बोधक है, यथा--'स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः' (श्रीमद्भागवत २।४। १४) अपने खरूपभूत तेजमें जिसे ब्रह्म कहा जाता है, उस अपने धाममें रमण करनेवाले भगवान्को हमारा प्रणाम है । 'परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्' (गीता १०।१२) भगवन् ! आप परमात्मा हैं । आप परम प्रकाश, परम ज्योति और परम पित्र हैं। किंतु कुछ दूसरे छोगोंकी यह अटल धारणा है कि धाम शब्दका अर्थ निवासस्थान ही होता है, अतः वे लोग अन्यक्तरूप कारण-ब्रह्मको ही वेदान्तवेद्य मान वैठते हैं । कार्यकारणातीत तत्त्वतक उनकी दृष्टिके जानेका प्रश्न ही नहीं उठता । तथापि इस दृष्टिसे भी ब्रह्मको यदि धाम मान हें तो सिद्धान्तमें कोई वाधा नहीं आती । यह मेद वेदान्तियोंको भी इष्ट ही है कि स्थूल कार्यब्रह्मके ऊपर सूक्ष्म कायब्रह्म और उसके ऊपर कारण-ब्रह्म (अव्यक्त) और उसके ऊपर भी कार्यकारणातीत ब्रह्म स्थित है।*

^{*} इसी प्रकार परब्रहा, अवरब्रहा, शाक्वतब्रहा, शब्दब्रहा, एकाक्षरब्रह्मादि ब्रह्मके अनेकों मेदोंको भी जिज्ञासु व्यक्तिको समझना चाहिये।सभीको जानकर 'कार्यकारणातीत ब्रह्मको प्राप्त करनेसे पूर्ण कृतकृत्यता होती है—'द्रेब्रह्मणी वेदितव्येः 'यत्। शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ', भिद्यते हृदयग्रन्थिक्षिद्धद्यन्ते सर्वसंशयाः। श्वीयन्ते चास्य कर्माणि हृष्ट एवात्मनीक्षरे॥ (त्रिपु०४।१७, मैत्रा०६।२२, श्रीमद्भा०१।२१)

अस्तु ! यह अन्तिम तत्त्व ही अद्वितीय अनन्तशुद्धवीय-रूप है । इसका ही विवर्त समस्त चराचर प्रपद्ध है । यदि सर्वाधिष्ठान होनेके कारण इसे सर्वधाम सर्वनिवासस्थान भी कहें तो कोई हानि नहीं । इसी भावका स्पष्टीकरण श्रीमद्भागवतके इस स्टोकमें किया गया है—

क्षानमेकं पराचीनैरिन्द्रियेद्रीह्य निर्गुणम्। अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा॥ (३।३२।२८) अर्थात्—'अद्वितीय एक नित्यवीध ही म्रानिसे अविद्या प्रत्युपस्थापित विहर्मुख इन्द्रियों तथा मन बुद्धि आदिके द्वारा विविध शब्द, रूप, रस, गन्धादि जागतिक धर्म—प्रपन्नके रूपमें भासित एवं अनुभूत हो रहा है। यह भान्ति यदि साधनोंसे दूर हो जाय तो पुनः विशुद्ध अद्यतत्त्व ही सर्वत्र प्रतिभासित एवं उपलब्ध होता है।

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा उपदिष्ट भगवत्तत्व

(जगद्गुरु शंकराचार्यं तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीटाधीश्वर श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्यं अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराजका प्रसाद)

भारतमें श्रीमद्भगवद्गीताके अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों गीताएँ हैं, जैसे—रामगीता, गणेशगीता, देवीगीता, सूर्यगीता, अवध्तगीता, अष्टावक्रगीता, शिवगीता, उत्तरगीता, बोध्यगीता, उद्धवगीता, आदि । परंतु मात्र गीता शब्दसे सहसा कृष्णप्रोक्त भगवद्गीताका ही बोध होता है । इसमें भगवान् कृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया है अथवा अर्जुनको निमित्त बनाकर सबके कल्याणके लिये उपदेश दिया है । तथापि इसमें 'कृष्ण उवाच' न होकर 'श्रीभगवानुवाच' ही आया है—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।'

सामान्यतया उपदेश दो प्रकारके होते हैं। सांसारिक नीतियोंका उपदेश और आध्यात्मिक तत्त्वका उपदेश। छैिकक कल्याणार्थ आचार-विचार-व्यवहारादिका उपदेश नीतिका उपदेश है। मूर्ति उपासनासे इष्ट देवताओंकी उपासना-पद्धतिसे अध्यात्मतत्त्वकी जो शिक्षा दी जाती है—वह मिकका उपदेश—तत्त्वोपदेशकी मूमिका है। तत्त्वोंमें सृष्टि-संहार एवं संसार इन सवका विचार करके अजर, अमर परमात्म-तत्त्वका चिंतन मुख्य अध्यात्म-तत्त्वोपदेश है।

उपदेश एकान्तमें, शान्त स्थानमें करना— बह प्रायः विधान है। परंतु गीताका उपदेश कोटि-कोटि मनुष्योंके मध्य, अशान्त वातावरणमें हुआ है। प्रायः उपदेशके समय वक्ताके उच्च स्थानमें बैठने और श्रोताके नीचे स्थानमें बैठकर सुननेकी पद्धित है। पर गीतामें बोठनेवाले श्रीकृष्ण परमात्मा सार्थिके रूपमें नीचे बैठे हैं और सुननेवाले अर्जुन रथमें ऊपर बैठकर सुनते हैं। यह भी भगवद्गीताके उपदेशकी एक विचित्रता है। प्रायः उपदेश एक ही विषयपर, एक ही रुक्ष्यपर होता है। प्रायः उपदेश एक ही विषयपर, एक ही रुक्ष्यपर होता है। किंतु भगवद्गीतामें कर्म-भक्ति, ज्ञान-ध्यान, संन्यास, विविध योग, भगवान्के सर्वव्यापक विश्वरूप आदि सभी विषयोंपर प्राप्त हैं। भोजन, दान, त्याग आदिके त्रिविध मेदोंपर भी तथा संन्यासके खरूपपर भी विचार किया गया है।

साधारण पाठमात्रसे भगवद्गीताकी सारी विशेषता ज्ञात नहीं होती । गीताका मुख्य लक्ष्य है—ज्ञानप्राप्ति, यथा— नहि ज्ञानेन सददां पवित्रमिष्ठ विद्यते । तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मिन विन्दृति ॥ यही भगवद्गीताका मुख्य एवं सर्वोपिर विषय है । योगादिके द्वारा आत्मज्ञान-प्राप्तिमें परमात्माके ज्ञान होनेपर मोड दूरकर दुःख दूर करना ही गीताका भुष्क्य क्ष्म्य है ।

युद्ध स्थळमें आकर अर्जुन अपने चारों ओर अपने भाई, वन्धु, गुरु, दादाजी और अन्य सम्बन्धियोंको देखकर उनके प्रति प्रेमसे भर जाते हैं। प्रेमसे मोह हो गया और विचार आया कि लड़ाई करनेसे उनके वे सभी सम्बन्धी मर जायेंगे, इससे उन्हें वड़ा दु:ख होता है । अतः प्रेमसे मोह—अज्ञान और उससे दुःख आया । अर्जुनने कहा-- 'हम लड़ाई न करेंगे।' इस अध्यायको 'अर्जुन-विपादयोग' कहा गया है । विपादका अर्थ है— दुःख । जगद्गुरु आदिशंकराचार्यजीने भगवद्गीताके गम्भीर दिच्य भाष्यकी रचनाकर तत्त्वजिज्ञासु मुमुक्षुओंका वड़ा उपकार किया है। परंतु प्रथम अध्यायकी व्याख्या उन्होंने नहीं लिखी । 'स्पप्टम् स्पप्टोऽर्थः' ऐसा लिखकर छोड़ दिया । दु:खमय संसारकी व्याख्या करनेकी आवश्यकता उचित नहीं समझी । दूसरे अथ्यायमें ११वें क्लोकसे श्रीकृष्णभगवान्का उपदेश तथा उनका भाष्य प्रारम्भ होता है--

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रशावादांश्च भाषसे। गतासूनगतास्थ नानुशोचिनत पण्डिताः॥

'अर्जुन ! तुम विद्वानोंकी तरह बातें करते हो, पर जो लोग शोक करनेयोग्य नहीं हैं, उनपर दुःख करके तुम रोते हो । जिन बन्धुओं, चाचा, मामा तथा अन्य सम्बन्धियोंके ऊपर प्रेम करते हो, उनके दो रूप हैं। एक शरीररूप और दूसरा आत्माका रूप। आत्मरूपमें विचार करनेसे तुमको दुःख कभी किसी प्रकारसे न होगा । अतः तुम्हें शोकाकुल होनेकी आवश्यकता नहीं । देहरूपमें देखनेसे देह-दु:ख आ जायेगा । परंतु देह निश्चित नहीं । इसिलये इसपर भी दुःख करनेकी जरूरत नहीं, इनपर दु:ख मत करो—'अशोच्यानन्व-शोचस्त्वं।' इस प्रकार अर्जुनको ज्ञान, मक्ति, योग, कर्मका उपदेश दिया । अन्तमें श्रीभगवान् कहते हैं सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं वज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अपने ख-धर्म-कर्म एकमात्र भगवान्को समर्पण करो । उससे जो फल प्राप्त हो उस सबको भी भगवान्के चरणोंपर समर्पण करो । 'मा शुचः' – तुम शोक मत करो । इन उपक्रमोपसंहारके दोनों स्थलोंको देखनेसे शोक-मोह-चिन्ता-कात्याग ही गीताका तात्पर्य दीखता है। अर्जुनने भी अन्तर्मे समाधान रूपमें उत्तर दिया—'नष्टो मोहः।' मेरा मोह— अज्ञान नष्ट हो गया । जिस लक्ष्यके लिये मैं आपकी शरण आया था, उसका ज्ञान हो गया। मोह हो जानेसे युद्ध न करनेको कहा था, पर अब मोह दूर हो गया। आप जो आज्ञा देंगे, वही करूँगा। स्पष्ट है कि गीतामें प्रारम्भ, मध्य तथा अंतमें देखनेसे दुःख दूर करनेका उपाय-ज्ञान ही प्रधान है। जैसे अर्जुनको पहले मोहके कारण दुःख हुआ । दु:ख दूर होनेका उपदेश सुनकर उनका दुःख दूर हुआ और फिर उन्होंने उचित कार्य किया। इस ज्ञानप्रधान गीतामें उपदेश है । प्रत्येक आयु, योग्यता, कुळ, अनुभव, मनके अधिकारके अनुकूछ कई प्रकारके उपदेश हैं। गीतामें कहा है—'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि छभते नरः।' जिसका जो भी धर्म, कर्म निहित हैं, उसे ही ठीक रूपसे करनेसे भगवान्का प्रसाद मिलेगा । भगवत्-साक्षात्कारका यही मुख्य प्रारम्भिक साधन है। इसिलिये यह उपदेश व्यक्तिगतरूपसे तत्त्र-उपदेशरूपमें होनेपर भी साधन-रूपमें है। गीताका उपदेश भगवान्ने संसारके सभी छोगोंके लिये दिया है। इसीलिये कृष्ण भगवान्को जगद्गुरु कहा गया है—'क्रुच्णं चन्दे जगहुरुम्'।

इस उपदेशमें एक और विशेष बात है कि इसे पढ़नेसे बड़ा पुण्य मिलता है। जैसे रामचरितमानसके पारायणसे पुण्य मिल्रता है, उसी प्रकार गीता पढ़नेसे भी पुण्य मिलेगा। मानस-पारायणद्वारा राम-मिक प्राप्तकर हमारा जीवन धन्य होता है। इसी प्रकार भगवद्गीताके केवल पाठ करनेमात्रसे भी लाभ है, पर पड़कर उसके अनुसार आचरण करनेसे

(86 | 84)

भगवद्गीताके उपदेशसे भगवत्तत्त्रका ही साक्षात्कार हो जाता है। कुछ छिटफुट रलोकोंको छोड़कर भगवद्गीताके केवल ११वें अध्यायमें ही भगवान्की स्तृति है। शेपमें भगवान्ने जनताको उपदेश दिया है। उसके पालन करनेसे, उसके अनुसार आचरण करनेसे भगवद्गीताक उपदेशका पूर्ण फल हमारे जीवनमें आ सकते हैं और शेष गीता भगवान्के स्तोत्ररूपमें है। भगवद्गीता भगवान्ने हमारे लिये कही है। उसके पढ़नेसे भी पुण्य प्राप्त होता है, पर पढ़कर उसके अनुसार आचरण भी करना चाहिये। इसी दृष्टि और भावनासे आदिगुरु शंकराचार्यजीने कहा है— 'भगवद्गीता किचिद्धीता' इसको थोड़ा पढ़नेसे भी अपार पुण्य और पढ़नेके वाद इसके अनुसार आचरण के जुनसे कहा—

मन्मना भव मङ्गको मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः॥ (९।३४)

'अर्जुन! मेरेमें मन लगाओ, भक्ति करो, पूजा करो। कम-से-कम नमस्कार करो—ऐसा करनेसे भी मेरा स्थान पा सकते हो, इसमें संदेह नहीं।' भगवान्के ऊपर विश्वास रखनेसे, पूजा-पाठ करनेसे पुण्य अवस्य मिलेगा। केवल कई वार बोलनेसे लाभ नहीं मिलता। केवल ऐसा उच्चारण करनेसे कि 'नमस्कार करना है—नमस्कार करना है" विशेष लाभ न होगा। नमस्कार करनेसे लाभ मिलेगा। इसी कारण भगवद्गीता एक आचरणीय प्रन्थ है। हम लोगोंको चाहिये कि इसका अच्छी प्रकार अध्ययन कर तदनुसार आचरण भी करें।

अर्जुन अन्तमें उत्तर देते हैं—'करिष्ये वचनं तव'। हमलोगोंको भी चाहिये कि गीता-उपदेशमें जो भगवान् कहते हैं, उसीके अनुसार आचरण करें। किन्हीं तद्ववचनोंको जीवनमें उतारें तो हमारा जीवन सुधरेगा, इसमें संदेह नहीं। इसी भावनासे गीताका उपदेश दिया है। भगवान् कृष्ण कहते हैं—

यत्करोषि यद्दनासि यज्जुहोषि द्दासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्य मद्र्पणम्॥

जो कुछ भी आप खायें, जो कुछ भी तपस्या, त्याग, व्रत आदि करें, वह सब मेरे ही निमित्त करें। जो भी हम करें भगवान्के ही निमित्त करें। हर समय उनका ही ध्यान करें। ऐसा करनेसे उनका आशीर्वाद सुल्भ होगा—

'खधर्ममिप चावेक्ष्य न विकम्पितुमईसि।' 'खधर्मे निधनं थ्रेयः परधर्मो भयावहः॥' 'खकर्मणा तमभ्यच्यं सिद्धि विन्दति मानवः॥' 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि छभते नरः।' 'खकर्मनिरतः सिद्धि यथा विन्दति तच्छुणु॥'

जगद्गरु आदि शंकराचार्यजीने अपने भाष्यमें इस प्रकारका भाव प्रकट किया है- प्रत्येक व्यक्तिको स्वधर्मके अनुसार ही कार्य करना चाहिये। पिता-माता, गुरु तथा शिष्य—सबको अपने-अपने धर्मका पाळन करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही प्रत्येकको अपने कर्मसे शान्ति मिलेगी और ऐसा न करनेसे मान्यताएँ मङ्ग होंगी और अशान्ति आयेगी । स्वधर्म-पाठनसे ही हर एकको शान्ति मिल सकती है । स्वधर्म-पालनसे चित्त-ग्रुद्धि होती है । चित्त-गुद्धिसे योगगुद्धि और फिर ज्ञान-सिद्धि होती है। कर्मसे मन पवित्र होता है, योगसे चित्त एकाम्र होता है और अन्तमें ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होती है। भक्तिसे भगवान्का ज्ञान होता है और अन्तमें ज्ञानी भक्त ब्रह्मको प्राप्त करता है। इसिल्ये कहा है—'ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विश्वाते तद्नन्तरम्।' अपने कर्मका पालन उचित रूपसे करनेपर भक्ति होती है। भक्तिसे ज्ञान होता है और पश्चात् भगवत्प्रवेशरूप जीवन्मुक्ति, सायुज्य या कैवल्यरूप परमात्म-लाभ ।

मनुष्यको चाहिये कि प्रातःकाल उठकर, अपने नित्यकमसे निवृत्त होकर भगवान्का स्मरण करे, अपने इष्टदेवता, भगवान् राम-कृष्णका भजन करे, पूजा-पाठ करे । उसीके साथ-साथ अपने स्वधर्मका पालन भी करे । भगवान्की पूजा तथा भजन करनेके साथ-साथ अपने निमित्त-कर्तन्योंका पालन करनेसे ही धर्म-पालन करनेकी उचित परिस्थिति होती है। ऐसा करनेसे प्रत्येक व्यक्तिको पूर्ण शान्ति तथा उपरिनिर्दिष्ट गति अवस्य मिलेगी।

भगवत्तत्वका स्वरूप

(ऊर्च्याम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगहुर शंकराचार्य अनन्तश्री विभूषित स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराजका आशीर्वाद)

यह नाम-रूपात्मक समस्त विश्व कार्य है । इस कार्यका कोई उत्पादक-कर्ता भी होगा। किसी भी उत्तम भवनको देखकर उसके निर्माताको प्रत्यक्ष न देखकर उसके रचयिताका अनुमान-प्रमाणके द्वारा निश्चय होता है। इस अनुमानसे तथा 'जन्माचस्य यतः', इत्यादि सूत्र एवं 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' श्रतियोंके द्वारा इस विचित्र-अद्भुत जगत्का रचियता परमात्मा ही सिद्ध होता है। दार्शनिक पद्धतिके अनुसार कोई भी कार्य ज्ञानवान्, इच्छावान्, कियावान् कत्तीके बिना नहीं होता। लोकमें घटरूपी कार्यका कर्ता ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् कुम्भकार देखा जाता है । इसी प्रकार अखिल ब्रह्माण्डका कर्त्ता या निर्माता ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् सचिदानन्द-राशि भगवान् हैं। वे ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, कर्तुमकर्तु-मन्यथाकर्तुं समर्थ ईश्वर, भगत्रान्, परमात्मा आदि शब्दाभिलम्य हैं । शास्त्रोंमें भगवान्-शब्द-वाच्यका लक्षण इस प्रकार अङ्कित है-

उत्पत्ति च विनाशं च भूतानामागति गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

अर्थात् भूतोंकी (चराचरात्मक प्राणियोंकी) उत्पत्ति, विनाश, विद्या-अविद्या, गमनागमनको जो जानता है, वही भगवान् है। वह एक है, सर्वव्यापक, सर्वात्मक एवं सर्वशक्तिमान् है। संसारका कोई भी देश शासन या शासकके विना नहीं देखा जाता। कोई भी राज्य

व्यवस्था या नियम (कान्न)के बिना नहीं चढ सकता । नियम या कानून व्यवस्थापक—शासकके विना नहीं चल सकता। हम देखते हैं कि इस जगत्की व्यवस्था भी नियमानुसार ही चलती है। रात्रिके अनन्तर दिवस, दिनके पश्चात् रात्रि, ग्रीष्मके अनन्तर वर्षा, वर्षाके अनन्तर शरद् आदि ऋतुओंका परिवर्तन भी नियमबद ही होता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्षके बाद ग्रुक पक्ष एवं शुक्क पक्षके अनन्तर कृष्ण पक्ष, अमावस्याके पश्चात् पूर्णिमा, पूर्णिमाके अनन्तर अमावस्या । सूर्यप्रहण अमावस्याको और चन्द्रप्रहण पूर्णिमाको ही लगता है । तारे आकारामें टिमटिमाते हैं, पृथ्वीपर उनका पतन नहीं होता। मानव-से-मानव ही उत्पन्न होता है, न्यात्रादि नहीं। सिंहसे सिंहकी ही उत्पत्ति होती है, शृगालकी नहीं। जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है— 'मरणान्तं च जीवितम्'। इस प्रकार इस विचित्र विश्वकी (संसारचक्रकी) सुव्यवस्थाका संचालक ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् ही भगवान् है, जगदीश है, विश्व-नियन्ता परमेश्वर है, भगवत्तत्त्व है।

भगवान्के विभिन्न स्वरूप

अधिकारी-मेदसे उपासनाकी दृहताके लिये भगवान् या भगवत्तत्त्वको हम चार खरूपोंमें विभक्त कर सकते हैं। निर्गुण-निराकार—सिंद्रानन्दखरूप, सगुण-निराकार, सगुण-साकार, सगुण-साकार—लीलविग्रहावतार। माया-कलङ्कशून्य खप्रकाश अद्वैत अभेच पर्ष्रहाखरूप प्रथम है । वही ब्रह्म जीवोंके अदृष्टानुसार भोग-सम्पादनार्थ, मोक्ष-प्रदानार्थ, संसार-निर्माणार्थ अपनी अविटित्तवटनापटीयसी माया-राक्तिके द्वारा सगुण-निराकार, कारण ब्रह्म या ईश्वर-नामसे अमिहित होता है । अखिल ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं संहारादि कार्य इसी द्वितीय खरूपसे सम्पादित होते हैं । ब्रह्माण्डान्तर्गत सूक्ष्म प्रपञ्च या देवादि लोकोंकी मर्यादाको अन्यवस्थासे बचाकर सुन्यवस्थित रखनेवाला सगुण-साकार चतुर्भुजादि खरूप भगवान्का तृतीय खरूप है । मर्त्यलेकमें अधर्मको हटाकर धर्मन्यवस्थापनार्थ सगुण-साकार लीलाविप्रह राम-कृष्णादिखरूप भगवान्के चतुर्थ खरूप हैं । इस प्रकार इमारी संस्कृतिमें भगवान्के चार खरूप परे जासे हैं। यद्यपि भगवत्त्व असीम एवं अनत है तथापि अचिन्त्य अप्रमेय निर्गुण-निराकार परमालाहे विभिन्न खरूपोंके आधारपर उपासकोंकी उपासनाहे दृदताके लिये उपर्युक्त खरूपोंकी कल्पना शास्त्र-सम्मा है—'एकं सद् विभा बहुधा वदन्ति' (ऋग्वेदसंहिता)

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्यादारीरिणः। उपासकानां कार्यार्थे ब्रह्मणो रूपकल्पना॥ (रामपूर्वतापिन्युपनिपत्-७)

इस प्रकार भगवत्तत्वको हम चार खरूपोमें विभव करते हैं। उपासक खगत्यनुसार किसी रूपको उपास बनाकर अपने छक्ष्यतक पहुँच सकते हैं।

गोपालमन्त्रोपदिष्ठ भगवत्तत्व

(केन्द्रक-धनन्तभीविभूवित जगतुष भीनिम्बार्कायार्थं पीठाषीयर औ श्रीबीः श्रीदावासर्वेश्वरक्षरकार्यकी सहाराष)

सिंबदानन्य्रपाय कृष्णायाषिकष्टकर्मणे। नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे॥

(गोपालता॰ उप॰ १)
अथवनेदीय गोपालपूर्वतापनी उपनिषत् पाँच
अध्यायोंमें निबद्ध है। इसकी पश्चपदी ब्रह्मविद्याके अन्तर्गत
अध्यादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्र उपदिष्ट है। यहाँ मगवत्तत्त्वका
विस्तृतरूपसे प्रतिपादन हुआ है। श्रीगोपालमन्त्रराज
पाँच पदों एवं अष्टादशाक्षरोंके रूपमें साक्षात् मगवत्तत्त्व
(श्रीकृष्ण) का ही खरूप है। पाँच पद होनेके कारण
ही इसे 'पश्चपदी ब्रह्मविद्यां' कहा गया है। इसके
आराधन (सेवन) से अर्थात् जप-अनुष्ठानादिके
करनेसे भगवत्त्त्व (श्रीकृष्ण) की समुपलब्धि होती
है। यह विषय श्रीसनकादि मुनियोंके प्रश्न और
जगिता श्रीब्रह्माके उत्तर-रूपमें बड़े सुन्दर ढंगसे
वर्णित हुआ है।

श्रीसनकादि मुनिजनोंने सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्मदेवसे प्रश्न किया—'ब्रह्मन् ! परम (सर्वोत्कृष्ट) देव कौन है ! मृत्यु किस तत्त्वसे भयभीत है ! और किसकी

सत्तासे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित है ! हि स्थावर-जङ्गम समस्त (चराचर) विश्वका प्रेरक की हैं ! 'कः परमो देवः, कुतो मृत्युविभेति, कस विद्यानेनाखिल विद्यानं भाति, केनेदं विद्यं संसरतीति । इसपर श्रीब्रह्मदेवने कहा—'शरणाणा मक्तजनोंके पाप-हरण करनेवाले कर्तुमकर्तुमन्यथाक्षे समर्थ, सर्वनियन्ता, सर्वान्त्यामी, सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही सर्वोत्कृष्ट देवता हैं। इनके नामस्मरणसे ही समस्य पाप नष्ट हो जाते हैं 'क्त तदु होवाच्च ब्राह्मणः-कृष्णो वे परमं देवतम्, गोविन्दान्मृत्युविभेति गोपीजन विल्लभन्नानेन तज्ज्ञानं भवति, स्वाह्येदं संसरतीति।

यश्च यत्र स्थितो वापि कृष्ण कृष्णेति कीर्तनात्। सर्वेपापविशुद्धातमा स थाति परमां गतिम्॥ (पद्मपराण)

गोपालके प्रथमाक्षर 'गो' शब्दके अनेक अर्थ हैं 'जिनमें गौ, भूमि, सूर्यकी किरणें और इन्द्रियाँ वे मुख्य हैं। इन सबमें अन्तर्यामी रूपमें विराजमान होका समस्त चराचरका प्रतिपालन करनेवाले सर्वेश्वर श्रीहर्षि गोविन्द नामसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रसङ्गमें—ाय आदित्ये विश्वच् यः पृथिव्यां तिञ्चच्'। (बृहदा० छप) 'यहादित्यगतं तेजो जनद्भास्थयतेऽस्तिक्यः', 'गामाविषय स्व भूताति, वेदेश्व सर्वेरहमेव वेद्यः' (गीता) स्नादि वचन प्रमाण हैं। इन्द्रयागके अवसरपर इन्द्रके साथ स्वर्गसे आयी हुई कामघेतुने भी भगवान्से प्रार्थना करते हुए कहा था—

कुष्ण कृष्ण प्रहायोगिव विद्यासम् विश्वसम्भव।
भवता लोकनायेन सनाधा वयमच्युत॥
त्वं नः परमकं देवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः॥
इन्द्रं नस्त्वाभिषेश्यामो ग्रह्मणा नोदिता वयम्।
स्वतीणोऽसि विश्वातमञ् भूमेभीरापञ्जसये॥
(भीमद्रा०१०।१७।१९–२१)

'भ्रीकृष्ण ! साप महायोगेक्षर हैं । आप खयं विका और विश्वके परम कारण तथा अन्युत हैं। समस्त चराचरके खामी ! आपको हम अपने रक्षकके रूपमें प्राप्तकर आज सनाथ हो गयी हैं। आप जगत्कै खामी हैं, हमारे भी परमाराध्य हैं । प्रभो ! इन्द्र देवताओं के राजा हैं तो मले ही हुआ करें, पर हमारे इन्द्र तो आप ही हैं—अतएव आप ही गो-ब्राह्मण, देवता और सन्तजनोंकी रक्षा-हेतु हमारे इन्द्र बन जाइये । हम गायें ब्रह्माजीकी प्रेरणासे आपको अपना इन्द्र मानकर आपका अभिषेक करेंगी। विश्वात्मन् ! आपने भूभार हरण करनेके छिये ही अवतार धारण किया है । अन्तमें सुरभीके दुग्धद्वारा श्रीकृष्णका अभिषेक हुआ और-----गवानां इन्द्रः गोविन्दः' गार्योके इन्द्र (खामी-प्रतिपालक) होनेसे श्रीकृष्णका नाम 'गोविन्द' पड़ा । आज भी गिरिराज श्रीगोवर्धनकी पित्रमामें वह स्थान—जहाँ श्रीकृष्णका अभिषेक हुआ था, 'गोविन्दकुण्ड'के नामसे प्रसिद्ध है । गोविन्द नामसे मत्य भी भयभीत रहता है-

यस्य अञ्च च क्षत्रं च छमे भवत ओह्नः । सृत्युर्यस्योपक्षेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ (कठोपनिषद् १।२।२५)

मञ्ज्याञ्चाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मञ्जयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मञ्जयात् ॥ (शीमद्रा० ३ । २६ । ४२)

तेषामदं समुद्धतां मृत्युसंसारसागरात्। भवामि निवरात् पार्थं मच्यावेशितचेतसाम्॥ (गीता १२।७)

'जिस परत्रहाके छिये ब्राह्मण, क्षत्रिय मानो दोनों ही ओदन (भात)के समान हैं और मृत्यु भातके उत्पर दी जानेवाली कढ़ी या घृतधाराके समान है, उस ब्रह्मकी महिमा जाननेमें कौन समर्थ है ह भगवान् कापिकदेव माता देवहृतिसे कह रहे हैं — भेरे भयसे ही वासु चळता है, सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा कारते हैं, जन्न प्रज्वलित होती है और मृत्यु सभी छोकमें विचरण करता है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—'एकमात्र मुझमें ही चित्त लगानेवाले उन भक्तोंका मृत्युरूप संसार-सागरसे मैं शीघ्र ही उद्धार करता हूँ । इसमें उपनिषद्, भागवत और भगवद्मुख वाक्य प्रमाण है। इसी प्रकार इस पञ्चपदी ब्रह्मविद्या (श्रीगोपालमन्त्र)का तीसरा और चौथा पद 'गोपीजनबद्धभ' और पाँचवाँ 'स्वाहा' ये सब भी शब्द वाद्मयरूपमें भगवत्तत्त्वके प्रतीक ही हैं। इनकी आराधनाका फल वर्णन करते हुए बताया है— 'यो ध्यायति, रसयति, भजति सोऽसृतो भवति (गो॰ ता॰ १।६) सोऽमृतो भवति॥'

'जो उक्त मन्त्रके प्रतिपाद्य भगवत्तत्व (श्रीकृष्ण)का ध्यान, जप, भजन तथा—पूजन आदि करता है, वह अमृतत्व अर्थात् भगवद्गावापत्तिरूप मुक्तिको प्राप्त करता है। श्रीगोपाछतापिनी पूर्वार्द्र अध्याय २के मन्त्र ४में तो स्पष्टरूपसे वता दिया गया है कि उक्त मन्त्रराजके पाँचों पदोंमें भगवत्तत्व किस प्रकार विद्यमान है—

वायुर्यथेको भुवनं प्रविष्टो जन्ये जन्ये पञ्चकपो बभूव। कृष्णस्तथेकोऽपि जगद्धितार्थे राज्येनासी पञ्चपदो विभाति॥

'जिस प्रकार छोकमें सर्वव्यापक एक ही वायु प्रति शरीरोंमें पाँच (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान) रूपोंमें विभक्त हो गया है, ठीक उसी प्रकार वह एक ही भगवत्तत्व (परव्रहा श्रीकृष्ण) भी छोक-हितार्थ इस गोपाछमन्त्रके पाँचों पदोंमें सुशोमित हो रहा है। श्रीगोपाछतापिनी उपनिषत्में कहा गया है— 'एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन् वहुधा यो विभाति। तं पीठस्थं तेऽनुयजन्ति धीरास्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम्।' (३।१)

एक (अद्वितीय—समानातिशयश्रान्य) श्रीकृष्ण जिनके ब्रह्मादि सब देव अधीन हैं, ऐसे सर्वज्ञ सर्व-व्यापक सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही सर्वाराध्य हैं । वे एक होते हुए भी अनेक रूपोंमें प्रकाशित हैं । योग-पीठपर विराजमान उन श्रीकृष्णका जो भजन करते हैं, उनको वास्तविक सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है । श्रीगोपालमन्त्र-के पाँचों पदोंद्वारा भगवत्तत्त्रका वैशिष्ट्य वताते हुए ब्रह्माजीने सनकादिकोंसे कहा—

'यस्य पूर्वपदाद् भूमिद्धितीयात् सजलोद्भवः। तृतीयात्तेज उद्भृतं चतुर्थाद् गन्धवाहनः॥ पञ्चमाद्म्यरोत्पत्तिस्तमेवैकं समभ्यसेत्।'

'भगवत्खरूप उक्त श्रीगोपालमन्त्रके पाँचों पदों में प्रथम पदसे भूमि, दूसरेसे जल, तीसरेसे तेज, चतुर्थसे गन्धवाहन (वायु) और पाँचवेंसे आकाशकी उत्पत्ति हुई, अतः इस मन्त्रके अधिष्ठातृदेव सृष्टिकर्ता एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना ही श्रेयस्कर है। अन्तमें ब्रह्माजी महाराज अपना अनुभव वतलाते हैं— भी उन एक अद्वितीय पञ्चपदमन्त्राभिन्न, सिचदानदिवग्रह, गोविन्द श्रीवृन्दावनधामकी दिव्य धरापर

सुशोमित कल्पनृक्षके नीचे सिंहासनारूढ़ भगवात् श्रीकृष्णकी निरन्तर मरुद्गणोंसहित महान् स्तुतिहात छन्हें प्रसन्न करता हूँ—'तमेकं गोविन्दं सचिदानन्दः विश्रहं पञ्चपदं चृन्दावनसुरभूरुहतलासीनं सततं समरुद्गणोऽहं परमया स्तुत्या स्तोषयामि ।' वह स्तुति इस प्रकार है—

🕉 नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे। विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः॥ परमानन्दरूपिणे। विज्ञानरूपाय नमो कृष्णाय गोपिनाथाय गोविन्दाय नमो नमः॥ नमः कमलमालिने। कमलनेत्राय कमलनाभाय कमलापतये वेणुवादनशीलाय गोपालायाहिमर्दिने। कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ॥ नृत्यशालिने। वल्लवीवदनाम्भोजमालिने प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः॥ (गोपालताप० पूर्वीर्द्ध २ । १-७)

अथ हैवं स्तुतिभिराराधयामि तथा यूयं पञ्चपरं जपन्तः श्रीकृष्णं ध्यायन्तः संसृति तरिष्ययेति होवाच हैरण्यः॥ १७॥

इस प्रकार उपर्युक्त ग्यारह वाक्योंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी अपनेद्वारा की जानेवाछी स्तुतिका वर्णन करते हुए श्रीव्रद्वाजीने सनकादिकोंसे कहा—भैं भी यह आराधना करता हूँ, तुम भी इस पञ्चपदीका जप करते हुए भगवान् श्रीकृष्णका नित्य ध्यान करोंगे तो संसृति (संसार)से पार हो जाओगे। श्रीचक्र- सुदर्शनावतार आद्याचार्य जगहुरु भगवान् श्रीनिम्वार्कमहा- मुनीन्द्रने भी खनिर्मित 'वेदान्त-दशक्लोकी'के चौथे-पाँचवं क्लोक—'ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्' तथा 'स्मरेम देवों सकलेष्टकामदाम्' कहकर अपने आराध्य भगवत्तत्व श्रीराधाकृष्णकी अनन्यरूपसे वन्द्रना की है—'नान्यागितः कृष्णपदारिवन्दात्।'

'श्रीकृष्णपदारविन्दके अतिरिक्त उन्हें अन्य कीर्र गति—-आश्रय नहीं दीखता। आपने एक 'मन्त्ररहस्यघोडशी' नामक प्रन्यकी भी रचना की थी। इसमें १६ क्लोकोंद्वारा इसी भगवत्तत्व बरूप पञ्चपदी श्रीगोपाल-मन्त्रकी महिमाका दिग्दर्शन कराया है। इसी मन्त्ररहस्यघोडशी प्रन्थपर श्रीनिम्बाकंसे १ ४वीं पीठिकामें विराजमान आचार्यप्रवर श्रीसुन्दर भद्वाचार्यजी महाराजने 'श्रीमन्त्रार्थरहस्य' नामक संस्कृत टीका लिखी। भगवान् श्रीनिम्बाक्तीचार्यजीके ही ३०वीं पीठिकामें आचार्यपदासीन दिग्वजयी श्रीकेशवकाश्मीरि भद्वाचार्यजी महाराजने खनिर्मित 'क्रमदीपिका'-

नामक प्रन्थमें भी भगवत्तत्त्वपरक इस श्रीगोपालमन्त्र-राजका विशद् रूपमें वर्गन किया है। इसकी महिमाका दिग्दर्शन कराते हुए बताया गया है—

अष्टाद्शाक्षरो मन्त्रोब्यापको लोकपावनः। सप्तकोटिमहामन्त्रशेखरो देवशेखरः॥ (सम्मोहनतन्त्र)

भगवत्तत्त्व अनन्त है। अनन्तकी महिमा भी अनन्त ही है, अतः मानवक्षी वाणी अथवा लेखनीद्वारा उसका भी जितना वर्गन किया जाय, सब कम ही है।

—÷-9@€÷—

भगवतत्त्व क्या है ?

(लेखक-अनन्तश्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य खामी श्रीधराचार्यजी महाराज)

संक्षिप्त परिचय

विद्वानोंने ब्र अतत्त्व, परमात्मतत्त्व एवं भगवत्तत्त्व-इन तीनोंको अभिन्न माना है । आगम ग्रन्थोंमें अवस्थाभेदसे उसके दो रूप माने गये हैं --- निर्विशेषतत्त्व और सविशेषतत्त्व । ऐसे तो वह तत्त्व एकरस होनेमे सब अवस्थाओंसे अतीत है तो भी अपनी शक्तियोंका निमेष-उन्मेष करना उसका खयम्भू खभाव है; अर्थात् शक्तिमानमें सोना-जागना आदि उसकी शक्तिका सनातन स्वभाव है । निर्विशेष ब्रह्म निर्गुण निराकार है । जब वह शक्ति विद्युत्के समान उसमें उद्बुद्ध हो जाती है, तब वही निर्विशेष तत्त्व, सगुण भगवत्तत्त्व कहलाने लगता है। जिस-जिस भग (शक्ति)के प्रबुद्ध होनेपर तत्व भगवान् कहलाता है, उसके ज्ञान, वल, ऐश्वर्य, वीर्य, र शक्ति और तेज —ये छः अंश (पर्व) हैं। इन छ: अंशोंका समिटि भग है। इनसे युक्त होनेसे ही प्रमात्माका नाम भगवान् है । इसका विश्लेषण विष्णुपुराण इस प्रकार कर रहा है--

ज्ञानशक्तिवळैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः । भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैगुणादिभिः॥ (६।५।७९) उपनिषदोंमें 'भगवान्' शब्दके अक्षर, ईश्वर, अन्तर्यामी, सत्य, वैश्वानर, अञ्चय आदि नाम मिळते हैं।

भगवान्का रूप

अब यहाँ भगवत्तत्वके स्वरूपका कुछ वर्गन प्रस्तुत है। समस्त विश्वके कार्य ऐसे नियमोंसे संचालित हैं, जिनमें कदाचित् किसी प्रकारका भी अन्तर नहीं पड़ता । उदाहरणार्थ जो मह चलते हैं, वे नियमबद्ध होकर चलते ही रहते हैं और जो ग्रह जिस नियमसे अचल हैं, वे सदा-सर्वदा अचल हैं। रहते हैं । वे नियम भङ्ग नहीं करते । माताके गर्भमें प्रत्येक जीवके अङ्ग-हाथ, पाँव, आँख, नाक, कान इत्यादि नियमानुसार सदा बनते रहते हैं । पानी सदा नीचेकी ओर और अग्निकी ज्वाला ऊपरकी ओर चलती है । ये नियम सदा अचल, अभिट, सर्वत्र ध्यापक एक ही रूपको धारण करते हुए संसारको चलाते रहते हैं। इन नियमोंकी अचूक और निरन्तर दृढ़तासे इनका सत्य ब्रह्म प्रकट होता है । इन नियमोंकी सत्यता ही ईश्वर (भगवान्)का साक्ष्य प्रकट करता है । ये विश्व-व्यापक नियम सर्वव्यापी सत्यखरूप ईश्वरतत्त्व (भगवत्तत्त्व)-को प्रकट कर रहे हैं।

भ० त० अं० २—

सत्तस्वकी व्याख्या

भगवत्तत्त्व और सत्तत्त्व दोनों अभिन्न ही हैं। सत्की व्याख्या इस प्रकार है। जो प्रत्येक वस्तुका वास्तविक तत्त्व है, वही सत्तत्त्व है। इस सनातन सत्यके अनन्ता-नन्त उदाहरण हैं । यह सत्य प्रत्येक वस्तुमें बैठा हुआ उस वस्तुका नियमन करता है — 'अन्तः सन् यमयति इति अन्तर्यामा ।' इस निर्वचनसे उस सत्यतत्त्वका नाम अन्तर्यामी हो गया । इस सत्यको हम ईश्वर, वैस्त्रानर, अन्तर्यामी एवं अन्यय आदि नामोंसे अभिहित करते हैं। यह अक्षररूप सत्यात्मा सत्ता, शक्ति और अर्थके रूपोंमें तीन प्रकारसे जगत्में व्याप्त होता है । इनमें शक्ति ही एक मुख्य धर्म है । ये शक्तियाँ अनन्त हैं । (अनन्त) शक्तियोंके परस्पर सम्मिश्रणको सत्ता नाम दिया गया है । इन्हीं सत्तारूपी अनन्त शक्तियोंके घनमेंसे कितनी ही शक्तियोंके उद्गाप और आवापसे जो भिन्न-भिन्न एक वस्तु उत्पन्न होती है, उसीको आश्रय, आधार, अर्थ या द्रच्य कहते हैं। अर्थरूपसे मुर्च्छित एवं क्रियारूपसे जाप्रत् ये दोनों शक्तियाँ उस सत्तासे सम्बद्ध ही हैं।

वैश्वानर

भगवत्तत्व, ईश्वरतत्त्व एवं सत्तत्त्वके समान वेदान्तोक्त 'वैश्वानर' आदि अनेक तत्त्व भी आत्माके वाचक हैं। वेदोंमें वैश्वानरको ब्रह्माण्डकी आत्मा माना गया है। वेदान्तके सूत्र 'वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्' (१।२।२४) में ब्रह्माण्डात्मारूप वैश्वानरका वर्णन है। 'शतपथ ब्राह्मण'के आधारसे वैश्वानर शब्दका यह निर्वचन फलित होता है—'त्रिभ्यो विश्वानरेभ्यो जातोऽग्निवैश्वानरः'अर्थात् तीन वैश्वानरों-से उत्पन्न चौथा अग्नि 'वैश्वानर' कहलाता है। वेदमें तीन विश्व माने गये हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं युलोक।

इन तीनोंके संचालक इन तीनोंमें पृथक्-पृथक् तीन नर (नेता) हैं । अग्नि, वायु एवं सूर्य —ये तीनों ही एक शब्दमें वैश्वानर कहे जाते हैं। उस एक ही वैद्यानरके छोक-भेदसे ये वैदिक नाम हैं। पुराणीं विराटको विष्णु, हिरण्यगर्भको ब्रह्मा, एवं सर्वज्ञको क्षि कहा गया है। वस्तुत: ये पृथक-पृथक न होका एक ही परमात्माके विभिन्न नामरूप हैं। किसी भी छोक्ते अनवच्छिन वैश्वानरको पुरुष कहते हैं विराटका सम्बन्ध अग्निदेवतासे है । हिरण्यगर्भका वायु देवतासे है, सर्वज्ञशिवका इन्द्र देवतासे है। इन तीनोंमेंसे विराट ब्रह्माण्डका संरक्षक, पालक है। अर्थात् प्रकृति नियमके अनुसार प्रतिक्षण इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ क्षीण होता रहता है, उसकी पूर्ति करता हुआ इस ब्रह्माण्डकी स्थिति ज्यों-की-त्यों वनाये रखता है । हिरण्यगर्भ इस ब्रह्माण्डमें उत्पन होते हुए भिन्न-भिन्न पदार्थोंको आवश्यकतानुसार ऊपर-नीचे भिन्न-भिन्न स्थानपर वाँटकर संचालन करता हुआ त्रसाण्डके खरूपको क्रमशः सम्पन्न करता है। इस ब्रह्माण्डका समस्त परिवर्तन इसके अधीन है । तीसरा प्राइ सर्वज्ञ है। इसे ही अन्तर्यामी भी कहते हैं। इसीके द्वारा ब्रह्माण्डकी समस्त चेष्टाओंके कारणरूप-महाप्राण (मही-काल)का उत्थान अथवा संचालन होता रहता है।

कोई भी किया विना ज्ञानके प्रवृत्त नहीं होती। कियाका उद्गम स्थान ज्ञान ही है। जिस प्रकार हमारे ज्ञानका संचालन हमारे प्राज्ञ आत्माके अधीन है, उसी प्रकार ब्रह्माण्डमें होनेवाली समस्त चेथाएँ सर्वत्र (परमात्मा)के अधीन हैं। वही ज्ञानघन सर्वत्र ब्रह्माण्डकी आत्मा है, जिसका दूसरा नाम अन्तर्यामी है। उपनिषदोंमें उसके ही वैश्वानर, अक्षर, सत्य, सर्वत्र, ईश्वर, शिव, प्रणव, भगवान् आदि नामान्तर हैं। इनमें प्रणव ('ओम्') भी उसका प्रथम और मुख्य नाम है।

भगवत्तत्व और भगवद्रामानुजाचार्य

(लेखक—अनन्तश्रीविभ्पित अयोध्या-कोसलेशसद्न-पीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु रामानुजाचार्य वेदान्तमार्तण्ड यतीन्द्र श्रीरामनारायणाचार्य त्रिदण्डी स्वामीजी महाराज)

वेद्वेद्य परव्र स नारायणको ही भगवद्रामानुजाचार्यने वेद और पुराणोंके वचनोंके आधारपर भगवत्तत्व वताया है । इसका उल्लेख आपने ब्रह्मसूत्रके अपने श्रीभाष्यमें प्राय: सर्वत्र किया है । वेदोंमें आविभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तत्त्वोंका विशद वर्णन होनेपर भी ध्येयके रूपमें - 'कारणं तु कारणत्वका ही महत्त्व दिया जाता है। वेदकी विभिन्न शाखाओंमें उसका इस प्रकारसे निरूपण है—-'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' (छा० उ० ६।२।१) 'सोम्य! यह जड्-चेतनात्मक जगत् सृष्टिके आरम्भमें सत् ही था। ' 'ब्रह्म वा इद्मेक एवाग्र आसीत्'—यह पहले अपने अभिन्न निमित्तोपादानकारण ब्रह्मरूपमें 'आत्मा वा इद्मेक एवाग्र आसीत्' (ऐ०१। १।१)-- ध्यह समस्त विश्व अपने कारण आत्माके रूपमें ही अवस्थित था। 'प्को ह वे नारायण आसीत्' (महोपनिषद्) 'महाप्रलयमें एक नारायण ही थे।' 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिश्वासस्य तद्-ब्रह्म' (तै॰ उ॰) 'जिससे ये चेतनाचेतनवर्ग उत्पन्न होकर जीवित रहते, प्रलयकालमें जिसमें लीन हो और जिससे मोक्ष प्राप्त किया करते हैं वही ब्रह्म है। उसकी उपासना करों । इन वाक्योंमें निर्दिष्ट सत्, ब्रह्म, आत्मा ये पद ब्रह्म, प्रकृति और जीवके छिये हुए हैं । यहाँ 'छाग ---पशु-अधिकरणन्याय'से सद्ब्रह्म आत्माको विशेष कारण नारायणमें पर्यवसान मानना चाहिये।

नारायण शब्द भगत्रान् विष्णुके लिये ही रूढ है। आचार्यने ब्रह्मसूत्रके 'अथातो ब्रह्मजिश्वासा' इस सूत्रके 'ब्रह्म' पदका अर्थ भगवान् विष्णु किया है— 'ब्रह्मशब्देन च स्वभावतो निरस्तनिखिलदोषो

नवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणः पुरुषोत्तमोऽ-भिधीयते ।' सभी जगह खरूप और गुणोंसे बृहत्वगुणका योग होनेके ही कारण पुरुषोत्तम भगवान्के लिये ब्रह्म शब्दका प्रयोग होता है। जिसमें सीमातीत और उत्तरावधिरहित सभी प्रकारसे बृहत्व पाया जाय, आचार्यने वही ब्रह्मशब्दका वाच्य है। भगवत्-शब्दका निदर्शन किया है--- अतो ब्रह्मराब्द-स्तत्रैव मुख्यवृत्तः, तसादन्यत्र तद्गुणलेशा-दौपचारिकः, अनेकार्थंकल्पनायोगात्, भगवञ्छन्दवत्, अर्थात् बृह (बृहि) वृद्धौ धातुसे निष्पन तथा 'बृहित बृंहयति तसादुच्यते परं ब्रह्म' इस निरुक्तिसे सर्वत्र व्याप्त तत्त्वका वाचक ब्रह्म 'पद'की पुरुषोत्तममें ही रूढ़ता मानी गयी है, अतः वे ही ब्रह्मशब्दके मुख्य वाच्य हैं। भगवत्-शब्दका दृष्टान्त देकर आचार्यने निम्नलिखित प्रमाणोंके वलपर यह सिद्ध किया है—त्रह्मशब्द और भगवत्-शब्द दोनों भगवान् विष्युमें योगरूढ हैं—

तत्र पूज्यपदार्थोकिपरिभाषासमन्वितः। राब्दोऽयं नोपचारेण त्वन्यत्र ह्युपचारतः॥ (विष्णुपुराण ६।५।७७)

परम्रह्म परमात्मा विष्णु प्राकृत दोशोंसे रहित एवं ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्य-वीर्य और तेज—इन षडेंश्वर्योंसे सदा एवं सर्वात्मना परिपूर्ण हैं। वे ही पूज्य मगवत्-शब्दवाच्य हैं। पङ्कज शब्द जैसे कमलमें योगरूढ है, वैसे ही मगवत्-शब्द मी मुख्यतया परमात्मामें ही योगरूढ है। भगवान् विसिष्ठ, भगवान् वाल्मीिक आदिमें जो इसका प्रयोग होता है, उसे औपचारिक (गोण) समझना चाहिये। महर्षि वादरायणने भी ब्रह्मपदवाच्य विष्णुको ही माना है—

वेदे भूरिप्रयोगाच गुणयोगाच शार्ङ्गिण । तस्मिन्नेव ब्रह्मशब्दो मुख्यवृत्तो महामुने ॥ (गरुडपुराण) 'महासुने ! शार्क्रपाणि विष्णुके लिये ब्रग्नशब्दका वेदमें अधिक प्रयोग होने तथा बृहत्वगुणका योग होनेके कारण भी ब्रह्मश्चके जिज्ञासाधिकरणस्थ स्मृतिपुराणघट्टक—संदर्भमें वसिष्ठ और पुलस्यके अमोध वरदानसे विष्णु-पुराणकी रचना एवं देवताके पारमार्थिक तत्त्वज्ञाता महर्षि पराशरके उन वचनोंको आचार्यने उद्भृत किया है, जिनमें ब्रह्मतत्त्व-विष्णुतत्त्व एवं भगवत्तत्त्वकी एकताके साथ 'भगवत्,' शब्दकी समिष्ट एवं व्यष्टिकी व्याख्या है—

शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्दाते।
मैत्रेय भगवच्छन्दः सर्वकारणकारणे॥
पेश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव पण्णां भग इतीरणा॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यिखळात्मिन।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्तस्तोऽब्ययः॥
ज्ञानशक्तियळैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः
।
भगवच्छन्द्वाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥

मैत्रेय ! 'भगवत्' यह शब्द सभी कारणोंके परम कारण, लीला-विभूति एवं त्रिपादविभूतिके नियन्ता होनेके

(तिष्मुपुराम ६ । ५ । ७२, ७४-५, ७९)

कारण इस उभयविभूतिसे परे महाविभूति-शब्दवाष्य, प्राकृतविकाररहित, परब्रह्मनारायणके लिये कहा जाता है। इस 'भगवत्' शब्दके एक-एक अक्षरका अर्थ इस प्रकार समझना चाहिये—भकार ऊपरिनिर्दिष्ट परमकारण ब्रसके लिये समस्त कार्य वस्तुको कारणसामग्रीसे सम्पन्न करनेवाला होनेसे संभर्ता तथा समस्त कार्यवर्गको अपने संकल्परूप शक्तिसे भरग (पोपण) करनेके कारण भर्ता इन दो अर्थोंको कहा । गकारसे नेता. गमयिता और स्नद्या-तीन अर्थ कहे गये । भग —िन:सीम, ऐरुवर्य, अर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य - इन छ: गुणीं-का वाचक है। वकारार्थ जहाँ सभी जड़-चेतन भूतर्वा निवास करता है और जो सभी भृतोंके अंदर अन्तर्यामी आत्माके रूपमें निरन्तर आसीन है । उसकी स्थिति सबमें संकल्पाधीन होनेसे वह निर्विकार है । वही वकारका अर्थ है। सन्पूर्ण भगवान् शब्दका अर्थ-सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, बल, ऐस्त्रर्य, धर्म और तेज जिसमें सर्वदा बने रहते हैं वही भगवत्शब्द-वाच्य है । उपर्युक्त गुणोंसे युक्त एवं हेयगुणोंसे रहित सारांश यह कि भगवान् शब्द मुख्यतया वासुदेव (नारायण) का ही वाचक है और इसका प्रयोग गौण ही है।

'शान्तं शिवं अद्वैतम्'

हे परमात्मन् ! मानव-जीवनकी समस्त प्रार्थनाओं के भीतर एक ही अत्यन्त गम्भीरतम प्रार्थनी (आकाङ्क्षा) है, उसे हम अपनी बुद्धिसे स्पष्ट जानें वा न जानें, उसे हम मुँहसे बोलें अथवा न वोलें, हमारे अममें भीं, हमारे दुःखमें भीं, हमारी अन्तरात्मासे वह प्रार्थना (आकाङ्क्षा) सदा-सर्वदा तुम्हारे अभिमुख मार्ग खांजती रहती है। वह प्रार्थना यही है कि हम अपने समस्त ज्ञानके द्वारा शान्तको जान सकें, अपने समस्त कमोंके द्वारा शिवका दर्शन कर सकें, अपने समस्त प्रेमके द्वारा अद्वैतको प्राप्त कर सकें। फलके लाभकी आशाको हम तुमसे निवेदन करनेका साहस नहीं कर सकते, किंतु हमारी आकाङ्क्षा यही है कि समस्त विष्न-विश्लेप-विकृतिके मध्यमें भी इस प्रार्थनाको हम समस्त शक्तिके साथ सत्यक्ष्यसे तुम्हारे समीप उपस्थित कर सकें। हमारी समस्त अन्य वासनाओंको व्यर्थ करके हे अन्तर्यामिन् ! केवल इसी प्रार्थनाको स्वीकार करो कि हम कभी-न-कभी ज्ञानमें, कममें और प्रेममें यह उपलब्धि कर सकें कि तुम्हीं 'शान्तं शिवं अद्वैतम्' हो!

---श्रीकवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

ईश्वर-तत्त्व अथवा भगवत्तत्त्वकी मान्यता

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयास्त्रजी गोयन्दकाके अमृत वचन)

ईश्वरका विषय बुद्धिकी पहुँचके बाहरका है। ईश्वरके तत्त्वको न जानकर ईश्वरको माननेवाले कहते हैं कि ईश्वर सर्वत्र, सर्वशिक्तमान्, न्यायकारी, कर्मफलदाता, सत्य-विज्ञान-आनन्दघन है, पर ईश्वरके निर्माण किये हुए नियमोंका पालन नहीं करते। इसीका फल है कि आज संसारमें ईश्वरके अस्तित्वमें संदेह किया जाता है। ईश्वरको सर्वथा न माननेवालोंकी अपेक्षा वचनमात्रसे ईश्वरके माननेवालोंको उत्तम समझते हुए भी कहना पड़ता है कि वैसे अश्रद्वालु मनुष्य ही अनिश्वरवादके प्रचारमें एक प्रधान कारण हुए हैं। जो वास्तवमें ईश्वरको समझकर ईश्वरको मानते हैं, उन्हींका मानना सराहनीय है; क्योंकि जो ईश्वरके तत्त्वको जान जाता है, उसके आचरण परमेश्वरकी मर्यादाके प्रतिकृत नहीं होते, प्रत्युत उसीके आचरण प्रमाणभूत और आदरणीय होते हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं कि—

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसीके अनुसार वर्तते हैं, वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी उसीका अनुसरण करते हैं (३।२१)।' ऐसे पुरुष ही ईश्वरवादके सच्चे प्रचारक हैं।

१ — (क) — ईश्वर बिना ही कारण सबपर दया करता है, प्रत्युपकारके बिना न्याय करता है और सबको समान समझकर सबसे प्रेम करता है। इसलिये उसको मानना कर्तन्य है और कर्तन्य-पालन करना ही मनुष्यत्व है।

(ख) ईश्वरको विना माने उसके तत्त्वकी खोज नहीं हो सकती और उसकी खोज हुए विना उसके तत्त्वका ज्ञान नहीं हो सकता तथा ईश्वर-ज्ञानके विना कल्याण होना सम्भव नहीं।

(ग) ईश्वरको माननेसे उसकी प्राप्तिक लिये उसके गुण, प्रेम, प्रभावको जाननेकी खोज होती है और उसके नामका जप, खरूपका घ्यान, गुणोंके श्रवण-मननकी चेष्टा होती है, जिससे मनुष्यके पापों, अवगुणों एवं दु:खोंका नाश होकर उसे परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

(घ) अच्छी तरहसे समझकर ईश्वरको माननेसे मनुष्यके द्वारा किसी प्रकारका दुराचार नहीं हो सकता। जिन पुरुषोंमें दुराचार देखनेमें आते हैं, वे वास्तवमें ईश्वरको नहीं मानते, झूठे ईश्वरवादी वने हुए हैं।

(ङ) सच्चे हृदयसे ईश्वरको माननेवालोंकी सदासे जय होती आयी है। ध्रव-प्रह्लादादि-जैसे अनेक ज्वलन उदाहरण शास्त्रोंमें भरे हैं। वर्तमानमें भी सच्चे हृदयसे ईश्वरको मानकर उसकी शरण लेनेवालोंकी प्रत्यक्ष उन्नति देखी जाती है।

(च) सम्पूर्ण श्रुति, स्मृति आदि शास्त्रोंकी सार्थकता भी ईश्वरके माननेसे ही सिद्ध होती है; क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रोंका ध्येय ईश्वरके प्रतिपादनमें ही है।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते॥ (श्रीहरिवंश)

इसी प्रकार ईश्वरको माननेसे अनन्त छाम और न माननेसे अनन्त हानियाँ हैं।

२.—(क) कर्मोंक अनुसार फल भुगतानेवाले सर्वव्यापी परमात्माकी सत्ता न माननेसे मनुष्यमें उच्छृङ्खलता बढ़ती है। उच्छृङ्खल मनुष्यमें झूठ, कपट, चोरी, जारी, हिंसा इत्यादि पाप-क्रमोंकी एवं काम, क्रोध, लोम, मोह, अहंकार इत्यादि अवगुणोंकी वृद्धि होकर उसका पतन हो जाता है, जिसके परिणाममें वह और अधिक दुःखी वन जाता है।

- (ख) ईश्वरको न माननेसे ईश्वरके तत्त्वज्ञानकी खोज नहीं हो सकती और तत्त्वज्ञानकी खोजके विना आत्माका कल्याण नहीं हो सकता।
- (ग) ईश्वरको न माननेसे कृतन्नताका दोष आ जाता है; क्योंकि जो पुरुष सर्व संसारके उत्पन्न तथा पाछन करनेवाले सबके सुदृद् उस परमिपता परमात्माको ही नहीं मानते, वे यदि अपनेको जन्म देनेवाले माता-पिताको न मानें तो क्या आश्चर्य है ? और जन्मसे उपकार करनेवाले माता-पिताको न माननेवालेके समान दूसरा कीन कृतन्न है।
- (घ) ईश्वरको न माननेसे मनुष्यकी आध्यात्मिक स्थिति नष्ट हो जाती है और उसमें पशुपन आ जाता है। संसारमें जो छोग ईश्वरको नहीं मानते, गौर करके देखनेसे उनमें यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है।

३ — ईस्वरके अस्तित्वमें विचारनेकी वात है कि जो प्रमात्मा खतःप्रमाण है और जिस प्रमात्मासे ही सबका प्रमाण सिद्ध होता है, उसके विषयमें प्रमाण पूछना बालकपन है--जैसे किसी मनुष्यका अपने ही सम्बन्धमें राङ्का करना कि 'मैं हूँ या नहीं,' व्यर्थ है। यदि कहें कि मैं तो प्रत्यक्ष हूँ, ईस्वर तो ऐसा नहीं है, तो उत्तर यह है कि परमात्मा इससे भी बढ़कर है, प्रत्यक्ष है । कोई पूछे कि 'हमसे बढ़कर परमात्माकी प्रत्यक्षता कैसे ?' तो जो सूक्ष्मदर्शी हैं, वे सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा परमात्माका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हैं । इस विषयमें श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणादि शास्त्र और महात्मा पुरुषोंके वचन प्रमाण हैं। जिनको खयं साक्षात् करने-की इच्छा हो, वे भी श्रुति, स्मृति तथा महात्मा पुरुषोंके बताये हुए मार्गके अनुसार साधनके लिये प्रयत्न करनेसे प्रमात्माको प्रत्यक्ष कर सकते हैं । प्रमात्माक अित्तित्वकी सिद्धिमें युक्तिप्रमाणं भी हैं। कार्यकी सिद्धिसे कारणके निश्चय करनेको युक्तिप्रमाण कहते हैं। संसारमें

किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति और उसका संचालन किसी कर्ताके विना नहीं देखा जाता । इसीसे यह निश्चय होता है कि पृथ्वी, समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षुत्र, अग्नि, वायु, आकारा, दिशा और काल आदिकी रचना और नियमानसार उनका संचालन करनेवाली कोई बडी भारी शक्ति है; उसी शक्तिको परमात्मा समझना चाहिये। यदि कहो, 'बिना कर्ताके प्रकृतिसे ही अपने-आप सव उत्पन्न हो जाते हैं, इसमें कर्ताकी कोई आवश्यकता नहीं, जैसे-वृक्षसे बीज और वीजसे वृक्ष अपने-आप ही उत्पन्न होते हुए देखनेमें आते हैं, तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि यह कहना युक्तियुक्त नहीं है। प्रथम तो यह बात विचारनी चाहिये कि पहले वीजकी उत्पत्ति हुई या वृक्षकी ? यदि वृक्षकी कहो तो वृक्ष कहाँसे आया और बीजकी कहो तो बीज कहाँसे आया ? यदि दोनोंकी उत्पत्ति एक साथ कहो तो किसके द्वारा किससे हुई ? क्योंकि बिना किसी कारणके कार्यकी उत्पत्ति सम्भव नहीं । जिससे और जिसके द्वारा बीज, वृक्ष आदिकी उत्पत्ति हुई है, वही परमात्मा है । ऐसा नहीं माननेपर विस्वव्यवस्थाकी विधि नहीं बैठती है ।

दूसरा प्रश्न होता है कि यह प्रकृति जड है या चेतन ? यदि जड़ कहो तो चेतनकी सत्ता-स्फूर्तिकें विना किसी पदार्थका उत्पन्न और संचालन होना सम्भव नहीं; और यदि चेतन कहो तो फिर हमारा कोई विरोध नहीं; क्योंकि चेतन-शक्ति ही परमात्मा है, जिसके द्वारा इस संसारकी उत्पत्ति हुई है। केवल संसारकी उत्पत्ति ही नहीं, चेतनकी सत्ता विना इस संसारका संचालन भी नियमानुसार नहीं हो सकता। विना यन्त्रीके किसी छोटे-से-छोटे यन्त्रका भी संचालन होता नहीं दिखायी देता। ऐसे ही जिससे इस संसारका नियमानुसार संचालन होता है, उसीको परमात्मा समझना चाहिये। जीवोंके किये हुए कमोंके फलोंका भी सर्वन्यापी,

सर्वशिक्तमान्, सर्वज्ञ परमात्माके विना यथायोग्य मुगताया जाना सम्भव नहीं है; यदि कही कि कमोंके अनुसार कर्ता पुरुषको किये हुए कमोंका फल अपने-आप मिल जाता है, तो यह कहना युक्तियुक्त नहीं; क्योंकि कमोंके जड होनेके कारण उनमें कियाओंके अनुसार फलविभाग करनेकी शक्ति नहीं है। फिर चेतन जीव युरे कमोंका फल दुःख खयं भोगना चाहता नहीं। ऐसी दशामें कमिविपाक-व्यवस्था नहीं वन सकती, अतः परमेश्वरद्वारा कमोंके अनुरूप उनके कर्ताओंको नियत भोग भोगना पड़ता है—यह मानना आवश्यक होता है। इसी प्रकार अज्ञानके द्वारा मोहित होनेके कारण जीवोंको अपने कमोंके अनुसार खतन्त्रतासे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेकी सामर्थ्य और ज्ञान भी नहीं है।

इसके सिवा सृष्टिके प्रत्येक कार्यमें सर्वत्र प्रयोजन देखा जाता है। ऐसी प्रयोजनवती सृष्टिकी रचना विना किसी परम बुद्धिमान् चेतन कर्त्ताके नहीं हो सकती। इससे भी परमेश्वरकी सत्ताका बोध होता है।

ऊपरके विवेचनसे यह वात सिद्ध होती है कि परमेश्वरके बिना न तो संसारकी उत्पत्ति सम्भव है, न संचालन हो सकता है, न जीवोंको उनके कर्मफलका यथायोग्य फल प्राप्त हो सकता है और न सप्रयोजन-सृष्टि हो सकती है।

उपर्युक्त प्रमाण तो तर्कमूळक दिये गये हैं, वास्तवमें ईश्वर 'खत:प्रमाण' सिद्ध हैं; क्योंकि सम्पूर्ण प्रमाणोंकी सिद्धि ईश्वरके प्रमाणसे ही सिद्ध होती है, इसिंखये उसमें अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं।

ईश्वरके होनेमें शास्त्र भी प्रमाण हैं। सम्पूर्ण श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणोंका तात्पर्य भी ईश्वरके प्रतिपादन-में ही है। इसके लिये जगह-जगह असंख्य प्रमाण देख सकते हैं। यजुर्वेदकी उपनिषद् ईशावास्यके पहले मन्त्रमें कहा गया है कि—

'इस जगत्में जो कुछ भी है, वह सब-का-सब ईश्वरसे ही न्याप्त हैं'---

'ईशावास्यमिदं सर्वे यत्किञ्च जगत्यां जगत्!' उपनिषदोंके सारभूत ब्रह्ममूत्रों—-

'जन्माद्यस्य यतः', 'शास्त्रयोनित्वात् ।' इत्यादिमें स्पष्ट कहा है कि 'जिससे उत्पत्ति, स्थिति और पालन होता है, वह ईश्वर है । शास्त्रका कारण होनेसे अर्थात् जो शास्त्रका उत्पादक है तथा शास्त्रद्वारा मिलान है, वह ईश्वर है ।'

गीतामें (१५।१५) भगवान् खयं श्रीमुखसे कहते हैं कि—

भें ही सब प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामिरूपसे स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदोंद्वारा में ही जाननेयोग्य हूँ एवं वेदान्तका कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ।

वे यह भी कहते हैं कि 'हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी मायासे उनके कमोंके अनुसार भ्रमाता हुआ सबके हृदयमें स्थित हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देरोऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ (गीता १८। ६१)

उस ईश्वर-तत्त्वका खरूप गीताके (१३।१७) निम्नाङ्कित रुठोकमें वताते हैं—

ज्योतिषामि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं क्षेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

अर्थात्—'वह ब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे परे कहा जाता है तथा परमात्मा बोधखरूप और जाननेयोग्य है एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त होनेवाळा और सबके हृदयमें स्थित है।' गीता (१५।१७ में) और कहती है—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविदय विभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

'उन (क्षर, अक्षर) दोनोंसे उत्तम पुरुत्र तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोपण करता है, एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा ऐसे कहा गया है।' योगदर्शन (समाधिपाद २४—२६ में कहता है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । तत्र निरतिशयं सर्वज्ञवीजम् । पूर्वेपामिप गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

'अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश (मरणभय)—इन पाँच क्लेशोंसे, पाप-पुण्य आदि कमोंसे, सुख-दु:खादि भोगोंसे और सम्पूर्ण वासनाओंसे रहित पुरुषविशेष (पुरुषोत्तम) ईश्वर है। उस परमेश्वरमें निरितशय सर्वज्ञता है। वह पूर्वमें होनेवाले ब्रह्मादिका भी उत्पादक और शिक्षक है तथा कालके द्वारा उसका अक्लेट नहीं होता। असीके सम्वन्यमें तैंतिरीयोप-निपद् (३।१ में) कहती है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासख। तद्वसः।

'जिससे सब भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न हुए जीते हैं, नाश होकर जिसमें छीन होते हैं, उसको त् जान, वह ब्रह्म है।' श्वेताश्वतर उपनिषद्-(६। ११) का कथन है कि—

एको देवः सर्वभूतेषु गृहः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभृताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

अर्थात्—'एक ही देव (वह परमात्मा) सब मूतोंके अन्तस्तल्यों विराजमान है, वह सर्वय्यापी है, सब भूतोंकी अन्तरात्मा है। वही कर्मोंका अध्यक्ष, सब भूतोंका निवासस्थान, साक्षी, चेतन, केवल और निर्गुण है।

श्रीमद्भागवत-(४ । ७ । ५०-५१) में श्रीभगवान् कहते हैं कि---

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्। आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंहगविशेषणः॥ आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज। सृजन् रक्षन् हरन् विश्वंदध्ने संज्ञां कियोचिताम्॥

भ्हे ब्राह्मण ! में ही ब्रह्मा हूँ, शिव हूँ और जगत्का परम कारण हूँ । मैं ही आत्मा और ईश्वर हूँ, अन्तर्यामी हूँ, स्वयं द्रष्टा हूँ तथा निर्गुण हूँ । मैं अपनी त्रिगुणमयी मायामें समाविष्ट होकर विश्वका पालन, पोषण और संहार करता हुआ क्रियानुसार नाम धारण करता हूँ ।

महाभारत—अनुशासनपर्वके १४९ वें अध्यायके छठेसे दसवें क्लोकोंमें कहा गया है कि-—

'उन अनादि, अनन्त, सर्वलोकत्यापक, सर्वलोकमहेश्वर, सत्र लोकोंके अध्यक्षकी सदा स्तुति करनेवाल
सत्र दु:खोंको लाँघ जाता है जो परम ब्रह्मण्य, सत्र
धमींको जाननेवाले, लोकोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले,
लोकनाथ, सर्वभूतोंको उत्पन्न करनेवाले महान् भूत
हैं—जो तेजके परम और महान् पुञ्ज हैं, जो
बड़े-से-बड़े तपोरूप हैं, जो परम महान् ब्रह्मरूप हैं और
आश्रयके परमधाम हैं; जो पित्रत्र हैं, जो मङ्गलोंके
मङ्गल्लप हैं, जो देवताओंके परम देवता हैं और जो
प्राणिमात्रके अविनाशी पिता हैं।

वाल्मीकीय रामायण-(युद्धकाण्ड ११७ । ६-१५) में आया है कि—

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः। अक्षयं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव। लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥

(ब्रह्मा कहते हैं —) 'हे देव ! आप समस्त छोकों के कर्ता, ज्ञानियों में श्रेष्ठ विमु हैं । आप ही सब छोकों के आदि, मध्य, अन्तमें विराजित अक्षर ब्रह्म और सत्य हैं। आप सब छोकों के परमधर्म विष्वक्सेन चतुर्मुज हिर्र हैं।'

कितपय मतोंको छोड़कर ऐसा कोई भी वेद-शास्त्र नहीं है, जिसमें ईश्वरका प्रतिपादन न किया गया हो । ईसाने कहा है—'जिसका ईस्वरमें विश्वास है तथा जो भगवान्की शक्तिके आश्रित हैं, वह संसारसे तर जायगा, पर अविश्वासियोंकी वड़ी दुर्गति होगी।'

४-मनुष्य यदि विचारदृष्टिसे देखे तो उसे

न्यायकारी और परम दयाछ ईस्त्ररकी सत्ता और दयाका पद-पदपर परिचय मिळता है । सर्वशक्तिमान विज्ञाना-नन्दघन परमात्माकी सत्ता और दयापर तथा उसके फळस्वरूप होनेवाळी महात्माओंकी जीवन-घटनाओंपर विश्वास करनेसे अवस्य ठाभ होता है । प्राचीन और अर्वाचीन महात्माओंकी जीवन-घटनाओंसे भी उपर्युक्त तथ्य स्पष्ट और पुष्ट होते हैं ।

भगवत्तत्वसाधिका कृपैव केवलम्

(लेख ह—अनन्तश्री स्वामी श्रीअलण्डानन्द सरवतीजी महाराज)

ईश्वरवादी मानव-समाजमें यह सिद्धान्त सर्वसम्मितिसे मान्य है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, खतन्त्र, परम-ग्रेमास्पद एवं परम कृपालु है । किसी-किसी सम्प्रदायमें ऐसा खीकार करते हैं कि ईश्वर सर्वथा खतन्त्र होनेपर भी प्रेमके परतन्त्र है । इसमें यह प्रश्न है कि ईश्वर जीवके हृद्यमें रहनेवाले प्रेमके परतन्त्र है अथवा अपने हृद्यमें रहनेवाले प्रेमके ? जीव तो भगवान्के सौन्दर्य, औदार्य, सौशील्य, माधुर्य आदि सहुणोंको देखकर उसके प्रति मुग्ध हो जाता है, यह ईश्वर जीवके किन गुणोंको देखकर उसके प्रति मुग्न होता है ? वस्तुत: ईश्वर किसी अन्यके गुणोंको देखकर मुग्ध नहीं होता, उसमें ही उसका स्रह्मपिस् कोई सहज स्वाभाविक गुण है; जिससे वह खयं अपनी कृपा बरसाने लगता है । मेत्र जलमय, प्रभु कृपामय; 'कृपेंच प्रभुतां गता'—प्रभु-मूरति कृपामयी है । प्राचीन प्रन्थोंमें कारुण्य, कृपा, अनुकम्पा, अनुप्रह, पुष्टि, दया आदिके नामसे एक ही वस्तु प्रसिद्ध है और वह है भगवान्का सहज स्वभाव । वह नैमित्तिक नहीं है, प्रत्युत भागवत आनन्दका सरल-सरल, तरल-तरल पावन प्रवाह है।

भगवत्सम्बन्धी अनेक प्रश्नों और समस्याओंका समाधान उनकी कृपामें ही निहित है, जैसे निराकार साकार क्यों होता है ! अध्यक्त व्यक्तिके रूपमें क्यों

प्रकट होता है ? पूर्ण परिच्छित्र कैसे होता है ? अकाल कालकी धारामें कैसे आ जाता है ? कारण कार्यके रूपमें कैसे परिणत होता है ? वह मनुष्य, पशु-पश्ची आदिके रूपमें क्यों अवतीर्ण होता है ? असम्बन्ध होनेपर भी सम्बन्धी क्यों बनता है ? इन सबका और ऐसी अनेक मानसिक विकल्प-प्रन्थियोंका, बौद्धिक उल्झनोंका एक ही समाधान है---दश्यके अनेक नामरूपोंमें अजस प्रवहमान एवं तरंगायमान कृपा स्रोतिखनीकी अखण्ड धारा । सत् पुरुष अपनी अन्तर्दर्शिनी, तत्त्वावगाहिनी दृष्टिसे इसका सतत दर्शन करते रहते हैं। कृपा एक दर्शन है, भाव नहीं। श्रीमद्भागवतमें अनुकम्पासे समीक्षणका वर्णन है, प्रतीक्षणका नहीं । समीक्षण प्राप्तका होता है और प्रतीक्षण अप्राप्तका । सम्पूर्ण जीव-जगत्का कृपामय परमेश्वरमें ही उन्मजन-निमजन हो रहा है। कृपा-प्राप्तिकी लालसा मत करो, उसको पहचानो ।

श्रीमद्भागवतके व्याख्याकार महापुरुषोंने कहा है कि जब श्रीयशोदा माताने बालकृष्णको बाँधनेके लिये हाथमें रस्ती उठायी तो भगवान्की खतःसिद्ध अनेक शक्तियाँ उसमें वाधा डालनेके लिये उद्यत हो गर्यों। व्यापकता कहती थी कि जिसका ओर-छोर नहीं, वह रस्तीकी लपेटमें कैसे आयगा १ पूर्णता कहती थी कि जिसमें बाहर-भीतर नहीं, वह रस्सीके भीतर कैसे अँटेगा ? असंगता घोपणा कर रही थी कि प्रभुके शरीरके साथ रस्तीका संग असम्भव है। अद्वितीयताने स्पष्ट मना कर दिया कि खमें खका क्या वन्धन ? वन्धन तो परके साथ होता है। इस आपाधापीके समय श्रीमती भगवती भाखती कृपादेवी मन-ही-मन मुस्करा रही थीं। उन्होंने एक बार अपनी तिरछी चितवनसे देखा और सव शक्तियाँ निष्प्राण-सी धरी-की-धरी रह गयीं! बालकृष्ण प्रभु बन्धनमें आ गये! दामोदर नामरूप प्रकट हो गया। भक्त केवल प्रेमकी रस्सीसे ही नहीं, पशु-वाँधनेकी रस्सीसे भी प्रभुको बाँध लेते हैं। भक्तमें इतनी सामर्थ्य कहाँसे आती है! इस प्रश्नका उत्तर है—'कृपयासीत् खबन्धने।' ठीक ही है, भगवतीकृपा ही शक्ति-चक्रवर्तिनी है, भगवान्की प्रेयसी पटरानी।

जब घर-बाहर सर्वत्र प्रख्याग्निकी ज्वाला धधकने लगती है, अपने पापतापकी मायासे सम्पूर्ण विश्व झुळसने लगता है, उस समय एक सच्ची माँ जैसे अपने शिशुको गोदमें उठा लेती है, वक्षःखलसे चिपका लेती है, उसको बाह्रकी ताती वायु भी नहीं लगने देती है, उसकी शय्या वन जाती है, अपने छातीके दूधसे ही उसका पालन-पोषण करती है, वैसे ही महा-प्रलयके समय भगवान् सव जीवोंको अपनी ही सत्ता, भजन और आनन्दमें छीन कर लेते हैं। उनके संस्कार-शेष बीजके सिवाय अर्थात् उनके जीवत्वके सिवाय और कुछ भी रोष नहीं छोड़ते । जैसे माँके गर्भमें शिशु समप्र पोषण और संबर्द्धन प्राप्त करता है, उसी प्रकार यह जीव ईश्वरके गर्भमें विश्राम, शान्ति और पुष्टि प्राप्त करता है । महाप्रलयके समय भी इस प्रकार जीवकी शय्या बनकर उसे आराम देना और प्रलय-कालानलके तापसे बचा लेना यह भगवान्की कृपाका ही एक खरूप है । यह जननीकृपा है और जीवके जीवमें भी

सर्वदा ही अनुगत रहती है। जव-जव जीवका पीथा
मुरझाने छगता है तव-तव उसकी दृद्धि, समृद्धि एवं
पृष्टितृष्टिके छिये वह जननी ही उज्जीवनी वनका
आती है। आप किसी भी जीवके जीवनमें इस माँका
दर्शन कर सकते हैं। यह उपवास और भोजन, शोपण
और पोषण, प्रश्लाछन और स्नेहन — सभी प्रक्रियाओं।
जीवका हित करती रहती है। इसको पहचाननेमें देरसबेर हो सकती है, परंतु इसके कियान्वयमें कभी कोई
रुकावट नहीं पड़ती।

प्रलयके समय जीव शयनमें होता है। विस्पृति और अज्ञानका गहरा पर्दा इसको चारों ओरसे आच्छादित करके रखता है । उसे कोई दु:ख, चिन्ता नहीं है--यह तो ठीक है, परंतु इस शयन-दशामें कुछ धर्म, अर्थ, भोग, मोक्ष भी तो नहीं है। कोई शिशु सोता ही रहे, निद्रा-तन्द्रामें अल्साया हुआ निकम्मा पड़ा रहे--यह वात किसी भी वात्सल्यमयी जननीको कैसे रुचिकर हो सकती है ? वह चाहती है कि हमारा वेटा उठे, भलेबुरेकी पहचानें, कुछ करें, कुछ कमायें, अपने पौरुत्रसे कुछ भोगे। भला कौन ऐसी माँ होगी, जो यह न चाहे। वही माँ अपने बालकको जगाती है। एक-एकको अलग-अलग जगाती है। एक साथ जगाती है। सबके आलस्य भगाती है। स्नानमार्जन कराती है। हाँ, वहीं माँ जो जननी थी, प्रवोधिनी हो जाती है। वह प्रवोधिनी कौन है ? वह प्रमुकी कृपा है । यदि यह जीव प्रलयकी प्रगाढ़ निन्द्रामें सोता ही रहता तो क्या इसको किसी पुरुषार्थकी प्राप्ति होती ? सोते हुए जीवोंको जागरण-दशामें लाना यह प्रवोचिनी कृपा है ।

श्रीमद्भागवतमें, सोते हुए ग्वाल-वालोंको जगानेके लिये खयं भगवान् श्रीकृष्ण शृङ्गध्वनि करते हुए आते हैं—-'मबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा।'जागरणके पश्चात् श्रीकृष्णके साथ ही वे भव-वनमें प्रवेश करती हैं। अनेक रूपप्रपञ्चका दर्शन होता है, यदि ईश्वर, चैतन्य साथ न हो तो न प्रपञ्चका दर्शन हो और न उसकी क्रीडा हो; इसलिये यहाँ आकर कृपा ही प्रपिन्ननी हो जाती है, अर्थात् अनेक प्रकारके दृश्योंका सर्जन-विसर्जन करने लगती है। जो कुछ कारणशरीरमें छप्त, गुप्त या सुप्त था, उसको वह विस्तारक साथ फैलाती है। अन्त:करण, वहिःकरण, विषय, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश, मृदक्षिप्त, विश्विप्त, एकाप्र, निरुद्ध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्व आदि सभी स्थूल-सृक्ष्म विषयोंका विस्तार-प्रचार प्रपश्चिनी कृपा ही करती है । अविद्या-निद्रामें सुपुप्त जीवको जहाँ कुछ भी प्रतिभास नहीं होता था, वहाँ अव सब कुछ प्रतीत होने लगा । शिशुके नेत्र खुल गये, मन काम करने लगा । यह जो दश्य-दर्शनकी सामान्य शक्ति है, वह प्रवोधिनी है और जो दश्यकी अभिन्यक्ति है वह प्रपश्चिनी है।

अब कृपाका एक नया विलास प्रकाशमें आता है। विना इस कृपाकी अभिन्यक्तिके कोई भी प्राणी अपनी अनुकूछता और प्रतिकूछताको, सुपथ्य और कुपथ्यको नहीं जान सकता। वृक्ष अपनी वृद्धिके लिये कहाँसे मुड़े ! चींटी शकरके साथ कैसे जुड़े। पश्ची कौन-सा चारा खाये ! पशु कौन-सी घास चरे ! यह भोजन जीवनका साधन है और मरणका—यह कैसे जान पड़े ! करना न करना, खाना न खाना, ल्लिपना-प्रकटना बोछना-न-बोछना—ये सब प्राणियोंको कैसे ज्ञात हो ! सचमुच वही वात्सल्यमयी जननी कृपा प्रशिक्षणी-रूप धारण करके जीवमें विशेष ज्ञानकी एक धारा प्रवाहित करती है। अग्निका स्पर्श दाहक है। माताका वश्वःस्थल बाहक है। पाँचसे चछना, हाथसे खाना, प्यास लगनेपर जल पीना, इष्ट अग्निकी पहचान कराना—यह सब भगवानकी प्रशिक्षणी कृपाके विलास हैं।

इसी प्रशिक्षणसे जीवनमें प्रणयन अर्थात् निर्माणका अवतरण होता हैं। जीवनके प्रणयनका मूल प्रशिक्षण ही है। इसके विना जीवजगत् सब अन्ये हो रहे हैं। अन्तरमें बैठकर प्रवृत्ति और निवृत्तिके लिये उन्मुख कौन करता है! वह अन्तः प्रविष्ट शास्ताकी प्रशासन-शक्ति ही है। वह सभी वस्तुओं, व्यक्तियों और भावोंका परस्पर विलक्षण विशेष रूप, आकृति, गुण, धर्म, खभावकी रचनासे मिन्न-मिन्न प्रकारका उत्पादन, समरण और संहरण क्यों करती है! वह किसीके पूर्व-संस्कारोंका अनुगमन अथवा नवीनीकरण ही क्यों करती है! विचारदृष्टिसे देखनेपर वह शक्ति किसी हेतु, निमित्त या प्रयोजनसे प्रेरित नहीं जान पड़ती। जब शक्ति अहेतुक ही कार्य करती है तो प्रणयिनी कृपाके सिवाय उसके लिये दूसरा नाम नहीं हो सकता।

इसी प्रणयनके अनन्तर इष्ट-अनिष्टका भाव परिपक्त हो जाता है तब इष्टकी प्राप्तिकी इच्छा होती है और अनिष्टकी परिजिहीर्षा । यह इच्छा ही अभिछाषिणी कृपाका रूप है । जो अभिछाप देता है, वही प्राप्त भी कराता है और प्राप्तिक साधन भी देता है । धर्म, अर्थ, काम—कुछ पाना है ! उसके छिये छौकिक, बैदिक कर्म चाहिये । कर्मके करण-उपकरण चाहिये । कर्मका अधिकारी कर्ता चाहिये । उपयुक्त स्थान और समय चाहिये । सहायक और सामग्री चाहिये । फलकी प्राप्तिक साथ-साथ उसमें रुचि चाहिये । उसके भोगके योग्य शारीर चाहिये । निर्विष्त निर्वाह चाहिये । विशेष ज्ञान चाहिये । यह सब छेकर कौन आता है ! प्रभुकी प्राप्तिणी कृपाके ही ये भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह है सर्वदा,

अनुकूछ अथवा प्रतिकूछ वस्तुकी प्राप्ति होनेपर दातापर दृष्टि जानी चाहिये, परंतु कुछ ऐसी मोहमयी लीला चल रही है कि अनुकूलमें राग हो जाता है, प्रतिकूलमें द्वेष और दातापर दृष्टि नहीं जाती। तमसे पक्षपात और द्वेपसे क्रूरताका जन्म होता है। रागमें स्राद और द्वेषमें कटुता परंतु ऐसा क्यों होना है ? ऐसी दशामें प्रमुकी कृपा कहाँ प्रमुत हो जाती है ? गम्भीरतासे देखें तो वह कहीं जाती नहीं है। हमारी खतन्त्र विवेकशक्तिको जाप्रत् करती रहती है। क्या कल्पित गणित ठीक-रीक सीख छेनेपर वास्तविक गणितका साधन नहीं बनता ? बिना सुख-दु:खके झकोरे सहन किये किसके जीवनमें स्कृतिका उदय हुआ है ! फिर भी हम मान लेते हैं कि राग-द्वेष विवेक-की ओर नहीं, मुर्च्छा और मोहकी और ढकेलते हैं। एक ऐसी मोहिनी माया छा जाती है कि उससे देवता-दैत्य ही नहीं, शिव भी मोहित हो जाते हैं। यह मोहिनी आत्माकी अक्षुण्ण प्रकाश-शक्तिपर ही आधारित है। जो मोहिनी देवता-दैत्य—दोनोंके छिये छोमनी है, वही फलकी प्राप्ति और अप्राप्ति—दोनों ही दशामें क्षोमणी हो जाती है । परिणामतः देवासुर-संप्राम होता है। इस संप्राममें कृपा भक्तके प्रति उत्कर्षणी और अभक्तके प्रति अपकर्पणी होकर प्रकट होती है। यही दैत्यराज बल्किके भी सर्वस्वात्म-समर्पण और भगवद्दशीकरणमें हेतु वनती है । प्रह्लाद इसको पहचानते हैं, बिलकी धर्मपत्नी भी। यह मोहिनी कृपा किसीको जहाँ-का-तहाँ जड़ वना देती है । और, रोधनी-संज्ञा धारण करती है । किसीके मनमें विरोध उत्पन्न करके विरोधिनी वन जाती है और उसके स्मरणी-दीत वैमननो देखकर जो मुग्न होने लगते हैं, उन्हें वह प्रभुके सम्मुख कर देती है और अनुरोधिनी बन जाती है।

यह मोहिनी न जाने किस-किस विलक्षण और विचक्षण-रीतिसे विभिन्न-लक्षण जीवोंको संसारकी विविध प्रत्रुत्तियोंमें लगाकर प्रवर्तनीका काम करती है और भिन्न-

भिन्न योनियों में डाळकर परिर्वतनीका रूप धारण कर्ला है। किसी-किसीको पूर्वावस्थामें छौटकर अपने पराकर्तन बना लेती है। यह पृथक्-पृथक् निरूपण करना शक्ष नहीं है। संसारमें जितनी क्रियाएँ हैं, माव हैं, संज्ञा हैं— सभी इस मोहिनीके नवनवायमान अभिन्यञ्जनाके है। रूपान्तरण हैं। जो इनके वाद्य खाँगके रंगमें ही अफ्री अन्तरंगको रंग लेता है, वह क्षण-क्षण उनका दर्शन करके आनन्दमग्न रहता है।

प्रभुकी कृपाका एक रूप है--आकर्षण-रूप। परन्तु वह प्रारम्भमें विकर्षणीका रूप प्रहण करके आत है। विकर्षणी भी अपना सहज सौरभ तब प्रकर करती है जब वह तापनी होकर हृदयमें प्रपञ्च-संवेदनके प्रति तापनी वन चुकती है। कहनेका अभिप्राय यह है कि जब ईश्वर-वियोगिनी वृत्ति प्रपञ्च-संयोगमें ताप और ज्वालाका अनुभव करने लगती है —संसारकी सुर्पि वस्तुमें भी दुरमिसन्धिकी शंका होती है, तव रसमें भी वित्र घोला हुआ जान पड़ता है, सुरूपतामें कुरूपता दीखने लगती है। सुकुमार मारकका दूत लगने लगता है। मधुर खर सुख-विछुरताके कर्णभेदी व्वनिसदश प्रतीत होने लगतें हैं और प्रिय सम्बन्ध वन्धन लगने ल्गाते हैं, तव यह तापनी संसारकी ओरसे विकर्त्रण करके प्रमुकी आकर्षण धारामें डाल देती है। अव ऐसा लगने लगता है कि कोई मेरा प्रेमी है। वह मुझे अपनी ओर खींच रहा है-—बलात् । मेरा वास्तविक प्रियतम वही है। मेरा निवासस्थान उसीके पास है । इतने दिनोंतक मैंने घोर अन्धकारमें, पराय घरमें जीवन व्यतीत किया है। मैंने भ्रमवश सुखकी दु:ख माना है। मैं जहाँ हूँ, वहाँ शान्ति नहीं है प्रकाश नहीं हैं, सुख नहीं है। मुझे अपने प्रियतमवे उस रसमय, मधुमय प्रदेशमें चलना चाहिये, जहाँ बस वही वह विहार करता है।

जब इस प्रकारके संकल्प ठठने लगते हैं, तब इनके प्रवाहमें वासनाके मल धुलने लगते हैं। कृपा श्वालनी होकर आ जाती है और धीरे-धीरे अन्तर्देश पवित्र होने लगता है। वह कृपा दावणी और स्नेहनी भी वनती है । प्रमुके लिये तीत्र व्याकुलताकी ज्वालासे वह अन्तःकरणको द्रुत करती है और उसमें परमानन्दमय प्रमुके लिये एक प्रकारकी क्षिग्धता उत्पन्न करती है। इस क्षालक, द्रवण और रनेहनकी प्रक्रियाके विना हृदयमें रासायनिक प्रभाव उत्पन्न नहीं होता और उसमें भगवदाकार होनेकी योग्यता नहीं होती । वासनाएँ दूसरा आकार बना देती हैं। ममता कठोर बनाती है और अन्योन्मुखता रूक्ष करती है। इन तीनों दोशोंकी निवृत्तिके लिये कृपा उक्त तीनों रूप धारण करती है और क्षालित, द्रवित एवं स्निग्ध हृदयमें भगवान्के प्रासादिक रूपका अनुभव कराती है। यहीं उसका एक नाम प्रसादनी भी हो जाता है।

इस अवस्थामें ईश्वरके जिस स्वरूपका अनुभव होता है, वह अत्यन्त विविक्त एवं स्पष्ट नहीं होता; क्योंकि वासनाओंके शान्त हो जानेपर भी अविद्याके संस्कार वने रहते हैं। परंतु हृदयके शुद्ध होनेके कारण ईश्वरको सम्पूर्णरूपसे अपना विषय वनानेके लिये एक दिव्य वृत्तिका उदय होता है । उसमें व्याकुलता नहीं है । दाह और ताप भी नहीं है, परंतु एक सम्पूर्ण अनुभूतिके लिये आन्तरिक प्रयत्न होता रहता है। इस प्रयत्नको अन्वेषणी, विवेचनी अथवा जिज्ञासनी कृपाका नाम दिया जा सकता है। इसमें अपने अन्वेष्य अथवा अनुमेय वस्तुके अतिरिक्त किसी और विषयकी ओर चिन्तनकी धारा नहीं गिरती । परिणामतः प्रकाशिनी कृपा अभिव्यक्त हो जाती हैं । उस समय अपने अन्तःकरणके ही सूक्ष्मतम आधार-प्रदेशमें भगकरखरूपकी स्कृर्ति होने लगती है। वह स्वरूप न घटादिके समान प्रत्यक्ष होता है और न खर्गादिके समान परोक्ष ।

वस्तुतः वह अवेद्य, अपरोक्ष ही होता है, परंतु अन्वेषणीसे पृथक, विवेचनीसे खरूप और जिज्ञासनीसे प्रत्यक् चैतन्यामिन्न ब्रह्मके रूपमें अनुभव होता है। इस अनुभूतिको मेळनीकी संज्ञा दी जा सकती है; क्योंकि जिसका अनुसन्धान कर रहे थे वह अव मिळ गया है। यह मेळनी ऐसी है कि फिर वियोजनी अथवा संयोजनी वृत्तिका संस्पर्श नहीं होता; क्योंकि वियोग-संयोगकी कल्पनाके ळिये कोई अवकाश नहीं रहता। कर्मके नष्ट होतेपर फळका नाश अथवा हास होता है; किंतु प्रमाण-वृत्तिके रहने न रहनेका प्रमेय वस्तुपर प्रभाव नहीं पड़ता। वस्तुके छिये समरणी-विसमरणी भी अकिश्चित्कर है। भक्तिमार्गसे भी मेळनी केवळ नित्य सम्बन्धकी अभिन्यक्रनी होती है, उत्पादनी नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि यह सर्वविध बन्धनसे मुक्त कर देती है, चाहे इसका रूप कुछ भी क्यों न हो। इसलिये मेलनीका ही एक नाम मोचनी हो जाता है। यह अनात्मासे, अनिष्टसे, द्वैतश्रमसे सर्वथा मुक्त करनेमें समर्थ है। इसके बाद तीन रूप प्रकट होते हैं--शमिनीमें सम्पूर्ण वृत्तियोंकी उपशान्ति होकर प्रपञ्चका अभान हो जाता है, खच्छन्दीमें वृत्तियोंकी प्रतीतिमात्र उपस्थिति-अनुपस्थितिका कोई महत्त्व नहीं रहता और ह्वादिनी रसिक, रस्य और रसनको एकरस परमानन्द कर देती है। तव भूमि, वृक्ष, छता, पशु, पक्षी, पर्वत, नदी-सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, समीर, आकाश, मन, भोक्ता, भोग्य, कर्म, कर्ता कहाँतक गिनायें---सत्र कुछ भगवन्मय हो जाता है। धाम, नाम, रूप, लीला, गुण, स्वभाव, दुर्जन, सज्जन--सत्र कुछ रस-खरूप परमात्माकी निर्माण छीलामात्र होते हैं। यह ह्वादिनी कभी प्रसादनी, कभी अमिसारणी और कभी मानवी होकर आती है। सुखकी व्यञ्जनाके लिये मनाती है। मिलनेके लिये नदीकी तरह वहती है । आनन्दधारामें हिमशिलाके समान मान करके बैठ जाती है। यह चाहे जो रूप धारण करे, रहती है—भावनी, रञ्जनी, तर्पणी और नन्दनी ही। चाहे आँख-भों चढ़ी हो, चाहे प्रसन्न, हो, वह प्रियतमकी प्रसन्नताके लिये अपनी प्रियताकी अभिन्यिति ही होती है; क्योंकि अब आनन्दरसंक सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इसीसे यह कभी मिलकर मोदनी दिखाती है तो कभी मोदनी दीखती है। संयोग और वियोग चुल-मिलकर एक हो चुके होते हैं और उनकी आकृति-विशेष होनेपर भी तत्त्वविशेष नहीं होता। वह रसिविशेषका उल्लास है, प्रेमका प्रकाश है, प्रीति-महार्णक्की तरंग है, कभी दो है, कभी एक है। वहाँ 'कभी' है परंतु काल नहीं। वह सक्षपणी कृपा अभेदखरूपा ही है।

इस कृपाका खरूप देश-काल-वस्तु-व्यक्तिसे परे भी है और उनमें अनुस्यूत भी है। वस्तुतः कृपाके अतिरिक्त और कोई महत्ता, सत्ता नहीं है। वह अरूपिणी रहकर सर्वरूपमें प्रकाशित होती है। कृपा और कृपालुता दो तत्त्व नहीं हैं। जब, जहाँ जो कृपालुका खमाव है तब तहाँ, वही कृपाका खरूप है। आत्मा-परमात्माका भेद और अभेद—दोनों ही कृपा हैं। जब सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च अन्य-तमसाच्छ्य होता है, तब क्या हमारे नेत्रोंके भीतरसे सूर्यज्योति वेरोक-टोक झाँकती हुई नहीं ज्ञात होती ! अन्यकारके पीछे क्या सूर्यमण्डल जगमगाता हुआ नहीं होता ! अन्यकार दु:ख, मृत्युके आगे-पीछे सर्वत्र वही मङ्गल्ज्योति झिलमिला रही है। इस अरूपिणी कृपाको केवल पहचानना पड़ता है, पाना नहीं।

तत्त्वज्ञानका अर्थ भी इसे पहचानना ही है। इसको चाहे ब्रह्म कह लो या आत्मा, सगुण-निर्गुणका भेद व्यावहािक है, पारमार्थिक नहीं।

रूपिणीकृपा तव समझमें आती है जब वह हमारे इंग्रेंके स्मरणमें हेतु वनती है, जैसे सत्संग मिले, भगवद्राम मिले, कुछ कालतक भगवान्की आराधना मिले। भक्तकी दृष्टिसे वह रूपिणोकूपा होगी; क्योंकि वह साधनका रूप धारण करके आयी है। यह क्या अपने-अपने पुरुषार्थ--धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिने अनुकूलता उत्पन्न करनेपर पहचानी जाती है। जिज्ञासु-को सन्त मिले, अर्थीको सेठ मिले, कामीको कामिनी मिले और धर्मात्माको सत्पात्र, तो उसे भगवान्की रूपिणीकृपा समझेगा । परंतु यह दृष्टि पुरुवायेकी उपाधिसे है । इसमें कृपाकी सची पहचान नहीं है । सबी कृपामें अपनी इच्छा या आवश्यकतापर नहीं जाती, उसमें तो प्रत्येक परिस्थितिमें समीक्षण होता उसका है, प्रतीक्षण प्रार्थना भी नहीं। जो है, उसके छिये क्या प्रतीक्षी और क्या प्रार्थना ? उसकी अनेकरूपता वैसी ही है। जैसी रासलीलाके समय श्रीकृष्णकी अनेकरूपता या ब्रह्माके प्रति अनन्तरूपका दर्शन । कृपाकी पहचान हो जानेपर उसमें स्मरण, प्रतिष्ठा और निष्ठाकी भी आवश्यकता नहीं रहती । जो कुछ है, नहीं है; भासता है, नहीं भासता है; प्रिय है, अप्रिय है; भेद है, अभेद है— कृपाका ही विलास है। कृपाही--केवल कृपाही भगत्रत्तत्वकी दर्शिका और संसाधिका है। उसकी प्राप्तिका यत्न मानवका साधन है।

रामकुपाकी महिमा

केवट निसिचर बिह्म सुग किए साधु सनमानि। तुळसी रघुवर की छूपा सकळ स्मांग्य

तुल्सोदासजी कहते हैं -- भगवान् श्रीरामजीकी कृपा सब सुमङ्गलोंकी खान है। उस राम-कृपाने केवट, र्राध्यस्य (विभीपण), पक्षी (जटायु) और पशुओं (बंदर-भाष्ठ आदि)को भी सम्मान देकर साधु बना दिया।

भगवती-तत्त्व

(नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोहारका शक्तितत्त्व-चिन्तन)

सर्वोपरि, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वमय, समस्त गुणाधार, निर्विकार, नित्य, निरञ्जन, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, संहारकर्ता, विज्ञानानन्दधन, सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं। वे एक ही अनेक भावों और अनेक रूपोंमें लीला करते हैं। हम अपने समझनेके लिये मोटेरूपसे उनके आठ रूपोंका भेद कर सकते हैं—

१--नित्य, त्रिज्ञानानन्दघन, निर्गुण, निराकार, मायारिहत, एकरस ब्रह्म, २-सगुण, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, अध्यक्त निराकार परमात्मा, ३-सृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्मा, ४-पालनकर्ता भगवान् विष्णु, ५-संहारकर्ता भगवान् रुद्र, ६-श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीदुर्गा, काली आदि साकाररूपोंमें अवतरित रूप, ७-असंख्य जीवात्मारूपसे विभिन्न जीवशरीरमें व्याप्त और ८-विश्वब्रह्माण्डरूप विराट्-ये आठों रूप एक ही प्रमात्माके हैं । इन्हीं समग्ररूप प्रभुको रुचिवैचित्र्यके कारण संसारमें छोग ब्रह्म, सदाशिव, महाविष्णु, ब्रह्मा, महाशक्ति, राम, कृष्ण, गणेश, सूर्य, अल्लाह, गाँड, प्रकृति इत्यादि भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंमें त्रिभिन्न प्रकारसे पूजते हैं । वे सिचदानन्दघन अनिर्वचनीय प्रभु एक ही हैं, छीलाभेदसे उनके नामरूपोंमें भेद है और इसी भेदभावके कारण उपासनामें भेद है । यद्यपि उपासकको अपने इष्टदेवके नाम-रूपमें ही अनन्यता रखनी चाहिये तथा उसीकी पूजा शास्त्रोक्त पूजन-पद्धतिके अनुसार करनी चाहिये, परंतु इतना निरन्तर स्मरण रखना चाहिये कि शेष सभी रूप और नाम भी उसी इष्टदेवके हैं । वे ही प्रभु इतने विभिन्न नाम-रूपोंमें समस्त विश्वके द्वारा पूजित होते हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं। पूरे जगत्में वस्तुतः एक वे ही

मैले हुए हैं। जो विष्णुको पूजता है, वह अपने-आप ही शिव, ब्रह्मा, राम, कृष्ण आदिको पूजता है, और जो राम, कृष्णको पूजता है वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको। एककी पूजासे सुतराम सभीकी पूजा हो जाती है; क्योंकि एक ही सब बने हुए हैं। परंतु जो किसी एक रूपसे अन्य समस्त रूपोंको अल्या मानकर औरोंकी अवज्ञा करके केवल अपने इष्ट एक ही रूपको अपनी ही सीमामें आवद्ध रखकर पूजता है, वह अपने परमेश्वरको छोटा बना लेता है, उनको सर्वेश्वरत्वके आसनसे नीचे उतारता है। इसलिये उसकी पूजा सर्वोपिर सर्वमय भगवान्की न होकर एक देशनिवासी खल्प देवविशेषकी होती है और उसे वैसा ही उसका अल्प फल भी मिलता है। अतएव पूजो एक ही रूपको, परंतु शेष रूपोंको समझो उसी एकके वैसे ही शक्ति-सम्पन अनेक रूप।

महाशक्तिका परिणाम

वस्तुतः वह एक महाशक्ति परमात्मा ही हैं, जो विभिन्न रूपोमें विविध लीलाएँ करते हैं। परमात्माके पुरुषवात्रक सभी खरूप इन्हीं अनादि, अविनाशिनी, अनिर्वचनीया, सर्वशक्तिमयी परमेश्वरी आद्या महाशक्तिके हैं। ये ही महाशक्ति अपनी मायाशक्तिको जब अपने मीतर छिपाये रखती हैं, उससे कोई क्रिया नहीं करतीं, तब निष्क्रिय शुद्ध ब्रह्म कहलाती हैं। ये ही जब उसे विकासोन्मुख करके एकसे अनेक होनेका संकल्प करती हैं, तब खयं ही पुरुषरूपसे मानो अपनी ही प्रकृतिरूप योनिमें संकल्पद्वारा चेतनरूप बीज स्थापन करके सगुण, निराकार परमात्मा बन जाती हैं। इन्हींकी अपनी शक्तिसे गर्भाश्यमें वीर्यस्थापनसे होनेवाले विकार-की माँति उस प्रकृतिमें क्रमशः सात विकृतियाँ होती

हैं। (महत्तत्त्व-—समष्टि बुद्धि, अहंकार और सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राएँ सूछ प्रकृतिके विकार होनेसे इन्हें विकृति कहते हैं, परंतु इनसे अन्य सोछह विकारोंकी उत्पत्ति होनेके कारण इन सातोंके समुदायको भी विकृति कहते हैं।) फिर अहंकारसे मन और दस (ज्ञान-कर्मरूप) इन्द्रियाँ और पञ्चतन्मात्रासे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है । इसीलिये इन दोनोंके समुदायका नाम प्रकृति-विकृति है। मूल प्रकृतिके सात विकार, सप्तथा विकार-रूपा प्रकृतिसे उत्पन्न सोलह विकार और खयं मूल-प्रकृति—ये कुछ मिलाकर चौबीस तत्त्व हैं। यों वे महाशक्ति ही अपनी प्रकृति-सहित चौबीस तत्त्वोंके रूपमें यह स्थूल संसार वन जाती हैं और जीवरूपसे खयं पचीसवें तत्त्वरूपमें प्रविष्ट होकर खेळ खेळती हैं। चेनन परमात्म-रूपिणी महाशक्तिके विना जड़ प्रकृतिसे यह सारा कार्य कदापि सम्पन्न नहीं हो सकता। इस प्रकार महाराक्ति विश्वरूप त्रिराट् पुरुष बनती हैं और इस सृष्टिके निर्माणमें स्थूछ निर्माता प्रजापतिके रूपमें आप ही अंशावतारके भावसे द्रह्मा और पाछनकर्ताके रूपमें विष्णु और संहारकर्ताके रूपमें रुद्र वन जाती हैं तथा ये ब्रह्मा, विष्णु, शिवप्रमृति अंशावतार भी किसी कल्पमें दुर्गारूपसे होते हैं, किसीमें महाविण्यु रूपसे, किसीमें महाशिवरूपसे, किसीमें श्रीरामरूपसे और किसीमें श्रीकृष्णरूपसे। एक ही शक्ति विभिन्न नाम-रूपोंसे सृष्टि-रचना करती हैं। इस विभिन्नताका कारण और रहस्य भी उन्हींको ज्ञात है। यों अनन्त ब्रह्माण्डोंमें महाशक्ति असंख्य ब्रह्मा, विण्णु, महेश बनी हुई हैं और अपनी योगमायासे अपनेको आवृतकर आप ही जीव-संज्ञाको प्राप्त हैं। इंश्वर, जीव, जगत् तीनों आप ही हैं । भोक्ता, भोग्य और भोग तीनों आप ही हैं। इन तीनोंको अपनेसेही निर्माण करनेवाली, तीनोंमें व्याप्त रहनेवाली भी आप ही हैं।

परमारमरूपा ये महाशक्ति खयं अपरिणामिनी हैं,

परंतु इन्हींकी मायाशक्तिसे सारे परिणाम होते हैं । यह स्वभावसे ही सत्ता देकर अपनी मायाशक्ति की बाशीला अर्थात् क्रियाशीला वनाती हैं, इसलिये इक्के शुद्ध विज्ञानानन्दघन नित्य अविनाशी एकरस परमात्मरूणे कदापि कोई परिवर्तन न होनेपर भी इनमें परिणाम दीखता है; क्योंकि इनकी अपनी शक्तिका—मायाका—विकसित खरूप नित्य क्रीडामय होनेके कारण सदा वदलता ही रहता है और वह मायाशक्ति सदा इन महाशक्तिसे अभिन्न रहती है। वह महाशक्तिकी ही स्वशक्ति है और शक्तिमान्से शक्ति कभी पृथक नहीं हो सकती, चाहे वह पृथक भले ही दी ने, अतएव शक्तिका परिणाम स्वयमेव ही शक्तिमान्पर आरोपित हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म या महाशक्तिमें परिणामवाद सिंद्ध होता है।

मायावाद

और चूँकि संसाररूपसे व्यक्त होनेवाली यह समस क्रीडा महाशक्तिकी अपनी शक्ति—मायाका ही खेल है और मायाशक्ति उनसे अलग नहीं है, इसलिये यह सारा ऐश्वर्य उन्हींका है। उनको छोड़कर जगत्में और कोई कस्तु ही नहीं, दश्य, दृष्टा और दर्शन—तीनों वे आप ही हैं, अतएव जगत्को मायिक वतलानेवाला मायाबार भी इस दृष्टिसे ठीक ही है।

आभासवाद

इसी प्रकार महाशक्ति ही अपने मायारूपी दर्पणमें अपने विविध श्रङ्गारों और मावोंको देखकर जीवरूपसे आप ही मोहित होती हैं। इससे आमासवाद भी सत्य है।

माया अनादि और सान्त है

परमात्मरूप महाशक्तिकी उपर्युक्त मायाशक्तिकी अनादि और सान्त कहते हैं। सो उसका अनादि होना तो ठीक ही है; क्योंकि वह शक्तिमयी महाशक्तिकी अपनी शक्ति होनेसे उसीकी माँति अनादि है; परंतु शक्तिमयी महाशक्ति तो नित्य अविनाशिनी है, फिर उसकी शक्ति माया अन्तवाली कैसे होगी ? इसका उत्तर यह है कि वास्तवमें वह अन्तवाली नहीं है । अनादि, अनन्त, नित्य, अविनाशी परमात्मरूपा महाशक्तिकी माँति उसकी शक्तिका भी कभी बिनाश नहीं हो सकता; परंतु जिस समय वह कार्य-करण-विस्ताररूप समस्त संसारसहित महाशक्तिके सनातन अव्यक्त परमात्मरूपमें लीन रहती है, क्रियाहीना रहती है, तवतकके लिये वह अदस्य या सान्त हो जाती है और इसीसे उसे सान्त कहते हैं । इसी दृष्टिसे उसको सान्त कहना सत्य है ।

मायाशक्ति अनिर्वचनीय है

कोई-कोई परमात्मरूपा महाशक्तिकी इस माया-शक्तिको अनिर्वचनीय कहते हैं, सो भी ठीक है; क्योंिक यह शक्ति उस सर्वशक्तिमती महाशक्तिकी अपनी ही शक्ति है। जब वह अनिर्वचनीय है तत्र उसकी अपनी शक्ति अनिर्वचनीय क्यों न होगी !

मायाशक्ति और महाशक्ति

कोई-कोई कहते हैं कि इस मायाशक्तिका ही नाम
महाशक्ति, प्रकृति, विद्या, अविद्या, ज्ञान, अज्ञान आदि
है, महाशक्ति पृथक् वस्तु नहीं है। सो उनका यह
कथन भी एक दृष्टिसे सत्य ही है; क्योंकि मायाशक्ति
परमात्मरूपा महाशक्तिकी ही शक्ति है और वह जीवोंको
बाँधनेके लिये अज्ञान या अविद्यारूपसे और उनकी
बन्धन-मुक्तिके लिये ज्ञान या विद्यारूपसे अपना खरूप
प्रकट करती है, तब इनसे भिन्न कैसे रही ! हाँ, जो
मायाशक्तिको ही शक्ति मानते हैं और महाशक्तिका
कोई अस्तित्व ही नहीं मानते वे तो मायाके अधिष्ठान
ब्रह्मको ही अखीकार करते हैं, इसलिये वे अवश्य
ही मायाके चक्करमें पड़े हुए हैं।

भ० त० अं० ३-

निर्गुण और सगुण

कोई इस परमात्मरूपा महाशक्तिको निर्गुण कहते हैं और कोई सगुण । ये दोनों बातें भी ठीक हैं; क्योंकि उस एकके ही ये दो नाम हैं। जब मायाशक्ति कियाशीला रहती है, तब उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाती हैं, और जब वह महाशक्तिमें मिली रहती है तब महाशक्ति निर्गुण हैं। इन अनिवर्चनीया परमात्मरूपा महाशक्तिमें परस्पर विरोधी गुणोंका नित्य सामझस्य है । वे जिस समय निर्पुण हैं उस समय भी उनमें गुणमयी मायाशक्ति छिपी हुई मोजूद है और जब वे सगुण कहलाती हैं तब भी वे गुणमयी मायाशक्तिकी अधीश्वरी और सर्वतन्त्रखतन्त्र होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही अथवा ख-खरूपमय अचिनय अनन्त दिव्य गुणोंसे नित्य विमूषित होनेसे वे सगुण हैं और ये दिष्य गुण उनके खरूपसे अभिन होनेके कारण ने ही वस्तुतः निर्गुण भी हैं; तात्पर्य कि उनमें निर्गुण और सगुण दोनों लक्षण सभी समय वर्तमान हैं। जो जिस भावसे उन्हें देखता है, उसको उनका वैसा ही रूप भासित होता है। असलमें वे कैसी हैं, क्या हैं, इस बातको वे ही जानती हैं।

शक्ति और शक्तिमान्

कोई-कोई कहते हैं कि ग्रुद्ध ब्रह्ममें मायाशक्ति नहीं रह सकती, माया रही तो वह ग्रुद्ध कैसे ! बात समझनेकी है। शक्ति कभी शक्तिमान्से पृथक् नहीं रह सकती। यदि शक्ति नहीं है तो उसका शक्तिमान् नाम नहीं हो सकता और शक्तिमान् न हो तो शक्ति रहे कहाँ ! अतएव शक्ति सदा ही शक्तिमान्में रहती है। शक्ति नहीं होती तो सृष्टिके समय ग्रुद्ध ब्रह्ममें एकसे अनेक होनेका संकल्प कहाँसे और कैसे होता ! इसपर यदि कोई यह कहे कि 'जिस समय संकल्प हुआ, उस समय शक्ति आ गयी, पहले नहीं थी तो इस शंकाका उत्तर यह है कि वताओ वह शक्ति कहाँसे आ गयी ! ब्रह्मके सिवा कहाँ जगह थी जहाँ वह अवतक छिपी वैठी थी ! इसका क्या उत्तर है ! अजी, ब्रह्ममें कभी संकल्प ही नहीं हुआ, यह सब असत् कल्पनाएँ हैं, मिथ्या खप्नकी-सी वातें हैं। अच्छी वात है, पर यह मिथ्या कल्पनाएँ किसने किस शक्तिसे की और मिथ्या खप्नको किसने किस सामर्थ्यसे देखा ! और मान भी लिया जाय कि यह सत्र मिथ्या है तो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि शुद्ध ब्रह्मका अस्तित्व किसमें है ! जिससे उसका अस्तित्व है वही उसकी शक्ति है। क्या जीवनीशक्ति विना भी कोई जीवित रह सकता है ? अवस्य ही ब्रह्मकी वह जीवनीशक्ति ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। वही जीवनीशक्ति अन्यान्य समस्त राक्तियोंकी जननी है, वही परमात्मरूपा महाराक्ति है। अन्यान्य सारी शक्तियाँ अव्यक्तरूपसे उन्हीं महाशक्तिमें छिपी रहती हैं--और जब वे चाहती हैं तब उनको प्रकट करके काम लेनी हैं । हनूमान्में समुद्र लॉंघनेकी शक्ति थी, पर वह अन्यक्त थी; जाम्बवान्के याद दिलाते ही हनुमान्ने उसे ध्यक्त रूप दे दिया । इसी प्रकार सर्वशक्तिमान् परमात्मा या परमाशक्ति भी निःय शक्तिमान् हैं; हाँ, कभी वह शक्ति उनमें अव्यक्त रहती है और कभी व्यक्त । अवस्य ही भगवान्की शक्तिको व्यक्त रूप भगवान् खयं ही देते हैं, यहाँ किसी जाम्त्रवान्की आवश्यकता नहीं होती; पर शक्ति नहीं है--ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसीसे ऋषि-मुनियोंने इस शक्तिमान् परमात्माको महाशक्तिके रूपमें देखा ।

शक्ति और शक्तिमान्की अभिन्नता

इन्हीं सगुण-निर्गुणरूप भगवान् या भगवतीसे उपर्युक्त प्रकारसे कभी महादेवीरूपके द्वारा, कभी महाशिवरूपके द्वारा, कभी महाविष्णुरूपके द्वारा, कभी श्रीकृष्णरूपके द्वारा, कभी श्रीरामरूपके द्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति होती है और ये ही परमात्मरूपा महाशक्ति

पुरुष और नारीरूपमें विविध अवतारों में प्रकट होती हैं। वस्तुतः ये नारी हैं न पुरुष, और दूसरी दृष्टिसे दोनें ही हैं। अपने पुरुषरूप अवतारों में खयं महाशक्ति ही छीठाके छिये उन्हीं के अनुसार रूपों में उनकी पत्नी का जाती हैं। ऐसे बहुत-से इतिहास मिछते हैं, जिनें महाविष्णुने छक्ष्मीसे, श्रीकृष्णने राधासे, श्रीसदाशिक उमासे और श्रीरामने सीतासे एवं इसी प्रकार श्रीछक्षी, राधा, उमा और सीताने महाविष्णु, श्रीकृष्ण, श्रीसदाशिक और श्रीरामसे कहा है कि हम दोनों सर्वथा अभिक हैं—एकके ही दो रूप हैं; केवछ छीछाके छिये एकके दो रूप बन गये हैं; वस्तुतः हम दोनों में कोई भी अन्तर नहीं है।

शक्तिकी महिमा

यही आदिके तीन युगल उत्पन्न करनेवाली महालक्षी हैं, इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मादि देवता वनते हैं, जिनसे विश्वकी उत्पत्ति आदि स्थितियाँ होती हैं।। इन्हींबी शक्तिसे विष्णु और शिव प्रकट होकर विश्वका पाल और संहार करते हैं । दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, क्षु^{धा} तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, मक्ति, धृति, मति, तुष्टि, पु^{ष्टि,} शान्ति, कान्ति, लज्जा इत्यादि इन्हीं महाशक्तिकी शक्तिये हैं। ये ही गोलोकमें श्रीराधा, साकतमें श्रीसी^{ना}, क्षीरसागरमें छक्ष्मी, दक्षकन्या सती, दुर्गतिनाशिनी मेनकापुरी दुर्गा हैं। ये ही वाणी, विद्या, सरस्वती, सावित्री और गायत्री हैं। ये ही सूर्यकी प्रभाशिक पूणंचन्द्रकी सुधावर्षिणी शोभाशक्ति, अग्निकी दाहिकी शक्ति, वायुकी वहनशक्ति, जलकी शीतलताशक्ति, भराकी धारणाशक्ति और शस्यकी प्रस्तिशक्ति हैं । यं है तपिसयोंका तप, ब्रह्मचारियोंका ब्रह्मतेज, गृहस्थोंकी सर्वाश्रम-आश्रयता, वानप्रस्थोंकी संयम-शीळता,संन्यासियों^क त्याग, महापुरुषोंकी महत्ता और मुक्त पुरुषोंकी मुक्ति हैं। ये ही शूरोंका बल, दानियोंकी उदारता, माता-पिताकी वत्सलता, गुरुकी गुरुता, पुत्र और शिष्यकी गुरुजन-भक्ति

कल्याण 🛣



देवताओंद्वारा महाशक्तिका स्तवन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साधुओंकी साधुता, चतुरोंकी चातुरी और मायावियोंकी माया हैं। ये ही लेखकोंकी लेखन शक्ति, वाग्मियोंकी वक्तत्वराक्ति, न्यायी नरेशोंकी प्रजापाळन-शक्ति और प्रजाकी राजमिक हैं । ये ही सदाचारियोंकी दैवीसम्पत्ति, मुमुक्षुओंकी पट्सर्मात्त, धनवानोंकी अर्थसम्पत्ति और विद्वानोंकी विद्या सम्पत्ति हैं। ये ही ज्ञानियोंकी ज्ञानशक्ति, प्रेमियोंकी प्रेमशक्ति, वैराग्यवानोंकी विरागशक्ति और भक्तोंकी भक्तिशक्ति हैं। ये ही राजाओंकी राजल्क्मी, विणकोंकी सौभाग्यलक्ष्मी, सज्जनोंकी शोभालक्ष्मी और श्रेयोऽथियोंकी श्री हैं। ये ही पतिकी पत्नीप्रीति और पत्नीकी पतित्रताशक्ति हैं। सारांश यह कि जगत्में सर्वत्र प्रमात्म-रूपा महाशक्ति ही विविध शक्तियोंके रूपमें खेल रही हैं। सभी जगह खाभाविक ही शक्तिकी पूजा हो रही है। जहाँ शक्ति नहीं है, वहाँ शुन्यता है। शक्तिहीनकी कहीं कोई पूछ नहीं । प्रह्लाद-ध्रुव मित्तकािक के कारण पूजित हैं। गोपी प्रेमशक्तिके कारण जगत्पूज्य हैं। भीष्म-हनुमान्की ब्रह्मचर्य-शक्ति, व्यास-वाल्मीकिकी कवित्वशक्ति, भीम-अर्जुनकी शौर्यशक्ति, युधिष्ठिर-हरिश्चन्द्रकी सत्यशक्ति, शङ्कर-रामानुजकी विज्ञानशक्ति, शिवाजी-प्रतापकी वीरशक्ति, इस प्रकार जहाँ देखो वहीं शक्तिके कारण ही सबकी शोमा और पूजा है। सर्वत्र राक्तिका ही समादर और बोलवाला है। राक्तिहीन वस्तु जगत्में टिक ही नहीं सकती। सारा जगत् अनादिकालसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे निरन्तर केवल शक्तिकी ही उपासनामें लग रहा है और सदा लगा रहेगा ।

शक्तिकी शरण

ये महाशक्ति ही सर्वकारणरूप प्रकृतिकी आधारभूता होनेसे महाकारण हैं, ये ही मायाधीश्वरी हैं, यही सृजन-पालन-संहार-कारिणी आचा नारायणी शक्ति हैं और ये ही प्रकृतिके विस्तारके समय भर्ता, भोका और महेश्वर होती हैं। परा और अपरा दोनों प्रकृतियाँ इन्हींकी हैं अथवा

य ही दो प्रकृतियोंके रूपमें प्रकाशित होती हैं। इनमें द्वेत और अद्वेत-दोनोंका समावेश है। ये ही वैष्णवोंकी श्रीनारायणके साथ महालक्ष्मी, श्रीरामके साथ सीता, श्रीकृष्णके साथ राधा, शैवोंकी श्रीशङ्करके साथ उमा, गागपत्योंकी श्रीगणेशके साथ ऋद्भि-सिद्धि, सौरोंकी सूर्यके साथ उपा, ब्रह्मवादियोंकी शुद्ध ब्रह्मके साथ ब्रह्मविद्या हैं और शाक्तों की महादेवी हैं। ये ही पश्च महाशक्ति, दस महाविद्या, नव दुर्गा हैं । ये ही अन्नपूर्णा, जगद्भात्री, कात्यायनी, ललिताम्बा. हैं। ये ही शक्तिमान् हैं, ये ही शक्ति हैं, ये ही नर हैं, ये ही नारी हैं, ये ही माता, धाता, पितामह हैं; सब कुछ ये ही हैं। जो श्रीकृष्ण-रूपकी उपासना करते हैं वे भी इन्होंकी उपासना करते हैं। जो श्रीराम, शिव या गणेशरूपकी उपासना करते हैं, वे भी इन्हीं की उपासना करते हैं। इसी प्रकार जो श्री, लक्ष्मी, त्रिद्या, काली, तारा, पोडशी आदि रूपोंकी उपासना करते हैं, वे भी इन्हींकी उपासना करते हैं। श्रीकृष्ण ही काली हैं, माँ काली ही श्रीकृष्ण हैं। इसलिये जो जिस रूपकी उपासना करते हों, उन्हें उस उपासनाको छोड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, इतना अवस्य निश्चय कर लेना चाहिये कि 'मैं जिन भगवान् या भगवतीखरूपकी उपासना कर रहा हूँ, वे ही सर्वदेवमय और सर्वरूपमय हैं, सर्वशक्तिमान् और सर्वोपरि हैं।

सच तो यह है कि परमात्म-रूपिणी माँकी उपासना करके उनसे कुछ भी मत माँगो। ऐसी दयामयी सर्वेश्वरी जननीसे जो कुछ भी तुम माँगोगे, उसीमें ठगे जाओगे। तुम्हारा वास्तविक कल्याण किस बातमें हैं—इस बातको तुम नहीं समझते, माँ समझती हैं। तुम्हारी दृष्टि बहुत ही छोटी सीमामें आबद्ध है। माँकी दूरदृष्टि ही नहीं है, प्रत्युत वे ईश्वरी माता, वे श्रीकृष्ण और श्रीरामरूपा माता है, वे दुर्गा, सीता, उमा, राघा, काली,

तारा सर्वज्ञ हैं। तुम्हारे छिये जो भविष्य है, उनके छिये वही वर्तमान है। फिर उनका हृदय दयाका अनन्त समुद्र है। वह दयामयी माता तुम्हारे छिये, जो कुछ मङ्गळमय होगा—कल्याणकारी होगा, उसीका विधान करेंगी, खयं सोचेंगी और करेंगी; तुम तो बस, निश्चिन्त और निभय होकर अबोध शिशुकी भाँति उनका पवित्र आँचल पकड़े उनके वात्सल्यभरे मुखकी ओर ताकते रहो। इरना नहीं, काली, तारा तुम्हारे लिये भयावनी नहीं हैं।

वे राक्षसोंके लिये भयदायिनी हैं। भगवान् नृसिहते सबके लिये भयानक थे, परंतु प्रह्लादके लिये भयानक नहीं थे। फिर मातृरूप तो कैसा भी हो, अपने कचेंके लिये कभी भयावना होता ही नहीं, सिहनीका व्य अपनी माँसे कभी नहीं डरता। अतः उनकी गीरहे कभी न हटो, उनका आश्रय पकड़े रहो। माँ अफा काम आप करेंगी।

(यही शक्ति-तत्त्वके विज्ञानका चरम परिणाम है।)

स्वसंवेद्य परमतत्त्व

(लेखक-गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

अपने सिद्धामृत-मार्गमें भगवान् शिवखरूप गौरक्षने परमात्मतत्त्वको पिण्डमें ब्रह्माण्डकी समरसताके धरातलपर स्तरंवेष स्त्रीकार किया है। नाथयोगमें केवंछानुभवा-नन्दस्रह्म अछल निरञ्जनके ही साक्षात्कारका आखादन विह्ति और ध्येय तथा ज्ञेय प्रतिपादित किया गयां है । भगवत्स्वरूपमें सम्पूर्ण एकरसता है । कहीं भी विभिन्नता अथवा विजातीयतांकी लेशमात्र भी गन्ध परिलक्षित नहीं है । ज्ञान, कर्म, मक्ति, सब-के-सब योगमें ही अन्तर्छीन हैं और उपासनाके धरातळपर, नाम, रूप और छीछाके स्तरपर भगवत्तस्वके चिन्तन, ध्यान और परिशीलनमें, पूर्ण सामक्कस्य योग-साधनामें निर्विवाद अनुस्यूत है । यह निरापद विवेचन है कि उपासना योगसाधनाका अङ्ग है। इसके द्वारा यद्यपि अखण्ड, अनन्त, एकरस, सिचदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वरकी प्राप्ति सहज सिद्ध है, तथापि परमात्माके खरूप साकारता, सगुणता, सम्पूर्ण लीलाबैचित्र्यके अनुशीलनका माधुर्य योगसाधनामें ही अन्तर्हित है। प्रमात्मा अपने अळख निरञ्जन-खरूपमें वेदानुमोदित होकर भी वेदातीत और खसंवेद्य—सम्पूर्ण निराकार है। गोरक्षनाथ-सिद्धमतमें भगवत्तत्त्रकी यही विशेषता है।

महायोगी गोरखनाथजीके महायोग ज्ञानका चरम

प्रतिपाद्य साक्षात् अल्ल्ख निरक्कन है। उन्होंने निश्चित्र मत अभिन्यक्त किया कि सत्यसे परे न तो कोई शाह है, नारायणसे परे न कोई इष्ट है और न निरक्कनसे पे अथवा अतीत कोई ध्यान है। उनकी सारगिष्ट वाणी है—

सच उपरांति सास्त्र नाहीं । नारायण उपरांति इष्ट नाहीं। निरंजन उपरांति ध्यान नाहीं ॥ (गोरखवानी सिष्ट्युराण)

गोरखनाथजीने खसंवेद्य निरस्नन तत्त्वके साक्षात्कारण प्रकाश डालते हुए कहा है कि परब्रह्म, परमात्मा अमार्थिक निराकार, निष्कल एवं निरस्नन है। वह अस्नन (माया) अथवा दश्य-प्रपन्नमें उसी तरह अप्रकट है, जिस तरह तिलमें तेल अप्रकट रहता है। जिस तरह विश्व परनेसे तेलकी प्राप्ति हो जाती है, उसी तरह अस्नन मायामें योगज्ञानके प्रकाशमें मैंने निरस्नन ब्रह्मका साक्षात्का कर लिया है। मैंने साकारमें निराकारका, मूर्तमें असी परमात्माका स्पर्श (अनुभव) कर लिया है। यह निग्रह (निरन्तरि-मायाव्यतिरिक्त) लीला सनातन है। सिचदानन्दघन अलख ब्रह्म ही सर्वत्र अभिव्यक्त है। मैंने शून्यमें जिसे नहीं कहा गया है, अखिलब्रह्माण्डनार्थक अलख निरस्ननका दर्शन किया है, वह स्वसंवेद्य परम्तत्व है। वह निरालम्ब, निराधार और शून्यस्थ है। उसकी

तादात्म्य-लाभ कर मेरा द्वैतभाव मिट गया है।

अंजन माहि निरंजन भेट्या, तिल मुष भेट्या तेलं। मूरति माहिं अमूरति परस्यां, भरा निरंतरि पेलं॥ जहाँ नहीं, तवाँ सब कुछ देष्या, कहानं को पतिआई। दुविधा भाव तवे ही गया, बिरला पदां समाई॥ (गोरखवानी ग्यानतिलक ४१-४२)

भगवान् शिव गोरक्षने अम्लान, निर्विवाद, संशुद्ध, योगप्रतिपाद्य, अद्वय, परमतत्त्वका प्रकाशन किया। यह मुक्तिमार्गका सोपान है, गुह्यतम तत्त्व है। उनकी सहज-स्वाभाविक स्वीकृति है—

> जयत्यमूलमम्लानमौत्तरं तत्त्वमद्वयम् । स्पन्दास्पन्दपरिस्पन्दमकरन्दमहोत्पलम् ॥ भवभयहारकं नॄणां मुक्तिसोपानसंज्ञकम् । गुह्याद् गुह्यतरं गुह्यं गोरक्षेण प्रकाशितम् ॥ (महार्थमक्षरी ८८, ८२)

'नाथमतमें अन्तःसाधनाके द्वारा खसंवेद्यतत्त्वके अनुभवपर बल दिया गया है। यह अलख निरक्षन, परमात्मदेव अपने ही भीतर है। आकार-प्रकारसे परे परमहा परमेश्वर ही सत्यखरूप है—

बन्त गोरख सित सरूप। तत विचार ते रेप न रूप। (गोरखबानी सबदी १५३)

यह प्रमतत्त्व, अलख निरञ्जन, अनाम और अरूप है। यह अन्यक्त शून्यस्थ प्रमिशिवस्य है। प्रम-कारुणिक महायोगी गोरखनाथजीने अपनी रचना 'सिद्र सिद्रान्त-पद्गति'में कहा है—

अन्यक्तं च परं ब्रह्म अनामा विद्यते तदा।(१।४)

अलख निरञ्जन तत्त्वमें परम विश्रान्ति—सहजिस्पिति ही योगसाधनाकी सम्पूर्ण सिद्धि है। समाधिका पुण्यफल यह विश्रान्ति ही है। यही खरूपप्राप्ति अथवा परमक्तैवल्य है। जीवात्माका परमात्म-साक्षात्कार ही परमार्थ है। खरूपज्ञानके द्वारा जीवात्माको पाप-पुण्य, विधि-निषेधसे

परे खसंवेध ॐकारखरूप निरक्षन परब्रह्म परमेश्वरमें तल्लीन होकर रात-दिन, सब समय समाधिस्थ होकर ध्यानस्थ रहना चाहिये । घट-घटमें रमण करनेवाले आत्माराममें ही रमण करना चाहिये, इस साधनासे सचिदानन्दखरूपकी प्राप्ति होती है—

अहो निसि समी ध्यानं। निरंतर रमेबा राम। कथै गोरखनाथ ग्यानं। पाईछा परमनिधानं॥ (गोरखबानी पद ३३ । ४)

नि:संदेह पाप-पुण्य, दोनों प्रकारके कर्म बन्धनकारक हैं, खरूपिश्वतिमें चित्तके लयसे कर्म बन्धनकारक नहीं होते । परब्रह्म परमेश्वर हरिका ही चिन्तन करते रहना चाहिये—

> मोष मुक्ति चेतहु हरि पासा। (गोरखवानी प्राणसंकली २)

प्रत्येक स्थितिमें जगदीशका ही घ्यान करते रहना योग है। गोरखनाथजीने इस घ्यानको बड़ी महत्ता दी है। उन्होंने कहा है—'सकल विधि घ्यावो जगदीका' (नरवेबोध ६) योग-मार्गमें घ्यान और चिन्तन अखण्ड निरक्षन जगदीश्वरका मजन है। यही नाथ-तेजका साक्षात्कार है। नाथ ही परमखसंवेद्य परमेश्वर है। यह नाथतत्त्व अयवा परमपद अव्यक्त है, अचिन्त्य है, इसका चिन्तन नहीं, अनुभव होता है। यह जैसा भी है, हमारे लिये प्रणम्य है-—

अवाच्यमुच्येत कथं पदं तत्-अचिन्त्यमप्यस्ति कथं विचिन्तये। अतोऽपद्स्त्येव तद्स्ति तस्मै नमोऽस्तु कस्मै बत नाथतेजसे॥ (गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह)

जीवात्मा निर्विकार निरक्षन भगवत्तत्त्वका चिन्तन करते-करते निर्विकार निरक्षन हो जाता है, यही स्वसंवेद्यता है।

गीतामें भगवत्तत्व एवं उसकी प्राप्तिके उपाय

(लेखक--परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अन्यकोऽसर इत्युक्तस्तमादुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

गीतामें जिस भगवत्तत्वको अक्षर, अध्यक्त, परमगति, परमधामें, परमात्मा, ईश्वरं, पुरुगोत्तमें, परम पुरुषं, परपुरुषं, अपुनरावृत्तिं, ब्रह्मनिर्वाणं, ब्रह्मं, शाश्वतपदं इत्यादि नामोंसे कहा गया है, उसीको भागवतमें प्रायः उन्हीं नामोंसे कहते हैं; यथा—

वद्गित तत्तत्त्वविद्स्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्धते॥
'तत्त्वज्ञ पुरुष उस ज्ञानखरूप एवं अद्वितीय तत्त्वको
ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन नामोंसे
कहते हैं।'

परमात्म-तत्त्व अथवा भगवत्-तत्त्व वह तत्त्व है, जिसमें कभी किंचित् भी विकार या परिवर्तन नहीं होता—जो सर्वत्र समानरूपसे परिपूर्ण है और जो सबका वास्तविक मूळखरूप है। वही एक तत्त्व संसारमें अनेक रूपोंसे भास रहा है। जिस प्रकार खर्णसे बने गहनोंमें नाम, आकृति, उपयोग, तौळ और मृत्य अलग-अलग होते हैं एवं ऊपरसे मीना आदि होनेसे रंग भी अलग-अलग होते हैं, परंतु इतना होनेपर भी खर्णतत्त्वमें कोई अन्तर नहीं आता, वह वैसा-का-वैसा ही रहता है; इसी प्रकार जो कुछ भी देखने, सुनने, जाननेमें आता है, उन सबके मूलमें एक ही परमात्मतत्त्व विद्यमान है; इसीको गीता-(७ । १९)में—

'वासुदेवः सर्वमिति' कहा है। प्रस्तुत लेखमें अब इस तत्त्रकी प्राप्तिक विपयमें विचार किया जा रहा है।

इस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये संसारमें तीन योग मुख्य माने जाते हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। क्मि-योगका साधक कर्म-बन्धनसे मुक्त होकर भगवत्त्त्वको प्राप्त हो जाता है—ं—

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥ (गीता ४।२३)

योगयुक्तो मुनिर्बह्म न चिरेणाधिगच्छति॥ (गीता ५।६)

ज्ञानयोगमें साथक परमात्माको तत्त्वसे जानकर उनमें प्रविष्ट हो जाता है—

ततो मां तत्त्वतो झात्वा विशंत तद्नन्तरम्। (गीता १८। ५५)

भक्तियोगका साधक अनन्यभक्तिसे भगवान्को तत्त्वसे जान लेता है, एवं उनमें प्रविष्ट हो जाता है और उनके प्रत्यक्ष दर्शन भी कर लेता है। गीतामें भगवान् खयं कहते हैं—

भक्त्या त्वनम्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ (११ । ५४)

साधक अपनी रुचि, विश्वास और योग्यताके अनुसार चाहे योगमार्गसे, चाहे ज्ञानमार्गसे, चाहे भक्तिमार्गसे चाहे ध्यानमार्गसे चले, अन्तमें इन सभी मार्गों के साधकोंको

१-(८।२१), २-(१५।१७) ३-(१५।१८), ४-(८।८), ५-(८।२२), ६-(५।१७), ७-(५।२५), ८-(१८।१३), ९-(१८।५६)। १०-गीताका संकेत है---

ध्यानेना अनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना । अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ (१३ । १४) प्रत्मात्माको कितने ही मनुष्य तो गुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं, अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं, अर्थात् परमात्माको प्राप्त करते हैं।

एक ही तत्त्वकी प्राप्ति होती है। वही एक अद्भय तत्त्व शास्त्रोंमें अनेक नामोंसे वर्णित हुआ है। * उस तत्त्वका अनुभव होनेक वाद फिर कुछ भी करना, जानना और पाना शेष नहीं रहता।

यदि साध्यक्षकी समझमें यह बात आ जाय, तो उपयुक्त किसी भी मार्गसे भगवत्तत्त्व अथवा परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति बहुत सुगमतासे हो सक्षती हे †। कारण यह है कि परमात्मा सब प्राणियोंमें, सब देशोंमें और सब कालोंमें ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं, उनका कभी कहीं अभाव नहीं है। इसल्ये खतः सिद्ध, नित्यप्राप्त परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें कठिनताका प्रश्न ही नहीं है। नित्यप्राप्त परमात्माकी प्राप्तिमें कठिनाई प्रतीत होनेका प्रधान कारण है—सांसारिक सुखकी इच्छा। इसी कारण साधक संसारसे अपना सम्बन्ध मानता रहता है और परमात्मासे विमुख हो जाता है। संसारसे माने हुए सम्बन्धोंके कारण ही साधक नित्यप्राप्त भगवत्तत्त्वको अप्राप्त मानकर उसकी प्राप्तिको परिश्रम-साध्य एवं कठिन मान लेता है। अतएव भगवत्तत्त्वका सुगमनासे अनुभव करनेके लिये संसारसे

माने हुए संयोगका वर्तमानमें ही वियोग अनुभव करना अत्यावश्यक है, जो तभी सम्भव है जब संयोगजन्य सुखकी इच्छाका परित्याग कर दिया जाय।

तत्त्व-दृष्टिसे एक प्रमात्मतत्त्रके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं—ऐसा ज्ञान हो जानेपर मनुष्य फिर जन्म-मरणके चक्रमें नहीं पड़ता। भगवान् स्वयं कहते हैं—

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव । येन भूतान्यरोषेण द्रश्च्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ (गीता ४।३५)

(अर्थात्—)'जिसे जानकर फिर त् इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा हे अर्जुन ! जिस ज्ञानके द्वारा त् सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सिचदानन्दघन परमात्मामें देखेगा ।'

वह तत्त्व ही संसाररूपसे भास रहा है; परंतु जब-तक उधर दृष्टि नहीं जाती, तबतक संसार-ही-संसार दीखता है, तत्त्व नहीं। वह परमात्मतत्त्व तत्त्वदृष्टिसे ही देखा जा सकता है।

* ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च । शाश्चतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ (गीता १४ । २७) अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अलण्ड एकरस आनन्दका आश्रय मैं हूँ । अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गितम् । यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ (गीता ८ । २१) अव्यक्तो अव्यक्त अक्षर नामसे कहा गया है, उसीको परमगित कहते हैं, तथा जिसे प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं

आते, वह मेरा परमधाम है।

† कर्मयोगसे सुगमतापूर्वक तत्त्वप्राप्तिका प्रमाण--

होयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्कृति । निर्द्धन्द्वो हि महावाहो सुलं बन्धात्ममुच्यते ॥ (गीता ५ । ३) हे अर्जुन ! जो पुरुष न किसोसे द्वेष करता है और न किसीको आकाङ्क्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझनेयोग्य है; क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे रहित वह संसार-बन्धनसे सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है।

ज्ञानयोगसे सुगमतापूर्वक तत्त्वप्राप्तिका प्रमाण-

युद्धन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः । **सुले**न ब्रह्मसंश्रामन्यन्तं सुलमश्नुते ॥ (गीता ६ । २८) वह पापरहित योगी निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुलपूर्वक परब्रह्म परमात्म-प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दका अनुभव करता है । ४ × × भक्तियोगसे सुगमतापूर्वक तत्त्वप्राप्तिका प्रमाण—

अनन्यचेताः सततं यो मां संरित नित्यशः । तस्याहं सुल्भः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ (गीतां ८ । १४)-धे अर्जुन ! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सहा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको सारण करता है, उस नित्य निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ ।

तीन प्रकारकी दृष्टियाँ

मनुध्यकी दृष्टियाँ तीन प्रकारकी हैं—(१) इन्द्रिय-दृष्टि (बिह:करण) (गीता १८।२२), (२) विवेकवती बुद्धिदृष्टि (अन्त:करण) (गीता १८।२०) और (३) तत्त्वदृष्टि (खयंकी खरूप दृष्टि) (गीता ७।१९)। ये तीनों दृष्टियाँ क्रमशः एक-एकसे सूक्ष्म एवं श्रेष्ठ हैं।

संसार असत् और अस्थिर होते हुए भी इन्द्रिय-दृष्टिसे देखनेपर सत्, स्थिर एवं सुखदायी प्रतीत होता है, जिससे संसारमें राग हो जाता है। बुद्धिदृष्टिमें वस्तुतः विवेक* ही प्रधान है। जब बुद्धिमें भोगों-(इन्द्रियों तथा उनके विषयों-)की प्रधानता नहीं होती, अपितु विवेककी प्रधानता होती है, तब बुद्धिदृष्टिसे संसार पर्रिवतनशील और उत्पन्न एवं नष्ट होनेवाला तथा दुःखदायी दीखता है, जिससे संसारसे वैराग्य हो जाता है। अतः यह दृष्टि श्रेष्ठ है।

जिस प्रकार प्रकाश बल्बमें नहीं होता, अपितु बल्बमें आता है, उसी प्रकार यह अनादिसिद्ध विवेक भी बुद्धिमें पैदा नहीं होता, अपितु बुद्धिमें आता है। इन्द्रियदृष्टिकी अपेक्षा बुद्धि-दृष्टिकी प्रधानता होनेसे विवेक विशेष स्फुरित होता है, जिससे सत्की सत्ता और असत्के अभावका अलग-अलग ज्ञान हो जाता है। विवेक-पूर्वक असत्का त्याग कर देने पर जो शेष रहता है, वही तत्त्व है। तत्त्वदृष्टि-(खरूपबोध-)से देखनेपर एक भगवत्तत्त्व अथवा परमात्मतत्त्वके सिवा संसार, शरीर, अन्तःकरण, विहःकरण आदि किसीकी भी खतन्त्र सत्ता

सत्यत्वेन किश्चिन्मात्र भी नहीं रहती। तब एकमात्र 'वासुदेवः सर्वम्'—'सब कुछ वासुदेव ही हैं'—-इसत्र बोध हो जाता है, जो वास्तविक तत्त्वबोध है।

इस प्रकार यह संसार बहि:करण-(इन्द्रियों-) हे देखनेपर नित्य, मुखदायी एवं आकर्षक, अन्तःका (बुद्धि) से देखनेपर दुखदायी एवं अनित्य तथा तन्त्री देखनेपर असत् अर्थात् अभावरूपसे दिखाई देता है।

साधककी विवेकदृष्टि और सिद्धकी तत्वदृष्टिं अन्तर यह है कि विवेकदृष्टिसे सत् और असत्—दोनें अलग-अलग दीखते हैं और सत्का अभाव नहीं एवं असत्का भाव नहीं एवं असत्का भाव नहीं एवं असत्का परिणाम होता है — असत्के त्यागं साथ-साथ सत्की प्राप्ति । और, जहाँ सत्की प्राप्ति होती है वहाँ फिर तत्त्वदृष्टि रहती है । तत्त्वदृष्टि संसारका सर्वथा अभाव हो जाता है ।

विवेकको महत्त्व देनेसे इन्द्रियोंका ज्ञान महत्त्व-ही हो जाता है। उस विवेकसे परे जो वास्तविक तत्व है, वहाँ विवेक भी तत्त्वरूप हो जाता है।

वास्तविक दृष्टि चस्तुतः तत्त्व दृष्टि ही वास्तिक दृष्टि है। इन्द्रियदृष्टि और बुद्धिदृष्टि वास्तविक नहीं हैं। क्योंकि जिस धातुका संसार है, उसी धातुकी दें दृष्टियाँ हैं। अतः ये दृष्टियाँ सांसारिक अथवा पारमार्थिक विषयमें पूर्ण निर्णय नहीं कर सकतीं। तत्त्वदृष्टिमें दें सब दृष्टियाँ लीन हो जाती हैं। जैसे रात्रिमें बल जलानेसे प्रकाश होता है; परंतु वही बल्ब यह

[#] जड़-चेतन, नित्य-अनित्य, सत्-असत् इत्यादि मिश्रित दो वस्तुओंके अलग-अलग ज्ञानको 'विवेक' कहते हैं। विवेक प्राणिमात्रमें स्वतः विद्यमान है। पशुपिक्षियोंमें शरीर-निर्वाहके योग्य ही विवेक रहता है; परंतु मतुष्ये यह विवेक विशेषरूपसे जाग्रत् होता है। विवेक अनादि है—यह आगेके इलोकार्द्वसे स्पष्ट है। गीता १३। १९३ भगवान् कहते हैं—

प्रकृति पुरुषं चैव विद्वयनादी उभाविष । XXX प्रकृति और पुरुष—इन दोनोंको ही तू अनादि जान ।' इस क्लोकार्द्धमें आये 'उभौ' (दोनों अर्थवाले) पदसे यह सिद्ध होता है कि जैसे प्रकृति (जड़) और पुर्व (चेतन) दोनों अनादि हैं, वैसे ही इन दोनोंका भेद ज्ञानरूप विवेक भी अनादि है ।

मय्याह्नकालमें (दिनके प्रकाशमें) जलाया जाता है तो उसके प्रकाशका भान तो होता है, पर उस प्रकाशका (सूर्यके प्रकाशके सामने) कोई महत्त्व नहीं रहता; वैसे ही इन्द्रियदृष्टि और बुद्धिदृष्टि अज्ञान (अविद्या) अथवा संसारमें केवल व्यवहारके लिये तो काम करती हैं; पर तत्त्वदृष्टि हो जानेपर इन दृष्टियोंका उसके (तत्त्व-दृष्टिके) सामने कोई महत्त्व नहीं रह जाता।ये दृष्टियाँ नष्ट तो नहीं होतीं, पर प्रभावहोन हो जाती हैं। केवल सिच्चदानन्द-रूपसे एक ज्ञान शेष रह जाता है; उसीको भगवत्तत्त्व या परमात्मतत्त्व कहते हैं। वही वास्तविक तत्त्व है। शेष सब अतत्त्व हैं—तत्त्व नहीं, वस्तु या पदार्थ हैं।

साध्यतत्त्वकी एकरूपता

जैसे नेत्र तथा नेत्रोंसे दीखनेवाला दश्य—दोनों सूर्यसे प्रकाशित होते हैं, वैसे ही बहि:करण, अन्तःकरण, विवेक आदि सब उसी परम प्रकाशक तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं—'तस्य भासा सर्विमदं विभाति' (श्वेताश्वतर उ॰ ६।१४)। यह जो वास्तविक प्रकाश अथवा तत्त्व है, वही सम्पूर्ण दर्शनोंका (वर्ण्य या विवेच्य) आधार है। जितने भी दार्शनिक हैं, प्रायः उन सबका तात्प्य उसी तत्त्वको प्राप्त करनेमें है—दार्शनिकोंकी वर्णन-शैलियाँ तथा साधन-पद्धतियाँ तो अलग-अलग हैं, पर उनका तात्प्य (लक्ष्यार्थ) एक ही है। साधकोंमें रुचि, विश्वास और योग्यताकी भिन्नताक कारण उनके साधनोंमें तो भेद हो जाते हैं, पर उनका साध्यतत्त्व वस्तुतः एक ही होता है। इसीलिये संतोंने कहा है—

पहुँचे पहुँचे एक मत, अनपहुँचे मत और। संतदास बड़ी अरठकी, हुरे एक ही डीर॥

प्रत्येक मनुष्यकी भोजनकी रुचिमें दूसरेसे भिन्नता रहती है; परंतु 'भूख' और 'लृति' सबकी समान ही होती है अर्थात् अभाव और भाव सबके समान ही होते हैं। ऐसे ही मनुष्योंकी वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा इत्यादिमें वहुत मेद रहते हैं; परंतु 'रोना' और 'हँसना' सबके समान ही होते हैं अर्थात् दुःख् और सुख सबको समान रूपसे ही अनुभूत होते हैं। इसी प्रकार साधन-पद्धतियों-में भिन्नता रहनेपर भी साध्यकी 'अप्राप्तिकी व्याकुलता' और 'प्राप्तिकी तृप्ति' सब साधकोंको समान रूपसे ही होती है । साधनोंकी भिन्नताके कारण ही दार्शनिकों-द्वारा वह तत्त्व निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार इत्यादि विभिन्न रूपोंमें वर्णित है । अतएव वह गीतामें भी १३ वें अध्यायके १२ वें ख्लोकमें निर्गुण-निराकार, १ ३वें १४ वें एवं १५वें ३ळोकोंमें सगुण-निराकार,१६वें-में ब्रह्मा, विण्यु, महेश इत्यादिके रूपमें प्रतिपादित है। यह वर्णन तो साधकोंकी रुचि एवं साधनोंकी भिन्नताके कारण किया गया है । वस्तुतः इस तत्त्वके बारेमें जैसा वर्णन किया गया है वैसा तो है ही किंतु उससे भी विलक्षण है; कारण कि वर्णन तो बुद्धि आदि प्राकृत तत्त्वोंसे ही किया जाता है जब कि वह तत्त्व अप्राकृत है। फिर भी वह वर्णन उस तत्त्वकी प्राप्तिमें सहायक अवस्य है। यथार्थ बोध तो उस तत्त्वकी प्राप्ति होनेपर ही सम्भव है।

सहज-निवृत्तिरूप वास्तविक तत्त्व

संसारमें एक तो प्रवृत्ति (कर्म करना) होती है और एक निवृत्ति (काम न करना) होती है। जिसका आदि और अन्त हो, वह किया अथवा अवस्थां कहलाती है। प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों ही कियाएँ अथवा अवस्थाएँ हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे प्रवृत्ति किया है, वैसे ही निवृत्ति भी किया है। प्रवृत्ति निवृत्तिको और निवृत्ति प्रवृत्तिको जन्म देती है। किया और अवस्था मात्र प्रकृतिको ही होती है तत्त्वकी नहीं। इस दृष्टिसे प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों प्रकृतिक राज्यमें ही हैं। निर्विकल्प समाधितक प्रकृतिका राज्य है; क्योंकि निर्विकल्प समाधिसे भी 'ल्युत्थान' होता है। अतएव जागने, चलने, बोलने, देखने, सुनने इत्यादिके

समान सोना, बैठना, मौन होना, मुर्च्छित होना, समाधिस्थ होना आदि भी क्रियाएँ अथवा अवस्थाएँ ही हैं।

अवस्थासे अतीत जो अक्रिय प्रमात्मतत्त्व है, उसमें
प्रवृत्तिऔर निवृत्ति—दोनों ही नहीं हैं। अवस्थाएँ बदलती
हैं, पर वह तत्त्व नहीं बदलता। वह वास्तविक तत्त्व खमावतः
(सहज-) निवृत्तिरूप निरपेश्व तत्त्व है। उस तत्त्वमें
मनुष्यमात्रकी (खरूपसे) खामाविक स्थिति है। वह
परमतत्त्व सम्पूर्ण देश, काल, घटना, परिस्थिति, अवस्था
आदिमें खामाविकरूपसे ज्यों-का-त्यों विद्यमान रहता है।
अतएव उस सहज-निवृत्तिरूप परमतत्त्वको जो चाहे, जव
चाहे, जहाँ चाहे प्राप्त कर सकता है। आवस्यकता
केवल प्राकृत-दृष्टियोंके प्रभावसे मुक्त होनेकी है।

'खयम्'का प्रकृतिसे माना हुआ सम्बन्ध ही 'अहम्' कहळाता है। साधक प्रमादवश अपनी वास्तविक सत्ताको (जहाँसे 'अहम्' उठता है अथवा जो 'अहम्'का आधार है) भूलकर माने हुए 'अहम्'को ही (जो उत्पन्न होनेपर सत्तावान् है) अपनी सत्ता या अपना खरूप मान लेता है । माना हुआ 'अहम्' वदलता रहता है, पर वास्तविक तत्त्व (खरूप) कभी नहीं बदलता। जबतक यह (माना हुआ) 'अहम्' रहता है, तबतक साधकका प्रकृति-(प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप अवस्था-) से सम्बन्ध बना रहता है, और उसमें साधक निवृत्तिको अधिक महत्त्व देत। रहता है । यह 'अहम्' प्रवृत्तिमें 'कार्य'-रूपसे और निवृत्तिमें 'कारण'-रूपसे रहता है। 'अहम्'का नाश होते ही प्रवृत्ति और निवृत्तिसे परं जो वास्तविक तत्त्व हैं, उसमें अपनी स्वाभाविक स्थितिका अनुभव हो जाता है । फिर तत्त्वज्ञपुरुषका प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यही उसका सहज निवृत्ति स्वरूप है। पर ऐसा होनेपर भी प्रवृत्ति और निवृत्तिका नाश, नहीं होता, अपितु उनका बाह्य चित्रमात्र बना रहता है । इसे ही

दार्शनिकोंने सहज-निवृत्ति, सहजावस्था, सहज-समाधि इत्यादि नामोंसे कहा है।

प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप संसारसे माने हुए प्रत्येक संयोग-का प्रतिक्षण वियोग हो रहा है। कारण यह है कि संसारसे माना हुआ संयोग अखाभाविक और उसका वियोग खाभाविक है। विचारपूर्वक देखा जाय तो संयोगकालमें भी वियोग ही है अर्थात् संयोग है ही नहीं। परंतु संसारसे माने हुए संयोगमें सद्भाव (सत्ता-भाव) कर लेनेसे वियोगका अनुभव नहीं हो पाता। तात्विक दृष्टिसे देखा जाय तो जिसका वियोग होता है, उस प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप संसारकी खतन्त्र सत्ता ही नहीं है। जैसे, बाल्यावस्थासे वियोग हो गया, तो अब उसकी सत्ता कहाँ है ! जैसे वर्तमानमें भूतकाल-की सत्ता नहीं है। जहाँ भूतकाल चला गया, वही वर्तमान और भविष्यत्काल भी चले जायँगे। इसीलिये भगवान्ने गीता-(२। १६)में कहा है—.

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तस्वद्र्शिभिः॥

— 'असत्को तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी महापुरुषोंके द्वारा देखा गया है।'

प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप संसारसे वियोगका अनुभव होनेप सहजनिवृत्तिरूप वास्तविक तत्त्वका ज्ञान हो जाता है और वियुक्त होनेवाले संसारकी खतन्त्र सत्ता खीकार व करनेसे वह तत्त्वज्ञान दढ़ हो जाता है।

तत्त्वप्राप्तिका उपाय—तत्त्वको प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय है—एकमात्र तत्त्वप्राप्तिका ही उद्देश बनाना। वास्तवमें उद्देश्य पहले बना है और उस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये मनुष्य-शरीर पीछे मिला है। परंतु मनुष्य स्वभावत्रश अथवा भ्रमवश भोगोंमें आसक्त होक्र अपने उस (तत्त्व-प्राप्तिके) उद्देश्यको भूल जाता है । इसलिये उस उद्देश्यको पहचानकर उसकी सिद्धिका दढ़ निश्चय करना है। उद्देश्यपतिंका निश्चय जितना दढ़ होता है, उतनी ही तेजीसे साधक तत्त्वप्राप्तिकी ओर अप्रसर होता है। उद्देश्यकी दढ़ताके लिये सबसे पहले साधक बहि:-करण-(इन्द्रिय-दृष्टि-)को महत्त्व न देकर अन्तःकरण-(बुद्धि अथवा विचारदृष्टि-)को महत्त्व दे । तब विचार-दृष्टिसे दिखायी देगा कि जितने भी शरीरादि सांसारिक पदार्थ हैं, वे सब-के-सब उत्पत्तिसे पहले नहीं थे और विनाशके बाद भी नहीं रहेंगे एवं वर्तमानमें भी वे निरन्तर बदल रहे हैं। तात्पर्य यह कि सब पदार्थ आदि और अन्तवाले हैं। जो पदार्थ आदि और अन्तवाला होता है, वह वास्तवमें होता ही नहीं; क्योंकि यह सिद्रान्त है कि जो पदार्थ आदि और अन्तमें नहीं होता, वह वर्तमानमें भी नहीं होता-- 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्त्रथा' (माण्ड्रक्यकारिका)। इस प्रकार विचारदृष्टि-को महत्त्व देनेसे सत् और असत्, प्रकृति और पुरुषके अलग-अलग ज्ञान-(यित्रेक-) का अनुभव हो जाता है और साधकमें वास्तविक तत्त्व-(सत्-) को प्राप्त करनेकी उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जाती है; तदनन्तर संसारके सखको तो क्या, साधनजन्य सात्त्विक सुखका भी आश्रय न लेनेसे उसके लिये परम व्याकुलता जाग्रत हो जाती है। फलतः साधक संसार-(असत्-)से सर्वथा विमुख हो जाता है और उसे तत्त्वदृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिसके प्राप्त होनेसे एकमात्र सत्तृत्त्व — भगवत्तत्त्वकी सत्ताका अनुभव हो जाता है।

व्यवहारके विविध रूप

साधारण (विषयी) पुरुष, विवेकी (साधक) पुरुष और तत्त्वज्ञ (सिद्ध) पुरुष—तीर्नोके भाव अलग-अलग होते हैं साधारण संसारको सत् मानकर राग-द्वेषपूर्वक प्रवृत्ति या निवृत्ति-रूप व्यवहार करते हैं। इसके आगे विचारदृष्टिकी प्रधानताबाले विवेकी पुरुपका व्यवहार रागद्वेषरहित एवं शास्त्रविधिके अनुसार होता है 🛊 । विवेकदृष्टिकी प्रधानता रहनेके कारण—किञ्चित् रागद्वेष रहनेपर भी उसका (विवेकदृष्टि-प्रधान साधकका) व्यवहार रागद्वेष-पूर्वक नहीं होता अर्थात् वह रागद्वेषके वशीभूत होकर व्यवहार नहीं करता । उसमें रागद्वेष बहुत कम नहींके बराबर--रहते हैं। जितने अंशमें अविवेक रहता है, उतने ही अंशमें रागद्वेष रहते हैं। जैसे-जैसे विवेक जाप्रत् होता जाता है, वैसे-वैसे रागद्वेष कम होते चले जाते हैं और वैराग्य वढ़ता चला जाता है। वैराग्य बढ़नेसे बहुत सुख मिलता है; क्योंकि दु:ख तो रागमें ही होता है । पूर्ण विवेक जाप्रत् होनेपर रागद्वेष पूर्णतः मिट

े ऐसा ही गीता-(३ । ३४) का निर्देश है-

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ । तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥

— इन्द्रिय, इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके त्रिपयमें राग और द्रेप छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याण-मार्गमें विन्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।

‡ साधकको चाहिये कि वह इस साधनजन्य सुखमें सन्तोष अथवा सुखका भोग भी न करे, क्योंकि भगवान् (गीता १४।६ में) कहते हैं कि—

तत्र सत्त्वं निर्मलखात्प्रकाशकमनामयम् । सुख्तसङ्गेन वध्नाति कानसङ्गेन चानव ॥

हे निष्पाप अर्जुन ! उन तीनों गुणोंम सत्त्वगुण निर्मल होनेके कारण प्रकाश करनेवाला और विकार-रहित है । वह
सखके सम्बन्ध-(भोग-)से और ज्ञानके सम्बन्ध-(अभिमान-)से साथ ६को वाँचता है ।

इस प्रसङ्गका उपदेश गीता (१६।२४ में) यों करती है—
 तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितो । ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहाईसि ॥
 — भेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है । ऐसा जानकर त् शास्त्र-विधिमे नियत
 कर्म ही करनेयोग्य है ।

जाते हैं । विवेकी पुरुष संसारकी सत्ता दर्पणमें पड़े हुए प्रतिविम्बके समान असत् रूपमें देखता है । इसके आगे तत्त्वदृष्टि प्राप्त होनेपर तत्त्वज्ञ पुरुष खप्नसे जागरित होनेके बाद खप्नकी स्पृतिके समान वर्तमानमें संसारको देखता है । इसलिये बाहरसे व्यवहार समान होनेपर मी विवेकी और तत्त्वज्ञ पुरुषके भावोंमें अन्तर रहता है ।

साधारण पुरुषमें इन्द्रियोंकी, साधक पुरुषमें विवेक-विचारकी और सिद्ध पुरुषमें खरूपकी प्रधानता रहती है। साधारण पुरुषके रागद्वेष पत्थरपर पड़ी छकीरके समान (दृढ़) होते हैं। विवेकी पुरुषके रागद्वेष आरम्भमें बाखपर पड़ी छकीरके समान एवं विवेककी पूर्णता होनेपर जलपर पड़ी छकीरके समान होते हैं। तत्त्वज्ञ पुरुषके राग-द्वेष आकाशमें पड़ी छकीरके समान (जिसमें छकीर खिचती ही नहीं, केवल अँगुली दीखती है) होते हैं; क्योंकि उसकी दृष्टिमें संसारकी खतन्त्र सत्ता नहीं रहती।

ज्ञानीके ज्यवहारकी विशेषता

तत्त्वज्ञान होनेसे पूर्वतक सायक (अन्तः करणको अपना माननेके कारण) तत्त्वमें अन्तः करणसहित अपनी स्थिति मानता है। ऐसी स्थितिमें उसकी वृत्तियाँ व्यवहारसे हटकर तत्त्वोन्मुखी हो जाती हैं, अतः उसके द्वारा संसारके व्यवहारमें भूलें भी हो सकती हैं। अन्तः करण-(जड़ता-) से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेपर जड़चेतनके सम्बन्धसे होनेवाला सूक्ष्म 'अहं' पूर्णतः नष्ट हो जाता है। फिर तत्त्वज्ञ पुरुपकी खरूपमें नित्य-निरन्तर खाभाविक स्थिति रहती है। इसलिये साधनावस्थामें अन्तः करणको लेकर तत्त्वमें तल्लीन होनेके कारण जो व्यवहारमें भूलें हो

सकती हैं, वे भूलें सिद्धावस्थाको प्राप्त तत्त्वज्ञ पुरुषके बा नहीं होतीं, अपितु उसका व्यवहार खतः खाभाविक सुचार रूपसे होता है और दूसरोंके लिये आदर्श होता है। इसका कारण यह है कि अन्तःकरणसे संग सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेपर तत्त्वज्ञ पुरुषकी स्थित तो अपने स्वामाविक स्वरूप अर्थात् तत्त्वमें हो जात है और अन्त:करणकी स्थिति अपने खाभाविक स्थान—शरीर-(जड़ता-)में हो जाती है। से स्थितिमें तत्त्व तो रहता है, पर तत्त्वज्ञ (तत्त्वका ज्ञाता) नहीं रहता अर्थात् व्यक्तित्व (अहं) पूर्णतः मिट जात है। व्यक्तित्वके मिटनेपर राग-द्वेष सौन करे ! औ किससे करे ? उसके अपने कहळानेवाळे अन्तःकाणे अन्तःकरणसहित संसारकी स्वतन्त्र सत्ताका अल्ल अभाव हो जाता है और परमात्मतत्त्वकी सत्ताका प नित्य निरन्तर जाप्रत् रहता है । अन्तःकरणसे अफ कोई सम्बन्ध न रहनेपर उसका अन्तःकरण मानो ब जाता है । जैसे गैसकी जली हुई वत्तीसे विशेष प्रकार होता है, वैसे ही उस जले हुए अन्त:करणसे क्रि ज्ञान प्रकाशित हो जाता है।

जिस प्रकार परमात्माकी सत्ता-स्कूर्तिसे संसारमात्रका व्यवहार चलते रहनेपर भी परमात्मतत्त्व-(ब्रह्म-) विष्ट्रित भी अन्तर नहीं आता, उसी प्रकार तत्त्व पुरुषके स्वभाव (गीता ३।३३), जिज्ञासुओं जाननेकी अभिलाया (गीता ४।३४) और भगवरप्रण (गीता १८।६१)—इनके द्वारा तत्त्वज्ञ पुरुषं शरीरसे सुचारुरूपसे व्यवहार होते रहनेपर भी उसं स्वरूपमें किश्चित् भी अन्तर नहीं आता। उसमें स्वर्

^{*} गीता-(३।२१)का साक्ष्य है— यद्यदाचरित श्रेष्ठसत्तदेवेतरो जनः। स यद्ममाणं कुक्ते लोकस्तदनुवर्तते॥ श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वह वह ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ (ववनेंहे प्रमाण कर देता है, मनुष्य-समुदाय उसीका अनुसरण करने छग जाता है।

सिद्ध निर्छिपता रहती है *। जबतक प्रारब्धका वेग रहता है, तबतक उसके अन्तः करण और बहिः करणसे आदर्श व्यवहार होता रहता है।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप संसारसे अतीत एवं प्राकृत दृष्टियोंसे अगोचर जो सर्वत्र पिरपूर्ण भगवत्तत्त्व अथवा परमात्मतत्त्व है, वही सम्पूर्ण दर्शनोंका लक्ष्य एवं सम्पूर्ण साधनोंका अन्तिम साध्य है। उसका अनुभव करके कृतकृत्य, ज्ञातज्ञात्व्य और प्राप्तप्राप्तव्य हो जानेके लिये ही मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ है। मनुष्य यदि चाहे तो कर्मयोग, ज्ञानयोग अथवा भक्तियोग—किसी भी एक योगमार्गका अनुसरण करके उस तत्त्वको सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। उसे चाहिये कि वह इन्द्रियों और उनके विषयोंको महत्त्व न देकर विवेक-विचारको ही महत्त्व दे और 'असत्' से माने हुए सम्बन्धमें सद्भावका त्याग करके वास्तव 'सत्' का अनुभव कर ले। सत्की अनुभव-प्रक्रियामें सत्ताको समझना प्रसंगप्राप्त है। सत्ता दो प्रकारकी होती है—पारमार्थिक और
सांसारिक। पारमार्थिक सत्ता तो खतःसिद्ध (अविकारी)
है, पर सांसारिक सत्ता उत्पन्न होकर होनेवाली (विकारी)
है। साधकसे भूल यह होती है कि वह विकारी सत्ताको
खतःसिद्ध सत्तामें मिला लेता है, जिससे उसे संसार सत्य
प्रतीत होने लगता है, अर्थात् वह संसारको सत्य मानने
लगता है । इस कारण वह राग-द्वेषके वशीभृत
हो जाता है। इसलिये साधकको चाहिये कि वह विवेकदृष्टिको महत्त्व देकर पारमार्थिक सत्ताकी सत्यता एवं
सांसारिक सत्ताकी असत्यताको अलग-अलग पहचान
ले। इससे उसके रागद्वेष बहुत कम हो जाते हैं।
विवेकदृष्टिकी पूर्णता होनेपर साधकको तत्त्वदृष्टि प्राप्त
हो जाती है, जिससे उसमें रागद्वेष सर्वथा मिट जाते हैं
और उसे भगवत्तत्त्वका अनुभव हो जाता है।

भगवत्तत्त्व सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु और व्यक्तिमें परिपूर्ण है । अतः उसकी प्राप्ति किसी किया बल, योग्यता,

* गीता-(१३ । ३१) का वचन है--अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः । श्रीरखोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

•हे अर्जुन ! अनादि होनेसे तथा निर्गुण होनेसे यह अविनाशी परमात्मा शरीरमें स्थित होनेपर भी वास्तवमें न
तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है । और

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव । न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षिति ॥ (गीता १४ । २२) दे अर्जुन ! गुणातीत पुरुष सत्त्वगुणके कार्यरूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा तमोगुणके कार्यरूप मोहको भी न तो प्रवृत्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकाङ्क्षा करता है ।
उदासीनवदासीनो गुणैयों न विचाल्यते । गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवितिष्ठित नेङ्गते ॥ (गीता १४ । २३)
प्रो साक्षीके सहश स्थित हुआ, गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणोंमें बरतते हैं—ऐसा

समझता हुआ जो सिचदानन्द्यन परमात्मामें एकीभावते स्थित रहता है एवं उस स्थितिसे कभी विचलित नहीं होता। † अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् । आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्भूपं ततो द्वयम् ॥ (दृग्दृश्यविवेक २०)

—इस इलोकमें आया 'अस्ति' पद परमात्माके स्वतःसिद्ध (अविकारी) स्वरूपका वाचक है और निरुक्त (१ ।

१।२)के अनुसार—

'जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धतेऽपक्षीयते विनर्धित ।'

'उत्पन्न होकर सत्तावान् होना, यदलना, यदना, श्वीण होना और नष्ट होना—ये छः विकार कहे गये हैं ।'

यहाँ आया हुआ 'अस्ति' पद संसारके विकारी स्वरूपका वाचक है। तात्पर्य यह है कि इस विकाररूप 'अस्ति' में
निरन्तर परिवर्तन हो रहा है; यह एक क्षण भी एकरूप नहीं रहता।

अधिकार, परिस्थिति, सामर्थ्य, वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय इत्यादिके आश्रित नहीं है; क्योंकि चेतन-(सत्य-) की प्राप्ति जड़ता-(असत्य-) के द्वारा नहीं, अपितु जड़ताके त्यागसे होती है।

मनुष्य याद अपन ही अनुभवका आदर करे तो उसे सुगमतापूर्वक तत्त्वप्राप्ति हो सकती है। यह प्रत्येक मनुष्यका अनुभव हे कि जाप्रत्, स्वप्त, सुष्ट्रप्ति, मुर्च्छा और समाधिकी अवस्थाएँ तो परिवर्तनशील तथा अनेक होती हैं, पर इन अवस्थाओंको जाननेवाला अपरिवर्तनशील तथा एक रहता है। यदि अवस्थाओंको जाननेवाला अवस्थाओंसे अतीत न होता, तो अवस्थाओंको जाननेवाला अवस्थाओंसे अतीत न होता, तो अवस्थाओंकी मिन्नता, उनकी गणना, उनके परिवर्तन (आने-जाने), उनकी सन्त्रि और उनके अभावका ज्ञाता (जाननेवाला) कौन होता ? ये अवस्थाएँ 'अहं'-(जड़से माने हुए

सम्बन्ध-) पर टिकी हुई हैं और 'अहं' सत्यतत्त्वप्र टिका हुआ है। तात्प्य यह है कि एक सत्यतत्त्वके सिंग अन्य किसी भी अवस्था आदिकी और माने हुए 'अहं' की खतन्त्र सत्ता नहीं है। इस प्रकार अवस्थाओं से तथा 'अहं पे अपने-आप-(खरूप-) को अलग अनुभव करनेपर तत्त्वज्ञात् हो जाता है। तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जानेपर 'अहं' और 'अहं की अवस्थाओं की खतन्त्र सत्ता सत्यत्वेन किञ्चित् भी नहीं रहती। जिस प्रकार समुद्र और लहरों में सत्ता जलकी ही है, समुद्र और लहरों की किसी भी कालमें कोई खतन्त्र सत्ता नहीं है; अपितु जल ही जल शेष्ठ रहता है उसी प्रकार अहं और अवस्थाओं में एक भगवतत्त्वकी सत्ता है इसीको 'वास्तुदेवः सर्वम्'कहा है।

योगेश्वर पिप्पलायन-द्वारा भगवत्तत्त्वका वर्णन

(लेखक-पूज्यपाद संत श्रीप्रसुदत्तजी ब्रह्मचारीजी महाराज)

श्रीभगवान् निर्गुण एवं कारणरहित हैं, सबके कारण हैं। श्रीभगवान् प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्दादि प्रमाणोंद्वारा सिद्ध नहीं किये जा सकते। तथापि इन सबके द्वारा सिद्ध न होनेपर भी उनका बोध तो होता ही है। एक बार नौ योगीश्वर महाराज निमिकी सभामें गये। वहाँ महामुनि पिपछायनने निमिके प्रश्नोंके उत्तरमें कहा—

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद् वहिश्च। देहेन्द्रियासुद्धद्यानि चरन्ति येन स जीवितानि तद्वेहि परं नरेन्द्र॥

(श्रीमद्रा॰ ११।३।३१) 'राजन्! श्रीमन्नारायण सम्पूर्ण संसारकी उत्पत्ति-स्थिति और प्रख्यकं कारण हैं।' भगवान् कारणरहित हैं, उनका कोई कारण नहीं। वे ही कार्य हैं, वे ही कारण हैं। वे ही निभित्त कारण हैं, वे ही उपादान कारण हैं। जाग्रत्, खप्न

और सुषुप्त—यं तीन अवस्था कही गयी हैं। जाप्रत्में वे ही विश्वरूपसे नेत्रोंमें रहते हैं। खप्नमें वही तंत्रस्र रूपसे आत्मामें रहते हैं, सुषुप्तिमें वे ही प्राइरूपसे आत्मामें रहते हैं। वे अवस्थाओंके साक्षीरूपसे मीतर-बाहर सर्वत्र हैं। वे ही देखते, सुनते सब कुछ करते हैं, पर कहीं लिप्त नहीं होते। जड़ तत्त्वोंमें जो जीवन प्रदानकर इन सबको व्यापारमें प्रवृत्त करता है, उसे तुम परात्पर नारायणतत्त्व समझो।

अग्निके विस्फुल्लिङ्ग जैसे अग्निको प्रकाशित नहीं कर सकते, इसी प्रकार मन, वाणी, चिंकु बंद्धि, प्राण तथा अन्यान्य इन्द्रियाँ उन प्रमुकी सिद्धि करनेमं असमर्थ हैं। राजन्! ये सत्र तो जड हैं, इन सबमें तो चैतन्यता वे ही प्रदान करते हैं। शांखि भी उन्हें प्रत्यक्ष नहीं निषध कृतिसे बताते हैं। जैसे किसी स्त्रीका पति दस आदमियोंके बीचमें बैठी

है, उसकी सहेली पूछती है तरे पित वे हैं ! तो वह नकारात्मक सिर हिलाती है। फिर पूछती है, वे हैं ! फिर सिर हिला देती है। जब पितकी ओर संकेत करती है तो लजाकर चुप हो जाती है। वह सहेली इस संकेतसे समझ जाती है कि अमुक वे हैं। इसी प्रकार देह ब्रह्म नहीं, इन्द्रिय ब्रह्म नहीं, उसके विषय ब्रह्म नहीं, मन ब्रह्म नहीं, बुद्धि ब्रह्म नहीं, चित्त ब्रह्म नहीं, अहङ्कार ब्रह्म नहीं। इसी प्रकार नहीं-नहीं करते-करते, जो शेष रह जाय, ब्रह्म ब्रह्म है। अनात्म पदार्थोंका निपंध करते-करते जहाँ निपंधकी अबिय हो जाय, ब्रह्म ब्रह्म है, ब्रह्मी नारायण है।

स्पष्ट है कि मन, वाणी, बुद्धि, प्राण तथा अन्यान्य इन्द्रियाँ ब्रह्म नहीं हैं, किंतु इनसे विलक्षण कोई ब्रह्म अवश्य है, यह अर्थापत्ति प्रमाणसे सिद्ध होता है। अर्थापत्ति उसे कहते हैं, जो बस्तु दीखनी तो नहीं है, किंतु उसका अनुमान लगाते हैं । जैसे 'शशक' के शृङ्ग नहीं होते इस कथनसे इतना ही सिद्ध है कि शशक नामक जीवके सिरपर सींग दिखायी नहीं देते । सींग नामक वस्तु संसारमें अवस्य है और वह चार पैरवाले पशुओंके सिरपर उत्पन्न होते हैं। यदि 'सींग' नामक वस्तुका अभाव ही होता, तो यह कहना असंगत था, व्यर्थ था कि शशकके सींग नहीं । सींगोंकी प्राप्ति ही नहीं थी तो निषेध क्यों किया जाय ! निषेध किया, इससे यह सिद्ध हो गया कि सींगोंका अस्तित्व है। वेदोंमें नेति-नेति शब्द है, इससे यह स्रतः सिद्ध हो गया कि ये मायिक पदार्थ नारायण नहीं; इनसे विलक्षण एक नारायण है, जब यह संसार नहीं था, ब्रह्म तब भी था, अब यह जगत् दीखता है तव भी है, जव जगत् न रहेगा, ब्रह्म तब भी रहेगा।

आमके पेड़के पूर्व जे गुठली एक ही थी, जव भूमिमें गाड़ दी गयी, तो उस गुठलीसे अंकुर हो गया, उसीमेंसे पत्ते निकल आये। फिर शाखाए निकली,

शाखाओं मेंसे प्रशाखाएँ हुई, उनमें फूछ निक्क आये, फळ लग गये। फलोंमें गुठली लग गयी, उस गुठलीसे ही इतनी वस्तुएँ हो गयी। अन्तमें फिर गुठलीको गुठली हो गयी। एक गुठलीसे अनेक हो गयी। उन सबमें बीज रूपसे तो एक ही शक्ति विद्यमान है। सब बीजसे अनेक वस्तुएँ हुई, फिर अन्तमें बीजका बीज ही। वससे पहिले भी बीज था। सम्पूर्ण वृक्षमें भी बीज व्याप्त था। फिर बीज होनेपर उसमें वृक्ष बनानेकी पूर्ण शक्ति है। अनेकरवमें बीज शक्तिरूपसे एकत्व छिपा है। इसी प्रकार सृष्टिके आदिमें एक ब्रह्म ही ब्रह्म था। बही ब्रह्म सच्च, रज और तम इस प्रकार त्रिवृत् प्रधानक्रपमें परिणत हो गया।

जवतक नख-वाल चैतन्यक साथ सम्बन्ध है, जबतक जड़ होते हुए भी बढ़ते हैं। उन्हें काटकर देहसे पृथक् कर दो या शरीरसे प्राणोंको पृथक् कर दो, उनमें वृद्धि न होगी। इसी प्रकार देह, मन, प्राणादि जड़ होनेपर भी चैतन्यके संसर्गसे सब कार्य करते हैं। सत्त्रपुणका कार्य है ज्ञान, रजोगुणका कार्य है क्रिया और तमोगुणका कार्य है ढाप लेना, इसीलिंग वही प्रधान तस्त्र ज्ञानमय होनेसे महत्तत्व कहलाता है, क्रियात्मक होनेसे उसीका नाम सूत्रात्मा है और जीवकी उपाधि होनेसे उसीकी अहंकार संज्ञा हो जाती है। फिर वही अहंकाररूप ब्रह्म सच्च, रज और तम तीन गुणोंके कारण दसों इन्द्रियोंके अधिष्टातृदेवरूपमं, दस इन्द्रियोंके रूपमें, पाँच भूतोंके रूपमें, पाँच तन्मात्राओं के रूपमें भासने लगता है। यह सब होनेपर भी उसमें बृद्धि नहीं, हास नहीं । जैसे सुवर्ण जब खानमें था तब भी सुवर्ग ही था, कनक-कुण्डल कहलानेपर भी चारों ओरसे सुवर्ण-ही-सुवर्ण है, कनक्कुण्डलकी उपायिको त्याग देनेपर भी सुवर्ग है । वह नाम, रूप उपाधिसे रहित है, सदा रहनेवाला है, एकरस है । नामरूप उसका कुछ विगाइ नहीं सकते।

इसी प्रकार सत्-असत्, दृश्य-अदृश्य तथा इसके परे भी जो कुछ है, वह ब्रह्म-ही-ब्रह्म है, ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ नहीं है। कुछ भी किचित् भी नानात्व नहीं है। उन परमात्मा भगवान् नारायण ब्रह्मका न कभी जन्म होता है न मरण। न वे घटते हैं, न बढ़ते हैं। कोई भी ऐसा स्थान नहीं, जहाँ ब्रह्म प्रविष्ट न हो। एक कटोरेमें जब मुखतक दूध भरा है तो उसमें दूसरी बस्तुके लिये स्थान ही कहाँ है। इसी प्रकार ऐसा कहीं, कोई तनिक भी स्थान खाळी नहीं, जहाँ ब्रह्म परिपूर्ण-रूपसे व्याप्त न हो। वे तो सर्वव्यापक हैं, नित्य हैं, शास्त्रते हैं, अच्युत हैं तथा ज्ञानरूप हैं।

चैतन्यके अधिष्ठानसे देहमें ये सब अवस्थाएँ होती हैं। ब्रह्म तो साक्षी रूपसे देखता रहता है। जैसे भवनमें दीपक जल रहा है, वह सब वस्तुओंको प्रकाशित कर रहा है, प्रकाशमें आप पुस्तक लिखें, निषिद्ध काम करें, जो भी चाहें करें, दीपक तटस्थभावसे प्रकाश प्रदान करता रहेगा । अच्छे-बुरे किसी कर्ममें वह लिस नहीं होगा, सबको देखता रहेगा । जब दीपकका अदर्शन हो गया, तब वस्तुएँ भी प्रकाशित न होंगी। कार्य भी न हो सकेगा। ब्रह्म ही अनेक रूपोंमें अनेक नामोंसे प्रतीत हो रहा है। जैसे एक व्यक्ति है, जब वह यात्रा करता है तो लोग उसे यात्री कहते हैं, पढ़ने जाता है तो उसकी विद्यार्थी संज्ञा हो जाती है, जब वह मौर ्बाँधकर विवाह करने चळता है तो दूल्हा कहलाता है, पढ़ाने जाता है तो अध्यापक कहळाता है; स्थान और कार्यमेदसे उसकी संज्ञाएँ भिन्न-भिन्न हो जाती है; जैसे एक ही प्राणके स्थानभेदसे अपान, समान और व्यान आदि नाम हैं, उसी प्रकार एक ही ब्रह्मकी विविध रूपोंमें प्रतीति हो रही है । अण्डज, पिण्डज, उद्ग्रिज्ज तथा स्वेदज—इन सभी प्रकारके प्राणियोंमें प्राण हैं। जीव जिस योनिमें जाता है, प्राण उनका वैसे ही रूपसे अनुसरण करते हैं।

समी प्राणियोंको नित्य आत्माका अनुमव होता है, आत्मानुमव न हो तो यह प्राणी जीवित ही न रहे। देखिये, गाढ़ निद्राके समय ये वाह्य विषय नहीं रहते। इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं, अहङ्कार भी छीन हो जाता है। उस समय जीवात्मा परमात्मासे मिळका सुखका अनुभव करता है; क्योंकि सुखखरूप तो भगवात ही हैं। सोकर उठनेपर हम कहते हैं कि आज तो बड़ी ही मीठी-मीठी नींद आयी, सुखपूर्वक सोये। अब सोचिये जब इन्द्रियाँ, मन, अहंकार—सभी जहाँ नहीं थे, वहाँ सुखका अनुभव किसने किया ? कहना न होगा, कूटल आत्मा ही उस अवस्थामें भी जागता हुआ उस सुखका अनुभव करता है।

बड़ी हुई तीव्र भगवद् भक्तिरूप अग्नि जीवके चित्तप जमी हुई काई या जालको जला देती है। विशुद्ध चित हो जानेपर ब्रह्मका प्रकाश खयं ही दिखायी देने लगता है। अञ्जब्र चित्त ही संसारको प्राप्त करता है, वही विशुद्ध बन जानेपर ब्रह्म साक्षात्कारमें कारण बन जाता है, अतः आप निरन्तर भगवान्की भक्ति करें । चित्रके शुद्ध होनेका भगवान्की भक्तिके अतिरिक्त दूसरा कीई भी सरल, सुगम और सर्वोपयोगी साधन नहीं। जी भी कर्म करें, भगवान्के निमित्त करें, यज्ञरूप श्रीमन्नारायणको प्रसन्न करनेके निमित्त कर्म करें । यज्ञके अतिरिक्त, भगवत् परिचर्याके अतिरिक्त जो भी कर्म है सव बन्धनके हेतु हैं—पुन:-पुन: संसारकी प्राप्ति करनेर्गे कारण हैं। कर्म तो बन्धनके कारण हैं, किंतु वे ही कर्म यदि कुशल्तापूर्वक किये जायँ तो मुक्तिके हेतु ही जाते हैं। अतः कर्म न करके कर्मयोग कीजिये। कर्मोंको अनासक्त होकर करनेसे वे बन्धनमें नहीं डालरी यही कर्मयोगकी विशेषता है। एकमात्र 'बुद्धियोग'के सहारे ही कर्ता कर्मबन्धनसे बचता है अतः योग ही उनसे वचनेका कौराल है——'योगः कर्मसु कौरालम् ।'

सगुण-निर्गुण ब्रह्म

(टेलक महामण्डलेश्वर खामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती)

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निः पयसि घृतम्। इक्षौ गुडं यथा देहे तथाऽऽत्मास्ति शरीरिणाम्॥ (योगवासिष्ठः, चाणक्यनीति ७।२१)

'जैसे फूलमें गन्ध, तिलमें तैल, काष्ट्रमें अग्नि और दूधमें घृत दिखायी न पड़नेपर निराकार रूपसे उनमें इनकी ब्याप्ति या श्वितिका अनुमान होता है, उसी प्रकार सगुण शरीरमें आत्मा व्याप्त है । उसे विवेक और विचारके द्वारा देखा या साक्षात्कार किया जा सकता है'——

'मुद्तिता मधै विचार मथानी।'

परमात्मा निर्गुण-निराकार होते हुए सगुणरूपका भी धारियता है । उसीकी सत्तासे सगुणका महत्त्व रहता है । जिस समय सगुंण पुष्पसे निराकार सुगन्ध और प्रत्यक्ष तिल्से उसमें न्याप्त तेल निकाल लिया जाता है, तब पुष्प और तिल प्रायः निःसार व्यर्थ हो जाते हैं । इसी प्रकार शरीरमें न्याप्त चैतन्यके निकलते ही शरीर मिट्टीके समान हो जाता है । सगुण-निर्पुण तत्त्वतः एक ही हैं, ब्रह्म व्यापक होते हुए भी सगुणके विना व्यक्त नहीं हो सकता और निर्गुण सत्ताकी अभिव्यक्ति बिना कोई विशेष अर्थ नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद्का मन्त्र है---'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं, यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः' (३।०।३) 'जो पृथ्वीमें रहता हुआ प्रथ्वीका नियमन करता है, पृथ्वी जिसको नहीं जानती, पर प्रथ्वी जिसका शरीर है, बह अन्तर्यामी अमृतरूप आत्मा है। ' मृत्तिकासे निर्मित घट-सुराही, सकोरा, कुल्हड़ आदि विभिन्न नामोंके आकार भिन्न-भिन्न होते हैं, किंतु

उनमें मृत्तिका सर्वत्र समान है। मृत्तिका हटा दंनेपर घट-धुराही आदिका कोई अस्तित्व नहीं—'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृतिकेत्येच सत्यम्।' (छान्दो० उप०) वाणी इनमें नाममात्रका भेद है, वस्तुतः सब मृत्तिका ही हैं। स्वर्णसे बने आभूषण चाहे कितने ही नाम-रूपोंमें हों, किंतु स्वर्णसे पृथक् कुछ नहीं है—

सुवर्णाज्ञायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम् । ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत् ॥ (योगवासिष्ठ)

पुत्रणसे वने आभूषण सुत्रण ही होते हैं, वैसे ही ब्रह्मसे उत्पन्न संसारकी ब्रह्मसे पृथक कोई सत्ता नहीं होती है। ब्रह्मरूप होते हुए भी प्राकृत जन संसारको एवं सगुण परमात्माको पृथक ही देखते हैं। श्रीभगवान कहते हैं—'अर्जुन! अज्ञानी जन मेरे दिन्य अप्राकृत निर्गुण रूपको न जानकर साधारण पश्चभूतोंवाला समझते हैं'—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥ (गीता ९। ११)

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमन्ययम्॥ (गीता ७। २५)

'अर्जुन ! में अजन्मा, अविनाशी तथा सभीका खामी होता हुआ प्रकृतिके सहारे संकल्पके द्वारा अवतार धारण करता हूँ' ---

अजोऽपि सन्नन्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् । प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ (गीता ४ | ६) तत्त्रतः सगुण-निर्गुणमें भेद नहीं है जैसे जल

जो गुन रहित सगुन सोइ केसे।
जिमि हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥
माता पार्यतीको जब रामके ब्रह्म होनेमें संदेह हुआ
और जिज्ञासापूर्वक पूछती हैं—'जो नृप तनय तौ ब्रह्म
किमि।', तब चन्द्रमौलि भगवान् शिव कहते हैं—

अगुनहि भेदा । सगुनहि नहिं कञ्च मुनि बेदा ॥ गावहिं पुरान बुध जोई। भज अगुन होई॥ भगत प्रेम बस सगुन सो पुत्र-लालसासे जब मनु-शतरूपाने तप किया, तब

वरदान देते हुए कहते हैं---इच्छा मय नर वेष सँवारे । होइहीं प्रगट निकेत तुम्हारे ।

वेद जिसे नेति-नेति कहकर मौन हो जाते हैं,

वही व्यापक ब्रह्मतस्य सगुण रूप धारण करके भक्तीं इच्छा पूरी करता है — 'पुरउव मैं अभिलाव तुम्हणा।

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥
ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या की गोद॥

राम ब्रह्म स्थापक जग जाना । परमानंद परेस पुराना। जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । माथाधीस ग्यान गुन धाए।

रूपके ज्ञानके विना भी नामके प्रभावसे रूप सामे प्रकट हो जाता है-

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे । आवत हृद्यं सनेह विसेषे।

भक्तोंके लिये सगुण तथा ज्ञानियोंके लिये निर्फ रूपकी न्याख्या महापुरुयोंने ही की हैं। यथार्थमें परमास

ही सगुण-निर्गुण सत्र हैं---

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।

to section many then pulled

सगुण-निर्गुणका समन्वय

हान और अज्ञान, अन्धकार और प्रकाशकी भाँति निर्गुण भी सगुण सापेक्ष है और निर्गुणकी उपासना कि सगुणाराधनाके सम्यक्तया संभव नहीं है। महात्मा तुलसीदासका विश्वास है कि—

बान कहै अग्यान बिजु तम बिजु कहै प्रकास। निरगुन कहै जो सगुन बिजु सो गुरु तुलसीदास॥

'जो अज्ञान कहनेके बिना ज्ञानका वर्णन कर दे, तमका वर्णन किये बिना प्रकाशका (महस्व) कह दे औं सगुणका वर्णन किये विना प्रकाशका (महस्व) कह दे औं सगुणका वर्णन किये विना निर्गुणका वर्णन कर दे, वह गुरु और (मैं) तुल्सीदास उसका दास (चेला) है अर्थात् के कोई कह नहीं सकता; क्योंकि ये सापेक्ष सम्बन्धी हैं, एकके बिना दूसरेकी खिति नहीं हो सकती। अतः उभयको मान्ध चलना चाहिये। जीवनके लिये समन्वयात्मक साधना अपनाना ही उत्तम है। महात्मा तुल्सीदार्ष कहते हैं कि —

हिय निरगुन नयनिह सगुन रसना राम सुनाम। मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम।

'हृदयमें निर्गुण ब्रह्मका विचार करते और नेत्रोंसे सगुण ब्रह्मकी लीला एवं उनके अर्चावतारको हैते। हुए रसना (जिह्ना) से श्रीरामजीके सुन्दर नामका रसास्वादन करना—ऐसा है, मानो सोनेके सम्पुट-(इन्द्रे-)

परमात्मां और उनके अवतारोंका रहस्य

(लेखक—स्वामी श्रीज्योतिर्मयानन्दजी महाराज, फ्लारिडा, अमेरिका)

थस्तुतः सभी नाम एवं रूपोंके अन्तर्गत एकमात्र ईश्वर ही परमतत्त्व है । वह सचिदानन्दखरूप है । वह सगुण भी है और निर्गुण भी । निर्गुणरूपमें वह निराकार, अनन्त और शरीर, मन आदिसे रहित है । सगुणरूपमें उसके सत्य-ज्ञान अनन्त सिचदानन्दघन आदि रूप हैं। ईश्वर संसारका उपादान एवं निमित्त-कारण भी है। 'जन्माद्यस्य यतः' ब्रह्मसूत्र (१।१।२) आदिमें इसका विस्तारसे निरूपण है । टामस ऐक्यूनसने ईश्वरके अस्तित्वमें पाँच प्रमाण बतलाये हैं, जो ऋमशः इस प्रकार हैं—

१ –सभी गतिशील वस्तुएँ किसी स्थान अचल वस्तुके सूचक हैं। ईश्वर ही खयं अचल होकर सबोंको संचालित कर रहा है।

२ - संसारकी सभी वस्तुएँ अपनी कारण-परम्परामें निबद्ध हैं । इनमें परमात्मा ही सबका मूळकारण, मूळाधार तथा खयं निर्मूल निराधार एवं निष्कारण है--'मूले मूलाभावाद्मूलं मूलम्'(सांख्यदर्शन १।६७)।

३-संसारकी सभी वस्तुएँ अपूर्ण हैं, जो किसी पूर्ण पदार्थतत्त्वकी सूचना देती हैं। वे पूर्णतत्त्व परमात्मा ही हैं।

४-सभी वस्तुओंका मूल्य सीमित है। परमात्मा ही सबसे मूल्यवान् तत्त्व है, जिसकी सीमा नहीं।

५-सत्रमें कुछ समझदारी और एक दूसरेसे अधिक ज्ञानकी परम्परा दीखती है। परमात्मा ही सर्वाधिक ज्ञानी एवं बुद्धिमान् है । वेदोंके पुरुषसूक्तमें भगवान्के द्वारा संसारकी उत्पत्तिका विस्तारसे निरूपण है । गीताके दूसरे अध्यायमें भी परमात्मतत्त्वका १४ से ३२ खोकोंतक यथार्थ वर्णन है।यह विश्वसाहित्यमें अद्भुत एवं वेजोड़ है।

परमात्माकी अन्य किसीसे तुलना नहीं हैं। पर प्रमात्मा—उसका प्यान छोटे रूपसे ही प्रारम्भ किया जा सकता है । मूर्तिपूजाके पीछे भी यही रहस्य है । जैसे

अमृतसमुद्रकी सभी बूँदें अमरत्वके गुणसे संयुक्त होती हैं, वैसे ईश्वरका अंश जीवात्मा भी ईश्वरके सभी गुणोंसे संयुक्त होता है और फिर राम-कृष्ण आदि अवतारोंकी वात ही क्या ! उनका उस रूपमें ध्यान करना उपासनाकी बड़ी सुगम पद्गति है। विश्वब्रह्माण्डक रूपमें व्यास विराट-रूपकी उपासना बड़ी कठिन हैं। यही कारण है कि वेदके जिन ऋषियोंने ईश्वरके विराट्-रूपकी बात कही, उन्होंने भगवान्का 'इन्द्रगोप'*के रूपमें वर्णन किया, अर्थात् परमात्मा इन्द्रगोप-कीटकी उपमा-वाला है। यथा--'अयं इन्द्रगोपः।' (ऋक्८।४६।३२)

ईश्वर एक है, पर उसकी पूजाकी पद्धतियाँ अनेक हैं । प्रत्येक मस्तिष्कमें उसकी भिन्न-भिन्न रूपरेखा दीखती है; क्योंकि प्राणियोंकी रुचि भिन्न प्रकारकी होती है। इसका मुख्य कारण है---सत्वादि गुणोंकी न्यूनाधिकता । इसके अतिरिक्त एक व्यक्तिके ही आगे-पीछे-से तथा अलग-अलग अलंकरण-उपकरण आदिसे लिये गये चित्र भिन्न-भिन-अलग-अलग ढंगके होते हैं। यही बात ईश्वरके सम्बन्धमें भी है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, दुर्गा सब उसीके भिन्न-भिन्न रूप हैं।

प्रत्येक हिन्दू व्यक्तिका एक अलग इष्ट देवता होता है। बह उसके चयनमें खतन्त्र है। तथापि प्रकारान्तरसे ये सभी आराधनाएँ उस एक परमात्माकी हैं । हिन्दू-देवता-देवियोंके कुछ अद्भुत रहस्य हैं । मनकी बातें भाषाओंसे व्यक्त होती हैं, पर हृद्यकी वात मुद्राओंसे व्यक्त होती है। हर मुद्रा एवं मन्त्रका प्रभाव होता है। भक्त अपने इष्ट देवताका सभी देवताओंमें दर्शन करता है।

दस अवतारोंका रहस्य

साधन-मार्गमें मनुष्यका धीरे-धीरे उत्थान होता है। वह वाह्य जगत्से इन्द्रिय, मन, बुद्धि, शुद्ध चित्त, सत्तरव या पूर्ण तस्वकी ओर चलता रहता है, पर साधनाका

 इन्द्रगोप एक ऐसा कीट होता है, जो—रेशमके कीहेके समान सुकुमार एवं वैगनी रंगका होता है। गणेशजीकी शरीर-कान्ति भी इन्द्रगोप-जैसी कही गयी है --- 'इन्द्रगोपसमानश्रीः (गणेशसदस्रनाम ७२)।

खरूप अध्यात्मतस्वके समझे विना प्रा नहीं होता । यह आध्यात्मिक ज्योति ही है, जो मनुष्यकी सभी प्रकारकी प्रगतियों में सहायिका होती है । साधक इस प्रमात्मतस्वकी साधनामें एक सीढ़ीसे दूसरी सीढ़ीपर चढ़नेकी तरह ऊपर बढ़ता है । प्रमात्मयोगसे मनुष्य शीघ्र प्रगति करता है, क्योंकि उधरसे भगवान्का साधकमें भी अवतरण होता जाता है ।

गीतामें भगवान्ने कहा है कि योगका आश्रय लेकर मैं धर्मकी रक्षां किये पृथ्वीपर अवतार लेता हूँ। साधुओंकी रक्षा एवं दुर्धोका दमन करनेके लिये में युग-युगमें अवतार लेता हूँ (गीता ४। ७, ८)। इसी प्रकार दिव्य शक्तियाँ भी समय-समयपर पृथ्वीपर अवतरित होती हैं। उनके चित्र भी साधकोंके लिये लाभकर होते हैं। भगवान्के असंख्य अवतार हैं। इनमें चौत्रीस प्रसिद्ध हैं। उनमें भी मत्स्य, कच्छप, वराह, वामन, नृसिंह, पर्श्वराम, राम, बल्राम, कृष्ण और बुद्ध ये दस अवतार विशेष प्रसिद्ध हैं।

मत्स्यावतार—यह सृष्टिके प्रारम्भमें हुआ था। जब समस्त विश्व जलसे घिरा हुआ था, उस समय एक मन्वन्तरकी समाप्ति हो रही थी। भगवान् ने वैत्रस्त मनु सत्यत्रतकी रक्षाकर अग्रिम नवीन सृष्टिके वीर्जोका आरम्भ किया था।यह कथा वाइविलमें नोवाकी तरह है।

कच्छप-अवतार—इसके द्वारा भगवान्ने समुद्र-मन्थन और अमृत-उत्पादनमें सहायता की थी। पुराणोंमें इसका विस्तृत वर्णन है। आध्यात्मिक दृष्टिसे मनुष्यका मस्तिष्क ही समुद्र है और कच्छप उसमें दैवी हलचल है। उसमें ध्यान, समाधि एवं संयमके द्वारा अनन्त राक्तिरूप अमृतकी उत्पत्ति होती है।

वराहावतार इसके द्वारा भगवान्ने वेदोंका उद्घार कर हिरण्याक्षका दमन किया । बराह तामसी प्रकृतिके भी उद्घाटनके उपलक्ष्यमें है । यह तामसी प्रकृति कभी-कभी काली और दुर्गाके रूपमें भी अवतरित होती है ।

वामनावतार इसमें भगवान्ने विष्णिर विजय प्राप्त की थी। उन्होंने विष्णिके पास जाकर तीन डा। भूभ माँगी। अहंकारी राजाने दानकी स्वीकृति दे दी। उसी समय भगवान्ने विराट्रूप धारणकर दो डगोंमें पृथी और स्वर्गको नाप िष्या। राजाने तृतीय डगमें अफ़े शरीरको दिया। विष्ठको बन्धनमें डालकर पाताल भेव दिया। इससे आत्मनियन्त्रणकी शिक्षा मिलती है।

नृसिहावतार—इसमें भगवान्ने आधा मनुष, आधा सिहका रूप धारणकर हिरण्यकशिपुका वध किय एवं प्रह्लादकी रक्षा की । प्रह्लाद बड़े भक्त थे । उनके कथनानुसार भगवान् एक पत्थरके खम्भेसे नृसिहरूमें प्रकट हुए थे । इसका रहस्य सत्त्वसिद्धिमें है ।

परशुरामावतार—इसमें भगवान् इसिलये अवसीति हुए कि उन्होंने अपने पिता जमदिग्निके वधके बदले सम्प्री क्षित्रय-कुलका इकीस बार संहार किया। इसमें अहंका, पाप, काम, क्रोध, लोभ तथा अन्य आसुरी वृत्तिवीते दमनका तस्त्र निहित है। ये अञ्चाभ संस्कार समाधि बाधक होते हैं। भगवान् अपने फरसेसे संसार-वृक्षकी काट देते हैं। यह वृक्ष अविद्या या अज्ञानमें बद्धमूल है।

रामावतार—इसमें भगवान् रावणादि असुरोंका के किया था। यहाँ भगवान् विशुद्ध मनुष्यरूपमें अवति हुए हैं। वे लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चार ह्यों विभक्त हुए हैं। प्रारम्भमें कैक्सीके वरदानसे के गये। वहाँ उनकी स्त्री सीताको रावणने चुरा किया किर हुमान् आदिः वंदर-भालुओंके सहारे समुद्र्य पुल बाँधकर वे लक्का पहुँचे और युद्धमें उन्होंने रावण कुम्भकणादिका संहार कर डाला और विभीवणक लक्काका राज्य दिया। भगवान् राम समस्त देवी गुणीं आश्रय कहे गये हैं। वे अनन्त गुणगणनिलय हैं। भा और बंदर मन इन्द्रियोंके संयमका प्रतिनिधित्व करते हैं। हुनुनान् आत्मशक्तिके धोनक हैं, जिन्होंने समुद्रको पार्क सीताका पता लगाया। रावण अज्ञानका धोतक हैं।

वह दशों इन्द्रियोंका दास है। कुम्भकर्ण तमःशक्तिका बोतक है। विभीषण शुद्ध सत्त्वका परिचायक है। भगवान् राम चारों पुरुपार्थके बोतक हैं, जिनमें राम साक्षात् मोश्च-खरूप हैं।

बलराम--भगवान् विष्णु आध्यात्मिक बलसे युक्त होकर बलरामके रूपमें अवतीर्ग हुए थे। ये कृष्णके बड़े भाई थे। उनकी कथाएँ कृष्णके साथ मिली हुई हैं। ये दोनों भाई नन्दके यहाँ पले थे। बलरामजीके कन्धेपर हल नामका आयुध रहता है। वलरामका आध्यात्मिक अर्थ मनोबलसे है। जैसे पृथ्वी हलसे जोती जाती है, वैसे दैवी शक्ति चित्तमें मनोबलके रूपमें अवतीर्ग होती है।

कृष्णावतार - यह भगवान्का पूर्णावतार कहा गया। वैसे मर्यादापुरुषोत्तमकी दृष्टिसे राम भी पूर्ण ब्रह्म हैं। कृष्णके चरित्रोंमें उनकी दिव्यता प्रतिपद प्रकट होती रहती है। वे वंदीगृहमें जनमे, किंतु आकाशवाणीने पहले ही कंसको स्चित कर दिया था कि कृष्णसे उसको प्राणोंका भय है। प्रारम्भिक दिनोंमें कृष्णसे बचनेक लिये उसने अनेक वालकोंको मार डाला था। वह वस्तुतः कृष्णको ही नष्ट करना चाहता था पर, उसमें सफल नहीं हुआ । इथर कृष्णके बालकालमें उसके द्वारा भेजे गये अनेक असुर प्रतिदिन नष्ट होते रहे । उधर व्रजके जनमानसमें उनका मधुर आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता गया । गोपियाँ उनके प्रेममें पागल हो गयी थीं । उन्हें देखकर गोपियोंको अद्भुत आनन्द होता था---परमानन्दमासीत् श्रीकृष्णद्रशेने' आध्यास्मिक त्र्याख्यामें गोपियोंका देवी तत्त्व वेदोंकी सृतियाँ अथवा हृदयमें स्थिति विभिन्न वृत्तियोंको रोकनेमें व्याख्यात हुई हैं। जब कृष्ण कुछ बड़े हुए तो उन्होंने कंसको मार डाला, जैसा कि पहले आकाशवाणीद्वारा घोषणा हुई थी । उन्होंने बंदीगृहसे अपने माता-पिताको मुक्त किया । वे गीताके वक्ता महाभारतके महानायक

और भागवत आदि पुराणोंके सर्वख कहे गये हैं। इनमें उनकी मुक्तिका अनेक रूपोंमें गान किया गया है। जहाँ योगेश्वर कृष्ण और धनुर्घर अर्जुन हैं, वहाँ विजय, विभूति और नीति-धर्म तथा सभी प्रकारके श्रेय निश्चित-रूपसे उपस्थित रहते हैं। कृष्ण और अर्जुन आध्यात्मिक व्याख्यामें बुद्धि और कियाके प्रतीक हैं।

भगवान् बुद्ध — सिद्धार्थ बुद्ध भी विष्णुके अवतार कहे गये हैं। इन्होंने अहिंसाका प्रचार किया। बुद्धकी जीवनी विभिन्न साधनोंके द्वारा निर्वाणके प्राप्त करनेकी शिक्षा देती है। सिद्धार्थ बुद्ध नेपालराजके कपिलवस्तु-स्थित गुद्धोदनके परिवारमें पैदा हुए थे। पहले यह भारतमें था। ज्योतिषियोंने बुद्धके मिश्चुक होनेकी भविष्यवाणी पहलेसे ही कर रखी थी। इसलिये उन्हें मिश्चुओंसे सदा दूर रखा जाता था। पर किन्हीं दिनों रोगी, बुद्ध और मृत व्यक्तिको देख विरक्त होकर वे घर छोड़कर बाहर निकल गये। इसके पूर्व उन्हें राहुल नामका एक पुत्र हुआ था। बुद्धगयामें तपस्या कर उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। उनकी जीवनी एक प्रकारसे साधनाओंकी एक लम्बी सूची है।

इस प्रकार मत्स्य आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टिकी, कच्छप इन्द्रियोंको अन्तमुख रखकर संयम-समाधिकी ओर प्रवृत्त होनेकी, वराह दृढ़ विश्वासकी—चेतना और विनयके विकासकी, नृसिंह—भक्तिके विकासकी, परशुराम अनासक्तिकी, राम अज्ञानके ध्वंसकी, वल्राम शुभ वासनाओंके वृद्धिकी, कृष्ण कृत्याकी, बुद्ध अहिंसा आदि साधनाकी और किन्क दोवोंके अपाचरणकी शिक्षा देते हैं।

साधकको इन अवतारोंसे इस प्रकार शिक्षा प्रहणकर भगवान्को अपने हृद्यदेशमें, फिर आत्मामें अवतीर्ण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान् हम लोगोंको साधनाओंमें सफल करें। (मूल अंग्रेजीसे अन्दित) [अनुवादक—पर श्रीजानकीनायजी शर्मा]

तत्व एक दृष्टियाँ अनेक

(लेखक-स्वामी भीसनातनदेवजी महाराज)

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि सत्य नास्तवमें एक है, एक ही है। अनेक सत्योंका होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। यदि सत्य अनेक होंगे तो ने सीमित होंगे। देश-कालसे उनका परिच्छेद न भी हो तो भी न्यस्तुपरिच्छेद तो होगा ही। और, जो सीमित होंगे ने उत्पत्ति-नाशवान् भी होंगे। फिर उन्हें सत्य कैसे कहा जायगा! सत्य तो नहीं कहा जा सकता है जो त्रिकाला-नाधित हो; तीनों कालों——भूत, न्रतमान, भविष्यत् कालोंमें एक-सा बना रहनेवाला हो। सच पूछा जाय तो सत्यका यह लक्षण भी अधूरा है। सत्यमें ही तो देश, काल और नस्तु भी कल्पित हैं। अतः उसे त्रिकाला-नाधित कहनेकी अपेक्षा कालातीत (कालसे परे) कहना अधिक उपयुक्त होगा।

परंतु एक होनेपर भी सत्यकी अनुभूति विभिन्न व्यक्तियोंको एक रूपमें नहीं हो सकती । आप संसारकी ही किसी वस्तुको हैं। वह एक ही कालमें विभिन्न व्यक्तियोंको एक रूपमें दिखायी नहीं दे सकती। कोई पूर्वमें है कोई पश्चिममें, कोई उत्तरमें है कोई दक्षिणमें; अपनी-अपनी दिशासे देखनेके कारण वे उसे एक रूपमें कैसे देख सकते हैं ! इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तुको पूरा नहीं देख सकता। उसे उसका एक ओरका भाग दिखायी देगा, दूसरी ओरका नहीं। और, बह उसके आन्तरिक भागको भी नहीं देख सकेगा। ऐसा कोई उपाय भी नहीं है कि एक व्यक्ति किसी भी वस्तुको एक कालमें पूरा जान सके। यह तो उसके सतही ज्ञानकी बात है। उसमें कितनी शक्ति है और उसके क्या-क्या उपयोग हो सकते हैं---यह सब जानना तो और भी कठिन है---कठिन क्या असम्भव है; क्योंकि अनन्तकी शक्ति भी अनन्त है और प्रत्येक बस्तु उस

अनन्तकी ही अभिन्यिक्त है । फिर उसे जीवकी सीकि राक्ति कैसे हृद्यङ्गम कर सकती है ! उदाहरणके क्षे आप एक सोनेका टुकड़ा लें, जिसका वजन एक तेल हो । क्या संसारका कोई भी वैज्ञानिक यह बता सकत है कि इसे केवल इतने आकारोंमें ही परिणत किया ज सकता है ! उस सीमित सुंवर्ण-खण्डमें भी अन्त आकार धारण करनेकी राक्ति है ।

जब संसारकी छोटी-छोटी नगण्य बस्तुओंके क्यिले हमारा ज्ञान इतना सीमित है तो जो इन सका अधिष्ठान, सत्रका रचयिता और सर्वस्व है, उसे विषयमें किसी एक मतका आग्रह होनां कहाँकी बुद्ध मानी है ! परंतुं मनुष्यकी यह कैसी विडम्बना है है बह अपने मतका कितना आप्रह (खता है औ दूसरोंके मतोंको कितनी तत्परतासे झुठलानेका साह करता है। इस अभिमानने संसारमें कितने संझौकी जन्म दिया है और इसके कारण कितनी खून-खराबि होती आयी हैं। यह सत्य है कि परमार्थको खोजने लिये हमें कोई साधनपद्भति स्वीकार करनी होती है अथवा यदि हम विशेष बुद्धिमान् हुए तो किसी नवीन साधनपद्भतिका आविष्कार भी कर सकते हैं। परन्तु यह कहनेका हमें क्या अधिकार है कि जो कुछ हम कहते हैं वही ठीक है और सब भ्रममें हैं। व्यक्ति एक होता है, पर पुत्र उसे पिता कहता है, पत्नी पी कहती है, पिता पुत्र कहता है और बहन भाई कहती है। अपने-अपने सम्बन्धोंकी दृष्टिसे वे सभी ठीक कहते हैं, परंतु उस व्यक्तिकी अपनी दृष्टिमें तो ने सब सम्बन्ध कलित ही हैं। निरपेक्ष दृष्टिसे तो वह न पुत्र हैं, न पिता है, न पित है, न भाई है। इसी प्रकार विभिन्न सम्प्रदायोंने सत्यके विषयमें जो कुछ करी है वह उनकी अपनी दृष्टि और योग्यताके अनुसार सत्य है । परन्तु वे सभी मत परमार्थका केवल स्पर्श ही करते हैं; परमार्थ वास्तवमें क्या है, यह तो परमार्थ खयं भी नहीं कह सकता; क्योंकि कहना-सुनना सापेक्ष-दृष्टिसे ही होता है; निरपेक्ष-दृष्टिसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता । कोई भी वस्तु किसीकी अपेक्षासे बड़ी होती है और किसीकी अपेक्षासे छोटी । वह खयं न बड़ी कही जा सकती है न छोटी । यही न्याय सुन्दर-असुन्दर, प्रिय-अप्रिय, ऊपर-नीचे, इधर-उधर इत्यादि सभी दृन्द्वात्मक उल्लेखोंपर लागू होता है ।

इस प्रकार विचार करनेसे निश्चय होता है कि परमार्थके विषयमें विभिन्न सम्प्रदायोंमें जो कुछ कहा गया है वह उनकी अपनी-अपनी दृष्टि और अनुभूतिके अनुसार तो ठीक है, किंतु किसीको भी दूसरे सम्प्रदायकी दृष्टियोंका अपलाप करनेका अधिकार नहीं है। सत्यका साक्षास्कार करनेके लिये किसी साधन-पद्धतिकी आवश्यकता होती है और सत्र साधकोंकी योग्यता समान अथत्रा एक ही नहीं होती। अतः विभिन्न योग्यताके साधकोंके लिये आचार्योंने जो साधन-पद्भतियाँ आविष्कृत की हैं वे ही विभिन्न सम्प्रदाय हैं। अतः जिसका कोई सम्प्रदाय नहीं है वह साधक नहीं और जिसे किसी सम्प्रदाय-विशेषका आग्रह है वह सिद्ध नहीं । नदीको पार करनेके छिये नौकाकी आवश्यकता होती है, परंतु नौकाको छोड़े बिना कोई दूसरे तटपर नहीं पहुँच सकता । छतपर चढ़नेके लिये सीढ़ियोंकी आवश्यकता है, परंतु उन्हें छोड़े बिना कोई छतपर नहीं पहुँच सकता । इसी प्रकार संसारको पार करनेके छिये किसी सम्प्रदाय या साधन-पद्गतिका अनुसरण अनिवाय है, किंतु उसीका आग्रह रहे तो कोई भी संसारातीत प्रमार्थका साक्षास्कार नहीं कर सकता । अतः सम्प्रदाय तो साधनरूप हैं, परंतु साम्प्रदायिकता अभिशाप है।

इसके कारण पारस्परिक संघर्ष तो होता ही है, लक्ष्यकी उपलब्धि भी नहीं होती।

प्रमार्थ या सत्यका विचार प्रधानतया तीन दृष्टियोंसे होता है। निजरूपसे, पररूपसे और अन्यरूपसे अथवा यों किहिये कि 'मैं' रूपसे, 'यह' रूपसे और 'त्रह' रूपसे। ये ही क्रमशः अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव दृष्टियाँ कही जाती हैं। जिज्ञासु उसका अध्यातः इप्टिसे विचार करते हैं, भौतिकवादी अधिभूत-दृष्टिसे और भक्तलोग अधिदैव-दृष्टिसे। जिन्हें दश्यसे वैराग्य हैं और द्रष्टाकी खोज है वे अय्यात्म-वादी हैं। उनकी दृष्टिमें दृश्य खप्नके समान केवल दृष्टाका विलासमात्र है। इनका खभावसे ही दश्यमें वैराग्य होता है। जिनका दश्यमें राग है और प्रयोगशालाका निर्णय ही जिनका परम प्रमाण है, वे भौतिकवादी हैं। उनकी दृष्टिमें किसी जगत्कर्ताकी सिद्धि नहीं होती और चेतन आत्मा भी प्रकृतिका ही परिणाम है। और, जिनका दृश्यमें न विशेष राग है और न वैराग्य है, किंतु जो किसी अलौकिक प्रेमास्पद्को आत्मसमर्पण करनेके लिये उत्सुक हैं, ने अधिदैवनादी हैं। ये ही क्रमशः ज्ञानी, कर्मी और भक्त कहे जाते हैं। परंतु कोई ऐसा भी तो है जिसमें ये तीनों दृष्टियाँ स्कूर्त हैं। वह इनमेंसे किसी दृष्टिका विषय नहीं होता, अथवा यों कहिये कि ये तीनों दृष्टियाँ अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार उसीकी खोज करती हैं। ये भले ही उसे विभिन्न रूपमें देखती हों, परंतु देखती तो उसीको हैं; अत: अपनी-अपनी दृष्टिसे ये सभी ठीक हैं। परंतु उसकी दृष्टिसे तो ये केवल उसके एक-एक पक्षका ही अनुभव करती हैं। ज्ञानी बुद्धिदृष्टिसे देखते हैं, कर्मी इन्द्रियदृष्टिसे देखते हैं और भक्त भावदृष्टिसे देखते हैं। मनुष्यको ये तीनों दृष्टियाँ प्राप्त हैं; तथापि एक-एक दृष्टिकी प्रधानता होनेके कारण उनकी अनुभूतियाँ एकाङ्गी या अपूर्ण हैं। पूर्ण दृष्टि तो तीनोंसे विलक्षण ही है।

अध्यात्मवादी सबका अत्यन्ताभाव* देखता है अथवा सबको अपनी दृष्टिका ही त्रिलास समझता है। जन्न सब उसीकी दृष्टिका विलास है तो किसीसे विरोध क्यों ? भौतिकवादी सबको प्रकृतिका विकार मानता है । जड-चेतन सब प्रकृतिमात्र हैं; अतः उसकी दृष्टिमें भी सम्पूर्ण मेदकी सत्ता एकमात्र प्रकृति ही है । जब प्रकृतिसे भिन्न कुछ है ही नहीं तो अपना-पराया या हानिलाभका भी कोई अर्थ नहीं है; क्योंकि व्यक्तिगत तो उसका कुछ है नहीं । अधिदैववादीकी दृष्टिमें सब भगवान्की लीला है । फिर वह क्यों किसीसे राग करें और क्यों किसीसे द्वेष। इस प्रकार इन तीनों निष्ठाओंके साधकोंसे किसीको किसीसे राग या द्वेष करनेका कोई कारण नहीं है। किंतु छोग तो द्वैत-अद्वैत, साकार-निराकार एवं साकारके भी विभिन्न रूपोंमें इतने उलझ जाते हैं कि इन भावोंको लेकर ही उनमें घोर संघर्प एवं विवाद छिड़ जाता है । ये सभी सिन्नवेश अपनी संकुचित दृष्टिके परिणाम हैं, तत्त्वमें इनमेंसे किसीका भी स्पर्श नहीं है। किन्हीं अनुभवी संतने कहा है—

अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे। समं तत्त्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥

इस बातका जरा व्यावहारिक दृष्टिसे विचार कीजिये।
आप घटके छिये एक या दो तो कह सकते हैं, परंतु क्या
मिट्टीके छिये भी एक मिट्टी या दो मिट्टी—ऐसा कहा जा
सकता है ! आभूपण एक, दो या दस हो सकते हैं,
किंतु क्या सुवर्ण भी एक, दो या दस हो सकता है !
गणना परिच्छिक बस्तुकी होती है, तस्त्र या अपरिच्छिक
बस्तुकी नहीं। उसे न एक कह सकते हैं न अनेक।
'एक' शब्द भी बस्तुको सीमित कर देता है। ऐसी ही
स्थित साकार-निराकारकी भी है। भाप निराकार

होती है तथा जल और बर्फ साकार होते हैं। उनके नाम और रूपमें अन्तर होनेपर भी वे तक एक ही हैं । किंतु जिस तत्त्वके कारण उनकी एक कही जाती है, जिसकी ये तीनों अवस्थाएँ है क्या है ! क्या उसे कभी किसीने देखा है ! हं उसका भी कोई नाम या रूप रखेंगे तो वह भी प अवस्था हो जायगी, वह तत्त्व नहीं रहेगा। ये 🏗 नाम-रूपात्मक हैं और परिवर्तनशील हैं; और वह आ अरूप और अखण्ड है । यद्यपि उसका किसी ग्रंब निर्देश नहीं होता और न किसी इन्द्रियसे प्रहण होता है, तथापि वह है अवश्य । और, यतः 🥫 इन तीन रूपोंमें उपलब्ध होता है, अतः जो इनमें ही किसी एकको तत्त्व मानकर अन्यको उसके कि वताता है, वह भी व्यावहारिक दृष्टिसे ठीक ही का हैं। इसीसे कुछ लोग परमतत्त्वको निर्गुण-नित्र तथा अन्यको उसमें आरोपित मानते हैं। कोई सफ़ साकार और अन्यको उसकी प्रभा या अंश-मानते। तथा कोई सगुण निराकार एवं अन्यको उसकी निष्क अवस्था (सुषुप्ति) एवं अवतार मानते हैं । किंग किसी भी रूपमें मान वे मानते तो उसीको हैं। बह सर्वस्त्प है और सबसे विलक्षण है।

इसी बातको कुछ अन्य प्रकारसे स्पष्ट करनेकी बेहा की जाती है। आप सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करें ते मालूम होगा कि हम शब्द, स्पर्श, रूप, रस औ गन्ध—इन पाँचोंके सिवा और किसी वस्तुका अतुम नहीं करते। सुख-दु:ग्व तो हमारी अनुभूतियाँ हैं। उन्हें किपय नहीं कह सकते; और, ये पाँचों गुण ही हैं। इनमें द्रव्य एक भी नहीं है। गुण खतः सिद्ध तहीं होता, उसकी अपनी खतन्त्र सत्ता नहीं होती; वह सर्वता

अनादिरनन्तोऽभावः अत्यन्ताभावः ।

^{† &#}x27;कुछ लोग अहैत भानते हैं और कोई दूसरे देत स्वीकार करते हैं। किंतु वे उस सम तत्त्वकों नहीं बार्लिं बो देत और अहैत दोनोंसे रहित है। (वस्तुतः वास्तविक तत्त्व वही है।)

किसी दन्यके आश्रित होता है। न्यवहारमें मिध्या उसीको कहते हैं जिसकी प्रतीति तो हो परंतु सत्ता न हो । इस नियमके अनुसार ये पाँचों गुण मिथ्या सिद्ध होते हैं। परंतु इनकी प्रतीति होती है, इसिछिये इनका कोई आश्रय या अधिष्ठान अवस्य होना चाहिये। फिर भी इन गुणोंसे रिहत इनका आश्रय क्या कभी किसीने देखा है ! इस प्रकार प्रतीत होनेवाले गुण तो मिथ्या सिद्ध होते हैं और प्रतीत न होनेबाला इनका अधिष्ठान, जो सत्तामात्र है, सत्य सिद्ध होता है । इस दृष्टिसे तत्त्व निर्गुण-निराकार सिद्ध हुआ और उसमें आरोपित गुण, जो प्रपञ्चरूप हैं, मिथ्या सिद्ध हुए। किंतु जो प्रतीतको सत्य और तत्त्वके अधीन मानते हैं, उनकी दृष्टिमें तत्त्व सगुण-निराकार सिद्ध होता है और जो गुणोंको गुणोंसे अभिन्न मानते हैं उनके लिये तत्त्व सगुण-साकार सिद्ध होता है । उनकी दृष्टिमें गुण प्रकृतिके विकार नहीं चिनमय हैं। वह चिनमय सगुण-साकार तत्त्व ही भगवान् शब्दसे कहा जाता है और वही विश्वकल्याण अथवा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये स्वेच्छासे अवतार लेता है। इस प्रकार अवतारवाद भी युक्तियुक्त ही है। निराकार तो जीव भी है, परंतु अपने कर्मफल-भोगके लिये वह तरह-तरहके शरीर धारण कर लेता है। फिर सर्वसमर्थ ईश्वर विश्वकल्याणके लिये स्वेच्छासे शरीर धारण क्यों नहीं कर सकता ! जीवके शरीर कर्म-पालभोगके लिये होते हैं तथा वे पद्मभूतोंके विकार हैं, इसिलिये वे भोग समाप्त होनेपर नष्ट हो जाते हैं; किंतु ईश्वरके रारीर स्वेच्छासे धारण किये जाते हैं और चिन्मय होते हैं, इसिलिये वे नष्ट नहीं होते, उनका केवल आविर्भाव-तिरोमाव होता है।

इस प्रकार इम देखते हैं कि विभिन्न दृष्टियोंसे सभी सिंद्धान्त साधनमें उपयोगी हैं । सभीके द्वारा परमतस्वका स्पर्श प्राप्त होता है । परंतु ऐसा कोई भी

सिद्धान्त नहीं है जिसमें परमतत्त्व बँधा हुआ हो। परमतत्त्व किसीकी पकड़में नहीं आता । हाँ, वे उससे बाहर नहीं हैं । इसीसे भगवान् कहते हैं— 'न त्वहं तेषु ते मिय' (गी० ७। १२)। इसे समझनेके लिये यहाँ एक दृष्टान्त दिया जाता है। हमारे सामने सुवर्णका एक आभूत्रण है । जिनकी दृष्टिमें सुवर्ण ही आभूपणके रूपमें परिणत हुआ है, वे शुद्धाद्वैती हैं। जो उसे आकारविशिष्ट सुवर्णका परिणाम मानते हैं, वे विशिष्टाद्वैती हैं। जो उसे केवल आकारका परिणाम मानते हैं, वे प्रकृतिपरिणामवादी सांख्यवादी हैं। जो मुवर्ग और आभूषणका मेद मानते हैं, वे द्वैतवादी हैं। जो तत्त्वतः (मुक्तावस्थामें) सुवर्ग और आभूत्रणका अमेद और व्यवहार-(बद्घावस्था-)में दोनोंका मेद मानते हैं, वे द्वेताद्वेतवादी हैं। किंनु जिनकी दृष्टि तस्वप्रधान है, अतः जो सुवर्णको ही सत्य मानते हैं और आभूषणको उसमें कल्पित खीकार करते हैं, वे विवर्त्तवादी अद्वैती हैं। उनकी दृष्टिमें सुवर्गरूप तत्त्व परमार्थ है और आभूषणरूप प्रतीति व्यवहार । उनकी दृष्टि तत्त्वप्रधान है। किंतु इन सबसे विलक्षण तत्त्वकी अपनी दृष्टि है । उसमें प्रतीतिका अत्यन्ताभाव है । सुवर्ण किसी भी रूपमें प्रतीत हो वह सुवर्ग ही है । उसकी दृष्टिमें उससे भिन्न आभूषणादि कुछ भी नहीं है । इसी प्रकार मृत्तिकाकारकी दृष्टिमें घट, जलकी दृष्टिमें तरंग और लोहकी दृष्टिमें कुरालादिका अत्यन्तामाय है। अजातिबाद है । ये सब विभिन्न दृष्टियाँ हैं । अपने-अपने दृष्टिकोणसे सभी ठीक हैं और सभी परमसत्यका ही स्पर्श करती हैं। परंतु इनमें किसीके द्वारा परमार्थका सर्वौद्यामें यथायत् निरूपण नहीं होता । यह तो अनिर्वचनीय ही है। सारे सिद्धान्त उसीका निरूपण करने चलते हैं, परंतु उस अशब्द पदमें शब्दकी पहुँच ही नहीं है तो वे किस प्रकार निरूपण करें ! यद्यापि किंवदन्ती ऐसी है कि 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः' (गुरुका मौन रह जाना ही (उसकी) व्याख्या हो गयी और शिष्य संशयसे रहित हो गये), किंतु इसमें भी गुरुदेवकी महिमा और शिष्योंके विशेष अधिकारका ही प्रदर्शन है । जिनमें उत्कट जिज्ञासा नहीं है, वे शिष्य श्रीगुरुदेवके मौनसे क्या प्रहण करेंगे ! श्रुतिने भी सबका निषेष करके ही तत्त्वका निरूपण किया है—

न निरोधो न चोत्पत्तिन बद्धो न च साधकः। न मुसुश्चर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

इस प्रकार जिसमें किसी भी दृष्टिका प्रवेश नहीं है और जिसको सभी दृष्टियाँ स्पर्श करती हैं वही सत्य है, वही परमार्थ है। उसके निर्विशेष होनेपर भी उसकी उपलब्धि सविशेषक्रपमें ही होती है। भले ही

उसे निर्गुण-निराकारका निर्धम कहें, पर इन शब्दोंसे उसकी विशेषता ही सूचित होती है। सुवर्णका अपना कोई आकार नहीं कहा जा सकता, फिर भी क्या किना आकारका सुवर्ण कभी किसीने देखा है ! आकाश नीरूप है, उसमें न उजाला है, न अँधेरा, तथापि ऐसा आकाश किसीने देखा है, जिसमें न प्रकाश हो और न अन्त्रकार ! हाँ, इस रूपमें भी हम आकाशको ही देखते हैं । बस्तुका जो निजरूप है वही परमात्मा है और जैसी वह दिखायी देती है वह व्यवहार है। ये दोनों दृष्टियाँ ही हैं, वस्तु तो एक ही है । अतः जो परमार्थदर्शी है उसका किसीसे विरोध नहीं होता । उसमें सभी दृष्टियोंका समन्वय हो जाता है। (निष्कर्ष यह कि पर्मतत्त्व-भगवत्तत्त्व-एक है और उसके दर्शन करनेवाली शास्त्र-दृष्टियाँ अनेक हैं। हमें किसी भी दृष्टिसे उसी एक परम तत्त्वको समझकर आत्मकल्याण साधना है।)

भगवत्तत्त्वकी चर्चा

(लेखक--आचार्य पं॰ श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

नानारूपोंसे प्रवहमान ब्रह्माण्ड जिसकी अनुकम्पासे अभिव्यक्ति पाता है, अपनी स्थिति बनाये रहता है और अन्तमें जिस तत्त्वमें बह विलीन होकर अन्तर्हित होता है वही सबसे आदिम तथा सबसे महत्तम तत्त्व होनेके कारण ब्रह्म तथा ईश्वर आदि अनेक अभिधानोंके द्वारा अभिहित किया जाता है। सांख्यदर्शनके अनुसार प्रकृति तथा पुरुष्ठ दो मुख्यत्त्व माने जाते हैं, परंतु इन दोनोंका भी अन्तर्भाव उसी महनीय तत्त्वमें हो जाता है। प्रकृति व्यक्ताव्यक्त-खरूपिणी होती है। फल्दाः वह सर्वमयी है। व्यक्तरूप अव्यक्तरूपमें लीन हो जाता है। इससे पृथक जो एक, शुद्ध, अश्वर, नित्य तथा सर्वव्यापक पुरुष्ठ है, वह भी सर्वभूत परमात्माका ही अंश है। इस प्रकार प्रकृति एवं पुरुषके आश्रयमृत परमतत्त्वके नाम, जाति

इत्यादिकी कल्पना नहीं होती। वह नामभिन्न तथा जात्यादिभिन्न एक व्यापक सर्वेश्वररूप सबका परम आश्रय परमहा परमात्मा है और वही ईश्वरके नामसे भी अभिहित किया जाता है। वही इस अखिल विश्वके रूपमें अवस्थित रहता है। सर्वत्र व्यापक होनेके कारण वही परमात्मा वेद तथा वेदान्तमें 'विष्णु' की संज्ञासे सर्वत्र प्रसिद्धि पाता है। योगबलसे योगी लोग उसे प्राप्त कर लेनेपर फिर इस संसारमें नहीं लौटते। फलतः उस परमतत्त्वकी प्राप्ति ही मानव-जीवनके कर्म तथा ज्ञानद्वारा जायमान महती उपलब्धि है। भगवान्की प्राप्तिके खरूपका वर्णनपरक यह स्लोक महत्त्वपूर्ण है—

PER ROPH PROPERTY TO THE SPECIAL

निरस्तातिशयाह्नाद्युखभावैकलक्षणा । भेषजं भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मना ॥

(विष्णुपुराण ६ । ५ । ५९)

'बह भगवरप्राप्ति संसारमें होनेवाले जन्म-मरण आदि दुःखोंको दूर करनेवाली अचूक ओषि है। उस ओपि के सेवनसे जीवको निश्चयेन रोगमुक्ति होती है और सदा-सर्वदाके लिये वह मुक्ति हो जाती है। वह अवस्था नितान्त आह्वाद एवं सुखरूपा है—यह दशा इतनी आह्वादमयी है कि उससे अधिक आह्वादकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। 'इस मुक्तिके आह्वादमयत्वकी कल्पनाके लिये न्यायवैशेषिकोंकी मुक्तिसे उसकी तुलना की जिये।

न्यायवैशेषिकोंकी मुक्ति दुःखहानक्रपा है—अर्थात् उसमें दुःखोंका सर्वथा राहित्य (अभाव) रहता है। वह सुखके लेशमात्रसे भी विवर्जित रहती है। दोनोंमें महान् अन्तर होता है। 'नैषधचरित'के कर्ता वेदान्ती श्रीहर्षने इसीलिये न्यायदर्शनके रचयिता 'गौतम'को 'अतिशयेन गौः इति गोतमः' यह अर्थ स्वीकारकर 'पक्का बैल' वतलाया है—

मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्। गोतमं तमवेश्येव यथा वितथ तथैव सः॥ (नैषधचरित १७। ७५)

'मुक्तावस्थामें आनन्दधाम गोलोक तथा नित्यवृन्दावन-में सरस विहार करनेकी व्यवस्था बतलानेवाले वैष्णवजन इस नीरस भक्तिकी कल्पनासे घबरा उठते हैं और वे पुकार उठते हैं कि 'वृन्दावनके सरस कुन्नोंमें शृगाल बनकर जीवन विताना हमें स्वीकार है, परंतु हम वैशेषिकोंके द्वारा प्रतिपादित मुक्तिको पानेके लिये कथमपि इच्छूक नहीं हैंं **——

वरं वृन्दावने रम्ये श्वगालत्वं वृणोम्यहम्। वैशेषिकोक्तमोक्षात्तु सुखलेशविवर्जितात्॥

(सर्वसिद्धान्तसंग्रह, पृ॰ २८) भगवान्के धामकी प्राप्ति होनेपर ही उक्त निरितशय आनन्दरूपा मुक्तिकी उपलब्धि किस प्रकार होती है—— इसी तथ्यका संक्षित विवेचन हम यहाँ कर रहे हैं ।

ज्ञान दो प्रकारका माना गया है--१-शास्त्रजन्य तथा २-विवेकजन्य। शास्त्रोंके अध्ययन एवं मननसे जो ज्ञान होता है यह प्रथम प्रकारके अन्तर्गत आता है। वह परोक्ष ज्ञान ही होता है। शास्त्रजन्य ज्ञानके द्वारा जिसकी अवगति होती है वह होता है शब्दब्रहा। साधकके इदयमें शास्त्रचिन्तन आदिके द्वारा जब 'विवेक'-ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह सत्य-असत्यका, ऋत-अनृतका, सत्य-मिथ्याका वास्तविक भेर जान लेता है और उससे जो अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है उसके द्वारा जिसकी उपलब्धि होती है वह होता है परब्रह्म । इन द्विविध ज्ञानोंके तारतम्यको जाननेके लिये पुराण एककी उपमा 'दीपक'से तो दूसरेकी तुलना 'सूर्यं से करता है। शास्त्रजन्य ज्ञान घोर अन्धकाररूपी अज्ञानको दूर करनेके निर्मित्त दीपक्तके समान है तो विवेकजन्य ज्ञान सूर्यके समान देदीप्यमान होता है । इस दृष्टान्तसे हम दोनों ज्ञानोंकी आपेश्विक दीप्तिमत्ताका तथ्य समझ सकते हैं। लिये ही 'भगवान' विवेकज्ञानसे प्राप्य परब्रह्मके संज्ञा भी प्रयुक्त की जाती है।

अब 'भगवान्' शब्दके अर्थपर विचार करें।
पुराणकी दृष्टिमें भ, ग, ब, ये तीन अक्षर—मिलकर इस
शब्दके खरूपकी निष्पत्ति करते हैं और ये तीनों ही
भिन्न-भिन्न धातुओंके आब अक्षर होनेसे तत्तत् धातुओंके
मुख्य अर्थका प्रातिनिध्य करते हैं। 'भगवत्' शब्दका
आब अक्षर भकार धारण-पोत्रणार्थक 'भृ' धातुसे सम्बद्ध
होनेके कारण धारण तथा पोत्रण अर्थका बोतक माना
गया है। द्वितीय अक्षर 'ग' गत्यर्थक 'गम्' धातुसे
निष्यन्त होनेसे तीन अर्थोंका बोतक है—१—
कर्मफलकी प्राप्ति करनेवाला (नेता), २—ल्य करनेवाला
(गमियता) तथा ३—स्रष्टा (उत्पन्न करनेवाला)।
प्रथम दोनों अक्षरजन्य 'भग' शब्द विष्णुपुराण-(६।

किंतु आचार्य सायणने तैतितीयारण्यकभाष्य-(पृ० ४७२आनन्दाश्रम०सं०)में इस भावुकताका बङ्ग उपहास किया है।

५ । ७४) की दृष्टिमें एक विशिष्ट तात्पर्यका बोधक माना गया है; देखिये—

पेश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव पण्णां भग इतीरणा॥

समप्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यरा, समग्र श्री, समग्र ज्ञान तथा समग्र वैराग्य—इन छः पदार्थोका समूहावलम्बनात्मक पद 'भग' निर्दिष्ट किया जाता है। अन्तिम अक्षर 'व' 'वस्' निवासे (निवासार्थक वस् धातु-)से सम्बद्ध होनेसे ऐसे अव्यय परमात्माका सूचक है, जिस अखिल भूताधारमें समस्त प्राणी निवास करते हैं और जो खयं अशेषं प्राणियोंमें वास करता है।

वसन्ति तत्र भृतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि । स च भूतेष्वदोषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥ (वही, इल्लोक ७५)

ऊपर प्रतिपादित समस्त तात्पर्योको एकत्र समेट-कर हम कह सकते हैं कि भगवान् सबका स्नष्टा, पालियता, कर्मफलका प्रापक, अन्तमें अपनेमें लीन करनेवाला, सब प्राणियोंमें निवासकर्ता तथा सब प्राणियोंके निवासका आधारमूत अञ्चय परमतत्त्व हैं। और, उन्हींकी प्राप्ति मानवजीवनका चरम लक्ष्य है—परमपुरुषार्थ है।

ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, बीर्य तथा तेज आदि सद्गुण 'भगवत' शब्दके द्वारा वाच्य होते हैं। ऊपर निर्दिष्ट वकारार्थसे सम्पन्न होनेके हेतु उसीका 'बासुदेव' नाम है——

सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि । भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥ (वही, क्लोक ८०)

सब प्राणियोंका आवार-स्थल तथा सब प्राणियोंमें निवासकर्ता होनेके कारण वही भगवान् 'वासुदेव' राब्द्से भी लक्षित किये जाते हैं। इसीलिये वैष्णव-द्वादशाक्षर मन्त्र-('ॐ नमो भगवते वासुदेवाय') में दोनों राब्दोंका एकत्र साहचर्य उपलब्ध होता है। विष्णुपुराणके

आधारपर किये गये विश्लेषणसे यही तथ्य सामने आत्र है कि ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर एवं भगवान्में किसी प्रकारका अन्तर या तारतम्य नहीं है; परंतु श्रीमद्भागकते हारा निर्दिष्ट श्लोक १।२।११ की व्याख्यामें भागवतके महनीय टीकाकार दोनोंमें अन्तर बतलते हैं। उनकी व्याख्याकी ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। परमतत्त्वका प्रतिपादक वह गम्भीरार्थक श्लोक झ प्रकार है—

वद्नित तत् तत्त्वविद्स्तत्त्वं यज्ञ्ञानमद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति राज्यते॥

इस पद्यकी व्याख्याके अवसरपर रूपगोस्वामी अपने 'छद्युभागवतामृत'में स्कन्दपुराणका एक महत्त्वपूर्ण पद्य उद्भृत करते हैं—

भगवान् परमात्मेति शोच्यतेऽग्राङ्गयोगिभिः। ब्रह्मेत्युपनिषन्निष्ठैर्ज्ञानं च ज्ञानयोगिभिः॥

'भगवान् अष्टाङ्मयोगके आराधक योगियोंद्वारा परमात्मा, उपनिषदोंमें निष्ठावान् व्यक्तियोंद्वारा 'ब्रह्म' तथा ज्ञानयोगियोंके द्वारा ज्ञान कहे जाते हैं। इस प्रवक्ती आधार मानकर श्रीजीवगोखामीने अपने 'भागवतसं र्भों^{में} इन तीनोंसे, विशेषतः ब्रह्मसे भगवान्की विशिष्टताका बड़ा ही गम्भीर विवेचन किया है । उनके विश्लेपणका तात्पर्य है---'मूलतत्त्व एक ही अखण्डानन्द-खरूप तत्त है। परमहंस लोग अपने अनेक साधनोंके द्वारा उसमे तादात्म्यापन तो हो जाते हैं, परंतु उसकी खरूप शक्तिकी विचित्रताको प्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते। वह वस्तु सामान्यरूपसे जैसी लक्षित होती है, वैसी ही स्फ़रित होती है। उसमें शक्ति तथा शक्तिमान्क परस्पर विभेदका प्रहण न होकर वह अभेदरूपसे ही गृहीत होती है; वही है ब्रह्म । वही तत्त्व खरूपशक्ति द्वारा एक अनिर्वचनीय 'विशेष' भावको ग्रहण करती है, तत्र वह अन्य शक्तियोंका — जीवशक्ति तथा मार्या शक्तिका आश्रय होता है। भागवत परमहंस लोगोंक

द्वारा बह ब्रह्मानन्दको तिरस्कृत करनेवाले 'अनुभवानन्द'के द्वारा अनुभूत होता है। वह अन्तरिन्द्रिय एवं बहिरिन्द्रियमें स्फुरित होता है, तब बह शक्ति तथा शक्तिमान्के मेदरूपसे गृहीत किया जाता है। बही 'भगवान्' कहलाता है।

फलतः 'अतिविक्त शक्ति-शक्तिमद्भेद्'में (अपृथाभावमें) प्रतिपाद्यमान तस्त्र 'ब्रह्म' होता है तथा 'विविक्त-शक्ति शक्तिगद्भेद'में (पृथाभावमें) प्रतिपाद्यमान तस्त्र 'भगवान्' होता है । इसिल्ये दोनोंमें अन्तर है।

एक अन्तर और भी है। बहुगुणाश्रय पदार्थका प्रहण विभिन्न इन्द्रियोंके द्वारा नानारूपोंसे होता है। दुग्धके माधुर्यका ज्ञान हमें जिह्वा कराती है, परंतु उसकी क्षेतताका ज्ञान वह नहीं करा सकती। वह तो कराती है हमारी नेत्रेन्द्रिय ही। पदार्थका पूरा परिचय चित्तके द्वारा ही तो होता है। इस प्रकार अन्य उपासना बिहिरिन्द्रिय-स्थानीया है, भक्ति चित्तस्थानीया है; क्योंकि वह भगवान्का पूर्ण परिचय कराती है। निर्विशेष ब्रह्मका प्रकाश ज्ञानयोगके द्वारा गृहीत होता है, परंतु खरूपशक्ति-विशिष्ट भगवान्का प्रकाश मिक्तके द्वारा ही गृहीत किया जा सकता है। फळतः खरूपशक्तिकी

विशिष्टताके कारण ही ब्रह्मकी अपेक्षा भगवान्का उत्कर्ष गौडीय वैष्णवसम्प्रदायमें स्त्रीकृत किया गया है । भगवान्की प्राप्ति निर्मेल अहेतुकी भक्तिके द्वारा ही साध्य होती है । शास्त्रका वचन है——

कल्याणनगरं मोक्षदेवस्य प्रविविक्षताम् । अक्तपाटार्गलाद्धाःस्थं गोपुरं भगवद्गतिः॥

'मोक्ष महाराजके कल्याणनगरमें प्रवेश चाहनेवाले व्यक्तियोंके लिये भगवान्का प्रेम ही पुरद्वार है जिसमें न कोई किवाइ है, न अगेला और न पहरेदार।' कहीं रुकावट नहीं—'येनेष्टं तेन गम्यताम्।'

किसी गोपीके हृदयका भावुकतापूर्ण यह उद्गार कितना मीठा और सुहावना है कि—

वर तजों बन तजों नागर नगर तजों, वंशीवट तट तजों काहू पे न लजिहों। देह तजों गेह तजों नेह कहो कैसे तजों, आज राज काज सब ऐसे साज सजिहीं॥

बावरी भयो है लोक बावरी कहत मों की, बावरी कहें ते मैं काहू ना बरजिहों। कहैया औ सुनैया तजीं बाप और मैया तजीं,

दैया तजीं भैया पे कन्हेया नाहिं तजिहीं॥

माधुर्य रसोपासनाकी यही दिन्य भावविभूति हैं।



सो भगवत असरन-सरन

सय कालन को काल, लोकपालन को पालै।
आपुन सदा खतंत्र नियन्ता बुद्धि विसाले॥
उपजावै सव बिस्व रमें, पुनि तामें नाहीं।
देखत भूलीं करें, परें भूलन में नाहीं॥
वट-पेइवर्य समर्थ हरि, सो भगवत असरन-सरन।
तन-मन-जनकी बेदना, हरहु मोद-मंगल-करन॥
—भगवत



१-द्रप्टन्य-जीवगोस्वामी--भागवतसंदर्भ पृ॰ ४९-५० (षट्संदर्भः नामक प्रन्थके अन्तर्गत)।

• भ्रमात्मकज्ञान अर्थात् अविद्या या माया ।

तत्त्व क्या है ?

(लेखक--श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

तस्व, तथ्य तथा तद् शब्दमें वैयाकरणविद्वान् ही अन्तर निकाल सकते हैं। 'साहित्यद्र्यण', 'भाषापरिच्छेद', 'मानवगृह्यसूत्र', 'सांख्यकारिका' तथा 'शाकुन्तल' आदिमें इस शब्दका प्रयोग मिलता है। मेरी दृष्टिमें 'तस्व'का अर्थ है 'उसका भाव'। यदि 'तस्व'के साथ 'सारतस्व' जोड़ दें तो अर्थमें कोई अन्तर नहीं होगा। जो तस्त्र है, वही सारतस्त्र है। तस्त्रका विभाजन नहीं हो सकता। कुछ लोग 'तस्त्र'का अर्थ 'निचोड़'के रूपमें करते हैं। किंतु आम पलका तस्त्र निचोड़ा जाय या न निचोड़ा जाय, यह एक ही बात है। उसे निचोड़नेवाला कोई नयी वस्तु नहीं प्राप्त कर रहा है।

तव भगवत्तत्त्व क्या होगा ! श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार वह उत्तम पुरुष सबसे भिन्न है -- 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः' (१५।१७)। तैत्तिरीय उपनिषद्के अनुसार उसने अपनेको खयं उत्पन्न किया । ब्रह्मसूत्रके ५५४ सूत्रोंमें परमपुरुषके विषयमें बहुत कुछ कहा गया है, जिसे साधारण व्यक्तिके छिये समझना कठिन है। उसके ३।२।२७-२८ सूत्रोंसे स्पष्ट है कि ब्रह्मका प्रकाश तथा उसका स्रोत दोनों एक ही हैं। तब ऐसे परम पुरुष भगवान्का तत्त्व उससे भिन्न नहीं हो सकता। तत्त्व तभी ज्ञात होगा, जब तत्त्वका स्रोत भी बुद्धिमें आ जाय । आद्य शंकराचार्यने इस सूक्म रहस्यको बहुत कुछ समझाया है। पर ऐसे रहस्यको समझ सकनेवाले कितने हैं और वे लोग कितना नीचे उतरकर समझते हैं, इसका उदाहरण एक हिन्दू प्रकाशकदारा हिन्दूकी लिखित अंग्रेजी पुस्तकसे जो अभी हालमें नयी दिल्लीमें प्रकाशित हुई है, मिलता है। इस अज्ञानी लेखकने वपनिषद्, सांख्य, शांकरभाष्य आदिके ब्रह्मके विवेचनको

खयं त्रिना समझे उसे 'शाब्दिक त्रमन'की संज्ञा दे हैं है। गर्गसंहितामें भगत्रान् शंकरने भी कहा है कि सखक भेद जान लेनेपर यह ज्ञान हो जाता है कि 'मैं आपक हूँ—आपमें हूँ। आप मुझमें नहीं आये, मैं आपमें हूँ। समुद्रमें तरंग होती है, तरंगमें समुद्र नहीं होता। स्त्यिप भेदागमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् समुद्रों हि तरंगः कचन समुद्रों न तारंगः॥ (गर्गसं० अश्वमे० ३९। ४)

'शिवशक्तयात्मकं ब्रह्म' शिव और शक्ति यही ब्रह्म है। तब इसका तत्त्व क्या होगा। न में रूप हूँ, न कर्म हूँ, न मोटा हूँ, न पतला हूँ। में केवल उसके रूपका लक्षण हूँ—

न रूपोऽहं न कर्माणि न मनुष्यो न द्विजाद्विजः। स्थूलोऽहं न कृशो नाहं किंतु चिद्रूपलक्षणः॥ जब इतना ज्ञान हो जाय, तभी कैवल्यपदकी प्राप्ति होगी—श्रानादेव तु कैवल्यम्—(शंकराचार्य)

पाणिनिने 'श्वयुवमघोना मति दिते' सूत्रमें कुता, युवा तथा इन्द्र इन तीनोंको एक साथ ही जोइ दिया है। एक लड़की माला गूँथ रही थी। उससे किसीने प्रश्न किया—'त् कांच, मणि और सुवर्ण सब एक साथ क्यों गूँथ रही है!' उसने उत्तर दिया—'जिस प्रकार पाणिनिने कुत्ता, युवा तथा इन्द्रको एक साथ रखा, वैसे ही मैं भी कर रही हूँ— काचं मणि काश्चनमेकसूजे

प्रध्नासि वाले किमिदं विचित्रम्। अशेषवित् पाणिनिरेकसूत्रे

श्वानं युवानं मघवानमाद ॥ इसी रुलोकको जरा दूसरी दृष्टिसे देखिये तो स^ब तत्त्व बरावर हैं—एक ही सूत्रमें हैं। और वह हैं भगवान्। बहाँ क्या अन्तर हो सकता है ! तत्त्व एक है। भिन्न हो नहीं सकता। नरहरिखामीन अपने बोधसारमें लिख दिया —

वियतमहृद्ये वा खेळतु प्रमरीत्या पद्युगपरिचर्या प्रेयसीवा विधत्ताम्। विहरति विदितार्थे निर्विकल्पे समाधी ननु भजनविधी वा तुल्यमेतद् ह्रयं स्यात्॥

(28189)

पितक हृदयपर प्रेमसे अभिभूत (महाकाली) होकर खेल रही हो या (लक्ष्मी) रूपसे उनके पदकी सेवा कर रही हो, समान है। इसी प्रकार साधक निर्विकल्प समाधिमें बिहार कर रहा हो या केवल भजन कर रहा हो—सब बराबर है। तब इनमें कौन-सा तस्व रहा जो खयं एक भिन्न सार या तथ्य कहा जाय। बंगालीमें किवता है—

जीवने मरणे निखिलभुवने ये खाने ये खानि लवे। चिर जनमेर परिचिन ओहे तुमि चिनाइदे सवे॥ 'जीवन, मरण, समप्र विश्वमें, यहाँ, वहाँ, सर्वत्र सभी छोग तुम्हींको बतछाते हैं, जो चिरजन्मसे हमें परिचित है। तब उसके अछावा और तत्त्व क्या होगा ?'

पुरुष

भगतान् ही पुरुष हैं। हम सत्र तो छाया हैं। शिवः आत्मा पुरुषः। साक्षी, चैतन्य पुरुष है। पुरुषका अर्थ है—पुरीषु रोते यः स पुरुषः। प्रत्येकसत्तासु साक्षीरूपेण यः सुप्तोऽस्ति स पव पुरुष उच्यते। जो प्रत्येक सत्ताका साक्षी-जानकार होते हुए भी सो रहा है, वही पुरुष है। उस पुरुषने जो मौलिक नियम बनाये हैं, उसीसे हम सत्र चल रहे हैं। इन नियमोंके प्रति आदरका नाम है—'भय'। इसी नियमके भयसे अग्न जलती है, सूर्य तपता है, चन्द्रमा, तायु, मृत्यु सभी इसीके द्वारा चल रहे हैं—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयाचन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धोवति पञ्चमः॥ कठोपनिषद् (२।३।३)का यह कथन बहे महत्त्वका है। पुरुषके इसी भय अथवा केन्द्रीय नियमके प्रति आदिसे सब कुछ हो रहा है। यदि पुरुष कहलानेवाले हमलोग परम पुरुषके नियमोंका पालन नहीं कर रहे हैं तो हम अपनेको पुरुष केंसे कह सकते हैं। शकुनतलाने दुष्यन्तसे कहा था—'मनुष्यके हरेक कर्मको गुप्तरूपसे देखनेवाले बारह गुप्तचर हैं—सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यमराज, दिन, रात्रि, प्रातः तथा सायंकाल'—

आदित्यसन्द्रावनलानिली च चौर्भूमिरापो हृद्यं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उमे च संध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥ (महा० आदि० सम्भव० ७४। ३०)

किंतु किसीको इन गुप्तचरोंकी चिन्ता नहीं है। कोई पुलिस अधिकारी तो हैं नहीं, जो जेलमें डाल देगा। मरनेके बादकी किसे चिन्ता है ! यह गुप्तचर भगवान्के साक्षी या तत्त्व तथ्य भी कहे जा सकते हैं, किंतु जब भगवान्की सत्तामें ही विश्वास न हो तो उसका तत्त्व और साक्षी भी निर्यक वस्तु होगी।

जिस प्रकार 'पुरुष'में वे सभी गुसचर निहित हैं, जिनका ऊपर उल्लेख है, उसी प्रकार हम मनुष्योंमें भी वह सब वर्तमान है। वेदान्तस्त्रके अपने 'गोविन्द भाष्य'में वल्लेख विद्यास्त्रको 'हिए तथा भागवत-गणको 'हिएदास' कहा है। ब्रह्मको हो वे इस सृष्टिका कर्ना कहते हैं। ब्रह्म और पुरुष (मनुष्य) में मेदको वे बड़े अच्छे ढंगसे समझाते हुए कहते हैं—'यह अन्तर वैसा ही है, जैसे रण्ड (लड़ी) लेकर चलनेवाले (दण्डी) पुरुषमें।' छड़ी—रण्ड और पुरुष मिलकर वह 'दण्डिन्' कहलाता है। यह ब्रह्म ही शरीरधारी होकर जीव प्रपञ्चविशिष्ट हो जाता है। यह संसार ही प्रपञ्च है। जो असत्य नहीं, वह सत्य है। भगवद्गचित कोई वस्तु असत्य नहीं हो सकती। रामानुज, निम्बाकीचार्य—ये सभी इस

प्रपश्चकी सत्ताको तथ्यरूपमें स्त्रीकार करते हैं। अद्वेत-मतके प्रवर्तक शंकराचार्यके अनुसार प्रपञ्च अवास्तविक है, असत्य है। इन दोनों कथनोंमें कौन सही है, इस विवादमें पड़नेकी हमारी क्षमता नहीं है। पर इसमें किसीका मतभेद नहीं है कि प्रपञ्च सत्य हो या असत्य, वह है—उस परम पुरुषका ही तस्व। यदि उसका तस्व है तो उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। संसारमें ऐसा क्या हो सकता है जो उसके 'भय' की परिधिके बाहर है—भयका अर्थ हम उत्पर दे आये हैं— मौलिक नियम

रामानुजने 'तत्त्वत्रय' अर्थात् चित् (आत्मा),
अचित् (भीतिक पदार्थ) तथा ईश्वरके सिद्धान्तका
प्रतिपादन किया था। बळदेवने इसमें काळ और कर्मकी
जोड़ दिया है। यानी तत्त्वत्रय न होकर तत्त्वपञ्चक हो
गया; पर तत्त्व पाँच-सात या फिर तीन ही क्यों न हों,
हैं ये पुरुषके तत्त्व और यदि उसके तत्त्व हैं तो चिद्र्प
हैं और 'धर्मभूत ज्ञानाश्रय' भी होंगे ही।

ब्रह्म चित्-अचित्-शक्तिका 'उपादान कारण' है । यही सूक्ष्म 'निमित्त-कारण' हैं । बलदेवके अनुसार जीव मुक्त होनेपर भी हरिदास बना रहता है । ब्रह्मसे पृथक् रहेगा तो यह मेद बना रहेगा । रामानुज तथा निम्बार्क यह ते या शंकराचार्य भी ऐसा नहीं मानते । निम्बार्क यह ते हैं कि जीवकी 'भक्ति'से ब्रह्म मुक्ति प्रदान करता है । किंतु उनके अनुसार मुक्त जीव ब्रह्मके साथ साधर्म्य प्राप्त करता है, ब्रह्म नहीं हो जाता । भास्कराचार्य कहते हैं कि मुक्तिके बाद जीवका ब्रह्मसे 'खाभाविक मेद' बना रहता है, किंतु निम्बार्क और रामानुज निर्गुण ब्रह्मते हैं । किंतु 'न निर्गुण है, न सगुण' ऐसा कहकर अद्वैतमत एक गृह विचारधारा पैदा कर देता है ।

में यह सब इसलिये नहीं लिख रहा हूँ कि

पुरुष सगुण है अथवा निर्गुण है, इस तस्त्रका विवेचन कर सक्तूँ। 'अथातो ब्रह्मजिक्कासा' जब हुई तो जीव अणु होते हुए भी उसमें विभुत्व वर्तमान होनेक कारण यदि विभुत्व-शक्ति ब्रह्मसे उपलब्ध है तो वह ब्रह्मसे अभिन्न होगां ही। तब उसके पास ब्रह्मतस्त्र तो रहेगा ही, अतएव पुरुष अथवा भगवान्के तस्त्रसे रहित क्या हो सकता है ! उसके तस्त्रसे विहीन कुछ हो भी नहीं सकता है ! उसके तस्त्रसे विहीन कुछ हो भी नहीं सकता । इसीलिये हमारा शास्त्रीय महावाक्य है— 'तस्त्रमस्ति' 'वही तस्त्र तुम हो।' तो हम स्वयं भगवत्त्रके अतिरिक्त और हो भी क्या सकते हैं।

भक्ति

जव 'पुरुप'को हम मनुष्य अपनेसे पृथक् नहीं का सकते तो उसका तत्त्र तथा तथ्य दोनों हम पुरुषोंमें वर्तमान है। पर अज्ञानवश अगणित छोग ऐसे भी मिलेंगे, जो भगवान् या ईश्वर नामकी वस्तुको मानते ही नहीं। किंतु यह हो नहीं सकता कि ईश्वरको न माननेत्राला अपने मनमें एक रिक्तता, एक खालीपनका अनुभव न करता हो। जैनी या बौद्ध ईश्वरको नहीं मानते, किंतु घूम-फिरकर वे भी महाबीर, बुद्धादिको ईश्वर मानते हैं । जैन आचार्य कुन्दकुन्दने 'भाव पाहुड़' में लिखा है कि 'मेरा आत्मा एक है, वह ज्ञानदर्शन-समन्वित है। शेष सत्र वाह्य पदार्थ है। हाथी-गुम्फा-लेखमें जैन-उक्ति है—'नमो अरहन्तारं नमो सब्ब सिद्धानम्' सिद्ध ही तो भगवत् तथ्य है, तत्त्वसे भी ऊपरकी वस्तु है । ईश्वरको जीवकी संज्ञा देकर बौद्ध या जैन संतुष्ट हो जाता है, पर उससे असली प्यास बुझती नहीं। श्रीमद्भागवतने ठीक ही कह दिया कि सूखा ज्ञान उसी प्रकार निरर्थक है, जिस प्रकार अनाजके भूसेकी पछोरना । बिना प्रेमके ज्ञानका मूल्य क्या होगा। परमात्मा और आत्माका सम्बन्ध ऐसा है कि दोनों एक दूसरेके लिये तड़पा करते हैं। एकमें मिल जानेके लिये मनके भीतर सदैव उथल-पुथल मची रहती है।

भगवान्के प्रति प्रेम जव पराकाष्टाको पहुँच जाता है तो ज्ञान और कर्म घूमिल हो जाते हैं। मनुष्य केवल निर्गुण, ऐकान्तिक, अहैतुकी, आत्यन्तिकी भक्तिकी परिधिमें आ जाता है । श्रीमद्भागवत इसीको भगवद्भाव, ब्रह्मपद, भागवत भक्ततम, सत्तम, परमभक्त अथवा मानवोत्तम कहता है । श्रीऋष्णके प्रति गोपियोंका प्रेम अथवा उद्भवका श्रीकृष्णके प्रति प्रेम इसी श्रेणीका था। प्रेमकी यह परिधि ही या शुद्ध प्रेम भी भगवत्तत्व है। ऋग्वेदने जिस 'पुरुष'को हमारे सम्मुख उपस्थित किया है, वही पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं । ब्रह्मका तथ्य उनमें पूर्णतया विद्यमान है। वे उसके तत्त्व हैं, अतएव ब्रह्म तथ्य है। अद्दैतमतके समर्थक अप्पय दीक्षितके 'वेदान्तकल्पतरू-परिमल' आदि प्रन्थ बहुत उच्चकोटिकी रचनाएँ हैं। १६ वीं सदीके इस पण्डितने शिवको ही ब्रह्मका रूप माना था । शिव ही ब्रह्मके तत्त्व हैं । शिव या श्रीकृष्णमें कोई अन्तर नहीं है। उसी समयके मधुसूदन सरखतीका 'अद्वैतसिद्धि' प्रन्थ भी ब्रह्मके सांसारिक तत्त्वको खीकारकर हमें इसी तथ्यकी ओर ले जाता है कि 'पुरुष'के चिद्रप तत्त्वके परे और कहीं कुछ नहीं है।

मृत्य

अस्तु ! यहाँ एक ही तत्त्व तथा तथ्यकी ओर ध्यान देना—दिलाना आवश्यक दीखता है । सब कुछ असीकार किया जा सकता है, पर मृत्युकी सत्ता सर्वोपिर सिद्ध है । जब ऐसी स्थिति है तो फिर सावधान होकर ही जीवन चलाना होगा । केवल मनको तर्क करनेके लिये छोड़ देनेसे काम न चलेगा—

मन लोभी, चित लालची, मन चेला, चित चोर।

मनके मते न चालिये, पलक पलक कछु और॥

इसीलिये सन्त एकनाथने कहा है—

जेवि हिरेनि हीरा चिरिजे, तेवि मनेचि मन धारिजे॥

जिस तरह हीरासे हीरा चिरता है, उसी तरह मनसे ही मन वशमें होता है। संतवाणीसंप्रह (भाग १)में छिखा है—

भ० त० अं० ५—

आदि नाम पारस अहै, मन है मैलो लोह ।
परसत ही कंचन भया, टूटा बंधन मोह ॥
मन उसीका गुद्ध होगा जिसने कर्मका रहस्य समझ
लिया । ईश्वरकी सृष्टिमें अपनेको उसका अङ्ग मानकर
जो—तआत्मोपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छिति'
या जैनियोंके अनुसार 'अतानं उपमं कत्वा न हृन्येन,
न घातयेत'—अपनी मिसाल लेकर न किसीका हृनन
करे, न घात करे—और लोग संत रामदासके—
मना सज्जना मिक पन्येचि जावे।

(रे सज्जन मन ! भक्ति-पथपर विचर' इस कथनको मानते हैं, वे ही 'जो कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' होते हैं। जो कममें वीर है, वह धममें भी वीर है। जीवनका अन्त मृत्यु है। यही जीवन-तत्त्व है। बौद्ध प्रन्थ 'धम्मपद'में लिखा है—

यथा दण्डेन गोपालो गावो पचित गोचरे। पवं जरा च मच्चु च आयुं पाचन्ति पाणिन॥

'जैसे गोचरमें दण्डेसे ग्वाला गायको चराता है, वैसे ही जरा और मृत्यु प्राणीमात्रको चरा रही है।' पर हम इसे भूल गये हैं। हमलोग तृष्णामें मरे जा रहे हैं—

सेठजीको फिक्र थी, एक-एकके दस कीजिये। मीत आ पहुँची कि हजरत जान वापस कीजिये॥

दूसरोंका अन्धानुकरण करनेसे काम न चलेगा। अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'शेष प्रश्न'में शरद बाबूने लिखा है—'अनुकरणसे मुक्ति नहीं, मुक्ति मिलती है— ज्ञानसे।' ज्ञानी जानता है—

आप अकेला अवतरै, मरे अकेला होय।
यूँ कब ही इस जीवका, साथी सगा न कोय॥
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीवका, कोइ न राखनहार॥

किंतु भगवत्तत्त्वमें विश्वास करनेवाला मरता नहीं है, वह तो अपने इष्टके पास जा रहा है। आदमी सोया जमी पर छोग कहते मर गया।
वह बेचारा था सफरमें, आज अपने घर गया।
एक विचारवान्ने मानव-शरीरके छिये छिखा है—
यह है एक पाछना होरी, हिछाती है रगें जिसकी।
यह वह सूछा है, जिसमें, जिन्दगीको नींद आती है।

भगवत्तत्वका ज्ञान उसीको है, जो मृत्युको
पहचानता है—
घट विच जरू है, जरू बिच घट है, बाहर भीतर पानी।
घट फूटा जरू जरूहि समाना, यह तथ्य कथ्यो ज्ञानी।
भगवत्तत्व उस तिरोधानमें है, जो हमें भगवान्के पान
ले जाती है।

भगवतत्त्वका लौकिक स्वरूप

(लेखक--श्रीगोपालदत्तजी पाण्डेय, एम्० ए०, एल्० टी०, व्याकरणाचार्य)

हौकिकरूपमें 'भगवत्तत्व' शब्द मगवान्के खरूपका बोधक है। 'भगवान्' शब्दका उच्चारण आस्तिक-जगत् किसी-न-किसी रूपमें करता ही रहता है। सामान्यतया अहौकिक ऐश्वर्यसम्पन्न होते हुए भी वे अनन्त ऐश्वयोंसे युक्त हैं, जिनके चमकारमात्रसे प्रभावित होकर आस्तिक-जन भगवान्की महत्ताके समक्ष नतमस्तक होकर उनके खरूपके जिज्ञासु होते हैं। वह भी ऐसा खरूप जिसका साक्षात्कार नेत्रेन्द्रियसे सम्भव नहीं। बाह्य-जगत्में रूपका साक्षात्कार नयन-गोचर मले ही हो, फिर भी अनादि-कालसे 'भगवत्तत्व'को जाननेकी प्रक्रिया किसी-न-किसी रूपमें अद्यावित्र चली आ रही है।

सर्वप्रथम 'भगवत्तत्व' शब्दके यौगिक अर्थपर विचार करना आवश्यक है। तद नुसार (१) 'भगवत्' तथा (२) 'तत्त्व' इन दो शब्दोंके अर्थसे 'भगवत्तत्त्व' का माहात्म्य विदित हो सकेगा। प्रकृत सन्दर्भमें 'भग' शब्द छः प्रकारके महनीय गुणोंका बोधक है, जिसमें अगणित ऐश्वर्य, पराक्रम, यश, समृद्धि, ज्ञान और वैराग्य समाकलित किये गये हैं'। व्याकरणके अनुसार इन छह महनीय गुणोंका नित्ययोग जिसमें हो वह

'भगवान्' है (भग+मतुप्—भगवत्)। किंतु पुराणीं 'क' शब्द निवासार्थकका प्रतीक भी माना गया है जिसके अनुसार परमात्मामें सब प्राणियोंकी स्थिति परिकल्पित की जाती है। जगद्भमें वे ही प्राणियोंके आधार हैं । अतः अखिल-ब्रह्माण्ड-नायक प्रथ भगवत्पदवाच्य हैं। वे ही जगत्के स्नष्टा, पालक तथा हर्ता भी हैं । इसी कारण वे सर्वशक्तिमान् माने गर्वे हैं। केवल शक्तिमान् ही नहीं, अपितु शक्तिके प्रतीक ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य एवं तेज—ये सभी अशेषतः भगवत्पदवाच्य हैं । इन छः महनीय गुणींहे 'भगवान्'की महनीयता (माहात्म्य) प्रकट की गयी है।

'तत्त्व' राब्दका यौगिक अर्थ अनेकात्मक होते हैं। भी मुख्यतः खरूपावस्थाका परिचायक है (तत्-किं तत्त्व)। किसीके खरूपको जानना बड़ा कठिन है। उसमें भी भगवान्के खरूपको, जो प्रत्यक्षगम्य नहीं है। जानना तो अत्यन्त दुस्तर कार्य है। विरले ही उसके खरूपको जाननेमें सफल हो सके हैं। जो सफल हैं। हैं, वे भी उसके खरूपका निर्वचन नहीं कर सके। केवल अनुपयुक्तका निषेध करते हुए—'अभाव'से 'भाव'

१-पेश्चर्यस्य समप्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव पण्णां भग इतीरणा ॥ (वि० पु० ६ । ५ । ७४) २-वसन्ति यत्र भूतानि भूतात्मन्यित्वलात्मनि । स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽस्ययः ॥ (वही ७५) ४-ज्ञानशक्तिकलेश्वर्यवीर्यतेषांस्यशेषतः भगवन्छन्दवाच्यानि विना हेर्येर्गुणादिभिः ॥ (वही ७५)

की ओर संकेत करनेमें ही वे साधक कृतकृत्य हो सके ; तभी तो ऋषियोंने 'भगवत्तत्त्व'को भावनागम्य बताकर भवबन्धनसे छुटकारा पानेका आदेश दिया है ।

'भगवान्'के अनेक नाम हैं"। उनमेंसे परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म, ईश्वर इत्यादि शब्दोंका छोकमें अधिक व्यवहार होता है । इनमें भी 'ईस्वर' शब्द सर्वाधिक प्रचलित है । उसके खरूपका निर्वचन करनेके छिये दर्शनशास्त्रका आविर्माव हुआ; तथापि इस सम्बन्धमें अधिकतर दर्शन उपनिषदोंको आधार मानकर ही आगे बढ़े हैं। इसका कारण यह है कि वेदोंकी प्रामाणिकता अपौरुपेय होनेके कारण सर्वोपरि मानी जाती है । अतः श्रौत-दार्शनिक श्रुतिकी प्रामाणिकतापर अवलम्वित हैं । भगवान्के खरूपका निर्वचन करनेकी सरखतासे प्रत्येक वर्गने अपने इष्टदेवको भगवान् वतलाकर वाञ्छित फल प्राप्त करनेमें ही मुखका अनुभव किया है। तद्नुसार शैवोंने शिवको ही एकमात्र ईस्वर समझा, वेदान्तियोंने ब्रह्मको, बौद्धोंने बुद्धको, नैयायिकोंने जगत्के कर्ताको, जैनियोंने अर्हन्को तथा मीमांसकोंने अदृष्ट-(कर्म-) को ईश्वरका रूप देकर सन्तोष किया--

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः। अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः सोऽयंनो विद्धातु वाड्यितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

समन्वयवादीने भी सबके मूछ भगवत्तत्त्वको अपने वाञ्छित फलकी प्राप्तिहेतु उपादेय समझा।

यह तो ईश्वरके स्थूल खरूपकी चर्चा हुई। पृथक -पृथक् दर्शनोंमें ईश्वरके पृथक्-पृथक् खरूप बतलाये

गये हैं । आस्तिक छहों दर्शनोंमें भी 'सांख्य'में ईश्वर-नामसे कोई सत्ता नहीं मानी गयी है। 'पुरुष', को आत्माका रूप दिया गया है। वह भी सर्वप्रधान नहीं है; प्रकृतितत्त्व ही उनके यहाँ सर्वप्रधान है। सांख्यने अव्यक्त प्रकृतिसे अङ्कुरित और पल्छवित संसारके अन्यक्त प्रकृतिमें ही स्त्रीन होनेकी बातको प्रकृतिके स्वभावपर डाळकर ईश्वरकी अपेक्षा नहीं समझी । योगदर्शन ईश्वरकी सत्ता खीकार करता है । उसके मतमें वह सर्वया निर्छेप और निर्गुण, किंतु सत्त्रवस्ररूप है । मीमांसक वेदोंपर आधारित कर्मकाण्डका आश्रय लेनेपर भी ईश्वरकी चर्चा नहीं करते। उन्होंने मनुष्यके कर्मीका शुभाशुभ फल देनेके लिये अदृष्ट नामकी एक शक्ति स्वीकार की है। मीमांसकोंक अनुसार सृष्टि नित्य है, उसका प्रलय या नाश होता ही नहीं । जत्र सृष्टिरूप कार्य ही नहीं है तो उसके कर्ताके रूपमें उन्हें ईश्वरकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। रहा अदृष्टका आधार, तो यह अदृष्ट जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंका संचयमात्र है । मीमांसामें यह अदृष्ट 'अपूर्व' है । यागादिक अनुष्ठान कर्मसे 'अपूर्व' स्वभावतः उत्पन्न होता है और अपूर्व ही कर्मानुसार फलके रूपमें फलता है। अतः उनके मतमें किसी नियन्ता अथवा दाताकी आवश्यकता नहीं। इसीलिये मीमांसामें ईश्वरकी चर्चा उपलब्ध नहीं होती। इतना होनेपर भी कर्मके खरूपकी निष्पत्तिके छिय मीमांसाने भिन्न-भिन्न देवताओंकी चर्चा अवस्य की है: परंतु ये देवता शारीररूपधारी नहीं हैं; अन्यथा विविध यागादि अनुष्ठानोंमें उनकी युगपद् उपस्थिति असम्भव

५-स एष नेति नेति आत्मा। अर्थात् आदेशो भवति नेति नेति, नह्येतस्मात् अन्यत् परमस्ति । (बृह० ४। ४। २२)

६—भजस्व भावेन विभुं भगवन्तं व्रजेश्वरम् । ततो भागवतो भूत्वा भववन्धात् प्रमोहयसि ॥ (वह्निपुराणः, वैष्णविक्रियायोगः, यमानुदासननामाध्यायः)

७-एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।

हो जाती । इन देवताओंकी निराक्तारिता ही इनके खरूपमें प्रतिष्ठित हुई है। अत: मीमांसाशास्त्र निरीश्वरवादी नहीं है । न्यायदर्शनमें ईश्वर द्रष्टा, बोद्धा एवं सर्वज्ञके रूपमें खीकृत है। वेदको भी ईश्वरकी कृति मानकर नैयायिकोंने उसे खीकार किया है। उदयनाचार्यने 'न्याय-कुसुमाञ्जलिंमें ईश्वरको निराकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अनादि, अनन्त, सर्वेच्यापक, सिच्चदानन्द, दयालु, न्यायकारी, सृष्टिकर्ता, पालक एवं संहारका हेतु माना है। वह सदा तृप्त है तथा किसीके आश्रयमें नहीं रहता । इस प्रकार ईश्वरको सृष्टिका रचयिता मानकर उसे सर्वशक्तिमान् सिद्ध किया है; क्योंकि इतनी बड़ी सृष्टिके लिये अल्प-शक्तिमान् एवं अल्पन्न कर्ता समर्थ नहीं हो सकता। ईश्वरकी सिद्धि न्यायदर्शनमें अनुमानपर आधारित है । नियमतः अनुमानको प्रत्यक्ष और आगमपर आश्रित होना चाहिये । ईश्वर सिद्धिका अनुमान--- 'यह सृष्टि किसीके द्वारा रचित है, जैसे कि घड़ेको बनानेवाला कुम्हार होता है—प्रत्यक्षाश्रित तो है; क्योंकि संसारमें प्रत्येक कार्यको कर्तृसापेक्ष पाते हैं, परन्तु उसके भागमाश्रित होनेमें जो सन्देह था उसे 'द्यावाभूमी जनयन्देव एकः'--(चुलोक और पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला एक ईश्वर ही है--) इस श्रुतिने दूर कर दिया । वैशेषिक मतर्मे ईश्वर जीवोंके भोगके लिये सृष्टिरचनाकी इच्छा करता है । सृष्टिरचनामें न्यायदर्शनके समान वैशेषिक दर्शनमें भी चार भूतों--(पृथ्वी, जल, तेज और वायु-)के परमाणु ही आधार माने गये हैं; अतः वे ही उसके उपादान हैं। ईश्वरेच्छासे परमाणुओंमें स्पन्दन होता है, जिससे वे मिलकर द्वयणुक, त्र्यणुक और चर्तुरणुकके रूपमें

संगृहीत होते चलते हैं। इन परमाणुओं के मौतिक संघटनकी पृष्ठभूमिमें ईश्वरकी इच्छा और अदृष्ट भी इसलिये रखे गये हैं कि संघटन व्यवस्थित एवं निर्दिष्ट आधारपर ही घटित हो सके । केवल जड़ परमाणु औ उनके यादिन्छक संयोगमें कर्मफल-भोगकी व्यवस्था संभ नहीं हो सकती। अतः उसके नियन्त्रणके लिये चेता सत्ता ईश्वरके रूपमें मानी गयी है । वेदान्तदर्शनने का (परमात्मा-)के खरूपके सम्बन्धमें उपनिषदोंका अनुसाल किया है। खरूपतः ब्रह्म उपाधि विनिर्मुक्त, विज्ञानम्य अनन्त एवं नित्य है । वह सिचदानन्दस्वरूप है । वही निर्गुण ब्रह्म कहलाता है । उसकी दूसरी स्थिति सगुणे रूपमें बतलायी गयी है । उपाधि-विशिष्ट (माया-सिंहत) होकर वही निर्गुण ब्रह्म 'ईश्वर' पदवाच्य है। सोपाधिक ईश्वरमें सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वकाम औ सर्वसंकल्पादि सगुण कल्पनाएँ सार्थक होती हैं। आ वही सृष्टिका निमित्तकारण है। प्रमार्थतः उपाधि ग मायाके मिथ्या होनेसे सगुण ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म-ये दोनों अभिन हैं।

उपर्युक्त पंक्तियों में निरूपित भगवान् के खरूपप्र विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि जब नित्यप्रति व्यवहारमें आनेवाली वस्तुओं को भी परिभाषाबद्ध करना कठिन होता है तो परोक्षसत्ताको राब्दों के भीतर समेटना तो और कठिन है। वस्तुरः भगवत्तत्व अध्यात्मका विषय है। अध्यात्म-जगत्की बात इस जगत्की बातों से नितान्त भिन्न हैं। इस (ह्म) जगत्के सम्बन्धको चलाने के लिये प्रत्यक्षादि प्रमाण मुख्य साधन हैं और अध्यात्म-जगत्का सम्बन्ध हमारे हृद्यकी अनुभूतिसे है; जब अनुभूति जागरूक रहती है, तब तक

८-ईश्वरोऽयं निराधारः सर्वेशः सर्वशक्तिमान्। अनादिरिवकारी चानन्तः सर्वगतो विभुः॥
सिधदानन्दरूपोऽपि दयाङ्गन्यीयतत्परः। सर्गे स्थितौ छये हेतुः नित्यतृप्तो निराश्रयः॥

९-'विज्ञानमानन्दं ब्रह्मं'(--बृहदारण्यकः ३ ।९।२८ ।) 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (--तैत्ति० २ । १ । १ ।

मौन होकर बैठ जाता है। उसकी गम्भीरतामें तर्क बिलीन हो जाता है। इसिलिये मनीषियोंने यह सलाह दी है कि अचिन्तनीय तत्त्वोंके लिये तर्कका आश्रय लेना व्यर्थ है। "यदि अनुभूति अपनी महनीयता एवं गम्भीरताके कारण लौकिक अर्थमें परिभाषाके बन्धनमें नहीं समाती तो इसमें उसका क्या दोष है! पर तत्त्वज्ञानमें अनुभूति ही सर्वश्रेष्ठ और समर्थ खीकृत है।

भगवान्कें खरूप-(तत्त्व-) का ज्ञान भी अनुभूतिका त्रिषय है। मनुष्यमात्रकी सामान्य अनुभूनियाँ अनुकूल अवसर पाकर प्रकट होती हैं। इसी अनुभूतिके मूळमें जो परम तत्त्व है, वह अवाब्मनसगोचर है, अतः अनुभूतिकी अनिर्वचनीयता उस परोक्षसत्ताकी ही देन है। व्यावहारिक जगत्के जीवके छिये व्यावहारिक सत्यके अनुकूछ 'भगवत्तत्त्व'का रहस्य उपनिषदोंमें वर्णित सगुण ब्रह्मके खरूप-छक्षणमें पर्यवसित होता है। तदनुसार ब्रह्म सत्य ज्ञान तथा अनन्त है । उसमें स्वाभाविक तीन शक्तियाँ पायी जाती हैं। वे हैं-ज्ञानशक्ति, बलशक्ति तथा क्रियाशक्ति ।" यह जगत् उसीसे उत्पन्न होता है, उसीमें लीन होता है उसीके कारण स्थितिकालमें प्राणचारण करता है। तैत्तिरीयउपनिषद्में इस सिद्धान्तका प्रतिपादन बड़े सुन्दर शब्दोंमें किया गया है— 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिविशन्ति। तद् विजिह्नासस्त। तद् ब्रह्म' (३ । १) । अर्थात् इस विश्वके समस्त प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे

जीवित रहते हैं, तथा (अन्तमें इस छोकसे) प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते हैं, उसको तत्त्वतः जानने-की इच्छा करो; वही बहा है । वही समस्त्र शक्तियोंका आधार है। मुण्डकोपनिषद्के अनुसार जिस प्रकार मकड़ा अपने शरीरसे जाल तनता है तथा उसे अपने शरीरमें फिर समेट लेता है एवं जिस प्रकार पृथ्वीमें ओषियाँ उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार उस परमहासे यह समस्त विश्व उत्पन्न होता है। इस परमतत्त्वकी व्यापकताको औपनिषद 'भूमा' शब्दद्वारा छान्दोग्योपनिषद्-में वड़ी सुन्दरताके साथ समझाया गया है। उसीकी उपलब्धिमें वास्तविक सुखका निर्वचन किया गया है। 'वह (भूमा-आत्मा) सर्वत्र विद्यमान है; ऊपर है तथा नीचे है; आगे है तथा पीछे है; दाहिनी तथा वाई ओर है। परमतत्त्वकी ही संज्ञा भूमा है। भूमा ही अमृत है³³। ' इस सिद्धान्तके अनुसार उपनिषदोंने 'आत्माकी अपरोक्षानुभूति'की मौलिकतापर प्रकाश डा ला है। परोक्ष अनुभूतिसे अपरोक्षानुभूतिकी महत्ता अधिक है। जबतक जीव अपने प्रयत्नसे अपनेको तास्विकरूपसे न जान ले, तवतक शास्त्रका अभ्यास निरर्थक है। आत्मसाक्षात्कार ही शास्त्रज्ञानका चरम लक्ष्य है। यह स्थित खानुभूत्यैकगम्य है--अपनी ही अनुभूति उसे बता सकती है। इसी कारण उस अचिन्त्य, सर्वकाम, सर्वगन्य प्रमात्मतत्त्वको समझानेके छिये साधककी वाणीका व्यापार वन्द हो जाता है। वह मूक्त वन जाता है। समझनेवाले उस मौन व्याख्यानको जान लेते हैं। बाध्वने वाष्किलको इसी प्रकारसे ब्रह्मका उपदेश किया था।

१०-'अचिन्त्या खल्ज ये भावा न तांस्तकेंण योजयेत्।' ११-'परास्य शक्तिविधिव श्र्यते स्वाभाविकी शानबलिकया च। (श्वेता० ६।८) १२-यथोर्णनाभिः स्रजते ग्रह्णते च यथा पृथिव्यामोपधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् सम्भवति विश्वयम्॥ (मुण्डक १।१।७) १३—'यो वे भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति। यत्र नान्यत् पश्यितः, नान्यच्हृणोतिः, नान्यद् विजानाति स भूमा। यो वे भूमा तदमृतम्। (छा० उ०८।२२) १४—द्र० शां० भा० ३।२। १७में उद्धृत 'वाष्किलना च वाध्वः पृष्टः सन्नवचनेध्वःनेव कक्ष प्रोवाचिति श्रूयते—स हो वाच अधीहि भगवो ब्रह्मति स दूष्णी बभूवः, तं इ द्वितीये वा तृतीये वा वचन उवाच—श्रृमः खल्ज लं तु न विजानासिः, उपशान्तोऽयमात्मा।"

लैकिकरूपमें जगत्की वास्तविकताको खीकार करते हुए गीतामें भी भगवान्को जगत्का उत्पत्तिकर्ता, प्रख्यकर्ता बतलाकर उन्हें समस्त प्राणियोंमें निवास करनेवाला कहा गया है।" जिस तरह डोरेमें मणियोंका समूह पिरोया हुआ रहता है, उसी तरह भगवान्में समप्र जगत् ओत-प्रोत है, अनुस्यूत है, गुँथा हुआ है। वेही इस पूरे विश्वको आवृत्त कर स्थित रहते हैं। गीताकी यह कल्पना वैदिक पुरुषसूक्तपर आधारित है, जिसके अनुसार यह जगत् 'पुरुष'का केवल पादमात्र है; उसके अमृत तीन पाद आकाशमें स्थित हैं। हस प्रकार भगवान्के इस विरार् रूपकी कल्पनासे जहाँ नारायणके नररूपका आभास मिळता है, वहाँ नरमें नारायणत्व भी खतः अभिव्यक्त होता है । इस भावनासे भगवान्की प्रतिष्ठा विश्वात्माके रूपमें की गयी है । उसकी सत्यताके सम्बन्धमें ही 'अणोरणीयान्' एवं 'महतो महीयान् आदि उपनिषद्-वाक्य चितार्य होते हैं।

संक्षेपमें जीवन एवं सृष्टिके संचालन करनेवाले सभी मूलाधार तत्त्वोंको अन्न, प्राण, मन, पृथ्वी, जल, तेज इस्यादि भूतोंमेंसे ब्रह्म और जीवके छिये प्रतीकात्मक रूपकी प्रतिष्ठा की गयी । विशेषतया स्थुळजगत्में मुलाधारकता देखका ही सबके मुलाधार भगवान्की कल्पना विश्वात्माके रूपमें प्रतिष्ठित हुई है । इसके द्वारा ही चेतनतत्त्वकी सत्ताका सांसारिक स्थितिके अनुसार ईश्वर और जीवरूपमें भिन्न-भिन्न दशाओं-का वर्णन किया जाता है और उनको परिवेष्टित करनेवाळे उपकरणोंसे साम्य दिखाकर नरमें नारायणके दर्शन करनेकी क्षमता सिद्ध की गयी है । अतः जीव भगवान्का सनातन अंश है; अर्थात् भगवान् अंशी। तथा जीव अंश हैं । इस सिद्धान्तको स्वीकारकर जीवीं अनेकता एकतामें परिणत हो जाती है। इस उपमान अवतारणा भी गीतामें बड़ी सुन्दरताके साथ की गां है। तदनुसार भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश है हुए यह कहा है कि जैसे एक सूर्य समस्त संसाल प्रकाशित करता है, वैसे ही परमेश्वर (क्षेत्रह्व सब जीवोंको (क्षेत्रको) प्रकाशित करता है । प्रकृ संदर्भद्वारा क्षेत्रीकी उपमा सूर्यसे देकर उसकी विश्वासन सत्ताकी अभिव्यञ्जना की गयी है । यही 'भगवत्तल का लैकिक खरूप है। यही भगवान्का खरूप जगता अभिव्याप्त करता है। अतः सारे संसारके नेत्र उसके 🛭 नेत्र हैं, वही संसारके प्राणियोंका मुखरूप है, उसीन मुजाएँ जीवोंकी मुजाओंके रूपमें दृष्टिगोगचर होती हैं उसीके चरण समग्र संसारको गतिशील वनाये हुए तथा उसीके द्वारा यह संसार उत्पन्न हुआ है 1 बई विश्वद्रष्टा एवं अनन्य राक्तिमान् है।

उसकी राक्तिके समक्ष मानवराक्ति अर्किचित्करहै। वही विश्वको व्याप्त करता हुआ सर्वसाधारणकी दृष्टि उससे पृथक भी है। अतः उस खरूपको जानने लिये साधक सतत साधनामें रत रहते हैं। साधकींबी साधनाके अनुसार उसके विभिन्नरूप हो जाते हैं। 🕫 प्रकार भगवान् अचिन्त्यशक्ति-समन्वित हैं। यही कारण है कि श्रीमद्भागवतके अनुसार नारदजीने द्वारकापुरीमें एक समयमें ही श्रीकृष्णको समस्त रानियोंके महलोंमें विद्यमा भिन्न-भिन्न कार्योमें संख्यन देखा था³ं। यही उ^{नकी}

अचिन्त्यनीय महिमाका लैकिक विलास है। १५ गीता ९।१८। १६ गीता ७।७। १७ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

१८—यथा प्रकाशयत्येकः कृत्सनं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्सनं प्रकाशयति भारत ॥ (गीता १३ । ३३) (गीता १५ । ७) १९-विश्वतश्चसुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो वाहुरुत विश्वतस्पात् । सं वाहुम्याां धमति सं पतत्रैद्यीवाभूमी जनगर

२०-इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेघिनाम् । तमेव सर्वगेहेषु संतमेकं ददर्श कृष्णस्थानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् । मुहुर्दद्वा ऋषिरभूद् विस्मितो जातकौतुकः ॥

भगवत्तत्त्वका अन्वेषण—भगवत्तत्व क्या है ?

'ततः पदं तत्परिमा गितव्यम्'।'

(लेखक—आचार्य पण्डित श्रीराजवलिजी त्रिपाठी, एम॰ ए॰, साहित्यरात्न, साहित्यशास्त्री, शास्त्राचार्य)

जो हमारे सामने दृश्यमान है, जिसे हम देख रहे हैं, जो दिखलायी पड़ रहा है, वह जगत् है। उसे 'जगत्' इसिलये कहते हैं कि वह चल रहा है, गमनशील है—'गच्छतीति जगत्।' क्रियाशीलता अथवा संसरणता (एक रूपसे दूसरे रूपमें सरकते जाना) इसका 'स्वभाव' है और इसीलिये इसे 'संसार' कहते हैं। इस प्रकार संसार परिवतन-शील होनेसे अनित्य है और चेतन न होनेसे जड़ है; पर है यह नित्यसापेक्ष और चेतनाश्रित। यदि ऐसा न होता तो इसकी क्रियाशीलता, संसृति या गमनशीलता सम्भव नहीं होती; क्योंकि क्रिया सदा पराश्रित (कर्तृनिष्ठ) होती है। फलतः जड़ और चेतन—उभयका समन्वित रूप विश्व ठहरता है; इसीलिये गोसामी तुलसीदासने भी मानसमें कहा है—'जड़ चेतन गुन दोषमय विस्व कीन्ह करतारें।'

क्रान्तदर्शी तत्त्व-विवेचकोंने विश्वका विश्लेषण कर जिन पाँच तत्त्वाशोंका अनुसंधान किया है, उनमें प्रथम तीनको नित्य तथा चेतन और अगले दोको अनित्य अथच जड़ बतलाया है। वे तीन हैं—'अस्ति, भाति, प्रियम्' के प्रतिनिधि सत्, चित्, आनन्द, जिनका समुदित रूप है—'सिन्चदानन्द।' 'सिच्चदानन्दघन' नित्यतत्त्व है—जिसकी विश्वव्यापकताके कारण उसे 'ब्रह्म' कहा जाता है। 'सत्यं श्रानमनन्तं ब्रह्मं',

'विज्ञानमानन्दं ब्रह्मं' सर्वत्र व्याप्त है —बाहर-भीतर सब जगह । वह सूक्ष्मतम और व्यापक है-वह ब्रह्म आकाशके भीतर और बाहर भी विद्यमान है और आकारामें विद्यमान सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तत्त्वोंसे भी अति सूक्ष्म, सूक्ष्मतम है जिसकी प्रतीतिमात्र हो सकती है; उपलब्ध दु:साध्य है। कठोपनिषद्की श्रुति है कि—'अस्तीत्येवोपलर्ब्धव्यः—'वह है ही' ऐसी प्रतीति करनी चाहिये। वह कैसा है, क्या है—इसको बताना कठिन है। अस्तु! अगले दो तत्त्व हैं---'नाम' और 'रूप' । नाम-रूपात्मक दश्यको 'जगत्' कहते हैं-- 'नामरूपात्मकं जगत्।' जगत् अनित्य और जड़ है। उसकी सारी सजीवता जगत्प्रविष्ट चेतन एवं नित्यतत्त्वके कारण है जिसे साधारण भाषामें हम आत्मा या 'जीव' कहते हैं, पर जो वास्तवमें ब्रह्मका ही कियाश्रयी अंश है-ईस्वर अंस जीव अविनासी । ध्यातव्य है कि जीव आत्मा है और 'ईश्वर' 'परम आत्मा' है । वह प्रमात्मा सांख्यवादियोंके मुळतत्त्व पुरुष और प्रकृति-इन दोनोंसे मिन्न ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण किंवा उच होनेसे 'उत्तमपुरुष' भी है । वह अन्यय है, न्ययरहित है; उसमें कमी होनेका प्रसङ्ग ही नहीं है। वह सर्वशक्तिमान् है । वही ईश्वर तीनों छोकोंमें व्याप्त होकर उन्हें धारित-पोषित करता है। यतः वह पुरुष 'क्षर' और श्वक्षर' अर्थात् व्यक्त और अव्यक्तसे भी उत्तम है,

१—गीता १५ । ४; २—मानसः, बालकाण्ड दोहा—६;

३-अस्ति भाति प्रियं रूपं नामचेत्यंशपञ्चकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥ (दृग्दृश्यविवेक २०)

ध-तैति० २ । १ ५-बृह० उ० ३ । ९ । २८ ६-कठोप० ३ । १३

७-इसका अनुमोदक वाक्य है--ममैवांशो जीवछोके जीवभूतः सनातनः। (गीता १५।१७)

८-उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ (गीता १५।१७)

इसलिये वह लोक और वेदमें 'पुरुषोत्तम' कहा गया है। नाम और रूप उसी परमात्मतत्त्वकी उपाधियाँ हैं और उनके आश्रित हैं । यद्यपि 'उस परमात्मतत्त्वका रूप यहाँ उपलब्ध नहीं होता'—'न रूप मस्येह तथोपलभ्यते' तथापि सगुण खरूपमें नाम-रूपके लोक-ज्यवहार परम प्रसिद्ध हैं । इसीलिये मानसकारने 'नाम रूप हुइ' ईस उपाधी' कहा है। तात्पर्य यह कि विश्वमें व्याप्त 'सत्' (सत्ता या अस्तित्व—जिसे हम 'हैं', 'था' और 'होगा'——जैसे क्रिया-पर्दोसे समझ सकते हैं), चित् (चेतना या ज्ञान) और आनन्द या शाश्वत धुखानुभूति इन तीन तत्वरूपोंका (सम्पूर्णतः) समुदित खरूप 'सचिदानन्द' ही ब्रह्म है जिसे ही सृष्टि-पाळन-संहारात्मक क्रियाश्रयी होनेसे 'परमेश्वर' या 'परमात्मा' कहा गया है; और, वे ही परमात्मा ऐस्रयीदि षड्गुणसम्पन्न होकार 'भगवान्' वन जाते हैं । फिर वे ही भगवान् जब नाम-रूपका परिधान पहन लेते हैं तो सृष्टिकियाश्रयीके रूपमें चतुमुखी 'ब्रह्मा', पाळन-क्रियाश्रयीके रूपमें चतुर्मुज 'विष्णु' और संहरण-क्रियाश्रयीके रूपमें पञ्चमुख परमेश्वर 'महेश' या 'शिव' कहळाते हैं । इन सर्वोमें नाम, रूप—इन दोकी उपाधियाँ जुड़ी रहती हैं । विष्णुपुराण-(१।२।६६) का तात्विक साक्ष्य है कि---

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् । स संक्षां याति भगवानेक एव जनार्देनः ॥

सृष्टि, स्थिति और संहतिकी विश्विक्तया उस भगवान्-की छीछा है अथवा उसकी माया-(निजी शक्ति या प्रकृति नटीं-)का खेछ है जो शाश्वत है; ऐसा ही तत्त्वदर्शी ऋषिमुनियोंने अनुभव किया और कहा है। वस्तुतः ऐसा क्यों होता है ? कहाँसे होता है ! क्षे होता है ! क्षे होता है ! क्षे होता है ! इनका सम्यक् समाधान प्राचीनतम क्ष ऋग्वेदके सर्वोत्कृष्ट एतत्-सम्बन्धी चरम चिन्तनको नासदीय सूक्तमें भी जिज्ञास्य ही है । उदाहरणार्थ प्रमन्त्र देखिये—

इयं विस्रिष्टिः यत आ वभूव यदि वा दधे यदि वा न दधे। यो अस्याध्यक्षः परमे ज्योमन् स्रो अङ्ग वेद यदि वा न वेद्॥ (१०।१२९।७)

(सत्का) यह विसर्ग अर्थात् फैलाव—प्राव्ध या संसार जहाँसे हुआ अथवा निर्मित किया गया य नहीं किया गया—इसे परम आकाशमें रहनेवाल झ सृष्टिका जो अध्यक्ष है अर्थात् हिरण्यगर्भ है (जिस्ते सबसे पहले विद्यमान होने और भूतोंके एकमात्र फ होनेकी बात कही गयी है)", वही जानता होगाः या वह भी न जानता हो (कौन कह सके १)।

ऐसी स्थितिमें — 'छोकचछीछाके चल्यम्' (वै॰ सः २ । १ । ३२) के अनुसार उपर्युक्त तथ्यको ही माने हुए भगवत्तत्त्वकी अन्वेषण-प्रक्रिया समीचीन जँचते हैं। विल्लाः ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही अत्तत्त्वके अभिधान हैं जो जगत्का — सारी सृष्टिका — रचिता, पाछिता और संहर्ता है। वह तत्त्व अव शिक्तिस्पमें समझा जाता है तो उस त्रिशक्तिस्वरूपिण जगजननीके ब्राह्मी, देणावी और रौद्री (शैवी) ह्य दर्शनीय होते हैं। जब वह तत्त्व अपने 'स्व'रूपमें रहते हैं तो निष्क्रिय और विभुमात्र रहकर अन्तर्मन और ऋते

९-भगवद्वचन है—यसाखरमतीतोऽहमक्षरादिष चोत्तमः । अतोऽिस लोकेवदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥

१०-ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चेव षण्णां भग इतीरणा ॥ (वि० पु० ६ । ५ । ७४)
११-१हरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । १ (ऋ० १०, १२१, १, अर्थर्व० ४, १)
७, ता० ब्रा० ९, ९, १२; नि० १०, २३, यजुर्वेद वा० १३ ४; २३, १; २५, १०; ते० सं० ४, १, ८, ३; २, ८, २; १२-मानसका भावसाम्य देखिये—क्षो सृजि पालह इरइ बहोरी । बाल केलि सम विधि मिति भोरी ॥

भरा प्रज्ञासे मात्र अनुभवनीय होता है — केवल प्रतीतिका विषय होता है। और, जब अपनी शक्तिसे (माया या प्रकृतिसे) विलसित होता है तो यह विसृष्टि भी विलस उठती है। फिर भी वह इसके भीतर-बाहर-सर्वत्र विद्यमान रहता हुआ इसे अनुप्राणित करता रहता है। उसके बिना न तो एक पत्ता हिल सकता है और न एक फूल खिल सकता है। किसीका यह कथन सर्वथा ठीक और सटीक है कि—

तेरी सत्ताके बिना, हे प्रभु जगके मूल। पत्ते भी हिलते नहीं, खिले न एको फूल॥

'जगके मूल'की जिज्ञासामें प्राच्य प्राचीन तत्त्वदर्शी ऋषियोंने तत्त्वान्वेषणसे जो अनुभव किया उसको गीतामें भगवदुपदेशके रूपमें हम ऐसा पाते हैं कि 'जिससे उत्पन्न होकर यह पुरानी सृष्टि फैली—विकसित हुई (यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी) उसी आद्यपुरुषको प्रपन्न होकर (तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये) हमें उसकी खोज करनी चाहिये - तदर्थ मनन और निद्यासन करना चाहिये । 13 तैत्तिरीयोपनिषद्के ऋषिने उस आदिपुरुषको अन्यक्तरूपमें अनुभव किया और अन्यक्त अथवा अदृश्यके लिये 'असत्' का प्रयोग कर कहा कि 'असद् वा इदमग्र आसीत्'(२।७)।' ऋग्वेदसे उसकी मान्यताकी पुष्टिके साथ यह भी विदित होता है कि उसी 'असत्'-(अव्यक्त तत्त्व-) से सत् या दश्यमान जगत् —अभिव्यक्त त्रिश्व —उत्पन्न हुआ। " किंतु जो 'असत्' का अर्थ 'असत्य' या विनाशी और 'सत्' का सत्य अथवा अविनाशी (नित्य) समझते थे, उन्हें समझा देनेके छिये छान्दोग्यमें औपनिषद ऋषिने

'सदेव सौम्येद्मग्न आसीत्-कथमसतः सज्जायेत ?' कहकर वस्तुतः उसी तत्त्वको समर्थित किया। यहाँ यह कह देना सुशोमन होगा कि मूलका 'सत्' या 'असत्' तत्त्व 'सिच्दानन्द'का उपलक्षक (बोधक) है और 'सत्' तथा 'असत्' खरूपतः विपरीत दीखनेपर भी एक हैं। यही कारण है कि गीतामें भगवान्ने अर्जुनसे खयंको 'सदसचाहमर्जुन'' कहकर भगवत्तत्त्वकी विमुताको सुस्पष्ट कर दिया है। वस्तुतः भूतमात्रमें जो सत्ताकी प्रतीति होती है, वही जीवमात्रमें चिदंशिष्ट और विकसित जीवोंमें आनन्दांशविशिष्ट होकर सचिदानन्दरूप हो जाती है। प्रतीति घटाकाश, महाकाशादिके समान उपाधि-सापेक्ष है। वस्तुतः 'तत्त्व-मेकमेवाद्वितीयम्' है। और, वह है 'सचिदानन्द'-रूप; वही भगवत्तत्त्व है। अस्तु।

पाश्चात्त्य मनीषी हेकल महोदयका यह कथन कि 'मूल प्रकृतिकी वृद्धि होते-होते उसी प्रकृतिमें अपने आपको देखनेकी और खयं अपने त्रित्रयमें त्रिचार करनेकी चैतन्यशक्ति उत्पन्न हो जाती है', प्राच्य दृष्टिसे ठीक नहीं है; क्योंकि 'असत्'से 'सत्'की उत्पत्ति या त्रिकास होना सिद्धान्तिकृद्ध है । यही कारण है कि सांख्य-सिद्धान्तमें जड़ और चेतन या प्रकृति और पुरुष इस प्रकार दोकी मान्यता प्रसिद्ध है । फिर भगवत्तत्व अथवा परमात्मतत्त्व तो उन दोनोंसे ही उच्च या उत्तम है—'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । कम-से-कम भगवान्की दिव्य वाणी गीताकी मान्यता तो यही है ।

१५-द्रष्टब्य, ऋ ० वे० १० । १२९ । ४ १६-छा० ६ । २ । १ । २ १७-गीता ९ । १९ १८-गीता १५ । १७

१३-ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः । तमेव चाद्यं पुरुपं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥
(गीता १५ । ४)

१४-छान्दोग्यने भी ३ । १० । १ में अव्यक्त अर्थमें 'असत्'का प्रयोग किया है। अतः दोनों ऋचाओं में तात्पर्यार्थकी भिन्नताकी कल्पना नहीं की जानी चाहिये ।

परमात्मा राब्द आत्मसापेक्ष है, अतः परमात्माका सम्बन्ध-विवेचन संक्षेपतः प्रासङ्गिक है । आत्मा जीव है जो नित्य और विभु होते हुए भी प्रतिपिण्डमें होनेसे विभक्त दीखता है । पर वह है अविभक्त ही — 'अविभक्तं विभक्तेषु ।' वही परमात्मरूपमें ब्रह्माण्डव्यापी होनेसे अद्भय एवम् अदृश्य है। आत्मा या जीव मायावश हो करके बन्धनमें पड़ा हुआ है-- 'वँधेउ कीर मरकट की नाई ।' हाँ, यह सत्य है कि ज्ञानसे कर्मबन्धन तोड़कर विशुद्र आत्मा यानी जीव ही परमात्मा हो जाता है—वह 'सोऽहम्' से 'शिवोऽहम्' की अनुभूतिमें प्रतिष्ठित हो जाता है। ज्ञानाणवर्मे कहा गया है कि 'विशुद्ध ज्ञानसे कर्मबन्धनको तोड़कर विशुद्र हुआ यह जीव (आत्मा) ही खयं साक्षात् परमात्मा है--यह निश्चय हैं । " व्यष्टि रूपमें जो आत्मा 'अणोरणीयान्'—अणुसे भी अणु (छोटा) है वही समष्टिरूपमें प्रमातमा 'महतो महीयान्—' महान्से भी महान् है । आत्मामें परमात्माका यह सन्निवेश 'बूँदमें सिंधुके समा जाने-जैसा आश्चर्यजनक है जिसे कहते ही नहीं बनता; क्योंकि खोजनेवाला अपने आपमें भूला हुआ है भटक रहा है'। दत्ति-नानकको तो ऐसा लगता है कि 'पानीमें मछछी प्यासी मर रही है, अतः उन्हें छोगोंकी इस अवोधतापर हँसी आ जाती है'___ 'पानीमें मीन पियासी रे, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी ।'

महात्मा तुछसीदास भी उस सुधासमुद्र परमात्माको छोड़कर विषयरूपी मृगजछके पीछे दौड़कर मरनेवाछोंको समझाते हुए मानसमें कहते हैं कि—

'सुधा ससुद्र समीप बिहाई। सृग जल पेखि मरहु कत धाई।'

निचोड़ यह कि वह मूल 'सत्' (अथवा अव्यक्त अथमें असत्) तत्त्व (परमात्मा) अन्ततः ज्ञान-निर्धृ कर्मवन्यनसे निर्मुक्त आत्मा ही ठहरता है जो अवताति अधिक स्पष्टतासे मलीमाँति समझा जा सकता है।

सत्तत्व परमात्माके रूपमें जब अपनी अकि चिन्मय शक्तिसे नामरूपकी उपाधि धारण कर अन शील-शक्ति-सौन्दर्य-गुणोंसे विमण्डित हो जाता है तो हा उसे 'अवतार' कहते हैं । अनन्त राक्तिमान् रीछिनिशाः लोकामिराम श्रीराम और शील-शक्ति-सौन्दर्यके सा साक्षात् मन्मथ-मन्मथ श्रीकृष्ण ऐसे ही अवतार हैं। आ भगवत्तत्त्र या ब्रह्मसे श्रीरामकी तत्त्वतः अभिन्नता सुनि करनेके लिये ही मानसकार महात्मा तुलसीदासने अपे 'मानस'में 'सोइ सिचदानंदवन रामा' और मूलतत्त्वसे ऐक्य स्थापित करनेके लिये ही 'जड़ चेतन का जीव जत सकल राममय जानि' कहा है तथा उनसे ब्हु पहले विशाल बुद्धि न्यासदेवने भागवतमें 'कृष्णस्तु भगवा स्वयम्'का उद्घोष कर दिया था । महात्मा तुळसीदासं समकाछीन प्रसिद्ध दार्शनिक एवं भावुक भक्त मधुसूर सरखतीने तो अपने मतकी वैजयन्ती इस श्रेष्ठ सूक् स्किके रूपमें फहरायी कि-'कृष्णात्परं तत्त्वमहं न जाने ।' परवर्ती आचार्यो और भक्तोंने सूल विवेचनसे भगवत्तत्त्वका प्रकास-प्रकर्व और बढ़ा दिव और अवतार तथा अवतारीमें अभेद प्रतिपादित हों लग गया । वस्तुतः रूपभेद होनेपर भी खरूप अभेदता ही है।

अतः निष्कर्षक्षपमें कहना चाहिये कि सृष्टिं मूछका सूक्ष्मतम सत्य तत्त्व जो आकाशसे भी सूक्ष और व्यापक है तथा जिसकी प्रतीति 'है'-जैसे शब्दीं

१९-अयमात्मा स्वयं साश्वात्यरमात्मेति निश्चयः । विशुद्धशानिर्भूतकर्मबन्धनसमुत्करः

२०-बूँदिह सिंधु समान यह अचरज कासों कहीं । हेरनहार हेरान रहिमन आपुहि आपुमें ॥ २३१) २१-प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदिचन्त्यस्य छक्षणम् ।

होती है वह 'सत्' ही (जिसे अन्यक्त अर्थमें वेदोपनिषदोंमें 'असत्' भी कहा गया है और गीतामें जिसे समेटते हुए भगवान्ने अपने खरूप-कथनमें सदसचाहम् वतलाकर एवं महात्मा तुलसीने 'ईस्वर सर्वभूतमय अहर्द, ^{३३} कहकर और अधिक स्पष्ट कर दिया है,) भगवत्तत्त्व है । वह भूतमात्रमें तो सत्-सत्तारूपमें तथा जीवमात्रमें सत-चित्-आत्मक—सचिदात्मकरूपमें और विकसित मनुष्यादि प्राणियोंमें सिचदानन्दात्मक-रूपमें अनुभवनीय है । अवताररूपोंमें —विशेषतः श्रीराम-कृष्णमें उस तत्त्वका प्रत्यक्षीकरण और अधिक स्पष्ट हो जाता है। वह मूळतत्त्व व्यापकदट्या ब्रह्म, व्यष्टिरूपमें सर्वान्तर्यामी आत्मा और समष्टिरूपमें कर्म-बन्धन-निर्मुक्त 'प्रमात्मा' कहा जाता है। महाभारतमें भृगुने भरद्वाजसे परमात्मा शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि—'जब आत्मा प्रकृतिमें या शरीरमें बद्ध रहता है, तब उसे क्षेत्रज्ञ या जीवात्मा कहते हैं, और वही प्राकृत गुणोंसे मुक्त यानी प्रकृति या शरीरके गुणोंसे मुक्त होनेपर परमात्मा कहलाता है'---

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतेर्गुणैः। तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः॥ (शा॰ ८७ । २४)

वही परमात्मतत्त्व जब शील-शक्ति-सौन्दर्य-विमण्डित हो जाता है—ऐस्वर्यादि षङ्गुणविशिष्ट होकर नाम-रूपकी उपाधि धारण कर लेता है—तव 'भगवान्' बन जाता है। अभि तो भगवान् श्रीरामकी पूर्वकथित 'सोइ सिंद्यानंद्रघन रामा' और श्रीकृष्णकी 'सत्यं झानमनन्तं यद् ब्रह्मज्योतिः सनातनम्' से भगवत्तत्त्वकी अभिन्नता सहज ही बोधित होने लग जाती है। गीतामें अर्जुनने भी वास्तविक बोध हो जानेपर उस तत्त्वसे अभिन्न श्रीकृष्णके लिये कहा है—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥ आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा। असितो देवलो व्यासः खयं न्त्रेव व्रवीषि मे॥

भागवतकारने प्रथम स्कन्धमें ही स्पष्ट कर दिया है कि 'तत्त्व' (अर्थात् ज्ञान) 'ब्रह्म', परमात्मा और 'भगवान्'—ये पर्याय हैं। रे॰ इनके विशेषणांशमें किंचिद् मेद रहनेपर भी विशेष्पांशमें वास्तविकरूपमें अभेद है। उसी भगवत्तत्त्व-(अद्वयसिन्चदानन्द-) के सर्जन-संरक्षण-संहरण किया-सापेक्ष भगवदूप हैं — ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र या महेश; और, भगवतीरूपमें हैं---महासरखती, महालक्ष्मी और महाकाली । उस तत्त्वकी अनुभूति सत्तात्मक रूपमें जड़मात्रमें, सत्-चिदात्मककी जीवमात्रमें और विकसित जीवों-(उन्नत प्राणियों-) में सत्ता-चेतनाके साथ आनन्द-रूपमें सन्तों, महात्माओं और भक्तोंने सदैव की है और आगेकी पीढ़ियोंके लिये 'सर्वे ब्रह्ममयं जगत्' 'घट-घट ब्यापक राम' और 'निज प्रभुमय देखहिं जगत्' कहकर मार्ग-दर्शन करा दिया है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों और दर्शनोंका सामान्य निष्कर्ष यही है और इसी तत्त्वका अनुसन्धान, अन्वेषण हमारा कर्तव्य है — 'ततः पदं तत्परिमार्गितव्यम्।'

⁻⁺³⁺⁸⁻⁺⁻

२२-सत् यानी परब्रह्म और असत् अर्थात् दृश्यसृष्टि दोनों मैं ही हूँ। (गीता ९।९)
२३-रा० च० मा० (७।११०।८)
२४-मन्तव्य०-मनुजनास सचराचर रूप राम भगनान्। (मानस ६।१५ क)
२५-विष्णुपुराण ६।५।७४। २६-श्रीमद्भागवत १०।२८।१५ २७-द्र० श्रीमद्भा० १।२।११

श्रद्धा और प्रेमके क्षेत्रमें भगवत्तत्व--भागवतधर्म (१)

भगवत्तत्त्व दर्शनके क्षेत्रमें विचार और चिन्तनका तथा धर्मके क्षेत्रमें श्रद्धा और प्रेमका विषय है । श्रद्धा और प्रेम भगवत्तत्त्व-प्राप्तिकी साधनाके उपजीव्य उपकरण हैं। इन्हींसे भक्ति पृष्ट होती है---भक्तिमें श्रद्धा और प्रेम दोनोंका योग होता है। इन दोनोंके तारतम्यसे भक्तिके कई मेद हो जाते हैं। जीव, जगत् और ईश्वर-को विशेषरूपसे लेकर चलनेवाली भावनामें श्रद्धाकी मात्रा अधिक दीखती है, पर केवल भगवित्रष्ठ भावनामें प्रेमाधिक्य दीखता है; क्योंकि प्रेम ऐकान्तिक और श्रद्धा अनैकान्तिक होती है। पर भागवतधर्मकी व्यापकतामें श्रद्धाकी साधना और प्रेमकी निष्ठा—दोनों परिष्कृत होकर प्रतिफलित हुई हैं। यही कारण है कि भागवतधर्म अपनी परिनिष्ठित अवस्थामें निष्कामकर्मयोगसे मिश्रित होकार भक्तिके रूपमें उभरा, जो आज कालकामसे वैष्णवधर्मके म्हपमें श्रद्रा, प्रेम, भक्ति एवं पूजा-अर्चाकी विशिष्ट पद्धतिके रूपमें विकसित है।

भागवतधर्मके प्रथम उन्नायक स्त्रयं नारायण हैं। इसकी परम्परा अत्यन्त प्ररानी है, पर इसका इतिहास समानमतोंका समन्वित विकास है। महाभारतकालमें भागवतधर्मकी परिष्कृति हुई है। सात्वतोंमें यह धर्म परमान्य हुआ था, इसीलिये इसे 'सात्वतधर्म' भी कहा गया है। श्रीकृष्णावतारके समय पाञ्चरात्रमत मागवतधर्ममें परिणत हो गया और सात्वतोंमें बहुमान्य होनेसे 'सात्वतधर्म' भी कहा गया। वस्तुतः महाभारतीय नारायणीयोपाख्यान भागवतधर्मकी ही व्याख्या करता है जिसे गीताके चौथे अध्यायके प्रारम्भमें भगवान्ने ध्योग' कहकर सर्वप्रथम 'त्रिवस्वान्' को वतानेकी बात कही है। उसकी जिस परम्पराका निर्देश वहाँ किया है, वह नारायणीय धर्मकी द्वापरयुगीन अन्तिम परम्परासे मिन्न नहीं

है। हाँ, वही धर्म जब अर्जुनको उपदिष्ट हुआ तो उसे भगवत्समप्णकी वात लोकसंग्रही आधारपर निष्कामकः योगसे अमिनिविष्ट हो गयी । निदान, भागवतधर्म भक्ति प्रशस्त क्षेत्रमें ज्ञानकर्मके समुच्चयके साथ आ तो गया, व उसमें भक्तिका पुष्टरूप प्रतिफलित नहीं हुआ। हाँ, को चलकर श्रीमद्भागवतसे उसमें भक्तिकी विशिष्ट प्रशान हो गयी; और, अब इसका विशिष्टरूप एक सम्प्रदाः (वैष्णव-सम्प्रदाय-) के रूपमें प्रतिष्ठित है। किंतु सके प्रारम्भिक रूपका रक्षात्मक प्रचलन आज भी दक्षिणों है जहाँ यह स्मार्तमतकी भाँति असाम्प्रदायिक रूपमें मान है । द्रविड, तेलंग, कर्णाटक और महाराष्ट्रमें वीची गोपीचन्दनकी रेखावाले जर्व्वपुण्डूको धारण किये हुए वैष्णव अब भी पर्याप्त संख्यामें विद्यमान हैं। ये नारः भक्तिसूत्र और शाण्डिल्यभक्तिसूत्रोंके अनुयायी हैं। इनकी उपनिषदें 'वासुदेव' और 'गोपीचन्दन' हैं । इनक पुराण श्रीमद्भागवत है । यही क्यों, प्रत्युत यही प्रव इनके मत या धर्मका प्रमुखतम प्रन्थ है । अन्तःसाह है कि भागवतकार महाभारतका ज्ञानसागर प्रस्तुत क जब विश्राम न पा सके तव उन्होंने 'अच्युतमावपूर्ण भागवत-धर्मीय श्रीमद्भागवतपुराणकी रचना की । यद्या भागवतभूमेके मुख्य प्रतिपादक पाञ्चरात्रग्रन्थ, नारायणी योपाख्यान, गीता, नारदमक्ति-सूत्र और शाण्डिल्यभक्तिसूत्र हैं तथापि उसकी विशद न्याख्या श्रीमद्भागवतमें ही ही पायी है। यही कारण है कि कुछ लोग भागवतधमक मूल श्रीमद्भागवतको मान लेते हैं और उपरिनिर्दिष्ट प्रन्योंको आँखोंसे ओझल कर देते हैं। परन्तु, जैसा कि पहले भी संकेत किया जा चुका है, भागवतध्रमंकी प्राचीनता श्रीमद्भागवतके निर्माणके बहुत पहलेकी है।

--रा० ब० त्रिपाठी

आचार्य शंकर-प्रदर्शित ब्रह्मोपलिब्धके सहज साधन

(लेखक---श्रीनीरजाकान्त चौधुरी, देवशर्मा, एम्॰ ए॰, एल्-एल्॰ बी॰, पी-एच्॰ डी॰, विद्यार्णय)

बादरायणरचित 'ब्रह्मसूत्र'में ब्रह्मका खरूप निरूपित है । आचार्य शंकर भगवत्पादने 'शारीरक' भाष्यमें जो उसकी व्याख्या की है, प्रायः खल्पान्तरसे वही बात निम्बार्क, मध्य, रामानुज, वल्लभ, चैतन्य प्रमृतिके सम्प्रदायोंमें कहीं किंचित् अन्तरित होकर द्वैत, द्वैताद्वैत, विशुद्धाद्वेत, अचिन्त्य-भेदाभेद-प्रभृति मतोंके भी निर्माणमें हेतु बनी हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि 'ब्रह्मसूत्र' या 'वेदान्त'सूत्र सनातनधर्मका प्रधान उपजीव्य दर्शन-शास्त्र है ।

आचार्य शंकर शुष्क वेदान्ती मात्र न थे

साधारण धारणानुसार भगवान् शंकराचायं एक कठोर ज्ञानमार्गी संन्यासी थे । उनको किसीने 'मायावादी', किसीने जातपात-छआ-छत माननेवाला ब्राह्मण पण्डित, किसीने समाज-सुधारक और किसीने 'प्रच्छन बौद्ध' तक कह दिया । पर जिन भगवत्कल्प महापुरुषने मात्र ३२ वर्षकी खल्पायुके भीतर अलैकिक प्रतिमा एवं अमानुषिक परिश्रमकर नास्तिक बौद्धमतको निरस्त कर दिया और भारतमें सनातन वैदिक धर्मको पुनरुजीवित किया, जिनका उपनिपद्भाष्य आज यदि न होता तो ब्रह्मज्ञानका पथ ही चिरकालके लिये अवरुद्ध हो जाता । जिनके द्वारा प्रतिष्ठित दसनामी संन्यासी सम्प्रदाय चार धामके मठोंसे आजतक ज्ञान-योग, राजयोग तथा भक्तिके अविरंत स्रोत प्रवाहितकर आदर्श त्यागके जीवन भारतवासियोंके समक्ष रखकर मोक्षके उपाय प्रदर्शित करते आ रहे हैं, उन शंकरके साक्षात् अवतार-खरूप आचार्यदेवके प्रति इस प्रकारकी धारणा तथा आचरण मात्र नास्तिकोंकी हीन आत्मघाती भावनाका ही परिचायक है-

महामहिम्नामपि यहिचकीर्षति स्वभावसंशुद्धतरं तिरो यशः। स नूनमाच्छादयितुं प्रवर्तते (संक्षेप शारीरक १।१३)

विवस्ततो हस्ततलेन मण्डलम्।'

मध्याह-सूर्यके ऊपर फेंका हुआ श्रूत्कार अपने ही मुँहपर गिरता है—

शंकराचार्य वैष्णव प्रधान श्रीकृष्णके परम भक्त थे

सच तो यह है कि भगवान् शंकराचार्य केवल अद्वेत मार्गके पथिक या प्रतिष्ठातामात्र न थे, वस्तुतः आप बहुत कुछ थे। आप वेदान्तनिष्ठ योगेश्वरेश्वर थे, यह तो चिरप्रसिद्ध है ही, परंतु आप एक श्रेष्ठ वैष्णव, भक्तराज, कीर्तन और भगवन्नाम प्रेमी भी थे। श्रीकृष्ण भी उनके परमोपास्य इष्ट थे। वे कहते हैं—

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं विगतविषयतुष्णः कृष्णमाराधयामि। (गङ्गाष्टक ७)

'देवि ! मैं आपके तटपर जलमात्र पानकर विषय-वासनासे वितृष्ण होकर केवल श्रीकृष्णकी आराधनामें रहूँ । पुन: 'प्रत्रोधसुधाकर'में वे कहते हैं— प्रदानं वा यस्य त्रिभुवनपतित्वं विभुरपि

दान वा यस्य ।त्रशुक्तपाताप ।वजुरान िनदानं सोऽस्माकं जयति कुळदेवो यदुपतिः॥२४३॥

'त्रिमुवनका आधिपत्य जिनका दानमात्र है, सो प्रमु एवं आदिकारण हमारे कुळदेवता यदुपतिकी जय हो ।' इन इलोकोंसे स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण आचार्य शंकरके इष्ट तथा कुळदेवता थे। इसके पूर्व आपने 'प्रबोध-सुधाकर'में कहा है—'तस्माद्वताराणामन्तर्यामी प्रवर्तकः कृष्णः।' (२४१)

यहाँ 'भागवत'का 'फ़ुष्णस्तु भगवान् खयम्'के भाव हैं। वे मात्र अवतार नहीं हैं, परंतु आचार्यचरणोंके मतमें वे सभी अवतारोंके अवतारी हैं। फिर—

असाकं यदुनन्दनाङ्घियुगलध्यानावधानार्थिनां किं लोकेन दमेन किं नृपतिना खर्गापवर्गैश्च किम्॥ (प्रवोधसु० स्रोक २५०)

'श्रीकृष्णके चरणकमलच्यानमें एकाप्रताके प्रार्थी हमें लैकिक लाम, राजदण्ड, खर्ग और मोक्षसे क्या करना है ! यह तो सिद्धाभक्तिके फलखरूप सालोक्य, सार्ष्टि (सारूप्य), सामीप्य तथा सायुज्य केवल इन पञ्चप्रकारमक्तिके भी परे पर निर्वाण अर्थात् रूप ब्रह्मखरूपका वर्णन है । इसमें द्वैतसम्पर्क नहीं । न तो यहाँ कोई दाता है, न प्रहीता।

वजलीला और गोपीप्रेमकी कथा

आचार्यपादने 'प्रबोधसुधाकर'में श्रीकृष्णके सभी बज तथा माथुर लीलाओंका वर्णन किया है। आप श्रीचैतन्यमहाप्रमुकी तरह ही गोपी-प्रेमके सर्वोच्चभावसे भी सुपरिचित थे और उसकी उपयुक्त मर्यादा भी बाँधी थी । 'श्रीमद्भागवत' रासपञ्चाच्यायीग्से आपने उद्धरण किया---

कापि च कृष्णायन्ती कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः। अपिवत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायणः प्राह॥ (प॰ सु॰ २२२)

'किसी गोपीने कृष्णवत् होकर पूतनानुकारिणी किसी अपर गोपीका स्तनपान किया । साक्षात् नारायण व्यासजीने कहा है। लक्ष्यका त्रिषय यह है कि भागवतं अार्पप्रयोगको आचार्यपादने ज्यों-का-त्यों रखा है । यहाँ गोपीगणकी श्रीकृष्ण तन्मयत्त्र साधनाकी त्रिवृति है। इसका फल है—कृष्णरितमोग, जो प्राम्य-सुख नहीं, योगानन्दका लाभ है।

तसान्निजनिजद्यितान् कृष्णाकारान् पद्यन् खपरनृपतिपत्नीरन्तर्यामी हरिः साक्षात् (प्रवोध-सु० २२३)

उक्त प्रमाणसे सिद्ध होगा कि व्रजरमणीगा श्रीकृष्णमें तन्मयता भाववश निज-निज पतिको कृष्णाकाले दर्शन कर रही थीं और श्रीकृष्ण तो खजन-पर्जन पति एवं पत्नी समीके साक्षात् अन्तर्यामी ही थे। ज श्रीकृष्ण अन्तर्यामी हैं, तो कौन उनका पर था कि परस्रीहरण घट पाता ?

श्रीराधाके उल्लेख

आचार्यपादने कई स्तोत्रोंमें राधिकाका भी उल्लेख किया है । स्थानाभावसे यहाँ कुछ उदाहरण दिवे जा रहे हैं-

परो बर्हापीडः कुवलयद्लोत्फुल्लनयनो निवासो नीलाद्रौ निहितचरणानन्तशिरसि। रसानन्दो राधा सरसवपुरालिङ्गनसुखे जगन्नाथः खामी नयनपथगामी भवतु मे। (जगनाथाष्ट्रक ६)

'जो परात्पर मयूरपिच्छशेखर हैं, जिनके आनन्दोखल नयन पद्मपळास-सदृश हैं, जिनका निवास नीळाच एवं चरणयुगल अनन्तदेवके मस्तकपर स्थापित हैं, जी रस तथा आनन्दस्रहरूप हैं, श्रीराधिकाके सरस देह-आलिङ्गनमें ही जिनका सुख है, वह जगनायखामी मेरे नयनपथके पथिक हों-

देवकीतनय दुःखद्वाग्ने राधिकारमण रम्य सुमूर्ते॥

१— कुछ लोग भागनतंश्को अर्वाचीन, ईसाकी १४वीं शतीमें वोपदेनद्वारा प्रणीत कहकर दुराग्रहपूर्ण सर्वथा मिया कुतर्क उठाते हैं । यह निश्चित है कि स्वयं शंकराचार्यने इसे श्रासपञ्चाच्यायीं से उद्धृत किया है, साथ ही इसके अन्य वर्ष (अन्युताष्ट्रक ४) इसापूर्व ५ वीं शतीतकके अनेक प्रन्थोंमें उद्भृत है। अतः भागवतः कदापि आधुनिक एवं जाली (जैसा द्यानन्द्जीकी मत है) नहीं है । निःसंदेह यह ज्ञान-वैराग्य एवं अद्भुत दिव्य पाण्डित्यपूर्ण महान् ग्रन्थ साक्षात् प्रमहंस ज्ञुक-प्रोर्क

'आप देवकी-पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए । आप मानव-गणके दुःख-काननके दावानल-खरूप हैं । हे राधिका-रमण ! आपकी मूर्ति अतीव मनोहर है ।'

'माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।'(अन्य अच्युताष्टक २)

'माधव, श्रीधर-जिनकी श्रीराधिकाने आराधना की-

पाधाधरमधुरसिका रजनीकरकुलिलकाः॥ (नारायणगीति १०)

'वारिजभूषाभरण राधारुक्मिणीरमणः।' (ऐ० १२)

्हे श्रीराधाधरमधुरसके रसिक, चन्द्रवंशतिलक। हे कमलकुसुमाभरणमंडित, हे राधारुक्मिणीरमण।

श्रीकृष्ण-चरणकमलमें भक्ति ही उनकी प्राप्तिका प्रकृष्ट उपाय है

'प्रवोधसुधाकर'में आचार्य शंकरने सगुण उपासनाका सहज सरल पथ निर्देश किया है। आपने—'द्धे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त चामूर्त च (बृहदा॰ उप॰ २।३।१) इस श्रुति-मन्त्रको भी उद्धृत कर ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त ये दो रूप बतलाये हैं। श्रीकृष्णचरणोंमें भिक्त ही उनको प्राप्त करनेका सहज एवं सरल उपाय है। आचार्यपादने गीतासे 'क्लेशोऽधिकतर स्तेषामन्यकासक चेतसाम्।' (१२।५) प्रमृति प्रमाणके उल्लेखद्वारा हरिभिक्तिसे ज्ञान-लामकी विधिके मूल तत्त्व (बीज)पर प्रकाश खाला है। श्रीकृष्ण-भक्तिके स्थूल और सूक्ष्म दो भेद हैं। प्रारम्भमें स्थूल भक्तिसे साधन होता है। उसके बाद सूक्ष्म भक्ति आविभूत होती है—

स्थूल भक्ति-प्रकरण

स्वाश्रमधर्माचरणं कृष्णप्रतिमार्चनोत्सवो नित्यम् । विविधोपचारकरणेर्हिरिदासेः संगमः राश्वत् ॥ कृष्णकथासंश्रवणे महोत्सवः सत्यवाद्श्च । परयुक्तौ द्रविणे वा परापवादे पराङ्मुखता ॥ प्राम्यकथासुद्वेगः सुतीर्थगमनेषु तात्पर्यम् । यदुपतिकथावियोगे व्यर्थं गतमायुरिति चिन्ता ॥ (प्रबोषसु॰ १७२—१७४)

"जिसका जो वर्ण और आश्रम तथा तद्र्प धर्मानुष्ठान एवं व्यवहार है, उसे पाळते हुए विविध उपचारसिंहत नित्य श्रीकृष्ण-विग्रह-पूजा और उत्सव करना चाहिये। बारंबार हरिभक्तोंके सङ्ग तथा श्रीकृष्ण-कया-श्रवणसे महान् आनन्द होता है। परस्री, परधन तथा परनिन्दामें विमुखता, साधारण प्राम्यकथा-चर्चासे उद्धेग-बोध, सुतीर्थयात्रामें तत्परता, श्रीकृष्णकी छीछाकथा-विच्छेदसे वृथा आयुक्षय हो रहा है, ऐसी भावना—इस प्रकार स्थूछ मांक करते रहनेपर श्रीकृष्णकथा अर्थात् भगवनामके अनुप्रहसे कमशः सूक्प-मिक्का उदय होकर श्रीकृष्ण अपने मक्तके हृदयमें प्रविष्ट होते हैं।"

ध्यान-विधि-प्रकरण

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने महारम्ये।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरणं चरणोपरि न्यस्य॥
तिष्ठन्तं घनशीलं स्रतेजसा भासयन्तमिह विश्वम्।
पीताम्बरपरिधानं चन्दनकपूरिलिप्तसर्वाङ्गम्॥
आकर्णपूर्णनेत्रं कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम्।
मन्दस्मितमुखकमलं सकौस्तुभोदारमणिहारम्॥
(प्र० सु० १८४—८६)

आचार्यपादने श्रीकृष्णध्यानका इस प्रकार सुन्दर वर्णन किया है। वे कहते हैं—'श्रीहरि यमुना-तटपर परमरमणीय वृन्दावनकाननमें कल्पतरु पाददेशमें बार्ये चरणपर (दिश्वण चरणका) विन्यासकर त्रिमङ्गमुद्रामें पीताम्बर-परिधान घनश्याम-वर्ण अथ च निज तेजद्वारा विश्वको उद्गासित कर रहे हैं। उनके नयनयुगल आकर्ण विस्तृत, दोनों कर्णमें कुण्डल, सर्वाङ्ग चन्दन-कर्पूरिलम, मुखकमलपर मृदु हास्य है। कौस्तुममणि हार, वलय, अङ्गुलीय आदि अलंकार गलेमें निलम्बित वनमालाको उज्ज्वल कर अपने तेजसे किलकालको दूर कर रहे हैं । गुञ्जापुञ्जसमन्त्रित उनके शिरोदेशपर अलि-कुछ गुझन कर रहा है। आप गोपबाठकोंके साथ मोजनरत होकर कुञ्जवनमें स्थित हैं। यह कृष्णामूर्ति स्पृति-पुराणादिद्वारा अनुमोदित है, यह कह देना पर्याप्त है ।

सक्ष्म-भक्ति प्रकरण

स्मृतिसत्पुराणवाक्यैर्यथाश्रितायां हरेर्मृतौँ। मानसपूजाभ्यासो विजननिवासेऽपि तात्पर्यम् ॥ सत्यं समस्तजन्तुपु कृष्णस्यावस्थितेज्ञानम्। अद्रोहो भूतगणे ततस्तु भृतानुकम्पा स्यात्॥ प्रमितयहच्छालाभे संतुष्टिर्दारपुत्रादौ । शून्यत्वमतो निरहंकारत्वकोधः॥ ममता मृदुभाषिता प्रसादो निजनिन्दायां स्तुतौ समता। सुखदुःखशीतलोष्णद्रन्द्रसहिष्णुत्वमापदो न भयम् (प्रबोधसु० १७६—७९)

'त्रह्मसंहिताप्रमृति स्मृतियाँ तथा विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवतप्रमृति सात्त्विक पुराणोंक श्रीहरिमूर्तिमें मानस घ्यान, पूजाके अम्यास, निजनवास-तत्परता, सत्य आचरण, समस्त भूतमें कृष्णात्रस्थानज्ञान, प्राणसमूहमें अद्रोह---- उससे उत्पन्न भूतद्या, यादिन्छक खल्पळाभमें संतोप, स्त्री-पुत्रादिके प्रति ममता-स्याग, निरहंकारित्व, अक्रोध, मृदुभाषिता, प्रसन्नमाव, निज-निन्दा तथा स्तुतिमें समभाव, सुख-दु:ख-शीतोणादिमें द्वन्द्व-सिहण्युता, त्रिपद्में निर्मीकता, निद्रा, आहार-विहारमें अनादर, निःसंगभाव, लैकिक वाक्य प्रयोगमें अनवसर, श्रीकृष्णस्मरणमें शाश्वती शान्ति, कोई भी श्रीकृष्ण-कीर्तन वा वंशीवादन करनेपर आनन्दाविभीव तथा

युगपत्, अष्ट सात्विक भावका उद्देक ये भाव स्था होनेपर आनन्दमय अवस्था होती है। फिर काम्ह सर्वजीवमें भगवद्भावदर्शन एवं भगवान्में सर्वभूतर्शन्त होगा । इस प्रकार हरिदास श्रेष्ठ होते हैं ।

कलिमें नाम-कीर्तन एवं लीला-चिन्तन शंकतः मतमें भगवत्प्राप्तिके श्रेष्ठ लघूपाय हैं

आचार्य शंकरने कई स्थानोंपर कहा है कि कलिकालमें भगवनाम ही श्रेष्ठ उपाय है। आपने नाम माहात्म्य-स्थापनके लिये 'विष्णुसहस्रनामैभाष्य' एवं 'ललितात्रिशती' भाष्य का प्रणयन किया-

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ (नारदपु० १ । ४१ । १९०)

इस प्रसिद्ध वचनको आचार्यपादने 'विष्णुसहस्रनाम भाष्यं (१०)में उद्भृत कर जगत्के समक्ष स्थापि किया । इसी २ळोकका प्रायः डेढ़ सहस्राब्दि बाद कु परिवर्तित रूपमें श्रीमन्महाप्रमु चैतन्यदेवने भी बड़ा प्रचार किया था। इसमें संदेह न हीं कि आचार्य शंका भगवत्पाद आदर्शमें अद्दैतवादी थे, किंतु सर्वसाधारणके लिये सगुण उपासना, सूर्तिपूजा, नामकीतनप्रसृति प्रणालीकी आपने सम्पूर्ण अनुमोदन किया और उसके लिये अनुशीलनके लिये बहुत प्रचार किया । वैदिक वर्णाश्रमी सनातनधर्मकी यही मुख्य आधारिमत्ति है। इसिल्ये नामकीर्तन, अर्चा, (मूर्ति)-उपासनादि सदैव वैदिक याग-क्रियाके साथ-साथ ही अनुष्ठेय रहे हैं।

१—आचार्यपादने पद्मपुराण (उत्तर १७१)के वासुदेव सहस्रनामका भाष्य भी प्रणयन किया था। (क्ल्याण)भागवताई। २—इधर एं॰ उदयवीर शास्त्रीके 'वेदान्त-दर्शनंश्के इतिहास भाग १ तथा काञ्ची-मठके द्वारा 'पाल ऐण्ड कम्पनी' मद्राससे प्रकाशित "The Age of Shankar" पुस्तकके आधारपर आचार्यका स्थितिकाल ५०९-४७७ ईसा पूर्व निर्धित किया गया है। इसमें शारदा, गोवर्धनादि ३ अन्य मठोंकी समयतालिकाओंकी भी सहमति है। इसके अनुसार महाप्रभु चैतन्यकी समय आचार्य दांकरके १८०० वर्ष बाद होता है। कस्याण वर्ष ११में पहले भी इस आशयके दो लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

ईश्वर, जीव और संसारके सम्बन्धमें भगवान् श्रीआद्यशंकराचार्यके विचार

(ब्रह्मळीन जगद्गुरु शंकराचार्य खामी भारतीकृष्णतीर्थं महाराज)

विशाल विश्वके एक छोरसे दूसरे छोरतक ऐसा कोई भी सचेतन मननशील व्यक्ति न हुआ, न है और न होगा, जिसके मनमें कटोपनिषद्का 'अस्तीत्येके नाय-मस्तीति चैके'---यह सब प्रश्नोंका एक प्रश्न न उठा हो और उत्तर पानेके लिये उसको वार-वार व्याकुल न किया हो कि 'जन्म लेनेसे पहले मैं था अथवा नहीं ? यदि था तो क्या, कहाँ और कैसे था ? मैं कहाँसे आया हूँ ? इस समय में क्या हूँ ? मैं कव मल्ँगा और इसके बाद मेरा अस्तित्व रहेगा या नहीं ? यदि मेरा अस्तित्व रहेगा तो मैं क्या, कहाँ और किस प्रकार रहूँगा ? मैं कहाँ जाऊँगा ? मेरा अन्तिम लक्ष्य क्या है ? और उसे प्राप्त करनेका साधन क्या है ?' बुद्धिमान् और मूर्खमें इतना ही अन्तर है कि बुद्धिमान् इस समस्यापर छगातार अध्ययन, ध्यान, विचार और विमर्श करता जाता है, जबतक इसका रहस्य उसके सामने प्रकट नहीं हो जाता, किंतु मूर्ख ऐसी समस्याओंको हल करनेके लिये आवश्यक मानसिक और वौद्धिक योग्यतासे रहित होनेके कारण, इनसे शीव्र तंग आकर निराशावश इनको छोड़ बैठता है। परंतु इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता कि चिन्तनशील और मूर्ख दोनों ही अपने हृदयमें अपने-आप उठनेवाले इस प्रश्नका अनुभव समानरूपसे करते आये हैं और सदा अनुभव करते रहेंगे। अन्तर केवल परिणाममें है।

आवश्यकता

किंतु यह एक ऐसा विषय हैं, जिसपर सभी विचारशील पुरुत्रोंको गम्भीरतापूर्वक विचार, सावधानीसे जाँच और यथावत् निर्णय करना चाहिये; क्योंकि यह खयं सिद्ध है कि जबतक हमें अपने गन्तव्य स्थानका पता नहीं होगा तबतक सम्भवतः हम उस लस्यतक पहुँचानेवाले मार्ग और साधनका विचार भी नहीं करेंगे। और कुछ नहीं तो अपनी साधारण मानिसक शान्तिके लिये भी इन समस्याओंका हल करना परम आवश्यंक है कि हम क्या थे, क्या हैं और क्या होना चाहते हैं तथा किस प्रकार अपनी वर्तमान स्थिति-से उस स्थितिपर पहुँच सकते हैं जहाँ हमें पहुँचना चाहिये अथवा जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं।

इन प्रश्नोंपर विचार करनेके लिये सर्वप्रथम हमें यह जान लेना चाहिये कि आत्माकी उपाधि, गुण और खरूप अथवा वैज्ञानिक भाषामें, उसके लक्षण क्या हैं, इत्यादि, इत्यादि । इसलिये हम संक्षेपमें उन पहलुओंका विचार करेंगे जिन पहलुओंसे इस प्रश्नकी मीमांसा की जा सकती है और यह निश्चय करेंगे कि इस प्रश्नपर गम्भीर विचार करनेपर उसका निश्चित और अन्तिम उत्तर क्या हो सकता है ।

पद्धति—इस प्रयत्नमें हम श्रवण और मननकी भारतीय पद्धतिका अनुसरण करेंगे अर्थात् शास्त्रोंके अवलोकनसे प्रारम्भ करके इन प्रश्नोंपर विभिन्न तार्किक दृष्टियोंसे समालोचनात्मक और विश्लेषणात्मक विचार करते हुए यह निश्चय करेंगे कि शास्त्र और तर्क दोनोंका इस विषयपर कहाँतक अविरोध है।

सनातनधर्मके यन्थ—हमें चाहिये कि हम इस पद्धितका आश्रय लेकर सत्यके सच्चे और उद्योगी अन्वेषककी भाँति अपनी बुद्धिको राग-द्वेष और पक्षपातसे मुक्त कर लें और ईस्वर, जीव तथा संसारके पारस्परिक सम्बन्धका विचार करना प्रारम्भ कर दें। श्रवण अर्थात् एतद्विषयक शास्त्रीय सिद्धान्तके सम्बन्धमें सबसे आवस्यक ध्यान देनेकी बात यह है कि यदि कुछ क्षणके लिये हम इसके अतिरिक्त अन्य विषयोंका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंको अलग कर दें और कैवल इसी विषयका विचार करनेवाले नेदादि शास्त्रोंको हैं तो हमें उनके अन्दर इस बातमें आश्वयंजनक समानता मिलेगी कि वे ईश्वर, जीव तथा जगत्**को भिन्नताका प्रतिपादन नहीं** करते; केवल इतनी ही वात नहीं है, अपितु इस प्रकार-के (भिन्नताप्रतिपादक) विचारोंका निषेध भी करते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे शुद्ध अद्वैतवादका उपदेश करते हैं। इस प्रकारके हजारों वचनोंमेंसे उद्भृत किये कुछ योड़े-से चुने हुए वचन यहाँ नीचे दिये जाते हैं-

१-(एको देवः सर्वभूतेषु गृढः सर्वव्यापी सर्व-भूतान्तरात्मा।' (एक ही ईखर सब भूतोंमें छिपा हुआ है; वह सर्वत्र न्याप्त और सब प्राणियोंका अन्तरात्मा है।)

२- नेह नानास्ति किञ्चन ।' (सम्पूर्ण विश्वके विभिन्न पदार्थोमें परमार्थतः कुछ भी अन्तर नहीं है— इसमें नानात्व नहीं है।)

३-'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव प्रयति।' (जो विश्वमें नानात्व देखता है, वह जन्म-मरणके अनन्त चक्रमें पड़ता है।)

४-'द्वितीयाद्वै भयं भवति ।' (द्वेतकी कल्पनासे ही भय, सन्देह, चिन्ता, संघर्प, त्रृणा और संसारक अन्य दु:ख उत्पन्न होते हैं।)

'4-'उद्रमन्तरं कुक्ते अथ तस्य भयं भवति।' (जब कुछ भी द्वेतकी भावना मनुष्यको होती है तो उसे भय होना प्रारम्भ हो जाता है।)

६-'स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः।' (इस पुरुषके भीतरका आत्मा और सूर्यके भीतरका आत्मा एक ही है।)

७- 'सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।' (सच्चे ज्ञानीको सत्र परार्थ आत्मरूप दिखायी पड़ते हैं।) ८-'तत्र को मोद्दः कः शोक एकत्वम्जुपद्यतः।' (जो सब पदार्थीमें अमेर देखता है उसको न अज्ञान

९-।यसिन्नेकसिन् ज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातंभवति (जिस एकके जान लेनेसे संसारके सारे पतार्थे) ज्ञान हो जाता है।)

१०-'ईशावास्यमिदं सर्वम् ।' (सारा संस एकमात्र ईश्वरसे व्याप्त है, ऐसा समझना चाहिये।)

११- जेतदात्रयमिदं सर्वम् ।' (यह सात नि ईश्वरह्म है।)

१२- स आत्मा तत्त्वमसि इवेनकेनो। (ह रवेनकेतो ! आत्मा ऐसा है, और तुम वही हो ।)

इन विस्तृत विभिन्न वचनोंके अतिरिक्त यह साराशि बात ध्यान देनेकी है कि मुक्तिकोपनिषद्में भगवा श्रीरामचन्द्र श्रीहनुमान्जीको एक सौ आठ उपनिपर्तेष विस्तृत नामावली और विवरण देते हुए कहते हैं कि म सबका सार माण्डूक्योपनिषद्में मिलता है (— माण्डूका मेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये।' अर्थात् भववन्यते मोक्ष चाहनेवालोंके लिये केवल माण्डक्य ही पर्याप्त है)। माण्ड्रक्योपनियद्का प्रारम्भ इन मन्त्रोंसे होता है-

१३-१४-'ओमित्येतवक्षरमिदं सर्वं तस्योग व्याख्यानं भृतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार प्र यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तद्दप्योद्धार एव । सर्वे ह्येनद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म।

(अर्थात्—पवित्र ओंकार अक्षर-(ईश्वर-)का प्रती है, सब कुछ उसीकी अभिन्यक्ति है; जो कुछ या, या होगा सब ओंकार है, और जो कुछ त्रिकालती है वह भी ओंकार ही है; यह सारा विश्व ब्रह्म है, य (न्यष्टि) आतमा भी ब्रह्म है।) इसके पश्चा माण्ड्रक्योपनिषद् जाप्रत्, खप्न और सुषुप्ति नीर अवस्थाओंमें जीवात्माकी (भिन्न-भिन्न रहपोंमें अभिव्यर्क सवशक्तिमान् विश्वारमा तथा ओंकारके साथ (जो है मिलकार भगवान्कं खरूपको न्यक्त करते हैं) एक दिग्वलानी है।

है और न शोक।)

यह माण्ड्रक्योपनिषद्, जिसमें केवल बारह छोटे-छोटे मन्त्र हैं और जो इसीलिये अन्य सब उपनिषदोंसे छोटी है, किंतु भगवान् रामचन्द्रजीने जिसे योग्यतामें सबसे बड़ी बताया है, भगवान् आदि जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यके अद्वैतसिद्धान्तका प्रतिपादन करती है। बास्तवमें माण्ड्रक्योपनिषद् और अद्वैत पर्यायवाची शब्द हैं। माण्ड्रक्योपनिषद्का मानना और अद्वैतसिद्धान्तको न

जो श्रुतियाँ ईश्वरद्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन करती हैं, वे भी इस विषयका स्पष्ट निर्देश करती हैं—

१'५-'सच्च त्यचाभवत्।' (वह खयं स्थूल और मूक्ष जगत् वन गया।)

१६-'सोऽकामयत एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय ।' (उसने इच्छा की —'मैं एक हूँ । अनेक वन्ँगा, बहुत रूपोंमें व्यक्त होऊँगा') और इस प्रकार विश्वकी उत्पत्ति हुई । उसने यह नहीं कहा कि—'मैं बहुत-से पदार्थोंको रचूँगा', कितु,केवल भें बहुत-से पदार्थ बन्ँगा'—यह कहा । उसने यह नहीं कहा कि — भें बहुत-से पदार्थोंको व्यक्त करूँगा, किंतु केवल भें बहुत-से पदार्थोंमें व्यक्त होऊँगा'--ऐसा कहा । यदि इम यह मानते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है और बह उस अद्भ —प्रमादी व्यक्तिकी तरह नहीं है जो त्रिचार कुछ करता है और कार्य विल्कुल उससे भिन करता है, तब तो यह साधारण-से-साधारण बुद्धिवाले मनुष्यके लिये भी स्पष्ट है कि जब ईश्वरने बहुत हो जानेकी इच्छा की और इससे सारा विश्व उत्पन्न हुआ, तव इस दशामें या तो चुपचाप इस बातको स्त्रीकार करना चाहिय कि विश्व अनेक रूपोंमें उसीकी अभिन्यिक है अथवा उसकी सर्वशक्तिमत्ताको अखीकार कर उसकी

अदक्ष मानना चाहिये । तार्किक दृष्टिसे तीसरा कोई विकल्प नहीं है ।

उन नवीन विचारवालोंके सन्तोषके लिये भी जो केवल संहिताभागको ही प्रमाण मानते हैं (किंतु उपनिपदोंको नहीं), हम कह सकते हैं कि पुरुषसूक (कृष्ण और शुक्ल यजुर्वेदसंहितामें) स्पष्ट घोषणा करता है कि —

१७-प्रजापतिश्चरित गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।'

(सृष्टिकर्ता ईश्वर ही गर्भमें चलता है । वह अजन्मा ईश्वर ही अनेक रूपोंमें उत्पन्न होता है ।)

जिसके प्रामाण्यको हम सब लोग मानते हैं और जिसको पाश्चास्य दार्शनिक संसार (जैसे, कार्लाइल, इमर्सन प्रभृति) भी खीकार करता है तथा जिसके प्रति मौखिक श्रद्धा प्रदर्शित करना आधुनिक युगमें विद्याप्रेमका प्रतीक हो रहा है, वह गीता भी अहैतका ही उपदेश करती हैं। हम संक्षेपमें इसका निर्देश करेंगे। इसको स्पष्ट करनेक लिये दो उद्धरण पर्याप्त होंगे—

१८-ब्रह्मार्पणं ब्रह्म इविर्ब्रह्माग्नी ब्रह्मणा दुतम्। ब्रह्मीय तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

(यज्ञकी सामग्री ईश्वर है, उसका अर्पण करना ईश्वर है, यज्ञाग्नि ईश्वर है, होता ईश्वर है, यज्ञकमें के पीछे रहनेवाला केन्द्रीभूत घ्यान ईश्वर है और इससे प्राप्त होनेवाला फल भी ईश्वर ही है गीता थ । २४)।

१९-इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रक्ष इति तद्विदः॥

क्षेत्रक्षं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।

क्षेत्रक्षेत्रक्षयोक्षीनं यत्तरकानं मतं मम॥

यहाँ इस यह भी कह सकते हैं कि आर्यसमाजके संस्थापक तथा संहिताप्रामाण्यवादके प्रवर्तक स्वामी द्यानन्द सरम्वर्ता भी अपने 'शुक्छयजुर्वेदसंहिताभाष्य'में इस मन्त्रकी स्याख्या ठीक वैसी ही करते हैं बैसी इसने की है। (यह शरीर क्षेत्र कहलाता है, जो इसका अनुभव करता है वह क्षेत्रज्ञ या आत्मा कहलाता है, सब शरीरोंमें मुज्ञको ही आत्मा समज्ञो, मेरे विचारमें शरीर और आत्माका ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। गीता १२। २-३)

अन्य धर्म

जिन वाक्योंमें बाइबिछने आध्यास्मिक तत्त्वोंकी आछोचना की है, उनमें वास्तवमें अद्वैत-सिद्धान्तका ही प्रतिपादन पाया जाता है। उदाहरणार्थ महात्मा ईसाके ये वाक्य देखे जा सकते हैं—

२०-'ईश्वरका राज्य तुम्हारे भीतर है ।'

२१-'खयं तुम देवता हो।'

सूफियोंने भी इन आध्यात्मिक प्रक्तोंपर विचार किया है और वे पूर्णत: अद्वैतवादी हैं।

पाश्चास्य दार्शनिक-अधिक विस्तारमें जानेकी आवश्यकता न समझकर, हम 'मनन'के इस तुल्लनात्मक विचारको, दारानिक इतिहासके एक प्रसिद्ध तथ्यका उल्लेख करते हुए, यहीं समाप्त करते हैं । प्राचीन यूनानके प्लेग्रेसे लेकार आधुनिक दार्शनिकोंमें स्वेडेनवर्ग, व इसवर्य, ब्राउनिंग, कार्ळाइळ, इमर्सन, विशाप, बकले, हेगल, फिप्टे, इमेंन्युअल, काण्ट, राल्फ वाल्डो टाइन, टामस हिल प्रीन, विलियम वांकर ऐटिकिन्सन, एला द्बीळर विळकाक्स, प्रोफेसर डायसनतक पाश्चात्त्य संसारके समस्त मनोविज्ञानी तथा अध्यात्मज्ञानी भी जडवादियोंके द्वैतवादके विरुद्ध भगवान् श्रीशङ्करके आदर्शवादका ही समर्थन करते आये हैं। संसारके विद्वानों और तार्किकों में श्रेष्ठ भगवान् राङ्करने ही अपने निर्दोत्र युक्तिवाद और गम्भीर मननके खाभाविक परिणाम अर्थात् विशुद्ध अद्वेतवादरूप परम सिद्धान्तको अदम्य साहसके साथ स्वीकार किया। ×

युक्तिवाद-अब हम मननकें दूसरे अंश अयोत इस समस्याके वास्तविक खरूपके आधारपर उस खतन्त्र दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विचारपर पहुँचते है क्योंकि हमारे तुल्लनात्मक विचारके परिणामसत्त्र मनोवैज्ञानिक क्रमसे, यह दूसरा प्रश्न सामने आता कि हम इस विचित्र अनुभवकी व्याख्या कैसे को ह पश्चिमके इन सभी बड़े-बड़े विचारकोंने, जिनमे बहुतोंका वेदोंमें विश्वास नहीं है और कुछको ते वेटोंके नाम और अस्तित्वका भी पता नहीं है. अस्क किंत यथार्थ रीतिसे और अपने भिन्न एवं सतन युक्तिवादकी पद्धतिसे भगवान् शंकरद्वारा प्रतिपक्षि अद्वैतसिद्धान्तको स्वीकार किया है । और, इस प्रश्नन एकमात्र उत्तर, जिसे कोई भी यथार्थ विचार करनेवाद न्यायप्रिय और पक्षपातरहित व्यक्ति दे सकता है, य है कि केवल अहैतवेदान्त ही यथार्थ विचारकी कसौती ठीक उतर सकता है, और इसलिये पाश्चात्त्य दार्शनिकी भी प्राच्य अद्वेतवादके विरुद्ध अपने स्वभावगत आप्रहर् होते हुए भी सच्चे विचारककी हैसियतसे विवश होता अद्वेतवेदान्तको स्त्रीकार किया है। दूसरे शब्दी अद्वैत-नेदान्तका अद्वैत-ही एक ऐसा सिद्धन है, जिसका युक्तिवाद भी समर्थन करता है।

विधि—इस दृष्टिकोणसे मननपूर्वक तथा यथावा इस समस्याका विचार करने और उसे हुळ कातें छिये अव हम छौटकर उन प्रश्नोंपर आते हैं, जिले हमने यह विचार प्रारम्भ किया था, अर्थात् हम कहीं आये हैं, हमारा वास्तविक खरूप क्या है, इस सके हम क्या हैं, हम कहाँ जाना चाहते हैं ! इत्यारि अध्यात्मशास्त्रमें इन सब प्रश्नोंका एक प्रश्न है, जिसके यथार्थ उत्तर सबके छिये सच्चा आनन्द प्राप्त कर्ति वहुत सहायक होगा। × × × (क्रम्का

विशिष्टाद्वेत-सिद्धान्तकी उपपत्ति

(जगद्गुरु श्रीश्रीभगवद्रामानुजसम्प्रदायाचार्य ब्रह्मलीन श्रीअनन्ताचार्य खामीजी महाराज)

'एकसेवाद्वितीयं ब्रह्म'—आदि श्रुतिवाक्य ब्रह्मके एकत्वका प्रतिपादन करते हैं। अद्वैतवादी और विशि ग्राह्मैतवादी दोनोंने ही अपने-अपने अद्वैत-सिद्धान्त-सम्प्रदाय श्रुतिप्रामाण्यसे ही स्थापित किये, पर दोनोंकी प्रक्रियाएँ भिन्न-भिन्न थीं। अद्वैतवादियोंके मतानुसार 'सत्यं शानमनन्तं ब्रह्म' आदि वेदान्तवाक्य ब्रह्मका खरूप ऐसा वतलाते हैं कि वह एक ही है और वह वही है, तद्भिन्न और कुळ नहीं; परंतु विशि ग्राह्मैतवादियोंके मतानुसार 'गृह गृहि वृद्धौ'—इस धातुके साथ 'मिनन' प्रत्यय होनेसे इस एकमें तीनका समावेश है और वे यह बात श्रुति और स्मृति दोनोंसे प्रमाणित वताते हैं। 'गृहित गृह्मितीत तत्परं ब्रह्म'—यह 'रहस्याम्नाय ब्राह्मण'का वचन है। विष्णुपुराणमें भी इसी अर्थका प्रतिपादक वाक्य है—

'बृहत्वाद् बृंहणत्वाच तद् ब्रह्मेत्यभिधीयते।'

—ये दोनों वचन इस बातको स्पष्ट करते हैं कि वही एक ब्रह्म है, जो खयं बृहत् होने और दूसरोंको बृहत् करनेमें समर्थ है; अर्थात् ब्रह्म वह है जिसमें एक और केवल एक ही पदार्थका होना असम्भव है, प्रत्युत जिसमें अन्य पदार्थ भी हैं जो उसीके द्वारा बृहत् किये जाते हैं। विशिष्टाह्र तवादी कहते हैं कि ब्रह्म एक है और उसमें तीन वस्तुएँ हैं। उनके अद्देत परमात्माका दो अन्य वस्तुओंसे विशिष्ट एकत्व है। वे शास्त्र-प्रमाणसे यही कहते और सिद्धान्ततः प्रमाणित करते हैं; यथा—

'यस्य पृथिवी रारीरं यं पृथिवी न वेद यः पृथिवीमन्तरो यमयति, यस्य आत्मा रारीरं यमात्मा न वेद य आत्मानमन्तरो यमयति' इत्यादि ।

इन तथा अन्य वचनोंसे यह स्पष्ट होता है कि

परमात्मा आत्मा और जड पदार्थ—इन दोनोंमें हैं। अद्वैतवादी कहते हैं कि ब्रह्मका एकत्व अद्वितीय है, पर विशि ग्रह्मेतवादी यह सिद्ध करते हैं कि वह एकाव अद्वितीय नहीं है, प्रत्युत दो अन्य पदार्थोंसे अर्थात् चिन्मय आत्मासे तथा जड प्रकृतिसे विशिष्ट है। इस प्रकारसे विशिष्ट ब्रह्मके प्रतिपादक मतको विशिष्टाई त कहते हैं, जिसमें सत्य, ज्ञान और आनन्द —ये ईश्वरके लक्षण हैं। अद्वेतवादियोंकी यह मान्यता है कि ब्रह्म केवल एक ही वस्तु है और वह अद्वितीय है। इसलिये उनके लिये यह भी कहना आवश्यक हो गया कि यह अखिल विस्व, जो हमारे नेत्रोंके सामने है, मिध्या है। फलतः उन्हें ब्रह्ममें अविद्याकी कल्पना करनी पड़ी, जिसके कारण ब्रह्म अपने अंदर विविध नामरूपात्मक मिथ्या जगत्को देखता है । इस अविधारूप दोपके हट जानेपर ही इस ज्ञानका प्रकाश होता है कि ब्रह्म एक ही है और वह निर्विशेष है। परंतु विशियाद्वैतने अपना सम्प्रदाय जिस मूळ सिद्धान्तपर खड़ा किया वह यह है कि ब्रह्म एक है और उसमें तीन पदार्थ हैं, इसलिये ब्रह्मका एकत्व सिद्ध करनेमें उन्हें इस बातकी आवश्यकता न हुई कि वे इस विश्वको, जिसे हम अपनी आँखोंसे देखते हैं, मिथ्या वताते। यह विश्व ब्रह्ममें छीन है और ईश्वर विस्वमें अन्तर्हित है ('तद्तुप्रविश्य सच्च त्यचाभवत्' इत्यादि), और वह ब्रह्म एक है, इसिछिये जगत्को मिथ्या बताये बिना ही ब्रह्मका एकत्व प्रमाणित किया जा सकता है।

किसी भी वस्तुके ज्ञानके लिये संसारमें तीन प्रमाण माने गये हैं—(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान और (३) शब्द अर्थात् वेद । ये वेद सनातन हैं । प्रत्येक कल्पमें इनकी उसी पदक्रमसे आवृत्ति होती है। इनका रचियता कोई नहीं है, इनकी उत्पत्ति किसी मनुष्य-(पुरुष-)से नहीं हुई है, ये अपौरुषेय हैं । मनुष्यकी मन-बुद्धिमें भ्रम-संशय-विपर्ययादि जो दोष हो सकते हैं, उनकी वेदोंमें सम्भावना नहीं; क्योंकि वेद मनुष्य-प्रणीत नहीं हैं । वेद खत:प्रमाण और अपौरुषेय हैं । इसल्यि उनके सम्बन्धमें मान्यता प्राप्त प्रामाण्यको अन्यथा नहीं कहा जा सकता । यदि कभी वेदोंमें हमें कोई ऐसी बात मिलती है जो प्रस्यक्ष प्रमाणके विरुद्ध या परस्पर विरुद्ध-सी मान्द्रम होती है तो यह दोप वेदोंका नहीं, बल्कि वेदोंके[समझनेमें हमारे दृष्टिकोणका है। ऐसे अवसरोंपर हमलोगोंका कर्त्तव्य होता है कि इम वेदवाक्योंके भावको ठीक तरहसे समझें और उस विरोधाभासका परिहार करें अर्थात उन बार्तोंका ठीक तात्पर्य समझें जो हमें प्रत्यक्ष प्रमाणके विरुद्ध या परस्पर विरुद्ध माल्रुम होती हैं। मीमांसाशास्त्र इसीलिये है कि कुछ स्थानोंमें जो विरोधाभास प्रतीत होता है, उसका बास्तविक अभिप्राय इम माछ्म कर सकें। वेट्रोंका प्रस्येक अक्षर और प्रत्येक राब्द प्रमाण है और वेद तथा वेदान्त ही ब्रह्मकी सत्ता प्रमाणित करते हैं, और कोई प्रमाण ब्रह्मकी सत्ता प्रमाणित नहीं कर सकता ।

वेदान्तशाखसे ब्रह्ममें तीन पदार्थोंका होना स्पष्टतया प्रमाणित है—(१) जड पदार्थ अथवा जड प्रकृति, जिसके प्रधान, प्रकृति, माया और अविद्या नाम हैं, (२) चेतन आत्मा, जो अणुप्रमाण है, और (३) ईस्वर जो विभु है, सर्वनियन्ता है और सत्य-ज्ञान-आनन्दरूप कल्याण-गुणोंसे विशिष्ट हैं। ब्रह्ममें ये तीनों पदार्थ एक साथ रहते हैं। प्रत्येक शरीरमें हम देखते हैं कि शरीरमें रहनेवाटी एक चेतन आत्मा होती है, ठीक ऐसा ही सम्बन्ध ईस्वर और आत्माक बीच तथा ईस्वर और जड पदार्थक बीच भी होता है; अर्थात जिसे इम ब्रह्म कहते हैं वह उस ईस्वरसे भिन्न नहीं है

जो चेतन आत्मा और जढ प्रकृति दोनोंमें रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन तीनों पदार्थोंकी समक्रि का नाम ही ब्रद्धका अद्वैत है।

इस संसारमें हम दो प्रकारक जीव देखते हैं (१) मनुष्य, पशु, पश्ची आदि, जिनमें अधिः प्राणशक्ति हैं और (२) पापाण, वृक्ष आदि, जिन्ने अल्य प्राणशक्ति है । पहला वर्ग जङ्गम कहलाता है औ दूसरा स्थात्रर । प्रत्येक सत् त्रस्तु उसी त्रेत-(तीनोंक समुदाय-)में है । कोई जड पदार्थ आत्मा और ईश्वरके विज नहीं रह सकता, कोई आत्मा प्रकृति और ईश्वरके विन नहीं रह सकती और ईस्वर भी प्रकृति और आलाके विना नहीं रहता । उदाहरणार्थ मनुष्यको ही लीजिये। मनुष्यका अर्थ आपाततः शरीर ही होता है। ग्रि अधिक सूक्ष विचार करनेपर उसका अर्थ होता है उस शरीरमें रहनेवाला जीवात्मा और वेदोंका तो यह कहना है कि जीवात्मा जिस तरह शरीरमें रहकर उसे चलाता है उसी प्रकार जीवारमामें ईस्वर रहता और उसका नियन्त्रण करता है; अर्थात् ईस्वर प्रत्येक पदार्थके अंदर स्थि रहता है।

मनुष्य अपनी बुद्धिक अनुसार अपनेको या ते (१) शरीर समझता है, या (२) शरीर में रहका उसका संचाटन करनेवाले चेतन आत्माका अनुमान करती है, अथवा (३) वेदान्तकी प्रक्रियाके अनुसार संयक्ष अनुसन्धान करके अपने आपको उस आत्माके अंदर रहनेवाला ईश्वर समझता है । मनुष्यका ज्ञान उसकी विवेकशक्तिकी गहराईके अनुसार होता है । अतः सिद्धान्त यही है कि शरीर तथा उस शरीरको धारणपोषण करनेवाला जीवारमा और उस आत्माको भी धारणपोषण करनेवाला जीवारमा और उस आत्माको भी धारणपोषण करनेवाला तथा उसका नियन्त्रण करनेवाल ईश्वर — इन तीनोंको समष्टि ही यथार्थ अद्वेत है । प्रत्येक वस्तुमें यह त्रेत रहता ही है । वेदोंमें इसके लिये अनेक प्रमाण है और अनेक प्रविचारोंन इस सिद्धान्तके

एकमात्र सत्य माना है। इसिंखये संसारका प्रत्येक पदार्थ त्रेतात्मक है, किसी भी हाल्द्रतमें अक्षितीय नहीं है। तात्पर्य यह कि इनके मतमें वेदान्तसे परिणामबाद प्रमाणित होता है, विवर्तवाद नहीं।

परिणामबाद्का खरूप यह है कि कारण ही कार्य बन जाता है; जैसे घटका कारण मृत्तिका है और घटका कारण मृत्तिका है और घटका कारण मृत्तिका है कीर घटका कार्य कार्य भी मृत्तिका ही है — मृत्तिका ही घटक्पको प्राप्त हुई है। इसिलिये कार्य और कारण एक-से ही होने चाहिये; कारणके गुण ही कार्यके गुण हैं। इस संसारक्ष्प कार्यमें यदि हमें तीन पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं तो इसके कारणमें भी उन तीन पदार्थोंका होना आवश्यक है। वे कहते हैं कि ब्रह्म इस जगत्का कारण (उत्पन्न करनेवाला) है, जिसका अर्थ यह हुआ कि एकके भीतर जो तीन छिपे हुए हैं वे ही एकके अन्तर्गत तीनके रूपमें प्रकट हो जाते हैं। यही परिणामबाद है। यह वेद-सम्मत है। वेद वाक्य है—

'यथा सोम्येकेन मृत्पिण्डेन विश्वातेन सर्वे मृन्मयं विश्वातं भवति' इत्यादि । संसारका कारण संसारके सहश ही होना चाहिये, यह खतः सिद्ध है । कारणब्रह्म और कार्यब्रह्म (उत्पन्न होनेवाला) दोनों समान हैं । कारण ही कार्य बन जाता है । अन्तर केवल इतना ही है कि कारणको हम योगजन्य ज्ञानसे ही देख सकते हैं और कार्यको हम इन चर्मचक्षुओंसे ही देख लेते हैं । अतः संसारका कारणरूप जो ब्रह्म है बह अव्यक्त जडप्रकृति, अव्यक्त चेतन और ईश्वर इन तीनोंकी समिष्टि है । यही अगोचर ब्रह्म—सूक्ष्म ब्रह्म कार्यरूप स्थूल ब्रह्म बन जाता है । इस प्रकार कारण ही कार्यरूपमें परिणत हो जाता है और तत्त्वतः कारण और कार्यमें कोई मेद नहीं है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि जड प्रकृति और आत्मा ही जिसका शरीर है उस ईश्वरमें भी क्या बैसे ही परिवर्तन होते हैं जो संसारके सभी पदार्थोमें होते हैं

जैसे 'अस्ति, जायते, वर्द्धते, विपरिणमते, अपश्लीयते' नक्यति' तो वेद इसका उत्तर देते हैं --नहीं; क्योंकि **उनकी निर्विकारपरक श्रुतियाँ ब्रह्मको अ**विकार्य वतलाती हैं। निर्विकारका अर्थ हं --- जो विकारको प्राप्त न हो। बचा जनमता है, फिर धीरे-धीरे बड़ा होता है और प्रौढ़ होकर फिर वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है। पर वेद कहते हैं कि आरमामें कभी विकार नहीं होता, शरीर ही कैवल बदलता है। अतः कारणब्रह्म जत्र कार्यब्रह्म बनता है तव ईस्वरमें कोई विकार नहीं होता, जड प्रकृति एकदम बदल जाती है और आत्माका भी ज्ञानरूप बदल जाता है --- यद्यपि वह तत्त्वतः सदा एक-सा ही रहता है । ब्रह्म जब इस विविध नामरूपारमक जगत्के रूपमें परिणत होता है तब कोई परिवर्तन होता भी है तो भगवान्की समस्त स्थूछ शरीरोंमें अनुप्रविष्ट होनेकी इच्छाके रूपमें ही हो सकता है। यह परिवर्तन किसी भी दृष्टिसे विकार नहीं कहा जा सकता । इस प्रकार निर्विकारपरक श्रुतियाँ और सूर्म ब्रह्मका स्थूट ब्रह्मके रूपमें परिणत होना—एतद्रूप जो परिणामवाद, ये दोनों ही तर्ककी कसौटीपर खरे उतरते हैं। अद्वैतरूप अथवा एकना ईश्वरका खरूप है और जड प्रकृति और चेतन आत्मा उसका शरीर हैं। इसिंखये यह प्रमाणित ऋरनेके छिये कि जड जगत् तथा ब्रह्मसे मिन कोई चेतन आत्मा है ही नहीं, माथा-पन्नी करनेकी कोई आवस्यकता ही नहीं रह जाती। जगत् सत्य है, जगत्में जितने पदार्थ हैं वे सब सत्य हैं और अद्वैत भी सत्य है। यदि कोई कहे कि काशीमें एक काशी-नरेश रहते हैं और वे अद्वितीय हैं, तो क्या इसका यह मतलब होगा कि उनके राज्य, पुत्र, कलत्र आदि कुछ भी नहीं हैं ! इसी प्रकार ब्रह्माद्वेतका अर्थ है एक ब्रह्म, जिसके शरीर आत्मा और प्रकृति हैं और जिसकी बराबरीका और कोई नहीं है।

संसार ब्रह्मसे ओतप्रोत है और जब हम यह कहते हैं कि ब्रह्म एक है, तब इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं हो सकता कि जगत् है ही नहीं। हम पहले ही कह चुके हैं कि वेदोंका प्रत्येक अक्षर प्रमाण है और वेदोंमें ही अनेक स्थलोंमें इस आशयके वचन हैं कि आत्मा और ब्रह्म दो हैं और कई स्थलोंमें ऐसे भी वचन हैं कि आत्मा और ब्रह्म एक हैं। अहैत सिद्धान्तमें यह मानना पड़ता है कि अभेदप्रतिपादक श्रुतियाँ ही प्रमाण हैं और मेदप्रतिपादक वाक्य मेदकी कल्पनामात्र करते हैं और वह कल्पना सत्य नहीं है। इसलिये उनके मतमें अभेदप्रतिपादक वाक्य ही प्रमाण हैं और मेदप्रतिपादक वाक्य ही प्रमाण हैं और मेदप्रतिपादक वाक्य ताहश प्रमाण नहीं हैं।

परन्तु विशिष्टाद्वैतका मन्तव्य यह है कि दोनों ही प्रकारकी श्रुतियाँ प्रमाण हैं। वेदके किसी एक अंराको प्रमाण कहना और दूसरे अंराको अप्रमाण कहना ठीक नहीं । दोनों ही प्रकारके वाक्योंकी विशिष्टाद्वैतवादियोंने इस प्रकारसे व्याख्या की है कि दोनोंमें कोई विरोध नहीं रह जाता; ठीक जिस प्रकार हम मनुष्यको एक कहते हुए मी उसके आत्मा और शरीरमें मेद पाते हैं इसी प्रकार हमें यह अनुमान करना पड़ता है कि श्रह्म एक हैं --- यह वाक्य ब्रह्मका जीवके साथ तादात्म्य सूचित करता है और साथ ही जीव और ईश्वरकी भिन्नताको भी कायम रखता है । अतः मेद और अमेदका प्रतिपादन करनेवाछी श्रुतियोंमें परस्पर विरोध नहीं है । अमेदप्रतिपादक वाक्य एकके भीतर तीनका वर्णन करते हैं और मेदग्रति-. पादक वाक्य उन तीनोंका अलग-अलग वर्णन करते हैं। इसिंखये अभेद और मेदके प्रतिपादक वाक्योंके अभिप्राय भिन्न-भिन्न हैं, उनमें पंरस्पर विरोध नहीं है और यह कहनेकी भी आवस्यकता नहीं होती है कि श्रुतियोंका एक भाग प्रमाण है और दूसरा नहीं। इसी प्रकार वेदोंमें सगुण ब्रह्मके प्रतिपादक वाक्य

भी मिलते हैं और निर्गुण ब्रह्मके प्रतिपादक भी। भी परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, पर बात इतनी है कि जहाँ निर्गुणका वर्णन है वहाँ यही अभिका है कि ब्रह्ममें कोई प्राकृत गुण नहीं हैं और ज सगुणका वर्णन है वहाँ यह अभिप्राय समझना चाहि कि ब्रह्ममें ऐसे अलौकिक गुण हैं जो ब्रह्ममें ही जड प्रकृति या जीवात्मामें नहीं--- अपहतपाप सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इत्यादि । यह विचार हा बातसे और भी पुष्ट होता है कि उन्हीं श्रुतियोंमें कही कहीं यह कहा गया है कि ब्रह्ममें कोई अवगुण नहीं है और ईश्वरमें अनेक कल्याणगुण हैं। इसल्यि जहां श्रुतियाँ ऐसे शब्दोंमें ब्रह्मका निरूपण करती हैं, बे परस्पर विरोधी-से प्रतीत होते हैं, वहाँ 'निर्विकार' आहे शब्द जगत्के आदिकारणरूप ब्रह्मको सूचित क्रो हैं और 'जीव और ब्रहा भिन्न हैं,' 'जीव और ब्रह एक हैं', 'ब्रह्म निर्गुण हैं', 'ब्रह्म सगुण हैं' इत्याह वाक्योंके सन्दर्भानुसार अलग-अलग अर्थ हैं औ इनमेंसे कोई वाक्य अप्रमाण नहीं है। (ये वाक्य सन्दर्भ और दृष्टिभेदसे उभयथा ठीक हैं, सटीक हैं।)

इस प्रकार विशिष्टाहैतने अन्य अहैत पद्धितका अनुसरण नहीं किया; क्योंकि उन्हें अपने सिद्धान की पुष्टिमें श्रुति-स्पृतिके अनेक प्रमाण मिल गये। वेदके प्रत्येक वाक्यकी प्रमाणता सिद्ध करना ही उनके सिद्धान्तका मुख्य उद्देश्य है। कितनी ही श्रुतियोंमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि जड प्रकृति और जीवात्मा ईश्वरके शरीर हैं और जिस प्रकार जीवात्मा शरीरमें रहनेवाल संचालक है वैसे ही ईश्वर जीवके अन्दर रहकर उसका संचालक है वैसे ही ईश्वर जीवके अन्दर रहकर उसका संचालन करता है। अतः जव हम कहते हैं कि मनुष्य एक है तो वहाँ हम शरीर और आत्माका मेद रखते हुए ही मनुष्यकी एकताका वर्णन करते हैं। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि ईश्वर एक है

तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि जीव और ब्रह्म तथा जीव और प्रकृतिमें मेद है; ये प्रकृति और जीव ईश्वरके शरीरसे भिन्न और कुछ नहीं हैं और इस कथनमें कोई वदतोन्याघात दोष स्न नहीं है। यह विचार हमारे प्रत्यक्ष अनुभवके भी विपरीत नहीं है और इसिलिये (इस पक्षमें) यह कहनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं कि जगत् केवल भ्रम है।

यह श्रीरामानुजाचार्यका विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त है। इसमें श्रुतियोंका साधारण पद्धतिसे ही अर्थ किया गया है और वेदोंके सब भागको प्रमाण माना गया है। उसमें कुछको अप्रमाण माननेकी गुंजाइश नहीं है। श्रीरामानुजाचार्यने अपने इस विशिष्टाइत-सिद्धान्तका ज्ञान बहुत कुछ पूर्वाचार्योसे ही प्राप्त किया था और ब्रह्मसूत्रोंपर किये हुए अपने श्रीभाष्य नामक महान् प्रन्थमें उन्होंने इन पूर्वाचार्योका कृतज्ञतापूर्वक समरण किया है। श्रीरामानुजाचार्यने इन्हों पूर्वाचार्योकी पद्धतिका अवलम्बन करके यह अपना सिद्धान्त स्थिर किया । 'विशिष्टाद्धेत' पदका अर्थ भी 'वास्तविक अद्धेत' के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह नाम श्रीरामानुजाचार्यने स्पष्टतया इसी बातको सूचित करनेके लिये रखा कि ब्रह्माद्देत ईश्वरकी एकताका ही नाम है और वह ईश्वर सकल शुभगुणोंका आकर है और जीवात्मा तथा जड प्रकृति उसका शरीर हैं।

माध्वसिद्धान्तमें भगवत्तत्व-चिन्तन

(संक्षिप्त विवेचन)

(लेखक—श्रीमन्मध्वसम्प्रदायाचार्यं, दार्शनिकसार्वभौम, साहित्यदर्शनाद्याचार्यं, तर्करत्न, न्यायरत्न स्व॰ गोखामी श्रीदामोदरजी शास्त्री)

संहरद्खिलं सकुदुद्यादेव सकललोकस्य । तरणिरिव तिमिरजलिंध जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥†

अखिल विश्वमें चेतनाचेतनात्मक दो ही पदार्थ हैं; अचेतनसंबद्घ विचारशास्त्रको 'विज्ञान' कहते हैं और चेतनसम्बन्धी निर्णयशास्त्रको 'दर्शन' कहते हैं । इस 'दर्शन'के मुख्य दो विभाग हैं—(१) वैदिक और (२) अवैदिक । पुन: प्रत्येकके दो भेद हैं—(१) ईश्वरवादी और (२) अनीश्वरवादी । इस प्रकार कुल चार विभाग हुए । इन चार विभागोंमें प्रत्येकके तात्पर्यमेदसे अनेक अवान्तर भेद भी हैं। फिर भी मेदोपमेदमें सर्वसमन्वय-दृष्टिसे यथार्थ विरोध नहीं रह जाता।

इन दर्शनोंमें जो ई्खरबादी वैदिक दर्शन हैं उनमें

अनेक कारणोंसे 'उत्तरमीमांसा' नामक वेदान्तदर्शन ही सर्वप्रधान है, जिसमें सर्वतोभावेन ब्रह्मतत्त्वोपपादन ही मुख्य उद्देश्य है। इसमें भी दो मार्ग हैं — 'निर्विशेष ब्रह्मवाद, जो 'अद्भैतवाद' के नामसे प्रसिद्ध है और सिवशेष ब्रह्मवाद । यह सिवशेष ब्रह्मवाद पाँच प्रकारका है — (१) विष्णुपरक, (२) शिवपरक, (३) शिक्तपरक, (४) सूर्यपरक और (५) गणपतिपरक । इनमें भी हर एकके कई प्रमेद हैं। प्रथम विष्णुपरक विभागके चार विभाग हैं — (क) विशिष्टाद्ध तवाद, (ख) शुद्धाद्ध तवाद, (ग) द्वैताद्देतवाद और (घ) द्वैतवाद । इनमें अन्तिम जो 'द्वैतवाद' है, उसके सर्वप्रथम उपदेष्टा चतुर्मुख श्रीब्रह्मदेव हैं। अनन्तर परम्परासे

* वदतो न्याघात — अपने ही कथनसे अपना खण्डन करना; जैसे — मेरे मुँहमें जीभ नहीं है। यह कहना भी जीभके बिना असम्भव है, पर कहा गया है।

[†] जैसे सूर्य सम्पूर्ण छोकके अखिल अन्धकार-सागरका एक ही बारके उदयसे संहार कर देते हैं वैसे ही सम्पूर्ण छोकोंके पापोंको एक बारके ही उच्चारणसे नष्ट कर देनेवाला और संसारको मंगल देनेवाला भगवान् श्रीहरिका नाम विजय प्राप्त करे—सर्वोत्कृष्टल्पमें विराजे।

किछियुगों श्रीमदानन्दतीर्थापरनामा 'श्रीमध्याचार्य' ही प्रथम उपदेष्टा हुए; अतएव द्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठापनाचार्य विरुद्ध भी इनका परिचय प्रसिद्ध है । इन्होंने जिस अनादिसिद्ध सम्प्रदायका प्रकाश या प्रचार किया उसीको शास्त्रोंमें एवं ज्यवहारमें 'माध्यसम्प्रदाय' कहते हैं ।

इस सम्प्रदायकं प्राचीन एवं अर्थाचीन आचायेनि सिद्धान्त तथा उपासनाकं विषयमें प्रमाण-प्रमेयोंके विचारमें जितने प्रन्थ लिखे हैं उनका हिसाब अनुष्टुप्टन्दकं परिमाणसे नियुत-(दसलाख-) से कम न होगा; अत: आचायोंने अति संक्षेपसे दिग्दर्शन करानेके अभिप्रायसे माध्यसम्प्रदायके मन्तन्योंका एक शार्ब्लियक्रीडितवृत्तमें संनिवेश कर दिया है; उसीको हम नीचे उद्धृत करते हैं—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत्तस्वतः मेदो जीवगणाः हरेरजुचरा नीचोच्चभावं गताः। मुक्तिनेजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं स्वन्नादित्रितयं प्रमाणमिखलाम्नायैकवेद्यो हरिः॥

इसमें नौ सिद्धान्त कहे गये हैं, इन्हींमें सम्प्रदायका सारा रहस्य आ गया है । देखिये —

- (१) श्रीमच्चसम्प्रदायमें श्रीविष्णु ही सर्वोच्च तत्त्व हैं । चेतन दो प्रकारके हैं—जीव और ईस्वर । दोनोंका खरूप है सिचदानन्दारमक । परंतु 'जीव' मायामोहित है, अत्तएव अनादिकालसे बद्ध है, तथा अज्ञत्वादि नाना धर्मोंका आश्रय हैं । 'ईस्वर', जो विष्णु नामसे प्रसिद्ध है, सर्वज्ञत्व, अनन्तराक्तिसंपन्नत्व आदि अपरिमित अप्राकृत कत्त्याणगुणोंका आश्रय है, अतएव चेतनद्वयमें अति प्रशस्त हैं । (भगवत्तत्त्वके ये दोनों रूप हैं— खरूप नहीं ।)
- (२) जगत् सत्य है, अर्थात् 'रज्जुसपन्याय'से मिथ्या नहीं है; क्योंकि खतःप्रमाण वेदने भगवान्को सत्यसंकल्य कहा है, सन्यसंकल्पका बनाया पदार्थ मिथ्या नहीं हो सकता; अन्यया 'सत्यसंकल्प'का खारस्य ही क्या रह जायना !

- (३) मेद वास्तविक है । मेदशब्दमें । एक्कवचनार्थक विभक्ति लगी हुई हैं, वह मेदलक्ष्म क्षेत्र तात्पर्यसे हैं, वैसे तो मेदक भी पाँच अवान्तर । समझन चाहिये (१) जीव-ईश्वरका मेद, (१ जीव-जडका मेद, (३) ईश्वर जडका मेद, (१ जीवोंका परस्पर मेद और (५) जडोंका परस्पर मेद। सभी मेद वास्तविक हैं, इनमें कोई भी औपचारिक नहीं।
- (४) जीवगण सत्र ईश्त्ररके अधीन हैं, अर्थ जीवोंकी सकल सामर्थ्य भगवदधीन है।
- (५) जीवोंमें तारतम्य है, अर्थात् कैवल संक दशामें ही नहीं, प्रत्युत मोक्षमें भी मिथः (परस्य जीवोंका तारतम्य (अपेक्षाकृत छोटा-बड़ापन) हता है
- (६) खरूपघटक आनन्दका, प्रतिद्वन्तिस्य रहित एवं आवरणशून्य, साक्षात्कार ही जीवका मीक्ष है अर्थात् अपने भीतर रहनेवाले नित्य आनन्दका प्रक हो जाना ही मोक्ष है, जिसमें प्रतिबन्धक तत्त्वका सम्ब न हो एवं जिसमें आवरण भी न हो।
- (७) मोक्षका मुख्य साधन 'अमलामिता । अर्थात् फलाभिसन्धिक्तप मलरहितं जो भगवान् में निष्क प्रीति है वही मुक्तिका प्रधान उपाय है ।
- (८) समस्त वेदोंके द्वारा वेद्य भगवान् विष्णु हैं, अर्थात् यद्यपि वेदोंके प्रतिपाद्य आपाततः अनेक प्रती होते हैं, तथापि साक्षात् और परम्परासे वेदोंका ताल प्रधानतया भगवत्तत्वप्रतिपादनमें ही है।
- (९) प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द —ये तीन रिप्रमाण हैं। भाव यह कि वस्तुसिद्धि प्रमाणांधीन हैं है, अतः उक्त प्रमाणोंसे ही अखिल प्रमेय (यण क्षेय) पदार्थ साधित होते हैं। अन्य दार्शनिकोंने हैं त्यून तथा अधिक प्रमाण भी माने हैं, परंतु इनसे निर्ध अधिक प्रमाण इन्होंमें गतार्थ हो जाते हैं, और न्यून नहीं होता; अतः तीन ही प्रमाण माध्वसिद्धान्तको मान्य रें (स्ती परिप्रेक्यमें माध्वसिद्धान्त भगवत्तस्वका परिविध करता है।)

जगत्में सबसे उत्तम और अवश्य जाननेयोग्य तत्व कौन है ?—ईश्वर

(लेखक--म्व॰ पूच्य भीमहामना मदनमोहन मालवीयजी महाराज)

इस संसारमें सबसे पुरान प्रन्य देन हैं। योरपके विद्वान् भी इस बातको मानते हैं कि ऋग्वेद कम-से-कम चार सहस्र वर्ग पुराना है और उससे पुराना कोई प्रन्य नहीं। ऋग्वेद पुकारकर कहता है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अन्धकारमय था। उस तमके बीचमें और उससे परे केवल एक ज्ञानखरूप स्वयम्भू भगवान् विराजमान थे और उन्होंने उस अन्धकारमें अपनेको आप प्रकट किया और अपने तपसे अर्थात् अपनी ज्ञानमयी शक्तिके सञ्चालनसे सृष्टिको रचा। ऋग्वेदमें लिखा है—

तम् आसीत्तमसा गूलहमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥

इसी वेदके अर्थको मनु भगवान्ने छिखा है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अध्यकारमय या। सब प्रकारसे सोता हुआ-सा दिखायी पड़ता था। उस समय जिनका किसी दूसरी शक्तिके द्वारा जन्म नहीं हुआ, जो आप अपनी शक्तिसे अपनी मिहमामें सदासे क्तमान हैं और रहेंगे, उन ज्ञानमय, प्रकाशमय खयम्भूने अपनेको आप प्रकट किया और उनके प्रकट होते ही अध्यकार मिट गया। मनुस्मृति-(१, ५–६)में छिखा है—

आसीदिदं तमो भूतमप्रशातमलक्षणम् । अप्रतक्यमिविश्वेयं प्रसुतमिव सर्वतः ॥ ततः खयम्भूभँगवानव्यंको व्यजयन्निदम् । महाभूतादिवृत्तीजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ योऽसावतीन्द्रियो प्राह्यो स्क्मो व्यक्तः सनातनः । सर्वभूतमयो चिन्त्यः स एव खयमुद्रभी ॥

ऋग्वेद — 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्' आदि मन्त्रोंद्वारा सर्वप्रथम उस परमात्माकी स्थितिको बताता है जो पृथित्री, आकाश आदि सम्पूर्ण विश्वका धारण करनेवाटा है।

श्रुति और भी कहती है — 'आत्मा वा इदमैक प्वाप्र आसीत्'

एकमेवादितीयम्

श्रीमद्भागवतमें भगवान्का वचन है-

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्सद्सतः परम्। पश्चादहं यदेनच योऽविशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ (२।९।३३)

शिवपुराणमें भी आया है कि—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।
संस्रुज्य विश्वं भुवनं गोप्तान्ते संचुकोच सः ॥
विश्वतश्चश्चरेवायमुतायं विश्वतोमुखः ।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पाद्संगुतः ॥
यावाभूमी च जनयन् दैव एको महेश्वरः ।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥
अचश्चरिप यः पश्यत्यकर्णोऽपि श्रुणोति यः ।
सर्व वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥

श्रीमद्भागवत-(१० ।१४ ।२३)में कहा गया है —

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः

सत्यः खयंज्योतिरमन्त आद्यः।

निन्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः

पूर्णों द्वयो सुक्त उपाधितोऽमृतः॥

इन सब वेद, स्पृति, पुराणके इसी अभिप्रेत तत्त्वको गोस्तामी तुलसीदासजीने थोड़े अक्षरोंमें यों कह दिया है—

ब्यापक एक बद्ध अबिनासी। सत चेतन बन आनँदरासी॥ आदि अंत कोउ जासु न पावा।सति अनुमान निगम जस गावा॥ बिनु पर चळे सुने बिनु काना। कर बिनु कर्म करे बिधि नाना॥ आननरिंदत सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बढ़ जोगी॥ तन बिनु परस नयन बिनु नेसा। ग्रहे ब्राण बिनु बास असेषा॥ अस सब भौति अलौकिक करनी।महिमा तासु जाइ किमि बरनी किंतु यह विश्वास केंसे हो कि ऐसा कोई परमात्मा है ?

जो नेद कहते हैं कि परमात्मा है, ने ही यह भी कहते हैं कि उनको इम आँग्वोंसे नहीं देखते। न संदशे तिष्ठति रूपमस्य न चश्चुषा पश्यति कश्चनैनम्। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व-स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

'ईश्वरको कोई आँखोंसे देख नहीं सकता, किंतु हममेंसे हर एक मनको पितृत्रकर विमल बुद्धिसे उसे देख सकता है।' इसलिये जो लोग ईश्वरको मनकी आँखों- (बुद्धि-)से देखना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मनको पितृत्र कर और बुद्धिको विमल कर उसकी खोज करें।

हम देखते क्या हैं ?

हमारे सामने जन्मसे लेकार शरीर छूटनेके समयतक बड़े-बड़े चित्र-विचित्र दृश्य दिखायी देते हैं, जो हमारे मनोंमें इस-वातके जाननेकी वड़ी उत्कण्ठा उत्पन करते हैं कि वे कैसे उपजते हैं और कैसे विलीन होते हैं। इम प्रतिदिन देखते हैं कि प्रात:काछ पो फटते ही सहस्र किरणोंसे विभूषित सूर्य-मण्डल पूर्व-दिशामें प्रकट होता है और आकाशमार्गसे विचरता सारे जगत्को प्रकारा, गर्मी और जीवन पहुँचाता हुआ सायंकाल पश्चिम-दिशामें पहुँचकर नेत्रपथसे ओझल हो जाता है । गणित-शास्त्रके जाननेवालोंने गणना कर यह निश्चय किया है कि यह सूर्य पृथिवीसे नो करोड़ अट्टाईस छाख तीस हजार मीलकी दूरीपर है । यह कितने आश्चर्यकी वात है कि यह इतनी दूरीसे इस पृथिवीके सब प्राणियोंको प्रकारा, गर्मी और जीवन पहुँचाता है। ऋतु-ऋतुमें अपनी सहस्र किरणोंद्वारा पृथिवीसे जलको र्खींचकर सूर्य आकाशमें ले जाता है और वहाँसे मेघका रूप वनाकर फिर जलको पृथ्वीपर बरसा देता है और उसके द्वारा सत्र घास, पत्ती, तृक्ष, अनेक प्रकारके अन और धान आदि समस्त जीवधारियोंको प्राण और जीवन देता है । गणित-शास्त्र वतलाता है कि जैसा वह एक सूर्य है, ऐसे असंख्य और हैं और इससे बहुत वड़े-बहे

भी हैं जो सूर्यसे भी अधिक दूर होनेके कारण हुन छोटे-छोटे तारोंके समान दिखायी देते हैं। सूर्यके होनेपर प्रतिदिन हमको अनगिनत तारे-नक्षत्र-प्रह क्ष दिखायी देते हैं। सारे जगत्को अपनी किरणोंसे देनेवाला चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनीसे राहि ज्योतिष्मती करता हुआ आकाशमें सूर्यके समान दिशासे पश्चिम-दिशाको जाता है । प्रतिदिन रात्रिके क ही दसों दिशाओंको प्रकाश करती हुई नक्षत्रना प्रहोंकी ज्योति ऐसी शोभा धारण करती है कि उस वर्णन नहीं किया जा सकता । ये सब तारा-प्रह सहें बँघे हुए गोलकोंके समान अनुलङ्कनीय नियमोंके अनुस दिन-से-दिन, महीने-से-महीने, वर्ष-से-वर्ष, बँधे हुए मार्ग भलकते हुए आकाशमें घुमते दिखायी देते हैं। म प्रत्यक्ष है कि गर्मीकी ऋतुमें यदि सूर्य तीवरूपसे वं तपता तो वर्षाकालमें वर्षा अच्छी नहीं होती। यह र प्रत्यक्ष है कि यदि वर्षा न हो तो जगत्में प्राणिमात्रं भोजनके लिये अन और फल न हों। इससे हमको ल दिखायी देता है कि अनेक प्रकारके अंन और फला सारे जगत्के प्राणियोंके भोजनका प्रवन्ध मरीचिमार्व सूर्यके द्वारा हो रहा है। क्या यह प्रवन्य किसी विवेक्कों शक्तिका रचा हुआ है जिसको स्थावर-जङ्गम स प्राणियोंको जन्म देना और पाळना अभी ह है अवन पह केवल जड-पदार्थिक अचानक संयोगमात्रका परिणा है ! क्या यह परम आश्चर्यमय गोलक-मण्डल अप आप जड-पदार्थोंके एक दूसरेके खींचनेके नियममात्र उत्पन्न हुआ है और अपने-आप आकाशमें वर्ष-सेवी सदी-से-सदी, युग-से-युग घूम रहा है, अथवा स्म रचने और नियमसे चलानेमें किसी चैतन्य शिक्ति हाय है ! बुद्धि कहती है—वेद भी कहते। कि है। वे कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमाको, आकार और पृथ्वीको परमात्माने रचा--

स्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयद् दिवं च पृथिवां चान्तरिक्षमधो खः।

प्राणियोंकी रचना

इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत्की रचना इस वातकी घोषणा करती है कि इस जगत्का रचनेवाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत् अत्यन्त आश्चर्यसे भरा हुआ है। जरायुसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गों आदि, अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी, पसीने और मैळसे पैदा होनेवाले कीड़े, पृथिवीको फोड़कर उगनेवाले वृक्ष—इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है। नर और नारीका समागम होता है। उस समागममें नरका एक अत्यन्त मूक्ष्म किंतु चैतन्य अंश गर्भमें प्रवेश कर नारीके एक अत्यन्त सूक्ष्म सचेत अंशसे मिल जाता है। इसको हम जीव कहते हैं। वेद कहते हैं—

वालाग्रदातभागस्य दातधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विद्येयः स चानन्त्याय कल्पते॥

एक बालके आगेके भागके सौ भाग कीजिये और उन सौमेंसे एकके फिर सौ टुकड़े कीजिये और इसमेंसे एक दुकड़ा लीजिये तो आपको ध्यानमें आयेगा कि जीव इतना सूक्ष्म है। यह जीव गर्भमें प्रवेश करनेके समयसे शरीररूपमें बढ़ता है। विज्ञानके जाननेवाले विद्वानोंने अणुवीक्षण यन्त्रसे देखकर यह बताया है कि मनुष्यके वीर्यके एक बिन्दुमें **ाखों** जीवाणु होते हैं और उनमेंसे एक ही गर्भमें प्रवेश पाकर टिकता और बृद्धि पाता है । नारीके शरीरमें ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि यह जीव गर्भमें प्रवेश पानेके समयसे एक नलीके द्वारा आहार पाने, इसकी वृद्धिके साथ-साथ नारीके गर्भमें एक जलसे भरा थैला बनता जाता है जो गर्मको चोटसे बचाता है। इस सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, अणु-से-अणु, बालके आगेके मागके दस हजारवें भागके समान सूक्ष्म वस्तुमें यह राक्ति कहाँसे आती है कि जिससे यह धीरे-धीरे अपने माता और पिताक समान रूप, रंग और संब

अवयवोंको धारण कर लेता है ! कौन-सी शक्ति है जो गर्भमें इसका पालन करती और इसको बढ़ाती है ! वह क्या अद्भुत रचना है जिससे बच्चेक उत्पन्न होनेके थोड़े समय पूर्व ही माताके स्तनोंमें दूध आ जाता है ! कौन-सी शक्ति है जो सब असंख्य प्राणवन्तोंको, सब मनुष्योंको, सब पशु-पिक्षयोंको, सब कीट-पतंगोंको, सब पेड़-पल्छवोंको पाछती है और उनको समयसे चारा और पानी पहुँचाती है ! कौन-सी शक्ति है, जिससे चीटियाँ दिनमें भी और रातमें भी सीधी भीतपर चढ़ती चली जाती हैं ! कौन-सी शक्ति है जिससे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े पक्षी अनन्त आकाशमें दूर-से-दूरतक विना किसी आधारके उड़ा करते हैं !

नरों और नारियोंकी, मनुष्योंकी, गौओंकी, सिंहोंकी, हाथियोंकी, पिक्षयोंकी, कीड़ोंकी सृष्टि कैसे होती है १ मनुष्योंसे मनुष्य, सिंहोंसे सिंह, घोड़ोंसे घोड़े, गौओंसे गौ, मयूरेंसे मयूर, हंसोंसे हंस, तोतोंसे तोते, कबूतरोंसे कबूतर, अपने-अपने माता-पिताक रंग-रूप अवयव लिये हुए कैसे उत्पन्न होते हैं १ छोटे-से-छोटे बीजोंसे किसी अचिन्य शक्तिसे बढ़ाये हुए बड़े और छोटे असंख्य बृक्ष उगते हैं तथा प्रतिवर्ष और बहुत वर्गोंतक पत्ती, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लक्ष्मीसे जीवधारियोंको सुख पहुँचाते, सैकड़ों, सहस्रों खादु, रसीले फलोंसे उनको तृप्त और पृष्ट करते, बहुत वर्गोंतक स्वास लेते, पानी पीते, पृथ्वीसे और आकाशसे आहार खींचते, आकाशसे नीचे झूमते-लहराते रहते हैं!

इस आश्चर्यमयी शक्तिकी खोजमें हमारा ध्यान मनुष्यके रचे हुए एक घरकी ओर जाता है। हम देखते हैं, हमारे सामने यह एक घर बना हुआ है। इसमें भीतर जानेके छिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानोंमें पवन और प्रकाशके छिये खिड़िकयाँ तथा झरोखे हैं। भीतर बड़े-बड़े खम्मे और दाछान हैं। धूप और पानीको रोकनेके छिये छतें और छज्जे बनं हुए हैं। दालान-दालानमें, कोटरी-कोटरीमें, भिन्न-भिन्न प्रकारसे मनुष्यको सुख पहुँचानेका प्रबन्ध किया गया है। घरके भीतरसे पानी बाहर निकालनेके लिय नालियों बनी हुई हैं। ऐसे विचारसे घर बनाया गया है कि रहनेवालोंको सब ऋतुमें सुख देवे। इस घरको देखकर हम कहते हैं कि इसका रचनेवाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहनेवालोंके सुखके लिये जो-जो प्रबन्ध आवश्यक था, उसको विचारकर घर रचा। हमने रचनेवालेको देखा भी नहीं, तो भी हमको निश्चय होता है कि घरका रचनेवाला कोई था या है और बह बानवान, विचारवान पुरुष है।

अब हम अपने शरीरकी ओर देखते हैं। हमारे शरीरमें भोजन करनेके लिये मुँह बना है। भोजन चबानेके लिये दाँत हैं। भोजनको पेटमें पहुँचानेके लिये गलेमें नाली बनी हैं। उसीके पास पबनके मार्गके लिये एक दूसरी नाली बनी हुई है। भोजनको रखनेके लिये उदरमें स्थान बना है। भोजन पचका हि क्प धारण करता है, वह हृदयमें जाकर इक्हा क्षे और वहाँसे सिरसे पैरतक सब नसोंमें पहुँचकार फ सम्पूर्ण अङ्गको शक्ति, सुख और शोभा पहुँचा भोजनका जो अंश शरीरके लिये आवश्यक ह उसके मल होकर बाहर जानेके लिये मार्ग बना दूध, पानी या अन्य रसका जो अंश शरीरको के लिये आवश्यक नहीं हैं, उसके निकलनेके लिये नाली बनी हुई है। देखनेके लिय हमारी दो 🕏 सुननंक लिये दो कान, सूँघनेको नासिकाक दो। और चलने-फिरनेके लिये हाथ-पैर बने हैं। संत उत्पत्तिके लिये जनन-इन्द्रियाँ हैं । इम पृछते हैं, यहं परम आरचर्यमय रचना केवल जड-पदार्थीक सं से हुई है या इसके जन्म देने और बुद्धिमें हमारे इ रचियताके समान किंतु उससे अनन्त गुण अधिक है ज्ञानवान्, विवेकवान्, शक्तिमान् आत्माका प्रभाव रे

ईश्वर या भगवत्सत्ता

(ते.खन .- महामहोपाध्याय म्व॰ डॉ॰ भीगङ्गानाथजी झा एम्॰ ए॰, डी॰ बिट्॰)

र्डश्वर हैं या नहीं ! यह प्रश्न अनादिकालसे चला
आया हैं। उत्तरमें दार्शनिकोंका अनन्त प्रयास भी
होता आया है। दर्शनके गृद विचारोंसे इने-गिने
लोगोंका ही लाभ होता है। इससे सामान्य जनताकी
बुद्धिमें जो बातें, जो युक्तियाँ—आये, उन्हींका
उपयोग यहाँ होगा। १—सबसे प्रयल युक्ति ईश्वर
माननेके पक्षमें चिरकालसे यह प्रसिद्ध है कि 'नास्ति चेन्नः
किमायानमस्ति चेन्नास्तिको इनः।'

ईश्वरवादी तार्किक कहता है कि मे यदि ईश्वरको मानता हूँ, उनका भजन करता हूँ और यदि ईश्वर नहीं है तो मेरा यह सब करना न्यर्थ होगा, इतना ही होगा—मेरा कुछ बिगड़ेगा नहीं; पर यदि ईश्वर है तो जो नास्तिक है — जो ईश्वरको नहीं मानता, भजन नहीं करता, उर्ज सत्यानाश ही होगा। तात्पर्य यह निकळा कि ^{हैशी} माननेमें ही सर्वथा कल्याण है।

र-जब कभी हम किसी चीजको देखते हैं किताब, कुरसी या मेज इत्यादि—तो उसी क्षणमें उसे बनानेबाला कौन है, यह जिज्ञासा उठती है, और बिं बस्तुके प्रसंगमें यह मनमें नहीं आता कि इसका कोई नहीं है। फिर नदी, पर्वत, वृक्ष, फल, प्रस्पादिके प्रसंगमें भी यही युक्ति क्यों नहीं लगायी जी जैसे प्रन्थका या मेजका बनानेबाला कोई पुरुष हैं। तरह पर्वत इत्यादिका भी कोई कर्ता अवस्य हैं। तरह पर्वत इत्यादिका भी कोई कर्ता अवस्य हैं। जैसे मेज इत्यादिका भी कोई कर्ता अवस्य हैं। कि उन्यादिका भी कोई कर्ता अवस्य हैं। कि प्रजन्म सकते हैं। कि प्रजन्म सकते हैं। कि प्रजन्म प्रमादिका भी कोई कर्ता अवस्य हैं।

'Natural laws' 'Nature,' 'Chance' इत्यादिका जब बिना आश्रय लेना तो जलताडन (मूर्खतापूर्ण प्रयास) मात्र सुन्दर बृह है । 'प्राकृत नियम'के. अनुसार तो सभी चीजें बनती संचालक हैं—बढ़ई जो मेज बनाता है, हिथियारोंसे जो लकड़ी उत्पन्न होता है —यह सब 'प्राकृत नियम'के ही अनुसार होता है । पर प्राकृत नियमके होते हुए भी एक संचालक चेतन पुरुषकी अपेक्षा तो होती ही है । अस्तित्वव है और नियमके अनुसार होती है, तथापि संचालक पुरुषकी विशेष त अमेक्षा अत्रस्य होगी । मेज, कुरसी इत्यादि स्थूल पदार्थ अनिष्टका

जब बिना चेतन संचालकके नहीं उत्पन्न होते, तब सुन्दर बृक्ष, लता, पत्र, पुष्प, फल इत्यादि पदार्थ चेतन संचालकके विना केवल 'प्राकृत नियम'के अनुसार उत्पन्न होंगे, यह बात मनमें नहीं बैटती।

इन सब विचारोंसे यह सिद्ध होता है कि ईश्वरके अस्तित्वको, भगवत्तत्त्रकी सत्ताको मानना ही युक्तियुक्त है और इसीमें सर्वथा कल्याण भी है। इस विषयमें विशेष तर्क-वितर्क करना अनुचित, अनावश्यक और अनिष्ठकारक है।

श्रीभगवत्तत्त्वका स्वरूप

(लेखक — डॉ॰ श्री त्रिभोवनदास दामोदरदासजी सेट)

श्रीभगवत्तस्य ज्ञानखरूप एवं खयंप्रकाशरूप है, असङ्ग और अजन्मा है । यह ज्योतिखरूप, चिदानन्दरूप, एवं खसंवेध हैं यह निर्गुण होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीनकर योगमायासे सगुण बनता है । जो त्रिविध पाप-तापका हरण करते हैं, वे श्रीहरि भी वही हैं—'हरित पापान दुःखान् त्रिविधान् वा इति हरिः।' मुण्डकोपनिषद् इस तत्त्वका वर्णन इस प्रकार करती है—

> न चश्चुषा गृह्यते नापि वाचा नान्येदेंवेस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्त्व-स्ततस्तु तं पद्दयते निष्कळं ध्यायमानः॥ (३।१।८)

'परमात्माको न चर्म-चक्षुओंसे देखा जा सकता है न उसे वाणी-हारा या अन्य इन्द्रियोंसे अथवा तप या विभिन्न कमोंसे ही प्रहण किया जा सकता है, प्रत्युत ज्ञानप्रसादसे, विशुद्ध हुए अन्तःकरणसे प्याननिष्ठ साधक उसे अनुभव कर सकता है।' वह भगवद्भक्त नित्य भगवान्में ही रमण करता हुआ, भगवान्में अनन्य प्रेम रखता हुआ परम निष्कामभाव एवं भक्तिभावसे कर्तव्यक्तमीका सम्पादन करता है। इसे और अधिक स्पष्ट करती हुई मुण्डकोपनिषद् कहती है—

भायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमवैष वृणुते तेन लभ्य-स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तत्तुं स्वाम् ॥ (३।२।३)

भ्यह आरमा प्रवचन, बुद्धि अथवा श्रवणादिहार। प्राप्त नहीं होता, यह जिसे अनुप्रहपूर्वक साधनादिसे ही कर रेन्द्रा है, उसीको प्राप्त हो सकता है। अथववेदका कथन है—

भकामो धारो भमृतः खयम्म्
रसेन तृतो न कुत्तक्वनोनः।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं जरमजरं युवानम्॥
(१० । ८ । ४४)

श्रीभगवान् खयग्भ्, सदातृप्त, सर्वत्र व्याप्त, अकाम, अजर और अमर हैं । उन्हें जाननेसे मृत्युका भय नहीं रहता । उनकी विशदता एवं मृश्मता बताती हुई स्वेनाश्वतरोपनिषद् कहती है— तिलेषु तैलं द्धनीव सर्पि-रापः झोतःखरणीषु चाग्निः। पवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपदयित ॥ (१।१५)

'जैसे तिलमें तैल, दिधमें घृत, भूमिगत अन्तः-स्नोतोंमें जल, अरिणमें अग्नि (अदृश्यरूपसे) विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार भगवत्तत्त्व अदृश्य-अन्यक्त रूपसे जगत्में सर्वत्र व्यातं है। उसे सत्य और तपद्वारा जाना जा सकता है।'

श्रीमगवान् सदा-सर्वदा हम सभीके हृदयमें स्थित हैं, किंतु दूषित अन्त:करणवाले मनुष्य उन्हें नहीं जान पाते । यदि भगवत्तत्त्वमें हमारा यथार्थ तस्त्रीनता होती है तो अनेक श्रेय नित्य सम्भावित हैं । अति आस्था-वाले भक्त श्रीनरसिंह मेहता, नित्यच्यानमञ्ज मीराबाई, छीला-गुण-तन्मय तुल्सीदास आदि श्रेष्ठ संतोंने अनन्य ग्रेमसे ही भगवान्को प्रसन्न किया था। सच्चा प्रेम समर्पण चाहता है । भगवछोम रोम-रोममें व्याप्त होते ही प्रभु साक्षात् होते हैं। मगवत्प्राप्ति-हेतु प्रतिक्षण रोम-रोमसे परमप्रेमके प्रवाहोंका उत्स्फुरण होना चाहिये । उस परम तत्त्वकी प्राप्तिका आनन्द दिव्य है । उसकी रूपमाधुरी, रसमाधुरीकी अनुमूति अद्भुत है। उचाशय जीवनमें ही उस भगवत्-सौंदर्यकी अनुसूति होती है। उस दिंक्य खरूपके दर्शन होते ही भवबन्धन टूट जाते हैं-'भिद्यते हृद्यप्रन्थिदिछद्यन्ते सर्वसंशयाः।' दर्शन होनेमात्रसे ही हृदयप्रन्यि विदीर्ण होकर सर्व शंसय शान्त हो जाते हैं, एवं कर्म क्षीण हो जाते हैं। ऐसे भक्तश्रेष्ठको भगवत्तत्त्वगुणानुवादके अतिरिक्त कुछ नहीं सुहाता। इसके मूर्तिमान् ज्वलन्त उदाहरण ब्रह्मवेत्ता संतिहारोमणि श्रीशुकदेवजी हैं। इस अनन्यताको बताते द्वए तैत्तिरीयोपनिषद् कहती है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कराचन॥' (ब्रह्मानन्द (२) व्रह्मी, चतुर्थं अनुवाक)

'जहाँ मनसहित वाणी भी नहीं पहुँच पाती, को मन एवं वाणी कुण्ठित होकर छोटते हैं, आनक्ष हहा है। जिसे वे अनुभूत हैं, वह कभी कि किचित् भी नहीं डरता। अथववेद कहता है—

ये बध्यमानमतु दीध्याना अन्वेक्षन्त मनसा चक्षुषा च। अग्निष्टानग्रे प्रमुमोक्तु देखो विश्वकर्मा प्रजया संरक्षणः॥ (२।३४।३

'जो बुद्धिमान् बद्ध मनुष्यको भी अपने मन ह चक्षुसे अनुकम्पापूर्ण दृष्टिसे देखता है, उसे प्रका सङ्ग क्रीड़ा करनेवाले विश्वकर्ता तेजस्वी मगक प्रथमतः मुक्त करते हैं ।' उस मगवत्तत्त्वस्तर्का विशेषता समझाते हुए श्रुति कहती है—

पको वशी सर्वभूतान्तरात्मा पकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-स्तेषां सुखं शाश्यतं नेतरेषाम्॥

(कठोपनिषद् २।२।११)

'वे सर्वभूतोंके अन्तरात्मा सम्पूर्ण क्रिलं
एक हैं, एक रूपको अनेक रूपोंमें प्रकट कर्ल
हैं। वे एक होते हुए भी अनेक बनते हैं।
जो उन्हें अपने भीतर देखता है, उसे शास्त्रत हुले
मिळता है। जो भीतर नहीं देखता वह शास्त्रत हुले
विद्यत रह जाता है। 'एकोऽहं बहु स्थाम' में एक है
किंतु अब अनेक होता हूँ।' 'भगवान् एक है
अखण्ड हैं, एकरस हैं, तथापि अनेक रूपोंमें दीले
हैं। शास्त्र उनकी विस्ववन्द्य महिमाका उद्केष

न तत्र स्यों भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वे तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ (कठोपनिषद् २। २। १५)

उस परतत्त्वमें सूर्य, चन्द्रमा, तारागण या विद्युत्-अग्निकी आवश्यकता आदिका प्रकाश निहित नहीं है, फिर वस्तुतः श्रीभगवान्के प्रकाशसे ही ये सूर्य-चन्द्रादि तेजस्त्री पदार्थ प्रकाशमान् हैं । यह सम्पूर्ण विश्व भगवत्तत्त्व-प्रकाशसे ही प्रकाशित है । शास्त्रोंने भगवत्तत्त्वका खरूपनिरूपण दो प्रकारसे है। एक विधिमुख प्रणाछीसे तथा द्वितीय नेतिरूप निषेवमुख प्रणालीसे । सकल तत्त्वोंको छोड्नेपर जो अविभाज्य शेष रहता है, वही भगवत्तत्त्व है। यह सर्वदा परिपूर्ण है । इस सर्वन्यापक भगवत्तत्त्वको हम रजोगुण, तमोगुणादियुक्त बुद्धिके द्वारा अनुभव नहीं कर पाते । हमारा हृदय दुष्ट विचारों, आत्मश्चाघा-परनिन्दा-कथन, राग-द्वेषादि कूड़ेकी दुर्गन्धसे भरा रहता है । फलतः हम सुगन्धकी उपेक्षा कर दुर्गन्ध ही प्रहण करते हैं । उपेक्षित एवं क्षुद्र मानी जानेवाली झाड़् इससे मली है वह करोड़ों रूपयोंके मूल्यवान् महलोंकी भी सफायी करती रहती है । वह वर्द्धनीया झाड़ एक प्रकारसे मङ्गळमय एवं पवित्र वस्तु है । हमारे अन्तर-में निहित विवेकरूपी झाड़ू भी मलग्रुद्धिकारिणी है । उस विवेक-आडुसे अन्तस्थ कूड़ेकी सफायी करके अन्तरको निमेल बनाना चाहिये। भगवत्तत्त्वमें श्री और विद्याकी कमी नहीं है। वह पूर्णतम है, सर्वतः परिपूर्ण है एवं पूर्णसे अनेक ब्रह्माव्डोंके हो जानेपर शेष भी पूर्ण ही रहता है । यही सदा पूर्ण रहनेवाला भगवत्तत्त्व है । पूर्णमदः पूर्णमिषं पूर्णात्पूर्णमुद्दच्यते । (बृहदार० उप०)

इसीका सुस्पष्ट वर्णन करते हुए कठोपनिषद् कहती है---

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सस्वमुत्तमम्। सत्त्वाद्धि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥ अव्यक्तान्तु परः पुरुषो व्यापको लिङ्ग पव च। यं शात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥ (21310-6)

'इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है। मनसे सत्त्व अर्थात् बुद्धि श्रेष्ठ है । बुद्धिसे महत्तत्त्व श्रेष्ठ है । महत्तत्त्वंसे अन्यक्त प्रकृति श्रेष्ठ है । अन्यक्त प्रकृतिसे भी पुरुष यो परमात्मा अर्थात् भगवत्तत्त्व श्रेष्ठ है। यह भगवत्तत्त्व सर्वव्यापक है एवं चिह्नरहित है, अतएव किसी भी प्रकारके चिह्नोंसे उन्हें दर्शाया नहीं जा सकता । उसे जाननेसे मनुष्यकी मुक्ति होती है, अमृतलकी श्राप्ति होती है। इसका स्पष्टीकरण स्वेतास्त्रतरोपनिषद् यों करती है--

निष्कलं निष्कयं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। अमृतस्य परं सेतुं वृग्धेन्धनमिवानलम् ॥ (4 | 199)

वह परमतत्त्व निष्कलङ्क है; वह सब कुछ करते हुए भी अकर्ता, शान्त, निर्दोष एवं निर्छित है । मैं अमृतके प्रमफ्लरूप, चरममोक्षरूप भगवानुकी शरणमें जाता हूँ। विशेष परिचय कराती हुई खेताखतरकी श्रुति कहती है-

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समधाभ्यधिकइच दइयते। शक्तिविविधैव श्रयते स्वाभाविकी ज्ञानयलिकया च॥ (016)

'बह परमात्मतत्त्व देहरूप कार्यो एवं अन्तःकरण आदिसे रहित है। उसके समान कोई शक्तिशाली नहीं है, उससे अधिक राक्तिशाली भी कोई नहीं है ? उनकी स्वाभाविक पराशक्ति, ज्ञान, वल एवं क्रिया विभिज प्रकारसे सुनी जाती है—'यः सर्वश्रः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।' वह सर्वज्ञ है, सर्वविद् है, सकल संसारमें उसकी महिमा सुविख्यात है ।' मुण्डकोपनिषद् कहती है---

आत्मकीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः। (31818)

आत्माके सङ्ग खेलनेवाला, आत्मामें ही रमण करनेवाला एवं क्रियाशील रहनेवाला ही वसवेत्ताओंमें, भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ है। कठोपनिषद् कहती है--

इह चेदराकद् बोद्धं प्राक् रारीरस्य विस्नसः। ततः सर्गेषु लोकेषु रारीरत्वाय कल्पते॥ (२।३।४)

इस शरीरके मृत्युपूर्व ही यदि इस शरीरमें रहनेवाले उस भगवत्तत्त्वको प्राप्त न कर सके तो सृष्टिमें नवीन

शरीर धारण करना पड़ता है, जन्म-मरणरूप चक्रसे मुक्ति नहीं होती । भगवत्तत्त्वकी शरण सुवर्णवसन्तमाळतीकी वह गुटिका है, जो जीवनकी सर्वन्याधियोंका हरण कर लेती है । अतः इसका सद्भावसे सेवन परमावश्यक है ।

ब्रह्मका सम्यक् और समन्वयात्मक रूप

(लेखक—डॉ॰ श्रीअवधिबहारीलालजी कपूर, एम्॰ ए॰, डी॰ फिल्॰)

ब्रह्मके सम्यक् रूपको परब्रह्म या भगवान् कहते हैं। श्रीमद्भागवत-(१।२।११)के निम्न स्टोकर्मे परब्रह्मके सम्यक् रूपका वर्णन है—

वद्नित तत्तत्त्वविद्सत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥

परब्रह्म अद्भय है । वह खजातीय-विजातीय एवं खगतमेदरहित है । उसके समान या उससे मिन्न और
कुछ नहीं है । यह जो कुछ है, सब उसीका प्रकाश
है— 'सर्वे खल्विदं ब्रह्म ।' उसकी अनन्त शक्तियाँ
हैं । उनमें तीन प्रभान हैं (१) चित्-शक्ति या खरूपशक्ति, (२) जीव-शक्ति और (३) माया-शक्ति । चित्शक्तिका प्रकाश है उसके धाम, परिकर और छीछादि,
जीव-शक्तिका प्रकाश है जीव और माया-शक्तिका
प्रकाश है जगत् ।

ब्रह्मकी खरूप-शक्तिके विकास-क्रमके अनुसार उसके अनन्त रूप हैं। उनमें तीन मुख्य हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्। ब्रह्ममें खरूप-शक्तिका न्यूनतम प्रकाश है—केवल उतना ही जितना सत्तामात्रकी रक्षाके लिये आवश्यक है। इसीलिये उसे केवल सत्रूप कहते हैं। उसमें ऐसा कोई विशेषत्व नहीं, जो अनुभवमें आ सके। इसिलिये उसे निर्विशेष कहते हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें किसी प्रकारका विशेषत्व है ही नहीं। जब चिच्लक्ति परब्रह्मकी खामाविकी शक्ति है तो परब्रह्मके प्रत्येक प्रकाशमें उसका रहना खामाविक है।

ब्रह्ममें भी चिच्छिक्त वर्तमान है। पर वह अन्यक्त है, क्रियाहीन है। जिस प्रकार सूर्य और उसकी प्रभा दोनों तेजोमय हैं, पर सूर्य सिवशेष है, प्रभा निर्वशेष, उसी प्रकार परब्रह्म और ब्रह्म दोनों ही चिच्छिक्तिविशिष्ट हैं, पर परब्रह्म सिवशेष है; क्योंकि वह 'चिद्घन' और अनन्दघन' है, उसमें चिच्छिक्त क्रियाशील है और ब्रह्म निर्वशेष है; क्योंकि वह ज्ञानसत्तामात्र और अनन्दसत्तामात्र है, उसमें चिच्छिक्त निष्क्रिय है। इसिलय ब्रह्म-संहितामें परब्रह्म और ब्रह्मकी तुल्जना सूर्य और उसकी प्रभासे की गयी है (ब्रह्मसंहिता ५। ४०)। 'चैतन्य-चिरतामृत'-(१।२०।१०)में भी ब्रह्मकी गीविन्दकी अङ्गक्तान्ति कहा है—

कोटि-कोटि ब्रह्माण्डे जे ब्रह्मेर विभूति । सेई ब्रह्म गोविन्देर हय अंग कान्ति ॥

तत्त्वतः परव्रह्म और निर्विशेष ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है। पर निर्विशेष ब्रह्म परब्रह्मका असम्यक प्रकाश है। क्यापक अर्थमें 'ब्रह्म' शब्द परब्रह्मका ही निर्देश करती है, पर रूढ़ि वृत्तिके अनुसार यह निर्विशेष ब्रह्मकी संकेत करता है।

परमात्मामें खरूप-शक्तिका विकास ब्रह्मकी अपेश्वा अधिक है। इसलिये वह मूर्त है। श्रुतियाँ उसे अंगुष्ट प्रमाण कहती हैं। वह अन्तर्यामिरूपसे सब जीवोंक अन्तःकरणमें विराजमान है। परमात्मा और परब्रह्म भी तत्त्वतः कुछ मेद नहीं है। व्यापक अर्थमें 'परमात्मा'

शब्द भी परब्रह्मका ही निर्देश करता है। रूढि अर्थमें यह जीवान्तर्यामी परमात्माका निर्देश करता है (चे० च० २ । २४ । ५९)। परब्रह्म अनन्त शक्ति-विशिष्ट है। परमात्माका सम्बन्ध केवल जीव-शक्ति और माया-शक्तिसे है। परमात्मा परब्रह्मका वह अंश है, जिसके द्वारा वह अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि आदिका कार्य करता है और उनमें व्याप्त रहकर उनका संचालन करता है।

मगवान्में खरूप-शक्तिका पूर्ण विकास है। ऐश्वर्य, मार्धुर्य और सौन्दर्यकी उनमें पूर्ण अभिन्यक्ति है। वे स्स-खरूप हैं—'रसो वे सः।' उनके भी वासुदेव, राम, नारायण, नृसिंह आदि अनेक रूप हैं, जिनमें उनके ऐश्वर्य, मार्धुर्यादिके विकास-क्रमका तारतम्य है। वे इन रूपोमें विभिन्न प्रकारसे रसका आखादन करते हैं। पर उनका श्रीकृष्णरूप ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण अखिलरसामृत-सूर्तिं हैं। उन्हींको श्रीमद्भागवत (१०। १४। २२) और गीतादि शास्त्रोमें 'परब्रह्म' कहा गया है। वे ही खयं भगवान् हैं—'कृष्णस्तु भगवान् खयम्'। रसमयता उनका खरूपगत लक्षण है। इसिल्ये उनके विभिन्न प्रकाशोंका खरूप भी रसमय है। भगवत्स्वरूपोंमें खरूप-शक्तिके विकास-क्रमके अनुसार रसोंका भी तारतम्य है। निर्विशेष ब्रह्ममें रस न्यूनतम है।

ब्रह्म सत्-रूप है, परमात्मा चित्-रूप है और भगवान् आनन्दरूप। जिस प्रकार सचिदानन्दरूप परब्रह्ममें सत्, चित् और आनन्दकी पृथक्-पृथक् सत्ता नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक-दूसरेसे पृथक् नहीं हैं। जिस प्रकार परब्रह्मकी किसी अभिव्यक्तिमें सत्की प्रधानताके कारण उसे सत्, चित्की प्रधानताके कारण चित् और आनन्दकी प्रधानताके कारण आनन्द कहते हैं, इसी प्रकार परब्रह्मके उस अंशको, जिसमें सत्की प्रधानता है 'ब्रह्म' तथा उस अंशको जिसमें चित्की प्रधानता है 'व्रह्म' तथा उस अंशको जिसमें चित्की प्रधानता है 'परमात्मा' और उस सम्यक् ख्रूपको, जिसमें आनन्दकी प्रधानता है 'भगवान्' कहते हैं।

इस प्रकार ब्रह्म सिवशेष भी है, निर्विशेष भी। दोनों रूप ब्रह्मके खाभाविक रूप हैं। दोनोंकी सत्ता पारमार्थिक है। दोनोंमेंसे किसीका भी माया या किसी प्रकारकी उपाधिसे कोई सम्बन्ध नहीं है (भा० १०। १४। २२)। सूर्यके प्रकाशमें जिस प्रकार अंधकार प्रवेश नहीं करता, उसी प्रकार ब्रह्मके खरूपको माया स्पर्श नहीं करती। 'विळज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापये ऽमुया'— जहाँतक ब्रह्मकी दृष्टि जाती है, माया पास आते भी लजाती है (भा० १०। १४। २२)।

निर्विशेष और सिवशेष ब्रह्मका मेद ब्रह्मके खरूप और तटस्थ लक्षणोंसे सम्बद्ध है। िकसी वस्तुका खरूप-लक्षण उसके रूप और उपादानसे जाना जाता है और तटस्थ लक्षण उसके कार्योंसे जाना जाता है (चै० च० २। २०। २९६)। श्रुतियोंने ब्रह्मको सत्खरूप और ज्ञान-खरूप—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मः कहा है (तेत्तरीय, आनन्दवल्ली—१)। ब्रह्मसूत्रमें उसे 'आनन्दमयोऽभ्यासात' (त्र० सू० १। १।१२) कहा है। इसल्ये सिचदानन्दत्व ही ब्रह्मका खरूप-लक्षण है। सृष्टि, प्रल्यादि कार्य उसके तटस्थ लक्षण हैं। जो लोग ब्रह्मकी शक्तिको छोड़ उसकी सत्तामात्रका अनुभव करना चाहते हैं, उन्हें उसके तटस्थ लक्षणका अनुभव नहीं होता। उनकी यह धारणा बन जाना खामाविक है कि उसका खरूप-लक्षण ही उसका पूर्णरूप है।

श्रीजीत्रगोखामीने निर्विशेष ब्रह्मको केवल 'विशेष्य' और स्विशेष ब्रह्मको 'विशेषणयुक्त विशेष्य' कहा है। केवल विशेष्य वस्तुका सम्यक् रूप नहीं होता, सम्यक् रूप विशेषणसहित विशेष्य होता है।

निर्विशेष ब्रह्मके उपासक ब्रह्मके विशेषणोंकी उपेश्वा कर उसकी सत्तामात्रपर ध्यान केन्द्रित करते हैं। ध्यानकी परिपक्वावस्थामें उन्हें ब्रह्मकी सत्तामात्रका अनुभव होता है। यह अनुभव यथार्थ है, पर यह सम्यक् अनुभव नहीं है। श्रीजीवगोखामीने भागवतसंदर्भिंगे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लिखा है कि— 'यत्र विदोष विनेव वस्तुनः स्फूर्तिः सा

हिएरसम्पूर्णा यथा ब्रह्माकारेण। यत्र सक्रपभूतनानावैचित्री विदोषपदाकारेण सा सम्पूर्णा'—अर्थात् जो हिए

विना विदोषत्वके वस्तुका दर्शन कराती है, जैसे ब्रह्मका,
वह असम्पूर्ण है और जो स्वरूपगत नानावैचित्र्यमय

विदोपत्वयुक्त वस्तुका अनुभव कराती है, वह सम्पूर्ण है

(भ० सं० ७०)। फिर भी 'एकस्य दर्शनस्य वास्तवत्वम् अन्यस्य भ्रमजत्वम् इति न मन्तब्यम् अभ्योरिप याथार्थ्येन दर्शितत्वात्'—अर्थात् एकका अनुभव वास्तव हो, दूसरेका अवास्तव—ऐसा नहीं है।

दोनोंका अनुभव यथार्थ है (भ० सं० ६९)।

जिस प्रकार मिसरीको देखनेसे उसके खेतरवका, हाथसे स्पर्ध करनेसे घनत्वका और जिह्वापर रखनेसे मिष्टरवका अनुभव होता है, उसी प्रकार ज्ञान-मार्गका अवलम्बन करनेसे परब्रह्मके निर्विशेष-स्वरूपका, गोगमार्गका अवलम्बन करनेसे उसके परमात्म-स्वरूपका और भक्तिमार्गका अवलम्बन करनेसे उसके पूर्णतमरूप स्वयं भगवत्तस्वका अनुभव होता है—

सेई कृष्ण-प्राप्ति हेतु त्रिविध साधन। ज्ञान, योग, अक्ति—तिनेर पृथक् कक्षण॥ तिन साधने भगवान् तिन स्त्रस्ये भासे। त्रक्षा, परमास्मा, भगवान्—त्रिविध प्रकारो॥ (सै॰ च॰ २ | २४ | ५७-५८)

जैसे यात्रीको दूरसे पर्यत काले बादलके समान सपाट निर्विशेष, निराकार-सा प्रतीत होता है, उसकी त्रिमिन्न श्रेणियाँ, नदी-नाले, वृक्ष-लता, पशु-पक्षी इत्यादि व्यक्त रहते हुए भी अन्यक्त रहते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी साधकको ब्रह्मके केवल निराकार, निर्विशेष रूपका दर्शन होता है। पर्वतके कुल निकट जानेपर जैसे यात्री उसकी त्रिमिन्न श्रेणियोंके दर्शन करता है, उसी प्रकार योगी, जो ज्ञानीकी अपेक्षा ब्रह्मके अधिक निकट होता है, उसके किंचित् त्रैचित्री और त्रिशेषत्वयुक्त प्रमाहम-

खरूपके दर्शन करता है। पर्वतके बिळकुळ गाने जानेपर, जैसे यात्री पर्वतकी सम्पूर्ण शोमा-वैन्तिक दर्शन करता है, बहते हुए नदी-नार्लोका करू कल शर और पिक्षयोंका करूरव सुनता है तथा मन्द-मन्द बले शितल, सुगन्ध पवनके स्पर्शका अनुभव करता है, उसे प्रकार भक्तिमार्गका साधक जो भक्तिके अचिन्त्य प्रमाले भगवान्के बिळकुळ निकट होता है, रूप, गुण, ठीळादिले अनुपम माधुरी और वैचित्रीसे युक्त उनके सम्यक् रूफा दर्शन करता है। भक्तिकी आकर्षणी शक्ति, जो इल और योगमें नहीं है, भगवान्को रुचिकर भक्तके इल निकट ले आती है कि उनका कुळ भी उससे लि नहीं रहता है।

अपने-अपने अधिकारके अनुसार ही साधकों भगवान्के विभिन्न रूपोंकां दर्शन होता है। यह का कंसकी सभामें मल्ल-युद्धके लिये उपस्थित श्रीकृष्णके विभिन्न प्रकारके खरूपके अनुभवोंसे प्रमाणित होती है, जो अ समय अपने-अपने भाव और अपनी-अपनी योग्यतां अनुसार दर्शकोंको हुए थे। किसीने उन्हें साक्षार प्रस्थे रूपमें देखा, किसीने वज्रके रूपमें, किसीन नरिशेष परतत्त्वके रूपमें किसीने खजनके रूपमें किसीने मूर्तिमान् कंद्रपं रूपमें (भा० १०। ४३। १७)।

साधारण जीवोंके साधारण वस्तुओंके अनुभवसे विषय योग्यताके अनुरूप अनुभवकी बात ही सिद्ध होती है। तालाबका मेढंक अपनी वृत्तिके अनुसार तालाबं कीचड़भरे जलमें बिहार करके सुखी होता है, वित्तुकृल वृत्तिके अभावमें वह तालाबके कमलों सौन्दर्य और सौरमका आखादन नहीं कर पाता। विकास अमर अपनी तदनुकृल वृत्तिके कारण दूरते हैं। उसका आखादन कर उसके निकट उड़ आता है। हैं। उसकार भगवरखक्पका परिपूर्णावस्था मधुरातिक

श्रीकृष्ण-खरूपका अनुभव उन्हीं भाग्यवान् साधकोंको होता है, जिन्होंने भक्तिकी गङ्गामें अवगाहन कर अपनेको उसके अनुकूछ बना लिया है-

भवत्ये भगवानेर अनुभव पूर्णरूप। एकई विग्रह तार अनन्त खरूप॥ (चै०च०२।२०।१३७) भगवान्ने खयं कहा है—'भक्त्या मामिश जानाति'— भक्तिसे मुझे भळीमाँति अर्थात् मेरे पूर्ण खरूपको जाना जाता है (गीता १८। ५५)। भक्तिसे भगवान्को सम्यक् रूपसे जानकर भक्त भगवान् वन जाते हैं। तभी तो कहा गया है 'ततो मां तस्वतो झात्वा विशते तदनन्तरम्' और—— 'जानत तुमहि तुमहि होइ जाई।'

भगवत्तत्त्वकी साधना

(लेखक---आचार्य डॉ॰ श्रीउमाकान्तजी 'कपिध्वज,' एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, काव्यरत्न)

तस्वदर्शी ज्ञानिजन ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे
एहित अखण्ड अद्वितीय सिचदानन्दस्तरूप ज्ञानको ही
तत्व कहते हैं; उसीको कोई 'परमात्मा', कोई 'ब्रह्म',
और कोई 'भगवान्'के नामसे पुकारते हैं। ब्रह्मसूत्रमें
कहा गया है कि जिससे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति
और प्रस्य होते हैं, वही 'परमात्मा' है। तैतिरीय
श्रृति-(३।१)में भी इसीकी पुष्टि की गयी है। उस
परमात्माको जानकर ही मृत्युका उल्लब्धन किया जा
सकता है, अर्थात् मुक्त हुआ जा सकता है। मुक्तिप्राप्तिका कोई अन्य मार्ग नहीं है। वेदका भी स्पष्ट
उद्घेष है कि उस आत्माको जानकर मनुष्य मृत्युसे
नहीं डरता तथा शोक-सागरसे पार हो जाता हैं ।
वृहदारण्यकोपनिषद्के उस प्रसिद्ध उपाल्यानमें—जिसमें
याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीको आत्मदर्शनके माहात्म्य तथा
उपायोंको बताया है—'न वा अरे पत्युः कामाय' से

आरम्भ करके सर्व पदार्थोंका वर्णन करते हुए कहा है कि ये सब आत्माको अपने छिये ही प्यारे होते हैं; अतः 'हे मैत्रेयि! आत्माको ही देखना, सुनना, प्यान करना चाहिये; क्योंकि आत्माके देखने, सुनने, मनन करनेसे यह सब कुछ देखा, सुना, मनन किया तथा जाना जाता है। मुण्डकोपनिषद्के अनुसार 'उस परावर—कार्यकारणरूप अथवा शुद्ध शबलखरूप परमात्माके साक्षात्कारसे जीवकी आत्मानात्म अविवेक्तरूपी हृदयकी गाँठ खुल जाती है। आत्मा, परमात्मा, परलोक आदिके विषयमें इसके सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद हो जाता है और समस्त शुमाश्चम कर्म नष्ट हो जाते हैं—यह कहकर आत्मज्ञानकी महत्ता प्रदर्शित की गयी है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'आत्मज्ञान' ही सच्चे सुखकी प्राप्तिका साधन है । जन्म और नाशरहित होनेसे यह आत्मरूप सत्ता नित्य है; सब संसार उसका ही

१-द्रष्टच्य--श्रीमद्भा० १।२।११ २-देखिये त्रसस्त्र १।२

३-(क) 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।' (यजुर्वेद ३१ । २८, ६वेता० ३ । ८)

⁽ख) 'दुःखजन्मप्रवृत्तिदोष्रमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायादपवर्गः। (न्यायसूत्र १।१।२)

४-तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योः (अथर्व० १० । ८ । ४४, ऋक्० १ । १६७ । २२)

५-(क) 'तरित शोकमात्मवित्' (छान्दोग्य० ७।२।३) (छ) 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपर्यतः' ॥(ईश० ७)

६-धानमा वा अरे द्रष्ट्रह्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेच्यात्मनि खल्यरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्व विदितम् । (बृहदा॰ ४ । ५ । ६)

७-भिचते हृदयग्रन्थिरिक्षण्यन्ते सर्वसंशयाः । श्रीयन्ते चास्य क्रमणि तस्मिन् हण्टे परावरे ॥। (मुण्डक० २। २ । ८)

विवर्त्त हैं, देश-काल बस्तुकृत त्रिविध परिच्छेदशून्य होनेके कारण उस सत्ताको परम आत्मा=परमात्मा या ब्रह्म कहते हैं। वह ब्रह्मसत्ता सत्र शब्दोंका बाच्य अर्थ है, उसके बाचक स्फोटरूप शब्दसे वह पृथक नहीं है। बाच्य-बाचकका परमार्थतः अमेद होनेपर भी उसका सम्बन्ध ब्यवहार-दशामें अविद्यावश भासता है, मेद-प्रतीति कल्पना-बळसे होती है।

सम्पूर्ण संसार ब्रह्ममय ही है अथवा ब्रह्मखरूप परमात्मा ही विवर्तभावसे जगत्रूपमें भासित हो रहे हैं । वे पिण्डमें 'अणोरणीयान' तथा ब्रह्माण्डमें 'महतो महीयान' के रूपमें प्रकाशमान हैं । जो कुछ भी जड़-चेतनके रूपमें भासित होता है, सब परमात्मा ही है । गोखामी तुल्सीदासजीने इसी भावसे जड़-चेतन सभीको परमात्मखरूप मानकर स्तुति की है । श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है कि आकाश, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष, नदियाँ और समुद्र जो कुछ भी हैं सब भगवान् हरिके शरीर ही हैं, अतः सबको अनन्यमावसे प्रणाम करें । आचार्य शंकर भी लिखते हैं कि 'जो भीतर और बाहर ज्यापक है, नित्य शुद्ध है, एक है और सदा सचिदानन्दकन्द है, जिससे स्थूल-सूक्ष्म प्रपन्नका मान होता है तथा जिससे उसका प्राकट्य हुआ है, वही परब्रह्म परमात्मा है।"

विष्णुपुराणके अनुसार इस जगत्में जो कुछ हैं वह एकमात्र श्रीहरि ही हैं। उनसे भिन्न और

कुछ नहीं है। हिर ही संसार हैं, संसार ही हिर्दे 'हिरिव जगजगदेव हिरे:।'' इसी प्रकार कि सब निश्चय ही ब्रह्म ही हैं ''—'श्रह्मैंवेदं सर्वम्'। 'यहाँ कि कुछ नहीं हैं','' 'यह जो कुछ भी है सब आत्मा ही हैं,' 'यह सारा जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही हैं','' 'यह सब कु पुरुष ही हैं''—इस्यादि अनेक श्रुतियाँ तथा कि (७।७) में भगवान् श्रीकृष्णकी यह उक्ति कि—

'हे अर्जुन! मेरे सिवा किंचिन्मात्र भी दूसरी क् नहीं है, यह सारा संसार सूत्रमें मिणयों के सहश कु गुँथा हुआ है, यही प्रदिपादित करती है कि क् परमात्मतत्त्वके अतिरिक्त और कोई दूसरी वस्तु नहीं है

'अंशो नानाव्यपदेशात्,'' 'ममैवांशो जीवलों जीवसूदः सनातनः,'' 'ईस्वर अंस जीव अविनातों इत्यादि—वचतों के अनुसार जीव परमात्माका ही के हैं। पर अविद्यायुक्त होने के कारण जीव नित्य बढ़ें और परमात्मा विद्यास्करूप होने के कारण नित्य हैं है। खरूप-विस्मृति के कारण ही चेतन जीव बन ब हैं। वास्तवमें जीव और ईश्वरमें कोई मिन्नता नहीं हैं गुकरहरयोपनिषद्में भगवान् शंकर अपने कि गुकरदेवसे कहते हैं कि—

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः। कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते। तात्पर्य यह है कि जीवकी उपाधि है अविवार

८-तं दुर्दशे गृहमनुप्रविष्टं गृहाहितं गहरेष्टं पुराणम् । अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोको जहिति (कट०१।२।१२) ९-श्रीमद्रामचिरतमानस १।७ ग,१।७।१।१०-श्रीमद्रा०११।२।४१ ११-यदन्तर्वहिन्यांपकं नित्यगुद्धं यदेकं सदा सिचदानन्दकन्दम् । यतः स्थूलस्क्ष्मप्रपञ्चस्य मानं यतस्तत्प्रस्तत्तदेवाहमिति (निर्वाणमञ्जरी १)१२-(एकः समस्तं यदिहास्ति किचित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् । (विष्णुपुराण २।१६।१११३-और भी (सर्वे खिलवदं ब्रह्मः (छान्दोग्य०३।१४।१)१४-(नेह नानास्ति किचनः (बृहदा०४।४।५१३ कठ०२।१।११)१५-(क) (ऐतदात्म्यमिदं सर्वमः (छा०६।८।७) (ख) (इदं सर्वे यदयमात्माः (बृह्द-जीव ब्रह्मका अंग्रहे (वेदान्तस्त्र २।३।४२)१९-गीता १५।७।२०-मानस ७।११६।१, महीसि वन० २६१।४४।

भेदसे एक ही चैतन्य कार्य और कारण बना हुआ है। कार्यकी उपाधिसे युक्त चैतन्य जीव कहलाता है और कारण की उपाधिसे सम्पृक्त चैतन्यका नाम ईश्वर है। इन दोनों उपाधियोंको दूर करनेसे जो बचता है, वही पूर्णज्ञानका लक्ष्य है, जिसमें जीव और ईश्वरके शुद्ध चैतन्यकी एकता झलकने लगती है। सत्ताकी दृष्टिसे जीव और ईश्वर ही क्यों, संसारके सभी पदार्थ एक हैं। इस विचारसे ब्रह्म और जगत् भी एक ही है; क्योंकि ब्रह्मकी ही सत्ता जगत्में ओतप्रोत है, जैसा कि शंकराचार्यने भी कहा है—

'दृश्यते हि सत्तालक्षणो ब्रह्मस्वभाव आकाशादिष्वजुवर्तमानः ।'

जीवका जीवत्व और ईश्वरका ईश्वरत्व—दोनों व्यावहारिक हैं। इन दोनों व्यावहारिक कल्पनाओंका पित्याग करनेपर केवल एक शुद्ध परमार्थ चेतन बचता है; और, वही 'भगवत्तत्त्व' है।

भगवत्तत्त्वकी प्राप्तिके लिये उपासनाके त्रिभेद— ज्ञान, भक्ति और निष्काम कमयोग—बहुत ही सहायक हैं। वास्तवमें उपासनाके ये तीन सोपान गन्तन्यतक पहुँचानेके लिये भिन्न होते हुए भी एक हैं। साधन-भेदसे इनकी भिन्नता दिखायी देती है, पर तीनों मागोंसे ही भगवत्तत्त्वकी प्राप्ति होती है।

ज्ञानमागीं, सम्पूर्ण विश्वमें एकमात्र प्रकाशखरूप परमात्माका ही अस्तित्व मानकर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयकी त्रिपुटी समाप्त कर देता है तथा जप और घ्यानकें सहारे परमात्मखरूप हो (भगवत्तत्त्वको जानकर) परमात्मासे साक्षात्कार कर लेता है। आत्माराम होनेकें कारण उसे परमात्मारों भिन्न किसी वस्तुकी अनुभूति ही नहीं होती। गीतामें भगवान् कृष्णने कहा है कि 'जो पुरुष आत्मामें ही सुखी है, आत्मामें ही रमण करता है तथा जो आत्मामें ही झानवान् है, वह सिच्चदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त—'मैं ही ब्रह्म हूँ'—इस प्रकार अनुभव करनेवाला ज्ञानयोगी शान्त ब्रह्म प्रकार होता है ।' जिस प्रकार गङ्गा-यमुना आदि सारी नदियाँ बहती हुई अपने नाम-रूपको छोड़कर समुद्रमें ही विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ज्ञानी महात्मा नाम-रूपसे रहित होकर परम दिव्य पुरुष परात्पर परमात्माको ही प्राप्त हो जाता है; उसीमें विलीन हो जाता है ।

सायकको जब खयंमें तथा समस्त जड़-चेतनमें ब्रह्म-भावना करते-करते परब्रह्मका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब वह ब्रह्म ही हो जाता है । फिर उसका इस शरीर और संसारसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता; ब्रह्मवेता पुरुषके अन्तः करणमें शरीर और अन्तः करणके सहित यह संसार खप्नवत् प्रतीत होता है । जैसे खप्नसे जगा हुआ पुरुष खप्नकी घटनाको मनकी कल्पनामात्र समझता है, वैसे ही उस ब्रह्मवेत्ताके अन्तः करणमें यह संसार कल्पनामात्र प्रतीत होता है अर्थात् उसे इस संसारकी काल्पनिक संत्ता प्रतीत होती है । इस तरह ज्ञानी भगवत्तत्त्वको चराचरमें व्याप्त जानकर खयंको भी उसी रूपमें मान अपना अस्तित्व भगवत्तत्त्वमें विळीन कर देता है ।

भक्त खयंको प्रभुका अंश मानते हुए प्रभुकं साय ही अपने अस्तित्वको भी चिरस्थायी समझता है। मिकि-पथमें दास्यभावकी भी महती आवश्यकता है। भगवान्को दास अत्यन्त प्रिय है, जिसे उनके अतिरिक्त

२१-गीता ५ । २४ । २२-मुण्डक० ३ । २ । ८ । २३-(क) म यो ह वे तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति । (मुण्डक० ३ । २ । ९), (ख) ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति । (बृहदा०४ । ४ । ६), २४-(क) अयमात्मा ब्रह्मः (माण्डूक्य० ७), (ख) अहं ब्रह्मास्मिः (बृहदारण्यक० १ । ४ । १०)

कोई अन्य आश्रय नहीं रहता^रै। तभी तो वे सदैव अपने दासकी रुचिके अनुरूप ही कार्य करते हैं । हनुमान्-जीको अनन्य भक्तकी परिभाषा बतलाते हुए भगवान् राम कहते हैं— 'हे हनुमान् ! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टल्रती कि मैं सेवक हूँ और चराचर जगत् मेरे खामीका रूप है। " मानसके सप्तम सोपान-(७। १११ क)में भी-

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिश्र उरगारि ।

-कहकर गोखामीजीने दास्यभावकी महत्ता प्रदर्शित की है । इस प्रकार अपने इष्टकी छवि प्रस्येक अणु-परमाणुमें देखकर तथा इष्टके प्रति आत्म-समर्पणकर भक्त धन्य हो जाता है । भगवान्को प्राप्त एवं प्रसन्न कर उन्हें अपना बना लेना तथा उनके छिये सर्वस्व परित्याग करना ही भक्तकी भगवत्तत्त्व-प्राप्ति है। श्रीमद्भागवतमें भगवान्ने खयं कहा है कि जिस समय मनुष्य समस्त कर्मीका परित्याग करके मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय मैं उसे उसके जीवत्वसे छुड़ाकर अमृतखरूप मोक्षकी प्राप्ति करा देता हूँ और वह मुझसे मिलकर मेरा खरूप हो जाता है।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें व्यासजी कहते हैं-—'शरीरसे, वाणीसे, मनसे, इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे, अहङ्कारसे, अनेक जन्मों अथवा एक जन्मके लमानीरे जो कुछ भी करे, वह सब परमपुरुष भगवान् नारायणके लिये ही है-इस भावसे उन्हें समर्पण कर दे । यही सरल-से-सरल सीया-सा भागवत धर्म है रे । कहना न होगा कि भागवतभ्रमके आचरणसे ही निष्काम-कर्मयोगकी सिद्धि होती है। उद्धवजीको भागवतवर्मका उपदेश क्षे हुए भगवान् कृष्णने यही कहा है कि---'उद्भवजी! मेरे भक्तको चाहिये कि अपने सारे कर्म मेरे छिये ही करे और उनको करते समय धीरे-धीरे मेरे स्मरणका अभ्यास वढ़ावे। कुछ ही दिनोंमें उसके मन और चित्त अपने आप मुझमें समर्पित हो जायँगे। असा।

निष्कर्ष यह कि विश्वके मूलमें जो एक अखण्ड चेतनतत्त्व है, जो सृष्टि, स्थिति तथा संहारका आदिकाए है, जो प्रत्येक जड़ तथा चेतन पदार्थका परम आस है, जिसकी सत्तासे अखिल विश्वका प्रत्येक जीव अनवत क्रियाशील है, उसी समष्टि चेतनतत्त्व—'भगवत्तत्त्व'की प्राप्ति ही मनुष्यमात्रका चरम लक्ष्य है और इस हेतु सतत प्रयत्नशील रहना उसका प्रथम और आवश्यक कर्तव्य है । परमलक्ष्यकी प्राप्तिके क्रिया-पथ पात्र-योग्यताके अनुसार अनुसरणीय हैं - ज्ञान, कर्म और उपासना। उपासनामें समर्पणभाव सरल-सुगम सर्वसाध्य है।

सबका सार-तत्त्व

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः। वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः॥ वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः। वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा भवेदों एवं यज्ञोंका तात्पर्य गवान्की आराधनामें ही है। योग और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति भी भगवान वासुदेवकी प्राप्तिमें ही है। ज्ञान एवं तप भी भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये ही किये जाते हैं। धर्मोंका अनुष्ठान और सन गतियाँ भी उन्होंमें पर्यवसित होती हैं (श्रीमद्भा॰ १ । २ । २८-२९)।

२५-तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥ (मानस ७ । ८५ । ४) सेवक रुचि राखी॥

(ख) तेवक प्रिय अनन्य गति सोज ॥ (वही २ । २१८ । ४) २७-वही ४ । ३ । २८-श्रीमद्भा० ११ । २९ । ३४ । २९-वही ११ । २ । ३६ (वही ४।२।४) ३०-कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मद्र्ये शनकैः सारन्। मय्यपितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः॥ (वही ११। २९।९)

मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भगवत्तत्त्वकी मीमांसा

(लेखक--आचार्य पं॰ श्रीसीतारामजी चतुर्वेदी)

देवि नारदसे द्वादशाक्षरमन्त्रकी दीक्षा लेकर बालक ध्रुवने भगवान् नारायणके दर्शनके लिये जब उत्कट तपस्या की तो एक दिन ऐसा आया कि श्रीभगवान् उस बालकके हृदयसे विल्वस हो गये । इससे घत्रराक्षर ध्रुवने ज्यों-ही आँखें खोळीं तो वह देखता क्या है कि जिस मूर्तिका वह अपने हृदयमें दर्शन कर रहा था, वही मूर्ति सामने खड़ी है । भगवान्के चरणोंमें तुरंत दण्डवत्-प्रणामकर ध्रुव चुपचाप हाथ जोड़े खड़ा हो गया । उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि वह किस प्रकार भगवान्की स्तृति करे । भगवान्ने उसकी दुविधा समझकर ज्योंही उसके कपोलसे अपने शक्क्षका स्पर्श किया त्यों ही उसकी वाणी इट पड़ी और वह स्तृति करने लग गया—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचिममां प्रसुप्तां संजीवयत्यिखलशक्तिधरः स्रधाम्ना । अन्यांश्च इस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥

(श्रीमद्धा० ४।९।६)

'जिस भगवान् पुरुषने मेरे अन्तः करणमें प्रविष्ट होकर अपने तेजसे मेरी सोयी हुई वाणीको सजीव कर हाळा है और साथं ही हाथ-पैर-कान और त्वचा आदि मेरी अन्य इन्द्रियों और प्राणोंको भी चेतन कर दिया है, उन भगवान् पुरुषको में प्रणाम करता हूँ।' यह घटना ही भगवत्तत्वकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या है। धुवने नारदजीके उपदेशसे भगवान्के खरूपका व्यान करते हुए द्वादशाक्षरमन्त्रका निरन्तर जप करना प्रारम्भ किया और पूर्णतः तन्मय होकर एकात्मतांके साथ भगवान्के उस खरूपका व्यान भी लगाये रखा। अपना मन पूर्णक्रपसे भगवान्के इस खरूपमें लगाये रखा। अपना मन पूर्णक्रपसे भगवान्के इस खरूपमें लगाये रखा। अपना मन पूर्णक्रपसे भगवान्के इस खरूपमें लगाये रखा। क्षमा मन पूर्णक्रपसे भगवान्के इस खरूपमें लगाये रखा। क्षमा मन पूर्णक्रपसे भगवान्के इस खरूपमें लगाये रखनेके कारण धुवको अपने हृदयमें भगवान्का वह सक्रप धीरे-धीरे विज्ञलीके समान कींधने लगा. जिसके

कारण वह और भी तन्मय हो चला। किंतु ध्रुव तो अपने बाह्य नेत्रोंसे ही भगवान्का दर्शन करना चाहता था। उसकी भावना अत्यन्त तीत्र हो गयी थी। तीत्र हो जानेपर तो वह भावना स्वयं मूर्त हो ही जाती है। सम्पूर्ण भक्तितत्त्वका यही मनोवैज्ञानिक रहस्य है।

सात्विक वृत्तिवाला प्रत्येक पुरुष अपने सत्तवृत्तिके कारण अन्तर्भुखी हो जाता है और अन्तर्भुखी होकर अपनी भावनाके अनुसार वह भगवत्-चिन्तन करने लगता है । प्राक्तन (पूर्व) संस्कारके कारण या किसी गुरुके उपदेशके कारण अथवा किसी अन्य प्रकारकी तथा अन्य व्यक्तिकी प्रेरणांके कारण भगवान्के किसी भी सगुण खरूपके साथ वह अपनी आसीयता स्थापित कर लेता है। संयोगसे हमारे यहाँ भगवान् विष्णु एवं शिवके अनेक अवतार (राम, कृष्ण, नृसिंह, परशुराम तथा हनुमान्) अथवा शक्तिके अनेक रूप माने गये हैं । उन अनेक रूपोंमेंसे किसी रूपके देवताके साथ वह (साधक) एकात्मता स्थापित करनेका प्रयत्न करता है और उसी देवताको वह साक्षात् भगवान्, अपना इष्टदेव, अपना ध्येय, प्रेय, साध्य सब कुछ मानते हुए तन-मन और श्रमसे उसकी उपासना, उसका ध्यान और उसके मन्त्रका जप करता चलता है, और इस विश्वासक साथ साधना करता चलता है कि मुझे अपने इष्टदेवके दर्शन अवस्य होंगे। प्रायः इस प्रकारके अनेक भक्तोंके और साधकोंके मुखसे यह कहते हुए सुना भी गया है कि मुझे अपने इष्टदेवक दर्शन हो गये । उसकी उस साधनासे उसके आसपास रहनेवाले उसके आत्मीय या भक्त लोग भी कुछ उसकी चामत्कारिक क्रियाओंसे प्रभावित होकर यह कहने छगते हैं कि इन्हें अमुक देवताका इह है। इसलिये इनमें यह शक्ति आ गयी है। कभी-कभी उस साधककी देव-साधनासे प्राप्त सिद्धि-वलका प्रदर्शन भी देखनेको मिल ही जाता है, इसीलिये कहा गया है—

यादशी भावना यस्य सिद्धिभैवति तादशी । (हरिवंश)

'जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।' धनुष्यज्ञके समय भगवान् रामको देखकर वहाँ उपस्थित विभिन्न प्रकारकी वृत्तियोंके लोगोंने उन्हें विभिन्न रूपोंमें देखा, जिसकी व्याख्या करते हुए गोस्त्रामीजीने लिखा—

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु सूरित देखी तिन तैसी॥
कंसके धनुप्यज्ञमें भी ऐसा ही हुआ।
यह भावना ही वह मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जो
भगवानको भक्तके सामने उसकी भावनाके अनुसार
रूपमें छा खड़ा कर देती है। भावनाका अर्थ है—अस्पन्त
तीव्ररूपसे अपने इष्टदेवकी भावना या ध्यान कर
उनसे पूर्ण तन्मयता स्थापित कर छेना।
इस भावनाको ही भगवत्तत्त्व समझनेका सबसे अधिक
प्रवछ आधार माना गया है। किंतु यह भगवत्तत्त्व है
क्या ! विष्णुपुराण (अंश० ६, अध्याय ५)में भगवान्
शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—

पेश्वर्यस्य समप्रस्य वीर्यस्य यशसः थ्रियः। ज्ञानवैराग्ययोक्ष्मेव पण्णां भग इतीरिणा॥ उत्पत्तिं प्रस्तयं चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥ महतां श्रुद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा। स्रष्टा पाता च शास्ता च भगवान् करुणानिधिः॥

'सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समस्त शक्ति, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन — छहोंकी समष्टिको भग कहते हैं और जिसमें ये छहों गुण विद्यमान हों वही भगवान् कहळाता है। इसीके साथ-साथ भगवान् वही कहळा सकता है जो सभी जीवोंकी उत्पत्ति और प्रस्य या विनाश, निराश्रयता और साश्रयता तथा विद्या और अविद्याको मळीमोंति जानता-समझता हो, जो वहे और छोटे सव जीवोंको उत्पन्न करता, उनकी रक्षा करता और उन्पर शासन करता रहता है, वही करुणामय भगवान् हैं।

यही बास्तवमें वह भगवतत्त्व है जिसे मलीमाँति समझ लेनेपर फिर कुछ जानना-समझना रोष नहीं रह जाता । इसी भगवतत्त्वको समझानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको कुरुक्षेत्रमें गीताके रूपमें उपदेश दिया और अपना विराट्रूप भी दिख्लाया तथा इसी भगवत्त्त्वको खयं भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवको समझाकर बदरिकाश्रम मेजा था ।

यह भगवत्तत्त्र साधारणतः छोगोंकी समझमें आ नहीं पाता । जब अर्जुन-जैसे सुपात्रको भी यह भगवत्तत्त्र बहुत समझने और विराट्रूप दिखानेपर ही समझाया जा सका, तब साधारण मनुष्यकी तो उसमें गित ही कहाँ हो सकती है ! किंतु सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियासे इस भगवत्तत्त्वका अनुभव और उसकी साधना सरछतापूर्वक सम्भव है । इसके छिये पहछी सीढ़ी है विश्वास अर्थात् साधकके मनमें अपने इष्टदेवकी भगवत्ताके सम्बन्धमें पूर्ण विश्वास और इस विश्वासके साथ उसमें यह भी प्रवछ भावना होनी चाहिये कि वह बिना कुछ विचार किये अपनेको पूर्णतः उसके हाथमें सौंपकर कह दे —'यथेच्छिस तथा कुरु।'

यही 'प्रपत्तिवाद' कहलाता है और इसीको 'शरणागतित्राद' भी कहते हैं। इसकी न्याख्या करते इए कहा गया है कि—

आनुक्ल्यस्य संकल्पः प्रातिकृल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा॥ आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विद्या शरणागतिः॥

'शरणागित या प्रपत्ति सिद्ध करनेके छः उपाय हैं या उन्हें छः मनोवैज्ञानिक पद भी कह सकते हैं; अर्थात यह संकल्प कर लेना कि आजसे मैं आपके अनुकूल ही रहूँगा, कभी आपके प्रतिकृत्ल कोई भावना मनमें नहीं आने दूँगा। मेरा यह विश्वास है कि आप, केवल आप ही मेरी रक्षा करेंगे और करते रहेंगे। इस विश्वासके

साथ में आपको अपने रक्षकके रूपमें वरण करता हूँ। आजसे में अपने आपको पूर्णतः आपके हाथोंमें समर्पित कर रहा हूँ और में इतना आर्त हूँ कि आपके अतिरिक्त किसी दूसरेका पल्ला नहीं पकड़ सकता। आप ही मेरा कष्ट दूर कर सकते हैं; मैं पतित हूँ और आप पतित-पावन हैं।

यह सारी प्रक्रिया पूर्णतः मानसिक होती है, जो मनके स्थिर संकल्पसे ही सिद्ध हो पाती है। जिसकी यह मानसिक प्रक्रिया पूर्णतः सिद्ध हो जाती है, वह भगवत्तत्त्वको ठीक समझ भी पाता है और इस भगवत्तत्त्वको सिद्ध भी कर लेता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भगवत्तत्त्वको यही शुद्ध मीमांसा है।

श्रीमद्भगवत्तत्त्व-विमर्श

(लेखक—डॉ॰ श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

श्रीभगवान्के वारसल्य, माध्य आदि अनेकानेक गुणोंके साथ भक्तजन उनकी छ शक्तियोंको भी मुख्य मानते हैं। वे हैं — ज्ञान, बल, ऐरवर्य, वीर्य, शक्ति और ओज । भक्तिशाल्लियोंको इस षट्कने इतना मोहित किया कि उन्होंने इस गुण-समुदायको ही भगवत्तत्व का नाम दे दिया है—

श्वानशक्तिवलैश्वर्यवीर्यं तेजांस्पशेषतः भगवच्छन्द्वाच्यानि विना हेयगुणादिभिः॥ (विज्युपुराण ६ । ५ । ७९)

ये छ गुण जिनमें पूर्ण होते हैं, वे भगवान् हैं। ऋषि-महर्षि आदिके लिये भगवान् राब्दका प्रयोग औपचारिक हैं। समस्त वस्तुओंका युगपत् साक्षात्कार ज्ञान कहलाता है——

तान्यहं चेद सर्वाणि न त्वं चेत्थ परंतप॥ (गीता४।५)

विविश चेतनाचेतन स्थावर-जङ्गम विश्व-ब्रह्माण्ड-निचय भगवान्के वलके लवलेशसे ही विधृत है— 'प्तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गागि सूर्याचन्द्र-मसौ विधृतौ तिष्ठतः। प्तस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गागि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः।' (बृ॰ उ॰ १।८।१)

श्रीभगवान्का नियमन-सामध्य ही ऐरवर्य है। पृथिन्यादि आत्म-पर्यन्त वस्तु-जातका नियमन भगवान्के ऐस्वर्यसे ही हो

रहा है-'यःपृथिवीमन्तरो यमयति यमियं पृथ्वी न वेद य आत्मानमन्तरो यमयति यमयमात्मा न चेद (ब्॰ उ॰ ३।७।३) अपने खरूपमें किसी प्रकारका विकार न होना वीर्य है । विकारमयी प्रकृतिसे परे होनेके कारण भगवान् निर्विकार हैं । अनेक रूप धारण करना विकार नहीं कहलाता । सुवर्णका कुण्डल अथवा कटक बनना सुवर्णका विकार न होकर केवल उसका संस्थान-मेद है; क्योंकि दोनों अवस्थाओंमें सुवर्णत्व अन्याहृत रहता है । इसी प्रकार भगवान् धनुर्वाणधारी श्रीराम-रूपमें रहें अथवा मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण-रूपमें, उनका प्रकृति-परन्य अक्षुण्ण रहता है । अघटितको घटित करनेवाला अथवा असम्भवको भी सम्भव करनेवाला गुण शक्ति है। पर्वतको राई और राईको पर्वत बना सकना उनकी शक्तिका विलास है। प्रामिभव-सामध्य ओज कहलाता है। इसको तेज (तेजस्) भी कहते हैं। इसी गुणसे भगवान् दुरासद, दुराभर्ष और दुरतिक्रम रिपु-चक्रका दमन अनायास कर लेते हैं। श्रुतिने जिस प्रकार 'यः सर्वज्ञ सर्ववित्' (मुण्डकोपनिषद् १।१। १०) आदि वचनोंमें भगवदीय स ज्ञता आदि गुणोंका निर्देश किया है, उसी प्रकार — 'यत्ते रूपं कल्याणतमम्' (ईशावास्य० १६), 'यदा पद्यः रुक्मवर्णम्' (मुण्डको० ३ । १ । ३),

हेतस्य रूपम्' (बृहदा०२।३६)ः 'तस्यैष आत्मा विवृणुते तनृश् स्वाम् ।' (मुण्डको०३।२।३) आदि वाक्योंमें भगवदीय रूपका भी निर्देश किया गया है।

भगवान्की सत्ता सर्वथा शुद्ध है । शुद्ध सत्ता ही शुद्ध तत्त्व कही जाती है । भगवान्के विस्व-विश्रुत 'सिचदानन्द' नामका प्रथम अंश 'सत्' है । इसको शुद्ध तत्त्व या विशुद्ध सत्त्व कहा जाता है । प्राकृत सत्त्वगुणसे तात्पर्य नहीं है । शास्त्रमें श्रीभगवान्में प्राकृत गुणोंका प्रतिपेध किया गया है—

सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः। (विष्णुपुराण १।९।४४)

जब ज्ञान, आनन्द आदि गुण भगवत्स्वरूप हैं, तब ज्ञान-मूर्ति, आनन्द-मूर्ति, ज्ञान-विग्रह, आनन्द-विग्रह आदि शब्दोंसे भगवान्का निर्देश समीचीन ही है। ऐसे सभी शब्दोंके भावोंको सूचित करनेके लिये भक्तगण 'सिच्चदानन्द्रघन' शब्दका प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ है सिच्चदानन्द्रम्तिं; क्योंकि घन शब्दका अर्थ मूर्ति ही है—'मूर्ती घनः'(पाणि अष्टाध्या० ३।३।७७) श्रीभगवान्में देह और देहीकी कल्पनाक लिये भी अवकाश नहीं है। इसीलिये भगवान्के सभी श्रीविग्रहोंके लिये शास्त्रमें कहा गया है, वे आपादमस्तक, परमानन्द्रमूर्तिं और केवल ज्ञानमय होते हैं। अत्राकृत भगवद्-विग्रह चिदानन्दका आकर है। उस विग्रहमें प्राकृत कल्पनाओंका आरोप अनुचित है। जब भगवान्में सात्त्विकाहंकारोत्य एकादश इन्द्रियोंकी ही सिद्धि नहीं हो सकती, तब तामसाहंकारसे विकसित स्थृल शरीरकी तो चर्चा ही क्या!

श्रीभगवान्का वर्ण नील है। संस्कृतमें नीलको स्थाम

भी कहते हैं—'कृष्णो नीलासितश्यामकालश्यामल-मेचकाः।' (अमरकोश १, ५, १४) अतएव भगवान् स्यामसुन्दर कहलाते हैं। हिरण्यवर्णा श्रीलङ्मीजीके सांनिष्यके कारण भगवान्का इन्द्रनीलमिणके समान नीलवर्ण मरकतके समान हरित प्रतीत होने लगता है— नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगताश्रिये। केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे॥ (श्रीमद्भा० ८। १६।३५)

पीत एवं नील वर्णोंके मिश्रणसे हरितवर्ण हो जाता है। यह वैज्ञानिकोंकी मान्यता है। भगवान् सर्वव्यापक हैं और उनकी शक्ति जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी भी सर्वव्यापिका हैं, विष्णुपुराणका कथन है—

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी। यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥ (१।८।१७)

अग्निपुराणका भी यही मत है—
त्वयैतद् विष्णुना चाम्त्र जगद्व्याप्तं चराचरम् ।
(२३७ । १०)

छक्ष्मीनारायण भगवान् ही सीताराम भगवान् हैं— सीता छक्ष्मीभेवान् विष्णुः।(रामायण ६ । ११७ । २९) रूपिणी यस्य पाद्यवस्था सीतेति प्रथिता जनैः। (हरिवंद्या, हरिवंदापर्व १४१ । १२९)

एवं वे ही भगवान् श्रीराधा-कृष्ण भी हैं— सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः। नैतयोर्विचते भेदः स्वरुपोऽपि मुनिसत्तम॥ (कृष्याण, श्रीःविष्णुअङ्कः) पृष्ठ ७६, सम्पादकीय टिप्पणीमें उद्धृत वचन)। प्रारम्भमें भग और भगवान्के वाच्य-वाचक-सम्बन्धकी जो चर्चा हुई है, वह भग पवं भगवांस्तु देवाः' इस ऋग्वेदीय (७।४१।५) मन्त्रांशका पौराणिक उपबृंहण है।

वेदमें भगवत्तत्वका स्रोत

(लेखक—श्रीशिवकुमारजी शाजी, ज्याकरणाचार्य, दर्शनालङ्कार)

भारतीय संस्कृतिके मुलाधार वेद हैं । भारतीय संस्कृतिमें वेदोंका सर्वोत्कृष्ट स्थान है । वे सम्पूर्ण धर्मके मूल हैं-—'वेदोऽि खिलो धर्ममूलम'। एक आस्तिक हिन्दूके लिये वेद-विरुद्ध ईश्वरके वचन भी वेदिवरुद्ध होनेसे ही प्रामाणिक नहीं हैं । वेद-निन्दकको ही नास्तिक कहते हैं—'नास्तिको वेदिनन्दकः'। खतः प्रमाणभूत मारतीय वाङ्मयके आधारभूत वेद अपौरुषेय हैं । उनमें किसी भी पुरुषका किंचिदिप खातन्त्र्य नहीं है । कर्तव्य-अकर्तव्य कर्मोकी व्यवस्थामें एकमात्र शासन करनेवाले वेद ही हैं । भगवान् कृष्णका गीता-(१६। २३-२४)-में परामर्श है कि शास्त्र-विधानोक्त कर्तव्यका ज्ञान कर कर्म करना चाहिये । जो पुरुष शास्त्रविधिका त्याग कर खतन्त्रतापूर्वक मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धि पाता है, न सुख और न उत्तम गित ही।

अपौरुषेय होनेसे ही वेद भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव (इन्द्रियोंकी असामर्थ्य) आदि दोषोंसे असंस्पृष्ट हैं। वेद परमात्माके निःश्वासमूत हैं। 'यस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वा- हिन्दसः'—'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी'और निःश्वसितमस्वेदाः'—ये सभी वचन वेदोंको मगवान्के निःश्वासम्यवेदाः'—ये सभी वचन वेदोंको मगवान्के निःश्वासम्यवेदाः'—ये सभी वचन वेदोंको मगवान्के निःश्वासम्यते बताते हैं। वेदोंमें सहस्रशः ऐसे मन्त्र मिलते हैं, जिनमें भगवत्तत्त्वका स्पष्ट विवेचन है। उनमें कुछ मन्त्रोंको हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। जो सबका शासक, सबका नियामक, सबको शक्ति देनेवाला है, वेदोंमें विविध रूपोंसे उसकी महिमाका उपखृंहण है। हम सब उस परमात्माको श्रद्धापूर्वक हविर्दान करते हैं। इन हिमाचल आदि पर्वतों और निदयोंके साथ समुद्र जिसकी महिमा कहते हैं, ये पूर्व आदि दिशाएँ

जिसकी महिमाको बतानेवाछी हैं, जिसके बाहु विश्वके रक्षक हैं, यह सम्पूर्ण जगत् उस परमात्माकी विभूति है— यस्येमे दिमवन्तोमहित्वा यस्य समुद्र रसया सहादुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाह्न कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (शु॰ यजु॰ २५। १२)

हम उस प्रमात्माका श्रद्धापूर्वक यजन करते हैं, जो उपासकोंको सायुज्य मोक्ष देनेवाला है, सामर्थ्य देनेवाला है—भोग-मोक्षका प्रदाता है । सारे देव-मनुष्यादि जिसका शासन मानते हैं, जिसके ज्ञानपूर्वक आश्रय और उपासना मोक्षहेतु हैं और जिसका अज्ञान संसारका कारण है—

य आत्मदावलदायस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय द्विषा विधेम ॥

(ग्रु॰ यजु॰ २५ । १३)

वही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा है । जुन, प्रकाशमान वेद, प्रतिपाद्य ब्रह्म—इन सब रूपोंमें क्याप्त है । जल और प्रजापति भी ब्रह्म है——

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तद् चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापितः ॥ (शु० यजु० ३२ । १)

यह प्रसिद्ध है कि यह ब्रह्म भगवान् सारी दिशाओं में व्याप्त होकर स्थित है। मनुष्यो! यह भी प्रसिद्ध है कि यह सबसे प्रथम उत्पन्न है। गर्भमें भी इसकी ही स्थिति है। उत्पन्न होकर भी यह भविष्यत्कालमें भी उत्पन्न होनेवाला है। सब ओर मुखादि अवयववाला अचिन्त्यशक्ति वह ब्रह्म प्रत्येक वस्तुमें पूर्ण है।

एवो ह देवः प्रदिशो जु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः

प्रत्यङ्जनास् तिष्ठति सर्वतो मुखः॥ (शु० यजु० ३२ । ४)

इस परमपुरुषने आकाशको वृष्टि देनेवाला बनाया है और पृथ्वीको दृढ़ धारणशक्तिवाला वनाया है । सव प्राणियोंका धारण, वृष्टिका ग्रहण और अन्नकी सिद्धि— यही पृथ्वीकी दृढ़ताका प्रयोजन है । उसने सूर्य-मण्डलको ऊपर ही रोक रखा है और खर्मको भी स्तम्भित किया है। हम जो आकाशमें वृष्टिरूप जलके रचयिता हैं, उन देवको श्रद्धापूर्वक हित्रप् अर्पण करते हैं— येन चौरुप्रा पृथ्वी च हढा येन खः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षेरजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

वेदान्तविद्याके रहस्यके जानकार सदसद् विवेक-शाली विद्वान् उस ब्रह्म वा भगवान्का साक्षात्कार करते हैं, उसे जानते हैं—जो सबकी हृदयगुहामें स्थित होकर भी दुर्नेय है । वह नित्य है । जिस तत्त्वमें यह कार्य-रूप विश्व एक आश्रयवाला हो जाता है एवं कारण-रूप वन जाता है, उस परमतत्त्वमें ही यह सम्पूर्ण भूत-समुदाय प्रलयमें मिल जाता है तथा सृष्टिके समय व्यक्त हो जाता है । वह परमतस्व परमात्मा सत्रमें ओत-प्रोत हो रहा है। वह ऊर्घ्वतन्तुओं में पटकी भाँति शरीरभावसे ओत तथा तिरछे तन्तुओंमें पटको माँति शरीरी आत्माके भावसे प्रोत है अर्थात् सव ओरसे गुथा हुआ है। वही कार्य-कारणभावसे विविधक्त्पोंमें दश्यमान हो रहा है। वहीं सब कुछ है। वह हम सबका वन्धु, उत्पादक, धारक और संरक्षक भी है। वह सब छोकों एवं स्थानोंको भी जानता है जिसकी शक्तिसे अमृतखरूपसे पूर्ण होकर अग्नि, इन्द्र आदि देव खर्गमें स्वेच्छासे ही आनन्दित रहते हैं।

वेनस्तत्पश्यभिहितं गुहा सद् विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु ॥ स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। असृतमानसाना-स्वतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ (गु॰ बचु॰ ३२ । ६ । ८ । १०)

सर्वान्तर्यामी, सर्वान्तरात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् सर्वस्रहरप होकर भी किसी विशेष रूपके धारण करने समर्थ हैं। विरोधिनी शक्तियाँ भी जहाँ खभावोंका प्रदर्शन कर सकें, उसकी यही सर्वशक्तिमत्ता है। क 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु प्रभुः' है; करने-न-काने विपरीत करनेमें अप्रतिहत शक्तिवाला होना ही भगवान्की भगवत्ता है। ब्राह्मण उस एक ही सत्तत्त्वको मिन्न-मिन अग्नि, यम, वायु आदिके नामोंसे पुकारते हैं-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाद्धरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुतमान्। पकं सद् विश्रा यहुधा वद्नित अस्तिं यमं मातरिश्वानमादः॥ (ऋ० सं०१।१६४।४)

वेदोंमें कर्मकाण्ड, उपासना-(भक्ति-)काण्ड, ज्ञानकाण्ड—इन तीनोंका विराद विवेचन है। तीनों काण्ड परस्पर सम्बद्ध हैं। वे क्रमशः एक दूसरेके सहायक हैं। अब विचारणीय वात यह है कि क्या कर्म और उपासना निःसाक्षिक स्वतन्त्ररूपेण फलप्रद हैं । कोई भी कृतकर्म समाप्त होकर पुरुषकी सत्ताके बिना, तदाराधनके बिना फलदानमें उन्मुख कैसे होगा—'क्व कर्मप्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनसृते ।' निःसाक्षिक कर्म माननेपर अकृताम्यागम --- नहीं किये गये कर्मफलकी प्राप्ति एवं कृत-प्रणाश—किये गये कर्मोंका नाश, ये दोनों ही दोष सम्भाव्य हैं। तत्त्वदर्शन ही भारतीय संस्कृतिका परम छस्य है । भगवत्तत्त्वके अभ्युपगम होनेसे ही कर्म उपासना और ज्ञानका साफल्य सम्भव है। एक सत् तत्वकी बहुत प्रकारसे कहे जानेपर भी नाम-भेद होनेपर भी वस्तु-मेद-प्रतिपत्ति नहीं है । क्रियाभेदसे ही नाम-भेद है। वेदोंमें सर्वत्र अनुस्यूत सत्ताका विविध रूपोंसे वर्णन मिछता है। उपरिछिखित मन्त्रोंमें यह बात स्पष्ट बर्णित है। तन्तुओंमें पटकी माँति वह परम तत्त्व सबमें ओत-प्रोत है। यह तत्त्व ही सबकी सत्ताका नियामक है। यह सब भूत, भविष्यत्, वर्तमान काळाविष्ठिक वर्ष जातके रूपमें पुरुष ही है और वह अमृतमावका खामी

है 'पुरुष एवेद्श सर्वे यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहित (शु०

यजु० ३१।२)। उस परमात्माकी पृथ्वी, जल, तेज,

वायु, आकाशादि प्रत्यक्ष महिमा भी परिच्छेद-(सीमा-)

से रहित है, तो फिर श्रुति (शब्द) और अनुमानसे

सिद्ध होनेवाले उस परम भगवत्तत्त्वके विषयमें ही क्या

कहना है—

प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेचो मह्यादिर्महिमा तव। आप्तावागनुमानाभ्यां साध्यं त्वां प्रति का कथा॥ (रष्ठ० १२८)

'यह सम्पूर्ण दृश्यवर्ग उसीकी महिमा है। पर वह इससे बहुत बड़ा है। यह सब उसका चतुर्थीश है। पर तीन अंश तो इससे पृथक उसके दिव्य रूपमें ही हैं'—

पतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विद्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (वाजस॰ मा॰ शु॰ यजु॰ ३१।३)

वेदोंमें भगवत्तत्त्रके प्रतिपादक वचन सहस्रशः हैं।
यहाँ कुछ निदर्शनमात्र हैं। वेदोंका प्रतिपाद्य छक्ष्य
एकमात्र भगवत्तत्त्व ही है। यजुर्वेदके 'वाकोवाक्य'में एवं
त्रुग्वेदके भी ऐसे ही मन्त्रोंमें भगवत्तत्त्वका सुन्दर
प्रतिपादन स्फुटतया छिसत होता है। विशेष ज्ञानके
छिये वहाँ ही देखना चाहिये।

संसारमें घटादिका निर्माता कुम्भकार किसी स्थानपर बैठकार आरम्भक कारणद्रव्य मृत्तिकासे चक्रादि साधनों-की सहायतासे घटादिका निर्माण करता है। आकाशादि-की सृष्टि कर रहे विश्वकर्मा परमात्माका अधिष्ठान क्या था ! निवास कहाँ था ! सृष्टिनिर्माणमें उपादानकारण क्या था ! किया क्या थी ! (जिससे) अतीत अनागत वर्तमानकालके एक साथ साक्षात्कर्ता अनन्यशक्ति परमात्माने पृथ्वी आदिकी उत्पत्ति करते हुए खसामध्यसे उन्हें आच्छादित किया— किं खिदासीद्धिष्ठानमारम्भ कतमत् खित् कथासीत्। यतो भूमि जनयन् विश्वकर्मा विद्यामीणीनमहिना विश्वचक्षाः॥

उक्त प्रश्नोंका उत्तर देते हुए आगे कहते हैं कि असहाय वह एकाकी ही विश्वरूपी कर्म करनेवाला देव आकाशादिकी सृष्टि करता हुआ, बाहुस्थानीय धर्म-अधर्मसे पश्चमहाभूतोंसे सम्बद्ध हो जाता है । धर्माधर्म निमित्त और पश्चमहाभूतरूप उपादानकारणोंसे सक्त हो जाता है । वह अन्य साधनोंकी अपेक्षाके बिना ही सृष्टि कर देता है । वह परमात्मा सब ओर नेत्रोंबाला, सब ओर मुखवाला, बाहुबाला, चरणवाला है । सर्वभूतात्मक होनेसे प्राणियोंके सारे अङ्ग उस भगवान्के ही हैं ।

विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतो मुखो विश्वतो वाहुरुतविश्वतः पात्। सं वाहुभ्यां धमति सम्पतत्रे-र्घावाभूमि जनयन् देव एकः॥ (शु० यजु० १७ । १९)

सबका स्रष्टा और विशिष्ट मनवाडा होकर सर्वकर्गीका ज्ञाता है। आकाशके समान व्यापक तथा संहारक, सबका धारक और सबका उत्पादक, सर्वोत्कृष्ट परमात्मा जिन्हें अनुप्रहपूर्ण दृष्टिसे देखता है, वे सुखी होकर मुक्त हो जाते हैं। जिस छोकमें सप्तर्षि विश्वकर्मा परमात्माके साथ एकताको प्राप्त हो चुके हैं, वहाँ सब इन्होंसे रहित होकर सब भूत आहुति रसभूत अन्नसे सुखी रहते हैं। जो हम सबका पिता, पाछक और उत्पादक है और जो विशेषक्रपसे सबका धारण करनेवाछा है और जो सम्पूर्ण भूतसमुदाय और स्थानोंका ज्ञाता है तथा जो एक होते हुए भी देवोंके भिन्न नामोंका धारण करनेवाछा है, सम्पूर्ण जीव अपने अधिकार-प्रश्नके छिये उसीकी शरणमें जाते हैं अथवा प्रछयमें उसीमें मिछ जाते हैं—

प्रयोत संद्रकातेषामिष्टनिस्निम्या मद्नित । यत्रा

सप्त ऋषीन्पर एकमाद्वः । यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानां नामधा एक एव त सम्प्रदनं भुवनायन्त्यन्या । (शु॰ यजु॰ १७ । २६ । २७)

जो परमात्मा इन सम्पूर्ण भूतोंको उत्पन्न करता है और अन्तमें समेट लेता है, जीवो ! उस परमपुरुषको तुमलोग नहीं जानते हो । अहंप्रत्ययगम्य तुम जीवोंका वास्तविक खरूपं अन्य हे । यदि तुम उसे समझकर आत्माके रूपमें उसकी उपासना करो तो तुम्हारा संसार-व्यन छिन्न हो जायगा । नीहार (कुहरे) के समान अज्ञानसे आवृत होने और कुतक अहङ्कारपूर्ण होनेसे में मनुष्योंमें श्रेष्ठ हूं, सम्पन्न और वल्त्रान् हूँ, सबमें में सम्मानित हूँ, मेरा यह ऐश्वर्य है आदि अहंता-ममतापूर्ण भाषण करनेवाले विषयेन्द्रिय-सम्बन्धमें ही निरन्तर रत, परलोकके मोगोंमें आसिक्त होनेसे यज्ञोंमें स्तुतिमें लगे हुए पुरुष, उस भगवत्तत्वके अधिकारी नहीं हैं । लौकिक, पारलोकिक विषय-मोगोंकी तृष्णामें आकण्ठ मग्न, अज्ञान-मिथ्या ज्ञानके वश्वर्तीजनोंको तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति सम्भव नहीं हैं ।

न तं विदाथय इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं वभूव। नीहारेणप्रादताजल्या चासुतृप उक्थशा संश्चरन्ति॥ (ग्रु॰ यजु॰ १७ । ३१)

जो सर्वातमा प्रजापित सबके हृदयमें शित होकर अन्तः प्रविष्ट है और जो अजन्मा होकर भी कार्य-कारणक्रपसे विविध क्र्पोंसे मायासे प्रपञ्चक्रपसे उत्पन्न होता हैं, भगवत्तत्त्वका साक्षात्कार करनेवाछे विद्वान् उस ब्रह्मके खरूपका साक्षात्कार करते हैं—मैं वही हूँ ऐसा अनुभव करते हैं। सारे भूतसमुदाय जिस भगवत्तत्त्वमें ही श्वित हैं, यह सब तत्त्वक्रप ही है।—

प्रजापतिश्चरित गर्भे अन्त-रजायमानो बहुधा विजायते।

तस्य योनि परिपश्यन्ति धीरा-स्तस्मिन्द्दतस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ (ग्र॰ यज्ञ ॰ ३१।१।

यह भगवत्तत्व भी विविध नामरूपोंसे सगुण-साकाः रूपसे और सर्वज्ञ, सर्वान्तर्याभी, सर्वव्यापक, अनामकः निर्गुण, निराकारके रूपमें भी वेदोंका परम प्रतिपाद है। यहाँ उद्भृत मन्त्र भगवान्के निर्गुण-निराकारके सा सगुण-साकार रूपके भी प्रतिपादक हैं——

ॐ ज्यम्बकं यजामहे सुगन्धिपुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्। त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुगौपा अदाम्यः। (ग्रु० यज्जु० ३ । ६०, ३४ । ४३)

इसी प्रकारके बहुतसे अन्य मन्त्र सगुण-साका रूपका प्रतिपादन करते हैं । वेदोंमें उसी भगवत्तला विधिनिषेध-रूपसे वर्णन प्राप्त होता है ।

सबका कल्याण चाहनेवाले, सबको सुख देनेको सांसारिक सर्वसुखोंके प्रदाता, ज्ञानप्रद होनेसे मेरे सुखके देनेवाले कल्याणरूप निष्पाप धर्माधर्मादिरिक अत्यन्त कल्याणमयखरूप शिव होकर भक्तोंको में निष्पाप करनेवाले निरितशय शिव उन भगवान्को बारम्बार नमन है। श्रुतिने—'शान्तं शिवमद्वेतं चर्ण मन्यन्ते' कहकर स्पष्टतया अद्वितीय शिवको ही तुर्ण (भगवत्तत्व) प्रतिपादित किया है। अतः शिवतं भगवत्त्व है। मादश जन तो—

ध्यानाभ्यासवशोकतेन मनसा यन्निर्गुणं निष्कियं ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पद्दयन्ति पद्दयन्तुते। असाकं तु तदेव छोचनचमत्काराय भूयाधिरं कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नमीलं महो धावित।

अद्देतनेदान्तके परमप्रकाण्ड आचार्य मधुसूर्व सरखतीके इन शब्दोंसे भगवत्तत्त्वका चिन्तनकर उसके पात्रतामें ही अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

*==

औपनिषद भगवत्तत्व

(लेखक—श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)

भगवत्तत्त्व क्या है ?'—-इसका प्रामाणिक तथा स्युक्तिक उत्तर एकमात्र वेदान्तमें ही मिळता है । वेदके शीर्यस्थानीय वेदान्त प्रन्थ ज्ञानके आकर हैं। इनमें जीव, ईश्वर, जगत् आदिका तात्त्विक वित्रेचन प्राप्त होता है। बेदान्तकी उपनिषद्, रहस्य आदि भी संज्ञा है। धोगवासिष्ठः 'शारीरकसूत्रादिः भी इनमें समिलित हैं। भगवत्त्व या परमतत्त्व प्रकृति तथा प्राकृतिक पदार्थोंसे अतीत है । इसिछिये वह प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाणोंसे बोधगम्य नहीं । नाम, रूप, क्रिया, सम्बन्ध आदि भी प्रमतत्त्वमें नहीं हैं । इसी कारण उनमें शब्द-प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती; क्योंकि किसी निमित्तके आश्रयसे ही तो शब्द-प्रवृत्ति सम्भव है । कहा भी है---

निमित्तं किंचिदाश्रित्य खलु शब्दः प्रवर्तते। वाचो निवर्तन्ते निमित्तानामभावतः॥ परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते ॥ (कठ हद्रोपनिषद् ३१-३२) निर्विशेषे

'किसी निमित्तके आश्रयसे ही शब्द-प्रवृत्ति होती है। परमतत्त्वमें निमित्तके अभावसे वाणी प्रवृत्त नहीं होती । भला अशेष-विशेषश्चान्य परानन्दमें शब्द-प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ? प्रकृति तथा प्राकृतिक गुणोंके आध्यासिक सम्बन्धसे ही परमतत्त्वमें नाम, रूप, क्रिया आदिका व्यवहार होता है । ब्रह्म, आत्मा, पुरुष, शिव, नारायण, विष्णु, गणेश, सूर्य, रुद्र, देवी आदि नामोंकी कल्पना किसी-न-किसी सम्बन्धसे ही होती है। सत्, चित्, आनन्द, अनन्त, पूर्ण आदि शब्द—प्रयोगका कारण भी यही है। ब्रह्म तथा प्रकृतिके छक्षण और सम्बन्धका वर्णन करती हुई उपनिषद् कहती है-

सदेव सोम्येद्मग्र आसीत्। तन्नित्यमुक्तमविकियं सत्यक्षानानन्दं परिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। तिसान् मरुशुक्तिका-स्थाणु-स्फटिकादौ जलरौप्य-पुरुषरेखादिवल्लोहितशुक्रुकृष्ण-गुणमयी गुणसाम्या-निर्वोच्या मूलप्रकृतिरासीत्। (पैङ॰गलेप॰ १।१)

'प्रियदर्शन ! सृष्टिसे पूर्व सत् ही या । वह नित्य' मुक्त, निर्विकार, सत्य, ज्ञान, आनन्द, परिपूर्ण, सनातन तथा सजातीय-विजातीय एवं खगतभेदशून्य अद्वितीय ब्रह्म था । उसमें मरुसूमिमें जल, शुक्तिकामें चाँदी, स्थाणुमें पुरुष और स्फेटिकमें रेखा आदिके समान कल्पित रक्त, गुक्र तथा कृष्ण गुणमयी गुणसाम्यावस्थावाली अनिवंचनीय प्रकृति थी । अध्यस्त प्रकृतिसे पर परमतत्त्व है। वहीं ज्ञानसे ज्ञेंय है और उसे जानकर ही प्राणी मुक्त होता है-

अन्यक्तात्तु परः पुरुषो न्यापको लिङ्ग एव च। यज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥ (कटोप०२।६।८)

'अन्यक्त-प्रकृतिसे पुरुष पर है, न्यांपक और अलिङ्ग है । जिसे जानकर जीव कर्मबन्धनसे मुक्त होता है और अमरत्व प्राप्त करता है। इस प्रकार परमतत्त्व असङ्ग, अविकारी, गुणरहित, निर्विशेष, निष्कंल, परिपूर्ण, अखण्ड, अनन्त, आकाशवत् अद्वयतत्त्व है। न उसमें क्रिया है, न कर्तृत्व । उत्पत्ति-विनाश, वन्व-मोक्ष, साध्य-साधन आदि सभी कल्पित हैं; यही सिद्धान्त है—

न निरोधो न चोत्पत्तिन बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥ (आत्मोपनिषद् ३१ अवधूतोपनिषद् ८; पञ्चदशी ६। २३५, माण्डूक्यकारिका २ । ३२, योगवा०)

'न कुछ उत्पन्न होता है, न नष्ट; न कोई बद्ध है, न साधक और न कोई मुमुक्षु है, न मुक्त—यही परमार्थ-रूप है। प्रकृति या मायाके सम्बन्धसे ही उत्पत्ति, स्थिति, भङ्ग, बन्धन, साधन, मुमुक्षता और मोक्षनी कल्पना की जाती है। जैसे अधिष्ठान रञ्जुमें सर्पकी भ्रान्तिसे भय, कम्प, पलायन आदि होते हैं और अधिष्ठान रज्जु-दर्शनसे सर्प-भ्रान्तिके निवारण होनेपर भय, कम्पादि निवृत्त हो जाते हैं, वैसे ही अधिष्ठान

परमतत्त्वके अदर्शन और कर्तृत्व-भोकृत्व, सुख्त्व-दु:ख्त्वि, जन्म-मरणादि देहाभिमानसे जीव बन्धनमें पड़ता है। इसके विपरीत अधिष्ठानतत्त्व-दर्शन होनेपर कर्तृत्वादिसे मुक्त होकर अपने खरूपमें स्थित होना ही अमरता है। यही वेदान्तका उद्घोष है—'हात्वा देवं मुच्यते सर्वपारोः।' (इवेता॰ ४ । १६) खप्रकारा शिवको जानकर, समस्त अविद्याके वन्धनोंसे मुक्त हो जाता है—

चर्मवद्काशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः। तदा देवमविकाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥ (क्वेता० ६ । २०)

'जब मनुष्य चमड़ेके समान आकाशको लपेट लेंगे, तभी खप्रकाश परमतत्त्वके बिना जाने दुःखका अन्त सम्भव हो सकेगा (अर्थात् यह असम्भव है)। भिष्कर्ष यह कि निर्गुण, निराकार, प्रत्यगभिन्न, परमतत्त्वज्ञानसे ही मोक्षखरूप तत्त्वकी प्राप्ति सम्भव है।

पूर्वोक्त निर्गुण, निर्विशेष, अकर्ता प्रमतत्त्व ही मायाके संयोगसे सगुण, सविशेष, कर्ता, सर्वज्ञ, कर्मफळ-प्रदाता, शासक, सृष्टि, स्थिति तथा संहारका हेतु होता है। कहा भी गया है--- 'ब्रह्मैंब खर्शाक्त प्रकृत्यभिधेया-माश्चित्य छोकान् सृष्ट्रा प्रविश्यान्तयामित्वेन त्रसादीनां बुद्धीन्द्रियनियन्तुत्वादीश्वरः।' (निरालम्बी०) 'त्रह्म ही प्रकृतिसंज्ञक अपनी राक्तिके आश्रित होकर छोकोंकी रचना करते हैं और लोकोंको रचकर, उनमें प्रवेशकर अन्तर्यामीरूपसे ब्रह्मादिके बुद्धि तथा इन्द्रियादिक नियन्ता होनेसे 'ईश्वर' कहे जाते हैं ।

मायोपाधिजैगचोनिः सर्वद्यत्वादिलक्षणः। पारोक्यशब्छः सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः॥ (अध्यात्मो०३०)

भाराको उपाविसे इस ही जगत्का उपादान कारण है तथा सर्वेद्र, शासक आदि उक्षण होनेसे निमित्तकारम भी है । शबल बद्दा परोक्ष और संविदानन्द खुक्त है, बहु 'हुन असे बहु। जाता है।

छन्दांसि यज्ञाः कतवो व्रतानि भूतं अव्यं यच वदा वदन्ति। असान्मायी खजते विश्वमेतत-तस्मिश्चान्यो मायया संनिरुद्धः॥ (श्वेता० ४।१

·वेद, यज्ञ, कतु, त्रत, भूत, भविष्य, वर्तमान ह इसके अतिरिक्त जो कुछ वेद कहते हैं, वह मायावी ईश्वर इस अक्षर ब्रह्मसे ही उत्पन्न काता और विश्व-प्रपन्नमें ही मायासे अन्य-सा होकर क्क पड़ गया है। माया अघटितघटनापटीयसी है। अस्तित्वशन्य होनेपर भी निराधार चिदाकाशमें अके चित्र-विचित्र विश्व-प्रपञ्चकी सृष्टि कर देती है है चिदाकाशखरूपको आच्छादित कर स्वयं नृत्य क्रां है । मायाके स्वरूपका निर्वचन उपनिषदें इस फ्रा करती हैं-- भाया नाम अनादिरन्तवती प्रमाणाप्रमार साधारणा न सती नासती न सदसती स्वयमिष विकाररहिता निरूप्यमाणा सतीतरळक्षणशून्या ह मायेत्युच्यते।'

'मायानाम्नी राक्ति अनादि तथा अन्तवाली है। वह प्रमाण-अप्रमाणमें सामान्य, न सत्य, न अस और न सदसत् (उभयरूपा) है । वह स्वयं अधिकातः विकाररहिता है। जो निरूपण करनेपर सभी ल्याणी रून्य है, वह माया है। माया अनन्त राकिल है। ज्ञान, इच्छा, किया, आवरण, विक्षेप, अहं^{का,} कल्याण, प्रभावादि उसके अनन्तरूप हैं। मायोपि के कारण ही परमतत्त्व ईश्वर, भगवान्, नाराण विष्णु, शिव आदि नामोंसे अभिहित होता है। माया ईश्वरके परतन्त्र है । ईश्वर खतन्त्र, संबं पाळक, शासक, न्यायकारी तथा दयाछ है। ईश्वर अप अखण्ड, अनन्त, सिचदानन्द खरूपको जानते हैं और मर्गि प्रपद्म तथा उसके बन्धनमें पड़े जीवोंको भी जानते हैं। किंतु जीव मायाके मोहिनी खरूपसे मोहित ही अपनेको जानता है, न ईश्वरको और न मायाको । ^औ मायाके परतन्त्र है । परतन्त्रतासे मुक्त होनेके लिये ईश्वरोपासना, भक्ति तथा खकमसे ईश्वराचन करना ही एकमात्र उपाय है । इसीलिये उपनिषद्का उद्घोष है— अतिमोहकरी माया मम विष्णोश्च सुन्नत । तस्य पादाम्बुजध्यानाद् दुस्तरा सुतरा भवेत् ॥ (शरभोपनिषद् २१)

'सुव्रत! मेरी (शिवकी) और विष्णुकी माया अत्यन्त मोहित करनेवाली है। ईश्वरके चरणकमलोंके ध्यानसे दुस्तरणीय माया भी सरलतासे तरणीय हो जाती है।' मायासे मोहित प्राणी शरीरमें अहंभावना और शरीरसे सम्बन्धित व्यक्ति तथा वस्तुमें मम भावना करता है। इनके लिये ही दिन-रात्रि प्रयत्न करता है, कभी ईश्वरका ध्यान नहीं करता। परिणामस्वरूप वह जन्म-मरणकी परम्परामें प्रवाहित होता रहता है और कर्मानुसार पशु, पक्षी, कीट, पतंग, मानव, दानवादि योनियोंमें जन्म-मरणके असहनीय कष्टोंको मोगता है। जबतक भगवान्की भक्ति और उनकी प्रसन्तता नहीं होती, तबतक इससे मुक्त होना सम्भव नहीं। अतः मानवकी मानवता यही है कि वह भगवान्की भक्तिद्वारा मुक्ति प्राप्त कर ले।

मुक्ति चार प्रकारकी होती है—साछोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। चारों प्रकारकी मुक्तियाँ ईश्वरोपासनासे प्राप्त होती हैं। श्रीहनुमान्जीके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीरामने कहा— 'कपे! दुराचारपरायण होनेपर भी मनुष्य मेरे नामके भजन करनेसे 'साछोक्य' मुक्ति प्राप्त करता है, किसी अन्य छोकको प्राप्त नहीं करता। जिनकी काशीमें ब्रह्मनाछ नामक स्थानमें मृत्यु होती है, वह मेरे तारक मन्त्रको प्राप्तकर पुनरावृत्ति-रहित मुक्ति प्राप्त करता है। काशीक्षेत्रमें जहाँ कहीं भी प्राणीकी मृत्यु हो, मृत्युके समय भगवान् शंकर उसके दक्षिण कर्णमें मेरे तारक मन्त्रका भछीभाँति उपदेश करते हैं। इससे समस्त पाप-समूहोंका निःसारण हो, मेरे 'सारूप्य'को प्राप्त करता है, वही साछोक्य-सारूप्य

मुक्ति कही जाती है । जो द्विज सदाचारपरायण हो नित्य अनन्य बुद्धिसे मुझ सर्वखरूपके ध्यानमें रहता है, वह मेरे 'सामीप्य'को पाता है, वही सालोक्य-सारूप्य-सामीप्य मुक्ति कही जाती है । जो द्विज गुरूपदिष्टमार्गसे मेरे सगुण अविनाशी खरूपका ध्यान करता है, वह भली-माँति भ्रमरकीटवत् ध्यान करनेसे मेरे 'सायुज्य'को प्राप्त करता है । वही ब्रह्मानन्दप्रदात्री कल्याणकारी 'सायुज्य' मुक्ति है । ये चारों प्रकारकी मुक्तियाँ मेरी उपासनासे प्राप्त होती हैं—

दुराचारतो वापि मन्नामभजनात् कपे।
सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम्॥
काइयां तु ब्रह्मनालेऽस्मिन् मृतो मत्तारमाप्नुयात्।
पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिं प्राप्नोति मानवः॥
यत्र कुत्रापि वा काइयां मरणे स महेश्वरः।
जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत्॥
निर्धूताशेषपापाशे मत्सारूप्यं भजत्ययम्।
सदाचाररतो भूत्वा द्विजो नित्यमनन्यशीः॥
मयि सर्वात्मके भावो मत्सामीप्यं भजत्ययम्।
सैव सालोक्यसारूप्यसामीप्या मुक्तिरिष्यते॥
गुरूपदिष्टमार्गेण ध्यायन् मद्गुणमञ्ययम्।
मत्सायुज्यं द्विजः सम्यण् भजेद्भ्रमरकीटवत्॥
(मुक्तिको०१।१८-२५)

यह ईश्वरंतत्त्व निर्गुण निराकार, सगुण-निराकार एवं सगुण साकार भी है। यही प्राणियोंके भोग- मोक्षके लिये संसारकी रचना करते हैं। देश, काल, वस्तु, दिशा-विदिशा, नीचे-ऊपर, अन्दर-बाहर समस्त रूपोंमें एकमात्र ईश्वर ही व्याप्त हैं। यह सब, भूत, वर्तमान और भविष्य नारायणखरूप ही है—'उर्ध्वं च नारायणः, अधश्च नारायणः। अन्तर्वहिश्च नारायणः, नारायणः, वर्ष्य स्वरं यद्भूतं यच भव्यम्। (नारायणो० २)

इस प्रकार सब कुछ और सर्वत्र भगवत्तत्त्व ही है, किसी अन्यकी सत्ता नहीं । सगुण-निराकार ईश्वर ही अपनी मायाशक्तिसे भक्तानुप्रहके लिये सगुण-साकारखरूप धारण करते हैं । जो अनन्तब्रह्माण्डों- की अपनेसे अपनेमें रचना करते हैं, पाळन करते हैं और अन्तमें अपनेमें ही छीन करते हैं, उनके छियी किसी विशेप खरूपकी संरचना क्या असम्भव है। भक्तोंके उद्रारार्थ तथा उनकी कामना-पूर्तिके लिये किसी विशेष देश, कालमें किसी भी खरूपको धारण करना लीलामात्र ही है । इसीलिये वेदमें उन्हें 'खयम्भू' (ईशा० ८) स्वेच्छासे उत्पन्न होनेवाले कहा गया है । अन्यत्र भी कहा है-

निष्कलस्याशरीरिणः। चिन्मयस्याद्वितीयस्य व्रह्मणो रूपकल्पना ॥ उपासकानां .कार्यार्थ (रामपूर्वतानी॰ १।७)

'ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, कलाशून्य और शरीररहित हैं। किंतु उपासकोंके कार्यसिद्धिके छिये वे रूपकी कल्पना

कर लेते हैं। सशरीर होनेपर भी ईश्वर कर्मक्रक्त युक्त नहीं होते। न कर्म-त्रन्थनसे जन्म होता है और कर्म करनेपर बन्धन होता है। यही ईश्वरकी विरुक्षणा है। वह तो मायाका आश्रय लेकर खयं स्वेच्छापूर्वक शां धारण करते हैं और लोकोपकारी तथा लोकशिक्षण लिये कार्य करते हैं । उनके चरित्रोंके कथन और गुण गान, ध्यानादिसे जीव संसारसागरसे पार हो जाते हैं।

इस प्रकार उपनिषदोंमें निर्गुण-निराकार, साण निराकार और सगुण-साकार भगवत्तत्त्वका मार्मिक सारगर्भित विवेचन मिळता है। अपनी योग्यतानुसार मनुष्य किसी भी रूपके परायण हो कल्याणखुख परम श्रेय प्राप्त कर सकता है।

वैष्णवागमोंमें भगवत्तत्व

(लेखक---डॉ॰ श्रीसियारामजी सक्सेना 'प्रवर' एम्॰ ए॰ पी-एच्॰ डी॰)

ब्रह्म ही भगवान् हैं

सात्त्वततन्त्रका उद्घोष है कि ब्रह्म ही 'भगवत्' पद वाच्य है। सत् या सत्य द्विविध है—सत्ता और खता। यह चित्-शक्तिसरूपसे प्रकृति और पुरुष है । सत्ताका (अस्तित्वमात्रका अर्थात् सर्वछोकों तथा सव जीत्रोंका) एकमात्र निलय (आश्रय) खता (भगवान्) है । उसकी कार्यकारणरूपिणी शक्ति ही प्रकृति है (सा० तं० १ । १०–१२, ४०) । बृहद् ब्रह्म-संहिता कहती है कि 'सवकी अवधि (परमाश्रय) शेवी, सद्गुणोंक आल्य और सत्र कारणोंके कारण सिचदानन्दरूप भगवान् हैं। इस कथनमें 'सर्वविधिः से सत्का, 'शेषी' से चित्का, और 'सद्गुणालय' से आनन्दका ज्ञापन होता है। सिचदानन्दकी व्यक्ति 'सर्वकारणकारण' रूपा होती है।

बृहत् होने अथवा बृंहण करनेके कारण श्रुतिग सत्तत्त्वको 'ब्रह्म' कहती हैं (अहि० सं० र। ३७)। ब्रह्म एक, निर्दुःख, निःसीम, सुखानुभव-छभण, अनाचन्त, अनामय, परब्रह्म, नारायण, सर्वभूतोंमें आवार किया हुआ, सबमें व्याप्त होकर स्थित, निरवद्य, अन्तरंग समुद्रके समान अविश्विप्त, प्राकृत गुण-स्पर्शरहित, बिंग्र अप्राकृत गुणोंका आस्पद, भवसागरसे सर्वथा पर निष्कलंक, निरञ्जन, आकार-देश-कालके अनवच्छिन तथा इदम् ईद्दक् —इयत्तासे सम्यक्तव अपिष्छिद्य है (अहि० २ । २२–२६)।

महानिर्वाणतन्त्रमें ब्रह्मके लक्षण इस प्रकार निर्दिष् हैं—वह एक, अद्वितीय, सत्, सत्य, अद्वैत, परात्पर, खर्य-प्रकाश, सदापूर्ण, सचिदानन्द-लक्षण, निर्विकार, निराधी निर्विशेष, निराकुळ, गुणातीत, सर्वसाक्षी, सर्वासी,

१—सर्वछोकावधिः शेषीः

एप सर्वाविधः शेषी भगवान् सद्गुणालयः। सिचदानन्दरूपोऽसी

सर्वकारणकारणः ॥

सर्वद्दक्, विमु, गूढ़, सर्वन्यापी, सनातन, सर्वेन्द्रिय-गुणाभास, सर्वेन्द्रय-विवर्जित, लोकातीत, लोक-हेतु, अवाद्मानसगोचर, सर्वत्र, अविज्ञेय, जगदवलम्ब, जगत्प्रभु, सर्वभूतकारण और परमेश्वर है (२। ३४-४०)। भगवान् 'यत्' और 'तत्' शब्दोंसे उपलक्षित वेदान्त-वेद्य ब्रह्म ही हैं, जो प्रलय-कालमें निमेषादि तथा कालको ग्रास कार लेते हैं, और मृत्युके मृत्यु, भयके भय खरूप हैं (२। ४५)।

ज्ञानामृतसार नारदपञ्चरात्रमें भगवान् अभ्यन्तर ज्योति:खरूप, अतुल, स्यामसुन्दर, परब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर हैं। वे निरीह, अतिनिर्छिप्त, निर्गुण प्रकृतिपर, सर्वेश, सर्वरूप, सर्वकारण-कारण, सत्य, नित्य, पुरुष, पुराण, पर, अञ्यय, मङ्गल्य, मङ्गलाई, मङ्गल, मङ्गलालय, स्वेच्छामय, परधाम और सनातन हैं । भगवान् भक्त-प्रिय, भक्तेश, भक्तानुग्रह-विग्रह, श्रीर, श्रीश, श्रीनवास हैं। वे ही राधिकेश्वर श्रीकृष्ण हैं जो परमानन्द, नन्दनन्दन हैं (१।१।३-९)। भगवान् श्रीकृष्ण त्रिगुणात्पर (१।२।६५), परात्पर (१।१२। ३०-३१) तथा खयं परमात्मा (२।५।१५) हैं। भगवान् परिपूर्णतम ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, निर्लिन, साक्षिभूत और सनातन हैं (१।३। ८०)। भगवता प्रधानतः भक्तपर कृपा करनेमें है। भगवान् मक्तानुप्रहकातर हैं तथा भक्तप्रिय, भक्तेश, भक्त-सर्वख, और समक्ति तथा दास्यके प्रदानकर्ता हैं (१।१२। ३३-३४)। भगवान् सर्वान्तरात्मा हैं (१।१२। ४९)। ख० महामहोपाध्याय गोपीनाथजी कविराजने भी कहा है कि 'भक्तके प्रारव्यका व्वंस ही भगवताका विशिष्ट निदर्शन है। शे सात्वततन्त्रके अनुसार भी अरुखिक्तप हैं (३ । ३९ - १००) विकास कार्या वर्णने इस प्रकार है —

पाड्गुण्य पूर्ण भगवान्

ल्क्मीतन्त्रमें 'भगत्रान्' शब्दकी सुन्दर, स्वतन्त्र व्याख्या है । छठें अध्यायमें वैष्णवागम-निर्दिष्ट पचीस तत्त्व बताये गये हैं । उनमें भगवान् परमतत्त्व हैं । भगवान् वह सनातन परमात्मा हैं जो मेघहीन आकारा, निपन्द महोदिधिके समान हैं, तथा जो 'खच्छ-खच्छन्द चैतन्य सदानन्द महोद्धि हैं और आकार-देश-कालादि परिच्छेदसे त्रिवर्जित हैं (७। २-३)। यह महोदिष ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्य-वीर्य और तेजका है (७ । ५)। इन्हें पड्गुण, षडैश्वर्य, षड्वर्ग या भग कहते हैं। नारद पाञ्चरात्रमें स्थान-स्थानपर भगवान्का षाड्गुण्य दिखाया गया है।

अहिबुंध्न्यसंहिताकी स्थापना है कि षाड्गुण्यके गुणोंके योगसे ही ब्रह्मको 'भगवान्' कहा गया है-'बाडगुण्यगुणयोगेन भगवान् परिकीर्तितः' (२ | २८) । षाड्गुण्यका समिटि-रूप 'भग' है । आगमोंकी इस अवधारणाका आधार वेदमत है। ऋग्वेदमें कहा है--- भग एव भगवाँ अस्तु' (७। ४१ । ५) । आशय यह कि भगसे ही भगवत्ता है । एक अन्य मन्त्र-(ऋक् ८।४१।३)में मक्तके लिये भगके छः कार्य (या अनुप्रह) बताये गये हैं। आगमों और पुराणोंमें उन्हीं कार्योंको वाडगुण्य या पडेश्वर्य कहा गया है।

सर्वद्रन्द्वविनिर्मुक्त, सर्वोपाधिविवर्जित और सर्वकारण-कारण परत्रहा पाड्गुण्य (वडगुणसम्पन्न) हैं (अहि० सं २ । ५२) । ब्रह्म निर्गुण है तथापि उसको षाड्गुण्य कहा गया है; क्योंकि निर्गुणका अर्थ है प्राकृत गुणोंके स्परासे रहित—'अप्राकृतं गुणस्परी निगुणं

र-तान्त्रिक वाड्मयमें शाक्तदृष्टिः प्रथमावृत्तिः ए० १९। र-यथा नारद पाञ्चरात्र १ । ३ । ४२-४६, ७९-८२, १ । १२ । ४६-५४, ७१-७६ आदि ।

भक्तपर अनुकम्पारूपमें षाड्गुण्यकी अभिव्यक्ति होती है । भगवान्की विभुता और प्रभुता 'ऐश्वर्य' है । उनकी जगदात्मता 'धर्म' है । उनका करुणासागर होना 'यशः है । दीनबन्धु और सुखधाम होना 'श्री' है'। वे वेद-प्रकाश और जगदुद्धारक हैं, इससे 'ज्ञान' गुण प्रकट होता है । वे निर्वाण-रूप हैं, यह 'वैराग्य' गुण है ।

भगवान् शील, शक्ति और सौन्दर्यके निधान हैं। ये तीन गुण वस्तुतः पाड्गुण्यके ही संपिंडित रूप हैं। शीलमें धर्म और वैराग्यका, शक्तिमें ऐश्वर्य और ज्ञानका तथा सौन्दर्यमें यश और श्रीका प्रकाशन होता है। भगवान्में षड्गुण या शील-शक्ति-सौन्दर्य त्रिगुणके स्यापनका तात्पर्य एक ही है।

सिचदानन्द ही भगवत्तत्त्व हैं । इसका स्पष्टीकरण यह होगा कि सत्में ऐश्वर्य और धर्मका, चित्में ज्ञान और वैराग्यका एवं आनन्दमें यश और श्रीका निवास है । सचिदानन्दत्व षाड्गुण्यका ही संप्रसारण है ।

भगवान् शब्दका अर्थ

विशिष्ट शब्दोंके स्थूलार्थ लोक-प्रचलित रहते हैं। सूक्मार्थ और परार्थ शास्त्रोंमें स्पष्ट किये जाते हैं। आगमोंने 'भगवान्' और 'वासुदेव'-जैसे शब्दोंके ऐसे विशेष अर्थ बताये हैं । यहाँ दोनों शब्दोंका सूक्ष्मार्थ दिया जा रहा है; परार्थ 'चतुर्व्यूह' के प्रसंगमें लिखा जायगा ।

अहिर्युच्न्यसंहिताके अनुसार भगवान् शब्द अपने वर्णसमुदायमें 'पूज्य' अर्थ देता है। (५२।५९)। पृथक्-पृथक वर्णांके अर्थ भी इस संहितामें दिये हैं। भकार त्रिकर्म-वाचक है । कर्म तीन हैं—धारण-पोषण-पुरण (भरण और संभरण)। गकारके पाँच अर्थ हैं समस्त शब्दोंद्वारा गायमान, अपवर्ग आदिसे

प्राप्तन्य, स्वतः अवबुच्य, निखिल जगत्में सर्वन्याफ् और सम्पूर्ण अर्थोंका नेता । मतुप् (वान्) प्रत्यका अर्थ है--विश्वको स्वत्वसे वरण या आवरित करनेवाल, ईशतापूर्वक वर्तन करनेवाला और अखिल कामनाओंका वर्धन करनेवाला (अहि० सं० ५२ । ६०-६३)।

बृहद् ब्रह्मसंहिता भगवान्के लक्षणोंमें उनके गुणोंके विशेषताओंको अधिक स्पष्टतासे रेखाङ्कित करती है। भगवान् हेय-प्राकृतिकरूप-'विशेष'से वर्जित, किंतु हेयांश-वर्जित-विशेषसे संयुक्त, चित्-अचित्-शब्द-वाब् विशेषणतया स्थित, सदनन्त गुणोंके आवास और अय व्यापवर्तक अनेक विशेषणोंसे विशेषवान् हैं। उस विशेष परमात्मामें सब अवस्थाओंका आश्रय-रूप विशेष क्रमी भी निवर्तित नहीं होता (४।८।६६-७०)। भगवान् निर्विशेषमें विशेष हैं—इसपर बहुत विस्तारि विचार किया गया है (४ । ८ । ९४-१११), उसे लेख-विस्तार-आशंकासे यहाँ नहीं लिखा जा रहा है।

षाडगुण्य

ज्ञान, शक्ति, ऐस्वर्य, वीर्य, बल और तेज--ये ह भगवद्गुण हैं (छ० तं० ७ । ५) । वड्गुणोंमें प्रथम 'ज्ञान' है। 'ज्ञान' अजड़ तथा नित्य है। खात्मका पूर्णनोध और सबका व्यापक परिज्ञान 'ज्ञान' है। यह ब्रह्मका खरूप है और गुण भी है—

अजडं सात्मसम्बोधि नित्यं सर्वावगाहनम्। क्षानं नाम गुणं प्राद्धः प्रथमं गुण चिन्तकाः॥ सक्पं ब्रह्मणस्तच गुणश्च परिणीयते।

(अहिर्धुध्न्य संहिता २ । ५६-५७) राक्ति आदि अन्य पाँच गुण वस्तुतः ज्ञानके ही अंश हैं। ज्ञान ही परमात्मा ब्रह्मका परम रूप है (अहि० सं० २ | ६१-६२)।

लक्ष्मीतन्त्रका कथन है कि निर्मेघ आकाश और निष्पन्द उद्धि-जैसे लक्ष्मीके ज्ञानरूपी घनसे युद्ध

१-श्रीका नाम तेज भी है। यथा—ध्यय तेज हत श्री सव गई। (तुलसीदास) २-वणोंके प्रतीकार्थ शाक्तागर्मोमं भी दिये हैं । द्रष्टब्य-वर्णोद्धार्तन्त्रम्, नानातन्त्रशास्त्रम् आदि । सृष्टिका प्रवर्तन होता है। ज्ञान निर्व्यापार सदानन्द, जुद्ध, सर्वात्मक और पर है। प्रथम ज्ञानका ही नाम संकर्षण है (छ० तं० ४। ७-८)।

श्वाक्तिं गुण 'ब्रह्मका जगत्प्रकृतिभाव' है (अहि॰ सं॰ २।५७)। इस संदर्भमें शक्तिकी संज्ञा अन्य आगमों और पुराणोंमें 'श्री' भी है। अहिर्बुष्न्यसंहितामें परा श्रीके खरूप-निर्वचनमें कहा है कि 'श्री' भगवान्की पूर्ण धाडगुण-विप्रहा, सहस्रा, परमाशक्ति है, जो भगवान्की सहगा तथा खरूप-प्राप्ता है (५९।८)। सहस्राका अर्थ है बड्गुणोंके मध्य विराजनेवाली शक्ति (५९।१२)। अतः यह समझना उचित है कि 'श्री' तो वासुदेवाभिन्न भगवती हैं, जिनमें छहों गुण साथ-साथ पूर्णतया रहते हैं और 'शक्ति' उनका एक अंश है। शक्तिगुणका प्राधान्य अनिरुद्धमें है।

ब्रह्मका स्थातन्त्र्य-समृद्धकर्तृत्व 'ऐश्वर्य है— 'कर्तृत्वं नाम यत्तस्य स्वातन्त्र्यपरिचृंहितम्' (अहि० सं० २ | ५८) | छक्ष्मीतन्त्रमें यही वात इस प्रकार कही गयी है कि विश्वके निर्माणमें किसी अन्य हेतुकी अनपेक्षा-रूप जो स्वातन्त्र्य है, वही ऐश्वर्य है। यही पुरुषोत्तम प्रद्युम्न हैं (४ | ९) ।

जगत्की संततरूपसे सृष्टि करनेमें श्रम न होना मगवान्का 'बल गुण है (अहि० सं० २ । ५९)। ज्ञान और बलका उन्मेष 'संकर्षण' कहलाता है। यह 'तिलकालक' के समान खतः सकल विश्वका भरण करता है। इसीका नाम वेदान्तमें 'बल' कहा गया है (छ० तं० ४ । १४)। संकर्षणसे ही निर्घात शब्दके समान शास्त्र प्रकाशित होता है (छं० त० ४ । १५)।

शहा ही जगत्का उपादान भी है। उपादान कारण होनेपर भी विकारसे रहित रहना भगवान्का विक गुण है। इसका दूसरा नाम 'अच्युतत्व' है (अहि॰ सं॰ २। ६०)। छक्ष्मीतन्त्रमें भी

विकारविरहो वीर्यम्'(४ । १६)कहा है। शक्ति और तेजका समुन्मेष प्रद्युम्न है (४ । १५)।

सहकारीकी अपेक्षा न होना 'तेज है—सहकार्यन-पेक्षा या तत् तेजः समुदाहृतम्' (अहि० २ । ६१)। यही बात लक्ष्मीतन्त्रमें है और वहाँ कहा है कि यही अनिरुद्ध है—'तेजस्त्वन्यानपेक्षत्यमनिरुद्धत्वमप्युत' (४ । १७)। शक्तिऔर तेजका समुन्मेष अनिरुद्ध है— 'शक्तितेजःसमुन्मेषो ह्यनिरुद्धः स ईरितः' (ल० सं० ४ । १६)।

चतुर्व्युह

जगत्के उपकारार्थ ही षाड्गुण्य भगवान् चतुर्ब्यू ह रूप धारण करते हैं । भगवान्की यह चतुर्विध आत्म-व्यवस्थिति मनके आल्म्बनके लिये हैं । चतुर्ब्यू हि भी सिचदानन्द-लक्षण होता है (अहि० सं० ५ । ४४)। 'पूर्णस्तिमितषाड्गुण्यः सदानन्दमहोदधिः' (ल० तं० ६ । १५) के छहाँ गुण पुरुषोत्तम हैं । छहाँ गुणोंका, कार्यशीलताके लिये होनेवाला गुगपत्-उन्मेष 'वासुदेव' है । यह प्रथम व्यूह है । शक्तिकोशसे संकर्षण, प्रयुक्त और अनिरुद्ध व्यूह होते हैं (ल० तं० ६ । २ । १७)।

पारमेश्वर-संहिताके अनुसार मगवान् वासुदेव 'बाइगुण्य महोद्धि' हैं । वे विवेकदाता हैं और अनिच्छुकको भी अपवर्ग प्रदान कर देते हैं । वे आध सहस्य 'नित्योदित-व्यूह' हैं, उनमें नित्य ही व्यूहोंका उदय है (१९। ५२४-५२७)। वे जगत्पित (१।४७) परतत्त्वके एकमात्र आश्रय हैं (१।३३)।

विश्वातमा भगवान् 'श्वानशक्तिवलैश्वर्यवीर्यतेजमहो-द्धिः' हैं (अहि० सं० ५३ | २) | वे षाड्गुण्यके महान् सागर हैं । भगवान् वासुदेवमें छहों गुण पूर्ण मात्रामें एक साथ रहते हैं । चतुर्व्यूहके अवशिष्ट तीन रूपोंमें षड्गुणकी विभक्ति, दो-दो करके हो जाती है । संकर्षणमें ज्ञान और बल्ल गुण होते हैं, जिनके द्वारा उपासना-क्षेत्रमें वे भगवरप्राप्ति-साधन-रूप ऐका तिक मार्गको प्रकट करते हैं। प्रशुम्नमें वीर्य और ऐक्वर्य गुण होते हैं, जिनके द्वारा वे शास्त्रार्थभावसे भगवरप्राप्तिका पथ प्रशस्त करते हैं। अनिरुद्धमें शक्ति और तेज गुण होते हैं, जिनके माध्यमसे वे शास्त्रार्थका फल-भगवरप्राप्ति प्रदान करते हैं। येतीनों प्रकार कामशः शास्त्र, शास्त्रार्थ और शास्त्रार्थ-साध्य-फलके निर्वाहक हैं (अहि० सं० ५।१७–२४)। इस चतुर्व्यूहमें प्रत्येकके तीन-तीन, इस प्रकार द्वादश, न्यूहान्तर हो जाते हैं। फिर विष्णुके संकल्पसे उनचास विभव आविर्भृत होते हैं (५।४७–६०)।

लक्ष्मीतन्त्रमें भी यह बात किंचिद् भिन्न प्रकारसे स्पष्ट की गयी है। शास्त्रज्ञानके क्षेत्रमें संकर्षण उसके प्रकाशक हैं, उसकी क्रिया प्रदुष्नसे होती है और अशेष क्रियाफल अनिरुद्धसे होते हैं। अनिरुद्ध सृष्टि, प्रद्युम्न पालन और संकर्षण अयन करते हैं। इन तीनों कार्योमें ये देव सदा अनुप्रह रखते हैं। यद्यपि इन तीनोंमें किसी एक-एक गुणका विशेष उन्मेप होता है, तथापि ये सब सनातन वासुदेवसे अन्यून-अनिवक ही रहते हैं । इनकी देह भी षाड्गुण्यमय सनातन ही है, भूतमय नहीं है। इनमें भेद वास्तविक नहीं है, तत्तत् कार्यकी विचारणाके हेतुसे कल्पित किया गया हैं। ज्ञान, ऐस्वर्य, और राक्ति ध्यानकी विश्राम-भूमियाँ हैं, परस्पर-भिन्न नहीं हैं । सब भावोंमें भगवान्के इस चातुरूप्यको ऐसा जानना चाहिये कि पहले 'वस्तु' है, फिर 'भाव' तब 'अर्थ' फिर 'क्रिया' । इन चारोंको भगवान् अपने-आपको चार रूपोंमें विभक्तकर संविद् रूपसे आवृत किये हुए हैं, अर्थात् वस्तुके वासुदेव, भावके संकर्पण, अर्थके प्रयुम्न, और कियाके अनिद्ध अधिष्ठाता-खरूप हैं (छ० तं ० ४ । १७-२७)।

भगवान् और वासुदेव दोनों शब्दोंके परार्थ चतुर्ब्यूहका ही द्योतन करते हैं। अहिर्जुद्म्यसंहिता कहती है कि 'भगवत्' के चारों अक्षर चतुर्व्यूहका ही अर्थ

देते हैं—'चतुर्भिरक्षरैरं चतुर्ब्यूहनिक्षणा" (५२।७६)। इसके 'भ' के अर्थ हैं—धुन, हं और अविध। धुवका अर्थ है जगत्का उपादान। का भकारका अर्थ हुआ पर और अक्षर, अर्थात् वाहुदेश 'ग' का अर्थ है 'गाम्', अर्थात् सत्-शास्त्ररूप वाणीश ज्ञान करानेवाला या खयं जाननेवाला गोविन्द। गोविन्ददेव ही संवर्षण हैं। 'व' का अर्थ है विक्षा आवरण करनेवाला, विश्वकी रचना करनेवाला करण। यह प्रद्युम्न है। तकारका वाच्य है 'सुग्धर'। सुग्यर क् है जो सृष्टि और लय करता है। अपने नामि-कमलें बीचमें देव ये दोनों कार्य धारण करते हैं। अतः सुग्न अनिरुद्धका नाम है (अहि० सं० ५२। ७१-७५)।

वासदेवके 'व' का अर्थ है अमृताधार 'वासदेव'। 'आ' का अर्थ है आदिदेव संकर्षण। अतः 'वा ग अर्थ यह हुआ कि जो सनातन मोक्षाधार भगवा वासुदेव हैं, वे ही संकर्षण हैं । 'सु' का धालगें है उत्पन्न करना । अत: यहाँ 'सु' का अर्थ है ब सनातन जिसने आदिमें भुवन-कर्म बनाये। वह से है। वही पुरुशोत्तम 'प्रयुम्न' कहा गया है। यदि ब उदय उदाम हो, तो संकर्षण कहलाता है। संकर्ष दशामें हरिका सम्पूर्ण उदय होता है, अतः संकर्षणकी वासुदेवात्मक कहा गया है । संकर्षण और प्रवुप मुखतः मिन्न नहीं हैं, यह सुकारका अर्थ है। दि ब अर्थ है 'दत्तानकारा' । अतः यहाँ 'दे' का अर्थ है जि सोते हुए महात्माने अपने नामि-कमलमें क्षेत्र-क्षेत्रहर्व वृद्धिके लिये अवकारा दिया है वह, वही अनिरुद्ध कहला है। 'ए' का अर्थ है जगद्योनि 'प्रद्युम्न'। प्रदु संकर्षणात्मक है, अनिरुद्ध उनसे भिन्न नहीं है देकारका अर्थ है । इस प्रकार इन तीन अक्षि चतुन्यूहका उत्तम तादात्म्य व्यक्त होता है। किर् चतुथ अक्षर 'व' है, वह उपसंहार-रूपसे वासुदेवन (क्रमशः) वाचक है (अहि० ७६-७८)।

पुराणोंमें भगवत्तत्व

(लेखक — डॉ॰ श्रीसियारामजी सक्सेना, 'प्रवरण्एम्॰ ए॰ पी-एच॰ डी॰)

बैदिक देवता 'भग' की विशेषताओं को दृष्टिमें रखकर आगमशास्त्रने 'भग' और 'भगवान्' शब्दों की व्याख्या की । आगमों की यह विचारणा पुराणों में मान्य हुई । सभी पुराणों में ब्रह्म या परमात्माको 'भगवान्' संज्ञासे अभिहित किया गया । श्रीविष्णुपुराणमें इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या हुई है और श्रीमद्भागवतमें भगवत्तस्त्रका एवं देवीभागवतमें भगवती के खक्रपका सुन्दर निद्र्शन हुआ है ।

'ब्रक्ष' शब्दका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये उसका 'उपचार' से अर्थात् चर्या-व्यवहारकी सुविधाके हेतु 'भगवत्' शब्दके द्वारा कथन किया जाता है (वि० पु० ६ । ५ । ७१)। अज, अजर, अव्यक्त, अव्यय, अचिन्त्य, अनिर्देश्य, अरूप, अपाणि, अपाद, विभु, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण, खयं अकारण, जिससे समस्त व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है और जिसे प्रवुद्रजन ज्ञान-नेत्रोंसे देखते हैं, वह ब्रक्ष है । वही मुमुक्षुओंका ध्येय परमधाम है और वही वेद-वचनोंसे प्रतिपादित विष्णुका सूक्ष्म परमपद है । परमात्माका यह खरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्य है और भगवत् शब्द इस आद्य, अक्षय खरूपका वाचक है (वि० पु० ६ । ५ । ६६—६९)।

भगवत्-शब्दार्थ

'भज् सेवायाम्' से भग, भगवत्, भक्त, भक्ति-जैसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति हुई है। 'इन्द्रो भगः' (ऋग्वेद ३। ६५।५) पर सायण-भाष्य है—'भगः सर्वेर्भजनीयः स इन्द्रः'। देवीपुराणके पैंताछीसवें अध्यायमें भगवतीका ऐसा ही खरूप बताया है—

सेवते या सुरैः सर्वैस्ताश्चैव भजते यतः। धातुर्भजेति सेवायां भगवत्येव सा स्मृतिः॥ इस न्युत्पत्तिके अनुसार भगवत्-शब्द 'पूज्यत्व' की सूचना देता है। इसका प्रयोग परमात्माके लिये मुख्य रूपसे है, गुरु आदि अन्य पूज्य जनोंके लिये उपचारसे अर्थात् गीणरूपसे है।

इस सामान्य अर्थमें जब प्रतीकात्मकता जुड़ गयी, तब भगवत्-शब्दमें ब्रह्मत्वकी, समस्त विशेषताओंकी समाहिति देखी गयी। सिदि-आदिक ऐश्वर्य-सम्पन्नता भगवत्-शब्दका वाच्य हो गयी। ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृति-खण्डमें कहा है—

सिद्धयैश्वर्यादिकं सर्व यस्यामस्ति युगेयुगे। सिद्धयादिके भगो श्रेयस्तेन भगवती स्मृता॥ (अध्याय ५४)

ऐश्वरोंकी संज्ञा 'भग' निर्धारित होनेसे 'भगवत्' की व्याख्यामें भग-शब्दको प्रमुखता मिली। श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—मैं भगवत्तम (परमेश्वर) यज्ञखरूप हूँ—'यज्ञोऽहं भगवत्तमः' (११।१९।३९)। और आगे उन्होंने स्पष्ट कहा—'भगो म पेश्वरो भावः' (११।१९।४०)।

श्रीविण्युपुराणमें भगवत्-शब्दका अर्थ एकाक्षरी कोषके अनुसार अर्थात् अक्षरोंकी प्रतीकार्थमयताके आधारपर किया गया है। भगवत् शब्दमें 'भगके दो अर्थ हैं—पोषक और सर्वाधार। 'भगके ये प्रतीकार्थ 'भग अक्षरके अर्थ 'नक्षत्र या प्रहा के अनुकूल हैं। 'गा के तीन अर्थ हैं — नेता, गमयिता और स्रष्टा। नेताका अर्थ है 'कर्म-फल प्राप्त करानेवाला'। गमयिताका अर्थ है 'ल्य करानेवाला' और स्रष्टा 'रचयिता' है। एकाक्षरी अर्थोंको 'जाननेवाला' और 'गणेशा' के मूलभावसे इन अर्थोंका सम्बन्ध स्पष्ट है। भ और गकी संयुतिसे 'भग' शब्द बना है। सम्पूर्ण ऐस्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छहका नाम 'भग' है—

पेश्वरंख समप्रस्य धर्मस्य यशसः श्लियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव वण्णां भग इतीरिणा॥ (६।५।७४)

'स तथा ग के उपर्युक्त पाँच अयों के साथ विसर्ग (:) के एक अर्थको मिलाकर ये उपर्युक्त छः गुण होते हैं। एकाक्षरी कोशके अनुसार विसर्गके अर्थ हैं— त्याग, मुक्ति, दीप्ति आदि। इन अयों के संक्लेश्रसे विसर्गका अर्थ हो जाता है 'वैराग्य', अर्थात् संसार-मावका त्याग। पोषण ऐश्वर्यका, सर्वाधार धर्मका, नेता यशका, गमयिता ज्ञानका और म्रष्टा श्री-(आचाशक्ति, महामाया-) का प्रत्यर्थक है (६। ५। ७२—७५)।

भगवान् वासुदेव

श्रीविष्णुपुराणके अनुसार, भगवत्-शब्दके वकारका अर्थ है—वह अखिल भृतात्मा, अव्यय परमात्मा, जिस्में सब भूत निवास करते हैं और जो खयं सब भूतों में अधिवास करता है। 'व' वस् धातुका प्रथमाक्षर है और वकारका एकाक्षरी अर्थ 'बास' भी है। अतः भगवान्शब्द समस्त कारणोंके कारण, महाविस्ति-संज्ञक, परब्रह्मखरूप श्रीवासुदेवका ही वाचक है, अन्य किसीका नहीं (६।५।७६)। परमात्मा सब मूतोंके परम आश्रय है, सब मूतोंमें आत्मा-रूपमें विराजमान हैं तथा वे ही विश्वके विधाता (स्रष्टा) और धाता (रक्षक) हैं, अतः वे प्रमु धासुदेवः कहळाते हैं (६।५। ८०-८२)। आत्मारूपमें स्वत्र रहनेसे परमात्मा वासुदेव समस्त भूतोंकी उत्पत्ति और नारा, आना और जाना तया विचा और अविचा सब कुछ जानते हैं, अतः वे 'भगवान्' राष्ट्रके वाष्य हैं (६।५।७८)।

भगवान् वासुदेवमें सब भूत बसते हैं, यह 'धर्म' गुण है । वे सर्वात्मा अन्तर्यामिरूपसे सबमें बसते हैं, ब्याप्त हैं, यह 'यरा' है । वे जगत्के विधाता और धाता हैं—ये उनके 'श्री' और 'ज्ञान' संज्ञक गुण हैं ।

वे प्रमारमा हैं—यह 'वैराग्य' है — और वे प्रमु हैं—यह उनका 'ऐश्वर्य' है । षाड्गुण्य-संदर्भमें वासुदेव-नामकी जो व्याख्या श्रीविष्णुपुराणने की है, उसका यही सहज अर्थ हो सकता है ।

श्रीमद्भागवतके अनुसार भगवान् वासुदेव सत्तामा, सत्त्वखरूप हैं (६।१२।२१)। वे सब भूतों व्याप्त हैं और हृदय-गुहामें अवस्थित हैं, अन्तर्यामी हैं (२।९।२४)। पहले एकमात्र भगवान् ही थे। वे प्रमु आत्माओं के आत्मा हैं और स्वेच्छासे ही सर्वत्र विराजते तथा उपलक्षित होते हैं (३।५।२३)। भगवान् ही सब देवताओं के नाम-रूपमें प्रकट होते हैं (६।१८।३३-३४)। वास्तवमें तो भगवान् निर्गुण, अजन्मा, अव्यक्त और प्रकृतिसे परे हैं; तथार्षि वे अपनी मायाके गुणों को स्वीकार करके बाध्य-बाधकमाव अर्थात् मत्ने और मारनेवाले दोनों के परस्पर-विरोधी रूपों को प्रहण करते हैं (७।१।६)। भगवान् ही सब कुळ करते हैं (६।१०।२१)। भगवान् ही सब कुळ करते हैं (६।१०।२१)। भगवान् सुख और विशोक है (२।७।४७-४८)।

श्रीमद्भागवतमें मुख्यतः वासुदेवको ही भगवान् कहा गया है। भागवतमें वासुदेवका अर्थ श्रीविण्य-पुराणसे किंचित् मिन्न है। वहाँ कहा गया है कि—

सत्तं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः। सत्ते च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजे मे नमसा विधीयते॥

भगवान् राङ्करने सतीसे कहा है कि—'विशुद्ध अन्तः' करणका ही नाम 'वसुदेव' है; क्योंकि उसीमें अनः करण-स्थित परमपुरुषका अनुभव होता है। उस श्रृद्ध चित्तमें स्थित इन्द्रियातीत भगवान् वासुदेवको ही मैं नमस्कार किया करता हूँ।' भगवान् राङ्करके अनुसार प्राञ्चजन भगवान् वासुदेव—'परस्मै पुरुषाय गुहेरायाय'

को ही प्रणामांदि करते हैं (४।३।२२-२३)। यहाँ भगवान् वासुदेवकी अन्तर्व्याप्ति या अन्तर्यामिताके साथ उनकी विशुद्ध 'सत्त्वमयता' को विशेषरूपसे रेखाङ्कित किया गया है।

भगवान्के ऐसे वासुदेव-खरूपमें पाड्गुण्यका दर्शन देवयानीको भी मोक्षकालमें हुआ था। उसने प्रार्थनामें सर्वभूताधिवास भगवान् वासुदेवके खरूपकी तीन विशेषताएँ लक्षित कीं—वेधस्, शान्त और बृहत् (९।१९।२९)। वेधस्से धर्म और बल, शान्तसे ज्ञान और वैराग्य तथा बृहत्से शक्ति और तेज गुणका कथन है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्ण-जन्म-खण्डके पचीसवें अध्यायमें कहा है—

महतां श्चद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा।
स्रष्टा पाता च शास्ता च भगवान् करुणानिधिः॥
सर्वात्—'करुणा वरुणाल्य भगवान् ही बड़े और
छोटे सभी जीवोंके सदा स्रष्टा, रक्षक और शासक हैं।'
इस कथनमें भगवान् वासुदेवका षाड्गुण्य लक्षित
होता है।

भगवान् कृष्ण अपने अंश-भागसे देवकीके गर्भमें आये (१० | २ | ९, १० | ८ | ५०) । भगवदंशका अर्थ ज्ञान-बलादिक षाड्गुण्य है । श्रीकृष्णमें षड्गुणकी समप्रता है । कृष्ण भगवान् हैं (१० । ८ । २७, ३६) । वे खयं भगवान् हैं, साक्षात् भगवान् हैं (१० । ३६) । वे खयं भगवान् हैं, साक्षात् भगवान् हैं (१० । २३ । १८) । चाण्रसे मल्लयुद्ध करते हुए श्रीकृष्णमें मथुराके नागरिकोंको पाडगुण्यके दर्शन हुए । उन्होंने अनुभव किया कि कृष्णका अनन्यसिद्ध लावण्य-सार-सौन्दर्य 'एकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य' (१० । १४ । १४) है । वे मनुष्य-रूपमें लिपे पुराण-पुरुष्य हैं (यह उनका ज्ञान-गुण है) । वे गौओंका पालन और वेणु-वादन करते हैं (यह उनका धर्म या वीर्य गुण है) । उनके पदपद्म शंकर और रमासे अर्चित हैं (यह उनका वैराग्य गुण है) (१० । ४४ । १३) । इसी प्रकार 'कृष्णाय

वासुदेवाय हरये परमात्मने । प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः' (१०।७३।१६) इस स्तुतिकी छः संज्ञाएँ भगवान् के षाडगुण्यकी वाचक हैं। क्ष्ण नमो भगवते वासुदेवाय' (१।८।५१)—यह भगवत्प्राप्ति करानेवाला उत्तम मन्त्र है। भगवान् के सगुण-रूपको इदयकमल्की कर्णिकापर स्थापित करके (१।८।१५५-५०) या मनमें उनकी मन्दमुसकानमयी मञ्जुल्मूर्ति-(१।८।५१-५२)का ध्यान करके इसे जपनेसे चतुर्वगकी सिद्धि होती है (१।८।५९-६१)।

षाड्गुण्यका श्रेष्ठत्व यह भी है कि विश्वातमा भगवान् भक्तोंको अभय प्रदान करते हैं—'भगवानपि विश्वातमा भक्तानामभयङ्करः' (१०।२ ।१६)। भगवान् शब्द एक बीज मन्त्र है और कवच-रूपमें जीवके ख अर्थात् 'अहंकी' रक्षा करता है—'आत्मानं भगवान् परः ''पातु' (१०।६।२५)। इस कथनसे स्पष्ट है कि जगदातमा ही भगवान् हैं। श्रीकृष्णको पाड्गुण्य आदिका परमाधार जानकर युधिष्ठिरके राजसूय यञ्चमें उनकी अग्रपूजा की गयी (१०।७४।१८-१९)।

पड्गुणकी विविध संज्ञाएँ

भगोंसे युक्त प्रमातमा भगवान् हैं। 'भग' उनकी नित्यसिद्ध स्वरूपभूत छः शक्तियाँ हैं। ये शक्तियाँ उनके अतिरिक्त अन्य कहीं भी नित्य निवास नहीं करतीं। ये सर्वेश्वर अपने नित्य तेजोमय, आनन्दमय स्वरूपमें ही निमन रहते हैं—'युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रवैः स्व एव धामन् रममाणमीश्वरम्' (२।९। १६)।

'भग' शब्दकी पूर्वोक्त व्याख्याके अनुसार भगवत्-स्वरूपपर विचार करके श्रीविष्णुपुराण-(६।५।७९) ने भगवान् शब्दका अर्थ यह किया है कि हेयगुणों और तज्जन्य क्लेशादिकको छोड़कर ज्ञान-शक्ति-बल-ऐश्वर्य-वीर्य-तेज इन षड्गुणोंकी सम्पूर्णता भगवान्में है— ञ्चानशक्तिवलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः । भगवच्छव्याच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥

'अहिर्बु ध्यसंहिता' आदि आगम-प्रन्यों में भी भगवान् के बाड्गुण्यके ये ही नाम हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीविण्णुपुराणकारकी वाड्गुण्यसम्बन्धी मान्यता 'ऐश्वर्यस्य' वाले पूर्विलित रलोककी है और यह दूसरी अवधारणा उक्त पुराणमें आगमोंसे गृहीत की गयी है। इससे पुराणकारका लक्ष्य दोनों पुराणोंमें एकसूत्रता दिखाना है। अब हमें यह देखना होगा कि भग शब्दद्वारा निर्दिष्ट वाड्गुण्य और भगवान् शब्द-वाच्य इस वाड्गुण्यमें क्या सम्बन्ध है।

पड्गुणोंकी दोनों संहितयोंमं ऐरर्व्य और ज्ञान-गुण समान हैं। अहिर्बुच्यसंहिताके रुळोकको अन्य आगमों तथा पुराणोंने प्रहण करते हुए 'वर्म' के स्थानपर 'वीर्य' गुण नाम रखा है; क्योंकि दोनोंका अर्थ 'अविकारत्व' है। शेष तीन गुण भी अर्थसाम्यके द्वारा परस्पर अमिन्न हैं। 'जगठप्रकृतिमाव' दोनोंमें होनेसे श्री'शक्ति' है। 'वर्ल' का अर्थ है 'जगत्सृटि' करनेमें श्रम न होना। 'यश' भी इसी अथक, अनवरत क्रियाशीन्तासे होता है। सहकारीकी अपेक्षा न होना 'तेज' है, वैराग्य भी अन्येक्षाका ही माव है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पाड्गुण्यकी दोनों संज्ञाविल्योंमें कोई मिन्नता नहीं है। पहली नामाविल षड्गुणोंकी अपनी मुल्मून स्थितिकी प्रदर्शिका है, दूसरी नामाविल इन गुणोंके उन रूपोंकी वाचिका है, जिन्हें ये पडेश्वर्य गुणीद्वारा अधिकृत होकर धारण करते हैं।

श्रीविष्णुपुराणने भगवान्में पूर्वोक्त पड्गुणोंकी स्थिति अगले कुछ स्लोकोंमें और अधिक स्पष्ट की है। हेय गुण न होकर ये छ: गुण पूर्णमात्रामें भगवान्में होते हैं (६।५।७९)। भगवान् सर्वभूत प्रकृति, उसके विकारों और गुण-दोन्नोंसे रहित हैं (६।५।८३)। आगे फिर कहा है कि ये छहीं

गुण भगवान्में पृथक्-पृथक् नहीं, एकजुट होका हो है भेतजीवलैश्वर्यमहाववोधसुवीर्यशक्त्यादिगुणै कराशिः' (६।५।८५) । इसमें ज्ञानका _{प्रा} भहावबोध दिया गया है, और 'वीर्यंका विशेषण प लगाया है। इससे इन गुणोंका स्वरूप बहुत कुछ स हो जाता है। ये षड्गुण वस्तुतः 'समस्त कत्या गुणात्मकः (६।५।८४) हैं। परमेश्वाल भगवान् व्यष्टि-समधि-स्वरूपतथा व्यक्ताव्यक्त स्वरूपहैं यह उनका 'बल' गुण है । ने सर्वेश्वर हैं—यह उनका 'ऐश्वर्य' है। वे सर्वदक् (सर्वसाक्षी) हैं--यह मात्रान्त 'अविकारत्व' अर्थात् 'वीर्य' है । प्रकृति-विकारों औ उनके गुणदोषोंसे रहित, समस्त आवरणोंसे परे औ सर्वव्याप्त होना भी भगवान्का वीर्य गुण है । वे सर्वित हैं, यह उनका ज्ञानगुण है। भगवान् 'समस्तराजि हैं, इससे उनका शक्तिगुण स्पष्ट है (६।५। ८३-८७)। इस पुराणमें अन्यत्र भी स्थान-स्थानप भगवान्की भगवत्ताका कथन है । वहाँ भगवान् स्वरूप तथा गुणोंके वर्णन करनेमें बाडगुण्यकी ब्रब्स स्पर दिखायी देती है।

'भग'को ऐश्वर्य कहनेसे स्पष्ट है कि भागवतकार वाड्गुण्यको भगवान्का वडिश्वर्य कहना अधिक उचित समझते हैं। भागवतके अनुसार शौर्य-(वीर्य-) का अर्थ है स्वभावको जीतना—'स्वभाविवज्यं शौर्यम्' (२०। १९। २७)। श्रीका अर्थ है निरपेश्वतादि गुण-'श्रीगुंणा नैरपेक्ष्याद्याः' (११। १९। १०)। ज्ञान है वन्ध-मोक्षको जानना—-'पण्डितो बन्धमोक्षवित (११। १९। ११)। बुद्धिका गुणोंमें अनास्क रहना ही 'ईशता' है—'गुणे व्यसक्तधीरीशः' (११। १९। १४)। वडगुणको यह व्याख्या पुरुष, विशेषाः जीवके संदर्भमें है।

भगवान् ऐरवर्य, वैराग्य, यश, अवबोध, वीर्य औ श्रीसंज्ञक षडैश्वर्यसे पूर्ण हैं। भगवान् वासुदेव सर्वान्त्रा सर्वज्ञ हैं । उनमें परम भक्ति-भाव रखकर मनुष्य बन्धन-मुक्त हो जाता है । भगवान् आत्मारूपमें-सब भूतोंमें एवं सम्पूर्ण भूत भगवान् में स्थित हैं (३।२४।३२, ४५-४६)। कपिल भगवान् कहते हैं-—'मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुषका भी प्रमु हूँ तथा समस्त प्राणियोंकी आत्मा हूँ । मेरे भयसे वायु चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, आग जलती है और मृत्यु अपना कार्य करती है तथा योगिजन ज्ञानवैराग्यमयी भक्तिसे मेरे पाद-मूलका निर्भयतापूर्वक आश्रय लेते हैं । तीव्र भक्ति-योगसे मुझमें चित्त लग जाना ही मनुष्यकी सबसे महती कल्याणोपलिन्ध है । (३।२५।४१-४४)।

भगवान्की शक्तियाँ अनन्त हैं, जिन्हें देवता-रूप कहा जाता है । उन सब देवताओंका एकत्रीभाव भगवान् हैं । वे स्वयं कहते हैं—'सर्वदेवमयोऽहम्' (१०।८६।५४)। उन अनन्त शक्तियोंमें वारह शक्तियाँ प्रमुख हैं (१०।३९।५५)। उनमें भी छः पहैस्वर्यरूप शक्तियाँ हैं । छक्ष्मी, पृष्टि, सरखती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि क्रमशः ऐश्वर्य, वीर्य, वळ, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्यरूपी हैं। अन्य शक्तियोंमें 'इछा' संधिनीरूपा पृथ्वी-शक्ति है, 'उर्जा' छीछाशक्ति है, 'विद्या-अविद्या' जीवोंके मोक्ष और वन्धनमें कारण-रूपा बहिरंग-शक्तियाँ हैं। ह्लादिनीशक्ति आनन्दमयी है, मायाशक्ति संवित् अन्तरङ्गाशक्ति है।

भागवतमें ही अन्यत्र भगवान्के छः गुणोंके नाम हैं — कृपा, विभूति, तेज, मिहमा, वीर्य और प्रभुता (६।१९।५)। ये क्रमशः यश, ऐश्वर्य, तेज (वैराग्य), ज्ञान, वीर्य (धर्म) और श्रीके ही नामान्तर हैं। अन्य प्रसङ्गोंमें भगवान्को एक स्थानपर श्रीपित, धीपित, यज्ञपित, छोकपित, धरापित और सतांपित कहा गया है (२।४।२०)। ये क्रमशः श्री, ज्ञान, धर्म, ऐश्वर्य, यश, और वैराग्य गुण हैं। अन्य स्थानों-

पर उन्हें आत्माओंका आत्मा, मूत-अधस्वर, त्रयीमय धर्ममय, तपोमय और अतर्क्यालङ्ग कहा है (२।४। १९)। ये क्रमशः श्री, ऐश्वर्य, ज्ञान, धर्म, वैराग्य और यशके विस्तार हैं। भागवतमें अन्य अनेक स्थानोंपर (यथा १०।१६। ३९–५०, १४। २४। २। १०।२७। १०-११ आदि स्थलोंपर) तथा विशेषतः शुकस्तुति (२।४।१२–२४) तथा गजेन्द्र-स्तुति-(८।३।२–३२)में भगवान्के षाड्गुण्यका निदर्शन हुआ है। भगगन्के विशेषणोंमें भगवत्तस्य निर्दिष्ट हैं।

देवीभागवत-(१।६)में भगवतीके कीर्ति, घृति, कान्ति, मति, रित और श्रद्धासंज्ञक छः खरूप बताये हैं। ये भी षड्गुण ही हैं। इन्हें क्रमशः यश, वीर्य (धर्म), तेज (वैराग्य), ज्ञान, श्री और ऐश्वर्य कह सकते हैं।

भगवान् निर्गुण और निरपेक्ष हैं। फिर भी वे सत्य, ऋत, तेज, श्री, कीर्ति, दम आदि सब गुणोंके अधिष्ठान हैं (१०।१४।३९)। पड्गुण, साम्य, असंग आदि सारे गुण उन्हों में प्रतिष्ठित हैं; क्योंकि वे सबके हितैपी सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हैं। वस्तुतः उन गुणोंको गुण कहना भी सही नहीं है; क्योंकि वे नित्य हैं, सत्त्वादि गुणोंके परिणाम नहीं हैं। प्राकृत गुण आच्छादक और बन्धक होते हैं (१०।१०।३२-३३, १०।१६। ४६)। किंतु भगवद्गुण मोक्ष-कारक हैं।

विश्ववास भगवान्

श्रीमद्रागवतमें भगवान् वासुदेव विश्ववास हैं। यह अखिल विश्व भगवदूप है (१०।१४। ५६-५०)। जो कुछ भी दिखायी दे रहा है और नहीं भी दिखायी दे रहा है, वह सब भगवान्का शरीर है (११।२।४१)। जो कुछ भी है सब वासुदेव भगवान् हैं, जो भक्तपर अनुप्रह करनेके लिये नाम-रूप धारण करते हैं—

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै
यद् यो यथा कुरुते कार्यते च ॥
योऽनुप्रद्दार्थं भजतां पादमूळमनामरूपो भगवाननन्तः।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिभेंजे स महां परमं प्रसीदतु॥
(६।४।३०,३३)

समस्त जगत्के साक्षात् कारण-खरूप प्रधान और पुरुष हैं। उनके भी नियामक भगवान् हैं। इस जगत्के आधार, निर्माता और निर्माण-सामग्री भी भगवान् हैं। वे जगत्के खामी हैं, और उन्हींकी क्रीड़ाके छिये जगत्का निर्माण हुआ है। यह जिस समय, जिस रूपमें जो कुछ रहता है या होता है, वह सब भगवान् ही है। प्रकृतिरूपसे मोग्य और पुरुषरूपसे मोक्ता तथा दोनोंसे परे, दोनोंके नियामक भगवान् ही हैं (१०। ८५। ४)। भगवान्से मिन्न सदसदात्मक कुछ नहीं हैं—मान्यद् भगवता किञ्चद् भव्यं सदसदात्मकम्'(२।६।३२)।

भगवान् विस्वातमा हैं, उनके अंश-(पुरुष-)के अंश-(प्रकृति, माया)के अंश-(गुणों-)के भाग (लेशमात्र) से विस्वकी उत्पत्ति तथा प्रलय होता है—'यस्पांशां-शांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः' (१०।८५। ३१)। भगवान् के स्वरूप-वर्णनमें ब्रह्माजी उन्हें 'भुवन-वृक्ष' कहते हुए नमस्कार करते हैं—'तस्मै नमो भगवते भुवनद्भुमाय' (३।९।१६)। भगवान् विश्व-वृक्षक्रपमें स्वयं ही विराजमान हैं। वे ही अपनी

मूल प्रकृतिको स्वीकारकर जगत्की उत्पत्ति, स्थिति के लयके हेतुभूत ब्रह्मा-विष्णु-महेशके रूपसे तीन शाबके विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एवं मनु आदि शाब प्रशाखाओंके रूपमें फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं।

भगवान् परम पुरुष हैं। वे भूमा (सर्वव्याप्त) विश्व (सर्वस्वरूप), विश्व-गुरु, परदेवता (परमाराष्ट्र) और हंस (शुद्धस्वरूप) हैं। वे नारायण ऋषि की नरोत्तम (नर) हैं। वे निगमेश्वर (वेदमार्गके प्रवर्तक) हैं और समस्त छौकिक-वैदिक वाणियाँ उनके अवीत हैं (१२।८।४७)। भगवान् ने अपने स्वरूपों हैं प्रकृति आदि नौ शक्तियोंका संकल्प करके इस चाज जगत्की सृष्टि की है और वे इसके अधिष्ठान-रूपसे क्षि हैं। उनका परम पद केवल अनुभूति-स्वरूप है। है देवताओंके आराध्य देव सनातन भगवान् हैं (१२।१२।६७)। भगवान् वासुदेव सर्वसाक्षी हैं (१२।३०।२०)। वे अनुप्रह करके भक्तको आक्ष तत्त्वका बोध करा देते हैं (२।२।३१-३%)।

भगवान्के सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूप कर्य हैं (५।२६। ३९)। उन भगवान् वासुदेक्ष च्यान करें—'तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमिं (२।५।१२); क्योंिक पंवित्रकीर्ति भगवान् वासुदेवे गुणोंकी चर्चा मोक्षाकाङ्की पुरुषकी बुद्धिको विवर्षे से हटाकर भगवान्में लगा देती है (५।१२।१३)

सर्वन्यापक और सूक्ष्म

एप सर्वेषु भूतेषु ग्ढोत्मा न प्रकाराते। दृश्यते त्वस्यया बद्ध्या

पद सब आत्मरूप परमपुरुप समस्त प्राणियोंमें गुप्त रहता हुआ भी मायाके परदेमें छिपा रहनेके कारण सबी वात नहीं होता। यह तो सूक्ष्म तत्वोंको समझनेवाछे पुरुषोद्वारा अति सूक्ष्म बुद्धिसे ही देखा जाता है।

श्रीमद्भागवतके 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' पर तात्विक विमर्श

(लेखक---महाकवि श्रीवनमालिदास शास्त्रीजी महाराज)

श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्यायमें सभी अवतारोंका सूत्ररूपसे वर्णन किया गया है। पश्चात् श्रीकृष्णको ही परिपूर्णतम एवं सर्वावतारी अर्थात् सभी अवतारोंका मूळतत्त्व बताते हुए अट्टाईसवें क्लोकमें यह वाक्य आया है कि 'एते चांशकळाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् खयम्' (श्रीमद्भा०१।३।२२) अर्थात् ये सब अवतार तो भगवान्के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परंतु भगवान् श्रीकृष्ण तो खयं भगवान् (अवतारी) ही हैं। श्रीकृष्ण ही सब अवतारोंके मूळतत्त्व हैं।

श्रीव्यास आदि मुनियोंने अंशांश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छः प्रकारके अवतार बताये हैं। इनमेंसे छठा—परिपूर्णतम अवतार तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। मरीचि आदि 'अंशांशावतार', ब्रह्मा आदि 'अंशांशावतार', परशुराम आदि 'आवेशावतार' और किपल एवं कूर्म आदि 'कलावतार' कहे गये हैं। चृसिंह, राम, श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ और नर-नारायण पूर्णावतार हैं, अर्थात् सर्वावतारी हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति वे प्रमु श्रीगोलोकधाममें विराजते हैं जिनके अपने तेजमें सभी अवतारोंके तेज विलीन हो जाते हैं। भगवान्के उस अवतारको श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष साक्षात् 'परिपूर्णतम' बताते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी खयं भगवत्ताको ज्ञानी भक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीउद्धवजी ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भक्तवर्य श्रीविदुरके प्रति सस प्रकार बताते हैं—

स्तयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः

स्वाराज्यळक्ष्म्याप्तसमस्तकामः

बर्छि हरद्गिश्चिरलोकपालैः

किरीटकोट्टोडितपादपीठः ॥

(श्रीमद्भा० ३।२।२१)

'देखो विदुरजी ! खयं भगवान् श्रीकृष्ण तीनों गेकोंके अथवा वैकुण्ठकोकके ऊपर विराजमान अपने नित्यचाम-गोलोक, मथुरा, द्वारकारूप तीनों लोकोंके और ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंके अधीश्वर हैं। अतः जब उनके समान ही कोई नहीं है तब उनसे बढ़कर भी कोई कैसे हो सकता है। वे अपने खतःसिद्ध ऐश्वयसे, किंवा खरूपभूत परमानन्द शक्तिके प्रभावसे ही सर्वदा पूर्णकाम हैं और चिरकालजीवी ब्रह्मा आदि असंख्य लोकपालगण अनेक प्रकारकी मेंटें देकर अपने-अपने मुकुटोंके अग्रभागसे उनके चरण रखनेकी चौकीको प्रणाम किया करते हैं।

इस रखोककी विशिष्ट व्याख्या करते हुए श्रीरूप-गोखामीजीने अपने 'लघुभागवतामृत'में एक पौराणिकी प्रक्रिया दिखाकर यह कहा कि भगवान श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिमें अनेक प्रकारके अनन्त ब्रह्माण्ड विचित्र-रूपसे विराजमान हैं। इस ब्रह्माण्डका परिमाण तो केवल पचास करोड़ योजन ही बताया है, किंतु श्रीकृष्णकी विचित्रताके कारण कितने ही ब्रह्माण्ड सौ करोड़ योजनके हैं, कितने ही अरब-खरब योजनके तथा कितने ही सौ-सौ परार्द्धके परिमाणके विस्तारवाले हैं। यह ब्रह्माण्ड तो केवल चौदह भुवनोंवाला है, किंतु अन्य ब्रह्माण्डोंमें तो किसीमें बीस भुवन हैं और किसीमें पचास, किसीमें सत्तर, किसीमें सौ, किसीमें हजार, किसीमें दस हजार तथा किसीमें छाख मुवन भी हैं। उन सभी ब्रह्माण्डोंमें ब्रह्मादि छोकपाछगण भी अनेक प्रकारसे विराजमान हैं । किसी-किसी ब्रह्माण्डमें इन्द्र आदि लोकपाल शतमहाकल्पजीवी हैं और ब्रह्मादि लोकपालगण परार्द्ध महाकल्पजीवी हैं। इस प्रकार वे ब्रह्मा, इन्द्र आदि लोकपालगण ही 'चित्रलोकपाल' कहे जाते हैं। उनके कोटि-कोटि मुकुटोंके द्वारा, श्रीकृष्णके पादपीठकी स्तुति यथावसर हुआ करती है।

उसका विवरण इस प्रकार है कि एक समय भगवान् 'श्रीकृष्ण द्वारकापुरीमें विराजमान थे। उसी समय द्वारपालने आकर निवेदन किया कि 'प्रभो ! आपके श्रीचरणारिवन्दों- के दर्शनकी अभिलापासे ब्रह्माजी द्वारपर खड़े हैं।' 'उनसे पूलो कि कौनसे ब्रह्मा द्वारपर आये हैं'—भगवान्के इस वचनको सुनते ही द्वारपालने द्वारपर जाकर ब्रह्मा- जीसे पूलकर कहा कि 'प्रभो ! सनकादिकोंके पिता चार मुखवाले ब्रह्मा हैं।' 'ले आओ'—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर द्वारपाल ब्रह्माको सभामें ले आया। ब्रह्माके दण्उवत्-प्रणाम कर लेनेपर श्रीकृष्णने पूला कि 'ब्रह्मन् ! आप आज किस कारणसे आये हैं ?' ब्रह्मा बोले— 'प्रभो ! आनेका कारण तो पीछे निवेदन कहाँगा, परंतु नाथ ! आपने अभी जो प्रक्रन किया कि 'कौनसे ब्रह्मा आये हैं' वस पहले इसी रहस्यको जानना चाहता हूँ। कारण यह कि मेरे अतिरिक्त कोई ब्रह्मा ही नहीं हैं।'

तद्दनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने वुळ मुस्कराकर सभी चिरलोकपालोंका स्मरण किया। तत्काल कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंसे लोकपालगण तीत्रवेगसे द्वारकामें आने लगे। उनमें आठ मुख्वाले, सोलह मुखवाले, क्तीस मुखवाले, चौसठ मुखवाले, साँ, हजार, लाख तथा करोड़ मुखवाले ब्रह्मा भी थे, और वीस, पचास, साँ, हजार मुखवाले तथा लाख मुजावाले, लाख-लाख शिरोंवाले शंकर भी थे तथा लाख एवं दस लाखतकके नेत्रोंवाले इन्द्रगण थे। सभी अनेक आकारवाले एवं सभी अनेक प्रकारके आभूषण धारण किये हुए थे। सभी चिरलोकपालगण, खयं भगवान् श्रीकृष्णके पादपीठमें प्रणत हो गये। उन सबको देखकर चार मुखवाले ब्रह्मा विस्मित होकर उन्मत्त हो गये।

ब्रह्मसंहितामें श्रीकृष्णकी खयं भगवत्ता इस प्रकार दिखायी है—

यस्यैकिनःश्वसितकालमथावलम्ब्य जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः। विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविरोषो गोविन्दमादिपुरुपं तमहं भजामि॥ प्रार्थना करते हुए ब्रह्मा कहते हैं कि 'मैं आदिपुरूप उन श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ, जिन गोविन्दके अभिन-खरूप महाविष्णुके एक श्वासके लेनेका समय अवलम्बन करके, जिनके (महाविष्णुके) रोमकूपोंमें विद्यमान अनन्त ब्रह्माण्डाधिपति जीवित बने रहते हैं, वे महाविष्णु भी जिन गोविन्दके कलाविशेष कहे जाते हैं। रामादिमूर्तिषु कला नियमेन तिष्ठन्

रामादिमूर्तिषु कला नियमन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु। कृष्णः खयं समभवत् परमः पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

भैं आदिपुरुष उन गोविन्दका भजन करता हूँ जो श्रीकृष्ण-नामक परमपुरुष, अपनी कलाओंके नियमसे अर्थात् शक्तियोंके परिमित प्रकाशके द्वारा श्रीराम आदि, मूर्तियोंमें स्थित होकर, मुवनोंमें अनेक अवतार बारण करते रहते हैं; और वैवस्तत मन्वन्तरके इस अट्टाईसनें द्वापरके अन्तमें तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही परिपूर्ण-तमरूपसे प्रकट हुए हैंं, प्रमाण यथा—

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस-

राजन्यविश्रविवुधेषु कृतावतारः।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥
(श्रीमद्भा०१०।२।४०)

भगवान् रांकरके अवतार श्रीरांकराचार्यजीने भगवान् श्रीकृष्णकी खयं भगवत्ता अपनी निराली परिपाटीसे इस प्रकार प्रतिपादित की है—

ब्रह्माण्डानि वहूनि पङ्कजभवान्प्रत्यण्डमत्यद्भुतात् गोपान् वत्सयुतानदर्शयद्जं विष्णूनरोषांश्च यः। राम्भुर्यचरेणोदकं स्वशिरसा धत्ते स मूर्तित्रयात् रुष्णो व पृथगिस्त कोऽप्यविकृतःसच्चिन्मयोनीलिमा। (प्रयोधस्थाकर—२४२)

जिन श्रीकृष्णने ब्रह्ममोहन-लीलामें ब्रह्माको अनेक ब्रह्माण्डोंका दर्शन कराया एवं प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अतिश्य अद्भुत ब्रह्माओंका दर्शन कराया तथा सभी वरसगणीं युक्त ग्वाल-वालोंको भी विष्णुरूपसे प्रदर्शित कर दिया और शंकर भी जिनके चरणोदकरूप गङ्गाजलको अपन

सिएए सादर धारण करते हैं, किंतु सचिदानन्दमयी श्याम्युन्द्रताकी झाँकीवाले वे ही अनिर्वचनीय खयं भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप तीनों मूर्तियोंसे कृषक् ही निर्विकाररूपसे विराजमान हैं। तात्पर्य, श्रीकृष्ण दूसरे किसीकी अपेश्वा नहीं करते हैं। 'अनन्यापेक्षि यद्-ह्मं खयंह्नपः स उच्यते'; क्योंकि जिसका रूप दूसरेकी अपेक्षा नहीं करता, वही खयं भगवान् कहलाता है।

श्रीकृष्णकी परावस्थाका प्रदर्शन करते हुए श्रीकृष्ण-कर्णामृतकार श्रीबिल्वमङ्गलजीने भी कहा है कि-

सन्त्ववतारा वहवः पुष्करनाभस्य सर्वतोभद्राः। कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति॥

'पग्रनाम भगवान्के सर्वतीभावसे मङ्गळमय बहुत-से अवतार हैं तो उन्हें रहने दो । परंतु श्रीकृष्णसे भिन ऐसा कौन-सा अवतार हुआ है कि जो छताओंको भी प्रेमका प्रदान करनेवाला है ?' यद्यपि—'अपि मावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' उत्तररामचरितकी स उक्तिके अनुसार; सीता-विरहाकुल श्रीरामजीकी दशाको देखकर पत्थर भी रोते थे एवं वज्रका हृदय भी पिघल जाता था, तथापि वह तो उनके वियोगकी दशामें हुआ या। किंतु श्रीकृष्णकी तो यह विशेषता थी कि उनके संयोगमें भी गोपगण, पक्षिगण एवं मृगगण भी रोमाञ्चित होते रहते थे; यथा—

'त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुमसृगाः ाः पुलंकान्यविभ्रन्।' (श्रीमद्भा० १० । २९ । ४०)

'प्रणतभारविटपा मधुधाराः

प्रेमहष्टतनवः सस्तुः स ।' (श्रीमद्भा० १० । ३५ । ९)

निजनिर्मित — षट् सन्दर्भरूप मन्दराचलके श्रीमद्भागवत्रक्षप क्षीरसागरका मन्थन करके, श्रीकृष्णचन्द्र-हप परिपूर्णतम चन्द्रमाको हस्तामळकवत् दिखाकर प्रेमी मक्तोंके जीवनरूप श्रीजीवगोस्वामीजीने 'तत्त्वसंदर्भगके आदिमें 'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता'के अनुसार

साररूपसे श्रीकृष्णकी खयं भगवत्ता प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार प्रार्थना की है कि—

यस्य ब्रह्मेति संद्वां कचिद्पि निगमे याति चिन्मात्रसत्ता-प्यंशो यस्यांशकैः स्वैर्विभवति वर्यन्नेव मायां पुमांश्च । एकं यस्यैव रूपं विलसति परमे व्योस्नि नारायणाख्यं स श्रीकृष्णो विधत्तां खयमिह भगवान् प्रेम तत्पाद्भाजाम्॥

'परात्परतत्त्वखरूप जिन श्रीकृष्णकी चित्खरूपा सत्ता अर्थात् श्रीअङ्गकी कान्ति ही 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि वेद-विभागमें निर्विशेष ब्रह्मका नाम धारण कर लेती है, एवं कारणार्णवशायी सहस्रशीर्पापुरुष, जो कि अपने अंशस्त्ररूप मत्स्यादि अवतारोंके द्वारा मायाको वरामें करके छीछावतारोंको प्रकट करते रहते हैं, वे पुरुष भी जिन श्रीकृष्णके अंश कहे जाते हैं, एवं जिनका नारायण-नामक एक (मुख्य) रूप, प्रकृतिके पार वैकुण्ठमें विराजमान है, वे ही खयं भगवान् श्रीकृष्ण इस संसारमें अपने चरण-कमल्र-सेत्री भक्तोंको अपना प्रेम सदैव अपण करते रहें।

श्रीकृष्णका साक्षात्कार करनेवाले श्रीमधुसूदन सरखतीजीने तो पूछनेवाले अपने अन्तरङ्ग भक्तोंसे स्पष्ट कह दिया था कि--- 'कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमद्दं न जाने' अर्थात् श्रीकृष्णसे परे और कुछ भी तत्त्व है, इसे मैं नहीं जानता; और कहा कि-

प्रमाणतोऽपि निर्णीतं कृष्णमाहात्म्यमद्भुतम्। न शक्तुवन्ति ये सोढुं ते मूढा निरयं गताः॥

'देखो भाइयो ! मैंने तो श्रीकृष्णका अद्भुत माहात्म्य प्रमाणोंके द्वारा निर्णीत कर दिया है । किंतु इतनेपर भी जो मूढ़ उसको नहीं सह सकते हैं, वे तो निकटवर्ती भविष्यमें नरकमें ही जानेवाले हैं। (अगले अङ्कमें समाप्य)

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' का समीक्षात्मक विवेचन

(लेखक—पं० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादची मिश्र 'विनय' एम्० ए०)

श्रीमद्भागवत प्राचीन औपनिषदकी उस परम्पराके तात्विक विचारोंका निसृष्टार्थभूत परम मधुर व्याख्यान है, जिसमें काळकमसे पाञ्चरात्रादि आगमों एवं तत्तत्काळीन दर्शनोंके सिद्धान्त भी अन्तर्भुक्त होते गये हैं। इसमें परिगृहीत ब्रह्मसूत्रकी-सी संप्रहवृत्ति, समन्वयवादिता तथा पुष्टशैली यदि एक ओर इसे वेदान्तराद्धान्तका मधितार्थ सिद करती है, तो दूसरी ओर इसमें प्रवाहित भगवान् कृष्णकी ळळितळीळाओंसे ससुद्भुत भक्तिरूपा अन्तःसळिळा अपने विविध प्रस्तार एवं भावभावित तरङ्गोल्लासके द्वारा इसे परमरारूप काव्यके रूपमें भी प्रस्तुत करती है। भागवत तत्त्वसार और रससागर दोनों है।

वस्तुतः श्रीमद्भागवत सारसंग्रह भी है और परमतत्त्वकी मधुमयी व्याख्या भी । निगमकल्पतरुकी विविध शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्ततत्त्वमाधुरीके सुर्गित सुमन 'ब्रह्मसूत्र'-का यह अर्थरूपे परिणत फल है, जिसका कोई भी अंश रसविहीन न होनेसे त्याच्य नहीं कहा जा सकता। इसीलिये भगवान् व्यास भावुक भक्तोंको, आमुक्ति इसके अमृत पानकी सलाह देते हैं।

इतर पुराणों एवं आचार्योंके अनुसार वेट्सार गायत्रीका उपबृंहण ही 'भागवत' का सम्पुत्र लक्षण है, जिसमें वैदिकसंहिताभागके बहुचर्चित विषय वृत्रासुरके वध तथा तञ्जन्य धर्मविस्तारका भी निरूपण हुआ है; यथा---

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः। **वृत्रासुरवधोपेतं** तद्भागवतमिष्यते॥

(मत्स्यपुराण) श्रीमद्भागवतके विषयमें 'गायची भाष्यक्रपोऽसौं'-

इस पुराणोक्तिकी सङ्गति भी प्रायः सभी प्रत्न-अर्वाचीन टीकाकारोंने तत्तत् टीकाओंमें सुस्पष्टतया प्रदर्शित की है, जिसे विशदरूपमें वहीं देखा जा सकता है। स्पृष्ट दृष्टिसे अवलोकन करनेपर भी हमें इन कथनोंकी सत्या निर्भान्तरूपसे ज्ञात हो जाती है; क्योंकि भागकतका अपने प्रथम क्लोकमें ही ब्रह्मसूत्रके 'जन्माद्यस्य यतः' (१।१।२) सूत्रसे निरूपण करते हुए गायत्रीके भीमहि' पदकी उपसंहति द्वारा परमसत्यका अनुचान करते दीख पड़ते हैं । फिर उनके प्रन्थकी पूर्णता भी इसी सत्यनुष्यानके साथ ही होती है; यथा—

'तच्छुद्धं विमलं विशोकमसृतं सत्यं परं धीमिह।' (श्रीमद्भा० १२ । १३ । १९) अर्थात् 'उस शुद्ध, मलरहित, विगतशोक, अमृतससा

परमसत्यका हम ध्यान करते हैं।

इस प्रतिपादनसे हमारा तात्पर्य यही है कि श्रीमद्गान साधारण प्रन्थ नहीं, अपितु वेदान्त-सिद्धान्तोंको 'शारील स्त्राके रूपमें संप्रथित करनेवाले एवं विविनिषेधमूळ त्रयीवमेका, महाभारत और पुराणवाङ्भयके रूपे न्याख्यान करनेवाले, त्रिकालर्शी महर्षि वेर्व्यासकी ऋतम्भरा प्रज्ञासे समुद्भूत समाधिभाषाका आप्तप्रन्य है। अतएव इसमें प्रतिपादित भगवत्तत्त्व और श्रीकृष्णकथा वेरः प्यवसायी ज्ञानका ही अपर अभिधान है, जिसका सम्बन् विमर्शन आर्षपद्धतिद्वारा ही सम्भव है । अस्तु !

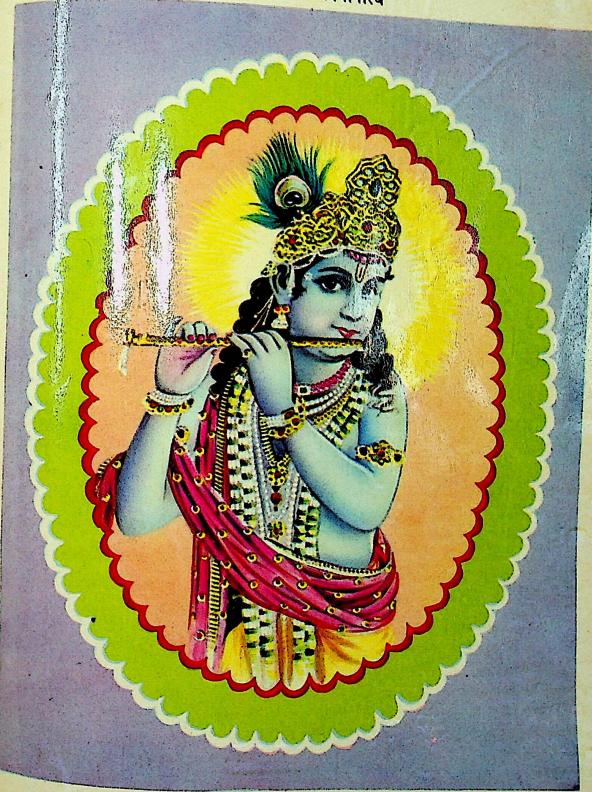
यद्यपि यह सत्य है कि महर्षि बादराय श्रीमद्भागवतके मङ्गलाचरणात्मक प्रथम रलोकमें परमतत्त्वा अनुष्यान करते हुए किसी भी भगवत्स्वरूप या अवता

१—अथोंऽयं व्रहासूत्राणाम् (गरुन्रपुराण) ।

२-पनिगमकरातरोगीळतं फलं शुक्रमुलादमृतद्रवसंयुतार् । पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भा**ड**कीः॥ (श्रीमद्भागवत १ | १ | ३) ३-प्सदानिरस्तकुहकं

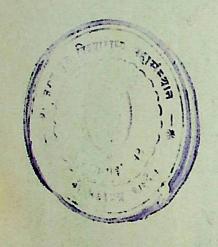
कल्याण 📉

तत्त्वझों के परमोपास्य



भगवान् श्रोकृष्ण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri



विशेषका नाम प्रहण नहीं करते, फिर भी सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराण श्रीकृष्णकथाका ही दार्शनिक उपनिवन्धन है—-यह सुतरां (सूक्ष्मरूपसे द्वितीय खोकमें ही) परिलक्षित हो जाता है; जैसे-—

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोनमूलनम्। श्रीमद्भागवते महासुनिकृते कि वा परैरीश्वरः सद्योद्दयवरुद्धयतेऽत्रकृतिभिः'शुश्रुषुभिस्तत्स्रणात्॥

'श्रीमद्भागवतमें जिस धर्मका प्रतिपादन हुआ है, वह छल या दम्भसे विहीन (अर्थात् भगवद्गभक्तिरूपे धर्म) है, यह परमधर्म, भारसर्यविहीन सजनोंके आचरणका विषय है। (वे सज्जन भक्त ही हो सकते हैं ।) इस प्रन्थका प्रतिपाद्य—वास्तविक तल, (अर्थात् त्रिकालाबाधित सत्य ब्रह्म) है । किंतु वह (वस्तुरूप ब्रह्म) मात्र निर्गुण निर्लेपरूपसे ही यहाँ विविश्वत नहीं, अपितु (खकृत प्रपञ्चमें आत्ममायासे गुणवत्ताको खीकार करते हुए) निखिल कल्याणधाम बनकर (खाश्रित अंशरूप जीवोंके) आधिमौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक तापत्रयके उपशामक रूपसे ही वर्णित हुआ है । और, वह केवल ब्रह्म ही नहीं ईश्वर भी है (अर्थात् यहाँ उसके मायारहित तथा मायोपहित इन दोनों रूपोंका प्रतिपादन इष्ट है) जो कि पुण्यात्मा श्रोताओं के द्वारा श्रवण-मननका विषय होनेपर अविलम्ब--तत्क्षण ही उनके भावमय हृदयमें बन्दी बन जाता है।'

यहाँ 'फ़तिभिः' और 'गुश्रूषुभः' इन पद्मिता उस परमतत्त्वकी प्रपासनासे एवं श्रवणादि साधिने विषयत्वसे जैसे उसकी ईरवरता और ज्ञानरूपता सिंद होती है, वैसे ही सिद्यो हचन्द्रस्थते इस पदसे उसकी भगवत्ता अथ च क्रप्परवस्त्रता और प्रेयरूपत भी निश्चयेन सुव्यक्त हो जाती है । 'और, इन्हीं तत्त्वोंसे विशिष्ट भगवत्तत्त्व साकार अवतार तत्त्वमें विराजता है।

श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण उसी परमतत्त्वके अपर पर्याय हैं, जिसके विषयमें भागवतकार अभिधानके आग्रही नहीं हैं। आप अपनी रुचिके अनुसार उन्हें अद्धयज्ञान किहिये, ब्रह्म किहिये, परमात्मा या ईश्वर किहिये अथवा भगवान् शब्दसे अभिहित कीजिये, बात एक ही है। अन्तर शब्दोंमें है, तत्त्वमें नहीं—

वदन्ति तत्तत्त्वविद्स्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति राज्यते॥ (श्रीमद्रा०१।२।११)

फिर भी भागवतकी अपनी भाषा मुख्यतया इस तत्त्वको भगवत्पदवाच्य रूपसे ही खीकार करती है। श्रीशुक्तदेवजी 'भगवान्'को अधिक समीपसे देखते हैं; इसीलिये कहा है कि—

यद्ङ्व्रयभिध्यानसमाधिधौतया धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः। वदन्ति चैतत् कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम्॥ (२।४।२१)

४-श्रीमद्भागवत १।१।२।

५-इतर धर्मोंके व्यवहारमें यित्किचित् दम्भ दृष्ट हो सकता है, किंतु भगवद्भक्ति या प्रपित ही एक ऐसा धर्म है, जहाँ क्लातः दम्भके लिये अवकाश ही नहीं रहता; क्योंकि भक्ति देवी तो क्णादिए सुनीचेन की भावनासे भावित हैं आविर्भूत होती हैं । इसीलिये श्रीगीतामें भगवान्ने उत्तरधर्मोंका व्यावर्तन करके प्रपत्तिधर्मको ही श्रेष्ठ उहराया है—सर्व धर्मोन् पारत्थवयः (गीता १८ । ६६)।

६—भक्ति स्वभावतः अनुरागमयी मनोवृत्ति होनेके कारण अहंतासे ऊपर ममताकी भूमिमें अधिष्ठित होती है; का कि इतर धर्मोंमें अहंताका सर्वथा अभाव नहीं होता। इसीलिये सञ्चे भगवद्भक्तमें छल या दम्भ नहीं हो सकते, यदि हैं तो वह सच्चा भक्त नहीं —गही समझना चाहिये।

'मनीषी छोग जिनके चरणकमछोंके चिन्तनरूप समाधिसे ग्रुद्ध हुई बुद्धिके द्वारा आत्मतत्त्वका साक्षास्कार करते हैं और साक्षात्कारके अनन्तर अपनी-अपनी (मित तथा) रुचिके अनुसार जिनका वर्णन करते हैं, ऐसे वे 'भगवान' मुकुन्द मुझपर प्रसन्न हों।'

यहाँ मनीषिगण भले ही यथारुचि उस तत्त्वको अन्य कुछ कहें, किंतु भागवतवक्ता श्रीशुकदेवजी उस परमतत्त्वको 'भगवान्' ही खीकारते हैं।

यह बात श्रीमद्भागवतके अपने अभिधानसे भी स्पष्ट हो जाती है। भागवतका तार्ल्य ही होता है, जो भगवान्का हो—'भगवत इदम्–इति भागवतम्।' इसके अतिरिक्त आरम्भमें स्तके प्रति शौनकादि ऋषियोंकी जो जिज्ञासा वर्णित हुई है, उसमें भी सर्व-प्रथम 'भगवान्' इस विशेषणका ही प्रयोग अधिकतासे दिखलायी पड़ता है। अतएव भागवतके 'भगवान्'की व्याख्या केवल 'पडैश्वर्यविभृतिसम्पन्नता' तक ही सीमित नहीं है।

विष्णुपुराण-(६।५।७४)में 'भग' शब्दको इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है—'सम्पूर्ण ईश्वरता, सम्पूर्ण धर्म, कीर्ति, छक्ष्मी एवं समप्र ज्ञान तथा अखण्ड वैराग्य—इन छः तत्त्वोंके निचयकी 'भग' ऐसी संज्ञा मानी जाती है।' यह 'भग' जिसमें पूर्णतया सुसंगत होता हो—वर्तमान हो, वही प्रामुख्येन 'भगवान्' कहा जाता है।

भागवतके श्रीकृष्ण इन षडैश्वयोंसे सम्पन्न तो हैं ही, किंतु इन सबसे परे अत्यन्त अतीत, निष्कल परव्रहा भी हैं,

जिनकी अधिष्ठान-सत्तामें ही यह सारा जगत् भ्रमहर्षे टिका हुआ है । देखिये, पृथ्वीकृत श्रीकृष्णकी यह सुप्ति कि 'हे भगवन् ! ये (पृथ्वी, जल, अनि, बायुः आकाश इत्यादि) पश्चभूत, (गन्ध, रस, तेज, स्पर्श, बाद आदि) पश्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठात् देवता, अहंकार और महत्तत्त्व, किंबहुना सारा चराचा प्रपञ्च आपके ही अद्वितीय स्वरूपमें भ्रम-(माया-)के कारण प्रतीत होता है । (तत्त्वरूपसे तो केंबर आप ही हैंं)।

श्रीमद्रागवत-(प्रथम स्कन्ध, द्वितीय अध्याय)में सर्वप्रथम तात्त्रिक भगवचर्चा सूतके इस कथनसे आत्म होती है कि सत्त्व, रज, तम इन प्रकृतिके गुणेंको खीकार कर परमपुरूष (परमात्मा) ही ब्रह्मिकण्णृशिवास्त्रिक मृतिंत्रयीको जगत्की सृष्टि-स्थिति एवं संहार-हेतु धाल करता है; उनमें भी भजनीयकी दृष्टिसे सत्त्वमूर्ति श्रीविण ही श्रेष्ठ हैं। अतः मुमुक्षुजन मैरवादि उप्र भगवन्मूर्तियोंको छोडकर शान्त नारायण-कलाओंका ही आश्रय प्रहण करते हैं। यहींपर श्रीकृष्णको वासुदेव संज्ञाद्वारा सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, योग, क्रिया, ज्ञान, तप तथा सद्गतियोंका चरम लक्ष्य खीकार किया गया है। वासुदेव शब्दक अर्थ टीकाकारोंने अन्तर्यामी या सर्वाधार किया है; यथा—

'वसित भूतेषु, अन्तर्यामितया इति वासुः दीव्यति, द्योतते न क्वापि सज्जते इति देवः।'' सर्वत्रनियामकतया तिष्ठत्रपि न क्वापि सर्व इत्यर्थः। यद्वा, वसन्ति यत्र भूतानि, इति वासुः स च देवः सर्वाधिष्ठानमपि नोपाधिभूतः।'

७-(क)-भूत जानांचि भद्रं ते भगवान् सालतां पतिः।।
(ख)-को वा भगवतस्तरः।
(१।१।१६)

⁽ग)-कृतवान् किल वीर्याणि सह रामेण केशवः । अतिमर्त्यानि भगवान् गृढः कपटमानुषः ॥ (१ । १ । १० ८-(भा० १० । ५९ । ३०) ९-(भा० १ । २ । २३) १०-द्रष्टस्य--- श्रीमद्भागवतके १ । २ । २८ की श्रीषरी टीकापर होवनीः स्थान्त्या ।

अर्थात्—'जो प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपसे निवास करता है, उसे 'वासु' कहते हैं। वह प्रकाशित होता है, प्रतीत होता है, किंतु कहीं छिप्त नहीं होता, अतएव वह देव कहा जाता है।'…'नियामक रूपसे सब स्थानोंमें (हते हुए भी जो कहीं सक्त नहीं होता (निर्केप रहता

हैं), वहीं (अन्तर्यामी-सूत्रातमा निर्गुणनिर्लेप गुद्धब्रह्म) वासुदेव कहा जाता है। अथवा 'जिस (आधाररूप)-में सम्पूर्ण मूत टिके रहते हैं, जो देव सबका अधिष्ठान— आश्रय होनेपर भी उपाधिरहित है, वही वासुदेव है। ' (क्रमशः)

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवत्तत्व-निरूपण

(लेखक--डॉ॰ श्रीमहानामवतजी ब्रह्मचारी, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

गीताके तेरहवें अध्यायमें क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभागका प्रकरण है । पाश्चात्त्य दार्शनिकोंका पुरुष-प्रकृति (Man and nature) तत्त्व भी प्रायः ऐसा ही है । ज्ञानतत्त्वके ज्ञाता-ज्ञेय ही (Subject-Object) पुरुष-प्रकृतिके मौलिक स्वरूप हैं । संसारकी सभी वस्तुओंको ज्ञाता और ज्ञेय इन दो विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है । ज्ञाता या चेतनाविशिष्ट जीवात्माका ही दूसरा नाम पुरुष है । सांस्य-दर्शनने प्रकृतिको चौबीस तत्त्वोंमें विभाजित करके उनके साथ पुरुषको मिलाकर कुल पचीस तत्त्वोंकी आलोचना की है । गीताने भी तेरहवें अध्यायमें इसी मार्गका अनुसरण किया है । किंतु सातवें अध्यायमें तत्त्वोंकी कुल संस्था आठ ही खी है, मानो ये — 'क्षिति, अप्, तेज, मरुत्, व्योम, मन, बुद्धि और अहंकार——शिवकी अष्टमूर्तियाँ हैं ।

परा और अपरा प्रकृतिको गौड़ीय वैष्णवाचार्योने तटक्षा और बिहरङ्गा शक्ति कहा है। इनके सिवा उनके द्वारा एक और महत्तर शक्ति चर्चित हुई है, जिसका नाम है-—अन्तरङ्गा शक्ति। यह भगवान्की छीछाओं में विशेष सहायिका है। तटक्थाशक्ति, जीवशक्ति या पराप्रकृति है। इस शक्तिद्वारा वह अनन्त विश्वको धारण किये हुए है—'ययेदं धार्यते जगत्'। आधार जिस प्रकार आधेयको धारण करता है, उसी प्रकार जीवशक्ति दृश्य हस्यप्रपञ्चको धारण करती है। पुरुषोत्तम जीवशक्तिको

धारण किये रहते हैं और जीवशक्ति जगत्को धारण करती है, जैसे—शिवके अङ्कमें शिवानी और शिवानीके अङ्कमें सिद्धिदाता गणपित । जीवशक्ति केवल ज्ञाता ही नहीं, भोक्ता भी है । बहिरङ्गा शक्ति भी केवल ज्ञेय ही नहीं, भोग्य भी है । भोक्ताके लिये ही भोग्यकी सत्ता है । भोक्ताके कर्मानुयायी ही भोग्य प्रकृतिका परिणाम होता है । जीवके कर्म ही प्रकृतिके परिणामके नियामक हैं ।

भोक्ता-भोग्य दोनों तथा इन दोनोंके भोग भी पुनरिष परमेश्वरकी भोग्य वस्तु हैं। सर्वशक्तिमान् परमेश्वरसे ही निखिल विश्वका उद्भव और उसीमें लय भी होता है। उसीमें जगत् प्रतिष्ठित है। पुरुषोत्तमसे श्रेष्ठ वस्तु दूसरी कुछ नहीं—'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिवस्ति धनंजय'—(गीता ७।७)।

आचार्य रामानुजने जीव और प्रकृतिको परब्रह्मके दो विशेषण कहे हैं, मानो परब्रह्म विशेषण हो और ये दोनों उसके विशेषण । विशेष्य-विशेषणकी समानाधिकरणता रहती है। जैसे नील्लपद्मका नील्रव पद्मको व्याप्त किये हुए है, उसी प्रकार जीव और प्रकृतिको ईश्वरसे पृथक् नहीं किया जा सकता। आचार्य शंकरके मतमें ब्रह्म निर्विशेष है। जीव और प्रकृतिकी सत्ता मायिक है, पारमार्थिक नहीं। श्रीरामानुजाचार्यके मतमें ब्रह्म सिवशेष है। जीवशक्ति

एवं प्रकृति उसकी विशेषता-प्रतिपादक हैं। दार्शनिक स्पिनोजा (Spinoja) ने मानव-चैतन्य और प्रकृतिको परमेश्वरके दो प्रकार (Mode) कहा है। अपरा प्रकृति सत्व-रज-तमोगुणमयी है। यह जड़ या अचेतन है और देहादि रूपमें परिणत होकर जीवचैतन्यके कर्ममोगका क्षेत्र वनती है। परा-चैतन्यस्क्रपा प्रकृति है। पुरुशोत्तम भी चैतन्यस्क्रपा हैं। दोनोंमें पार्थक्य यह है कि पुरुशोत्तम हैं—विमु चैतन्य और जीव है—अणु चैतन्य। पुरुशोत्तम हैं—प्रकृति-जिड़त खण्ड चैतन्य। अखण्ड चैतन्य है-—एक तथा अद्वितीय, खण्ड-चैतन्य है—संख्यातीतो हि चित्कणः'।

अद्भैतवेदान्तमतसे आवरण माया ब्रह्ममें ही रहती है। गीताके मतसे माया ईश्चरकी ही प्रकृति है। पूर्णको देखते ही वह छजासे मुँह ढककर छिप जाती है। अखण्ड ईश्वरतत्त्वके पास माया नहीं फटकने पाती । इस प्रकार माया या त्रिगुणारमक प्रकृति दोनों एक हैं — 'माया तु प्रकृति विद्यात्' भिन क्रियाकारित्वसे हेतु-जैसे एक ही जल स्नानीय और पानीय बनता है, वैसे ही इनकी कियाएँ मिन्न हैं। अपरा प्रकृति विश्वका मूल उपादान कारण है। परंतु माया अपने त्रिगुणोंद्वारा उसको सीमाबद्ध करके उसके असली स्वरूपका आवरण करती है । जीव अपूर्ण है, जीवकी सत्ता खण्ड सत्ता है—'ममैवांशो जीवलोके'—इस अपूर्ण अंश-सत्तापर माया अपना अधिकार जमाती है। अणु चैतन्य जीवको माया विभ्रान्त करती है। जीवके छिये इस 'दुरत्यया' मायाके चंगुळसे छुटकारा पाना वड़ा कठिन है। इसका उपाय श्रीभगवान्की अनन्य शरणागित है। बता दिया है—'मामेव ये प्रपद्यन्ते'। (गीता ७।१४)

माया ही जीवको ढकती है, यह महामाया श्रीहिस्की ही शक्ति है—'महामाया हरेइचैपा'। जब यह

सृष्टिलीलाका कार्य करती है तो इसका नाम रहता है—'योगमाया'। पर कृष्ण-विमुखोंको जो मुख्क दुःख देती है, वह है—'माया'। जो कृण उन्मुख हैं, उन्हें कृष्णके प्रति छुन्ध करके जब सुख पहुँचाती है, वह है 'योगमाया'। गीताके चतुरं अध्यायमें अवतार-प्रसङ्गमें जिस 'आत्ममाया' (४ । ६) शब्दका प्रयोग किया गया है, वहाँ भी वह इसी योगमायाको लक्ष्य करके ही किया गया है। भगवान् ख्यं अज, अन्ययात्मा और समस्त भूतप्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी इसी योगमायाद्वारा अपनेको प्रकट करते हैं — 'अजोऽपि सच्चव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽषि सन्' (गीता ४ | ६) । उनके जन्म और का दूसरोंकी तरह प्राकृत नहीं होते, किंतु दिव्य, चिन्मय होते हैं—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' (गीता ४ ।९)। यह दिव्यत्व सर्वदा च्यानमें रखनेयोग्य है । जब यह तल अर्जुनको इदयंगम हुआ है तो वे कहते हैं-

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥ स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम। (गीता १०। १२, १५)

इस ज्ञानोपलन्धिक बाद अर्जुन भगवान्की अनन्त विभूतियोंका वर्णन सुनानेके लिये निवेदन करते हैं। विभूतियोंका वर्णन करके भगवान् इस विषयका उपसंहार इस प्रकार करते हैं—

अथवा बहुनैतेन कि ज्ञातेन तवार्जुन। विष्टभ्याहमिदं फ्रत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥ (गीता १०।४२)

एकादश अध्यायमें श्रीभगवान्ने अपने इसी विश्व-रूपका अर्जुनको दर्शन कराया है और दर्शनके मान उपायके रूपमें 'भक्त्या त्वनन्यया' विधिका निरूपण कर दिया है। (गीता ११। ५४)। जिस प्रकार एक साधारण छोटी शालप्रामशिलामें अखण्ड-मण्डलाकी परब्रह्मके समस्त देव-देवियाँ विराजमान रहती हैं, उसी प्रकार पञ्चदश अध्यायमें अखण्ड गीता अपनी सभी मुख्य तत्त्वचिन्तनके सहित प्रकाशित है। ईश्वर अंशी है, जीव उसका अंश है—'भमैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' (गीता १५। ७)।

अंशी और अंशके बीचमें कुछ सादस्य रहेगा और क्छ वैसादस्य भी रहेगा । एक है समद्र या अग्निराशि । दूसरा है—एक विन्दु जल या विस्कृष्टिङ्ग । अग्नि जलत्वरूपसे दोनों एक हैं। पर अग्नि जलमें उनके उपादानोंका जो अनुपात है, यह वैसादस्य है । इसी प्रकार ईश्वर सचिदानन्द-स्रह्म हैं, अंश जीव भी सिचदानन्दस्रहम है, यह सादस्य हुआ । ईश्वर है भूमा—विराट्, जीव है— लघु । ज्योतिपुञ्ज सूर्य अंशी है, प्रकाशकी एक किरण उसका अंश है। दोनों ही प्रकाश हैं, यह है—सादश्य। एकका विराट् खरूप है, दूसरेका क्षुद्र खरूप है, यह है—वैसादृश्य । ईश्वर सनातन है, चिरकाछ वर्तमान है। जीव भी सनातन है, चिरकाल विराजित है, यह हुआ सादृश्य । किंतु ईश्वर चिद्घन हैं, जीव चित्कण है, यह हुआ वैसादृश्य । सूर्य सूर्यछोकमें विराजमान हैं, उनकी किरण छिटककर आ गयी है पृथ्वीपर । पुरुषोत्तम विराजमान हैं आनन्दमय नित्यलोकमें, जीव जरा-मृत्युमय जीवलोकमें भटक रहा है, यह हुआ वैसादस्य । उपनिषदोंमें आया है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते।

इनमें सूर्य, चन्द्र, अग्निका जो तेज समग्र विश्वको प्रकाशित करता है, वह पुरुषोत्तमका ही तेज है। वे ही निजशक्तिसे जगत्स्थ समस्त जीवोंको धारण करते हैं। रसात्मक सोमरूपसे वे समस्त ओषधियोंको परिपुष्ट करते हैं। इन ओषधियोंको ही आहाररूपसे प्रहण करके जीवगण जीवन-धारण करते हैं। प्राणियोंकी देहमें वैश्वानर जठराग्निरूपसे निवास करके वे ही समस्त आहार्य

वस्तुओंका परिपाक करते हैं। वे ही सभी प्राणियोंक हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे संनिविष्ट हैं। जीवको जो आत्मज्ञान, स्मृति-विस्मृति होती है, वह उनके ही कारण होता है। अष्टम अध्यायमें कहा है, 'अक्षरं ब्रह्म परमम्'— (८।३)। एकादश अध्यायमें कहा है, 'त्वमक्षरं परमं वेदितन्यम्'—(११।१८) एवं 'त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्'—(११।३७) वारहवें अध्यायमें भी कहा है.—

ये त्वक्षरमिनदेशयमन्यकं पर्युपासते। सर्वत्रगमचिन्त्यं च क्रुटस्थमचलं ध्रुवम्॥ (१२।३)

इनमें व्याख्यातागण रूपमेद भी मानते हैं। अक्षर पुरुष अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वव्यापी, अचिन्त्य, क्ट्रस्थ, अचल और नित्य है। सारे वेद इन अक्षर ब्रह्मखरूपका ही कीर्तन करते हैं 'वैदेश्च सर्वेरहमेव वेद्यः'—(१५।१५) 'वेदिविदेव चाहम'—(१५।१५) समस्त ब्रह्माण्डमें दो प्रकारकी वस्तुएँ हैं—एक परिवर्तनशील, दूसरी परिवर्तनहीन। जो परिवर्तनशील है, वह परिणामी अनित्य है। जो परिवर्तनहीन है, वह अपरिणामी नित्य है। परिणामी जगत्के मूलमें जो है, वही क्षर पुरुष हैं—'अधिभूतं क्षरो भावः'—(९।४) अपरिणामी नित्य वस्तुके जो कारणखरूप हैं, वही अक्षर पुरुष हैं। दोनोंको ही पुरुष कहा गया है। पुरुषका अर्थ होता है—जो पुरीमें सोये हुए हैं (Underlying reality)।

इन दोनोंका वर्णन श्रुति इस प्रकार करती है— 'बाबो द्वी ईशावनीशों' (स्वेताखतर०) । पुरुष्र दो हैं— ज्ञ और अज्ञ । एक ईश है, दूसरा अनीश । अज्ञ और अनीश-तत्त्व ही क्षरपुरुष है । ज्ञ और ईश-तत्त्व अक्षरपुरुष है । जड-जगत्के माध्यमसे ईखरका जो कार्य है, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, ओषि, जठराग्निमें जो क्रियाशिक है, वह क्षरपुरुषका कार्य है । क्षरपुरुष साकार है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमय है । अक्षरपुरुष निराकार, अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय है । अक्षरपुरुष चैतन्यमय है, वह जीवात्माके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान है । ज्ञान और अज्ञानको जो भी क्रिया होती है, सबका कारण वही है । जिस महाचेतनाद्वारा विश्व चैतन्य-विधृत है, जो अपौरुपेय ज्ञानभण्डार वेदके छस्य हैं, जो वेदोंके वेत्ता हैं, रहत्यविद्याके जो मूछ हैं, वही अक्षरपुरुष हैं । इसीछिये संक्षेपमें कहा है— 'क्षर: सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।' (१५ । १६)

सर्वमूर्तोंके अन्तरमें जो ईश्वरसत्ता है, वह क्षर है। विश्व-चैतन्यके मूलमें जो निर्विकार सत्ता है, वह अक्षर है। क्षरपुरुष गुणमय है, गुणमय जगत् ही उसकी क्रीडास्थली है। अक्षरपुरुष गुणातीत है, वह समस्त सत्ताके मूलमें पटमूमिका-रूपसे विराजमान है। इस चित्रके अङ्कनमें दो वस्तुएँ प्रयोजनीय हैं। एक निर्मल बेदाग पर्दा, दूसरा उसके ऊपर मरे जानेवाले विचित्र रंग। इस विश्वचित्रकी रचनामें निरुपाधि निर्गुण अक्षरब्रह्म—है पर्दा-स्थानीय। गुणमय क्षरपुरुष है, पर्देपर चित्रित किये जानेवाले नाना विचित्र रंग। इस दृष्टिभङ्गीके अनुसार ही गीताके वक्ताने कहा है— 'द्राविमी पुरुषों लोके क्षरञ्चाक्षर एव च।'(१५।१६) श्रीरामकृष्ण परमहंसकी भाषामें अक्षर है— राहनाईका एक पीं-राब्द और क्षर है— राहनाईके संगीतकी खरलहरी। तदन्तर पुरुषोत्तम तत्त्वका वर्णन है—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाइतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभत्यंव्यय ईश्वरः॥ यसात्क्षरमतीतोऽहमश्रराद्षि चोत्तमः। अतोऽसि लोके वेदेच प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

(गीता १५। १७-१८)
पुरुषोत्तम-तत्त्व क्षर और अक्षरसे मिन्न है। वह
क्षरसे अतीत और अक्षरसे भी उत्तम है। प्रमु जगद्बन्धुकी भाषामें—'मायिक एष्टिके साथ कृष्णका
लेशमात्र भी सम्पर्क नहीं। वह एकमात्र ईश्वर है,
खतन्त्र ईश्वर है। यह खतन्त्र ईश्वर ही पुरुषोत्तम हैं।

उपनिषदों में इन्हें 'पुरुषविधः' कहा है। ऋग्वेदके पुरुष्प सूक्तमें इसे 'पुरुष पवेदं सर्वम्' चौदहवं अध्यक्षे अतिम रछोकमें कहा गया है—'मैं धर्मस्वरूप क्रक्षों प्रतिष्ठा हूँ।' घनीमूत ब्रह्मस्वरूप हूँ मैं। ब्रह्म धर्म है मैं धर्मी हूँ। ब्रह्मसंहिता कहती है—ब्रह्म गोविन्द्र्यों अङ्गप्रभा है—

यस्य प्रभाप्रभवतो जगदण्डकोटि-कोटिष्वदोषवसुधादिविभूतिभिन्नम् । तद्ग्रह्म निष्कलमनन्तमदोषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ (५। ४६)

कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें अगणित वसुधादि विभूति भेदवश जो भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, वह निष्कल, अनन्त, अशेषभूत ब्रह्म जिनकी अङ्गप्रभा है, उन आहि-पुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ। 'श्रीचैतन चरितामृत'की भाषामें—

ताहार अङ्गेर शुद्ध किरण मण्डल । उपनिषद कोहे तारे ब्रह्म सुनिर्मल ॥

क्षर साकार है, अक्षर निराकार है, पुरुषोत्तर विदाकार व आनन्दविग्रह है। क्षर जड़-विकारी है। अक्षर निर्विकार है, पुरुषोत्तम चिद्घन-विकारी है। अर अक्षर उनकी दो चिद्विभूति हैं। श्रीमद्भागवर्तने तो अत्यन्त स्पष्ट राब्दोंमें ही कह दिया है—

'कृष्णमेनमचेहि त्वमात्मानमखिळात्मनाम्।' (१०।१४।५५)

'हे परिश्वित! श्रीकृष्णको तुम समस्त जीवात्माओं की परम आत्मा ही जानो ।' रात्रिको उउज्बल करता है चन्द्रमा, चन्द्रमाको प्रकाशित करता है मूर्य। क्षाकी प्रकाशित करता है अक्षरहा प्रकाशिक है प्रकाशित करता है अक्षरहा प्रकाशिक है उर्कोश्चम । समुद्रका ऊपरी भाग तरङ्गमय है, इसकी धारण कर रखा है निस्तरङ्ग जलराशिने। इन दोनों की धारण कर रखा है जलधिने। क्षरको धारण करते हैं अक्षर। अक्षरको धारण करते हैं उसकी प्रतिष्ठालक्ष्य प्रकाशितमा।

वे ही वैश्वानर-रूपमें भोजनको पचाते हैं। कविराज कृष्णदास गोस्वामीकी भाषामें——

हुमृ वातुर अर्थ घारण पोषण। बोरिलो पोषिलो प्रम दिया त्रिमुदन॥ (चै० च०)

्कृणा नव जलधर जगत शस्य ऊपर वरिषये कीकामृत धारा।

पुरुषोत्तम निज प्रियजनोंके साथ निरन्तर प्रेमरसके आदान-प्रदानकी क्रीड़ा करते रहते हैं। जीवात्मा उस छीछाका सतत श्रवण, क्रीतन, स्मरण करते हुए—'सततं क्रीतयन्तो माम्—(गीता ९।१४)' उसके माध्यरसका आखादन करता है। श्रीशुकदेवजी श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—'भजते ताहशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।' (१०।३३।३७) उन छीछाओंका श्रवण करके जीव भगवत्परायण हो जाता है।

श्रुतिमें चैतन्यकी तीन अवस्थाएँ वतायी गयी हैं—
वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ । परम चैतन्यखरूपकी भी
उसी प्रकार तीन अवस्थाएँ हैं । वैश्वानरका समपर्यायी
क्षरूष्ट्र है, तैजसका समतत्त्व अक्षरूष्ट्र है और प्राज्ञ
भूमिका साम्य पुरुषोत्तम खरूपसे है । इन सबसे भिन्न
चैतन्यकी एक और उच्चावस्था भी है । श्रुतिने उसे
'तुरीय' नाम दिया है । पुरुषोत्तमकी भी दो अवस्था है—
एक है क्षर-अक्षरात्मक सृष्टिलीलामें आत्मसमाहित
अवस्था दूसरी है खमाधुर्य आखादनकी विचित्रतामें
कीडारत अवस्था । इस खरूपमें वह नित्य-लीलामय हैं ।
इस लीलामयत्वके अनुरूप भूमि है तुरीय चैतन्य ।
किवराज गोलामीकी भाषामें—

पुरीय कृष्णेते नाई मायार सम्बन्ध ।'
वेदोंका चरम दर्शन परब्रह्मकी आनन्दमयतातक ही
सीमित नहीं है । 'रसो वे सः'। वे उसे रसखरूप
बतळाते हैं । जो पुरुषोत्तम-तत्त्वको जानता है,
वह उनका सर्वभावेन भजन करता है । 'स सर्वविद्
भजति मां सर्वभावेन भारत ।' (गीता १५ । १९)

सर्वभावेन भजनके दो मेद हैं। इसके भी आत्म-निवेदन और सम्बन्धस्थापन दो मेद हैं। आत्मिनिवेदन अंश एक प्रकारसे निष्क्रिय किंतु सम्बन्धस्थापन-अंश सिक्रिय है। किसी एक विशेष सम्बन्धके माध्यमसे अपनेको पुरुषोत्तमके हवाले करनेको ही सम्बन्धस्थापन कहते हैं। अपनेको उन्मीलन करके अपनेमें पुरुषोत्तमको प्रवेश करने देना यानी पुरुषोत्तमका निजजन वन जाना। पहले पुरुषोत्तममें मेरा प्रवेश, उसके बाद मेरेमें उनका प्रवेश।

इस प्रकार जो सर्वभावेन भजन करते हैं, वे 'सर्वविद्' हो जाते हैं। यहीं प्रेम प्रकट होता है। प्रेमकी गित है नीरव-निःशब्द। ज्ञानमें प्रवीण होकर भी प्रेमी भक्त शिशुकी तरह होता है। प्राज्ञ-अज्ञ-मधुमङ्गलके माधुर्यका क्या कहना। ज्ञानमूर्ति अद्वैतका बालचापल्य कितना मधुर था। ज्ञानघनमूर्ति श्रीगौराङ्ग सुन्दरकी बालसक्ति कितनी मधुर है.—

प्ता होता है सर्वविद्का अज्ञमाव। परमेश्वरका—श्रीहरिका मानव-शिशुमाव-—गृद-कपट छीछाका यही माधुर्य है। पुरुषोत्तमके माधुर्यके जो आखादक हैं, वे भी सहज सरछ शिशु ही हैं। प्रेममिक यानी परामिकके प्राचुर्यसे सवज्ञ भी सर्वविद् हो जाते हैं, रसज्ञ भी रस-आखादक हो जाते हैं, आराध्य भी आराधक बन जाते हैं। आराधनासे होती है मधुवृष्टि, समस्त विश्वमें होती है मधुवरंगोंकी सृष्टि। माधुर्य भगवत्ताका सार पदार्थ है। माधुर्य भगवत्तका सार है और मिकका सार है। भजनसे विश्व मधुमय हो जाता है। सर्वमावेन भजनद्वारा मिलन अनुभवके विषयमें वैदिक ऋषि उदात्त खरमें गाते हैं—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः, माध्वीनः सन्त्वोषधीः। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः, मधु द्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पति-र्मधुमानस्तु सूर्यः। माध्वीर्गाचो भवन्तु नः॥ (वाजतन्तः १३)

(प्रेषक तथा अनुवादक—शीचतुर्भुषजी तोषनीवाल)

श्रीवैद्यानस भगवच्छास्त्रमें निरूपित भगवत्तत्त्वका स्वरूप-विवेचन

(हेस्रक--श्रीचल्लपल्लि भास्कर रामकृष्णमाचार्युंछ, एम्० ए०, बी० एड्०)

श्रीवैखानस भगवच्छास्र श्रीभगवान् विप्णुके वैदिक आराधना-विधि-निरूपक (आद्य) शास्त्र है । इस शास्त्रका उल्लेख वेदोंसे लेकर काव्योंतक पाया जाता है। इसके अनुसार संक्षेपमें 'भगवत्तत्त्व'का निरूपण किया जाता है।

'भगवत्तत्व' शब्द विवरण--'भग-वत्-तत्त्व' शब्द सम्मिल्ति होकर 'भगवत्तत्त्व' शब्द बना है । इसके 'भग' शब्दका विवरण शास्त्रोंमें अत्यन्त विस्ताररूपसे पाया जाता है। 'भग' अर्थात् ऐश्वर्यादि; जैसे-

पेश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसःश्रियः। ज्ञानवैराग्ययोर्चेव षण्णां भग इतीरिणा॥

सम्पूर्ण ऐस्वर्य, वीर्य, यरा, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य-इन छः गुणोंका समाहार 'भग' कहलाता है । और, 'भगवान्' शब्दका निरूपण इस प्रकार पाया जाता है।

विष्णोरकुष्ठवीर्यस्य नानाब्यूहैकहैतुकम् । तत् षङ्गुणसम्पूर्णं लक्ष्मीलक्षणसंयुतम् ॥ श्चानमनन्ताख्यं भगवच्छव्दशब्दितम्। (तर्ककाण्ड---मोक्षोपायप्रदीपिकाके उद्धरणसे)

अकुण्ठ वीर्यसहित, विविध व्यूहोंके हेतु, वङ्गुणोंसे परिपूर्ण, लक्ष्मी-लक्षणसहित, सत्य-ज्ञान-अनन्त कहलाने-बाले विष्णु ही 'भगवत्' शब्दसे शब्दित (अथवा कथित) हैं।

'तत्त्व' शब्द्का निरूपण—उस-(परमात्मा-)का भाव ही तत्त्व है; अर्थात् उस परब्रह्म, नारायणका (स्व)भाव ही तत्त्व है।

'तस्य भावस्तत्त्वमिति—' 'तस्य परव्रह्मणः एः (विमानाचनकत् नारायणस्य भावः' पटल ९०)। 'तत्त्व'के दो प्रकार-उस परमात्माका स्वभाव-

(१) सकल, (२) निष्कल नामक दो प्रकास होता है---

'तद्रह्मणो निष्कलस्सकलश्च (वही, पटल ९०)

निष्कल-प्रमात्माके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जैसे क्षीर-(दूध-)में सर्पि (घी), तिलोंमें तेल, पुणी सुगन्ध, फलोंमें रस तथा काष्टोंमें अग्नि, सूक्ष्म हुए परिव्याप्त (पूर्णतया व्याप्त) होते हैं वैसे ही क्लिं व्याप्त परमात्मा निष्कल कहलाता है।

सकल--जैसे काष्ठों-(लक्षड़ियों-)में अंतर्निहा अग्नि मथनसे प्रकट होकर प्रज्वित होती है, उसी तह निष्कलात्मा विष्णु ध्यान-मथनसे, भक्तिसे, संकल्प काले सकल होते हैं। जैसे अग्निसे विस्फुछिङ्ग प्रकट होंगे हैं, कुम्भारके चक्रके ऊपर स्थित मिट्टीसे घटनाए आदि प्रकट होते हैं, उसी प्रकार भगवान् विष्णु ध्यानं अनुसार प्रकट होते हैं। उन्हींसे विविध देवता मी प्रकट होते हैं।

भगवान्का स्वरूप तथा तत्त्व अभिन्न होनेपर भी प्रहण-सौलम्यके लिये अलग-अलग रूपसे विवेचित हैं। भगवान्का स्वरूप-चिन्तन भी भगवत्तत्व-चिन्तनके लि उपयुक्त होता है। अतः भगवत्स्वरूप विवरण वि जाता है।

२—निष्कलः—। परमात्मनोऽन्यन्निर्किचिदस्तीति । क्षीरे सिर्पिस्तिले तैलं पुष्पे गन्धः फले रसः काष्टेऽनिर्दि न्तर्वहिश्च तत्त्ववें व्याप्याऽऽकाशोपमः 'अन्तर्वहिश्च तत्त्ववें व्याप्य नारायणस्थितः'—इति । आकाशः शरीरं ब्रह्मैत्वर्गः । वही एउट की (वही पटल वही)

२-अथ सकलः—काष्ठेऽग्निर्भथनादुण्ण्वलन्नित्र निष्कलात्मको विष्णुप्यानिमथनेन भक्त्या संकल्पनात्सकलो भवित्र ग्निर्विस्फुलिङ्गा इव ब्रह्मेशानादि देवताक्कोिऽक्कलात्मको विष्णुप्यानिमथनेन भक्त्या संकल्पनात्सकलो भवित्र तसादगोर्वेस्फुलिङ्गा इव ब्रह्मेशानादि देवतारूपैभिन्नत्वात्कुलालचकस्य मृदो भावितं तद्गूपो भूत्वा विष्णुः प्रकाशते । (वहीं पटक वहीं)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri घटशरावादि भेदा इव यद्र्पं मन्

भगवान्का स्वरूप—'तत्र परमात्मैव पञ्चधा भवति । स एव एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मेति श्रुतिः।' (वही १ पटल ९१)

वहाँ परमात्मा पाँच प्रकारसे होते हैं। उनके मेद इस प्रकार कहे गये हैं—(१), पर, (२) ब्यूह, (३) विभव, (४) अन्तर्यामी, तथा (५) अर्चावतार। अथतो देवस्य परस्य परमात्मनः। सक्ष्पं पञ्चधा प्रोक्तं ॥ परो ब्यूहश्च विभवश्चान्तर्यामी तथैव च। अर्चा चेति हरे रूपं पञ्चधाऽऽविष्कृतं विभो॥ (आनन्दसंहिता अ०४, श्लोक ५-६)

(१) 'पर'का स्वरूप—भगवान्के 'पर' खरूपका प्रयोजन केवल समस्त ब्रह्माण्डोंका सृष्टि करनामात्र है। वे अनुपम, अनिर्देश्य, दस हजार पूर्ण चन्द्रोंके समान कान्तिवाले, विश्वका आप्यायन करनेवाले, राङ्क, चक्र, गदा, पद्म आदि दिन्यायुधोंसे युक्त, श्री आदि अनपायी-(अनन्त, गरुड, विष्वक्सेन आदि-)से सेवित खरूप हैं।

(२) 'व्यूह'का खरूप—भगवान् के 'व्यूह'का प्रयो-जन 'देह—चलन' तथा 'मन'का अधिष्ठान रहना है; अर्थात् सभी जीवोंके शरीरोंका चैतन्य तथा मनका आधार या अधिष्ठान बना रहता है।

न्यूहस्तु देहचलनं हेतूनां सिनिपुंगवाः। चतुर्णो मानसादीनां अधिदैवतमेव हि ॥८॥ (आनन्दसंहिता, अ०४) इस व्यूहका खरूप (१) दैविक (वैखानस), (२) मानुष (पाञ्चरात्र) भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। पहला दैविक (वैखानस) व्यूह पुनः पाँच प्रकारका होता है।

पञ्च धातुः पुनर्व्यूहः प्रोच्यते श्रुतिसम्मतः। देवो विष्णवादिमेदेन पञ्चधा व्यवतिष्ठते॥ (प्रकीर्णाधिकार अ०३३, रलोक १३)

उपर्युक्त पाँच प्रकारकी भूर्तियोंके आदि भूर्ति 'विण्यु' हैं। उन-(विण्यु-)के भेद, चार प्रकारके पुरुष, सत्य, अच्युत तथा अनिरुद्ध नामोंसे होते हैं।

आदिसूर्तिस्तु पञ्चानां विष्णुर्भेदाश्च तस्य तु। चतस्रः पुरुषाद्यास्थुर्मूर्तयो भिन्नलक्षणाः॥ (वही० अध्याय ३३, इलोक १५)

(३) विभव—धर्म-संस्थापनके छिये गृहीत मत्स्य, कूर्म आदि अवतार विभव कहे जाते हैं। इनमें भगवान्के विविध अवतार, अंशावतार, पूर्णावतार, आवेशावतार आदि सम्मिछित होते हैं।

विभवा मत्स्यक्रुमीद्या हयग्रीवादयो मताः। (प्रकीर्ण० अ० ३३। २२५)

(४) अन्तर्यामी—जगत्के समस्त चराचर जीवोंमें सूक्ष्म रूपमें न्याप्त होकर रहनेवाला अन्तर्यामी कहलाता है।

उस शिखाके मध्यमें परमात्मा स्थित है— (तैत्तिरीय आरण्यक) इस श्रुतिके अनुसार हृदयक्षमछके बीचमें श्री, भूमि तथा पार्षदोंसहित रहनेवाले समस्त कारणोंके कारण विष्णुजी अन्तर्यामी कहलाते हैं।

परस्याद्खिलाण्डानां सृष्टिमात्रप्रयोजकः ॥ ६ ॥
अनौपममनिर्देश्यं पुनस्सभजते परम् । विश्वाप्यायनकं कान्त्या पूर्णेन्द्रयुत तुस्यया ॥ ५ ॥
शङ्कचकगदापद्मदिन्यायुधपरिष्कृतः । सहस्रादित्यगंकाशः परमे न्योम्नि संस्थितः ॥ ९ ॥
श्रियानित्यानपायिन्या सेन्यमानो जगत्पतिः ।११५।

४-अन्तर्यामीति जगतामाधारार्थे स्थितो हरिः॥ ९॥
तस्याःशिखाया मध्ये तु परमात्मा व्यवस्थितः। इत्युक्तश्रुत्याभिहितो हृदयाम्बुजमध्यमे॥२४ई॥
तस्याःशिखाया मध्ये तु परमात्मा व्यवस्थितः। इत्युक्तश्रुत्याभिहितो विशेयस्वर्वकारणकारणः॥ ३०॥
हृदि तिष्ठति सर्वात्मा श्रीभूमिय्यां च पार्षदैः॥२९ई॥ अन्तर्यामीति विशेयस्वर्वकारणकारणः॥ ३०॥
(आनन्दसंहिता, अ०४)

(५) अर्जावतार—समस्त जीवोंको सुलभसे मोश प्रदान करनेके लिये भगवान् श्रीहरिने 'अर्जा' रूपसे अवतार लिया—'अर्जारूपस्तु सुलभाइदाति परमं पदम्।' (आनन्दसंहिता, अ० ४। १३)

अर्चा रूपका अर्थ है 'आराधनाके लिये उप-युज्यमान मगत्रान्यन श्रीविग्रह ।' इनका सविशेष विवरण ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत 'अर्थपञ्चय-विवरण' खण्डमें भी पाया जाता है ।

यह अर्चावतार (श्रीविप्रह) १ — ध्रुव, २ — कौतुक, ३ — उत्सव १ — स्नुपन तथा ५ — बिलनामोंसे पाँच प्रकारका होता है । ये श्रीविप्रह मन्दिरके हर एक प्रधान देवताके छिये भी प्रतिष्ठाप्य तथा अर्घ हैं ।

१-'ध्रुव' भेर आख्योंमें प्रधानत्या शिलासे, कभी-कभी छोह या दाह-(छकड़ी-)से भी बनाया जाता है । यह सदा स्थिर रहता है । २-'कौतुक'में 'ध्रुव'से परमात्माके कलाओंका आबाहन करके अर्चना की जाती है । ३-'उत्सव'-विप्रह रथ, बाहन आदिके ऊपर बिठाया जाकर 'उत्सव' करनेके लिये उपयोगमें लानेवाले हैं । ४-'रनपन'-विप्रह नित्य तथा नैमित्तिक स्नान करानेके लिये तथा '५-'बलि'-विप्रह आलय तथा प्रामोंमें बलि प्रदान करनेके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं ।

अत्रतक परमारमाके खमाव तथा खरूपका विवाद दिया गया। भगवत्तत्त्वके ज्ञानका छक्ष्य 'परमण्हणां ही होनेके कारण तथा परमपदमें प्राप्य परमालाव विवरण भी ज्ञेय होनेके कारण 'परमपद'का विवेक किया जाता है।

प्रमपद्के भेद-'पञ्चधा पञ्चात्मा' श्रुतिके अनुसा प्रमारमा पाँच रूपोंमें पाँच प्रकारसे विराजते है। १-आदिसूर्ति विष्णु सर्वव्यापी हैं। उनके चार के (अ) विष्णु, (आ) महाविष्णु, (इ) सदाविष्णु और(ह) व्यापिनारायण रूपसे होते हैं। उन रूपेंसे क्रमा १-आमोद, २-प्रमोद, ३-सम्मोद तथा ४-वैकार नामके चारों लोकोंमें विराजमान होकर पाद (पैत या 🕏), अर्घ (आधा 🕏), त्रिपाद, (🕏), केतल (१ या पूर्ण) त्रिभूतिसहित धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा वैगाव गुणोंसे युक्त होकर, जीवको उसके पुण्यविशेषे अनुसार (१) सालोक्य, (२) सामीप्य, (३) सारूप्य और (४) सायुज्य नामक चार प्रकारके गेर प्रदान करते हैं । भगवत्तत्त्व अत्यन्त गहन तथा आषेवास गूढ है; अतः वास्तविक निरूपण दुरूह है । भगवत्तली दुरूहता उसका महत्त्व है, जो सृष्टिके प्रारम्भसे मानी जाती रही है। यहाँ जो विवेचन दिया गया है, व वैखानस भगवच्छास्रके आधारपर दिशा-निर्देशमात्र है।

मूर्त-अमूर्त ब्रह्म

दे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्तं वामूर्तमेव च। क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्वभृतेष्ववस्थिते ॥ अक्षरं तत्परं ब्रह्म क्षरं सर्वमिदं जगत्। एकदेशस्थितस्याग्नेज्यात्स्ना विस्तारिणी यथा॥ परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमित्तलं जगत्॥ (विष्णुपु०१।२२।५५-५६) (उस ब्रह्मके मूर्त और अमर्त दो हुए है हो हुन है

'उस ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षररूपसे समस्त प्राणियों में स्थित हैं । अक्षर ही वह परम दे और क्षर सम्पूर्ण जगत् है । जिस प्रकार एकदेशीय अग्निका प्रकाश सर्वत्र फैला रहता है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण क्षार

वेद-पुराणादिमें श्रीभगवत्तत्व

(लेखक-पं॰ भीजानकीनाथजी शर्मा)

श्रीरूपगोखामीके 'लघुभागवतामृत'के प्रथम प्रकरणका नाम 'भगवत्तत्त्व' है। इसमें उन्होंने 'शास्त्रयोनित्व' (वेदादि तथा उपनिषदों द्वारा सिद्ध-- 'त्वां त्वीपनिषदं पुरुषं पुच्छामि') एवं सभी दर्शनोंके आधारपर और जगत्कर्तृत्व, भृतत्व, खामित्वसे एवं भजन करनेपर दिव्य चमत्कृत ढंगसे मशकादिको विरिष्ट्र आदि पद देनेसे ईश्वरको प्रकट वस्तु सिद्ध किया है। निर्गुण रूपसे तो वे सदा सर्वत्र व्याप्त हैं—'पावा परमतस्व जनु जोगी', तथा—'वेदतस्व नृप तव सुत चारी' आदिसे निर्दिष्ट वेदवेद्य श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वके राम-कृष्णादि रूपमें अवतीर्ण होनेपर वेद भी रामायण-भागवतादिके रूपमें अवतरित हुए कहे गये हैं—'वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।' 'निगम-कल्पतरोर्गिलितं फलं शुक्तमुखादमृतद्रवसंयुतम् (श्रीमद्भा०१।१।३) इत्यादि । भगवत्तत्त्वको सांख्य-योग, न्यायदर्शन एवं श्रीमद्भागवतादिमें केवल 'तत्त्व' अद्वयज्ञान, ब्रह्म या परमात्मादि नामोंसे भी व्यक्त किया गया है, यथा—'अध तत्त्वं व्याख्यास्यामः,' तत्तत्त्वविद्सतत्त्वं यज्ज्ञानमद्यम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते । (श्रीमद्भा॰ १।२।९) इत्यादि । वैसे 'भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते' आदिमें भगवत्तत्त्व शब्द भगवान्के लिये भी प्रयुक्त है, पर इसमें तथा अन्य सभी प्रन्थोंमें 'तत्त्व' मात्रसे भी 'मगवत्तस्व'को व्यक्त किया गया है; क्योंकि उपनिषद्, महा-वाक्यादि आदिके ''तत् सत्य स आत्मा तस्वमसि रवेतकेतो' (छांदोग्य॰ ६ । १६ । ३) आदिमें प्रयुक्त 'तद्' भद परमात्माका ही वाचक है। 'तत्त्वों' पर प्रवर्तित मुख्य प्रन्थ वैसे सांख्य, न्याय एवं वेदान्त हैं।

भागवतमें तो कपिछ, माया-मस्यादिप्रोक्त सांस्थको 'तत्त्वों का परम प्रामाणिक वेद-—'तत्त्वाम्नाय' तक कहा गया है—'तत्त्वाम्नायं यत्प्रवद्गित सांस्थम्' (श्रीमद्भा॰ ३ । २५ । ३१) 'विहर्रस्त स्वमुव्यक्ति प्रेप्राणसंहितां दिव्यां सांस्थयोगिकियावतीम्।' (बहीटा २४ । ५४ -५५)। पर 'सर्वदर्शनसंप्रह'में पाशुपत, माहेश्वर, छोकायतिक जैन-बौद्ध एवं अन्य दर्शनोंके अनुसार २, ३, ४, १०, २५, ३५, ३६ आदि तत्त्व (elements) भी निर्दिष्ट हैं । श्रीमद्भागवत ११ । २२ । ४ – ४५ तकमें खयं श्रीभगवान्ते उद्धवसे ३, ९, ११, ४, ६, ७, २५, २६ आदि तत्त्वोंकी गणनाको, 'तत्त्वे तत्त्वानि सर्वद्राः'से युक्तिसंगत ही बतछाया है ।

भक्तिशास्त्रोंके अनुसार—-'वन्दे गुरूनीशभक्तानी-शमीशावतारकान् । तत्प्रकाशांश्च तच्छक्तीः' तथा—

कृष्ण, गुरु, भक्त, शक्ति, अवतार, प्रकाश । कृष्ण एइ छै रूपे करेन विलास ॥' (चैतन्यचरितामृत)

आदिसे कृष्णतत्त्व, गुरुतत्व, भक्तितत्त्व, शक्तितत्त्व, अवतारतत्त्व और प्रकाशतत्त्व—ये मुख्य छः तत्त्व मान्य हैं। फिर इनमेंसे भगवान्के ऐश्वर्यादि छः शक्तियोंका वर्णन, गुरुके शिक्षा, दीश्वादि-भेद तथा उसे भगवद-वतारादिके भी पुरुषावतार, गुणावतार, छीछावतार, आवेशावतार, पूर्णावतार, कछावतार आदि कई अवान्तर भेद विस्तारसे निरूपित हैं। पर वस्तुतः विश्वतत्त्व, शाखतत्त्व या तत्त्वोंके एकमात्र तत्त्व भी श्रीभगवान् ही हैं, इसीछिये उन्हें शाख्योनिं एवं औपनिषद पुरुष भी कहा गया है। अतः इन शाखोक्त साधनोंसे ही उनकी ही प्राप्ति

^{*} भाषा-शास्त्रियोंके अनुसार 'तद्श्का मूल भी 'त' है; यह तत्र, ततम्, आदि पदो एवं तस्मै, तस्यै, तस्य, तयोः, तेषु आदि इसके प्रायः सभी रूपोंसे स्पष्ट है। पञ्चदशी (५।८)के—'दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीयते। वस्त्रश्चे प्रायः सभी रूपोंसे स्पष्ट है। पञ्चदशी (५।८)के—'दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीयते। वस्त्रश्चित्र त्रम्पा स्वप्रकाशात्मरूपकम्।' इन वचनोंसे 'तद्श्य एवं 'जगत्' का भी 'ब्रह्मः या 'स्वप्रकाशरूपः आत्मा ही विवक्षितार्थं बतलाया गया है। 'एकाश्चारकोशोंमें 'तंश्का अर्थ तस्करएवं सर्वशिरोमणिकृष्ण भी है।

निर्दिष्ट है। योग-भक्ति आदि शास्त्रोमें उनकी प्राप्तिमें यज्ञ, तप, त्याग, संयम, श्रद्भा, तीत्र छालसा, अनन्यभक्ति एवं विनयको मुख्य कारण माना है । भक्तों, देवताओंकी प्रार्थना-विनयादिसे ही वे सदा अवतीर्ण हुए हैं। यह---·बहुविधि यिनय कीन्ह तेहि काछा। प्रगटे हरि कौतुकी कृपाछा ।' 'जय जय सुरनायक जन सुखदायक' एवं 'पुरुपं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ।' (भाग ० १० । १ । २०) एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान् हरिरीइवरः । तेषामाघिरभूद् राजन् सहस्राकोंदय-युतिः।' (८।६।१)—आदिमें देव-स्तुतियों, गजेन्द्र-स्तुति, द्रौपदी-स्तुति, प्रचेतास्तुति तथा प्रह्लादादिके 'आविभेव आविभेव (५।१८।८), 'नरहरि प्रगट किए प्रहादाः' आविरासीत् कुरुश्रेष्ठ (६।४।३५) 'आविरासीद् यथा प्राच्याम् '(१० । २ । ७) आदिके भगवत्प्रादुर्भावसे सुस्पष्ट है । अन्यथा उनका रूप आसुर प्रकृतिके लिये तो तिरोहित ही रहता है-वे अपने रूपको देवता-मुनियोंसे भी दुराये रखते हैं— **'नेवासुरप्रकृतयः प्रभवन्ति वोद्धुम्' (स्तोत्ररानम्-१५)** तथापि अनन्यभक्तगण उन्हें सदा सर्वत्र देखते ही रहते हैं—'पश्यन्ति केचिद्निशं त्वद्नन्यभावाः। (वही १६), 'तस्याहं सुलभः' 'तस्याहं न प्रणक्यामि' (गी०)

वेदोंका भी अनन्य भिक्तद्वारा उनका साक्षात्कार करनेका आदेश है। ऋग्यज्ञ, साम, तैत्तिरीय, अथर्वणादिका कथन है कि उस परमतत्त्वको ही जानो, जिसके आश्रयमें सभी विश्वदेवता, छोकपाछ अधिदेवतादि स्थित हैं। उसके ज्ञानके विना ऋचाएँ व्यर्थ हैं — 'यस्मिन देवा अधिविश्व विषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। (ऋग्वेद १।१६४।३९, याजुः तैति० आरण्यक २।११।१, अथर्व ९।१०।१८, निश्क १३।१०)। 'वाजसनेयिसंहिता' तो सभी विश्वको ईश्वरमय ही देखती है और वैसा ही देखनेका आदेश देती है—

र्श्वावास्यिमदं सर्वे । (४०।१) 'कृष्णालां किमिप तत्त्वमहं न जाने' 'तत्त्वं परं योगिनाम्।' आदिके अनुसार वेदों, गीता भागवत, गंगसंहित, विष्णु-ब्रह्मवैवर्तीदि पुराणोंके तत्त्व श्रीकृष्ण ही है। रूपगोलामीके अनुसार पुष्करनाम भगवान्के अवता तो एक-से-एक हैं और सभी परम मङ्गळकर हैं, प्र ळताओंमें भी प्रेम प्रकट कर देना तो कृष्णका है कार्य है—

सन्त्ववतारा बहवः पुष्करनाभस्य सर्वतोभद्राः।
कृष्णादन्यः को वा छतास्विप प्रेमदो भवति॥
(छघुभाग० ५ । २२ । ९, चैतन्यच० २)
गोपियोंके प्रेम-परवश होकर समस्त सौद्र्यं
माधुर्यसार सुख, सौगन्ध्य, औज्ज्वल्य, ऐश्वर्यं, कारूणा-

मृतवारिधि वेदतत्त्वब्रह्म उल्लखलमें वँध गया । लीलशुक्क विल्यमङ्गल कहते हैं—

परिममुपदेशमाद्रियध्वं निगमवनेषु नितान्तखेद्खिन्नाः। विचित्रत भवनेषु वल्लवीना-मुपनिषदर्थमुलुखले निबद्धम्॥

'अरे निगमागमवनमें 'तत्त्वान्वेषी' श्रान्त पियक्तभाई। तुन्हारा अभीष्ट सार'तत्त्व' तो व्रजमें गोपियोंके बर जखलमें वँघा है, तुम वहाँ जाओ, वह तुरंत मिलेगा। एक गोपी कहती है—'वेद-वेदान्तका तत्त्व गोघूलिमें सना हुआ नन्दरायके प्राङ्गणमें थेई-थेई कर नाच रहा हैं

श्र्णु सिंख कौतुक्तमेकं नन्दनिकेतनाङ्गणे मया दृष्टिम्। गोधूलिधूसरिताङ्गो

चृत्यति वेदान्तसिद्धान्त[॥] (कृष्णक्णी)

सूरदासने बालकृष्ण-माधुरीके—'धनि गोकुल धिन नंद जसोदा जाके हरि अवतार लयें आदिकें हजारों पद गाये हैं। गोखामी तुलसीदासजीने भी कृष्ण-

१. इस 'अस्य वामीय' या 'सोपर्ण'स्का'के सभी वावनों मन्त्र परमात्मतत्त्वके ही प्रशंसक है। यद्यपि ऋगतुक्रमणी मीमांसा, सभी ब्राह्मण श्रीतसूत्रादिकोंके अनुसार संहिताभागमें कर्मकाण्ड ही प्रधान है। इसी प्रकार अधर्वणी विशेषकर उसके पिछले काण्डमें सैकड़ों अध्यात्मस्क हैं। (२) कुछ लोगोंने इसे विल्यमङ्गलका भी वचन माना है।

गीतावळी में कृष्णयशका अद्भुत चमत्कार पूर्ण वर्णन किया। मरनमोहन, परमानन्द, नन्ददास आदिके पद तथा बीसों तो 'श्रमरगीत' तैयार हो गये। यह सब कृष्णका आकर्षण ही था। उन्हें भागवतकारने निर्गुण-निराकार एवं सगुण-साकारका समन्वय माना है। इसके उदाहरणमें वे निम्न वचन कहते हैं—

स्वयं तु साम्यातिरायस्त्र्यधीशः साम्राज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः । विलं हरद्भिदिचरलोकपालैः किरीदकोट्येडितपादपीठः ॥ (श्रीमद्रा०३;२।२१)

अर्थात् उनकी १६ हजार पटरानियाँ तथा सभी होकपाछ उनके सेवक थे। इन्द्र-महेन्द्र अपने किरीटकोटिसे उनके पादपीठको प्रणाम करते थे, जिससे उनके कोमछ पैरोंको कोई क्लेश न हो, तथापि वे उप्रसेनकी सेवा बजाते थे—'लोकपाल दिगपाल वहन यम रवि ससि आज्ञाकारी। तुलसीदास प्रशु उप्रसेनके द्वार बेंत कर धारी।' उनकी वंशीष्यनिसे जड़-चेतन, मृग-पक्षी, त्रहृषि मुनितक मुष्य हो जाते थे—

ध्यानं बलात् परमहंसकुलस्यभिन्दन् त्रिन्दन् सुधामधुरिमानधीरधर्मा । कंदर्पशासनधुरां मुहुरेव शंसन् वंशीध्वनिर्जयति कंसनिषूदनस्य॥

इसी प्रकार भगवान् रामका भी आकर्षण प्रसिद्ध हैं। उनके वन जानेंके समय सारे अवधवासी सुरदुर्लभ भवनको छोड़कर उनके साथ दौड़ पड़ते हैं— सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥

निह न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
वले साथ अस मंत्र दढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
(रामच०२।८३।४)६)
वाल्मीकीय रामायामें निर्णात अनुभवासियोंका प्रेम

वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित अवधवासियोंका प्रेम तो और भी विस्तृत है । वृक्ष तक म्लान होते हैं— 'अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पाङ्करकोरकाः।' यह वर्णन दो अध्यायोंमें चला गया है । खर-दूषण, त्रिशिरा-जैसे दुष्ट राक्षस भी कहते हैं—क्या हुआ जो इन छोगोंने बहन शूर्पणखाकी नाक-कान काटी, ये दण्ड-योग्य तो कदापि नहीं है—

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥ जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनुपा॥

साँप विच्छू भी इन्हें देखकर निर्विष हो जाते हैं— जिनहिं निरिल मग साँपिनि बीछी। तजहिं विषम विष तामस तीछी

समुद्रके जीव-जन्तु भी इन्हें एकटक देखते रह जाते हैं, रुकते नहीं । और उन्होंने उस समय परस्परका देष भी छोड़ दिया---

देश्वन कहुँ प्रभु करूना कंदा । प्रगट अए सम जलचर बृंदा ॥ अइसेड एक तिन्हिं जे खाहीं । एकिन्हि कें डर तेपि हराहीं ॥ प्रभुहिं विलोकिंह टरति न टारे। सन हरिषत सब भए सुखारे॥

शबर, शंकर, विश्वरूप, पितृभूति, देवखामि, मण्डनमिश्र, देवत्रात, वाचरपित, रामानुज, उवट-महीधर एवं
गीताकी सभी व्याख्याओं के अनुसार भी वेदोंकी संदिताभागसे उपनिषदें श्रेष्ठ हैं । इन्हीं उपनिषदोंमें श्रीकृष्णोपनिषद्, कृष्ण राम एवं विष्णुको एकका ही रूपान्तर
मानती है । उसमें कहा गया है कि २ ४वीं त्रेता*में
श्रीरामचन्द्रजी ऋषि-मुनियों के दर्शनार्थ जङ्गलमें गये । वहाँ
महाविष्णु, सिच्चिदानन्द लक्षण सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् श्रीरामचन्द्रको देखकर सभी वनवासी मुनि विस्मित हो गये । उन
ऋषियों ने उनके शरीर-स्पर्शकी कामना प्रकट की । भगवान् ने
अन्यावतारमें उनकी इच्छा पूर्ण करनेका वचन दिया—

श्रीमहाविष्णुं सिच्चदानन्द् छक्षणं रामचन्द्रं हष्टवा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूदुः। तं होचुर्नावद्यमवतरान्वे गण्यन्ते आलिङ्गामो भवन्तमिति।' उन सभी देवताओं तथा ऋषियोंकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। वे सभी कृतकृत्य हो गये। कालान्तर (२८वें द्वापर)में श्रीभगवान्का प्राकट्य हुआ। भगवान्का स्वरूपभूत परमानन्द ही नन्द हुआ, ब्रह्मविद्या यशोदा हुई। ब्रह्मपुत्री गायत्री देवकी हुई, खयं निगम ही वसुदेव

भत्य ४७।२४५, ब्रह्माण्ड २ | ८ । ५४, ३ । ७३ । ९२, पद्म १ । १४ । ६६ आदि-)

हुए । वेदोंकी ऋचाएँ ही गोपियों तथा गौओंके रूपमें अवतीर्ण हुई । भगवान्के मनोहर संस्पर्शके निमित्त ब्रह्मा मनोहर यिष्ट हुए । भगवान् रुद्र सप्त-खरानुवादी वेणु होकर, इन्द्र गवयश्वक्त होकर श्रीहस्तमें सुशोमित हुए और पापी असुर हुए—

यो नन्दः परमानन्दः यशोदा मुक्तिगेहिनी। गोप्यो गावो ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः॥ वंशस्तु भगवान् रुद्रश्टक्षमिन्द्रस्त्वघोऽसुरः।

इसके अतिरिक्त वैकुण्ठ गोकुळवनके रूपमें अवतरित हुआ । तपस्तीगण वृक्षोंके रूपमें अवतीर्ण हुए । कोध-छोमादि दैत्य हुए तथा मायासे विग्रह धारण करने-वाले साक्षात् श्रीहरि ही गोपरूपमें अवतीर्ण हुए । श्रीशेषनाग बळराम हुए और शास्रत ब्रह्म ही श्रीकृष्ण हुआ । सोळह हजार एक सौ आठ पिनयोंके रूपमें ब्रह्मरूपा वेदोंकी ऋचाएँ तथा उपनिषदें प्रकट हुईं—

गोकुळं वनवैकुण्डं तापसास्तत्र ते दुमाः।
ळोभक्रोधादयो दैत्याः किळकाळतिरस्कृतः॥
गोपक्पो हरिः साक्षान्मायाविष्रहधारकः।
शोपनागोऽभवद्रामः कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम्॥
अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिषयः स्त्रियस्तथा।
ऋचोपनिषदस्ता वै ब्रह्मकृपा ऋचः स्त्रियः॥

यहाँतक कि साक्षात् द्वेष भी चाणूर-मल्ल्रूपमें अवतीर्ण हुआ, मत्सर अजेय मुष्टिक हुआ, दर्प कुवल्र्यापीड़ हायी तथा गर्व वकाष्टुर राक्षस हुआ। दया रोहिणी माताके रूपमें अवतीर्ण हुई, घरा सत्यभामा हुई, महाव्याधि अघाष्टुर वना तथा कल्लियुग कंसरूपमें अवतीर्ण हुआ। शाम-मित्र सुदामा हुए, सत्य अक्र्र हुआ तथा दम उद्धव हुआ एवं सर्वदा संस्पर्श पानेके लिये साक्षात् भगवान् विष्णु शक्क्ष्रूपमें अवतीर्ण हुए—

द्वेपश्चाणूरमञ्जीयं मत्सरो मुष्टिको जयः। द्रपः कुवल्यापीडो गर्वो रक्षः खगो वकः॥ द्रया सा रोहिणी माता सत्यभामा धरेति वै। अधासुरो महाव्याधिः कलिः कंसः स भूपतिः॥ शमो मित्रः सुदामा च सत्याकृरोद्धवो दमः। यः शङ्खः स खयं विष्णुर्लक्ष्मीरूपो व्यवस्थितः॥

इसी प्रकार इसमें आगे चलकर तथा गर्गसंहिताित भी कहा गया है कि जिस प्रकार भगवान् पहले आनन्दपूर्वक क्षीरसमुद्रमें क्रीडा करते थे, वैसा ही आनन लेनेके लिये उन्होंने श्रीर-समुद्रको दिध-दुग्धके माण्डीमें स्थापित किया एवं शकट-भञ्जन आदि छीछाएँ रची। गणेशजी या साक्षात् ब्रह्म चक्ररूपमें अवतीर्ण हुए लक्ष्मी वैजयन्ती माला हुईँ, खयं वायु ही धर्ममय चम हुए एवं अग्निके समान प्रकाशवाले तलवारक्एमें खं भगवान् महेश्वर आविर्भूत हुए । श्रीकश्यपजी उल्लब हुए, देवमाता अदिति रञ्जु हुईँ । इस प्रकार मगवानुके समस्त परिकरके रूपमें---'सर्वे वे देवताः प्रायाः' वे ही सब देवगण अवतीर्ग हुए, जिन्हें सभी सादर नित्र नमस्कार करते हैं। इसमें किसी प्रकार भी संशय नही करना चाहिये। सर्वरात्रु-निवर्हिणी साक्षात् कालिका गदारूपमें अवतीर्ग हुई और भगवान्की वैष्णवी माप शाङ्गिभनुषरूपमें उनके करकमछमें आ विराजी । शर्रः ऋतु भगवान्के सुन्दर भोजनोंके रूपमें प्रकट हुआ। श्रीगरूडजी भाण्डीरवट हुए तथा नारद मुनि श्रीदाम नामक उनके सहचर गोपाल हुए। क्रिया, बुद्धि ^{एवं} भक्ति देवियाँ सम्मिलित रूपसे वृन्दा (तुलसीसमूह) रूपमें अवतरित हुई

दुग्धोद्धिः कृतस्तेन भग्नभाण्डोद्धिणृहे।
क्रीडते वालको भूत्वा पूर्ववत् सुमहोद्धौ॥
संहारार्थं च रात्रूणां रक्षणाय च संक्षितः।
यत्स्रण्डुमीश्वरेणासीत्तचकं ब्रह्मरूपधृक्॥
जयन्ती पद्मजा वायुश्चमरो धर्मसंहितः।
यसासौ जवलनाभासः खडगरूपो महेश्वरः॥
कृष्यपोलुखलः ख्यातो रज्जुर्मातादितिस्तथा।
यावन्ति देवरूपाणि वदन्ति विबुधा जनाः॥
नमन्ति देवरूपोश्य प्रवमादि न संश्यः।
गदा च कालिका साक्षात् सर्वशानुनिवर्षिणी॥
धनुः राार्कः स्वमाया च रारत्कालः सुभोजनः।

गरुडो वटभाण्डीरः श्रीदामा नारदो मुनिः॥ वृन्दा भक्तिः क्रिया बुद्धिः सर्वजन्तुप्रकाशिनी। इस तरह——

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः। वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः॥* सर्वे वै देवताप्रायाः। (श्रीमद्भा० १०। १। ६२-६३) —यह श्रीनारदजीकी उक्ति सर्वथा सत्य सिद्ध हुई।
जपरके वर्णनसे यह सिद्ध हो गया कि परमपुरुष
ही, जो वैदिक संहिताओं, उपनिषदोंका चरमतत्त्व है,
इतिहास-पुराणादिमें श्रीकृष्ण तथा श्रीरामादिरूपोंसे
विवक्षित एवं विस्तारसे निरूपित है।

रामचरितमानसमें भगवत्तत्वकी व्यापकता

(लेखक-पं० श्रीश्रीकान्तशरणजी महाराज)

रामचिरतमानस मर्यादा-पुरुशोत्तम भगवान् राघवेन्द्रकी परब्रह्मताके साथ उनके आदर्श मानवीय चिरित्रोंका भी प्रति-पादन करनेवाला महाकाव्य है,अतः इसमें कई स्थलोंपर प्रभुके दिव्य ऐश्वर्य (भगवत्तत्त्व)का भी प्राञ्जलरूप प्रतिपादित हुआ है । 'मर्त्याचतारिस्त्वह मर्त्यशिक्षणम्'के अनुसार मानवमात्रको मानवताकी शिक्षा देना इस अवतारका मुख्य उद्देश्य है और इसके लिये मानवीय चिरित्रका अभिनीत होना भी आवश्यक था। अखिल-ब्रह्माण्डनायकके लिये सामान्य मानवीय चिरित्रका अभिनय विचित्र कार्य है । अतः भगवान् रामके विशुद्ध माधुर्य-चिरित्रके प्रणेता महर्षि वाल्मीकि-जैसे तत्त्वद्रष्टाके महाकाव्यमें भी ऐश्वर्यका अभिनय नहीं रूक सका, तब भला रामचिरतमानस कैसे उससे पृथक् रह सकता है ?

श्रीरामके मानवचरित्रका मूळ कारण महारानी शतक्ष्पाको मिळा हुआ वरदान है। इसमें भगवत्तत्वके रूप-विधानका दर्शन मनु-महाराजकी तपस्यासे करें। महाराज मनु जहाँ प्रभुके समान पुत्रकी कामना करते हैं—'चाहउँ तुम्हिं समान सुत', वहींपर महारानी शतक्ष्पाने कहा—नाथ! चतुर नृपने जो वर माँगा है, वह मुझे भी प्रिय है, किंतु आप ब्रह्मादिकोंके जनक, जगत्के खामी एवं घट-घटमें, अणु-अणुमें रमण

करनेवाले ब्रह्म हैं, अतः इस रूपमें आप मेरे पुत्र होंगे, इसमें मुझे संदेह है। फिर भी आपने 'एवमस्तु' कहा है, अतः उसे प्रमाण मानकर मैं आपसे यह चाहती हूँ—

'जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति छहहीं॥ सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु। सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥'

इस स्थलपर सगुण और निर्गुण दोनों ही ब्रह्म-तत्त्वोंका मार्मिक प्रतिपादन हुआ है। महारानी शतरूपा-को कौसल्या-रूपमें जहाँ-जहाँ इन छः वरदानोंकी प्राप्ति हुई है, वहाँ-वहाँ ब्रह्मतत्त्वका दिग्दर्शन होता है—

१-सोइ सुख-

कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना।

मातु दुछारइ कि प्रिय छछना॥

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण बिगत बिनोद।

सो अज प्रेम भगति बस कौसल्याके गोद॥

प्रेम मगन कौसल्या निस दिन जात न जान।

सुत सनेह बस माता बाछ चरित कर गान॥

२-सोइ गति-ग्यान—

स्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥

यह विवरण पद्मपुराण ४ । ७३ । २२—४०; ५।२४५ । १६४-६५ तथा गर्गसंहिताके भी वृन्दावन-खण्ड आदिमें भार होता है।

भैं० त० अं० १०— CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा-निगम नेति सिव अंत न पावा । जननी हठि धावा ॥ धरै ताहि ३-सोइ भगति-

विद्धन कच कुंचित गमुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥ पहिराई। भगुलिया तनु पीत जानु पानि विचरनि मोहि भाई॥ मुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत। दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत ॥ ४-सोइ निज चरन सनेहु-

> तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरननि सिरु नावा॥

५-सोइ विवेक-

बार बार कौसल्या बिनय करह कर जोरि। अव जिन कवहूँ ज्यापे प्रभु मोहि माया तोरि॥ 'गीतावली'में विवेकका मार्मिक विवेचन 'सुनहु राम मेरे प्राण पियारे'—इस पद्में द्रष्टव्य है ।

६-सोइ रहनि-

एक बार जननी अन्हवाए । करि सिंगार पलना पौढ़ाए ॥ निजकुल इष्टरेव भगवाना । पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना ॥ करि पूजा नैवेश सदावा।

इस प्रकार शतरूपाके उपर्युक्त छः वरदानोंकी प्राप्ति करानेमें भगवत्तत्त्वका सर्वत्र दर्शन होता है। इसी ब्रह्मके मानवीय-चरित्रोंद्वारा भी भगवत्तत्त्रका प्रकाशन भी दर्शनीय है।

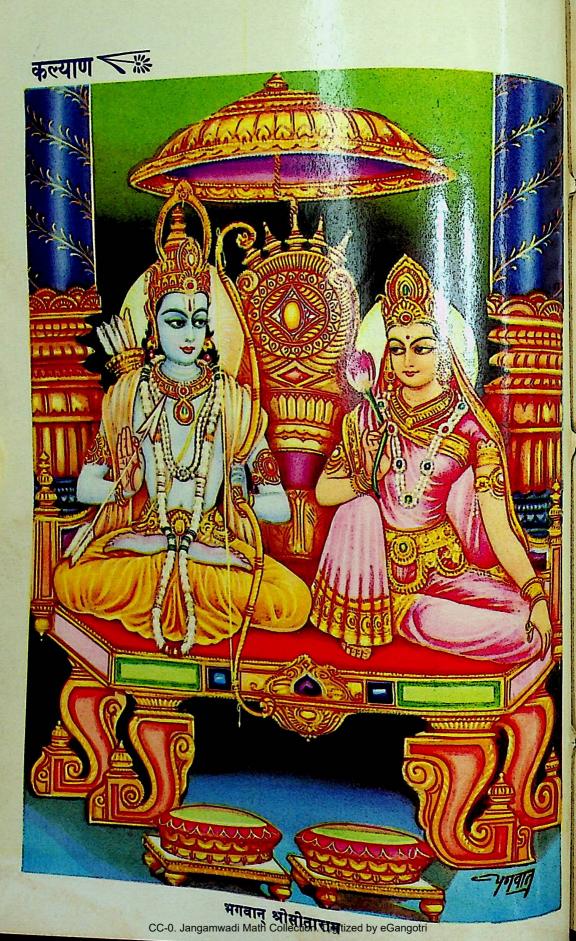
कौसल्याजी अपने परम पुत्र प्रिय रामको उबटन आदि ल्गाकर स्नान कराती हैं । उस निरञ्जनको अञ्चन लगाकर पयपान करातीं और पलनेपर सुला देती हैं। पुक बार जननी अन्ह्वाए । करि सिंगार पलना पौड़ाये ॥

कुळके इष्टदेव श्रीरंगजीकी प्जाके छिये स्नान करती हैं। पूजन करनेके वाद नैतेचका भोग लगा देती हैं। जब रंगजीके मन्दिरमें जाकर कौसल्या देखती हैं तो आश्चर्यचिमत रह जाती हैं—वह छोटा-सा बालक

राम मन्दिरमें जाकर भोग छगे पदार्थोंको खा खा है। कौसल्या सोचती हैं कि पलनासे अपने-आप उत्तक असमर्थ राम मन्दिरमें कैसे आ गया ! वे दौड़ती हुं पलनाके पास जाती हैं और पलनेपर सोये हुए एक देखती हैं। एक ही समयमें दो अवस्थाओंमें, क्षे स्थानोंपर राम हैं!

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति अम मोर कि आन विसेण। जाप्रत-खप्न-सुपुप्तिमें जीव-कोटिका बालक इस प्रकारका चरित्र नहीं कर सकता। क एक कालमें, एक ही स्थितिमें रह सकता है। कां , भगवान् रामने 'तुरीयमेव केवलम्'का अपना ऐक्ष प्रकट किया है। इसे कथमपि मानवीय-चरित्र नहीं का जा सकता । विश्वामित्रके यज्ञ-रक्षणार्थे जाते हुए ताड्का-वय-प्रसङ्गमें--- 'एकहिं बान प्रान हरि हीहा। दीन जानि तेहि निज पंद दीन्हा ॥'में निज-पद प्रान करना भी ऐश्वर्य ही है । तब रिषि निज नाथहिं जियँ चीही। विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्ही ॥ से एवं अहत्या प्रसङ्गरे भी भगवान्का ऐश्वर्य प्रकट है। सी प्रकार जनकजीके द्वारा-- 'ब्रह्म जो निगम नेति की गावा । उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥' यह पूछनेप्र विश्वामित्रजीका स्पष्ट उत्तर है — 'कह मुनि बिहँसि करें नुप नीका । बचन तुम्हार न होड् अलीका ॥' यह भगवत्ता स्पष्ट हो जाती है। महाज्ञानीका प्रस्न औ महामुनिका उत्तर—दोनों सटीक बैठ जाते हैं—भी जो निगम नेति कहि गावा ।'

भगवान् रामके विवाहमें देवताओंके कप्टने आनेपर उनका मानसिक पूजन करना एवं आसन प्रा करना भगवान् रामकी भगवत्ताका प्रकाशन करना है 'सुर लखे राम सुजान प्**जे मानसिक आस**न द्वे।' वालकाण्डके सती-मोह-प्रकरणमें भी भगवत्तक स्पष्ट विवेचन हुआ है । सतीका प्रश्न है मनुष्य नहीं हो सकता'---



ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अमेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥
विष्णु जो सुर हित नर तनु धारी। सो उस बंग्य जथा त्रिपुरारी॥
सोजइ सो कि अग्य इव नारी—यह सतीका तर्क था।
भगवान् शंकरके शास्त्रीय विवेचनोंसे भी सतीका यह
मोह दूर नहीं हो सका। अन्तमें उन्हें ब्रह्मकी परीक्षा
लेनी पड़ी और इस परीक्षामें प्रच्छन भगवत्तत्त्व
प्रस्थक हो गया—

देखे सिव विधि विष्णु अनेका । अमित प्रभाव एक ते एका ॥ बंदत चरन करत प्रभु सेवा । विविध वेष देखे सब देवा॥

अरण्यकाण्डमें सुतीक्ष्ण, रावरी, गीघ आदिके प्रकरणोंमें भी भगवत्ताका प्रचुर-मात्रामें दर्शन होता है। गीघके लिये 'राम कहा तनु राखहु ताता', 'तनु तिन तात जाहु मम धामा', 'सीता हरण तात जिन कहेड पिता सन जाइ' आदि भगवान्के कथनोंमें उनके 'मायामनुष्यं हिरम्' रूपका दर्शन होता है। किष्किन्धामें हनुमान्के मिलनेपर तथा वालिके राब्दोंमें भगवत्ताका पूर्ण विवरण प्रस्तुत हुआ है---

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥ जासु नाम वल संकर कासी। देत सबहिं सम गति अविनासी॥ सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं

इसी प्रकार लंकाकाण्डमें विभीषण, मन्दोदरी, त्रिजटा, कुम्भकरण आदिकं द्वारा मनवत्ताका प्रकाशन तो हुआ ही है, रिक्या-वंधके पश्चान महादिक देवताओं के द्वारा स्तुति तो मगवत्त्त्वके खरूपका और अधिक स्फुट विधान स्थापित करता है। उत्तरकाण्डमें लंकासे आगमनके अवसरपर समस्त अयोध्यावासियोंसे एक साथ ही मिलनेके लिये भगवान्के अमितरूप प्रकटनमें उनकी भगवत्ता स्पष्ट ही दीख पड़ती है। इसी प्रकार राज्यसिहासनारूढ़ होनेके अवसरपर महादिक देवताओं एवं वेदोंद्वारा उनके सगुण ब्रह्म-रूपका प्रतिपादन किया गया है। आगे अपने पुरवासियोंको उपदेश देते समय भी भगवान् रामके द्वारा अपने वास्तविक खरूपका कथन हुआ है।

इस प्रकार मानसमें सर्वत्र ही भगवत्तत्त्वका व्यापक रूप-विधान प्राप्त होता है। भले ही तत्त्वतः न होकर वह प्रसंगतः अधिक है।

मानसमें भगवत्तत्वका व्यापक रूप-विधान

(लेखिका—सुश्री मज्जुश्री, एम्० ए०)

रामचिरतमानस भगवान् श्रीरामकी दिव्य छीछाओंमें अन्तःकरणका अभिनिवेश है । भक्त-शिरोमणि तुछ्सीदासजीने इस प्रन्थमें भगवत्तत्त्वका व्यापक एवं सूक्ष्म रूप-विधान किया है ।

वेद सबके मूलमें एक, अद्वितीय, सर्वन्यापक, समर्थ, परमात्मराक्तिकी सत्ता स्वीकार करते हैं। वह ब्रह्म निराकार होते हुए भी निर्गुण और सगुण दोनों हैं। वह उदारवात्सल्यमय हैं। उसीसे जगत्की उत्पत्ति हुई हैं। वह सबका आधार और अधीश्वर हैं। वह

जीवका शासक, विधाता, त्राता, माता-पिता और सखा है । उसके विराट् खरूपका वर्णने भी वेदोंमें है । वेदोक्त ये सभी विशेषताएँ तुल्रसीके राममें भी हैं।

मानसमें निगम-आगम-पुराणादिमें व्याख्यात भगव-त्रत्यका निदर्शन हुआ है और इसीसे उनका व्यापक रूप-विधान हो सका है। पाञ्चरात्र आगममें भगवान्के लिये 'बाड्गुण्यगुणयोगेन भगवान् परिकीर्तितः' कहा गया है । विष्णुपुराण 'भगवान्' शब्दको महाविभूतिका बोतक मानता है। उसके अनुसार

१-यजु० ४० | ८ | २-ऋ०४ | १९ | ६ | ३-ऋ० ६ | ४९ | १३, १० | ९०, १० | १२९ | ४-ऋ० १० | १२९ | ७, अथर्व० १० | ७, ८ १ | ५-ऋ०४ | १७ | १७, यजु० २३ | ३, ३२ | १०, अथर्व०४ | १६ | २-४ | ६-ॠ०१ | ८९, १० | ९०, अथर्व १० | ७ | ७-अहि० सं०२ | २८ |

भगवान्का अर्थ है—भ—भर्ता, सम्भर्ता; ग—गमयिता, नेता, स्नद्या; भग—समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य, व—वास, समस्त भूतोंका; वासी—समस्त भूतोंमें । तुळसी भी भगवान्में ये समस्त गुण देखते हैं।

आगम-शास्त्रमें ब्रह्मको पाड्गुण्ययुक्त होनेपर भगवान्की संज्ञा दी गयी है, किंतु तुलसी ऐसा कहकर भगवान्को किसी निश्चित परिधिमें नहीं बाँधना चाहते; वे तो भगवान् रामको भी ब्रह्म मानते हैं (२।९३। ७)। आगम-कथित ब्रह्मके समस्त लक्षण तुलसी दासजी राममें ही समाहित करते हैं। आगमप्रन्थोंके अनुसार वे सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्त, सर्वोपाधिविवर्जित, सर्वकारण-कारण हैं"। वे अश्रोत, अचक्षु, अपाणि, अपाद और दूरस्थ होते हुए भी विस्वश्रवा, विस्वचक्षु, विश्वपाणि, विश्वपाद एवं समीपवर्ती हैं"। प्राकृत गुण-स्पर्शसे रहित होनेके कारण वे निर्गुण हैं, र तथा अप्राकृत गुणोंका आश्रय होनेके कारण वे सगुण हैं । उनके छः गुण हैं —ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य और तेज^{ार} । वे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमय एवं खाधीन हैं । ईश्वर ही जगत्का निमित्तोपारान कारण है,⁹⁸ उसका स्रष्टा, पालक और संहारक है 1 साथ ही विश्वरूप भी है । अधर्मियोंके विनाश, पीड़ित प्रजाके उपकार तथा धर्ममर्यादाकी स्थापनाके लिये वह अवतार धारण करता है । रामचिरतमानसमें श्रीराममें ये सभी गुण हैं।

पुराणोंमें प्रतिपादित किया गया है कि ईश्वर एक है, अनिर्वचनीय है। नाम-रूप उसकी उपाधियाँ हैं। विण्णु, शिव, देवी, राम, कृष्ण आदि उसीके विभिन्न नाम हैं, भक्त स्वेच्छानुसार उसका किसी भी रूपमें मजन कर सकता है। परमात्मा सिचदानन्दखरूप हैं, निर्गुणऔर

सगुण हैं। वे अनादि, अनन्त, अश्वर, अकल, अनीह, निर्विकार, निरंजन, निरुपाधि, अगोचर और गुणातीत हैं; ज्ञान, बल, बुद्धि, ऐक्वर्य, दया, कृपा, मक्तवसल्ता आदि दिव्य गुणोंवाले हैं; सर्वशक्तिमान्, सर्वत्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वरूप और सर्वशासक हैं। वे विरोधीगुणोंके आश्रय भी हैं। जगत्के कर्ता, धर्ता और संहर्ता हैं। वे ही ब्रह्मारूपसे स्रष्टा, विष्णुरूपसे पालक और शिवरूपसे संहारक हैं। सृष्टि भगवान्का लीला-विलास है।

पुराणोंने भगवान्के अवतारी खरूपोंके वर्णनके द्वारा निगम और आगमकी अपेक्षा भगवान्के अत्यधिक व्यापक रूप-विधानका भी ऐसा आधान किया है, जो शास्त्रीय मर्यादाके साथ ही अधिकाधिक सर्वजनप्राह्य और छोकप्राह्य हो गया है।

रामचिरतमानसमें भगवत्तत्वके सभी शास्त्र-निर्दिष्टरूप हैं; यथा—भगवान् राम, भगवान् शिव, भगवती सीता, भगवती उमा, गुरुरूपमें भगवत्तत्त्व, माता-पितारूपमें भगवत्तत्त्व, चराचररूपमें भगवत्तत्त्व तथा अखिछ विस्व-कारणकरण भगवत्तत्व । सीय राममय सब जग जानी में भगवत्ताकी व्यापकता सुस्पष्ट है ।

भगवान् राम नुल्सीदासजीके मतमें पाष्ट्रहा, जिसका निर्वचन वेद करते हैं, मुनि ध्यानमें धारण करते हैं, वही भक्त-हितकारी दशरथ-पुत्र कोशल्पित भगवान् हैं (१।११८)।

जिसको वेद नेति-नेति कहकर निरूपित करते हैं, जो खयं आनन्दरूप, उपाधि और उपमारहित है, जिसके अंशसे अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं। जिसके स्मरणमात्रसे अज्ञान मिट जाता है, वही सर्वें। मगवान् राम हैं (१। ५२। ४)। वे प्रभु होकर भी

८-वि॰ पु॰ ६ । ५ । ७१-७६, ७९-८०। ९-आह० सं॰ २ । २८ । १०-वही २ । ५३ । ११-वही ३१। ८-१०, जया॰ सं॰ ४ । ६४-६९ । १२-आह० सं॰ २ । २४, ५५ । १३-वही २ । २४ । १४-वही २ । ५६-६१। १५-जया॰ सं॰ ४ । ७० । १६-अहि॰ सं॰ ८ । २८ । १७-वही ८ । २१, जया॰ सं॰ ४ । ६७ । १८-छ० तं॰ १। ६, जया॰ सं॰ ४ । १२७-१३० । १९-अहि॰ सं॰ ११ । ६-१२ । २०-तुल्सीदर्शनमीमांसा पृष्ठ ३६१ ।

तेवकके वश हैं, भक्तोंके लिये लीलातनु प्रहण करते हैं (१।१४३। ५—०)। यद्यपि वे अकाम हैं, तथापि भक्तके विरह-दुःखसे दुःखित रहते हैं (१।०५।२)। हनुमान्ने जब मगवान् रामसे अंगदकी श्रीति वताई तो वे उस प्रेममें मग्न हो गये (०।१९ख)। अयोध्या लौटनेपर दयासिंधु भगवान् अपने अनेक रूप धाएगकर क्षणभरमें सबसे मिल लिये, यह मम किसीने भी नहीं जाना (०।५।०)। रावण भी राममें भगवताका अनुमान करता है। वह सोचता है कि खर-दूषण मेरे ही समान बलशाली हैं, उन्हें भगवान्के विना कौन मार सकता है (३।२२।२)?

भगवान् शिव-तुलसीदासजीका कथन है कि शंसु सहज ही समर्थ भगवान् हैं (१।६९।३)। भगवान् शिव वेदपार एवं ज्ञानगिरागोतीत हैं (७। १०८। २)। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, विज्ञानघन, ओंकारमूळ, एक, तुरीय, निर्वाणरूप, व्यापक, विमु, ब्रह्म हैं (७ । १०८ । १-२, ५)। वे विख्वातमा (१।६४।३) और सर्वभूताधिवास (७ । १०८ । ७) हैं । वे जगज्जनक हैं, विश्व उनके अंशसे उद्भूत है (१।६४।३), साय ही वे विश्वके संहारक, महाकाल, कालके भी काल हैं (७ । १०७ । २) । वे निर्गुण, निराकार, निर्विकार, कळातीत, विरज, निरंजन, निरुपाधि और निर्विकल्प हैं (वहीं)। वे अच्युत, अकल, अखण्ड, अज, अमित और अविच्छिन हैं (७ | १०८ | ५)। अकाम, अभोगी, अनघ और अनवद्य हैं (१।९०। रे)। वे निर्गुण होते हुए भी गुणनिधान हैं, सर्वसीभाग्यम्ल, कल्याणराशि एवं करुणामय (१।१।सो० ४)। कृपालु, आञ्चतोष, औढरदानी, दीनबंधु और अशरणशरण हैं (४।१। सो० ख)। भाषप्रद, सर्वहितकारी एवं आनन्ददायक हैं (१। ६४ | ३) । अभयकर्ता, जनरंजक और खलताइक

(१।००।४) हैं। वे कामादि, अज्ञान, संशय, पाप एवं त्रितापके निवारक हैं (६।१। हरोक २)। भावगम्य, भाववल्छभ, चतुर्वगदाता और त्रिभुवनगुरु हैं (१।१११।३)। वे संपूर्ण संसारके माता-पिता हैं (१।८१)। सकल चराचर उनके दास या भक्त हैं, अपनी महिमाके कारण वे ब्रह्मा-विष्णुद्वारा वंदनीय हैं (१।१००।४)। भक्तोंके लिये उनका नाम कल्पवृक्ष है (१।१००)। भगवान् शिवकी आराधनाके विना सब व्यर्थ है (१।००।४)। उनकी कृपाके विना संताप-नाश नहीं हो सकता; सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, अभीष्ट फलोंकी प्राप्तिनहीं हो सकती (१।०१।१) तत्त्वतः शिव भी भगवत्त्त्वके मूर्तरूप हैं।

भगवती सीता—भगवती सीता भगवान् राभकी प्रमशक्ति हैं, उनकी प्रिया हैं (१।१८७।३, २।१४०)। राम और सीताका उसी प्रकार अभिन सम्बन्ध है, जैसे शरीरका परछाईँसे, सूर्यका प्रभासे, चन्द्रमाका चन्द्रिकासे, वाणीका अर्थसे तथा जलका लहरसे (२।९७। ३, १।१८)। वे रामकी आदिशक्ति, जगन्मूला हैं (१।१४८।१)। वे विश्वका उद्भव, पालन तथा संहार करनेवाली हैं (१।१ स्लोक ५, २ । १२६ छं०) । वे जगजननी, जगदम्बा हैं (१ । १८।४,१।२४६।१,१।२४७।१,६।६२। ७, ७ । २४ । ५), उनके भृकुटि-विलाससे ही विश्व निर्मित हो जाता है, त्रिदेव-शक्तियाँ उनके अंशमात्रसे उत्पन्न हैं (१।१४८। २-३)। सीता छक्मीकी अवतार भी हैं, साथ ही उनकी जननी और वंदिता भी हैं (१ | २४७ | ३) । पार्वतीकी जननी एवं वन्दनीया भी हैं, साथ ही उनकी स्तुति करनेवाली भी हैं (१।१४८। २,१।२८९।६।१०७ छं०, ७। २४। ५)। इस विरोधामासका समाधान डॉ॰ सियाराम सक्सेना 'प्रवर' ने अपने शोध-प्रवन्ध-'रामचारित-मानसपर आगम-प्रमावग्में इस प्रकार किया है कि परात्पर ब्रह्मकी अजा, अनादि, आद्याशिक भगवती सीतासे विदेशोंकी शिक्तयाँ (उमा, रमा, ब्रह्माणी) उत्पन्न हुई हैं। इस खरूपमें वे लक्ष्मी, पार्वती आदिके लिये वंदनीया हैं। त्रिदेवान्तर्गत विष्णुकी शक्ति लक्ष्मीके रूपमें वे पार्वतीके समकक्ष हैं, किंतु जब हम पार्वतीकी भावना परात्पर-ब्रह्म शिवकी पराशक्तिके रूपमें करते हैं, तब त्रिदेवान्तर्गत विष्णुकी शक्ति लक्ष्मीके लिये पार्वती पूजनीया हैं। जनकपुत्री सीताद्वारा पार्वती-पूजाका यही हेतु है। भगवती सीता साक्षात् भक्तिखरूपा हैं (२।२३९)। मानसमें भी भगवतत्त्वकी शक्ति सीताके रूपमें भी गृहीत है।

भगवती पार्वती-भगवान् शिवकी शक्ति या माया भगवती भवानी हैं (१।८१)। वे अजां, अनादि, अविनाशिनी और शक्तिखरूपा हैं तथा स्वेच्छासे लीला-शरीर धारण करती हैं (१। ९८। २-४)। पार्वतीके रूपमें शरीर धारण करना, उनका अवतार लेना है (१।९४)। वे अन्तर्यामिनी, सर्वज्ञ, स्वतन्त्र और समस्त छोकोंकी खामिनी हैं।(१।७२।८)। वे विश्वका सर्जन, पाछन एवं प्रछय करनेवाछी हैं (१।२३५।४)। वे विश्वमूला, जगपालिका, जगजननी हैं। (१। ४८। २)। भगवती पावतीका आदि-मध्य-अन्त नहीं है, इनके अमित प्रभावको वेद भी नहीं जानते (१।२३५। ३)। भगवती उमा पुरारि-प्रिया, वरदायिनी, चारों फलोंकी दात्री हैं। उनके चरण-कमलोंकी पूजा कर देवता, मनुष्य, मुनिगण सुख प्राप्त करते हैं । (१। २३६। १-२)। भगवती उमा मगवत्तत्त्वकी साक्षात् प्रति-मूर्ति हैं, जो जगद्म्बारूपमें सीताद्वारा भी पूजित हुई हैं।

गुरुक्तपमें भगवत्तस्य—आगम-शास्त्रमें गुरुको नररूपमें भगवान् माना है । तुळसीदासजी भी गुरुके

चरण-कमलोंकी बंदना करते हुए कहते हैं जो कृपासिंधु नररूपमें हरि हैं तथा जिनके बचन महामोहरूपी सघन अंधकारके निवारण-हेतु सूर्यके समान हैं, उन गुरुके चरण-कमलोंकी में बंदना करता हूँ (१।१ सो० ५)। ज्ञान और मोक्षके साधन गुरु ईश्वर हैं बहा, शिवके समान हैं (४।१७, ७।९३।३)। वे ईश्वरसे भी बड़े हैं (२।१२९।८)।गुरु भगवत्तत्त्वका एक लौकिक रूप है। गुरुत्वमें भगवत्तत्त्वकी झलक है।

चराचररूपमें भगवत्तस्य नुलसीदासजी सम्भाजनात्को सीता-राममय जानकर प्रणाम करते हैं—
सीयराममय सब जग जानी। कर उँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(१।८।२) भगवान् व्यापक, विश्वकर हैं (१।१३।२,६।१४)। विश्ववास भगवान् प्रकट होते हैं (१।१४६।४)। तुलसी समस्त चराचरों भगवान्का ही दर्शन करते हैं—मजुज बास सचराचर रूप राम भगवान। (६।१५क) तथा 'जब चेतव जग जीव जत सकल राममय जानि' (१।७ग)। इनके अतिरिक्त 'सातवँ सम मोहि मय जग देखा (३।३६।२), जिज प्रभुमय देखिं जगत (७।११२ख) आदि उक्तियोंसे मलीमाँति स्पष्ट हो जाता है कि तुल्सी चराचररूपमें भगवत्तत्त्वका ही दर्शन करते हैं।

अखिल विश्व-कारण-करण भगवत्तस्व—भगवात् राम विश्वके कारण भी हैं, करण भी हैं (१।२०८)। वे अरूप होकर भी विश्वक्षप (१।१३।२), निराकार होकर भी विश्वक्षप (१।१३।२)। वे व्याप्य और व्यापक दोनों हैं (७।७२।२)। वे अगजगमय एवं सर्वक्षप होते हुए भी सर्वरहित, सर्वभिन्न हैं (१।१८५।४,५।५०।२,६।१११।८)। तात्पर्य यह कि तुल्रसीदासजी ब्रह्मरामके अखिल विश्वके

कारण और करण दोनों रूपोंको भगवत्तत्त्वमय प्रतिपादित करते हैं।

रामचिरतमानसमें भगवत्तत्त्वके इन सभी शास्त्र-निर्दिष्ट रूपोंके अतिरिक्त सगुण भगवान्के दोनों मुख्य गुण, ऐश्वर्य एवं माधुर्यका समायोजन विशेषरूपसे किया गया है।

भगवान् राम परम ऐश्वर्य-सम्पन्न हैं । उनके अवतार ग्रहण करनेका एक बहुत बड़ा प्रयोजन पृथ्वीके भारका अर्थात् संतोंके लिये दु:खदायी राक्षसोंका विनाश करना है (१। १२१) । अतः तुलसीदासजी राक्षके धनुर्धारी रूपकी बन्दना करते हैं—

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंद्उँ सब लायक॥ राजिव नयन भरें भनु सायक।भगत बिपति भंजन सुख दायक॥ (१।१७।५)

श्रीरामका शौर्य शील-संयुक्त है । तुलसीदासजी अपनी मुखर वाणीमें घोषणा करते हैं——

'तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निघान ।'

(१।२९क)

श्रीराम उग्र परशुरामजीके गर्वाले वाक्योंको भी सुनकर आत्म-परिचयमें कहते हैं— 'राम मात्र लघु नाम हमारा। परम्र सहित बड़ नाम तोहारा॥' (१।२८१।३)। श्रीराम सम्पूर्ण सृष्टिको त्रस्त कर देनेवाले महाबली रावणके वधका श्रेय शालीनता-वश भालुओं एवं किपयोंको दे देते हैं— 'तुम्हरे बल मैं रावनु मारयो।' (६।११७।२) इसी प्रकार अयोध्या छौटनेपर अपनी सिक्ताका सम्पूर्ण श्रेय है सम्बन्धिको हे हैं

सफलताका सम्पूर्ण श्रेय वे गुरु वसिष्ठको देते हैं— 'गुरुबिसष्ट कुछ पूज्य हमारे। इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥, (७।७।३)

भगवान् रामका सम्पूर्ण जीवन इस प्रकारके उदाहरणोंसे भरा है। भगवत्तस्वके दूसरे रूप-माधुर्यमें शिक्के साथ ही सौन्दर्य भी है। भगवान् रामका दर्शन

कर सभी भक्त आत्मसुधि खोकर गद्गद हो जाते हैं (४।१।६,५।४४।३,७।३२।२-४)। उनके सौंन्दर्याकर्षणसे वैरागी जनकसहित जनक-पुरवासी (१।२१५।३,१।२२९।१,१। २२०), वनमार्गके प्रामीण नर-नारी (२।१०९। २,२ । ११३ ।३), कोळ-मीळ (२ । १३४ । ४-६) सभी आकर्षित हो उन्हें देखते ही रह जाते हैं । मनुष्य तो क्या विषैले और तामसी प्रवृत्तिके सर्प-विच्छ्र भी उनपर मुग्ध हो जाते हैं (२।२६१। ८) । इसी प्रकार खर-दूषण (३ । १८ । ३-५), रूपंणखा (३ । १६ । ८-१०)-जैसे राक्षस-राक्षसी भी उनके सौन्दर्यपर विमुग्ध हो जाते हैं। क्षत्रियकुलके प्रसिद्ध दोही परशुराम रामका सौन्दर्य अपलक निहारते ही रह जाते हैं (१।२६८।८)। पृष्पवाटिकामें लताकुक्कमें प्रकटित भगवान् रामके सौन्दर्य-दर्शनसे सीताजी (१।२३३। १-२)-सहित उनकी सिखयाँ (१।२३२।१) भी अपने-आपको भूल गयीं। दूलह रामके त्रिभुवनमोहन रूपके दर्शनार्थ सभी देवता आये (१। ३१६। २-८) और अपनी आँखोंके कम होनेपर पछताने लगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् राम शक्ति, शील और सौन्दयके मूर्तिमान् खरूप हैं, ऐश्वययुक्त एवं माधुर्य-सम्पन्न हैं। भक्तप्रवर गोखामी तुल्सीदास-जीने अत्यधिक सूक्ष्म एवं विस्तृत, गहन एवं व्यापक-रूपमें भगवत्तत्वकी विवेचना की है। गोखामी तुल्सी-दासजीने पूर्णब्रह्मके अवतार श्रीरामके चिर-परिचित रूपको नवीन साँचेमें ढालकर प्रतिपादित किया है। श्रीरामके पूरे चरितमें भगवत्तत्वका दर्शन होता है; अतः यह निर्विवाद है कि 'रामचरितमानस'में भगवत्तत्वका व्यापक रूप विधान किया गया है।

शांकर-अद्वेत-वेदान्तमें भगवत्तत्व

(लेखक—श्री र० वेङ्कटरलम्)

भगवान् यद्यपि सभी विवरण-विश्लेषण और विवेचनोंसे परे हैं तथापि शास्त्रों तथा आचार्य शंकरने भी अपने अनेक प्रन्थोंमें भगवत्तत्त्वका परिचय देनेका यह किया है। उनके अनुसार जिसके देख लेनेपर और कुछ देखने योग्य न रह जाय, वह है—परब्रह्म । उसे जान लेनेपर, अन्य कुछ ज्ञातन्य नहीं रह जाता—

यद् स्ट्रानापरं स्रयं यद् भूत्वा न पुनर्भवः । यज्झात्वा नापरं झेयं तद् ब्रह्मत्यवधारयेत् ॥ (आत्मवोध ७७)

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका भी प्रायः यही कथन है— यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ (८। २१)

भगवत्साक्षान्कारके पश्चात् कुछ भी प्राप्य वस्तु नहीं है। शंकराचार्य बताते हैं---

यल्ळाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम्। यज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥ (आत्मवोष ५४)

यहाँ भी पूर्ववत् भगवत्तत्त्व स्पष्टीकृत है । भगवान्से मिळना ही जीवका परम छक्ष्य है । उससे उच्चतर घ्येय असम्भव है । उनसे अधिक सुखदायक कोई नहीं है और उनका ज्ञान ही सर्वोच्च ज्ञान है । भगवान् इस तरह सर्वोत्तम, सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ वने रहते हैं । सर्वोत्तम वस्तु होनेपर भी सर्वसाधारणके नेत्रोंद्वारा दिखायी नहीं देते । ब्रह्मतत्त्व बड़ा ही सूक्ष्म है—

अतीव स्क्ष्मं परमात्मतत्त्वं न स्थूलहष्ट्या प्रतिपत्तुमहैति। समाधिनात्यन्तसुस्क्ष्मवृत्त्या श्वातव्यमायैरितशुस्रवृद्धिभः॥ (विवेकचूडामणि ३६१)

'इस परमात्मतत्त्वको कोई स्थूल दृष्टिद्वारा नहीं प्राप्त कर सकता । अतः अति शुद्ध बुद्धिवालोंको समाधि

अवस्थाद्वारा सूक्ष्मवृत्तिसे उसे जानना पड़ता है। शंकराचार्य यहाँ ब्रह्म-प्राप्तिके लिये समाधि-अवस्था, सूक्ष्म वृत्ति और शुद्रबुद्धि—ये तीन साधन वतलाते हैं। इसके अतिरिक्त इस स्लोकमें आचार्यप्रवर तीन स्थानोंमें अतीव, अत्यन्त, अतिशुद्ध—इन शब्दोंका प्रयोगकर ब्रह्म तत्त्वकी असाधारणताका भी परिचय देते हैं। भगवत्प्राप्तिके लिये सूक्ष्मवृत्ति ही नहीं, परंतु अत्यन्त सुस्क्षमवृत्ति चाहिये। इन शब्दोंके साथ 'आर्य' शब्द भी प्रयुक्त है। उपर्युक्त समाधि-अवस्था परब्रह्मप्राप्तिका एक मार्ग है। एकान्त स्थान में आसीन, जितेन्द्रिय होकर विरक्तावस्थामें बाहरी चिन्ताओंको छोड़कर परब्रह्म मनन करना चाहिये—

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः। भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः॥

(आत्मवोघ ३८)

यहाँ ब्रह्मके तीन छक्षण निर्दिष्ट हैं—एकत्, आत्मत्व और अनन्तत्व । अतः ब्रह्म अद्वितीय, अन्तहीन और आत्मवस्तु है । उसका ध्यान करनेवाला एकान्तमें रागरिहत रहकर, अन्य चिन्ताओंमें न पड़े, एकाप्रबुद्धिरे मनन करे । पहले क्लोकमें कथित समाधिशब्दका विवरण इधर मिळता है । समाधि-अवस्थामें जाननेवाला, जाननेकी वस्तु एवं जाननेकी क्रिया—ये भिन्न नहीं रहते सब एक हो जाते हैं । चित् और आनन्दरूपी परब्रह्मों तीनों अपना अलग-अलग अस्तित्व खो बैठते हैं—

श्चातृश्चानश्चेयमेदः परात्मनि न विद्यते। चिदानन्दैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि॥ (आत्मबोध ४१)

'ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय—इनमें मेद परमात्मावस्थानें विद्यमान नहीं । चित् और आनन्दका सम्मिश्रण होतें कारण सत्तत्त्व वस्तु खयं देदीप्यमान होकर प्रज्विद्धित हो उठती है ।' वहाँ अज्ञान और दुःख पास नहीं आ

मिते। अँघेरा और दु:ख, परब्रह्मके निकट कहीं नहीं दिनते। जो व्यक्ति परमात्मतत्त्वसे परिचित हो गया है, वह परतत्त्वमें ही छीन रहता है। ईश्वर-साक्षात्कार उसे प्राप्त हो गया। यह सदा ईश्वरीयदशामें रहता है। छोटे-पोटे भेदोंके ख्याल उसके मनमें नहीं उठते—

रूपवर्णादिकं सर्व विहाय परमार्थवित्। परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते॥ (आत्मबोध ४०)

यहाँ ब्रह्मवेत्ताका विवरण है। पूर्ण ज्ञानी होनेके कारण चित् और आनन्दका साक्षात् खरूप बनके रहता है। ब्रह्मज्ञानी सदैव आनन्दावस्थामें रहता है। आचार्य सका कारण निम्न श्लोकमें बतलाते हैं—

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः। तसादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत्॥ (अपरोक्षानुभृति ४९)

'समी जीव परब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं । अतः सबको ब्रह्मका ही अंश मानना चाहिये ।' समस्त जीव-जन्तु ब्रह्मक्रह्मप मात्र हैं । इस जगत्को प्राण और शक्ति सब कुछ परब्रह्मसे ही मिला है । ब्रह्मके कारण ही स्पादि प्रकाशमय दीखते हैं—

वद्गासा भास्यतेऽकांदिभास्यैर्यंतु न भास्यते। वेन सर्विमिदं भाति तद् ब्रह्मेत्यवधारयेत्॥ (आत्मबोध ६१)

आचार्यवर परब्रह्मके एक-एक गुणको नेति-नेति कहकार स्पष्ट करते हैं—

अक्षपगुणवर्णाख्यं तद् ब्रह्मेत्यवधारयत्॥ (आत्मवोघ ६०)

मायामय नेत्रसे विश्वके मायिक पदार्थ ही दीखते हैं। पर वे ईश्वर इन आँखोंकी राक्तिके बाहर हैं। उन्हें देखनेके छिये आन्तरिक दृष्टि या आत्मदृष्टि चाहिये। इनिष्णुओंसे भगवान्का साक्षात्कार हो सकता है । साधारण आँखोंसे साधारण वस्तुओंको ही देख पाते हैं । असाधारण वस्तुको देखनेके लिये असाधारण नयन भी चाहिये—

इतरे दृश्यपदार्था लक्ष्यन्तेऽनेन चक्षुषा सर्वे। भगवाननया दृष्ट्या न लक्ष्यते ज्ञानदृग्गस्यः॥ (प्रवोषसुषाकरः १९७)

'श्रीभगवान् ज्ञानके द्वारा दर्शनीय होते हैं— 'ज्ञानगम्यः पुरातनः' (विष्णुसहस्ननामस्तोत्र—)। ब्रह्म एक नित्य वस्तु है, बाकी सब अनित्य हैं। इतना कहकर भी आचार्य हकते नहीं। उनका कथन है—

ब्रह्मेंच नित्यं अन्यत्तु ह्यनित्यमित वेदनम्। सोऽयं नित्यानित्यचस्तुचिवेक इति कथ्यते॥ (सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह १६)

'ब्रह्मज्ञानी भी सचमुच विवेकी माने जाने योग्य है, क्योंकि नित्य-अनित्य वस्तुओंका भेदभाव पहचानना ही सचा ज्ञान है।' यदि कोई ब्रह्म-साक्षात्कार कर लेता है तो उसे और क्या मिछता है!—इस प्रश्नका उत्तर भी हमें जगद्गुरुकी दिव्य वाणीमें मिछता है। 'ब्रह्मका कोई दर्शन कर चुका है तो उसके छिये सारी सृष्टि मनोमोहक उद्यान है। हर ब्रक्ष कल्पबृक्ष है, उसके छिये सभी भाषाएँ और प्रन्थ वेद हैं, सभी जल गङ्गा और सभी भूमि ही शुद्ध काशी है'—

सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्धमा गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः। वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परे ब्रह्मणि॥ (धन्याष्टक १०)

र्इत्वरद्रष्टाको समस्त जगत् पुण्यभूमि नन्दनवन है। बुराई कहीं नजर न आती, हर एक पानीकी बूँद गङ्गाजळ है। सारी भाषाएँ वेदान्तमयी या प्रणव है। श्रीशंकराचार्यको दु:ख है तो एक ही कि कोई भी परतत्त्व विचारमें मान नहीं होता। छोकिक विषयोंमें ही मनुष्य दिन काट देता है। छुटपनमें बालक खेल-क्ट्रमें ही तल्लीन रहता है। युवक हो जानेपर युवतीके पीछे पागल बनकर फिरता है। बूढ़ा होनेपर व्यर्थ चिन्ताओंमें समय बीत जाता है। कोई भी परब्रह्ममें विचार नहीं रखता है— वालस्तावत् क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत् तरुणीरकः। वृद्धस्ताविचन्तासक्तः परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः॥ (मोहमुद्गर, व्लोक)

अतः हर मानवको चाहिये कि जहाँतक हो सके, क ईस्वरी विचारमें मग्न रहनेका प्रयत्न करे।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्यका भगवत्तत्त्व-निरूपण

(लेखक--श्रीवजिकशोरप्रसादजी साही)

आधुनिक रसायन-विज्ञान (Chemistry) मौतिक पदार्थोंका विश्लेषणकर उसकी विवेचना करता है। इसके अनुसार पदार्थके मूल्यून रूपतत्त्व (Element) हैं। इनके मिश्रणसे बने पदार्थ यौगिक (Compound) कहे जाते हैं। न्यायशास्त्र (Logic) के अनुसार किसी पदार्थके प्रमाण-सिद्धस्र रूपका नाम तत्त्व है— 'प्रमाणोपपन्नं स्वरूपं तत्त्वम्' (न्यायसारपदपञ्चिका) वेदोंके अनुसार यथार्थताको 'तत्त्व' कहते हैं— 'तत्त्वतः यथावत् स्थितम्।' अमरकोशमें वेद, तप एवं ब्रह्मको 'तत्त्व' कहा गया है— 'वेदस्तत्त्वं,'तपो ब्रह्म'— (अ० को० ३।३। ११४)।

अखिल विश्वकं मूल तत्त्व श्रीभगवान् हैं । इन्हें जगद्गुरु रामानन्दाचार्यजीने अपने 'श्रीवैष्णवमतान्ज-भास्कर'में ईस्वर, विष्णु, हरि, भगवान्, राम, परमात्मा एवं पुरुषोत्तम आदि नामोंसे सरण किया है । विष्णुपुराणमें 'भगवान्'का लक्षण इस प्रकार किया गया है—

उत्पेति प्रलेयं चैव भक्तानामगति गतिम्। वेक्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥ श्रीनशैक्तिबळैश्वर्यवीर्यते तैर्जांस्यशेषतः । भगवच्छव्दवाच्यानि विना देर्येर्गुणादिभिः॥ (विष्णुपुराण ६। ७, ना० पु० पूर्व० ४६। २१-२२)

इसकी व्याख्या करते हुए वहीं कहा गया है— ब्रांनेन तजुते शास्त्रं सर्वसिद्धान्तगोचरम्। यछेन हरतीदं स गुणेन निष्त्रिलं मुने॥ पेश्वैरंण गुणेनासौ सृजते तचराचरम्। वीरेणे सर्वधर्माणि प्रवर्तयति सर्वशः॥ श्रीक्त्या जगदिदं सर्वमनन्ताण्डं निरन्तरम्। विभर्ति पाति च हरिर्मणिसानुरिवाण्डकम्॥ तेर्जसा निखिलं तत्त्वं ज्ञापयत्यात्मनो मुने॥

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीने अपने 'श्रीवैष्णक् मताब्ज-भास्कर' प्रन्थमें ईश्वरतत्त्व अथवा भगवत्तत्त्वज्ञ निरूपण इस प्रकार किया है-—

विश्वं जातं यतोऽद्धा यद्वित
मिललं लीनमप्यस्ति यस्मिन्

सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकाम
मिवरतं भासयत्येतदेषः।

यद्भीत्या वाति वातोऽविनरिप

सुतलं याति नैवेश्वरो हः

साक्षी कूटस्थ एको वहुशुभ
गुणवानप्ययो विश्वभर्ता॥ ८॥

उन्होंने इस तत्त्वका खरूपदर्शन अनेकों स्थानीर्मे किया है—

तत्राद्येन पदेन रेण भगवान् सीतापतिः प्रोच्यते। श्रीरामो जगतां गुणैकनिलयो हेतुश्च संरक्षकः ॥१३॥

उपर्युक्त निरूपणसे यह स्पष्ट है कि भगवत्त्वसम्बन्धी इतर उपर्युक्त पुराणोक्त निरूपणसे आचार्योक्त प्रतिपार्व अधिकांशरूपमें समान होते हुए भी विशेष एवं विरुधी है। इसकी विवेचना आगे की जायगी। आचार्यवर्णि प्रत्यारमार्गे ही—'सम्यक्शास्त्राज्यसारं गुरुवरववसी

श्रीव्यते श्रूयतां तत्' (५)—इस प्रतिज्ञाश्राच्यारा अपने कथनको गुरुपरम्परा-सम्प्रदायसिद्ध
वृतं शास्त्रसिद्ध वतलाकर प्रमाणित किया है—
शिष्टानुशिष्टोपदिष्टो मन्त्रः सम्प्रदायः । सम्प्रदीयते
गुरुणा शिष्यायेति सम्प्रदायो वेदस्तस्माच्छास्त्रं
ग्रमणम्'। वर्तमान रामानंदाचार्य श्रीमागवताचार्यजीद्वारा
इनकी व्याख्या बड़े आर्षकरूपसे प्रस्तुत हुई है।
तदनुसार जो ज्ञानबाधित नहीं किया जा सके, उस
तिस्चात्मक तथ्यको 'सम्यक्' कहते हैं। कोशानुसार—
'सत्यं तथ्यं न्नृतं सम्यग्नुनि त्रिष्ठु तद्वति'
(अ॰ को॰ १। २। २२)—ये उसके पर्याय हैं।
भाचार्यचरणका उपयुक्त कथन सम्यक् शास्त्रानुसार
है। इसमें प्रमाण है—जन्माद्यस्ययतः—(त्र॰ सू॰
१।१।३)

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिङ्गासस्य, तद् ब्रह्म।

यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्याद्युगागमे।
यस्मिश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥

(गीता १५ । १२)
—्इत्यादि वचन भी प्रमाण हैं । आचायचरणने जो
भावनामोंका निरूपण किया है, वे सभी देश-शास्त्रानुसार
ही हैं । यथा—

१—ईश्वर—
प्रधानार्थस्तु ईश्वरस्वरूपस्य निरूपणम् (वै॰ म॰'४२)
विहाय चान्यत् परमं दयादुं
प्राप्यं समर्थं निरपायमीश्वरम् (१३०)
२—विष्णुः
जातोऽत्र रामः स्वयमेव विष्णुः (७८)

^{अस्त्येवतैद्धिष्}णुकृपोपलभ्ये पतिश्रियोऽनन्तगुणार्णवन्तम् (९२) ३-हरि:--

प्राप्तुं परां सिद्धिमिकंचनो जनो
द्विजादिरिच्छञ्चारणं हरिं व्रजेत्।
परं दयालुं खगुणानपेक्षितं
क्रियाकलापादिकजातिभेदम्॥
पुरुषकारैकनिष्ठास्तु हरिखातन्त्र्यभैक्ष्य च।
कृपाप्रचुरमाचार्यं मत्वोपायमवस्थिताः (१३१)

४-भगवान्-

अणु व्यासौ च भगवानणुषु त्वणुरुचयते । पराकाष्ठा परैर्विश्वर्मतविद्धिर्महात्मभिः ॥१००॥ तत्र भागवता बोध्या ये तु ते भगवत्पराः ॥१४०॥ अर्थात् श्रीभगवान् अणुसे अणु सूक्ष्मताकी सीमा हैं।

५-परमात्मा-

उपाधिनिर्मुक्तमनेकभेदा भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम् ॥६३॥ ६-पुरुषोत्तम-

प्रसन्नलावण्यसुमृन्मुखाम्बुजं
जगच्छरण्यं पुरुषोत्तमं परम्।
सहानुजं दाशरिथं महोत्सवं
स्मरामि रामं सह सीतया सदा (वै०म०५८)
आचार्योक्त उपर्युक्त भगवनाम सतः ही सशब्दार्थसे
भगवत्तस्वका निरूपण कर देते हैं—(१) ईश्वर—
'निरुपाधिकमैश्वर्यमस्यैति ईश्वरः। एष सर्वेश्वरः'
(माण्डू०६) इति श्रुतेः। सर्वशक्तिमत्तया ईश्वरः।

सर्वभृतिनयन्तृत्वात् ईशानः ।

(२) — विष्णुः विष्णुर्विक्रमणात्' (महा०
उद्योग० ७० । १३) इति व्यासोक्तेः, रोदसी
व्याप्य कान्तिरभ्यधिका स्थितास्येति विष्णुः ।

कोनस्यीयार्थं कान्तिरभ्यधिका स्थिता।

व्याप्य मे रोदसी पार्थ कान्तिरम्यधिका स्थिता। क्रमणाद्वाप्यहं पार्थ विष्णुरित्यभिसंक्षितः॥

(महाभा० शा० ३४१ । ४२-४३) । (३) हरि:—सहैतुकं संसारं हरतीति हरिः।'

(४) भगवान् — धर्वर्ययस्य समग्रस्य धर्मस्ये यशस्यै यशस्यै । श्रानेवैद्दान्ययोश्चेव वण्णां भग वश्चीरणा ॥ (वि०६ । ५ । ७४) सो

स्यास्तीति भगवान् । (५) प्रमात्मा— परमश्चासावात्मा चेति परमात्मा कार्यकारण-विलक्षणो नित्यशुद्धमुक्तस्वभावः।(६) पुरुषोत्तम— पुरुषाणामुत्तमः पुरुषोत्तमः । अत्र न निर्धारणे (पाणि- अष्टा॰ सू॰ २ | २ | १०) इति षष्टी समास प्रतिपेधो न भवति। जात्याद्यनपेक्षया समर्थत्वात्। अथवा पञ्चमी समासः, तथा च भगवद्गचनम्

यसात्क्षरमतीतोऽहमक्षराद्ि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ (गीता १५ । १८ वि॰ स॰ शांकरभाष्य १६में शंकराचार्य-का उद्धृत वचन)

अर्थात् भगवान् रुपी पुरुषोंमें या पुरुषोंसे उत्तम हैं। श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें भगवत्तत्त्वको ही प्राप्य कहा गया है एवं उसका इस प्रकार निरूपण किया गया है-प्राप्यः सर्वगुणार्णवो निखिलभूरक्षेकदीक्षो महान् नित्यक्वेतन ईश्वरः सकरुणः सर्वज्ञता भूमिराट । औदार्यादिगुणावलिक्षतमृतं सत्यं च सर्वाश्रयः श्रीरामो हि परात्परः सुमितिभिः सेव्यः सदा सर्वगः॥

कुछ छोग भगवान्को निर्गुण कहते हैं। परंतु श्रीरामानन्दाचार्यजी भगवत्तत्त्वको 'सर्वगुणार्णव' कहते हैं । सभीके मूखतत्त्व भगवान् हैं । यदि भगवत्तत्त्व निर्गुण है तो जगत्में गुण आये ्ाँसे। 'सूछं नास्ति कुतः शाखा ? तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।' अतएव भगवान् सभी गुणोंके मूळ एवं सर्वगुणाणव हैं । भगवान्को सामान्यरूपसे सर्वगुणाण्व कहकर उन्हें पुनः औदार्यादि गुणोंसे युक्त कहकर उनके विशेष गुणोंका ज्ञापन करते हैं । पुनः उन विशेष गुणोंमें भी उनका सर्वोच विशेष गुण 'कारुण्य' वतलाते हैं।

'कारुण्य'का छक्षण प्रशस्तपादभाष्यमें—'स्वार्थ-मनपेक्ष्य परदुःखप्रहाणेच्छा हि कारुण्यम्'—यह बतलाया गया है । भगवान्में यही सर्वोपरि गुण है । वाल्मीकिरामायणमें भगवान् श्रीरामको वार-वार साधु-पदसे सम्बोधित किया गया है--- साधुरदीनः सत्य-वागृजुः॥', 'साधुरद्गेनात्मा महामतिः॥', साधु शब्द

बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं करुणाकी पूर्ण अभिव्यक्ति है—'साध्नोति परकार्यमिति साधुः'—भाषु होइ न कारज हानी' 'पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाव खगराया ॥' तुलसी संत सुअम्ब तह फूछे फले पर हेत । इत ते ये पाहन हने, उत ते वे फ देत ॥' भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें भी कहा गया है—

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति। स्तरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्त्रया॥ दीना चुकस्पी धर्मे इः। (वाल्मी ०२।१।११) यदि भगवान्मेंसे 'कारुण्य'का छोप हो जाय तो सृष्टि-रचनाकी व्याख्या नहीं की जा सकती। स्रि

रचनाके विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्तिकी जाती है कि सृष्टि-रचनामें ईश्वरका कोई भी प्रयोजन नहीं है—

अवाप्तसर्वानन्दस्य रागादिरहितात्मनः। जगदारभमानस्य न विद्यः किं प्रयोजनम्॥ (जयन्तभट्टकृत न्यायमञ्जरी)

वहीं इसके उत्तरमें कहा गया है कि ईश्वर करणांके वश सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त होता है—'करुणया प्रवृति-रीश्वरस्य।' इसके विरुद्धमें पुन: कहा गया कि सृष्टि पूर्व तो सभी क्लेश संस्पर्शरहित थे। फिर करणारे प्रवृत्ति कैसी ?---

सर्गात् पूर्वं हि निःशेषक्लेशसंस्पर्शवर्जिताः। नास्य मुक्ता इवात्मानो भवन्ति करुणस्पदम्। (न्यायमञ्जरी)

इसके उत्तरमें कहा गया है कि जीव अनादि है और अनादिकालसे उसके कर्मोंके संस्कार फलमोगर्व लिये अवरोष रहते हैं। तब जीवोंको नहीं भोगे हुए अपकमौके फलका भोग कराकर उन्हें परमशानिकी प्राप्ति करानेके लिये जगत्की रचना करना भगवान्की कुपा ही है-

अथवा अनुकम्पयैव सर्गसंहारावारमतामी^{9वरः।} नन्वत्र चोदितम् अनुपपन्नं तु अनादित्वरि संसारस्य ग्रुभागुभसंस्कारानुविद्धा एवात्मनस्य श्र CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangoth

क्यं नातुकम्प्याः, अनुपशुक्तफलानां कर्मणां न प्रभयः सर्गमन्तरेण च तत्फळं भोगाय नरकादि-सृष्टिमारभते दयाखुरेव भगवान् । (न्या॰ मं॰) परंतु न्यायदर्शनके इस कथनमें पुनः आपत्तिका अवकाश है कि न्यायदर्शनका अपवर्ग वा मोक्ष दुःखाभाव-गात्र है—'अपवर्गों मोक्षः। स च ससमानाधिकरण-दुःखप्रागभावासमानकाळीनो दुःखभ्वंसः' (त० सं० वैंगिका) इसमें सुखकी अनुभूति नहीं है। ऐसी दु:बाभावकी अनुभूतिमात्र तो सृष्टिके पूर्व प्रख्यावस्थामें भी रहती है । तब सृष्टि करनेमें अनुकम्पा क्या हुई ? श्रीतमानन्दसम्प्रदायका अपवर्ग दु:खाभावमात्र नहीं, प्रत्युत प्रमानन्दकी प्राप्ति और अक्षय सुख-भोगरूप नित्यधाम सानेतकी प्राप्ति एवं भगवान्के साथ आनन्दभोग है— परं पदं सैवमुपेत्य नित्यममानवी ब्रह्म पथेन तेन। सायुज्यकादि प्रतिलभ्य तत्र प्राप्यस्य सन्नन्दति तेन साकम्॥ (श्रीवैष्ण० म० भा० १८५)

अतएव सृष्टिके पूर्व जीवको आनन्दामाव तथा भगवान्ने सृष्टि कर उनके पूर्व कर्मोंके फलोंका भोग कराकर उन्हें परमानन्दलोक साकेतकी प्राप्ति करानेका द्वार बोछ दिया है। यह उनकी परम अनुकम्पा है, ग्ही सिद्ध होता है, जिस प्रकार किसी द्रव्यके तत्त्व-निरूपणमें उसके 'गुण'का भी प्रहण होता है । इतना ही नहीं, प्रत्युत गुणके निरूपणसे ही द्रव्यका निरूपण होता है। वायुमें रूप-गुण नहीं है। फिर भी 'क्रपरहित स्पर्शवान् वायुः' कहकर उसमें नहीं (हनेवाले गुण 'रूप' से ही उसका निरूपण किया जाता है। उसी प्रकार 'भगवत्तत्त्व'के निरूपणमें भगवान्की करणा, वत्सलता, क्षमा, माधुर्य, सौहार्द, सौन्दर्य, सौलम्य, सौरील्य, निखिलजनआह्वादकत्व, प्रकाराकत्व आदि अनन्त गुणोंका भी प्रहण होता है। ये सभी निविष्ठ हेय प्रत्यनीक भगवत् दिव्य गुण भी भगवत्तत्व हैं। इस सम्प्रदायमें भगवत्तत्त्वमें केवल परात्पर ब्रह्म

श्रीरामजीका ही प्रहण नहीं है, प्रत्युत उनके साथ ही उनकी नित्य परात्परा शक्ति श्रीसीताजी भी समान और अनिवार्यक्रपसे गृहीत हैं—'श्रीभगवद्गामचन्द्राभिमतातु-क्रपस्वक्रपविभवेश्वर्यशीलाचनविधकासंख्येयकल्याण-गुणगणां पद्मवनालयां पद्माननां पद्मद्लाय-ताक्षीं नित्यानपायिनीं भगवतीं निरवद्यां श्रीसीतां श्रीरामदिव्यमहिषीमखिलं जगन्मातरमशरण-शरण्यामनन्यशरणः शरणमहं प्रपद्ये॥ (श्रीरामार्चन-पद्धित)

इस सम्प्रदायकी 'श्रीसीतोपनिषद्'में निरूपित भगवत्तत्व-रूपा सीताजी भगवत्तत्त्वरूपमें विधिवत् प्रतिपादित हैं— इसमें न केवल भगवान् एवं उनकी परात्परशक्ति सीता मात्र, प्रत्युत 'भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम पपु एक' के सिद्धान्तानुसार भगवद्भक्त—('मो ते अधिक संत कर लेखा।' 'राम ते अधिक रामके दासा' 'तस्मिंस्तज्जने मेदाभावात् (ना० भ० स्०४१) गुरु 'आचार्य मां विजानीयात् एवं भक्ति (भगवद्येम) भी भगवत्त्त्व ही हैं।

इसी प्रकार इस सम्प्रदायमें भगवत्तत्वसे तात्पर्य— भगवान्के नाम, रूप, छीछा और धाम इन चारोंसे हैं । ये चारों नित्य माने गये हैं तथा यहाँ हरि गुरु संत भी भगवत्तत्वके अन्तर्गत आ जाते हैं । इस सम्प्रदायमें 'पाळनात् पूर्णत्वाच परः श्रीराम उच्यते', एवं 'परो हि भगवान् रामः परे छोके विराजितः',के अनुसार श्रीरामको परब्रह्म ही माना है । विस्तार-भयसे उपर्युक्त श्रीवैष्णवमताब्ज-भास्कर-के रछोकोंमें निरूपित भगवत्तत्वकी विस्तृत व्याख्या नहीं की जा सकी। रछोकोंसे ही उसे समझा जा सकता है।

इस सम्प्रदायमें भगवान्को नित्य शरीरी माना जाता है। इसकी पुष्टि करते हुए वर्तमान् जगद्गुरु रामानन्दाचार्य खामी श्रीमगवदाचार्यजीने अपने अद्वितीय ब्रह्मसूत्र-भाष्य 'वैदिक भाष्यम्'में इस प्रकार छिखा है— 'न हि शरीरित्वमनित्यत्वेन व्याप्तम्। जन्यत्वं हि व्याप्तमित्यत्वेन । न हि ब्रह्मणः शरीरं जन्यं जातं वा अनादिनस्तस्य सर्वमनाद्येव । अजन्मनस्तस्य सर्व-मजन्मैव। सर्वद्रश्टार्थदृणः सर्वश्रोतृणः सर्वशिक्तमेतश्च तस्य शरीरं तद्रिक्तसकलशरीरिवलक्षणमेव । न च शरीरोपपादनमवैदिकमिति वाच्यम्। अतिष्ठन्ती-नामनिवेशतानां कष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् । (ऋ०१।३२।१०)। पाञ्चमौतिकत्वाभावाद्जन्य-त्वाद्दश्यत्वाच्च नैव स्पृशति ब्रह्मशरीरमितित्यत्वा-पति समापतिरिति। (ऋ०१०१।१।२२ वैदिकभाष्य) इस प्रकार श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें भगवान् नित्य शामि रूपमें निरूपित एवं मान्य हैं, जो सर्वविलक्षण हैं। इस सम्प्रदायमें भगवान् रामके समान भगवती सीता भी तत्त्वस्था खीकृत हैं। अतएव जानकी सहस्ननाममें उनके नाम 'तत्त्वरूपिणी, तत्त्वकु राला, तत्त्वात्मा' इत्यादि (श्रीजानकी चरितामृतम्, इलोक ५२) परम निष्ठासे आहत है। इस प्रकार श्रीरामानन्दसम्प्रदायका 'भगवत्त्त्व' क्या अर्थ जल बीचि सम' श्रीसीतारामात्मक 'सीतारामौतन्मक वन्न पूज्यो।' पूर्ण रूपेण प्रस्थिति एवं सुप्रसिद्ध है।

महाप्रभु वल्लभाचार्यका भगवत्तत्त्व-दर्शन

(लेलक-श्रीकृष्णगोपालजी माथुर, साहित्यकार)

पृष्टिमार्गके प्रतिष्टापक श्रीमद्बल्लमाचार्यद्वारा प्रतिपादित
मत— 'गुद्धाद्वैत 'ब्रह्मवाद', या 'अविकृत परिणामवाद'के
नामसे प्रसिद्ध है । आचार्यने नवधा भक्तिको साधन-भक्ति
मानकर मर्यादाभक्तिके रूपमें खीकार किया है और
अशिकृष्णः शरणं मम' मन्त्रको पृष्टिमार्गका 'शरण-मन्त्र'
घोषित किया है । उनके आराध्य श्रीकृष्ण परब्रह्म
परमात्मा हैं । उनकी समस्त लीलाएँ बड़ी मधुर
और आनन्ददायिनी हैं । आपने अष्टछापके महाकि
स्रदासको इन लीलाओंका मेद बताकर भगलीला—
गान करनेका आदेश दिया था । स्रदासजीने अपनी
'स्रसारावली' में कहा है— 'श्रीबल्लमगुरु तन्त्व सुनायौ
लीलामेद बतायो ।'

महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपने प्रमाराध्य श्रीकृष्ण-चन्द्रकी भक्तिके प्रचारद्वारा भगवत्तत्त्वको उजागर किया। इस उद्देश्यसे उन्होंने समस्त भारतकी अनेक यात्राएँ कीं। आपकी पहली यात्रा चैत्र सं० १५४५ में आरम्भ हुई, जिसे आपने सं० १५५४में उज्जैन आकर समाप्त की। इस प्रकार श्रीवल्लभाचार्यजीने देशभरमें भ्रमण कर भगवान् श्रीकृष्णके भक्तितत्त्रको सर्वसाधारणको समझाया और तीसरी यात्रामें सं० १५५० में आप

त्रज्याम पथारे । उस समय वहाँ सिकन्दर छेति अत्याचारोंसे समस्त त्रज उत्पीड़ित हो रहा था। उसने त्रजके प्राचीन देवाळयोंको नष्ट करनेके आदेशके सम्मूर्ति-पूजापर भी कड़ी पावन्दी लगा दी थी। त्रं मन्दिरोंके निर्माणपर भी राजकीय प्रतिवन्ध था, पंत वल्लभाचार्यने इसकी अवहेल्लनाकर श्रीनाथजीके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा प्रचल्ति करते हुए गोवर्धक गिरिपर श्रीनाथजीका नया मन्दिर वि० सं० १५७६ में वैशाखकी अक्षय तृतीयाको बनवानेका उपक्रम किंग और सबको निर्भय होकर भगवान् श्रीनाथजीकी सेंग पूजा करनेके लिये प्रोत्साहित किया।

महाप्रभु वल्लभाचार्यने साधना-पक्षमें आत्मसम्पर्णके ही भक्तिका प्रधान उपादेय माना है। आपके अनुसार हैंस सिचदानन्दघन हैं। उनको प्राप्त करनेके लिये ज्ञान, कर्स योग, भक्ति आदि मार्ग विवेचित हुए हैं। ईश्वरीय आवर्ष स्थूल चेतनाका विषय नहीं है, बल्कि आत्मितिष्ठ अनुस्र है। भौतिक वासनामें लिस मानव निर्गुणकी उपासना कि ही नहीं सकता। श्रीवल्लभके अनुसार श्रीकृष्ण पर्क हैं और यह समस्त सृष्टि उन्हींकी आत्माभिव्यक्ति हैं। श्रीमद्बल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवतके दशम स्थन्य तथा हैं

अन्य स्कन्धोंपर जो टीका लिखी है, वह 'सुवोधिनी' के नामसे प्रसिद्ध है। उसीके ए० १६६ में उपर्युक्त विवेचन हुआ है। श्रीवल्लभाचार्य महान् भक्त होनेके साथ ही दर्शनशास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् थे । वेदार्थकी मीमांसा क्रतेवाले 'ब्रह्मसूत्र' जो श्रीनेद्व्यासकी रचना है, उसपर अनेक ऋषियों और आचार्योंने व्याख्याएँ लिखी हैं। इहीं सूत्रोंपर वल्लभने 'अणुभाष्य' लिखा है। इसमें आपने अन्यान्य वादोंका निराकरण करके वेदसम्मत ब्रह्मबादका वेद्व्यासके आशयानुसार प्रतिपादन किया है। 'तत्त्व-दीपनिवन्य' के ९० वें स्लोकमें भक्तिके विधानकी चर्चा है। आचार्य वल्लभके मतानुसार किसी भी भावसे भगवानकी भक्ति उनके अनुप्रहको प्राप्त करा सकती है और यह अनुप्रह या पुष्टि, अनन्तगुण एवं ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान्की सृष्टि-छीळाके समान ही छीळा है । नवधा भिक्त मर्यादामार्गियोंद्वारा भी सेव्य है, किंतु पृष्टि-मार्गियोंके लिये तो एकमात्र भगवत्सेवाकी ही उपादेयता है।

आचार्य वल्लभके उद्घोधक उपदेश

देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा गाया हुआ भगवदीताशास्त्र ही एकमात्र शास्त्र है। देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्यदेव हैं। उन भगवान् श्रीकृष्णका नाम ही एकमात्र मन्त्र हैं और उन भगवान्की सेवा ही एकमात्र कर्तव्य-कर्म हैं। समस्त लेकिक विषय-अहंता-ममतासे युक्त होकर श्रीकृष्ण जो आनन्दके समुद्र हैं, उनका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णके चरणमें आत्म-निवेदन करनेपर किसी भी भाँतिकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वे सर्वथा अनुग्रह हप हैं, वे लोकिक व्यक्ति की तरह व्यवहार नहीं करेंगे। जिस जीवकी प्रमु श्रीकृष्णकी सेवा और कथामें गाढ़

आसक्ति है, उसका कभी नारा नहीं होता — ऐसा मेरा मत है। श्रीवल्लभाचार्यजीने तन-मन-धन सर्वस्व भगवान्-को समर्पित कर दिया था। उन्होंने अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नायक पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णके महत्त्वको उनके सार-तत्त्वको सर्वोपिर वताते हुए मानवको अनन्य भक्ति-भावसे केवल उन्होंपर सर्वथा निर्भर रहनेका उपदेश दिया था। आचार्यने स्वयं श्रीकृष्णाश्रयपर सभी प्रकारसे निर्भय निर्भर रहनेका भक्तोंके सामने आदर्श उपस्थित किया था। उसीसे आर्त, निःसहाय, दुर्बल-दुःखी, जीवोंको सान्वना, संतोष, निर्भयता और निश्चिन्तता मिली थी और वे सभी परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णकी शरणमें आकर अपना जीवन सफल करने लगे थे।

आचार्य वल्लभने अपने देशब्यापी भ्रमणमें ८४ नयी बैंठकें स्थापित कीं, पर उन्होंने किसी प्राचीन तीर्थधामकी कभी अवमानना नहीं की । परमपावन जगन्नाथपुरीमें एकादशीके ब्रतके दिन किसी भक्तने जब श्रीजगनाथका भात उनके हाथमें एव दिया तो श्रीवल्लभाचार्यने वड़े भक्ति-भावसे उस महाप्रसादको अपने हाथमें प्रहण किया, किंतु व्रत होनेसे उसे खाते कैसे ! परव्रहाखरूप भगवत्-प्रसादका तिरस्कार भी करना उन्हें अभीष्ट न था, अतः वे धैर्य और भक्तिभावके साथ रातभर प्रसादको हाथमें लिये हुए मधुर स्लोकोंसे उसका स्तवन करते रहे। सूर्योदय होनेपर दूसरे दिन दीनोंको भवसागरसे पार उतारनेवाले श्रीकृष्णखरूप भगवान् श्रीजगन्नाथखामीका दर्शन करके उस प्रसादको प्रहण किया। कहना न होगा कि भगवत्तत्त्वको समझने, निभाने और दूसरोंको समझाने तथा प्रेरणा देनेके लिये आचार्य वल्लमकी ऐसी अनोखी भक्तिकी कई त्रातें मार्गदर्शक हैं और सर्वसामान्यको भगवद्विश्वासी बनानेमें वड़ी उपयोगी है।

१-एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव । एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥ २-तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः । आत्मानन्दसमुद्रस्यं कृष्णमेवं विचिन्तयेत् ॥ ३-चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः यदा प्रीतः । भगवानपि पृष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम् ॥ ४-सेवायां कथायां वा यस्यासक्ति दृढा भवेत् । यावजीव तस्य नाशो न क्वापीति मे मतिः ॥

इस प्रकार महाप्रमु वल्छभाचार्य मन, वाणी, कायाको रहे। तत्त्वदर्शा आचार्यने, श्रीकृष्ण ही सर्वशक्तिम् सर्वथा सर्वभावेन श्रीकृष्णको समर्पित करते हुए अपने परमेश्वर आदिदेव पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं—इस भगवत्तक्ते सर्वथा सर्वभावेन श्रीकृष्णको समर्पित करते हुए अपने परमेश्वर आदिदेव पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं—इस भगवत्तक्ते सर्वथा सर्वभावेन श्रीकृष्णको समस्त जीवन का आराध्यकी अष्टयाम सेनाके विविध आयोजन कर प्रभुको सबको समझानेमें ही अपना समस्त जीवन का नृतन विविध माँतिकी भोग-सामग्रीका भोग छगाते दिया था।

भगवत्तत्वकी विभुता

(कविसम्राट् ख॰ श्रीहरिऔषजी)

है रूप उसी विभुका ही, यह जगत् रूप है किसका ? है कीन दूसरा कारण, यह विश्व कार्य है जिसका ? है प्रकृति-नटी लीला तो है कौन स्त्रधर उसका ? अति दिव्य दृष्टिसे देखो भव-नाटक प्रकृति पुरुषका ॥ है दृष्टि जहाँतक जाती, नीलाभ गगन दिखलाता। क्या यह है शीश उसीका, जो व्योमकेश कहलाता ? वह प्रभु अनन्तलोचन है जो हैं भव-ज्योति सहारे। क्या हैं न विपुल तारक ये उन आँखोंके ही तारे ? जितने मयंक नभमें हैं वे उसके मंजुल मुख हैं। जो सरस सुधामय हैं सब जगती-जीवनके सुख हैं॥ चाँदनीका निखर खिलना, दामिनीका दमक उस अखिल-लोक-रञ्जनका है मंद्र मंद् मुसुकाना ॥ उसके गभीरतम रवका स्चक है बनका निस्तन। कोलाहल प्रवल पवनका अथवा समुद्रका अपने कमनीय करोंसे वहु रवि-राशि हैं तम खोते। क्या हैं न हाथ ये विसुके जो ज्योति-बीज हैं बोते ? भव-केन्द्र दृद्य है उसका नभ जीवन-रस उदर दिगन्त, समाई जिसमें विभूतियाँ सारी II हैं विपुछ अस्थिचय उसके गौरवित विश्वके गिरिवर। नसें सरस सरिताएँ तन-छोभ-सददा हैं तख्वर॥ जिसके अवलम्बन द्वारा है प्रगति विश्वमें होती। है वही अगति-गतिका पग, जिसकी रति है अघ खोती॥ है तेज तेज उसका ही, है श्वास समीर कहाता। जीवन है जगका जीवन, है सुधा-पयोधि विधाता॥ हैं रातें हमें दिखातीं, फिर वर वासर है आता। यह है उसकी पळकोंका उठना-गिरना कहळाता॥ जिनसे यहु कलित लिलत हो बनता है विश्व मनोहर। उन सकळ कळाओंका है विभु अति कमनीय कळाधर॥

1

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें उपास्य भगवत्तत्व

(लेखक — पं० श्रीगोविन्ददासजी 'सन्तः धर्मशास्त्री, पुराणतीर्थ)

श्रीहरिप्रियायुघ सुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु भगवान् श्रीनिम्बार्क महामुनीन्द्र स्रविर्मित 'वेदान्तदशक्लोकी'के चौथे और पाँचवें— ज़ दो खोकोंमें भगवत्तत्त्वका खरूप बतलाते हुए यान करते हैं—

स्रभावतोऽपास्तसमस्तद्येषमञ्जेषकल्याणगुणैकराशिम् ।
ब्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥
अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुद्दा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
स्रषीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्रोम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥
(वे० द० ४। ५)

'जो समावसे ही समस्त दोशोंसे मुक्त अर्थात् सात्त्विक, राजस और तामस—इन प्राकृतिक गुणोंसे परे (गुणातीत) हैं और समस्त कल्याणगुणोंको राशि हैं, वासुदेव, संकर्षण, प्रचुम्न और अनिरुद्ध—ये चारों व्यूह जिनके अह हैं और जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं, जो समस्त पापोंके हरण करनेवाले हैं, ऐसे सर्वनियन्ता, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वोपास्य परब्रह्म मगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रका हम ध्यान करते हैं। साथ ही, उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके समान गुण और सरूपवाली एवं उनके वामाङ्गमें प्रसन्नतापूर्वक विराजमान अनन्त सिखयोंद्वारा सदा सेव्यमान मिन्ना-मिन्नास्मिका मगवान्की परमाह्णादिनी चिच्छक्ति तथा निज मक्तोंको मुक्ति-मुक्ति आदि समस्त मनोऽभिलित कामनाओंको प्रदान करनेवाली श्रीवृष्वभानुनन्दिनीका हम सदा-सर्वदा स्मरण करते हैं।

'सो वे सः' इस श्रुतिवाक्यानुसार भगवत्तत्त्व रस-स्रह्म है। रस शब्दसे ही रास शब्द बना है। इसी रस-रासके द्वारा आनन्दकी उपलब्धि होती है । अतः भक्तों-(रास-रसिकजनों-)को परमानन्द प्रदान करनेहेतु वही भगवत्तत्त्व युगळरूपमें परिणत हो गया; यथा—

'तस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपकम् ।' (सम्मोहनतन्त्र)

'येयं राधा यश्च कृष्णो रसान्धि-देंहरचेकः क्रीडनार्थे द्विधाऽभूत्।' (अयर्ववेदीय श्रीराधातापिन्युपनिषद्)

'राधाकृष्णात्मिका नित्यं कृष्णराधात्मिको ध्रुवम्'। (ब्रह्माण्डपुराण)

'हरेरर्द्धतन् राधा राधिकार्द्ध तनुईरिः।' (श्रीनारदपाञ्चरात्र)

आद्याचार्य श्रीनिम्बार्क भगवान्के अन्यतम शिष्य श्रीऔदुम्बराचार्यजीने भी कहा है—

श्रीराधिकाकृष्णयुगं सनातनं नित्येकरूपं विगमादिवर्जितम्। (औदुम्यरसंहिता)

हिन्दी भाषाके एक कविने भी ठीक कहा है

कृष्ण है सो राधिका, राधिका है सो कृष्ण।

न्यारे निमिष न होत है, समुक्षि करहु जनि प्रक्त ॥

संत कबीरदासजीने भी एक दोहेमें श्रीराधाकृष्णकी नित्य-एकताका वर्णन करते हुए बड़े सुन्दर

ढंगसे कहा है— कबिरा धारा अगम की, सद्गुरु दई छखाय। उछट ताहि पढ़िये सदा, स्वामी संग छगाय॥

वे कहते हैं कि हमारे श्रीसद्गुरुदेवने हमें अगम, अळख, अगोचर निरञ्जनकी धाराको छखा दिया अर्थात् जता दिया है। उस 'धारा'को उछटकर पढ़नेसे 'राधा' हो जाता है। उसके खामी श्रीकृष्णको राधाके साथ जोड़कर पढ़िये अर्थात् 'राधाकृष्ण' ऐसा बोछकर भजन-स्मरण कीजिये।

भ० त० अं० ११—

जिस प्रकार जल और उसकी तरङ्ग कभी भिन्न (अलग) नहीं हो सकते, ठीक उसी प्रकार श्रीत्यामात्याम प्रियाप्रियतम युगलिकशोर श्रीवृन्दावन-विहारिणीका विभाग एवं वियोग नहीं हो सकता।

आगे चलकर इसी परम्परामें अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य आदि वाणीकार श्रीश्रीमद्द-देवाचार्यजी महाराज एवं रसिकराजराजेश्वर महावाणी-कार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजने 'श्रीयुगलशतक' तथा 'श्रीमहावाणीजी' नामक अपने वाणीप्रन्थोंमें भी इसी भगवतत्त्वकी रसमयी उपासनाका प्रतिपादन किया है; जैसे—

> प्यारी तन इयाम, स्यामा तन प्यारो , ज्यों दर्पण में नैन, नैन में नैन सिहत दर्पण दिखवारो ।

ये भगवत्तत्व युगल्ल्ल्प इतने और ऐसे ओत-प्रोत हैं कि जो कभी भी एक दूसरेसे पृथक (अल्लग) नहीं हो सकते। जैसे हाथमें दर्पण लेकर कोई व्यक्ति उसमें अपना मुख देखता है तो उसमें अपने नेत्र भी दिखायी देते हैं और उन नेत्रोंमें हाथमें दर्पण लिये हुए वह दृष्टा भी दिखायी देता है, ठीक उसी प्रकार श्रीत्यामसुन्दरके श्रीअङ्गमें श्रीकिशोरीजीकी झल्क बनी रहती है तथा श्रीकिशोरीजीके कमनीय कलेक्समें श्रीत्यामसुन्दरकी छिव समायी हुई रहती है। इस विषयमें यह वाक्य मननीय है कि——

'राधां कृष्णसक्षपां चै कृष्णं राधास्वक्षपिणम्'। तथा—'एक स्वरूप सदा दै नाम' एवं— 'एक प्रान दै गात है, छिन विद्युरे न समात'

(श्रीमहानाणीजी) इस युगळखरूप भगवत्तत्त्वकी उपासनाका सदुपदेश केवळ भगवान् निम्नाक्ते ही नहीं, अपितु अनादि बैदिक सत्सम्प्रदायप्रवर्तक श्रीहंस भगवान्ने भी श्रीसनकादि मुनिजनोंको सदुपदेश किया था, जिसका

उल्लेख करते हुए श्रीसनत्कुमारजीने अपने विष देवर्षि श्रीनारदजीको उपदेश करते हुए सनकुमारि योगरहस्य-(२।११)में कहा है कि—

यथा हि हंसस्य मुखारिवन्दाच्छुतं मया तत्कथितुं रहस्यम्।
गोविन्दमाद्यं शरणं शरण्यं
भजस्य भद्रं यदि चेच्छित्तं त्वम्॥
—और वहीं (२।१९में)भी यह कहा है—
'यथा श्रुतं हंसमुखारिवन्दात्
तथा विधानं कथयामि साम्प्रतम्।'

अर्थात्—(श्रीसनत्कुमारजीने कहा—) हे देवीं! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो श्रीराध-माधवगोत्रिन्द प्रभुकी शरण छो, यह हमने अपने गुरुवे श्रीहंस भगवान्के मुखारत्रिन्दसे सुना है।

इसी परम्परागत भगवत्तत्त्वकी उपासनाको कार्वे इए श्रीनिम्त्रार्क भगवान्ने भी कहा है—

उपासनीयं नितरां जनैः सदा
प्रहाणये ज्ञानतमस्तु वृत्तैः।
सनन्दनायमुनिभिस्तथोक्तं
श्रीनारदायाखिळतत्त्वसाक्षिणे ॥

(वेदान्तद्शकोशी)

'घोर अज्ञानरूप मायाकी निवृत्ति अर्थात् व्रिविध (आच्यात्मिक, आधिमैतिक) तापोंसे मुक्त होनेके लिये भक्तजनोंको इसी युगलता परत्रद्म श्रीराधासर्वेश्वरकी सदा-सर्वदा निरन्तर परम्पाक उपासना करनी चाहिये।

परमपूज्य लोकाचार्य श्रीसनन्दनादि मुनिवर्गि समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता देवर्षि श्रीनारदजी महाराजी इसी उपासनाका उपदेश दिया था । अतः हैं परम्परामें—

राधया सहितो देवो माधवो वैष्णवोत्तीः। अर्च्यो वन्यरच ध्येयरच श्रीनिम्बार्कपदार्विः। उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार भगवत्तत्त्वकी युगल उपासनाका ही विधान है ।

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यजीकं मतमें ब्रह्म, जीव और जगत्—ये तीनों तत्त्व यथार्थ (सत्य) हैं। ब्रह्मे जीव और जगत्का भेद भी है और अभेद भी। जीव और जगत्की खतन्त्र स्थिति और प्रवृत्ति नहीं है। ये सदा—सर्वदा भगवदधीन हैं। जीव और जगत् ब्रह्मात्मक होनेसे तथा इनकी खतन्त्र सत्ता न होनेसे ये ब्रह्मसे अभिन्न हैं और नामरूपादिसे भिन्न भी हैं। भेराभेद, भिन्नाभिन और द्वैताद्वेत ये सत्र पर्यायवाची शब्द हैं। जड़-चेतनात्मक समस्त विश्व ब्रह्मात्मक अतएव अपने उपास्य-(आराध्य-) का अंश एवं अङ्ग है। अतः किसीका भी अपमान न किया जाय, किसीसे भी विद्वेष करना अपने उपास्यसे ही विद्वेष करना मानना चाहिये। विश्वके कण-कणमें अनुराग एवं प्रेम होनेपर ही विश्वम्भर प्रमु संतुष्ट होते हैं; क्योंकि वे अणु-अणुमें व्याप्त हैं। रजका एक कण भी ऐसा नहीं मिल सकता कि जहाँपर अपने आराध्य प्रमु विराजमान न हों। प्रमु सर्वत्र एवं सदा विद्यमान हैं। ऐसे भगवान् सर्वतन्त्रखतन्त्र एवं सर्वोपिर होनेसे सर्वोपास्य हैं।

---÷∋@e÷---

श्रीचैतन्य-सम्प्रदायमें भगवत्तत्व

(लेखक—आचार्य डॉ॰ श्रीग्रुकरलजी उपाध्याय, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, साहित्याचार्यः शिक्षा-शास्त्री, तीर्थद्वय, रलद्वय)

चित्-अचित् समस्त जगत्के मूळकारण, सवके एकमात्र आश्रयतत्त्वको शाखोंमें 'अद्वय या अमेद ज्ञान' कहा गया है।' जीव और जगत्का परब्रह्मसे भेद और अमेद दोनों ही सत्य हैं; क्योंकि जीव और जगत् मगवान्की शक्तिसे ही उत्पन्न होते हैं। इसळिये मूळतत्त्व निर्विशेष नहीं; सविशेष है।' 'अद्वयज्ञान' रूप वस्तुका पृणतम दर्शन ही जीवोंका सर्वोत्कृष्ट प्राप्य तत्त्व है। अधिकार-भेदसे प्रत्येक साधक एक ही 'अद्वयज्ञान' तत्त्वका अपने-अपने अधिकारके अनुसार एक-दूसरेसे मित्र रूपमें दर्शन करता है। ज्ञानाधिकारी उसे ब्रह्मके क्यमें, योगाधिकारी परमात्माके रूपमें तथा भक्तिका

अनिकारी भगवान्के रूपमें दर्शन करता है। इस प्रकार शक्तिकी न्यूनाधिक अभिन्यक्तिके कारण परतस्व विविध रूपसे प्रतीत होता है---न्नह्म, परमात्मा एवं भगवान्।

ब्रह्म—यह अद्रयज्ञानतत्त्रकी अपूर्ण एवं आंशिक प्रतीति है, इससे वस्तुके पूर्णतम खरूपकी अभिव्यक्ति नहीं होती। 'ब्रह्म' शब्दसे केवल नाम, रूप, गुण और क्रियादिसे रहित एक निर्विशेष भाव अथवा गुणका बोध होता है, जैसे चर्म-चक्षुओंसे सूर्य निर्विशेष ज्योति:- खरूप दीख पड़ते हैं। ' भक्ति-चक्षु प्राप्त होनेपर निर्विशेष ब्रह्म-ज्योतिको भेदकर जीव उसके भीतर ज्योतिके आधार अखिल रसामृत मूर्ति भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करता

रे—बद्ग्ति तत्तस्वविदस्तस्त्रं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दते ॥ (श्रीमद्भा०१।२।११)

२—चैतन्य-चन्द्रोदयनाटक ६ । ३६ २—भगवान् परमात्मेति प्रोच्यतेऽष्टाङ्गयोगिभिः । ब्रह्मेत्युपनिषन्निष्ठैर्ज्ञानं च ज्ञानयोगिभिः ॥

[ि]ल्धुभागवतामृत पृ० १५८ पर उद्धृत स्कन्दपुराणका वचन.)
अन्हा निर्धर्मकं वस्तु निर्विशेषममूर्तिकम् । इति सूर्योपमस्यास्य कथ्यते तत्प्रभोपमम् ॥ (लघुभाग० १।९९)

है। 'ब्रह्म' खयं कोई वस्तु नहीं है, वह भगवत्तत्त्वका गुण है और गुणकी स्रतन्त्र सत्ता नहीं होती, वह गुणोंका आश्रय करके रहता है । परतत्त्वको 'ब्रह्म' कहनेसे एक आंशिक प्रतीतिगत व्यतिरेक सत्ताकी अनुसूति होती है, परंतु वह परतत्त्व नहीं है।

परमात्मा—कुछ दार्शनिकोंने थोड़ी दूर आगे बढ़कर शक्तियुक्त परमात्म-तत्त्वको स्त्रीकार किया है। सशक्तिक तत्त्ववादी परमात्माको माया-शक्तियुत स्वीकार करते हैं । सांख्य और पातञ्जलयोगियों में यह विचार अत्यन्त स्पष्ट है। इसीलिये गीतामें कोरे ज्ञानियोंकी अपेक्षा योगियोंकी प्रधानता खीकार की गयी है। जिस प्रकार अनन्त स्फटिक खण्डोंपर एक ही सूर्य प्रतिबिम्बत होकर पृथक् पृथक् प्रकाशित होता है, उसी प्रकार अद्वयज्ञानतत्त्व भगवान् श्रीकृष्णका अनन्त संख्यक व्यष्टि जीवोंमें प्रतिफलित होकर अन्तर्यामी परमात्माके रूपमें प्रकाशित होता है, जिसे योगी प्यानद्वारा देखनेका प्रयत्न करते हैं । फलतः ब्रह्मतत्त्वसे प्रमात्मतत्त्वकी श्रेष्ठता स्रतः सिद्ध है, किंतु जगत्की सृष्टि होनेके पश्चात् भगवान्का जो अंश मायाशक्तिके अधीश्वररूपसे जगत्में प्रवेशकर जगत्के नियामकरूपमें स्थित है, वही स्वतः जगदीश्वर

या विश्वव्यापी पुरुष है; निष्कर्षतः इस प्रमातमा प्रमित्य भगवत्तत्त्वकी श्रेष्ठता खतः सिद्ध है।

भगवान् सर्वशक्तिमान् परतत्त्वको कहा जाता है। फलतः जिसके भीतर राक्तिका पूर्ण विकास होता है, उसका न्यूनतम विकासवाले प्राक्ष अधिक होना खाभाविक है । श्रीमद्भागवतके १ । २। ११ वाले पद्यमें तत्त्व वस्तुको अन्तमें भगवान् ही का गया है। भगवान् व्रजेश्वर श्रीकृष्णका ही अपर पर्यायहै। नवजलधरकान्ति सचिदानन्दविप्रह श्रीकृष्ण ही भागा शब्दके वाच्य हैं। वे नित्य सगुणखरूप हैं। वेस कारणकारण, युगपद् विरुद्धधर्माश्रय, अवतारी त्य भगवतत्त्वके पूर्णतम प्रकाश हैं। औपनिषद् ब्रह्म श्रीकृष्के चिद्विप्रहंकी प्रभामात्र हैं, योगियोंके ध्येय प्रमाल श्रीकृष्णके ही अंश हैं। इस प्रकार ब्रह्म तथा प्रमास उनकी ही खण्ड तथा आंशिक प्रतीतियाँ हैं। भगवा ही सर्वहितोपदेष्टा, सर्वदु:खहर्ता एवं सर्वाधिक गुणशार्व हैं । भगवान् और उनका श्रीविप्रह दोनों है सिचदानन्दघन हैं । उनमें देह और देहीका मेर बी है, फिर भी 'राहोः शिरः'के सदश औपचारिक प्रके होता है । वे ही विभिन्न अवतार धारण करके जा हित और भक्तोंके चित्ताकर्पणके लिये विविध बीबां कारते हैं । वे सर्वशक्तिसम्पन्न हैं । उनकी अर्विन

१ (क) तद् ब्रह्मकृष्णयोरैक्यात् किरणार्कोपमाजुषोः । ब्रह्मण्येव लयं यान्ति प्रायेण रिपवो हरेः ॥ (भ० रसा० सिन्धु, पूर्व २ । ८५

⁽ ख)—ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम् (गीता १४ । २७)

२ (क) — अन्तर्यामित्वमयमायाशक्तिप्रचुरचिच्छक्त्यंश्चविशिष्टं परमात्मेति । (भगवन् संदर्भ) (स) तुल्नीय गीता ९ । ४, १३ । २ का रामानुनभाष्य तथा महाभारत वनपर्व ६ । ४६ ।

३—तपित्वभ्योऽधिको योगी ज्ञानिम्योऽपि मतोऽधिकः । (गीता ६ । ४६)

४-तिमममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि घिष्ठितमात्मक लियतानाम्। प्रतिहृशामित्र नैक धार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूत्मेदमी (श्रीमद्भाः १।९।भ ५-श्रीभगवत एव सर्वहितोपदेष्ट्रत्वात्, सर्वृदुःखह्रस्वात्, परमात्मरूपत्वात् सर्वोधिकगुणशालित्वात् परमप्रेमवे त्वमिति । (जीवगोस्तामी तत्त्वसंदर्भं, पृष्ठ ३३)

६-सिबदानन्दसान्द्रताद् इयोरेवाविशेषतः । औपचारिक एवात्र मेदोऽयं देहदेहिनोः ॥ (लघुभागविष्कि एवात्र मेदोऽयं देहदेहिनोः ॥ (लघुभागविष्कि ७-एवम्भ्तोऽपि मायया कृपया जगिदताय सर्वस्थापि स्वात्मानं प्रति चित्ताकर्पणाय देहीव क्रीडित । (अगविस्

शांशिक अन्तरङ्गरूपमें चिच्छक्ति, वहिरङ्खपमें मायाराक्ति और तटस्थरूपमें जीवराक्ति है । चिच्छक्तिके संधिनी, संवित् और ह्लादिनी-ये तीन प्रकार हैं। सर्वराक्तिवरीयसी श्रीराधा, श्रीकृष्णकी आह्नादिनी राक्ति हैं। बस्तुतः राधा-कृष्ण एक होते हुए भी रसाखादनके लिये दो हैं, अतः दोनोंमें खरूपगत भिन्नता होते हुए भी अभिनता है। गौड़ीय वैष्णवोंके प्रधान उपास्य यही हैं। उनके सम्प्रदायमें भगवत्तत्त्वका विवेचित रूप यही है। इस प्रकार एक अद्रयज्ञानतत्त्वके अन्तर्गत ही भगवान् परतत्त्व हैं । ब्रह्म उनका गुण है, परमात्मा उनका अंश है । अचिन्यशक्तिसम्पन (श्रीकृष्ण) ही उस परतत्त्वकी पूर्ण प्रतीति हैं। सिंदानन्दघन-विग्रह श्रीकृष्ण ब्रह्म और परमात्माके आश्रय हैं अथवा ब्रह्म और परमात्मा उसी विशेष्यके दो विशेषण हैं । श्रीमद्भागवतके — 'कृष्णस्तु भगवान् खयम्' इस परिभाषारूप प्रतिज्ञावाक्यके द्वारा श्रीकृष्णको खतन्त्र बतलाकर उन्हें ही मुख्यतम प्रतिपाद्यके रूपमें निश्चित किया गया है। भागवतमें अनेक स्थानोंपर इस तथ्यका उल्लेख हुआ है। यह भी विचारणीय है कि शास्त्रोंमें बहुधा 'परब्रहा', 'पूर्णब्रहा' और 'परमात्मा' शब्दोंके व्यवहार देखे जाते हैं, किंतु 'परम भगवान्' राब्दका व्यवहार कहीं भी नहीं देखा जाता। भागवतमें 'पूर्णब्रह्म' का प्रयोग सविशेष तत्त्वके खिये ही किया गया है और गीतामें भी इस प्रकारके प्रयोग मिलते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण अखिल्रससमुद्र तथा माधुर्यकी १-उपास्येर मध्ये कौन उपास्य प्रधान । श्रेष्ठ चरमतम सीमाके प्रीतिपूर्ण आकर्षण हैं । अन्य देवता, विविध अवतार एवं नारायणसे भी अधिक चार गुण श्रीकृष्णमें नित्य वर्तमान हैं—(१) सर्वछोकचमत्कारिणी छीछा, (२) अतुछनीय प्रेममाधुरी, (३) तीनों छोकों-को आकर्षित करनेवाछी मुरछीकी तान, (१) चराचर विश्वको चिकत और मुग्ध कर देनेवाछी अतुछनीय रूपश्री। उनकी छीछा नित्य है, जो दो प्रकारकी है—(१) प्रकट और (२) अप्रकट । भगवान्की छीछा गङ्गाके अखण्ड प्रवाह अथवा ज्योतिश्वक्रके किसी-न-किसी ब्रह्माण्डमें अनवरत चळा करती हैं । छोक-छोचनके गोचर न होना ही उनकी अप्रकटता है।

वस्तुतः ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्में वस्तुभेद नहीं है, जो जिस रूपको जितनी दूरतर्क देख सकते हैं, वे उसीको देखकर सर्वोत्तम बतलाते हैं। भागवतमें दृष्टिमेदका एक और हेतु बताया है, जिसे श्रीरूप-गोखामीने भी 'ल्रघुभागवतामृतम्'में उद्गृत किया है— यथेन्द्रियः पृथग्द्वारेरथों बहुगुणाश्रयः। एको नानेयते तद्वद् भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः॥ (श्रीमद्रा० ३।३२।३३)

—इस विवेचनको इस प्रकार वर्गीकृत किया जा स्कता है—

१ – त्रहा परमात्मा और भगवान् एक ही अद्भय-ज्ञानतत्त्व (श्रीकृष्ण)की विभिन्न प्रतीतियाँ हैं।

२—जीव अपने ज्ञानाधिकारमें श्रीकृष्णकी अङ्ग-च्छटाको निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें देखता है। यह परतत्त्व-द्शनकी प्रथम प्रतीति है।

उपास्य युगल राधाकृष्ण नाम ॥ (चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला)

(श्रीमद्भा० १०। १४। ३२) (गीता १०। १२)

२-यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णे ब्रह्म सनातनम्। ३-भागवत १० । १४ । ५४, ४-परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

५-भक्तिरसामृतसिन्धु, द० १ । ३३ । ३५

६-प्रकटापकटा चेति लीला सेयं द्विधीच्यते।

७-चेतन्यचरितामृत, मध्यलीला । ८-ख्रुभागवतामृत, पृष्ठ २३०।

(लघुभागवतामृत-गृष्ठ २२९)

३-जीव-योगाधिकारमें श्रीकृष्णके आंशिक खरूपको अन्तर्यामी परमात्माके रूपमें देखता है, यह द्वितीय प्रतीति है।

हिश्क ४—जीव भक्ति-अधिकारमें सर्वगुणाधार निक्कि , यह ऐश्वर्य और माधुर्यके आश्रय परब्रह्म श्रीकृष्णका दर्कि करता है। यही जीवोंका पूर्ण और चरम-दर्शन है।

सनातनधर्ममें भगवत्तत्त्वकी व्यापकता

(लेखक—डॉ॰ श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰, साहित्यायुर्वेदरल, विद्याभास्त्रर, डी॰ एस्-सी॰)

'सनातनधर्ममें भगवत्तत्त्वकी व्यापकता के विवेचनके पूर्व सनातनधर्मका परिचय आवश्यक है ।

सनातनधर्म दो शब्दोंके योगसे वना है—सनातन और धर्म । इन दोनों खण्डोंका क्रमशः अर्थ है अनादि एवं धर्मशास्त्र-सम्मत सर्वमान्य आचार। भगवान् मतुने (मनुस्पृति २ । १२ में) धर्मका खरूप इस प्रकार प्रतिपादित किया है—

वेदः स्मृतिः सदाचारः खस्य च प्रियमात्मनः। एतचतुर्विधं प्राद्यः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

अर्थात्— 'वेद और धर्मशास्त्रमें जिन-जिन आचार-विचारोंके पालन अथवा त्यागकी व्यवस्था दी गयी हो तथा अपनी आत्मा जिनके पालनमें आत्यन्तिक कल्याणका अनुभव करती हो वही वास्तविक धर्म है।' इस धर्म-शास्त्रीय व्यवस्थाका यथावत् आकलन, प्रतिपादन जिस प्राणिमात्रके उपकारक मार्गमें हुआ है, वही सनातन-धर्म है। यह सनातनधर्म वेद मगवान्की ही माँति अपौरुषेय एवं अनादि है। वेद-(अथर्व० १०।८। २३) में इसके सम्बन्धमें इस प्रकार उल्लेख उपलब्ध होता है—

सनातनमेनमाहुरुत आद्यः स्यात्पुनर्भवः। अहोरात्रे विवर्तेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥

अर्थात्.—'जिस प्रकार एक ही अविच्छिन्नकाल सूर्यादि प्रहोंकी गति-विगतिक कमसे दिनसे रात और रातसे दिनके रूपमें सतत नवल प्रतिमासित होता है,

उसी प्रकार एक ही सनातनधर्म सृष्टि, उत्पत्ति के प्रलयके कारण सतत अभिनवरूपमें प्रकट तथा प्रतिमासि होता है। वेदोक्त इस सनातनधर्मके सम्बन्धमें स्वप्रम जिज्ञासा महाराज युधिष्ठिरके कथनमें उपलब्ध होती है जो पुराणोंकी बहुमूल्य थातीके रूपमें श्रीमद्गामलें इस प्रकार निबद्ध है। महाराज युधिष्ठिरने देवर्षि नारहे प्रकार किया—

भगवञ्ज्ञोतुमिच्छामि चृणां धर्म सनातनम्। वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान् विन्दते परम्॥ (श्रीमद्भा० ७ । ११ । २)

अर्थात् देवर्षे ! मैं वर्ण, आश्रम और आचार युक्त मनुष्योंके अभिभत सनातनधर्मको सुनना चहा हूँ, जिसका पालन करनेसे मानव परमात्माको प्राप्त क लेता है।

देवर्षि नारदने महाराज युधिष्ठिरको उत्तर दिग-'वक्ष्ये सनातनं धर्मे नारायणमुखाच्छुतम्। (श्रीमद्रा०७। ११।५)

अर्थात् — 'हे राजन् ! मैं तुम्हारे सामने भाषा नारायणके मुखसे सुने हुए सनातनधर्मका करता हूँ।'

देवर्षि नारदने इस प्रकार कहकर न केवर हैं आदि पुरुषसे सम्युक्तकर आदिधर्मके पदपर आर्द्ध हैं दिया है, अपितु सर्वगुणोंके आश्रयके मुखसे इसे प्रकृष्ट कराकर इसे अन्याहतरूपमें सर्वगुणालय प्रेय और क्रेक साधक भी प्रतिपादित कर दिया है।

पापान्निवारयति पाति च सत्सखेव स्रोऽयं प्रसीदतु सनातनधर्मदेवः॥

भावयह कि यह सनातनधर्म अनादि, अनन्त, प्राणि-मात्रका कल्याण करनेवाला, मानवको पापकमसे विरत कर श्रेयमार्गकी ओर ले जानेवाला, ऐसा अविग्रही देव है जो भागवतोक्त अविज्ञातनामक बन्धुकी भाँति सतत हमारे साथ रहकर हमारा हितसाधन किया करता है। आदि-देव भगवान् नारायणके उत्तमाङ्गसे निःसृत होनेके कारण यह देवरूप तो है ही, भगवत्तत्त्वका ख्यापक और विस्तारक भी निसर्गतः ही है।

इस सनातनधर्ममें भगवत्तत्त्वका निरूपण, प्रतिपादन जिस गरिमा, महत्ता और व्यापकताके साथ हुआ है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

सनातनधर्म एक, अद्वितीय, त्रिकालाबाधित परमेश्वर-का उपासक है और अपने उस परमेश्वरको सर्वशक्तिमान् सर्वगुणसम्पन्न होनेके कारण विभिन्न नाम और रूपों-द्वारा सम्बोधित, पूजित कर आत्मतोषका अनुभव करता है। सनातनधर्म मानता है कि-—'सर्व विष्णुमयं जगत्' और इसीलिये श्रीमद्भागवतके—

खं वायुमिंन सिललं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् । सिरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यितंच भूतं प्रणमेदनन्यः॥

इस कथनको समाहत करते हुए प्राणिमात्रको आत्मवत् सर्वभूतेषु'की भावनासे निहार गोस्वामी वुष्सीदासजीके स्वरमें स्वर मिलाकर कह उठता है कि—

सीयराममय सब जग जानी। करडँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
सनातनधर्म परमेश्वर अथवा भगवान्के साकार और
निराकार दोनों रूपोंको मानता है; क्योंकि उसे अपने
अधिष्ठान वेदसे उस भगवान्के दोनों रूपोंका प्रतिपादन
स रूपमें प्राप्त होता है।

द्वै वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त चैवामूर्तं च (अथर्व०) अर्थात्—'ब्रह्मके दोनों ही रूप हैं—साकार भी और निराकार भी।'

वेदादि शास्त्रोंमें जहाँ भगवान्को निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, निर्लेप, निर्विकार आदि संज्ञाओंसे अमिहित किया गया है, वहाँ एकमात्र उद्देश्य उस प्रमुकी ब्रह्म-दशाको अभिन्यक्त करना है । जहाँ उसे सगुण, साकार, सर्वशक्ति-सम्पन्न आदि नामोंसे सम्बोधित किया है, वहाँ उसकी ईश्वरदशासे परिचित कराना ही उदस्य है। जहाँ उसका वर्णन सृष्टिकर्ता, चतुरानन, हंसवाहन आदि नामोंसे हुआ है, वहाँ उसकी रजोगुणमयी ब्रह्मदशाका दिग्दर्शन कराना अभिग्रेत है। जहाँ चराचर प्रतिपालक, लक्ष्मीपति, रमारमण, वैकुण्ठाधिपति आदिद्वारा उसका ख्यापन हुआ है, वहाँ उस भगवान्की सत्त्वगुणयुक्त 'विष्णुदशा'का दिग्दर्शन कराया गया है तथा जहाँ प्रलयंकर, भूतनाथ आदि नामोंसे वर्णित किया गया है, वहाँ उस भगवान्की तमोगुणप्रधान रुद्रदशाको प्रकट करना है। भाव यह है कि यद्यपि भगवान् एक हैं और वे ही सर्वोच सत्ताके रूपमें इस विश्वकी सारी गतिविधिका संचालन करते हैं तथापि जब वे मात्र योगिजन-ध्यानगम्य रहते हैं तन्न ब्रह्म, जब अखिल विस्वपर शासन करते हैं तब ईश्वर, जब सृष्टि-कममें प्रवृत्त होते हैं तव ब्रह्मा, पालन-रक्षणकर्ममें प्रवृत्त होनेपर विष्यु और विनाशकर्ममें प्रवृत्त होनेपर रुद्र कहलाते हैं । इसी स्थितिको दृष्टिगत रख कैवल्यो-पनिषद्में कहा गया है-

'स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः ।'
अर्थात्—'वे ही एकमेव प्रमातमा ब्रह्मा, विष्णु
और रुद्र हैं।'

सनातनधर्म अणु-अणुमें उसी भगवान्को समाया हुआ देखता है और सारे विश्वको उसी प्रभुमें समाविष्ट पाता है और कह उठता है—'अणोरणीयान् महतो महीयान्' अर्थात् वे प्रमु इतने महान् हैं कि यह चराचरात्मक अखिल ब्रह्माण्ड उन्हीं भगवान् में समाया हुआ है और इतना सूक्ष्म है कि एक-एक अणुमें वे समाये हुए हैं। वे कितने सूक्ष्म हैं—इसका अकल्पित आमास संत कवीर इन शब्दोंमें कराते हैं—'पुहुप बास ते पातरो'। पुष्पकी गन्ध कितनी सूक्ष्म होती है ! उसका परिमाण क्या आजतक नापा जा सका है ! अपने महत्त्वका दिग्दर्शन कराते हुए भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने श्रीमुखसे कहा है कि मुझमें ही यह सारा विश्व सूत्रमें मिणयोंकी माँति पिरोया हुआ है— मिथ सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मिणगणा इव।

(७।७)
सनातनधर्म व्यापक दृष्टिकोण रखनेके कारण
देवताओंको भी भगवद्रूपमें ही मान्य करता है। उसका
विश्वास है कि भगवान्की अनन्त शक्तियाँ ब्रह्माण्डमें अनेकानेक कार्य सम्पादित करती हुई मानवका आत्यन्तिक
कल्याण करनेमें संख्यन रहता हैं। पृथ्वी, आकाश, प्रह,
नक्षत्रादि—समीमें वे एक ही परमात्मा व्याप्त हैं। इसी
मान्यताके आधारपर पृथ्वी, जल, वायु, अनि, सूर्य, चन्द्र
आदि नाना-शक्ति-सम्पन्न परमात्माके ही अभिन्न चेतनरूप—देवता कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त यञ्चादि
सकाम कर्म करके अपने-अपने कर्मके अनुसार मृत्युके
वाद दिव्य शरीर धारणकर खर्गादि लोकोंमें निवास
करनेवाले मनुष्येतर प्राणियोंको भी देवता कहा जाता
है। इन देवताओंको भगवान्के श्रीविप्रहका अङ्ग-प्रत्यङ्ग
कहा गया है—

यस्य त्रयिक्तिशहेवा अङ्गे गात्रा विमेजिरे। तान् वै त्रयिक्तिशहेवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥

(अथर्व १०।७।२७) अर्थात् — जिस परमात्माके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें तैंतीस करोड़ देवता अवयवरूपसे विमक्त होकर विराजमान हैं, उन तैंतीस करोड़ देवताओंको कुछ एक ब्रह्मवेत्ता ही जानते हैं।

ये देवता मनुष्योंसे भिन्न होते हैं। वे अश्विरहित' दिव्यदेहधारी पवित्र वायुक्ती भाँति निर्मल एवं सन्ह होते हैं—

तिर इव वै देवा मनुष्येभ्यः। (शतपय राशा१८) अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुच्यः॥ (अथर्वे० ४ । ३४ । २)

भगवान्—परमात्मा सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं। भक्तोंके उद्धारके लिये, दुष्टोंके संहारके लिये वे अवतार धारण कर बार-बार पृथ्वीपर आते हैं। जिस प्रकार अग्नि सर्वव्यापक है, परंतु वह संघर्षसे किसी एक स्थान विशेषमें उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार सर्वव्यापक प्रमु भक्तोंके साधनारूपी संघर्षसे उनके अपेक्षित स्थानपर प्रकट भी हो जाते हैं और सर्वव्यापी भी वने रहते हैं। वेद इसका समर्थन करते हुए कहते हैं—

'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो वहुधाविजायते' (शुक्रवजु॰ ३१ । १९)

अर्थात्—समस्त चराचरात्मक विश्वके पालक मगवान् गर्भके बीचमें विचरते हैं । वे अजन्मा होते हुए भी (भक्तोंकी रक्षा, धर्म-स्थापना आदिके लिये) बार-बार अनेक रूपोंमें विशेषरूपसे प्रकट होते अर्थात् अवतार धारण करते हैं—'इद्रो मायाभिः पुरुष्कप ईयते' (श्वग्वेद ६। ४७। १८)।

अर्थात्—'भगवान् अपनी माया राक्तियोंद्वारा अनेक बनकर संसारमें अवतरित होते हैं।'

सनातनधर्म उस भगवत्तत्त्वको आत्मसात् कर्ते हैं। छिये भक्तिका सहारा छेनेका उपदेश करता है। श्रीमद्भागवतमें बताया गया है कि—

'स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्ष^{जे।'}

किंतु यह लक्ष्यप्राप्ति ईश्वरकृपासे ही सम्भव है। अतः सनातनधर्मने शास्त्रों, पुराणों एवं अन्यान्य विक्षि कार्योंके निर्देशद्वारा मानवको ईश्वरोन्मुख बनानेका प्रयाप किया है। आद्य शंकराचार्यजीने विवेकचूड़ामणि

स्नातनधर्मके इसी दृष्टिकोणको उजागर करते हुए हिला है कि

बन्त्नां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता बन्त्नां तरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता तसाद्वेदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्वमस्मात् परम्। आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति-भुक्तिनों शतकोटिजन्मसु कृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते॥ (विवेकचूड़ामणि २)

श्राणियोंको पहले तो मानवरूपमें उत्पन्न होनेका अवसर मिलना ही दुर्लभ होता है और उससे भी दुर्लभ है ब्राह्मण-शरीर पाना, उससे वैदिक धर्ममार्गपरक वनना, उससे विद्वत्ता, उससे आत्मतत्त्व-विवेचनपरायण होना और उससे भी दुर्लभ है ब्राह्मी थितिमें पहुँच पाना । इस प्रकार करोड़ों जन्मोंके पुण्य जमा हुए विना व्यक्ति मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता ।

पुराणोंमें इसीलिये कहा गया है—'दुर्लभं मानुषं बोके।'गोस्वामी श्रीतुल्सीदासजीने इसीलिये मानवजन्मको शाधन धाम मोच्छ कर द्वारा' प्रतिपादित करते हुए भगवत्-स्मरणद्वारा उसे सार्थक बनाने और लक्ष्यकी ओर अग्रसर होनेके लिये प्रेरित किया है।

ईश्वरकी कृपा प्राप्त करनेके लिये मानवको स्वाध्याय, सत्मक्क, तीर्थाटन, देवद्श्वन, ईश्वरप्रणिधान आदि उपायोंका सहारा लेना पड़ता है। इन उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है सत्मंगति। कहा भी गया है—'सत्संगितः कथ्य किन करोति पुंसाम्'। इन सन्न साधनोंका आश्रय मानव-जन्मों ही सम्भव है—यदि मानवशरीर प्राप्त न हो तो सबका सम्पादन एवं मोक्षप्राप्ति सम्भव ही नहीं है। इस ल्र्यकी प्राप्तिके लिये सर्वप्रथम भगवत्-भक्तिका आश्रय लेना चाहिये। भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं। वे मन्दिरोंमें किश्य शक्तिसे तथा उत्तम साधकके हृदयमें प्रेमाकर्पण से आकृष्ट होकर प्रतिष्ठित हैं। सामान्य प्राणियोंके हृदयमें भी वे ही प्रमु विराजमान हैं। भगवान्ने गीता-(१८।

५८) में कहा है कि 'अर्जुन! सभी भूतोंके हृद्देशमें ईश्वर विद्यमान है—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' संत कत्रीर भी यही कहते हैं— 'तेरा साई तुज्झमें ज्यों पुहुपनमें बास।' (साखीकबीर ४९)

परंतु वह उसी प्रकार प्रकट नहीं होता जैसे दूधमें घी व्याप्त होनेपर भी विना मध्ये प्रकट नहीं होता। उस प्रभुको रिझानेके छिये—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद्सेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ (श्रीमद्रा०७।५।२३)

श्रीमद्भागवतोक्त नवधाभिक्तका आश्रय लेना भी आवश्यक है । तभी उस प्रभुक्ती कृपादृष्टि प्राप्तकर मानव आत्यन्तिक कल्याणकी दिशामें उन्मुख हो सकता है।

सनातनधर्ममें १८ महापुराण, १८ पुराण तथा १८ उपपुराणों इन ५४ तथा अन्यान्य सूत्रप्रन्थ आदिके माध्यमसे भगवत्तत्त्वका प्रतिपद ख्यापन किया गया है। देवता, पितृगण, प्रह, नक्षत्र एवं अन्यान्य प्राकृतिक उपादानों आदिके माध्यमसे भगवान्के दिव्यरूप, दिव्य कम आदिका दिग्दर्शन कराकर मानवको उनकी और उन्मुख बनानेका प्रयास किया गया है।

पुराण-श्रवण एवं सत्सङ्गको मानवके लिये परमावश्यक प्रतिपादित कर सनातनधर्मने प्रतिपापर भगवत्तत्वको इस प्रकार व्यापकरूपमें प्रतिपादित किया है कि मनुष्य अपनी प्रकार व्यापकरूपमें प्रतिपादित किया है कि मनुष्य अपनी भावनाके अनुसार भगवान् के अपेक्षित प्रिय रूपकी ओर अप्रसर हो नवधाभिक्तमें किसी निजी मनोऽनुकूल प्रकारको अपनाकर उन प्रमुकी कृपादृष्टि प्राप्त करे, जिससे जीवनके लक्ष्यतक सहज ही पहुँच सके। भगवत्तत्वकी व्यापकताका मूल लक्ष्य यही है कि मानव अपने जीवन-लक्ष्य तक पहुँचनेके लिये उपयोगी साधन ले सकें।

भागवतमें श्रीराम-कृष्णकी तात्विक एकता

(लेखक—पं० श्रीहरिनामदासजी 'चेदान्तीं)

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें शौनकादि ऋषियोद्धारा किये गये प्रश्नोंमेंसे —

अधाख्याहि हरेधींमन्नवतारकथाः शुभाः। लीला विद्धतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया। (अ०१, खो०१८)

—इस अवतारिविषयक प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीसूतजीने ब्रह्मदि बाईस अवतारोंका संक्षिप्त निरूपण कर अन्तमें कहा—

पते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्। (श्रीमद्रा॰ १।३।२८)

पूर्वोक्त ब्रह्मादि अवतार 'पुंसः' अर्थात् पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामजीके कोई अंशावतार और कोई कलावतार हैं, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रजी खयं भगवान् श्रीरामजी ही हैं, क्योंकि भगवत्पदवाच्य एवं पुरुषपदवाच्य श्रीमद्भागवतादि अनेक प्रन्थोंमें श्रीरामजीको ही कहा गया है। यथा—श्रीमद्भागवतमें कल्यिगुगके ल्यि एक मात्र आराष्य श्रीरामजीकी वन्दना करते हुए श्रीशुक्तदेवजीने कहते हैं—

ध्येयं सदा परिभवष्नसभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिश्चिनुतं शरण्यम् । भृत्यातिंहं प्रणतपालभवान्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(११।५।३३)
'महापुरुष ! आपके सदा ध्यान करनेयोग्य,
संसारके छुड़ानेवाले, भक्तोंके अभीष्टको पूर्ण करनेवाले,
तीर्थोंके आश्रयभूत, श्रीशंकरजी तथा श्रीब्रह्माजीसे
नमस्कृत, शरणागतकी रक्षा करनेवाले, सेवकोंके
दुःखोंको दूर करनेवाले, नमस्कार करनेवालोंका पालन
करनेवाले, संसारसमुद्रसे पार करनेके लिये नौकाखरूप
चरणकमलकी में वन्दना करता हूँ ।' वे महापुरुष कौन
हैं ! इसका परिचय लक्षणाद्वारा आगे क्लोकमें वतलाया
जाता है-

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्। मायामृगं द्यितेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारिक्दम्॥ (११।५।३४)

'महापुरुष ! जिसने धर्मात्मा पिताजीकी आज्ञासे देवताओंसे अमिलिषित दुस्त्यज श्रीअयोध्याकी राज्य लक्ष्मीको त्यांगकर वनके लिये प्रस्थान किया और जो दण्ड-कारण्यमें अपनी प्रियतमा श्रीजनकराजदुलारीकी इच्लाप्ण् करनेके लिये मायामृग मारीचके पीछे दौड़े, उन आपके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ ।' इस प्रकार उपर्युक्त दो खोकोंमें महापुरुषपदसे श्रीरामजीको ही सम्बोधित किया गया है । श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धमें मगवान् श्रीरामजीकी स्तुति करते हुए ब्रह्माजीकी भी वाणी है— अस्मत्मसाद्युमुखः कल्या कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्थ गुरोनिंदेशे।

तिष्ठन् वनं सद्यितानुज

(अ० ७ वलो० २३)

आविवेश

'हमारी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर कलया अर्थात भरतादि भ्राताओंके साथ 'कलेशः--सर्वकलानामीशः कलेशः' समस्त कलाओंके खामी भगवान् श्रीरामजी इक्ष्वाकुवंशमें प्रकट होकर भाई लक्ष्मण और मार्ग श्रीसीताजीके साथ पिता श्रीदशरथजीकी आज्ञासे वर्गे प्रवेश किये। उपर्युक्त प्रसङ्गमें श्रीव्रह्माजीने श्रीरामजीको कलाओंका खामी कहकर उन्हें सर्वावतारी बताया। पश्चम स्कन्धमें श्रीव्यासजीने श्रीहनुमान्जीकी भी उपासनाक है — 'किम्पुरुषे वर्षे निरूपण करते हुए कहा भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणायजं सीताभिरामं रामं तचरणसंनिकषीभिरतः परमभागवतो सहिकम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते' (अ०१९, रहोक्री) इत्यादि—एवं वे—'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोका तम आर्यलक्षणशीलव्यताय महापुरुषाय महाराजाय तमः (अ० १९, इलो० ३) इत्यादि आठ मन्त्रोंसे श्रीहतुमान्जी भगवान् रामकी प्रार्थना करते हैं।

उपर्युक्त पङ्कियोंमें भी आदिपुरुष एवं महापुरुष भगवान् श्रीरामजीको ही वतलाया गया है और श्रीहनुमान्जीने भजनीय भगवान्का संकेत करते हुए कहा—

सुरोऽसुरो वाष्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्। भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोसलान् दिवमिति॥ (श्रीमद्धा०५।१९।८)

देवता, दैत्य, वानर, नर सभी प्राणी जो उत्तरकोसलदेशवासियोंको साथमें अपने धाम ले गये ऐसे उत्तम सुकृतज्ञ मनुष्यके समान आकारवाले हिर श्रीरामजीका सर्वतोभावेन भजन करे ।' अतः पुंसः पदवाच्य श्रीरामजी हैं । ऋग्वेदीय पुरुषस्त्तमें 'वाहू राजन्यः कृतः' इस मन्त्रसे द्विभुज पुरुषरूप भगवान्का निरूपण किया । श्रीमद्भागवत नवम स्कन्धके दसवें अध्यायके चौदहवें क्लोकमें समुद्रके द्वारा भगवान् श्रीरामजीसे प्रार्थनाका उल्लेख है—

न त्वां वयं जडिधयो जु विदाम भूमन् कृटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम्। यत्सत्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः॥

^{'त्यापक} प्रभो ! कूटस्थ, आदिपुरुष, जगत्के खामी ^{आपको जड़}-बुद्धि मैं नहीं जानता ।' श्रीशुक्तदेवजीने भी कहा-—

भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः। सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान् मखैः॥ (श्रीमद्भा०९।११।१)

आचार्यवान् भगवान् श्रीरामजी उत्तम सामग्रीसे पूर्ण यबद्धारा सर्वदेवमय देव आत्माका पूजन किया । यज्ञके अतमें दक्षिणा प्राप्तकर परम प्रसन्न हो ब्राह्मण बोले--- अप्रत्तं नस्त्वया कि नु भगवन् भुवनेश्वर। यन्नोऽन्तर्हद्यं विद्दय तमो हंसि खरोचिषा॥ (श्रीमद्रा०९।११।६)

११वें स्कन्धमें भी 'सीतापितर्जयित लोक-मलङ्घ यकीर्तिः'में रामजीको ही धार्मिक सर्वोपिर यशस्वी तथा परम पुरुष कहा गया है। इन प्रसङ्गोंमें भी भगवान् पदवाच्य श्रीरामजीको कहा । श्रीमद्भागवत (१०। ४०। १०) भ्रमरगीतके प्रसङ्गमें गन्धके लोभसे चरणके समीप आये हुए भ्रमरको श्रीश्यामसुन्दरका दूत मानकर श्रीजी कहती हैं—

मृगयुरिव कपीन्द्रं विन्यघे लुन्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूगं कामगः कामयानाम्। वित्रमपि वित्रमस्तावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद्य-स्तद्लमसितसस्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ।

नमें 'उस कालेको अच्छी तरह जानती हूँ, उसने वालीको व्याधकी तरह छिपकर मारा और राजा बिलके यज्ञमें उपेन्द्रके रूपमें जाकर तीन पद पृथ्वी माँगकर अपने पैरसे त्रिलोकीको नापकर कम पड़नेपर शरीर नापा; फिर काककी तरह बाँध दिया। पश्चवटीमें शूर्पणखा उसमें प्रेम करने आयी, उसका नाक-कान कटवा छिया ऐसे कालेसे अब प्रीति नहीं करना है. इच्छा पूर्ण हो गयी।' उपर्युक्त श्लोकसे भी भगवान् श्रीरामजी ही कृष्णचन्द्रजीके रूपमें अवतरित हुए यही सिद्ध होता है। इसी प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण एवं पद्मपुराण तथा कृष्णोपनिषद्में मङ्गल श्लोक और प्रथम ऋचामें वर्णन है—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः। दृष्ट्वा रामं महात्मानं भोकुमैच्छन् सुविष्रहम्॥ (पद्मपुराण)

रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्य सुवेषताम्। दहशुर्विसिताकाराः रामस्य वनवासिनः॥ (श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण ३।१)

यो रामः कृष्णतामेत्य सार्वात्म्यं प्राप्य लीलया। अतोषयद्देवमौनिपटलं तं नतोऽस्म्यहम्॥ (वन्दना) श्रीमहाविष्णुं सचिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्या सर्वोङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता वभूबः। तं होचुनोंऽनवद्यमवतारान् वे गण्यन्ते आलिङ्गामो भवन्तमिति । भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ इत्यादि'। (कृष्णोपनिषद् प्रथम ऋक्)

'जिस समय श्रीरामजी तपस्वीके वेषमें दण्डकारण्यमें प्रधारे उस समय वहाँके निवासी महर्षिगण सर्वाङ्गसुन्दर सिवदानन्दखरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके श्रीविष्रहको देखकर आश्चर्यचिकत हो गये और आल्झिन करनेकी इच्छा व्यक्त करने लो । तव श्रीरामजीने कहा—'यह मेरा मर्यादापुरुषोत्तमका अवतार है । इस खरूपसे आपलोगोंकी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता । द्वापरमें मेरा कृष्णचन्द्रके रूपमें अवतार होगा और आपलोग गोपिकाओंके रूपमें प्रकट होंगे । उस समय मैं आपलोगोंका यह मनोरथ पूर्ण करूँगा। उन्हीं देवता, ऋषि, मुनियोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् श्रीरामजीका श्रीकृष्णचन्द्रजीके रूपमें अवतार हुआ। श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण लङ्काकाण्डमें श्रीसीताजीकी अग्नि-परीक्षाके अवसरपर देवगणके सहित उपस्थित श्रीब्रह्माजीके समक्ष श्रीरामजीने कहा—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्। सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् व्रवीतु मे॥ (युद्ध०११७।११)

भी अपनेको दशरथ-पुत्र मनुष्य मानता हूँ, जो मैं हूँ और जो मेरा सम्बन्ध है तथा जिस छिये आया हूँ आप बताइये। तव ब्रह्माजीने कहा कि—भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चकायुधः प्रभुः इत्यादि—'आप मनुष्य नहीं हैं, किंतु शक्क, चक्र, गदा, पद्मको धारण-कर सृष्टिके आदिमें श्रीमन्नारायणके रूपमें जलमें शेष-श्रायापर शयन करनेवाले भगवान् हैं। अगस्य-संहितामें इन्हें—'सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः' कहा है। वराहसंहितामें भी 'नारायणोऽपि रामांशः शक्क्चकगदाधरः' कहा गया है। अर्थात् श्रीमन्नारायण भी श्रीरामजीके ही अवतार हैं। सनत्कुमारसंहितामें

भि तत्त्वं कि परं जाप्यं कि ध्यानं मुक्तिसाधनम्। (रामस्तवराज) श्रीयुधिष्ठिरजीने श्रीव्यासजीसे पृष्ठा कि मुक्तिके साधनके रूपमें कौन-सा तत्त्व जप करने और ध्यान करनेयोग्य है। उत्तरमें श्रीव्यासजीने कहा कि धर्मराज महाभाग श्रणु वक्ष्यामि तत्त्वतः। यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमछं शिवम्॥ तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्। श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंबक्षम्॥

'कैवल्य-पदके कारणखरूप गुणातीत खयंप्रकाश-खरूप मङ्गठखरूप ब्रह्मपदवाच्य तारक भगवान् परमतन्व श्रीरामजी ही जप और ध्यान करनेयोग्य हैं।

श्रीनारदजीने भी कहा— 'तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसा पूरितविद्वमेकम्'

—तथा 'मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमञ्ययम्' अर्थात् तत्त्वस्ररूप श्रीरामजी मत्स्य-कूर्मीद अनेक ह्य धारण करनेवाले अपने तेजसे विश्वको प्रकाशित करनेवाले पुराणपुरुष हैं। श्रीरामचरितमानसके वालकाण्डमें 'अव अगुन अरूपा'को 'कोसलपुर भूपा' वतलानेका भी यही तात्पर्य है। वहाँ अवतार-निरूपण-प्रसङ्गके विष्णुपुराणीय आक्षेपका भी पूर्ण समाधान प्राप्त होता है और अन्तमें सेवा-विनयके बाद प्रार्थना करते हुए देवता भी कहते हैं—

तुम्ह सम रूप ब्रह्म अविनासी । सदा एकरस सहज उदाती। मीन कमठ सूकर नरहरी । बामन परसुराम बपु भी। जबजब नाथ सुरन्ह दुख पायो । नाना तनु भरि तुम्हइ नसायी।

अर्थात् आप ही अनेक रूपमें अवतीर्ण होते हैं यह कहा ।

'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुद्र व्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥'

— के अनुसार भगवान् के सभी अवतार पूर्ण हैं, किंतु मत्स्यादि अवतारोंमें सर्वसत्त्व, सर्वशक्तिमत्त्वादि गुण रहनेपर भी आवश्यकतानुसार ज्ञान, क्रिया, शक्ति प्राक्तव्य हुआ है और भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा भगवा श्रीकृष्णचन्द्र इन दो अवतारोंमें पूर्ण गुणोंका आविष्कार होनेके कारण पूर्णावतार माने जाते हैं। मनीषियोंने दो होनेके भगवान्के छक्षणोंका निरूपण किया है—

(१) पेश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। श्रानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीर्यते॥

(२) उत्पत्ति प्रलयं चैव भूतानामगति गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च सवाच्यो भगवानिति॥ भूमपूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य—इन

हु: बस्तुओं को भग कहते हैं, इनका जो अधिष्ठाता है

उसको भगवान् राब्दवाच्य कहा गया है। परमात्माके अतिरिक्त संसारमें सम्पूर्ण ऐक्वर्यादि कहीं नहीं प्राप्त हो सकते। इसिल्ये अन्यत्र भगवान् राब्दका प्रयोग औपचारिक ही है। २—और जो प्राणियोंके उत्पत्ति-प्रलय, गित, अगित, विद्या और अविद्याके तत्त्वको जानता है वही तत्त्वतः भगवान् पदवाच्य है। इस प्रकार यहाँ भगवान् के 'भगवान् स्वयम्'अंशपर अनेक आर्थ-प्रन्थोंके अनुसार समन्वयात्मक संक्षिप्त तात्त्विक विचार किया गया।

—**←∋@e→**

अध्यात्मरामायण और रामचरितमानसमें भगवत्तत्व

(लेखक—डॉ॰ श्रीगोपीनाथजी तिवारी)

भगवान् जब किसीपर विशेष कृपा करते हैं तो अपने श्रीमुखसे उससे भक्ति, मुक्ति, आत्म-ज्ञान तथा योगका तल प्रकट करते हैं । गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके समक्ष आत्मतत्त्वको प्रकाशित किया है। इसी प्रकार मानसमें भगवान् राम लक्ष्मण, नारद, शबरी, तारा, भरत और अवधनागरिकोंसे भक्ति, ज्ञान-वैराग्य, जीव-ब्रह्म एवं कमें के विषयमें अपना मत उपदेशों के रूपमें प्रकाशित करते हैं । यह मानसका भगवत्तत्व है। कहते हैं, मानसपर अध्यात्मरामायणका अधिक प्रमाव है। पर दोनोंमें अन्तर यह है कि तुळसीदासजी भगवान्की सगुण भक्तिपर बल देते हैं तो अध्यात्मरामायण निर्गुण-मक्तिका विस्तारसे विवेचन करता है । मानसमें भगवान् श्रीराम कर्ममार्गको सम्मिल्तिकर सुग्रीवको मित्रके लक्षण भी बताते हैं, पर अध्यात्म-रामायणमें इसका उल्लेख नहीं है । भगवान् राम पञ्चवटीमें कुटी बनाकर निवास करते हैं । लक्ष्मणजी प्रश्न करते हैं—

कहिंदु ग्यान विराग अरु माया।कहिंदु सो भगति करहु जेहिंदाया॥ ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कही समुझाइ। जातें होइ चरन रित सोक मोह भ्रम जाइ॥ (रामच० मा०३। १४) वे ज्ञान-वैराग्य, माया-जीव, ईश्वर तथा भगवान्सी
भक्ति-तत्त्वोंको जानना चाहते हैं। अध्यात्मरामायणमें भी
वे एकान्तमें भगवान् रामसे पूछते हैं—प्रभो! मुझे मोक्षका
साधन, विज्ञानसहित ज्ञान, वैराग्य और भक्ति बताइये—
भगवन् श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम्।
ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यचंहितम्॥
(३।४।१७-१८)

मानसमें भगवान् राम पहले मायाके रूपकी व्याख्या करते हैं, मायाके दो भेदोंको स्पष्ट करते हैं, फिर ज्ञान-वैराग्य बतलाकर ईश्वर-जीवके अन्तरको प्रकट करते हैं। अन्तमें भक्तिको विस्तारसे समझाते हैं। मानसकी प्रायः पूरी शक्ति भक्तिकेखरूप-वर्णनमें ही संलग्न है। रामका

स्पष्टीकरण है—

मैं अरु मोर तोर तें माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहाँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें॥

अध्यात्मरामायणमें भगवान्का कथन है—शरीर आदि आत्मा नहीं हैं। शरीर, इन्द्रिय-मन आदिमें आत्मबुद्धि

१-रामच० मा० ४।६।१ से ९ तक

रखना ही माया है । मायाके द्वारा ही संसारकी रचना या कल्पना की गयी है । मायाके दो रूप हैं--(१) विक्षेप और (२) आवरण । विक्षेपके द्वारा महत्-तत्त्वसे लेकर ब्रह्मातककी सारी स्थूल और सूक्ष्म सांसारिक कल्पना हुई है। स्थूछ या सूक्ष्मरूपमें जो कुछ संसार हमसे चिपटा है, वह त्रिक्षेप-मायाका ही कार्य है। दूसरी आवरणरूपा माया ज्ञानपर पर्दा डाले हुए है। इसीके कारण विल्कुल असत्य होते हुए भी संसार हमें रज्जु-सर्पके समान सत्य प्रतीन होता है । विचार करनेपर संसारका तस्त्रत: कोई अस्तित्व नहीं दीखता । मनुष्य जो कुछ भी करता, देखता, सुनता या स्मरण करता है, वह सब खप्नके समान मिथ्या है। इस संसार-बृक्षकी जड़ हमारा मन है । इसीसे स्त्री, पुत्र तथा हमारे सभी सम्बन्ध जुड़े हुए हैं, नहीं तो वास्तविकता यह है कि ये कुछ नहीं हैं । ये आत्मा नहीं हैं । आत्मासे इनका कोई सम्बन्ध भी नहीं है। स्थूल पश्च-भूत (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु), पश्च तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), अहंकार, बुद्धि, दस इन्द्रियाँ, चिदाभास, मन तथा मुल प्रकृति-इन पचीसोंके समन्वित रूपको क्षेत्र या शरीर कहा गया है।

मानसकार पूज्यपाद गोखामी तुलसीदासजी महाराज अत्यन्त संक्षेपमें ग्यान-विराग, जीव और ईश्वरकी व्याख्या करते हैं, वह क्रमशः यों है । ग्यान——

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥ विराग —

कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥ योग और ज्ञान-—

धर्म ते बिरति जोग तें ग्याना । ग्यान मोच्छ प्रद वेद बलाना । जीव और ईश्वर----

माया ईस न आपु कहुँ जान किह्नअ सो जीव। बंध मोच्छ प्रद सर्बंपर माया प्रेरक सीव॥ (रामच०मा०३।१५)

अध्यात्मरामायणकार विस्तारसे ज्ञानकी विवेचना करते हैं तथा जीव और ईश्वरको अभिन्न मानते हैं। साथ ही अध्यात्मकार ज्ञान-प्राप्तिके कई साधन वताते हैं, जिसमें भक्ति भी सम्मिलित है। उनका कथन है—जीव और परमात्मा एक हैं। जिन साधनोंसे ज्ञान प्राप्त होता है—वे हैं (१) मानेच्छाका अभाव, (२) दम्भ, हिंसा आदिका त्याग, (३) दूसरोंके कटु-वचनोंका सहन, (४) सर्वत्र सरलभाव रखना, (५) मन, वाणी और शरीरद्वारा भक्तिपूर्वेक सद्गुरुकी सेवा, (६) शरीर और मनकी शुद्धि, (७) सत्कार्य आदिको स्थिता-पूर्वक करना, (८) मन, वचन, शरीरका संयम, (९) त्रिषयोंसे विराग, (१०) अहंकारहीनता, (११) जन्म, मरण, बुढ़ापा, दुःख, जीवन आदिका विचार करना, (१२) आसक्तिहीनता, (१२) स्री-पुत्र, धन आदिसे स्नेह न करना, (१४) प्रिय-अप्रिय, सुख-दु:ख-प्राप्तिमें समान भाव, (१५) राम सर्वत्र हैं, सवमें हैं—ऐसी बुद्धि, (१६) भीड़-भाड़रहित शूल स्थानमें वास, (१७) सांसारिक स्त्री-पुरुषादिसे अस्ति, (१८) आत्म-ज्ञान-प्राप्तिमें सदा उद्योग एवं (१९) वेदान्त-विचार।

आत्मा, बुद्धि, प्राण, मन, देह, अहंकारसे अल्पा नित्य गुद्ध-बुद्ध है। इसका निश्चय करना ही ज्ञान है। वह सर्वत्र, पूर्ण, चिदानन्दरूप, अविनाशी, बुद्धि, मन आदि उपाधिरहित तथा परिणामादिसे रहित है। आत्मा ही देहादिको प्रकाशित करता, चल्लाता है। अत्माशास अद्यानस्य, अद्वितीय, सत्य, ज्ञानस्वरूप, अस्त्र सप्रकाश, द्रष्टा तथा विज्ञानसे जाना जाता है। आवार्य और शास्त्रके उपदेश तथा अध्ययनसे ज्ञात होता है कि आत्मा और परमात्मा एक हैं; यही ज्ञान है। ऐसा ज्ञान हो जानेपर मूल अविद्या कार्य-कारणसहित परमात्मामें विलीव हो जाती है, यही मुक्ति है। आत्मा वैसे सदा ही मुक्त

है। इसमण! ज्ञान और विज्ञान, वैराग्यसहित मैंने परमात्मा (आत्मा)का खरूप वताया है। जैसे रात्रिमें दीपकके प्रकाशसे सब-कुछ दिखायी पड़ता है, अन्यथा नहीं, वैसे ही ईश्वर-भित्तिसे ही आत्माका साक्षात्कार प्राप्त होता है।

अव प्रमात्मामें भक्ति कैसे उपजती है, वह भक्ति वताता हैं। भक्ति नौ सावन हैं (१) भक्तोंका सत्सङ्ग, (१) मेरी सेवा, (३) एकादशी आदिका उपवास, (४) पर्व-त्यौहारोंको मनाना, (५) मेरी कथाका अवण, पाठ और (६) उसकी प्रेमपूर्वक व्याख्या करना, (७) निष्ठापूर्वक मेरी पूजा, (७) मेरे नामका कीर्तन और (९) सदा मेरा ध्यान । इनसे मुझमें अविचल मित्त बृद्धिगत होती है। मेरी भक्तिसे जो युक्त है, वह ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यको शीव प्राप्त कर लेता है।

अध्यातमरामायणके उत्तरकाण्डकी 'रामगीता'में पुनः भगवान् श्रीरामने छक्ष्मणको विस्तारसे आत्मा और परमामाके अभेद-ज्ञानको समझाया है। छक्ष्मणका प्रश्न है—में अज्ञानके पार जाना चाहता हूँ। अतः मुझे ज्ञान दीजिये, भगवान् राम कहते हैं—'छक्ष्मण! जो ज्ञानको प्राप्त करना चाहता है, उसे समस्त कर्मोंका त्याग कर देना चाहिये। ये कर्म ही संसार-चक्रको क्याते हैं। ज्ञान ही जीवनका छक्ष्य है। ज्ञान क्वतन्त्र है, वह कर्मत्याग आदिके अधीन नहीं है। क्रम चाहे शास्त्रविहित हो चाहे अन्य, सभी त्याज्य हैं। आत्मा देहादिसे मिन्न है, जो न कभी मरता है न कमता है, न क्षीण होता है, न बढ़ता है। सदा अपनेको संसारसे मिन्न आत्मरूप जानना चाहिये। मेरे दो रूप हैं—निर्गुण और सगुण। सदा निर्गुण रूपका ध्यान करे, हाँ, कभी-कभी सगुणका भी

करें । वह मेरा ही रूप वन जाता है । वह अपनी चरणरजसे सूर्यके समान समस्त छोकोंको पवित्र कर देता है । श्रीभगवान्के इस प्रवचनमें ज्ञान और निर्गुणकी प्रधानता है, सगुणकी नहीं । भक्तिका संकेतमात्र है । उधर गोखामीजी ज्ञान और निर्गुणको खीकार करते हुए भी इनको प्रधानता प्रदान नहीं करते । वे सगुण और उसकी उपासनाको ही प्रतिष्ठित करते हैं ।

भक्ति-तत्त्व

शबरी-प्रसङ्गमें भगवान् राम, रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणमें नवधाभक्तिका उपदेश देते हैं। यह भागवतकी नवधाभक्ति श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन— श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

—इत्यादिसे सर्वथा भिन्न है। रामचितिमानस तथा अध्यात्मरामायणकी यहाँ वर्णित नवधाभिक्त बहुत कुछ साम्य छिये है। रामचिरतमानसकी नवधा भिक्त इस प्रकार है—

प्रथम भगित संतन्ह कर संगा। दूसिर रित मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा तीसिर भगित अमान।
चौथि भगित मम गुन गन करइ कपट तिज गान॥
मंत्र जाप मम इद विस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरित बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातव सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठव जथालाम संतोषा। सपनेहुँ निहं देखइ पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
(मानस ३)

भगवान् रामका आश्वासन है कि जिसके पास इनमेंसे एक भी भक्ति है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। उधर अध्यात्मरामायणकी नवविधा भक्ति है—सज्जनोंकी संगति

१—अध्यात्मरामायण ३।४।३० से ५२ तकका सारांश, २—अध्यात्मरामायण ७।५। ४ से ६२ तकका सारांश। ३-यः सेवते मामगुणं गुणात्परं हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम्। सोऽहं स्वपादाख्चितरेणुभिः स्पृशन् पुनाति लोकत्रितयं यथा रिवः॥ (अध्या० रामा० ७।५।६१) ४-पर इसका उल्लेख मानसमें— अवनादिक नव भगति हढाहीं (३।१०।८)में हुआ है।

'सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ।' मेरी कथाका श्रवण, पाठ या संवाद 'द्वितीयं मत्कथालापः ।' मेरे गुणोंका गान 'तृतीयं मद्गुणेरणम् ।' (३।१०।२३)

मेरी कही वाणीकी च्याख्या करना तथा ईश्वर-बुद्धिसे आचार्यकी उपासना चौथी भक्ति है ।—'व्याख्यादृत्वं मद्रचसां चतुर्थं साधनं भवेत्' (३।१०।२३) आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्धवामायया यमनियमादिका पालन और पवित्र खभाव पाँचवी—-'पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि पुजामें मेरी च।'(३।१०।२४)। तथा नित्यनिष्टा छठी साधना है—'निष्टा मत्पूजने नित्यं षण्ठं साधनमीरितम् ।' (३।१०।२५) मेरे मन्त्रके साङ्गोपाङ्ग जपमें निष्ठा, सातवाँ साधन है—'मम मन्त्रो-पासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ।' (३।१०।२५)

आठवाँ साधन है—सुझसे अधिक मेरे मक्तोंकी पूजा, सब प्राणियोंमें मैं ही हूँ—यह मावना, संसारके पदार्थोंसे विराण तथा शम-दम आदिका धारण—

मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः। बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा॥ (३।१०।२६)

ईश्वरतत्त्व-विचार—नवम साधन है—'(अष्टमं) नवमं तत्त्वविचारो ममभामिनि !'(३।१०।२७)। भक्ति-प्राप्तिकी सहज साधना सत्-सङ्गति है—

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। वितु सतसंग न पावहिं शानी। पुन्य पुंज वितु मिलहिं न संता। सत संगति संसृति कर अंता।

रामका भक्त शिवका विरोधी नहीं हो सकता। देवोत्तम शिव तो भगवान् रामके परमभक्त हैं। भगवान् रामका निर्देश है कि मेरी भक्ति उसे सुलभ होगी, बे शंकरका भजन करेगा। भगवान् राम कहते हैं—

औरउ एक गुपुत मत सबिह कहउँ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥ (रामच० मा० ७ । ४५)

फिर राम-भक्तिकी सुगमता और भक्तोंके लक्षण बताते हुए कहते हैं—

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई। मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहहु कहा विखासा। बैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा। अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ विग्यानी। ग्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम विषय स्वर्ग अपकां।

मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥ (रामच० मा०७।४६)

इस प्रकार अध्यात्मरामायणमें भक्ति और ज्ञानका महत्त्व प्रायः समान ही है ।

जगत्तत्व और ब्रह्मतत्त्व

(श्रीविसिष्ठजी कहते हैं—) जो अदितीय, शान्त, चिन्मय और आकाशके समान निर्मल है, वह ब्रह्म है बर्म्य सम्पूर्ण जगत् है; क्योंकि सबमें सतामात्रका ही तो बोध होता है। रघुनन्दन! मैंने सोनेके कड़ेमें बहुत विचार करते। भी विश्वद सुवर्णके सिवा कहीं कोई कड़ा नामकी वस्तु नहीं देखी। जलकी तरङ्गमें मैं जलके सिवा दूसरी कोई बस्तु की देखता; क्योंकि जहाँ वैसी तरङ्ग नहीं दिखायी देती, वहाँ भी जल ही है। अतः जहाँ तरङ्ग है, वहाँ भी जलके अतिरिक्त कुछ नहीं है। वायुके अतिरिक्त कभी कहीं भी सम्दन (गितशिलता) नामकी कोई वस्तु नहीं है। स्यन्दन सब वायुक्य ही है। अतः इन दृशन्तोंके अनुसार यह जगत् भी ब्रह्मते भिन्न नहीं है। जैसे आकाशमें शून्यता है, मक्सूर्मिं ताप ही जल है और प्रकाशमें सदा तेज स्थित है, उसी प्रकार ये तीनों लोक परब्रह्म परमात्मा ही हैं।

(योगवासिष्ठ ३ । ९)

परमात्मा और जीवात्मा

(लेखक—स्व॰ आचार्यवर्य पं॰ आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं चृक्षं परिषद्धजाते। तयोरन्यः पिप्पळं खाद्धत्त्य-नद्दनन्नन्योऽभिचाक्दाीति ॥

(मुण्डकोप० ३ । १ । १)

भावार्थ—'एक वृक्षपर सदा साथ रहनेत्राले और एक-दूसरेके मित्र—ये दो पक्षी बसते हैं। उनमें एक भीठे फल खाता है और दूसरा बिना खाये देखता हता है।'

थः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽ-ततो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त भात्माऽन्तर्याभ्यसुतः।'(बृहदा० उप०)

भावार्थ—'जो सर्वभूतोंमें रहता हुआ, सर्वभूतोंका आत्माराम है, जिसे सभी प्राणी नहीं जानते, सर्वभूत जिसका शरीर है, पर जो सबके अन्तरमें रहकर सब प्राणियोंका नियमन करता है, वही तेरा अन्तर्यामी और अमर आत्मा है।'

कुछ सिवस्तर विचार करना उचित है। जीव और ईश्वरका 'सख्य' क्या वस्तु है—उन दोनों-की मित्रताका क्या अमिप्राय है ! जगत्के व्यवहारके

अनुसार 'तुम' और 'मैं' एक दूसरेसे मिन होते हुए मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करते हैं। किंतु जीवात्मा और परमात्माका सम्बन्ध इस प्रकारका नहीं हो सकता, यह सर्वसम्मत है । द्वैतवादी मानते हैं कि परमात्मा जीवात्माके अन्तर्में रहता है----घट-घटमें राम रम रहा है। किंतु वे अन्तर् के शब्दके गम्भीर अर्थपर विशेष मनन नहीं करते । अद्वैतवादी इस विषयमें केवल इतना ही कहते हैं कि 'अन्तर्' शब्दके अर्थपर विचार करनेसे जीव और ईश्वरका तादाल्य इस शब्दसे फिलत होता है। एक चैतन्य दूसरे चैतन्यके अन्तर्में तादात्म्य-सम्बन्धके अतिरिक्त और किस रीतिसे रह सकता है ! जड़ और सावयव पदार्थके सम्बन्धमें अन्तर शब्दका उसके वाच्यार्थमें प्रयोग किया जा सकता है, किंतु चैतन्यके सम्बन्धमें जहाँ 'अन्तर्' और 'बहिर्' शब्दोंका व्यवहार किया जाता है, वहाँ हम देखते हैं कि इन शब्दोंका अर्थ 'तत्त्व' (Reality) और 'अतत्त्व' (Appearance) किया जाता है । एक सरल उदाहरण लीजिये । 'अमुक मनुष्य भीतरसे—अन्तर् से—बुरा नहीं है' यह प्रायः कहते हैं । यहाँ अन्तर् शब्दका क्या अर्थ है ! अन्तर्से बुरा नहीं—इसका अर्थ यही है कि उसका तत्त्व—यथार्थखरूप—सोजन्ययुक्त है, किंतु उस मनुष्यका अतत्त्व—बाह्यरूप—निरर्थक है।

आत्माको ज्ञान, इच्छा, भाव आदि वृत्तियोंसे जुदा समझना वर्तमान मानस-शाख (Psychology)के प्रतिकूछ है। आत्मा एक अखण्ड वस्तु है, जो ज्ञानादि-वृत्तिरूपसे प्रकट होता है। यही आज-कलका सर्वसम्मत मानस-शाखका सिद्धान्त है। इस प्रकार जब यह कहा जाता है कि जीवात्मामें परमात्मा है तब इस कथनका यही तात्पर्य समझना चाहिये कि जीवात्मा परमात्माका

भै॰ तै॰ अं॰ १२—CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही आभास है—उसका खकीय खाभाविक—आगन्तुक, उपाधिकृत नहीं—स्वरूप ही परमात्मा है। यही उसका भावार्थ समझना चाहिये।

यदि पूछो कि परमात्मा किसकी आत्मा है ! इसका यही उत्तर है कि वह तो स्वयं ही आत्मा है, उसकी और आत्मा कैसे हो सकती है ! परमात्मा अपनी ही आत्मा है अर्थात् अपने प्रकट खरूपकी आत्मा है । किंतु उसका प्रकट खरूप 'मैं' और 'तुम' सहित वाह्य और आन्तर विश्वके सिवा दूसरी क्या वस्तु हो सकती है ! इस प्रकट खरूपका परमात्मा ही आत्मा है । इस सिद्धान्तसे अद्देतवादीका कोई विरोध नहीं ।

द्वैतवादी परमात्मा और जीवको परस्पर भिन्न समझते हैं । वे परमात्माको जीवात्माकी आत्मा नहीं मानते, किंतु परमात्माको जीवके ज्ञानका विषय बतलाते हैं । यदि परमात्माको अपने ज्ञानका विषय मान लिया जाय तो वह परमात्मा हमारे समक्ष विषयरूप होकर उपस्थित हो जाता है । यदि वह सामने विषयरूपसे उपस्थित हुआ तो वह हमारे अन्तर में किस रीतिसे रह सकता है ! विषय (Object) और विषयी (Subject) एक लकड़िके दो छोरकी तरह जुदे-जुदे हैं—एक छोर दूसरे छोरके अन्तर में कैसे आ सकता है ! द्वैतवादी इतना तो मानता ही है कि परमात्मा जीवात्माके अन्तर में विराजमान है । अतएवं परमात्मा जीवात्माके ज्ञानका विषय नहीं, विल्क उसकी आन्तरतम आत्मा है ।

अब दूसरी युक्तिपर विचार कीजिये। जीव एक बस्तु है और परमात्मा दूसरी—इस माँति संख्या करनेपर यह प्रस्न उठता है कि उन दोनोंमें ऐसा कीन-सा तत्त्व अनुस्यूत है जो दोनोंको एक ही गणनामें अथवा बर्गमें रखता है ? यदि कहा जाय कि उपाधिरहित ग्रुद्ध चैतन्य ही दोनोंमें सामान्य है तो अद्भैतवादीको यह सर्वया खीकार है। अनुपहित—ग्रुद्ध-चैतन्यरूपसे ही वह तत् और लम्का तादाल्य मानता है।

यथा यथा तस्त्रमसीति वाष्ये
विरुद्धधर्मानुभयत्र हित्वा।
संलक्ष्य चिन्मात्रतया सदात्मनोरखण्डभावः परिचीयते वुधैः।
एवं महावाष्य्यरातेन कथ्यते
ब्रह्मात्मनोरैष्यमखण्डभावः॥

भावार्थ—'जीव अल्पज्ञ है। ईश्वर सर्वज्ञ है। उनमें अल्पज्ञता और सर्वज्ञतारूपी विरुद्ध धर्मोंको निकाल डालें तो दोनोंमें एक ही तत्त्व स्थित रहता है। ब्रह्म और आत्माका ऐक्य-प्रतिपादन करनेवाली 'तत्त्वमिस' आदि श्रृतिका यही तार्ल्पय है।'

प्रसंगवरा एक और प्रश्न भी विचारार्थ उपस्थित होता है। यदि उक्त विरुद्ध धर्मांको निकाल डाला जाय तो फिर रहेगा क्या ! इस प्रश्नके उत्तरमें यह पूछा जा सकता है कि धर्मांसे परे क्या कोई तत्त्व नहीं होता! यदि नहीं होता तो धर्मोंके अस्तित्व और खरूफा निरूपण भी किस प्रकार सम्मव हो सकता है! किती भी आस्तिकने —आत्मवादी और ईश्वरवादीने—आजत्म यह नहीं कहा कि धर्मांसे परे तत्त्व होता ही नहीं। किंतु हमारे देशमें तथा यूरोपमें इस सिद्धान्तको नास्तिकी ही माना है। इस परिदृश्यमान जगत्के पीछे कीं वस्तु अवश्य है, इस सिद्धान्तपर ही ईश्वरवाद अवलिक है। इसी प्रकार आत्मवादीका भी यही निश्चय है कि सुख-दु:ख-धर्मोंके पीछे आत्माकी सत्ता अवश्य है।

पूर्वोक्त युक्तिके अनुसार आप यदि यह कहें कि परमात्मा सगुण सिद्ध होता है तो इसपर निर्णुणवर्ष वेदान्तीको कुछ भी आक्षेप नहीं। जगत्का काण निर्णुण है, यह वह नहीं कहता। जगत्का काण है हमेशा सगुण ही माना जाता है। निर्णुणवादमें सण् नहीं माना जाता, यह कथन करनेके छिये शक्करावर्ष स्थल-स्थलपर जो यत्न किया है कि वह सगुणवर्ष गुण और गुणी इस प्रकारके दो तत्त्वीको अनितम तत्त्व मान बैठते हैं, वैसे न मानका अ

दोनों तत्त्रोंका निरूपण एक परमतत्त्वके द्वारा करना चाहिये। निर्गुणवादी यह नहीं कहते कि 'सगुण'— मनुष्योंके फुसलानेके लिये — शास्त्रकारोंने एक कल्पित पहार्थ रच डाला है। यदि गुण-जैसा कोई पदार्थ है तो

सगुण भी हो सकता है; किंतु यदि गुणोंका परम तत्त्वरूप समझमें आ जाय और यदि वे गुण खतः खतन्त्र अस्तित्वरहित प्रतीत होने छगें, तो फिर सगुण नहीं रहता, यही निर्गुणवादका ताल्पर्य है।

अनिर्वचनीय और अनुभवगम्य तत्त्व

(लेखक—पो० चन्दुलाल व० डकराल, एम्० ए० (सं० अं०), काव्यतीर्थ)

यसिन् सर्वे यतः सर्वे यः सर्वेः सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वातमने नमः॥
(महाभा० ज्ञान्तिपर्व ४७। ८४)

श्वनके भीतर सब कुछ वर्तमान है, जिनसे सब कुछ उपन हुआ है, जो खयं सर्वस्वरूप हैं, सदा सब ओर जो व्यापक हो रहे हैं और सर्वमय हैं, उन सर्वात्माको प्रणाम है। यहाँ व्यासजीने वेदान्तसृत्र—'जन्माद्यस्य यतः' (ब्रह्मसृत्र १।१।२) की संक्षेपमें व्याख्या कर दी है। भगवान् शंकराचार्य इसे स्पष्टरूपसे प्रतिपादन करते हैं कि परमतत्त्व निरञ्जन, निराकार एवं निर्णुण हैं। पारमार्थिक अवस्थामें ब्रह्म ही ऐसा है, इसमें कोई संदेह नहीं। किंतु सामान्य छोगोंके छिये तो यह तत्त्व सर्वथा उनकी समझ-शक्तिसे परे ही रहता है। उन बेगोंके छिये तो सगुण-साकार-खरूप ही उपादेय हा है। इसी तत्त्वका परिचय राम-कृष्ण, शिव, देवी आदि सगुण खरूपोंमें प्राप्त है। एक जगह श्रीरामका थान इस प्रकार निर्दिष्ट है—

पमं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापति सुन्दरं काकुत्स्यं करुणार्णवं गुणनिधि विप्रप्रियं धार्मिकम् । पोनद्रं सत्यसंधं दशरथतनयं स्यामलं शान्तमूर्ति के बोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम्॥

शीरामरक्षास्तोत्र-२६)
शीकृष्णके विषयमें भी भारतीय मनीषियोंने अपने
कितानहारा अपनी लेखनीको सार्थक किया है। मधुसूदन
सासती-जैसे पण्डित जहाँ उनका दर्शन 'नीलं महः'के

रूपमें करते हैं; वहीं आचार्य शंकर उनका दर्शन--भजे वजैकमण्डनं समक्तिचत्तरञ्जनम्'के रूपमें करते हैं। अन्य तत्त्ववेत्ता उस परमात्माक विष्णुरूपको ही सर्वाधार और साध्य मानते हैं। जिनके तात्विक वर्गन और विवेचनोंसे प्रन्थ भरे पड़े हैं। इसी प्रकार शिवके वित्रयमें भी मनीषियोंने भक्तिकी धारा बहाकर उसमें अपने-अपने भाव-प्रसून अर्पित किये हैं। शिवके समप्र परिवारका वर्णन, उनके बाहनरूप वृपभ, निवास-स्थान कैलास तथा शिवपार्षद और सेवकसमूह-गुणों इत्यादिका वर्णन बड़ा हृदयप्राही है । शिवतत्त्रका सभी वेद, उपनिपद्, शिव, स्कन्दादि पुराणों, 'शिवतत्त्व-रत्नाकेर, 'शिवतत्त्व-सुधानिधि,' तथा रुद्रयामलादि तन्त्रों एवं शैवागमोंमें विस्तारसे उल्लेख है। इस तत्त्वके भिन्न-भिन्न पहल्ल हैं। इसका साधारण परिचय शिवकवच-स्तोत्रादिमें दियं गये उनके नामोंसे प्राप्त होता है । ये नाम हैं—सदाशिव, प्रणव, राशाङ्क-शेखर, कपालमालाधर, नागेन्द्रकुण्डल, नागेन्द्रहार, नागेन्द्रवलय, नागेन्द्रचर्मघर, मृत्युंजय, त्र्यम्बक और त्रिपुरान्तक आदि । इसी प्रकार भगवत्तत्त्वको शक्तिके रूपमें देखनेवाले

भक्तों और साधकोंने आधाराक्तिके रूपमें देवीकी महत्ताका वर्गन मिक्तपूर्ण स्तोत्रोंमें किया है। यह मिक्तप्रारा छक्ष्मी, उमा, सरस्वती, वाराही, अन्नपूर्णा, दुर्गा, राधा, भवानी, काली, शीतला आदि देवियोंके गुण-क्रीतन तथा लीलाओंके रूपमें मार्कण्डेयपुराण, देवीभागवत आदि प्रन्थोंमें सुलभ है। शक्तितत्त्वका अतीत्र ढोकप्रिय तात्त्विक वर्णन दुर्गासप्तशतीमें किया गया है। इस प्रकार भारतीय तत्त्वदर्शी मनीपियोंने अपने-अपने भावके अनुसार इष्टदेवोंमें उस अनिवचनीय ब्रह्मरूप भगवत्त्वका दर्शन किया है। जनमानसने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उनमेंसे अपने प्रिय किसी एक खरूपको अपनाकर साधनाद्वारा अपने इदयको शान्ति और विश्राम दिया है।

आजकी आवश्यकता है कि हम अपने दैनन्दिन जीवनमें सर्वत्र और सर्वव्यात भगवत्तत्त्वका अनुभव करें। जिस तत्त्वके उन्मेष और संकल्पमात्रसे दिन और रात्रि, सृष्टि और प्रख्यका अस्तित्व है और जागतिक प्रत्येक क्रिया यहाँतक कि स्वासका आना-जाना भी जिसके अभीन है, ऐसा वह सर्वशक्तिमान् परमतत्त्व निश्चितरूपसे ध्येय और आराधनीय है। जो रात्रिमें सोनेकी, प्रातःकाल जागनेकी प्रेरणा देता है, जो

तत्त्व हमारे खाये हुए अन्नका पाचन करता है, जिस तत्त्वके अनुप्रहसे हमें पवन, जल, प्रकाश आदिकी उपलब्धि होती है, उस सर्वोपिर तत्त्वके प्रति हमें कृत्व होना चाहिये। उसे जानने और प्राप्त करनेका सत्ता प्रयास करते रहनेमें ही इस जीवनकी सार्थकता है।

अपने विभिन्न रूपोंमें अस्तित्वका परिचय देनेवाली उस सर्वमयी शक्तिको हम चाहे जिस नामसे पुकार, बह तस्त्व एक है। हमें अपने जीवनमें प्रतिपल यह अन्वेषण करते रहना चाहिये कि पारमार्थिक सत्तामं प्रवर्तमान परब्रह्म परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है और जगत्मं हर्यमान समस्त क्रिया-कलाप उसीका लीला-विन्यास य खेल है। इस प्रकार सर्वत्र उसी 'एक'का दर्शन करते हुए खधर्मका पालन करनेमें ही मानवकी समझदारी, संस्कारिता और सफलता है।

भगवत्तत्वका सामान्य परिचयं

(लेलक-डॉ॰ श्रीरञ्जनबी एम्०ए॰, गी-एच्०डी॰)

शास्त्रोंकी परिचर्चामें अनुबन्ध-चतुष्टयका महत्त्वपूर्ण स्थान है । मिक्तशास्त्रमें ये अनुबन्ध इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—-१-अधिकारी (जीवतत्त्व), २—सम्बन्ध-तत्त्व (भगवत्तत्त्व), ३—अभिष्ठेय-तत्त्व (उपास्य-तत्त्व) और ४-प्रयोजन-तत्त्व (मिक्ततत्त्व) । इस शास्त्रमें इस अनुबन्धचतुष्टयकी व्याख्या निम्नरूपेण की गयी है——

अधिकारी-तत्त्व

श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवका कथन है कि भक्तिशास्त्रके प्रति श्रद्धावान् प्रत्येक व्यक्ति या प्राणी (जीव) इसका अधिकारी है। जीव श्रीकृष्णका नित्य दास है। वह श्रीकृष्णकी तटस्था शक्ति है और मेद-अमेदावस्थामें प्रकाशित होता रहता है——

जीवेर स्वरूप ह्य कृथ्णेर निरयदास।
कृष्णेर तपस्या शक्ति भेदाभेद प्रकाश॥
(श्रीचैतन्यचरितामृतमें चैतन्यदेव)

भगवान्की तीन शक्तियोंकी परिणति इस अवित्य भेदाभेदकी उत्पत्ति ही है—-

कृष्णेर साभाविक तीन भक्ति परिणिते। चित्-शक्ति, जीवशक्ति, भार माया-शक्ति॥ (चैतन्यदेव)

चित्-शक्ति, जीव-शक्ति और माया-शक्ति-ये ती प्रकारकी भगवान्की खाभाविक शक्तियाँ हैं। हुन जीव-शक्तिको तटस्था-शक्तिके नामसे अभिहित किया गर्व है। चित्-शक्ति अन्तरङ्गा शक्ति है और माया-शक्ति विद्या । नारदपञ्चरात्रके अनुसार चित् परार्थ हो सस्वन्धभूतरूपसे निकलकारे तटस्थ होकार रहता है।

गुण-रागद्वारा रिक्रत होकर वह तटस्थ चिद्रुप ही जीव बहुद्धाता है । गीताके अनुसार भी भगवान्की प्रकृति दो प्रकारकी है। (गीता ७।४-५)। अब प्रश्न उठता है कि तब फिर भगवत्तत्व क्या है! बस्तुतः पहले हमें आत्मतत्त्वको जानकर तत्र भगवत्तत्वका ज्ञान करना चाहिये। श्रीकृष्णने कहा है— आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-माश्चर्यबद्धद्ति तथैव चान्यः।

आश्चर्यवज्ञैनमन्यः श्टणोति

थुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ (गीता २ । २९)

इसी प्रकार 'देवीपुराण'में भगवान्के भी अनेक रूप बतलाये गये हैं--

यथा तु व्यज्यते वर्णविचित्रे स्फटिको मणिः। तथा गुणवशाद देवी तात भावेषु वर्ण्यते॥ एको भूत्वा यथा सेघः पृथक्त्वेनावतिष्ठते। वर्णतो रूपतञ्ज्ञैव तथा गुणवशाद्यथा॥ (देवीपु० ३७ । ९४-९५)

^{'एक} स्फटिकमणि जैसे भिन्न प्रकारके वर्णोमें क्षाशित होती है, उसी प्रकार देवी भगवती भी सत्त्वादि गुगोंके तारतम्यके कारण नाना भात्रोंमें वर्णित होती हैं। एक ही मेघ अपने वर्ण और आकृतिके कारण श्यक् पृथक् रूपोंमें दिखायी पड़ता है। ठीक उसी क्तार देवी भी गुणोंके वहासे पृथक्-पृथक् अवस्थित होती है। पश्चात्त्य विद्वानोंकी मान्यता है कि वेदमें वहुदेवतावादका साम्राज्य है। पर हिंदूशास्त्र अनेकत्वमें भी एकत्वकी स्थापना करते हैं। वे कहते हैं— महाभाग्याद् देवताया एक एव आत्मा वहुधा स्त्यते। पकस्य आत्मनः अन्ये देवाः प्रत्यिक्कनो भवन्ति।

(निरुक्त, दैवतकाण्ड, अध्याय ७।४।८-९)। विभिन्न पुराणोंमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी महिमाका भेन हैं। पुराण-शास्त्र नार-नार इस बातपर भे देते हैं कि एक ही पर्मतत्त्वके विविध प्रकाश है और वे खरूपतः अभिन्न हैं—

रजः सत्त्वं तमश्चेति पुरुषं त्रिगुणात्मकम्। वदन्ति केचिद् प्रक्षाणं विष्णुं केचिच शंकरम्॥ एको विष्णुस्त्रिधा भूत्वा खजत्यत्ति च पाति च। तस्माद् भेदो न मन्तन्यस्त्रिषु देवेषु सत्तमैः॥ (पद्म० किया० २ । ५-६)

'सत्, रज और तम—इन त्रिगुणोंको ही शरीरमें धारण करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु और शंकरका नाम निर्देश किया जाता है। फललरूप सृष्टि, स्थिति और संहारका कार्य एक ही पुरुष जो सर्वव्यापी है अपने विविध रूपमें करता है । इसे ज्ञानी पुरुष मेदकी दृष्टिसे नहीं देखता । विष्णुपुराणका कथन है---

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्। स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ (१।२।६२)

'एकमात्र भगवान् जनार्दन ही सृष्टि, स्थिति और संहाररूप क्रियामेदसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव-संज्ञासे अभिहित होते हैं। वेदादि समस्त भक्तिशास श्रीकृष्णके पारतम्यको स्त्रीकार करते हैं । उनके अनुसार श्रीकृष्ण प्रतम हैं और उनके अतिरिक्त कोई उपास्य-तत्व नहीं। प्रायः सभी शास्त्र इस तथ्यको स्वीकार करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुकी खीकारोक्ति है—

कृष्णेर स्वरूप विचार सुन सनातन। अद्वय ज्ञान तत्व व्रजे व्रजेन्द्रनन्द्रन ॥ सर्व आदि सर्व अंशी, किशोर शेखर। चिदानन्द देह सर्वाभ्रय सर्वे इतर ॥ (सनातन-शिक्षा)

'कृष्ण अद्वय-ज्ञानतत्त्व और व्रजमें व्रजेन्द्र-नन्दन हैं । वे सबके आदिकारण हैं, सब उन्हींके अंश हैं। वे अंशी हैं, वे किशोर-विभोर-शेखर श्रीकृष्ण चिदानन्द-मूर्ति हैं, वे सर्वेश्वर हैं और सबके आश्रय हैं।

र्दृश्वरः परमः कृष्णः सचिद्ानन्द्विप्रहः। अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

'श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं, सचिदानन्द-विप्रह हैं, अनादि हैं और (सबके) आदि मूळकारण हैं। गोविन्द सब कारणोंके कारण हैं अर्थात् उनका कारण कोई नहीं। श्रीमद्भागवतमें उसे ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्—इन तीन शब्दोंसे अमिहित किया जाता है। तत्त्वद्शीं इसे अद्भय-ज्ञान-तत्त्व कहते हैं—

बद्दन्ति तत्तत्त्वविद्दस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ (श्रीमद्रा॰ १ । २ । ११)

एक ही अद्रय-तत्त्वके ये तीन रूप हैं। सर्वप्रथम जिज्ञासाके द्वारा शुद्ध-सात्त्विक हृदय-पटपर भगवद्विग्रहकी एक आलोक किरण प्रतिमासित होती है, जिसे देखना सम्भव नहीं होता। इस आलोक-किरणको निर्गुणमार्गी निर्गुण, निर्विकार, निराकार आदि नामोंसे विभूषित करते हैं। यही आलोक-किरण जब प्रकाशरूपमें साधकके हृदयाकाशमें फैल जाती है तो इसे परमात्माके नामसे पुकारा जाता है। योगी पुरुष इसे ही अन्तर्यामी कहते हैं। इससे ब्रह्मकी अनुभूति और परमात्मदर्शनका माब स्पष्ट दीखता है, यही भगवत्तत्त्व और ब्रह्मतत्त्व है। ब्रह्मतत्त्वके सम्बन्धमें उपनिषद्में कहा है—'एकमेवाद्वितीयम' सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'

इसीके आधारपर श्रीकृष्णको अद्वय ज्ञानतस्य कहा गया है तथा बही परम ब्रह्म भगवान् हैं। उसमें ज्ञान, बल, क्रिया खामाविक है और इसीके आधारपर संसारके समस्त क्रिया-ज्यापार संचालित होते हैं। स्वेताश्वतरोपनिषद् कहती है—

परास्य शक्तिर्विविधेव भ्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलकिया च॥ (६।९) इसी बातको श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार त्र्यक्त

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमिष्कलात्मनाम्। जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति सायया॥ (१०।१४।५५)

किया गया है-

'श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जीवात्माओंकी आत्मा हैं। वे जगत्के हितके छिये अपनी योगमायासे सर्व-साधारणके सामने सांसारिक जीवके समान दीखते हैं और जगत्में उनका कोई खामी नहीं।' सभी उनके राम एवं सेवक हैं। उनका शासक उनपर आज्ञा चळानेवाळ मी नहीं है। सब उन्हींकी आज्ञा और प्रेरणाका अनुसरण करते हैं और उनके नियन्त्रणमें रहते हैं। उनका कोई चिह्न-विशेष भी नहीं है। वे परिपूर्ण हैं, निराकार है, कारणोंके कारण हैं। न उनका कोई जनक है और न कोई शासक। वे तो अजन्मा तथा संभा खतन्त्र और सर्वशक्तिमान् हैं—

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैच च तस्य लिङ्गम्। स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥

(इवेताश्वतर० ६ । ९)

अथर्वनेदके ११ वें काण्डके ७वें 'उच्छिष्टसूक्तग्में भी प्रायः यही बात कही गयी है । यहाँ ऊच्छिष्टका राब्दार्थ है— 'अवशिष्ट पदार्थ ।' दश्य-प्रपञ्चके आत्यन्तिक निष्ध करनेके बाद जो कुछ बच जाता है, वही है— उच्छिष्ट अर्थात् बाधरहित परब्रह्म । इसी परब्रह्म उपनिषदें नेति-नेति कहकर निरूपण करती हैं— आदिशो नेति नेति (बृह० उप०२ । ३।११) नेह नानास्ति किंचन (बृह० उप०४। २।२१)

य 'उच्छिष्ट' ब्रह्मशब्दातीत है। इसीपर सारे नाम-रूप अवलम्बित हैं। यही लोकोंका आश्रय है। कार्य और कारण है। इसके अन्तर्गत इन्द्र और सम्मि सम्यक्-रूपसे निर्विष्ट रहता है—

उच्छिष्टे नाम रूपं योच्छिष्टे लोक आहितः। उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम्। (अथर्ववेद ११।७।१) मृत्वेद इसी तत्त्वको पुरुषके रूपमें व्याख्यायित करता है। उसका प्रसिद्ध पुरुष्पमूक्त निम्न प्रकारसे है— पुरुष एवेदं सर्वे यद् भूतं यच्च भाव्यम्॥ (ऋग्वेद १०।९०।२)

तारपर्य यह कि पुरुष—'पुरिषु रोते—पुरुषः' अर्थात् शरीररूपी पुरमें रहनेवाला व्यक्ति । यही तत्त्व विश्वका सृजनकर इसमें प्रवेश कर लेता है और यही कारण है कि इसे हम पुरुषकी संज्ञासे अभिहित करते हैं, जो जगत्के अतीत, वर्तमान और भविष्यमें विद्यमान रहता है । ऋग्वेर आगे यह भी कहता है कि इन्द्र, करण, मित्र, अग्नि, सुपर्णा, यम, मातरिश्वा आदि एक ही तत्त्वके अनेक नाम हैं—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-रथो दिव्यः स सुवर्णो गरुतमान् । एकं सद्विपा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋग्वेद १ । १६४ । ४६)

उसकी स्पष्ट घोषणा है कि एक ही इन्द्र अनेक रूपोंमें अपनी शक्ति प्रकट कर रहा है—'इन्द्रो मायाभिः पुरुष्ण ईयते' (अथर्ववेद ९।१०।८०)

'देवीभागवत'में पराभक्तिके सहारे इस तत्त्वकी प्राप्ति निर्दिष्ट है। इस भक्तिमें साधक, साधना और साध्य—सभी फारस हो जाते हैं—

अधुना तु पराभक्तिं प्रोच्यमानां निबोध मे।
महुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम्॥
कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मिय स्थिरम्।
वेतसो वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा॥
(देवीभागवत ७।३७।११-१२)

'अव मैं पराभक्तिके विषयमें कह रहा हूँ, तुम ध्यान

देकर सुनो । जिसको पराभिक्त प्राप्त हो जाती है, वह साधक सदा-सर्वदा मेरा गुण-श्रवण तथा मेरा नाम-कीर्तन करता रहता है । कल्याणरूप गुणरत्नोंकी खानके सददा मुझमें ही उसका मन तैल्रधारा-सददा सदा अविच्छिन्नमावसे स्थिर रहता है।

भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैच झानं प्रकीर्तितम्। वैराग्यस्य च सीमा सा झाने तदुभयं मतः॥ (देवीभागवत ७।३७।२८)

'ज्ञानी पुरुष भक्ति और वैराग्यकी चरम सीमाको ज्ञान कहते हैं; क्योंकि ज्ञानके उदय होनेपर भक्ति और वैराग्यकी सम्पूर्णता सिद्ध हो जाती है और आगे यह भी कहा गया है कि जिसको पराभक्ति प्राप्त हो गयी है, वह साधक आनन्दित होकर परम अनुरागपूर्वक मेरा ही चिन्तन करता रहता है और इस प्रकार विन्तन करते-करते अन्तमें मुझको अपनेसे अभिन्न समझकर 'मैं ही सिच्चदानन्दविजयी भगवती हूँ' ऐसा मानता है।

परानुरत्तया मामेव चिन्तयेद्यो ह्यतन्द्रितः। स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः॥ (देवीभागवत ७।३७।१५)

'खाभेदेनैवेति अहमेव सिच्दानन्द्रूपिणी भगवती असीति भावयता इत्यर्थः।' (शैव नीलकण्ड)

और फिर ज्यों-ही पराभक्तिका उदय होता है, वह तत्काल ही भगवान्में विलीन हो जाता है—

इत्थं जाता पराभक्तिर्यस्य भूधर तस्वतः। तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विखयो भवेत्॥ (देवीभागवत ७।३७।२७)

'समोऽहं सर्वभूतेषु' इत्यादिकी जानकारी ही भक्तिशास्त्रका रहस्य है और यही भगवत्तत्त्वका मूछ उत्स भी है।

भागवत-जीवन-दर्शन

(लेखक-पं॰ श्रीरामजी उपाध्यायः एम्॰ ए०, डी॰ लिट्॰)

वैष्णव-धर्मकी रूपरेखा विष्णु-चितिके आदशोंके अनुरूप विकसित हुई है। विष्णु वैदिक देवता हैं। ऐतिह्यविदोंका कहना है कि वैदिककालमें ही विष्णुकी स्याति सर्वश्रेष्ठ देवके रूपमें हो चुकी थी। इस परिश्वितमें इस धर्मका मूल विष्णु-सम्बन्धी वैदिकसूक्तों और कथानकोंमें माना जा सकता है। उदाहरणके लिये ऋग्वेदका १। ११८का पाँचवाँ मन्त्र देखा जा सकता है।

उसमें विष्णुकी मिक्तका परम बीज है। इस धर्ममें ऋग्वेदमें वर्णित देवताओंकी पराक्रमशीलता, उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित ज्ञान और दर्शन प्रधान अङ्ग हैं। वैदिक साहित्यमें प्रतिपादित याज्ञिक कर्मकाण्डको उपनिषदोंमें कोई विशेष मान्यता नहीं प्राप्त हुई। भागवतधर्ममें जो उपनिपदोंका तत्त्वज्ञान प्रतिष्ठित हुआ, उसके प्रकाशमें याज्ञिक कर्मकाण्डको स्थानपर सामाजिक परिस्थितियों और उपनिषदोंकी शिक्षाओंके अनुरूप मिक्तकी प्रतिष्ठा हुई।

भागवत-धर्मके आरम्भिक खरूपका परिचय महा-भारतसे मिळता है। भागवत-धर्मका प्रमुख प्रन्थ गीता है। इसके अतिरिक्त महाभारत शान्तिपर्वके नारायणी-योपाख्यानमें नारायणीयधर्मके नामसे भागवतधर्मका वर्गन किया गया है। इसके अनुसार महर्षि नर तथा नारायण परब्रह्मके प्रतिनिधि हैं। ये इस धर्मके अवतार और मूछ प्रवर्तक हैं। छोककल्याण-हेतु ख्यं भगवान्ने ही आरम्भमें इस धर्मका उपदेश दिया।

समय-समयपर प्रमुख उन्नायकों हारा वैष्णवधर्मका अम्युत्थान हुआ । आरम्भमें भगवान् श्रीकृष्णके हारा सात्वत जातिके छोगोंमें इसकी प्रतिष्ठा हुई थी । उस युगमें श्रीकृष्णको विष्णुका अवतार मान छिया गया और उन्हींकी 'भगवान्' उपाधिके अनुरूप इसे भागवतधर्म कहा गया । सात्वत जातिमें इसका प्रयम प्रचार होनेके कारण इसे 'सात्वतधर्म' भी कहा गया । परवर्ती युगमें नारद और भागवतपुराणके रचयिता व्यासने इस धर्मकी प्रवृत्तियोंको स्पष्टरूप प्रदान किया ।

श्रीकृष्णने भगवद्गीताकी शिक्षाओं के द्वारा भागका धर्मकी रूपरेखा स्थिर कर दी । इसमें वेदवाद, संन्यास और यज्ञविधानको गौण ठहराकर भगवद्गणबुद्धि निष्कामकर्म करते रहनेकी प्रवृत्तिको सर्वोत्कृष्ट बताया गया है। कृष्णके उपदेशका सार है कि भक्तिसे परमेश्वरका ज्ञान हो जानेपर भगवान्के भक्तको परमेश्वरके समान जगत्के धारण-पोषणके छिये सदा यन करते रहन चाहिये। महाभारतके नारायणीय आख्यानके अनुसार नारायणीय या भागवतधर्मप्रवृत्ति-(कर्म-) प्रधान है।

वैदिक विष्णुके विषयमें ऋग्वेद-(१।१५४।३) में कहा गया है कि---

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण
मुगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ॥
अर्थात्—'वह भयंकर वन्य पशुकी भाँति पर्वतम्
विचरण करता है।' वैदिक युगमें विष्णुके व्यक्तिवर्वः
विशेषताएँ—उनकी सहनशीळता और अद्वितीय पर्विकः
परायणता है। पौराणिक युगके विष्णु यथासम्भव स्त्री

१-नारायणीयोपाख्यानके लिये देखिये-महाभारत शान्तिपर्व ३२१-३३९ वें अध्यायतक । २-पद्मपुराण भूमिला ७१ वें अध्यायके अनुसार राजियों में वैद्यावधर्मके प्रथम प्रवर्तक राजा ययाति हैं । २-शान्तिपर्व ३३५-७६। ४-ऐतरेयब्राह्मण १।१ तथा शतपथब्राह्मण १४।१।१ के अनुसार विष्णु सर्वोच्च देव हैं । ऋग्वेदका पुरुष विष्णुकी पुरातन महिमाका बीज है-पुरुषस्क ।

गुणोंकी खानि हैं, जिनकी कल्पना मनुष्य कर सकता है। उपनिषदोंमें ब्रह्म या परमात्माके जिन गुणोंकी कल्पना की गयी है, वे प्रायः अपने मूल्क्रपमें अथवा संबर्धित रूपमें गीताके माध्यमसे पौराणिक विष्णुमें प्रतिष्ठित हैं।

विणुका व्यक्तित्व है—अतिशय शक्तिशास्त्रित्व, अपकारपरायणत्व और आनन्ददातृत्व । पौराणिक मान्यताके अनुसार विण्णु परमपावन, पुण्यखरूप, वेदके ज्ञाता, वेदमन्दिर, विद्या और यज्ञोंके आधार, गीतज्ञ, गीतप्रिय सभी लोकोंके उद्भव और तारक, भवसागरमें डूबने- बालेंके लिये नौका-खरूप, महाकान्त, अत्यन्त उत्साही, महामोह-विनाशन, यज्ञवल्लभ, सभी भूतोंमें निवास करनेवाले, व्यापक, विश्ववेत्ता, विज्ञान, परमपद, शिव, मोक्षदार, सभी लोकोंका भरण करनेवाले, सबके आश्रय, सर्वमय, सर्वखरूप, शान्त, सुख, सुहृद्, ज्ञानसागर, स्वाश्रय, यज्ञखरूप और पुरुषार्थक्तप हैं।

विण्णुके व्यक्तित्वमें अतिशय लोक-प्रियता है । भागवत-(९।४।६३)में स्वयं विष्णुके मुखसे बहुट्याया गया है कि—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्गस्तहद्यो भक्तेभैकजनप्रियः॥

-- भैं भक्तके अधीन हूँ; पूर्णतया परतन्त्र हूँ। सबु-भक्तोंके द्वारा मेरा हृदय स्त्रीकृत है। भक्त मेरे श्रि हैं।

एक ओर विष्णुभगवान्की अप्रतिम लोकहित-कािणी कार्यक्षमता और दूसरी ओर उनकी अनुपम मक्कप्रियता है। ये विशेषताएँ उनकी ओर भक्तोंकी आकृष्ट करनेमें पर्याप्त समर्थ हैं। वैष्णव-धर्मके अनुयायी वेष्णवोंका व्यक्तित्व विष्णुके व्यक्तित्वके अनुरूप विकसित करनेकी योजना बनायी गयी है। उसके छिये सभी प्राणियोंके प्रति दयाभावकी प्रतिष्ठा इस आधारपर की गयी है कि भगवान् सभी प्राणियोंमें आत्माके रूपमें विराजमान हैं। इस प्रकार प्राणियोंका अनादर विष्णुका अनादर है। नियम था कि प्राणियोंसे वैर रखकर मन शान्त नहीं किया जा सकता। भक्त सभी प्राणियोंमें स्थित भगवान्को अपने हृद्यमें देखते हुए सबके साथ अपनी एकस्वजता स्थापित कर छे।

भागवतकी दृष्टिमें आदर्श मानव श्रद्धालु, भक्त, विनयी, दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि न रखनेवाला, सभी प्राणियोंका मित्र, सेवक, आधिभौतिक वस्तुओंके प्रति विरक्त, शान्तिचत्त, मत्सररिहत, श्रुचि और भगवान्को प्रिय माननेवाला होता है। ऐसे ही व्यक्तिको उच भागवततत्त्व सुननेका अधिकार होता है। सम्पत्ति और विपत्तिमें विकारका न होना और उत्तम, मध्यम तथा अधमको समान मानकर सममाव रखना आवश्यक है। भगवान् समचित्तवर्ती हैं।

भागततके अनुसार वैण्णवको काम और अर्थ-सम्बन्धी प्रवृत्तियोंसे अलग रहना चाहिये; क्योंकि इनके चिन्तनसे मनुष्यके सभी पुरुपार्थोंका नारा हो जाता है और वह इनकी चिन्तासे ज्ञान-विज्ञानसे च्युत हो जाता है। " मनमें कामनाके उदय होते ही इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धेर्य, युद्धि, छजा, श्री, तेज, स्मृति और सत्यका नारा हो जाता है।" शरीर, खी, पुत्र आदिके प्रति आसक्ति छोड़ना, देह और गेहका आवश्यकतानुसार सेवन, आवश्यकताकी पूर्तिमात्रके लिये अपेक्षित धनको अपना मानना, पशु-पक्षियोंको

५- नियुत्ताण ४भृमिखण्ड ९८ वॉ अध्याय । ६ -इस भावके अन्य इलोक भागवत ९ । ४ । ६४-६८ । ७-भागवत १ । २१ । २१ -६८ । ७-भागवत ४ । २१ । १२, १३, १६ । १०-भागवत ४ । २१ । ११ -२७ । ८-भागवत ३ । ३२ । ३९-४३ । ९-भागवत ४ । २० । १२, १३ -भागवत ३ । १० । ८ ।

पुत्रवत् समझना, धर्म, अर्थ और कामके लिये अधिक कष्ट न उठाना, अपनी भोग्य सामग्रीको सभी प्राणियोंके साथ बाँटकर भोगना आदि भागवत-धर्मानुयायी गृहस्थकी प्रगति-दिशामें प्रकाश-स्तम्भ हैं। विणायकी लोकोपकार-वृत्ति उसकी सर्वोच्च आराधना है। उसने कामना की है कि—

न कामयेऽहं गतिमोध्वरात्परा-मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा । आतिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः॥

भैं ईश्वरसे परम-गतिकी कामना नहीं करता, जिसके द्वारा आठों ऋद्भियाँ अथवा मोक्षकी सिद्धि हो

सकती है। मैं चाहता हूँ कि सभी प्राणियोंके अन्तर्भे प्रतिष्ठित होकर उन सबके दुःखको अपना हूँ, जिस्से वे दु:खरहित हो जायँ (श्रीमद्भा०९।२१।१२)।

विष्णुभगवान् के अवतार कृष्णकी इस योजनाका निर्देशन भागवतमें मिछता है, जिसके द्वारा वे वैष्णकें व्यक्तित्वका विकास करते हैं। जिस व्यक्तिपर कृष्णका अनुप्रह होता है, उसका सर्वस्व वे शनै:-शनै: अपहरण कर छेते हैं। ऐसे दुःखी व्यक्तिको उसके खजन छोड़ देते हैं। अपने उद्योगोंमें विफल होकर वह व्यक्ति कृष्णके अधिक अनुप्रहका पात्र हो जाता है। फला उसे परमहसकी प्राप्ति हो जाती है। भागवतधर्मका यही सुपरिणाम है।

भारतीय जीवनमें भगवान् या ईश्वर

(लेखक--प्रो॰ श्रीरञ्जनसूरिदेवजी)

भारतीय जीवनमें भगवान्की व्यापक मान्यता है। शैवोंके छिये 'शिव' ही ईश्वर हैं तो वेदान्तियोंका ईश्वर 'ज्रह्म' है। इसी प्रकार वौद्धोंके छिये बुद्ध, नैयायिकोंके छिये 'सर्व-कर्ता' जैनोंके 'अर्हत्' या 'तीर्थंकर' और मीमांसकोंका 'कर्म' ही ईश्वर हैं। मुसलमान चिन्तकोंके छिये 'खुदा' तो पाश्चात्त्य दार्शनिकोंके छिये 'गॉड' ईश्वर हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वके मानव-जीवनमें ईश्वरकी विभिन्न परिकल्पनाएँ दीखती हैं।

भग और भगवत्तन्व

भारतीय वाब्बयमें 'भग' शब्दके अनेक अर्थ और उनकी विविध व्याख्याएँ की गयी हैं । प्रकृत-प्रसङ्गमें ज्ञातव्य है कि अणिमा आदि ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—छः ईश्वरीय विभृतियोंको ही 'भग' कहा गया है । इस प्रकार षडैश्वर्य-सम्पन्न परमेश्वर ही 'भगवत्' शब्दसे वाच्य है । 'विष्णुपुराण'का कथन है कि विशुद्ध और सर्वकारणके कारण महाविभूतिशाली परब्रह्ममें ही 'भगवत्' शब्द प्रयुक्त होता है । विष्णु प्रिकृष्णका विशेषण ही 'भगवान्' है ।

पुनः ज्ञान, राक्ति, बल, ऐर्स्नर्य, वीर्य, तेज आदि भगवत् राब्दके वाच्य हैं। यतः ब्रह्म राब्द आदि अगोचर है, इसल्रिये उसकी पूजाके निमित्त भगवत् राब्दहारा ही उसका कीर्तन किया जाता है। अत्र एकमात्र परब्रह्म ही भगवत् राब्दके अधिकारी हैं। पुराणकारोंने श्रीकृष्णको भगवान् राब्दसे अभिहित किया है; क्योंकि वे ऐर्स्वर्य-सम्पन्न थे—

परमातमा परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः। कारणं कारणानां च श्रीकृष्णो भगवान् खयम्॥ इसी प्रकार 'श्रीमद्भागवतपुराण'में भी श्रीकृष्णि भगवान् कहा गया है। 'कृष्णस्तु भगवान् खयम्।

१२-भागवत ७ । १४ । १-१३ । १३-तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः । परमाराघनं ति (श्रीमन्द्रा० ८ । ८ । ४४)

मब बुहुको अर्थात् समस्त जागतिक उपादानको मब बुहुको अर्थात् समस्त जागतिक उपादानको मावन्मय समझना ही भंगवत्तस्व है—'सर्व खिल्वदं महा।' सांख्यके मतानुसार प्रकृति-पुरुष-तत्त्व ही जगत्का मूह कारण है। निष्कर्ष यह कि जगत्का मूह कारण निर्णा-निर्विकार परब्रह्मका चिन्मयस्वरूप ही भगवत्तस्व है। ब्रह्म या ईक्वर

वैदिक परम्परामें ब्रह्म या ईश्वरको सर्वमत अर्थात् सर्वन्यापी कहा गया है । साथ ही ईश्वरप्रणिधानको अतिशय महत्त्व दिया गया है । 'प्रणिधान'का अर्थ है—अन्धी तरह अत्यन्त प्रेमपूर्वक परम विश्वासके साथ श्वरतिशय महत्त्व दिया गया है । 'प्रणिधान'का अर्थ है—अन्धी तरह अत्यन्त प्रेमपूर्वक परम विश्वासके साथ श्वरति शरण, ईश्वरकी प्रपत्ति या ईश्वरका आश्रय । दूसरे अर्थमें अन्छे-बुरे, शुभ-अशुभ सभी कमोंका प्रमुन्तरणोंमें समर्पण भी ईश्वर-प्रणिधान है । महर्षि पतञ्जलिने योगसूत्रमें क्लेश, कमीविपाक और आश्रयसे अस्पृष्ट रहनेकी विशिष्टता, सर्वज्ञता एवं कालतीत तत्त्व और परमगुरुत्वसे संविलत पुरुषको श्वर माना है—'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः, तत्र निरितशयं सर्वज्ञवीजम्, स पूर्वेषामिप गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।' इस परिभाषाके विनेचनमें महर्षिव्यास आदि पुरुषार्थवादियोंने भक्तोंको अमृतभोगमोगी वताया है—

शय्यासनोऽथ पथि व्रजन् वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः। संसारवीजश्चयमीक्षमाणः

स्यान्नित्ययुक्तोऽमृतभोगभोगी ॥

^(ईरगर)प्रणिधानी साधकके संसारके बीज-अविद्या आदि क्लेश विल्कुल नष्ट हो जाते हैं । उनके क्लम-मरणका चक्र समाप्त हो जाता है । वह नित्य प्रमालामें लीन हो जाता है, फिर चाहे वह विस्तरपर पहा हो या रास्तेमें चल रहा हो।

सत्युगके छोग सूर्य, चन्द्र आदिको अपना आराध्यदेव स्वीकार करते थे। आगे चलकर यह स्थान इन्द्र, वरुण आदि देवोंको मिटा, जिन्हें वे एक साथ या एक-एक करके जगत्के सृष्टिकर्त्ता मानने लगे। ब्राह्मण-प्रन्थोंमें ईस्वरके सम्बन्धमें प्रजापतिक रूपमें उनका उल्लेख है। उन्होंने तप किया, जिससे क्रमशः पश्चभूतोंकी उत्पत्ति हुई। पुनः ईस्वरके अश्रुविन्दुके समुद्रमें गिर जानेसे पृथ्वी उत्पन्न हुई अथवा उनके तपसे ब्राह्मण एवं जलकी उत्पत्ति हुई, जिससे सृष्टिका विस्तार हुआ।

भारतीय दर्शनों चार्वाक, जैन, बौद्ध, मीमांसक, सांख्य और योगदर्शन सृष्टिकर्ताक रूपमें ईश्वरके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करते, परंतु न्याय और वैशेषिक दर्शनों में ईश्वरको सृष्टिकर्त्ता माना गया है। नैयायिकोंका कहना है कि सृष्टिका कोई कर्त्ता अवश्य होना चाहिये; क्योंकि सृष्टिकार्य है। कार्य बिना कारण रहे हो नहीं सकता। कुछ ईश्वरवादी पाश्चास्य विद्वान् कहते हैं कि 'यदि ईश्वर नहीं होता तो उसके अस्तित्वकी भावना ही हमारे मनमें नहीं आती।' वैदिकोंका कथन है कि 'विना किसी सचेतन नियन्ताके सृष्टिकी इतनी अद्भुत व्यवस्था सम्भव नहीं थी।' इस प्रकार ईश्वर, परमात्मा या भगवान्के सम्बन्धमें सम्पूर्ण विश्वके दार्शनिकोंने अनेक प्रकारसे कल्पनाएँ की हैं।

जैनदृष्टिमें भगवान् या ईश्वर—

जैनदृष्टिसे परमात्मा, भगवान् या ईस्वरकी सत्ता काल्पनिक है । वस्तुतः ये राज्य शुद्धात्माके लिये प्रयुक्त होते हैं । इस शुद्धात्माके दो रूप हैं—कारणरूप और कार्यरूप । कारणरूप परमात्मा देश-काठावच्छिन शुद्ध चेतन सामान्य तत्त्व हैं, जो मुक्त तथा संसारी जीव पशु-पक्षी-कीट-पतंगतक सबमें अन्वयरूपसे पाये जाते हैं । कार्यरूप परमात्मा वह मुक्तात्मा है, जो पहले संसारी शे, बादमें कर्म-बन्धन काटकर मुक्त हुए हैं । अतः कारण परमात्मा अनादि और कार्य परमात्मा सादि हैं ।

कारणपरमात्माका ही दूसरा नाम 'सकलपरमात्मा' तथा कार्यपरमात्माका अपर नाम-'निकलपरमात्मा' है। एकेह्बर-बादियोंके सर्वन्यापक भगवान् या परमात्मा वास्तवमें कारणपरमात्मा हैं और अनेकेह्बरवादियोंके कार्यपरमात्मा। अतः दोनोंमें कोई विरोध नहीं है, अपितु दोनों बस्तुतः ईश्वरवादी ही हैं।

ईश्वरकर्तृत्ववादके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार समन्वय किया जा सकता है । उपादान कारणकी अपेक्षासे सर्वविशेष जीवोंमें अनुगत रहनेके कारण उक्त कारणपरमात्मा जगत्के सर्वकार्योके कर्ता हैं एवं निमित्तकारणकी अपेक्षासे मुक्तात्मा, बीतराग होनेके कारण किसी कार्यके कर्ता नहीं हैं । जैनदृष्टिवादी अपने विभावोंका कर्त्ता ईश्वरको नहीं मानते, अपित कर्मको मानते हैं। अनेकान्तवादी वचोनंगीमें शद्ध जीवात्मा क्यंचित् (उपादान कारणापेक्षया) कर्त्ता और क्यंचित (निमित्त कारणापेक्षया) अकर्त्ता है । इस प्रकार जैनों और जैनेतरोंके ईश्वर-कर्तृत्वके सिद्धान्तमें नाममात्र-का अन्तर रहता है। जैनदृष्टिका निष्कर्त्र यह है कि सत्रसे उत्कृष्ट आत्मा ही प्रमात्मा है । प्रामाणिक जैनप्रन्थ 'समाधिशतक'की टीकामें कहा गया है कि ·परमात्मा संसारिजीवीय उत्कृष्टभात्मा।' इस प्रकार वस्तुतः अहत् और सिद्भपुरुष ही परमात्मा हैं।

जैनदृष्टिसे सामान्य आत्मा या जीव ही अहत् सिद्धरूप परमात्माकी उपासना करके उन्हींके समान परमात्मा हो जाता है—जैसे वैदिकमतमें शिवकी उपासना करनेवाले विशिष्टात्मा अपनेको 'शिवोऽहम्' या बद्धाकी उपासना करनेवाले अपनेको 'शहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं । सच पृष्टिये, तो सामान्य आत्माका विशेषीकरण ही परमात्मा है। जिस प्रकार चन्दन-वनमें उसके सम्पर्कमें रहनेवाला सामान्य काष्ट्र भी चन्दनकाष्ट्र बन जाता है, उसी प्रकार परमात्मा या सिद्ध अहत्के संसर्गमें रहनेवाला सामान्य आत्मा भी परमात्माका पद प्राप्त कर लेता है। यही वैदिकोंका

भगवत्सायुज्य है। ज्योतिसे भिन्न अस्तित्व रखनेवार्धं वर्तिका ज्योतिकी उपासना-(सांनिच्य-)से क्षयं ज्योतिर्मय वन जाती है, उसी प्रकार परमात्माक्षं उपासना-(भगवत्सािकाच्य-)से आत्मा या जीव खयमेव परमात्मा बन जाता है। दूसरे शब्दोंमें कहें ते सामान्य आत्मा अपने चित्त्वक्रपकी ही चिदानन्दम्य क्रपसे तपोच्यानद्वारा आराधना करके विशिष्टात्मा य परमात्मा हो जाता है—जिस प्रकार बाँस वायुके माध्यम्ये अपनेको अपनेसे ही रगड़कर अग्निक्रप हो जाता है।

जैनदृष्टिसे 'भगवान्' और 'ईश्वर'की परिभाष भी अपनी मौलिकता रखती है। 'धवला' प्रन्थमें निर्देश है कि ज्ञानधर्मके माहास्म्योंका नाम ही 'भा है और जो भगसे सम्पन्न हैं, वे ही भगवान् हैं— 'ज्ञानधर्ममाहात्म्यानि भगः ज्ञांऽस्यास्तीति भगवान्।' इसी प्रकार—'द्रव्यसंप्रह'की टीका-(१४।४०।७) में कहा गया है कि 'केवल ज्ञान आदि गुणरूप ऐश्वर्षी युक्त होनेके कारण जिनके पदकी अभिलाय करते हुए इन्द्र आदिदेव भी जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं वे ही ईश्वर हैं—'केवलज्ञानादिगुणेश्वर्ययुक्तस्य सतो देवेन्द्राह्योऽपि तत्पदाभिलाषिणः सन्तो यस्यां कुर्वन्ति स ईश्वराभिधानो भवति।'

जैनदृष्टिमें आत्माके सुख-दु:ख, खर्ग-नरकमें गमन-गमन किंतु, समस्त कार्य खयं आत्माके ही कर्मोद्वा होते हैं। यों, आत्मा तो तटस्थ या पङ्गुचत् है। ब खयं कहीं न तो आता है, न कहीं जाता है, अणि कर्म ही उसे तीनों छोकोंमें भरमाता-भटकाता रहता है।

वास्तवमें, आत्मा ही प्रमात्मा है। ज्ञानार्गवर्ग कहा गया है—आत्मा जब विशुद्ध ध्यानके बलसे करि रूपी र्धनको भस्म कर देता है, तब वह प्रमात्मा है जाता है?—

अयमात्मा खयं साक्षात् परमात्मेति तिश्चयः। विशुद्धश्चाननिर्धृतकर्मेन्धनसमुस्करः (२१। ३। २२१)

भगवत्तल-एक विवेचन

(लेखक-- भीरवीन्द्रनाथजी, बी ० ए०, एल-एल्० बी०)

मनुष्य अपनी उन्नित और पारलैंकिक कल्याणके क्रिये जिस तत्व या शक्तिका भजन-पूजन करता है, अस्का नाम भगवान् है। भगवान् शब्दकी उत्पत्ति अस्का सेवायाम्' धातुसे हुई है। भजनमें सेवाकां प्रधानता है। स्पष्टतया, जिस शक्तिके सम्मुख साधक अत्मसमर्पणकर उनका सेव्यके रूपमें पूजन-अर्चन करता है, वह शक्ति उसके लिये भगवान् है। ब्रह्मका वह रूप, जिससे जगत्का पालन-रक्षण होता है, वह तत्व भगवत्त्व है।

सृष्टिकी उत्पत्तिके पूर्व जो चेतनतत्त्व विद्यमान था,

उसे ब्रह्म नामसे सम्बोधित किया जाता है। ब्रह्मका
गुण है—बृहत्, बृद्धि एवं विशास्त्रता। जिस तत्त्वमें
सब कुछ परिव्यात हो जाय अथवा जिससे सब कुछ
व्यात हो रहा है या जो सबमें व्यात है, उसे
ब्रह्म कहते हैं। ऐत्तरयोपनिषद्में आता है कि
विश्वां जीवोंकी रचनाके बाद मूर्धाद्वारसे जीवोंके
विर्णिएमें प्रवेश किया (१।३।११)।

भगवान् कृष्ण गीतामें भी कहते हैं कि वे सभी
प्राणियोंमें विद्यमान रहते हैं (१०।३९)।
ससे स्पष्ट होता है कि भगवान् सर्वत्र व्याप्त
हैं। कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ भगवान्
विद्यमान न हों। यह सकल जगत् उनके कारण ही
कियाशील है। मनुष्य परमात्माके अभावमें कोई भी
किया करनेमें असमर्थ है। जीवधारियोंमें आत्माके
रूपमें जो तत्त्व विद्यमान है, उसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्मसे
जुड़ा रहता है। ईश्वरांशके निकलते ही शरीरकी
रिन्याँ निष्क्रिय हो जाती हैं। यदि आत्मतत्त्वसे
भगवत्तत्व मिन्न होता तो आत्माद्वारा शरीरका त्याग
कर दिये जानेपर भी भगवत्तत्त्वकी पृथक शक्तिसे

शारमतत्त्व व भगवत्त्त्वके पारस्पिक सम्बन्धोंकी पृष्टि होती है। ऐतरेयोपनिषद्-(१।२।४) में ही आता है कि पुरुष-शरीरमें क्रियाशीख्ता छानेके छिये ब्रह्मने अग्नि, वायु, सूर्य, दिक्पतियों, चन्द्रमा तथा जल आदि देवताओंको उसमें प्रवेश करनेका आदेश दिया। कहनेका तात्पर्य यह है कि इन देवताओंकी शक्ति पाकर मानव-शरीरकी इन्द्रियाँ क्रिया करनेमें सक्षम होती हैं। फिर भी पूर्ण क्रियाशील होनेक लिये शारिरको आत्मतत्त्वके रूपमें भगवत्त्त्वके अंशकी आवश्यकता रहती है। इससे इस सिद्धान्तकी पृष्टि होती है कि सृष्टिके विकासके साथ-साथ भगवत्त्व भी व्यापक होता जाता है।

जगत्-उत्पत्तिकं कारणोंपर चिन्तन-मनन करनेसे भी तीन तत्त्वोंका पता चलता है। ये हैं-प्रकृति, काल और ईश्वर । इनमें भी भगवान्की प्रधानता स्पष्ट है । जगत्के स्ररूपका अध्ययन करनेसे सृष्टि प्राकृतिक पश्चभूतोंका पुत्र दिखायी देती है । वस्तुतः कोई भी ऐसा पिण्ड नहीं है, जिसकी रचनामें अग्नि, वायु, आकाश, जल और पृथ्वीका संयोग न हुआ हो । किंतु मात्र पद्मतत्त्वोंके संयोगसे विभिन्न रूपोंकी रचना होना तथा उनमें चेतनाका संचार होना सम्भव नहीं है। लोकमें कलाकार अनेक मुन्दर मूर्तियोंकी रचना करनेके पश्चात् भी उनमें चेतनाका संचार नहीं कर पाते हैं और उनकी कला-कृतियाँ निजीव ही रह जाती हैं। प्रकृतिवादी विज्ञान इस बातका उत्तर देनेमें असमर्थ है कि पश्चभूतोंद्वारा निर्मित शरीरमें किस प्रकार चेतनता आती है। पर ईश्वरवाटी विद्वान् इसका उत्तर देनेमें समर्थ हैं कि इसके लिये खयं ब्रह्म शरीरमें कैसे प्रवेश करता है। इस प्रकार प्रकृति अथवा पश्चतत्त्र्योंका संयोग तबतक कोई सजीव या निर्जीव रचना करनेमें सक्षम नहीं है, जबतक उन्हें किसी अलौकिक सत्ताद्वारा शक्ति नहीं प्राप्त होती है। यही अलौकिक सत्ता प्रकृतिमें भी भगवतत्त्र्यके रूपमें क्रियाशील रहती है।

कालतत्त्वके बारेमें विचार करनेपर यह पता चलता है कि यह जगत् समयद्वारा नियन्त्रित है। सभी सजीव, निर्जीव तथा वृक्षों आदिके उत्पत्ति, स्थिति और विनाशका जो क्रम देखनेमें आता है वह जगत्के काल्वद्र सिद्र करनेमें प्रमुख भूमिका निभाता है। लोकहरू प्रमाणोंसे यह प्रमाणित होता है कि जीवोंकी उत्पत्ति किसी काल-विशेषके लिये होती है और समय पूर्ण हो जानेपर उनकी मृत्यु हो जाती है। वृक्ष और पौधोंकी भी समय पूरा हो जानेपर मृत्यु हो जाती है, जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है । सृष्टिका नियम भी यही है। ऋग्वेदमें आया है कि पूर्वकालमें अनेक सृष्टियाँ बीत चुर्की (वही १०।१९०।३)। इससे कालतत्त्वके खतन्त्र अस्तित्व होनेकी पृष्टि होती है । यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या काल जगत्-उत्पत्तिका हेतु होनेमें सक्षम है ! काल्वादियोंकी दृष्टिमें वह ऐसा शक्तिमान् ही माना गया है। उसे शक्ति दूसरेसे नहीं प्राप्त करनी पड़ती। सृष्टि और जीवोंका जीवन-काल निर्धारित करनेकी शक्ति कालमें ही है। गतिमान रहना भी कालका गुण है, जिसमें परिवर्तन भी सम्मिलित है । जन्म-मृत्यु और रचना-विनाश कालके उक्त गुणके कारण ही होते हैं । इन गुणोंके आधारपर काल सर्वशक्तिमान् तत्त्व कहा गया है। अन्य मतमें कालको गति और शक्ति जिस तत्त्वसे प्रहण करनी पड़ती है, उसे ईश्वर कहते हैं । यही ईश्वरतत्त्व प्रकृति और कालका ईश्वर अर्थात् शासक होता है।

जगत्-उत्पत्तिका हेतु वही तत्त्व हो सकता है, जिसमें पूर्ण तत्त्व हो। पूर्णतत्त्वका विवेचन करते हुए बृहदारण्यकी निवद्में कहा गया—'परमात्मा' पूर्ण है, यह जगत् भी पूर्ण है, उसी पूर्ण परमात्मासे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, पूर्णमेंसे पूर्ण निकाल देनेपर परमात्मा पूर्ण ही क्व रहता है। पुरुष शब्द भी पूर्णताका वाचक है। इसीलिय वंशाजोंकी उत्पत्तिका हेतु पुरुष माना जाता है। पुरुषमें पूर्णता ईश्वरकी विद्यमानतासे आती है। सृष्टि-रचनामें ईश्वर नाम चेतन-तत्त्वने अपने गुणोंको भरसक प्रकर करनेका प्रयास किया है। उसने जीवोंको इस योग्यतासे युक्त रखा है कि वे अपने वंशाजोंकी उत्पत्ति तथा पालन कर सकें। मनुष्यमें तो ईश्वरने वह गुण दिया है जिससे वह ब्रह्मके अति निकट पहुँच सकता है। मनुष्य-योनिको देखकर हमें भगवत्त्त्वका सहज ही बोध हो जाता है।

यद्यपि सभी जीवोंमें भगवत्तत्त्वकी विद्यमानता है, तथापि मनुष्यमें वह तियगादिसे अधिक रूपमें विद्यमान रहता है । तभी तो मनुष्य ईश्वरकी जानकारी तथ जगत्-उत्पत्तिके कारणोंकी मीमांसा करनेमें अधिक सक्ष है। इससे यह रपष्ट है कि मनुष्यसे भिन्न योनिके जीव चेतन होनेपर भी पूर्ण नहीं है । पुरुष अर्थात् मतुष्यं पूर्णताके सभी लक्षण दिखायी देते हैं। पुरुष औ भगवत्तत्त्वकी पूर्णतामें यह अन्तर है कि मनुष्य है और उसके गुणोंकी जानकारी प्राप्त कर सकने तक है। पूणं है। मनुष्यमें सृष्टिरचना और संहार करिकी पूर्णता नहीं है । इस दृष्टिसे विचार करनेपर मनुष्य ^{और} भगवत्तत्त्वकी पूर्णताका अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इसी ही सिद्ध है। जगत्-उत्पत्तिका हेतु भगवत्तस्य इस प्रकार परम शक्तिका तीन रूप सामने आती है, यथा-ब्रह्म, ईश्वर एवं भगवान् ! ब्रह्म वाब जगत्का धाता और विधाता है। नाम-रूपादिसे रिव होनेसे ब्रह्म केवल अनुभूतिका विषय है। इसे तप, योग और साधनसे जाना जा सकता है। ब्रह्मको प्राप्त करनेका एकमात्र साधन ज्ञान है।

ब्रह्म तटस्थताका वाचक है। ईश्वर जगत्की उत्पत्ति, श्वित और विनाशके लिये कियाशील रहता है। इसे उपासनाद्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह उपासनाका विषय इसलिये वन जाता है कि ईश्वरके गुणों और क्योंका वर्णन सम्भव है। जगत्के शासकके रूपमें ईश्वर मनुष्योंकी पहुँचके अंदर होता है। मनुष्योंके कमोंका साक्षी ईश्वर ही है। वह मनुष्योंके शुभाशुभ कमोंका निर्णय भी करता है और मृत्यूपरान्त पुनर्जन्मके

लिये योनियोंका निर्धारण भी करता है। पूजन-अर्चन करते समय त्रिशक्तिका ही आह्वान किया जाता है। मिन्दरोंकी मूर्तियोंमें भगवान्के रूपकी ही प्रतिष्ठा की जाती है। खरूपवान् होनेसे आधुनिक कालमें भगवान्क्ष्प ही अधिक व्यापक हो गया है। भगवान्को प्राप्त करनेके लिये श्रद्धा और मिक्तिका मार्ग अपनाया जा सकता है। मिक्तिद्वारा भगवान्की प्राप्तिका मार्ग सरल होनेसे वह अल्पज्ञोंद्वारा भी प्राह्य है। इस प्रकार यह भगवान्के निर्गुणरूपका वर्णन हुआ। धर्मकी रक्षा एवं मक्तोंकी इच्छा-पूर्तिके लिये वे ही पुनः राम, कृष्णादि अवतारोंमें भी आकर अनेक लीलाएँ करते हैं।

सर्वं खिलवदं ब्रह्म

(लेखिका-श्रीमती राधादेवी भालोटिया)

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो यौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः। अर्हन्तित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः सोऽयं वो विद्धातु वाञ्चित्रतफलं त्रेलोक्यनाथो हरिः॥

उन अखिल ब्रह्माण्डनायक, विश्वात्मा, विश्वम्भर, कर्त्वमकर्तुमन्यथाकर्तुसमर्थ, सर्वान्तर्यामी, नित्यज्ञानानन्दघनके अपरिच्छिन खरूपका आकल्न परिच्छिन मन, बुद्धिसे हो सके—यह सम्भव नहीं । शैव उन्हें शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म मानकर, नैयायिक कर्ता मानकर, जैनी-बौद्धलोग अर्हन्त-बुद्ध आदि मानकर उपासना करते चले आ रहे हैं । अद्यावधि भगवान् के सम्बन्धमें जो कुछ और जितना वर्णन हुआ है, उसका सम्पूर्ण एकत्रीकरण हो जानेपर भी उन सर्वलोकमहेरवर युद्ध सिच्चदानन्दघनके सम्बन्धमें पूर्ण एवं यथार्थ निर्देश होना सम्भव नहीं है ।

परमेश्वर अतक्य हैं। वे कभी मनबुद्धिके विषय नहीं वन सकते; तर्ककी कसौटीपर उन्हें नहीं कसा जा सकता। इस सम्बन्धमें आर्य मनीषियोंकी खसंवेद्य उस अनिर्वचनीय आनन्दके हिल्लोलनसे पूर्ण परिचित, रसानुभतिको ही अकाट्य प्रमाण मानकर उस दिशामें पद-विन्यास ही मङ्गलका सर्जक है। कोई कहता है भगवान् निर्गुण-निराकार शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म हैं, पर इन्हीं 'वेदान्तसिद्धान्तः' (शुद्ध ब्रह्म)को ब्रजपुररामाओंने सगुण रूपमें नृत्य करते पूर्ण रूपसे देखा था। उन्होंने यह भी देखा कि नन्दगोपकुमारको, यशोदाके नील्मणिको माताने आज रज्जुसे बाँध दिया है। जिसने योगीन्द्र, मुनीन्द्र, देव-दानव सबको कर्मकी शृङ्खलामें बाँध रखा है, बृह अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक खर्य बन्धनमुक्त होनेका प्रयास करनेपर भी असफल रह जाता है—

जिन बाँध्यो सुर असुर नाग नर प्रबल कर्मकी डोरी। सोइ अविच्छिन्न ब्रह्म यग्रुमित हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥

'नेदान्तदर्शन' इस भागवती सत्ताको आनन्दमयी मानता हे—'आनन्दमयो ऽभ्यासात्' कहकर । यह सर्वव्यापक जगन्चक्रपरिपालक सत्ता आनन्दमय है । यजुर्वेदमें उन्हीं श्रीहरिका घट-घटवासीके रूपमें निरूपण किया गया है— ईशावास्प्रमिदं सर्व यत्किच जगत्यां जगत् सम्पूर्ण दश्यप्रपञ्चके मूलाधार हैं सर्वान्तर्यामी प्रभु ही। कहीं कोई अन्य वस्तु तत्कतः नहीं है। ने ही प्रभु अणु-अणुमें व्याप्त हैं और कोई दूसरी सत्ता नहीं है— 'सर्व खिल्वदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीत।' गीतामें भी खयं भगवान्के श्रीमुखसे इसकी पृष्टि है—

'मत्तः परतरं नात्यत् किंचिद्स्ति धनंजय । 'मिय सर्वमिदं प्रोतम्', 'वासुदेवः सर्वमिति ।' इत्यादि ।

जैसे नेत्रादिसे अगोचर होनेपर भी मन नामक वस्तु-को अखीकार नहीं किया जा सकता वैसे ही सम्पूर्ण व्याप्त विराट् अचिन्त्य चैतन्यशक्ति जड-चेतनमें परमात्माका अपलाप नहीं किया जा सकता | हम उसे ही सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर कहकर प्रकारते हैं । उस अनिर्देश्य, अचिन्त्य, अकाठ्य, अगोचरकी तर्कसे किसी प्रकार थाह नहीं लग सकती। वेद भी नेति-नेति कहकर थक गये । तब भक्तवत्सल प्रभुने खयं कृपा की । अंनादिकाल्से जिसका अन्वेषण जारी था, वह रस खयं मूर्तिमान् होकर अदर्शनकी वेदना-ज्वालासे दग्व प्राणोंके समीप आ पहुँचा और वेदस्तुति कारने छमे--**'रसो वै सः**।' इस प्रकार उस सत्ताका नाम-रूपको स्वीकार कर भक्तोंकी भावनाका प्रतीक सगुण-खरूप प्रकट हो गया।

अगुन अमान अलख अज जोई। भगत प्रेमबस सगुन सो होई।

-यह सारा प्रपन्न उन प्रभुसे ही उत्पन्न होता है और पुन: उन्हींमें विलीन हो जाता है । सब कुछ उनका ही सनातन अंश है अत: इस अकाट्य ध्रुव सत्य-का खण्डन हो ही नहीं सकता कि जो कुछ भी हमें दीख रहा है, हम जिसे जगदाकार मानकर ैठे हैं, बास्तवमें वह सब मगवदाकारमात्र है । विश्वस्रष्टा प्रभुने सृष्टिके पूर्व संकल्प किया था 'पकोऽहं वह स्यां प्रजायेय' और इस चिन्तनका, इस संकल्पका ही परिणाम हुई यह

विशाल सृष्टि । फिर अकारण करुणामय दीनवसिल प्रमें अपने अनन्त अपरिसीम प्यारसे स्नान कराकर हमें मान देह प्रदान की और सुखकी सम्पूर्ण उपलिश्योंके लि सृष्टिमें विविध वैचित्र्य भर दिये । अब क्या हमारे लिये क विधेय नहीं कि हम अपने उस असमोर्ध्वदाताके प्रमें कृतज्ञ रहें । उसको क्षणाई के लिये भी विस्मृत न करें।

जीवमात्र खमावसे सुखामिळाषी होता है। दुःख अपमानादिका भी खागत कर सके, ऐसी मानसिक शिक्ष तो किसी विरलेकी ही होती है। ऐन्द्रादिपद मानवमननी इस पिपासाके ही अभिन्यक्षक हैं और मुक्ति भी इसीबी निर्देशिका है। मुक्तिका अर्थ है - मुक्त होना और मुक होनेका प्रश्न उठता है, तब जब हम बन्धनमें हों औ हमें यह अनुभूति निरन्तर बनी रहती है कि हमें मुख होना है। हम किससे मुक्त होना चाहते हैं ! इसपर हमार उत्तर होगा दुःखोंसे । दुःखोंसे आत्यन्तिक झुटकारा पन ही हमारा छक्ष्य है। परंतु वस्तुतः हमें मुक्त होना है-जागतिक पचड़ोंसे और पूर्णतः परिनिष्ठित होना है--ग्रु प्रीतिमें; क्योंकि प्रभुप्रेम एक ऐसी स्थिति है जहाँ शेष सारी स्थितियाँ तुच्छ, नगण्य हो उठती हैं और अबिल साम्ब सिन्धु आनन्दकन्द श्रीहरिके पादपद्मोंकी अनुरित है जीवनका चरम परम लक्ष्य रह जाती है। फिर तो तैन भारावत् अखण्ड अविचल स्मरण-चिन्तन चळता ^{ह्वा} है। एक पलको विस्मरण भी आत्यन्तिक व्याकुल्ताक स्जन कर देता है— 'तद्विस्मरणे परमव्याकुलता'। इस स्थितितक पहुँचनेके लिये आवश्यक है श्रद्धा औ विश्वासकी भूमिका; क्योंकि श्रद्धावान्को ही सिंह मिलती है। 'श्रद्धावाँ स्थाते ज्ञानम्।'

जब श्रद्धां बीजकी हमारी खेती छहछहाने ह्याती हैं और विश्वासके फल उसमें फलने लगते हैं, तब हमा कल्याण सुनिश्चित होता है। हम भगवान्का मा करते हुए जितना उनकी ओर चलते हैं, प्रभुके हुए उतना ही उसका प्रतिदान हमें प्राप्त होता है। यह हु

अपने मानसको विभिन्न कामनाओंके जंजालसे मुक्तकर, सब बाहरी पदार्थोंका वहिष्कारकर, उस एकमात्र प्रियतम प्रमुके लिये रिक्त कर देते हैं और विश्वासकी सजासे उसे सजाकर प्रमुके आगमनकी प्रतीक्षा बाते हैं, तत्र प्रभु अपने सम्पूर्ण ज्ञान, अनन्त राक्ति, अपरिसीम सौहार्द लिये वहाँ प्रकट हो जाते हैं और _{जीवन} एक ऐसे विचित्र प्रवाहमें वह चलता है, जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते । परंतु हमारे मन-मिरापर एकाधिकार है अहंकारका—जिसकी कालिमाके कारण प्रभुकी ज्योतिको प्रविष्ट होनेका अधिकार हम नहीं दे पाते और नानाविध दु:ख-क्लेशोंको लिये जूझते हते हैं । वस्तुत: 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या-'के अनुसार हमारे भ्रमका निराकरण प्रभु-कृपा विना हो नहीं सकता। गोस्वामीजीने कहा है -- 'सो जानइ जेहि देह ननई। और जो इस ज्ञानके आंछोकसे आंछोकित हो उठता है, उसके हृदयकी सम्पूर्ण प्रन्थियाँ खुळ जाती हैं तथा संशय नष्ट हो जाते हैं---

भिद्यते हृद्यग्रन्थिदिछद्यन्ते सर्वसंशयाः।
श्रीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् हृष्टे परावरे॥
(कटोप० २।३।१५, मुण्डकोप० २।२।८, योगवा०
१।७।१०,५।१३।१५,६।२।२०।१७, भागवत
१।२।२१, ब्रह्मपुराग १।३०।१०)

山影志苏东苏东京水水水水

जगत्का सम्पूर्ण आकर्षण उसके छिये समाप्त हो जाता है । श्रीहरिके प्रति उसके हृदयमें आत्यन्तिक भक्ति जाप्रत् हो उठती है । उसके रागके एकमात्र विन्दु रह जाते हैं — सिचदानन्दवपु सर्वेक्षर; और सोते-जागते, उठते-बैठते उसके प्राण सन्नद् रहते हैं — प्राणाराम परमेश्वरमें ही; क्योंकि उसके छिये वे ही सर्वत्र दीखते हैं — स एवाधस्तात्सपरिष्टात् स परचान् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेद सर्वमिति।

ऐसी भावना उसकी वछवती हो उठती है और फिर वस्तुत: वह उसी भूमिकामें प्रतिष्ठित हो जाता है । ऐसे ही प्रेमी भक्तके प्रति प्रेमपरवशता खीकार करनी पड़ती है उन जगन्नियन्ताको । जो प्रभु सर्वत्र हैं, सर्वान्तर्यामी हैं, वे ही प्रेमप्रतिमा गोपरामाओं के स्नेह-पाशमें बँधकर-—'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छिति'की स्थितिको खीकार करते हैं । पितामह ब्रह्मा भी व्रजपुरिन्ध्रयोंके उस अपिरिमित सौभाग्यकी कामना करते हैं ।

ज्ञानकी सम्पूर्ण गरिमाके पर्यवसानके विन्दुपर ही उन्मेषित होता है, यह प्रेम । यहाँ एकमात्र प्रेष्ठको सुखदानकी अभिलाषा ही शेप रह जाती है । अन्य सभी वासना, कामना सर्वोश्चमें प्रशमित होकर मानस वासनाश्चन्य बन जाता है और तदनन्तर तो—

'फिर केवल वह प्रिय-सुखका ही, साधन वन रहता बड़ भाग।'

अनुभूति

(रचियता—डॉ॰ श्रीरामकुमारजी वर्मा, एम॰ ए॰, पी-एच॰डी॰, साहित्यवाचस्पति, पद्मभूषण)

प्रथम खरमें सुन रहा हूँ कंठ तेरा।

देखता हूँ सृष्टिमें प्रति क्षण स्जनका ही सवेरा॥
समयके ये चरण चल कर भी कभी थकते नहीं हैं,
क्षितिजके उस पार क्याहै, देख भी सकते नहीं हैं।
पर वना मोहक बना है, चार दिनका यह वसेरा॥प्रथम०॥
पुष्पमें यदि फिर स्जनका बीज-रूपी प्रण छिपा है,
तो मरणमें पुनः जीवनका कहीं क्या कण छिपा है?
चाहता हूँ, दूर कर दे, तू हृदयका सब अँधेरा॥प्रथम०॥

भगवान् और भक्तका सम्बन्ध

(लेखक--श्रीवृष्ण्यामजी दुवे, एम्॰ ए॰, एल्॰ टी॰, साहित्यरत्न)

जागतिक सम्बन्धोंकी सार्थकता परमात्मासे सम्बन्धकी स्थापनामें ही है। सबको भगवान्के नातेसे ही अपना मानना चाहिये। गोखामी तुल्सीदासजी कहते हैं— नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ हों। (विनयपत्रिका)

प्जनीय प्रिय परम जहाँ ते । मानिश्र सर्बाहें राम के नाते ॥ (रामचरितमानस)

तुल्सीदासजीकी यही याचना है। वे हाथ जोड़कर वरदान माँगते हैं—'हे शिव! मुझे जन्म-जन्ममें ऐसी स्थित दीजिये, जिसमें भगवान् श्रीरामके नाते ही मेरा किसीसे नाता हो और श्रीरामके प्रेमके कारण ही मेरा प्रेम हो'—

नातो नाते रामके, राम सनेह सनेहु।
तुलसी माँगत जोरि कर, जनम जनम सिव देष्टु॥
(दोहावली ८९)

जिन भगवान्के सम्बन्धसे ही सब सम्बन्ध मान्य हैं, उसके खरूपकी जिज्ञासा खामाविक है। वह सबका आधार है—'पकं सद् विमा बहुधा वदन्ति।' वही सबकी जिज्ञासाका विषय है। श्रुतियाँ निर्विशेष और सिवशेप ब्रह्मकी परिचायिका के भेदसे दो प्रकारकी हैं— निर्विशेष-निर्देशक श्रुतियाँ—अस्थूल, अनणु, अहस्व आदि हैं। सिवशेषिक श्रुतियाँ—सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगत्व, सर्वरस आदि हैं। वे ही सिचदानन्दघन भावस्वरूप हैं; वे ही ज्ञान, प्रेम, दया, समता आदि अनन्त गुणोंसे युक्त हैं और वे ही लोकका उद्धार करनेके लिये दिव्य जीलाओंसे सम्पन्न भी हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् शब्दका अर्थ इस प्रकार किया गया है—

हानं विशुद्धं परमार्थमेक-मनन्तरं त्वबहिन्नेह्म सत्यम्। प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंझं यद्वासुदेवं कवयो वद्दन्ति॥ (५।१२।११)

विशुद्ध परमार्थरूप, अद्वितीय, भीतर-वाहरके मेर्स रहित तथा परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु (ब्रह्म) है। वह सर्वान्तर्वर्ती और सब प्रकार निर्विकार है। उसीका नाम 'भगवान' है, जिसे पण्डितजन 'वासुदेव' कहते हैं।

शुद्ध चेतन ब्रह्म प्रकाशमें छाया नहीं रह सकती, किंत पुरुषमें प्रकृति स्थित है। शुद्ध प्रकृतिको माप या विद्या और मिलन प्रकृतिको अज्ञान या अविद्या कहते हैं । जो सत्त्वगुण किसी प्रकार रजनमो दव नहीं पाता, वह शुद्ध सत्त्व है। जो सत्त्वगुण रजनामे दबा है, वह मलिन सत्त्व या अविद्या है। मायान अधिष्ठान और मायामें चेतनका आभास दोनोंको मिळका ईश्वर कहा जाता है । अविद्यामें चेतनका आभास औ अविद्याका अधिष्ठान चेतन दोनों मिळाकर जीव कहरात है। इस प्रकार सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ ईश्वर सृष्टि-सिर्ति-ल्यका कर्ता है। जीव अन्तःकरणावच्छित्र होकर परिच्छि देहाभिमानयुक्त और अल्पज्ञ है। परमात्मा और जीवालाके सम्बन्धको प्रकाशित करनेवाले वेदवाक्योंको प्रमाण मानी हुए भी उनकी व्याख्याक भेदसे बादोंमें भेद दिखारी पड़ता है । इस सम्बन्धमें प्रमुख आचार्थों के मतोंकी उड़ चर्चा यहाँ की जा रही है। ये सभी आचार्य के वाक्योंको प्रमाण मानते हैं और हमारे परम मान्य हैं।

(१) आद्यशंकराचार्य—आप ब्रह्म और जीवालां अमेद-सम्बन्ध मानते हैं एवं अद्वैतवादी हैं। ये 'तत्वमीं इस उपनिषद्-वाक्यका अर्थ इस प्रकार करते हैं—तत-बं ब्रह्म, त्वम्—तुम, अस्ति—हो अर्थात् तुम ब्रह्म हो। (१) रामानुजाचार्य ब्रह्म और जीवमें भेद-विशिष्ट अमेद सम्बन्ध मानते हैं। ये विशिष्टाद्वैतवादी कहलाते हैं। इनके क्रिं जीवात्मा और परमात्मा दोनोंमें परस्पर अङ्गाङ्गिमाव है। तक्के क्रिं क्रिं क्रिंग क्रि

है, फितु जीवात्मा (तुम) अङ्ग है और परमात्मा (वह) अङ्गी।(३) मध्याचार्य द्वेतवादी हैं। माध्यमतका नाम 'ब्रह्मसम्प्रदाय' भी है । मध्याचार्य ब्रह्म और जीवमें शास्त्रत भेद मानते हैं । वह भगवान्को स्नामी और जीवात्माको सेवक मानते हैं । वे 'तत्त्वमसि'की व्याख्या इस प्रकार करते हैं —तत् (तस्य) उसके, त्वम् — तुम, असि हो, अर्थात् तुम उसके सेवक हो। (४) निम्वार्काचार्य भेद तथा अभेद दोनों मानते हैं। अतः वे द्वेताद्वेतवादी कहे जाते हैं। इनके अनुसार जैसे स्फुल्लिङ्ग और अग्नि प्रस्पर अभिन्न और भिन्न दोनों है, वैसे ही जीव-ईश्वर 'तत्त्वमसि' भी भिन्नाभिन्न हैं—इनके अनुसार की व्याख्या है 'वह तुम हो' किंतु इसका बोध वे पृथक् ढंगसे बताते हैं। (५) वल्लभाचायंका मत शुद्धाद्वैत कहलाता है । इनके मतानुसार प्रमात्मा कारणरूपसे अपने कार्यरूप जीवात्मामें रहता है। जीवात्मा परमात्मासे उत्पन्न है, अतः दोनोंमें अमेद है । किंतु परमात्मा अनुत्पन्न है और जीवात्मा उत्पन्न, इसिलये दोनोंमें आत्यन्तिक अमेद नहीं है। इनके अनुसार 'तत्त्वमिस'की व्याख्या है-'तसात् त्वमसिं है, अर्थात् तुम उससे हो। (६) वैतन्यके मतसे परमात्मामें अचिन्त्य शक्तियाँ हैं, जिनमें मुख्य तीन हैं—खरूपशक्ति, तटस्थ-शक्ति (जीव-रिक्त) और मायाशक्ति । जीवात्मा परमात्माकी शक्ति है। जीवारमामें भी अचिन्त्य शक्ति है। इस प्रकार प्रमात्मासे वह न तो बिल्कुल भिन्न है और न बिल्कुल अभिन्न है। चूँकि तर्कमें भिन्न और अभिन्न एक साथ माननेमें व्याघात दोष है, अतः उनमें 'अचिन्त्यमेदामेद' मानना चाहिये ।

उपर्युक्त सभी आचार्योंने अपने मतके सम्बन्धमें यह एए कर दिया है कि सभी रूपोंमें भगवान्से भक्तका पिय सम्बन्ध भक्ति है। भगवान्से अपने सम्बन्धकी अनुभूति प्राप्त करनेके मार्गमें कर्म, ज्ञान और भक्ति समीकी गणना है; अतः ज्ञान-कर्म युक्त भक्ति श्रेष्ठ है। इनके सामञ्जस्यमें कदाचित् निम्नाङ्कित दृष्टान्त सहायक हो।

एक वार श्रीरामचन्द्रके सामने ज्ञानी और भक्त ऋषियोंकी सभा लगी थी । उसीमें उन्होंने श्रीहनुमान्से पूला कि तुम कौन हो ? श्रीहनुमान्ने अपनी धारणा बताते हुए उत्तर दिया—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवबुद्धया त्वदंशकः। वस्तुतस्तु तदेवाहमिति मे निश्चिता मितः॥ (मौक्तिकोपः)

'मैं देह दृष्टिसे आपका दास हूँ, जीवदृष्टिसे आपका अंश हूँ, अर्थात् वास्तवमें और ज्ञानकी दृष्टिसे जो आप हैं वहीं में हूँ।'

भक्ति परमप्रेमरूपा है । जगत्के किसी प्राणीके प्रति अनुरक्ति परमप्रेमरूपा नहीं हो सकती । जगत्का जो कुछ प्रिय होता है, वह मनुष्यको अपने लिये प्रिय होता है, उस पदार्थके लिये नहीं । जागतिक दृष्टि वस्तुओं अथवा प्राणियोंको आत्मासे भिन्न जानती है । याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीसे कहा था—'न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वे प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वे प्रियं भवति (बृह० उ० २ । ४ । ५)। सबके प्रयोजनके छिये सब प्रिय नहीं होते, अपने ही (आत्माके ही) प्रयोजनके लिये सब प्रिय होते हैं । भगवान्के प्रति परमप्रेमके तारतम्यसे ही भगवान्की पूजा, कथा आदिमें अनुरागको भी भक्ति कहना उचित जान पड़ता है--- पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः। कथादिष्विति गर्गः।' भगवद्गक्ति प्राणीके सन्तोष और सफलताकी आकाङ्काकी ही पूर्ति नहीं करती बल्कि उसे वास्तविक तृप्ति, सिद्धि और अमरत्व प्रदान करनेवाली है - 'यहुञ्चा पुमान् सिद्धो भवति, असृतो भवति, तृप्तो भवति।' (भ० सू० ४)। गर्गसंहितामें भी भगवान् शिवके वचन हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सत्यिप भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। सामुद्रो हि तरंगः कचन समुद्रो न तारङ्गः। (गर्गसंहिता०, अश्वमेघलण्ड ३९। ४)

'नाय मुझमें और आपमें भेद न होनेपर भी मैं ही आपका हूँ, आप मेरे नहीं, क्योंकि तरंग ही समुद्रकी होती है, तरंगका समुद्र नहीं होता ।' प्रत्यक्ष नाम- रूपात्मक उपासनाके रूपमें भक्तिमार्गको भागवत-धर्मका वल मिलता है। भागवतधर्मके चार उपभेद ये हैं— (१) रामानुजाचार्यद्वारा संस्थापित श्रीसम्प्रदाय (२) मच्चाचार्यद्वारा संस्थापित ब्रह्मसमाज (३) विष्णु- स्वामीका रुद्रसम्प्रदाय और (४) निम्चार्काचार्यका सनकादिक सम्प्रदाय । वैष्णव-शास्त्रकारोंने भगवान्के प्रति रतिके पाँच भेद कर भक्तिके पाँच भाग किये हैं— शान्त, प्रीति, सस्य, वात्सस्य और मधुर (या उज्ज्वल)। विविध सम्बन्धोंके रूपमें—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत । मैं सेवक सचराचर रूप खामि भगवंत॥ (मानस ४ । ३)

सखाके रूपमें—

सला प्यारे कृष्णके, गुरूम राधारानीके। पतिरूपमें—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुक्ट मेरो पति सोई॥ बालक रूपमें—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद । सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद ॥ (मानस १ । १९८)

- इत्यादि

भक्तिके चाहे जिस मार्गपर चलें, जैसा कि ऊपर उद्धृत है, जो बात सबके लिये खीकार्य है उसे तुल्सीदासजीने इस एक चौपाईमें कह दिया है— पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिकहिं राम के नाते॥

इसमें प्रस्थान-विन्दु भगवान् हैं, भगवान्के अतिति जो कुछ दश्यमान है—उसमें भगवान्की सत्ता ही देखना है—'एकोऽहं बहु स्याम्'' 'एकमेवाद्वितीयम्' जगत्में भासमान छितराये हुए इन नातोंको भी तुछसीदासजीने जिस प्रकार उपसंहत किया है उसे देखें—भगवान् कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद्परिवारा॥ सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बटि डोरी॥

इसमें प्रस्थान-विन्दु जगत्के भासमान नाते—सम्बन्ध हैं, साध्य भगवान्का सच्चा सम्बन्ध है। इसके द्वारा 'सर्वे खल्विदं ब्रह्म'की रीतिसे अनुभूति होती है। तुल्सीदासजी कहते हैं—

यहि जग में जहाँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई। ते सब तुलिसदास प्रभु ही सों, होहि सिमिटि इक गई।

वे इसीको भ्रमजनित, व्यर्थ एवं दुःखद चेष्टाओरे बचनेका मार्ग भी बताते हैं—

निज हित नाथ पिता गुरु हरिसों हरिष हृद्य नहिं आन्यो। तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो।

विश्वात्मा भगवान्के प्रति अर्पित होकर स्मी 'मेरापन' (जागतिक सम्बन्धोंकी ममता) बहा देने अपना निश्चय दुहराते हैं—

नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह यहैहीं। यह छर भार ढाहि तुलसी जग जाकी दास कहैहीं।

भगवान्से भक्तके सम्बन्धकी सीमा नहीं—
मोहि तोहि नाते अनेक, मानिए जो भावे।
जयों त्यों तुछसी कृपाछु, चरन सरन पावे॥
जबतक जीव भगवान्से अपना सचा सम्बन्ध नही

पहचानता, तबतक वह जगत्-जालमें नाचता ही है; जब पहचान लेता है, तब प्रेमभावनासे बँधे हैं

भगवान् खयं नाचते दीख पड़ते हैं—

ऐसी प्रीति बढ़ी बृंदाबन, गोपिन नाच नवाई।
स्र-क्र्र इहि लायक नाहीं, कहँ लगि करों बड़ाई।
मगवान्की प्रतिज्ञा है—'हम भगतनके भगत हमी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

्रेते स्र कमल-लोचन ते चित नहिं अनत डुलावे हो। (स्रसागर)

भगवान् और भक्त-सम्बन्धके विषयमें हमें आश्वस्त करते हुए तुल्सीदासजी कहते हैं-— तुलसी अपने रामको रीझ भजहु वा खीज। खेत परे सो जामिहै उल्टो सीधो बीज॥ अत: श्रीभगवान्का स्मरण सदा प्रेमभावसे करना चाहिये। 'रामे चित्तलयः सदा भवतु मे।'

ईश्वर और उसकी प्राप्ति

(श्रीआनन्दस्वरूपजी (साहेबजी महाराज) दयालगाग)

क्षिर हैं यह विश्वास मनुष्यके हृदयमें इतनी गहरी बड़ जमाये हुए है और यह विश्वास इतना प्राचीन एवं विश्वव्यापी है कि हमें बरबस उस विज्ञ दार्शनिककी वुद्धिकी प्रशंसा करनी पड़ती है, जिसने मनुष्यकी परिमाषा करते हुए पहले-पहल इसे ईश्वरको खोजनेवाला प्राणी वतलाया था । यह सत्य है कि सब मनुष्योंकी ईश्वरके सम्बन्धमें एक-सी भावना नहीं होती, परन्तु इस वातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कोई एक सर्वोपरि अदृश्य शक्ति—अज्ञात ईश्वरीय तत्त्व है । इस सम्बन्धमें छोटे-वडे सभी श्रेणीके मनुष्य एकमत हैं। कहाँ तो वे प्रतिभाशाली वैज्ञानिक एवं अनेक विद्या-विशार दार्शनिक, जो देश-विदेशोंमें ख्याति एवं मान प्राप्त कर चुके हैं, इंग्लैण्डकी रायल सोसायटी (Royal Society) जैसी बड़ी-बड़ी संस्थाओंमें भाग वेते हैं और जिनके जीवनका अधिकांश भाग गहन तलोंके विचारमें ही बीतता है, और कहाँ भीषण अमेरिकाके वे असम्य जंगली लोग जो उन घने जंगलोंमें निवास करते हैं, जहाँ आधुनिक सम्यताका प्रकाश अभीतक नहीं पहुँच पाया है, तथा जो अपने अधिकांश जीवनको उदरदरीकी पूर्तिमें ही विताते हैं; किंतु इन दोनों प्रकारके मनुष्योंके जीवनमें ऐसे क्षण आते हैं जब जनका जी उस सर्वोपिर अदृश्य शक्तिके प्रभावके सामने नतमस्तक होना चाहता है। यह माना कि सभ्यताके अमिमानी मनुष्योंने ईश्वरमें जिन-जिन गुणोंका आरोप

किया है, जंगली जातियोंको उन सबका ज्ञान नहीं है, परन्तु वे अपने दिलोंमें इस बातको खूब समझते हैं कि उनके जीवन, सुख तथा भोजनाच्छादनकी व्यवस्था किसी अलौकिक राक्तिके हाथोंमें है। हमलोग, जिनका जन्म ऐसे देशमें हुआ है जो आध्यात्मिक विकास एवं ईर्वरीय ज्ञानमें बहुत बढ़ा-चढ़ा है, अपने उन भाइयोंकी धारणाओंकी भले ही दिल्लगी उड़ावें, जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है, परन्तु हमें यह मानना पड़ेगा कि इन लोगोंके सरल हृद्यमें ईश्वरकी जिज्ञासा उतनी ही मात्रामें है जितनी हमलोगोंके हृदयोंमें है। वात यह है कि मनुष्य यद्यपि ईश्वरकी सृष्टिमें सबसे उच्चकोटिका प्राणी है, फिर भी उसके अन्दर पाशविक वृत्तियोंकी प्रधानता है। जब कभी किसी कारणसे उसके कार्योंमें वाधा पहुँचती है अथवा असफळता होती है उस समय इसकी आध्यात्मिक भावनाएँ जागृत हो उठती हैं। यही कारण है कि वे असम्य जातियाँ, जिनके जीवनका अधिकांश भाग पेट पालनेमें ही न्यतीत होता है, तथा सम्य कहलानेवाले हमलोग, जिनकी वृत्तियाँ सांसारिक कामनाओंके बोझसे सदा दवी रहती हैं, ईश्वरकी ओर तभी झुकते हैं जब किसी शारीरिक वेदना, भय, आनन्द अथवा अन्य किसी कारणसे हमारे मनकी खच्छन्दगति एक प्रकारसे निरुद्ध हो जाती है। और, यही कारण है कि योगिजन आध्यात्मिक साधनाके द्वारा अपने मन और इन्द्रियोंको पूर्णतया वशमें करके निरन्तर ईश्वरका ध्यान कर सकते हैं।

संसारमें ऐसे सहस्रों मनुष्य हो चुके हैं और अब भी हैं जिनका ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास नहीं है। अधिकतर मनुष्योंका ईश्वरमें विश्वास न होनेमें प्रधान हेतु यह होता है कि वे जिस रूपमें सांसारिक विषयोंको देखते, समझते और इसलिये उनमें विश्वास करते हैं, वे ईश्वरको उसी रूपमें देख और समझ नहीं पाते । इस प्रकार माननेमें वे यह कल्पना कर लेते हैं कि संसारमें उन्हीं पदार्थोंकी सत्ता है, जिनका बाह्य इन्द्रियोंके द्वारा प्रहण हो सकता है अथवा संसारका प्रत्येक पदार्थ इन्द्रियप्राह्य है । वे इस बातको भूछ जाते हैं कि इन्द्रियोंकी गति सीमित है तथा प्रत्येक इन्द्रियका एक निर्दिष्ट क्षेत्र एवं निश्चित व्यापार है । उन्हें ज्ञात नहीं कि उनके अंदर पदार्थोंके प्रहण करनेकी कुछ और शक्तियाँ भी हैं जो गुप्त होनेपर भी इन्द्रियोंसे कहीं अधिक सामर्थयुक्त हैं । उनका ज्ञान वहींतक सीमित है जहाँतक इन्द्रियोंकी पहुँच है अथवा जहाँतक उनकी तक्बुद्धि ऊहापोह (तर्भवितर्भ) कर सकती है । उन्हें अन्तर्ज्ञान (Intuition) अथवा 'धार्मिक अनुभव' (Religious experience)का ज्ञान नहीं । ये ज्ञान एवं अनुभवका आंशिकरूपसे ही उपयोग करते हैं।

राधाखामीके मतके अनुसार मनुष्यके छिये ईश्वरका साक्षात्कार उसी प्रकार सम्भव है जिस प्रकार हम नेत्रोंहारा सूर्यको देखते हैं; परन्तु आवश्यकता इस बातकी है कि हम पहले उस चक्षुका पता लगावें जिसके द्वारा हमें ईश्वरका दर्शन हो सकता है; फिर उसे जागृत कर उसके साथ उन दिव्य किरणोंका सम्पर्क होने दें, जो अखिल विश्वको प्रकाशित करती हैं। लोग कहते हैं कि पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके अतिरिक्त एक छठी इन्द्रिय भी है जिसे दिव्यचक्षुण कहते हैं। परन्तु संसारमें बहुत थोड़े मनुष्य ऐसे हैं जो ईश्वरके दिये हुए इस सर्वोत्तम प्रसादका उपयोग करना अथवा उसकी कद्र करना जानते हों। मनुष्यके मनकी अधोगामिनी तथा

बहिर्मुखी वृत्तियाँ इतनी वलवती हैं कि बहुताको प्रारम्भिक साधन भी असम्भव-सा ज्ञात होता है, जो उनकी आध्यात्मिक शक्तिके अपन्ययको रोकने तथा ईश्वर-साक्षात्काररूपी महान् कार्यमें हाथ डाळनेके छिय अपेक्षित आध्यात्मिकताको उत्पन्न करनेके छिये आवश्यक है। हमारे शरीरोंमें आध्यात्मिकताकी जो सामान्य छहाँ प्रवाहित होती रहती हैं, वे ही आध्यात्मिक साधनोंके अभ्याससे भीतर-ही-भीतर केन्द्रीभूत होकर महान शक्तिशालिनी बन जाती हैं, जैसे बिखरी हुई सूर्यकी किरणें आतिशी शीशेके बीच एकत्र होकर शक्ति-सम्पन्न हो जाती हैं। जब साधक अपने घ्यानको अभीष्ट केन्द्रमें पूर्णरूपेण लगानेमें समर्थ हो जाता है तब उसे यह अनुभव होने लगता है कि उसके अंदर विषयोंको प्रहण करनेकी एक नवीन शक्ति जागृत हो रही है। इसके अनन्तर इस नवीन शक्तिके द्वारा जो आन्तरिक अनुभव उसे होने लगते हैं, उनसे उसका अपने कार्यकी सिद्धिमें विश्वास बढ़ता है तथा उससे अगले आध्यातिक केन्द्र अथवा चक्रकी ओर बढ़नेके छिये उसे प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार जब प्रत्येक नया चक्र क्रमशः जागृत होता है तो उसके साथ ही एक नवीन चेतना प्रस्फुटित होती है, जो पूर्वचक्रकी जागृतिके समय अनुभूत हुई चेतनासे बिल्कुल विलक्षण होती है; तब उसे अनुभव होता है कि प्रत्येक मंजिलके ते होनेके बाद साधकके अंदर आध्यात्मिकताकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। अन्तमें जाकर साधक उस अवस्थाको पहुँच जाता है। तब उस चक्रकी जागृति होती है, जिसके द्वारा ईश्वर या भगवत्सत्ताका साक्षात्कार हो सकता है।

हम जपर कह आये हैं कि हमारी प्रत्येक इन्द्रिय-का एक निर्दिष्ट व्यापार है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक इन्द्रियों पश्चतन्मात्रामेंसे (जो पश्चमहाभूतोंके सूक्ष्म कृप हैं) एक तन्मात्रा अवस्थित है। इसिंडिये

प्रत्येक इन्द्रिय अपने तन्मात्राके अंदर होनेवाले स्पन्दन-को ही ग्रहण करने तथा उसके अनुकूछ व्यापार करनेमें समर्थ होती है। उदाहरणार्थ—नेत्रमें अग्नि या तेजकी तमात्रा अवस्थित है, इसिलये हम नेत्रोंके द्वारा केवल प्रकाश अथवा रूपको ही देख सकते हैं। इसी प्रकार उस केन्द्र अथवा चक्रमें जिसके द्वारा ईश्वरका साक्षात्कार होता है, आत्मतत्त्व अत्यन्त विशुद्धरूपमें अवस्थित है । और, इस चक्रके जाप्रत् हो जानेपर सारी आध्यात्मिक शक्तिके स्रोत—ईश्वरसे उद्भत होनेवाली किसी आध्यात्मिक लहरके साथ इसका सम्पर्क होते ही चक्रमें उसके अनुकूछ न्यापार होकर ईश्वर-दर्शन

उसी प्रकार संघटित हो जाता है, जिस प्रकार हमारी आँखोंके साथ सूर्यकी किरणोंका सम्बन्ध हो जानेपर सूर्यके दर्शन होते हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वरके साञ्चात्कारके छिये दो वातें आवश्यक हैं—

(१) मनका निग्रह और (२) अंदर सोयी हुई उदात्त राक्तियोंको जाग्रत् करना । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त आध्यात्मिक करणका उपयोग किये विना ही ईश्वरके अस्तित्वको अलीकार करना उतना ही अनुचित है जितना आँखोंका उपयोग किये बिना ही सूर्यके अस्तित्वका निषेध करना है।

भगवत्तत्व—एक विचार

(छेखक--श्रीजोरावरसिंह्जी भादला)

भगवत्तत्त्व एक गूढ़ और रहस्यात्मक विषय है। परमात्माके रहस्यको जाननेमें देवता और ऋषि-मुनियोंकी बुद्धि भी कुण्ठित हो जाती है, फिर साधारण मनुष्यकी तो वात ही क्या है ! गीतामें खयं श्रीभगवान्ने कहा है-

age field to plicing t

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः। अहमादिहिं देवानां महर्षाणां च सर्वशः॥ (9017)

भेरी उत्पत्ति (विभूतिसहित छीछासे प्रकट होने)को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन। कारण यह है कि मैं सब प्रकारसे देवताओंका और महर्षियोंका जन्मदाता हूँ। जब देवता और महर्षिगण भी इस तत्त्वतक नहीं पहुँच पाते, तब फिर वुष्ठ मानवी बुद्धिद्वारा उसे समझना-समझाना एक बाल-चपलता-सी ही है! तथापि पुण्यकार्य होनेसे इसे समझनेका प्रयत्न करना चाहिये। भगवान्के खरूपका वास्तविक तत्त्वमय वर्णन वेदोंमें है-'सर्वज्ञानमयस्तु सः।' तत्वज्ञ लोग भी भगवान्की कृपासे उन्हें जानते हैं—

'सोइ जाने जेहि देहु जनाई। पर हम तो जिस प्रकार गूँगेके द्वारा खाये गये गुड़के खादको केवल गूँगा ही जानता है, उसके हाव-भावसे मात्र अनुमान ही लगाते हैं । जिसने भगवत्कृपासे 'भगवत्तत्त्व'का जितना अनुभव किया है और उसके वास्तविक खरूप और भानन्दको जान पाया है।वास्तवमें श्रीमगवान् उससे भी विळश्नण हैं । जो जानने, मानने और साधन करनेमें आता है, वह तो परमात्माको बतानेवाला मात्र सांकेतिक लक्ष्य है। ऐसे दिव्य तत्व (भगवत्तत्व)का ज्ञान या प्राप्ति जितना प्रमात्म-ऋपा-साध्य है, **उ**तना साधन-साध्य नहीं है । प्रमात्माके अनन्त खरूप हैं। पर उनके तीन रूप मुख्य हैं--(१) निर्गुण-निराकार, (२) सगुण-निराकार और (३) सगुण-साकार। परमात्मा निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं तथा सगुण-निर्गुण भी हैं। निर्गुणके छिये ही 'नेति' अर्थात् 'न इति' कहा गया है। तात्पर्य यह कि नहीं, इससे परे और अकथनीय हैं।

१. निर्गुण-निराकार-

परमात्माका निर्गुण तत्त्व मन-त्राणीका अविषय है । वह सत्-असत्से विलक्षण है । श्रीमद्भगवद्गीतामें खयं भगवान्ने कहा है—

क्षेयं यत् तत्प्रवक्ष्यामि यज्ञ्ञात्वामृतमइनुते। अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ (१३।१२)

'जो जाननेके योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्दको प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा, वह आदिरहित, परमद्रह्म अकथनीय होनेसे न सत् कहा जाता है और न असत् ही ।' उस परमात्माका वह परम ब्रह्मरूप असीम, अपार, अनन्त और अखण्ड वतलया जाता हैं। उसे निर्गुण-निराकार कहा जाता है। वह सत्त्व, रज, तम आदि गुणोंसे परे है। उसकी कोई आकृति भी नहीं है और न कोई नाम ही है। वह तो इन गुणोंसे सर्वथा अतीत और नाम-रूपसे रहित ही है। उसका अनुभव तो किया जा सकता है, पर वर्णन करना सामर्थ्यके बाहरकी बात है।

२ सगुण-निराकार—

सिचदानन्दघन निर्गुण परब्रह्म परमात्माके किसी एक अंशमें प्रकृति है । उस प्रकृतिके प्रभावसे ही वह सृष्टिकी रचना करता है और इसी कारण सगुण चेतन सृष्टिकर्ता ईश्वर कहालाता है । वही आदिपुरुष पुरुपोत्तम, माया-विशिध ईश्वर आदि नामोंसे अलङ्कृत किया जाता है । प्रकृतिको लेकर ही उसमें समस्त जीवोंकी स्थिति है । गीतामें श्रीभगवान्का कथन है कि—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वे प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(१०।८) भैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिका कारण हूँ और मेरेसे ही सारा जगत् चेष्टा करता है, इस प्रकार तत्त्वसे समझकर श्रद्धा और भक्तिसे युक्त हुए बुद्धिमान भक्तजन मुझ परमेश्वरको ही निरन्तर भजते हैं॥

सम्पूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्ति एवं प्रतीति हो अस्ति एवं भाति-तत्त्व है । भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालोंमें परमात्माकी ही सत्ता प्रतीत हो रही है । एक पदार्थका होना अस्तित्व है और उसका दीखना, अनुभव होना—'भातित्व' है । दूरकी वस्तुएँ हमें दृष्टिगोचर नहीं होतीं, पर 'वहाँ अमुक चीज है'—इस प्रकारका सामान्य भाव बुद्धिमें रहता है । इस प्रकार जहाँ सम्पूर्ण वस्तुओंकी प्रतीति होती है, वस्तुएँ प्रकाशित होती हैं । उसे 'भाति-तत्त्व' कहते हैं ।

संसारके पदार्थोंका मनको अच्छा लगना 'प्रियता' है। संसारकी समस्त वस्तुओंमें एक प्रियता अनुमव होती है, क्योंकि वे सब किसी-न-किसी रूपमें किसी-किसीके लिये उपयोगी हैं। पदार्थोंमें यह जो सुन्दरता, प्रियता और आकर्षण है, वह सब वास्तवमें उस परमिता परमेश्वरसे ही है। उस परमात्माका सिचदानन्द-खरूप ही मायाशक्तिके साथ मिला हुआ होनेसे पदार्थ-मात्रमें प्रियता अनुभव होती है। वास्तवमें तो अस्ति, भाति, प्रिय ये तीनों नाम-रूपसे अलग भले ही दीखते हों, पर ये तीनों विशेषण एक शक्ति या तत्वके ही रूप हैं। जहाँ प्रियता है, वहाँ प्रतीत और अस्तित्व भी है। अतः ये तीनों कोई अलग-अलग विशेषण या शक्ति विशेष नहीं हैं, किंतु ये सिचदानन्दघन परमात्मा ही प्रकृतिको लेकर 'अस्ति-भाति-प्रिय' रूपमें प्रतीत ही रहे हैं।

३- सगुण-साकार--

परमात्माकी यही विलक्षणता है कि वे निर्गुण-सगुण, सिचदानन्दघन, सर्वव्यापी, सर्वदेशी, परिपूर्ण परमह परमात्मा वास्तवमें अजन्मा होते हुए भी जव-वि आवश्यकता समझते हैं, तब-तव अपनी दिव्य प्रकृतिक आश्रय लेकर सगुण-साकाररूपमें अवतरित होते हैं। इस विषयमें खयं भगवान् श्रीकृष्णका कथन है— भेरा जन्म प्राकृत मनुष्पोंके सदृश नहीं है, में अविनाशीखरूप, अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकृट होता हूँ। भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् खयंको प्रकृट या अवतरित करता हूँ।' (श्रोमद्भगवद्गीता ४। ६–८)।

श्रीमगवान् सर्व-सुहृद् और परम उदार हैं। वे मक्तोंकी मनःकामना पूर्ण करनेके लिये ही उन्हें दर्शन देते हैं। अनन्य भावसे जो जिस रूपका ध्यान करता है, परमेश्वर उसी रूपमें प्रकट होकर उन्हें दर्शन देते हैं। अपने दिन्य गुण, प्रभाव, नाम, रूप, लीला, तत्त्व और रहस्यका विस्तार करके सम्पूर्ण लोगोंके लिये आत्मोद्धारका मार्ग खोल देते हैं। शास्त्रोंमें श्रवण, मनन, चिन्तन और निदिध्यासन आदि साधन वताये गये हैं, जिससे प्रभुकी सहज ही प्राप्ति हो जाती है।

मगवान्का छीला-विग्रह वड़ा ही दिव्य, अलैकिक और अद्भुत होता है। वे परमात्मा मायाके वशमें होकर जन्म नहीं लेते, विल्क अपनी योगमायासे प्रकट होते हैं। यह मगवान्का प्रकट होना साधारण मनुष्यों तथा जीवोंके जन्मकी अपेक्षा बहुत ही विलक्षण और दिव्य है। वे अज, अध्ययात्मा, अगुण, अमान, अतीन्द्रिय होनेपर भी भक्तोंके प्रेमवश अवतीर्ण होते हैं। 'अगुन अमान अलख अज जोई। भगत प्रेम वस सगुन सो होई॥' 'राम सगुन भए भगत प्रेम वस' 'कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं' हत्यादि। पर उनका दित्र्य देह सुविशुद्ध, अविकृत और परम मनोहर होता है। उनकी पद-रजमात्रसे अहल्या-जैसे कोटि-कोटि प्राणियोंकी सद्गति हो जाती है। भगवान्का सक्ष्म सभी देवताओंसे भी अति दिव्य, विलक्षण और आकर्षक है। इसी प्रकार वे सपरिकर-सशरीर वैकुण्ठधाम प्रभारते हैं। श्रीवालमीकिरामायणमें स्पष्ट उल्लेख है—

पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामितः। विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥ (उत्तरकाण्ड ११०। १२)

'महामित भगवान्ने पितामह ब्राजिक वचन सुनकर और तद्नुसार निश्चयकर तीनों भाइयोंसिहित अपने उसी शरीरसे वैष्णवतेजमें प्रवेश किया।' इसी तरह श्रीमद्भागवतमें भी भगवान् श्रीकृष्णके छिये छिखा है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्। योगधारणयाग्नेय्याद्ग्ध्याधामाविशत् स्वकम्॥ (११।३१।६)

'धारणा और ध्यानके लिये अतिमङ्गलस्य अपनी लोकाभिरामा मोहिनी मूर्तिके योगधारणा-जनित अग्निके द्वारा भस्म किये विना ही भगवान्ने अपने धाममें प्रवेश किया।' इस प्रकार परमेश्वरकी सभी लीलाएँ अलोकिक, परम दिव्य, प्रकाशमय और आनन्दमय हैं। भगवान्के कर्म साधारण मनुष्यों और देवताओं तथा ऋषि-मुनियोंसे भी विलक्षण और अद्भुत हुआ करते हैं। कारण वे सर्वोपिर, सर्वसत्तावान् और चिन्मय परमात्मा हैं।

जिस प्रकार सूर्य, सूर्यकी किरण तथा सूर्यका
प्रकाश समझनेके छिये तीन हैं, पर वास्तवमें ये सूर्यसे
भिन्न नहीं हैं। उसी तरह सत्, चित्, आनन्द-ये
तीनों गुण अछग-अछग होनेपर भी एक ही परमात्मामें
समाविष्ट हैं। इसी प्रकार निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार
और सगुण-साकार खरूप भी एक ही निर्देशक हैं।

'भगवान् या परमात्मा वास्तवमें भेदरहित हैं। जहाँ मन-बुद्धिकी गित नहीं, वहाँ भी परमात्मा हैं। इसीलिये जब कोई परमात्माके परम तत्त्वको समझकर, परमात्माकी प्राप्तिके लिये अनन्य-भावसे उनके किसी भी रूपको लक्ष्य बनाकर साधना करता है तो उसे परमात्मा-की कृपासे वे उसी रूपमें प्राप्त होते हैं—'यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्धपुः प्रणयसे सदनुष्रहाय।' (श्रीमद्भा० ३।९। ११)

भगवत्-प्रेम

ऋषिकेशके निकटकी बात है कि गङ्गाके इस पार बहुत साधु रहते थे और उस पार एक मस्त रहता या । उसके रगोरेशमें 'शिवोऽहम्' (अनलहक) वसा हुआ था । रात-दिन यह आवाज आया करती थी-'शिवोऽहम्,शिवोऽहम्,शिवोऽहम्,शिवोऽहम्।' एक दिन वहाँ एक शेर आया । साधु इस पारसे देख रहे थे कि शेर आया और उसने महात्माकी ओर रुख किया । वह महात्मा शेरको देखकर उच्च खरसे कह रहा या-'शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।' उसकी धारणामें यह जमा इआ था कि यह रोर मैं ही हूँ, सिंह मैं ही हूँ, खयं केसरीके शरीरमें खर भर रहा हूँ-- शिवोऽहम्, शिवोऽहम् ।' वनराजने आकर इनके कन्धेको पकड़ लिया तो वह (महात्मा) आनन्दके साथ सिंहके रूपमें नरमांसका खाद ले रहे थे और आवाज निकल रही थी-'शिवोऽहम्, शिवोऽहम् ।' दीवालीमें खाँड्के खिलौने बनते हैं । खाँड़के हिरन और खाँड़के शेर । अगर खाँड़-का हिरन अपने-आपको नामरूपरहित विशेषणके साथ समझे कि मैं हिरन हूँ तो क्या वह कहेगा कि खाँड़का शेर मुझको खा रहा है । यदि वह अपने-आपको खाँड़ मान ले तो खाँड़का मृग कह सकता है कि खाँड़के रूपमें मैं ही इधर हिरन और उधर शेर हूँ । इसी तरह जब तुम जानो कि तुम्हारी असल्यित क्या है, वह इस लॉंडके अनुरूप ईश्वरका खरूप है । अतः इस लॉंडके शेरकी दशामें तुम ईश्वरकी हैसियतसे यह कह सकते हो कि मैं इधर हिरन और उधर शेर हूँ।

पगड़ी, पाजामा, दुपट्टा, ॲंगरखा गौरसे देखा तो सब कुछ सूत है।

दामनी तोड़ी तो माकाको गड़ा, पर निगाहे-हक्नमें वह भी थी तिला।

प्यारे ! यह महात्मा वह दृष्टि रखते थे । जिस समय सिंह खा रहा था उस समय वह क्या-क्या स्नाद ले रहे थे। आज नररक्त हमारे मुँह लगा। टाँग बाबी तो भी 'शिवोऽम् शिवोऽहम्।' पर्दा पहले ही पतला था, मगर सरकाया गया।

सिकन्दर जब भारतवर्षमें आया और उसने देखा कि जितने देश मैंने जीते, सबसे अधिक सचाईवाले बुद्धिमान् और रूपवान् भारतवर्षमें ही देखे। उसने कहा—'इस भारतवर्षके सिर अर्थात् तत्त्व-वेत्ताओं और ज्ञानियोंको देखना चाहता हूँ।' सिकन्दरको सिन्धुके किनारे ले जाया गया। वहाँ एक अवधृत बैठे थे। सिकन्दर सारे संसारका सम्राट् और वहाँ लँगोटी भी नहीं। सामना किस गजबका है! सिकन्दरमें भी एक प्रताप था। मगर मस्तकी निगाह तो यह थी—

शाहोंको रोच और इसीनोंको हुस्तो-नाज । देता हूँ, जबकि देखूँ उठाकर नज़रको मैं॥

सिकन्दरपर उस मस्तका रोब छा गया। उसने कहा—'महाराज! कृपा कीजिये। यहाँ के लोग हीरेको गुदड़ीमें छपेटकर रखते हैं। पश्चिममें जरा-जरा-सी चीजोंकी बड़ी कदरकी जाती है। मेरे साथ चले, मैं तुम्हें राजपाट दूँगा, सम्पत्ति दूँगा, हीरे-जवाहिरात दूँगा, जो कुछ चाहो सब दूँगा, लेकिन मेरे साथ चले।' महारमा हँसे और बोले—'मैं हर जगह हूँ, मेरी दृष्टिमें कोई जगह खाली नहीं है।' सिकन्दर नहीं समझा। उसने कहा—'अवस्य चलिये।' और वही लालच फिर दिखलाया। मस्तने कहा—'मुझे किसी चीजकी पर्वा नहीं, मैं अपना फेंका हुआ थूक चाटनेवाला नहीं।' सिकन्दरको कोध आ गया और उसने तलवार खींच ली। इसपर साधु खिलखलाकर हँसा और बोला—'ऐसा इंदर तो तू कभी नहीं बोला था। मुझको काटे, कहाँ है वह तलवार रू

बच्चे रेतमें बैठकर रेत अपने पैरोंपर डाइने हैं। आपही घर बनाते हैं और आप ही ढाते हैं। रेतक मा बिगड़ा ! जो पहले थी वह अब भी है । प्यारे ! हिती तरह उस साधुकी द्शा थी। यह शरीर उसको बहुके घरकी तरह है, जो छोगोंकी कल्पनामें उनकी समझका घर वना था। मैं तो वाछ हूँ। घर कभी था ही नहीं । अगर तुम या जो कोई इस घरको विगाड़ता है, वह अपना घर खराव करता है।

तारे क्या रोज्ञनीसे न्यारे हैं। तुम हमारे हो हम तुम्हारे हैं॥

उत्तर सुनते ही सिकन्दरके हाथसे तलवार छूट पड़ी! एक मंगिन थी, जो किसी राजाके घरमें झाड़ दिया करती थी। कमी-कमी उसको सोना या मोती पुरस्कार-में मिल जाता था। कभी गिरे-पड़े उठा लाती थी। उसका एक लड़का था, जो बचपनसे परदेश गया हुआ या। जब वह पन्द्रह वर्षका हुआ तो घर आया। देखा कि उसकी माँने झोपड़ीमें लालोंका ढेर लगा रखा है। उसने पूछा-'ये चीजें कहाँसे आयीं ?' मेहतरानीने कहा धेय! मैं एक राजाके यहाँ नौकर हूँ, ये उनके

गिरे-पड़े मोती हैं, जिनका यह ढेर है। छड़का अपने मनमें कहने लगा, जिसके गिरे-पड़े मोती ऐसे उत्तम हैं, वह खयं कैसा रूपवान् होगा ! उसे यह स्याल आया कि उसके मनमें प्रेम छा गया और अपनी माँसे कहने लगा कि 'मुझे उसके दर्शन कराओ। ये तारे-सितारे, यह चन्द्र-सूर्य, ये छलकती हुई निद्याँ, यह सांसारिक रूप-सौन्दर्य उस सचाईके गिरे-पड़े मोती हैं। अरे, जिसके गिरे-पड़े मोतियोंका यह हाल है तो उसका अपना क्या हाल होगा !

लगाकर पेड़ फूलोंके किये तकसीम गुलशनमें। जमाया चाँद-सूरजको सजाये क्या सितारे हैं॥ जिस समय कन्याओंका विवाह होता है, उनके डोळपरसे रुपये-पैसे-अशर्फियाँ न्योछावर करते हैं और ऐ महात्माओ ! तुम उन चीजोंको चुनो । रामकी आँख तो उस दुलहिनके साथ रुड़ी। जिसका जी चाहे इन मोतियोंको भरे। रामके पास तो जामा भी नहीं है, फिर दामन कहाँसे लावे ! ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

—स्वामी रामतीर्थं

स्वामी रामतीर्थका आत्मावबोध

क्या ही अच्छा होता ! वाणीमें यह शक्ति होती कि वह आपके गीत गा सकती। तुमने जाना नहीं कि तुम कौन हो ! तुमने अपने 'आप' पर ऊँघते-ऊँघते उम्र विता दी । आँखें तो खोलो, जरा देखो तो ।

वह हँसमुख नेत्र, वह तिरछी चितवन; नींदके परदेमेंसे प्रलय उपस्थित करती है। मेरे कृष्ण ! मेरे राम !

^{हुम} सुषुप्तिके परदेकी ओटमें हमें टाले मत दो ।

भैं दीन दास हूँ । मैं वेवस और वेकस (निराश्रय) हूँ इत्यादि?—यह तुम्हारा वर्राना किसी औरको भरेंमें

बयेगा, जो जानता न हो । मित्रोंसे तो मुँह छिपाओ नहीं । तुम तो मेरे प्यारे कृष्ण हो । राम हो ! यह सव तुम्हारी स्वप्नकी करतूत कैसी परिहास निकली। तुम्हारी कृपणताएँ, जोड़-जमा, शेली बघारना, अज्ञानका नीम विद्या रखना, वुद्धिके गोरखधंधे, प्रार्थनाएँ, विनतियाँ, बहानावाजी, हीलासाजी, इन सबका परिणाम कोरा परिहास है। स्या कुछ और भी था ?

किंतु यह ठडापन आप नहीं हैं। इस उद्देशजीके भीतर नीचे घात लगाये बैठे आप दिखायी दे रहे हैं। आपकी खोजमें वहाँतक पहुँचूँगा जहाँ पहुँचा के के कोई न पहुँचा हो । मौनता, रोना-धोना, लेखन-भाषण, मेज-कुरसी, सुख-शप्या, दिनचर्या, रिजस्टर-पर्चे, दिन-रात चाहे आपको औरोंसे ढाँप रखें और अपने आपसे भी छिपा दें, किंतु मु**क्स**से नहीं छिपा सकते । विखरे हुए बाल, मुर्झाया हुआ पैरी, क्वार पेंदा, वित्राहर भरी आँखें, भयानक आकृति औरोंको चाहे आपसे हटा दें, मुझे नहीं हटा सकते ।

भगवत्तत्वकी प्राप्तिमें भक्तिका योग

(लेखक—श्रीउपेन्द्रची पाण्डेय, शास्त्री)

श्रीमद्भागवतमें भक्तिका विशेष महत्त्व प्रदृष्ट है । यह ग्रन्थ अमलात्मा प्रमहंसोंके चित्तमें भक्तियोग प्रकार कर देता है । महर्षि नेदच्यासको इसी पुराणकी अभिन्यक्ति होनेपर पूर्ण शान्तिकी प्राप्ति हुई।परमविरागी श्रीशुक-देवजीके हृदयमें भी इसीके अध्ययनसे श्रीकृष्णभक्तिका प्रादुर्भाव हुआ । निष्काम कर्मकी पूर्णता भी वस्तुत: भक्ति-योगसे ही होती है श्रीमद्भागवतमें ही कहा गया है—

'निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवानुकी भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती । फिर जो सायन और सिद्धि दोनों ही अवस्थाओं में कल्याणदायक नहीं है, वह काम्यकर्म, तथा जो भगवान्को अर्पण नहीं किया गया है, ऐसा निष्कामकर्म भी कैसे सुशोमित हो सकता है। इसिलये भक्तियोगसे ही ज्ञान और निष्कामकर्म परिपुष्ट होता है । महर्षि पतञ्जलिके अनुसार चित्तवृत्तियोंका निरोध योग है। इस योगका सम्बन्ध कर्म, ज्ञान और मिक्तके साथ है। कर्म, ज्ञान और भक्तिसे चित्तकी एकाप्रतारूपी योगके साथ सम्बन्ध होनेपर ही उनमें निष्कामताकी सिद्धि होती है । श्रीमङ्गावद्गीतामें 'समत्वं योग उच्यते' (गी॰२।४८) तथा 'योगः कर्मसु कौशलम्' से योगकी महिमा प्रतिपादित है।

भक्तोंके छिये भगवान्का भजन ही परम छक्ष्य है। उस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये वे बड़े-से-बड़े दु:खोंको भी सहन करते हैं । इसिछिये अपने भक्तिमूत्रके प्रारम्भमें शाग्डिल्य मुनि पराभक्तिका लक्षण इस प्रकार वतलाते हैं—'सा परानुरक्तिरीश्वरे'

सबसे उन्ह्य भक्ति तो परमेश्वरमें अनुराग ही

है । उस अनुरागमें अपने सुखकी अभिलापा नहीं रहती, बल्कि अपने इष्टदेश जिस प्रकार सुखी हों, यह कामना ही सदा रहती है। इसके उदाहरणहण्ये व्रज-गोपाङ्गनाओंकी भक्ति कही जाती है। इसका रासपञ्चाध्यायीमें स्पष्ट है । भक्तियोग्ने लिये अनन्यता आवश्यक है । विना एकनिष्ठ हुए भक्तियोगकी सार्थकता सम्भव नहीं । इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने कहा है---

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। क्षोतुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतर्गे॥

भगवत्तत्त्वका परिचय तथा भगवत्त्वरूपका दर्शन और उनके साथ तन्मयता भक्तियोगसे ही सुछम होती है। श्रद्धाल पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको भक्तियोगका सहायक मानकर निरन्तर भगवान्का भजन करते हैं। इसीलिये वे भक्त अत्यन्त श्रेष्ठ माने जाते हैं, जिसका समर्थन खयं भगवान्ने गीतामें इस प्रकार किया है-

योगिनामपि सर्वेषां मद्रतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

श्रीमद्भागवत प्रन्थ--गीता एवं त्रिण्गुपुराणका उपबृंहण है । इसमें कर्म, ज्ञान, भक्ति इन तीनोंका दृष्टान्तोंके साथ प्रतिपादन किया गया है। उनमें भक्तियोगको ही सर्वजन-सुलभ और सरल बताया गया है। इसीलिये इन योगोंके अधिकारियोंकी चर्चा करि हुए भागवतकार छिखते हैं---

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मछ। तेष्वनिर्विणणचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम्। यदच्छ्या मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्। न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥

१-द्याण्डिन्य-भक्तिसूत्र २; २-गीता ११ । ५४; ३-गीता ६ । ४७; ४-श्रीमद्भागवत अ० २०, इस्रोक ७-८।

यहाँ ज्ञान, कर्म और भक्तियोगकी चर्चा अलग-अलग की गयी है। उसमें भी मध्यम मार्ग ही भक्तियोगके अधिकारियोंके लिये विहित है। ज्ञानयोगके लिये सर्वथा कर्मसंन्यास आवश्यक है, तथा कर्मयोगके लिये कर्मफलकी आसित अपेक्षित है, किंतु भक्तियोगके लिये न तो सर्वथा कर्मसंन्यास आवश्यक है, न कर्ममें अत्यन्त रागकी ही जकरत है। इसीलिये संसारमें भगवत्तत्त्वकी प्राप्तिके लिये मिलयोग सर्वत्र व्यापक एवं सर्वजनोपकारक सिंद्र हुआ है।

वस्तुतः वित्तकी एकाप्रता जैसी' भगवत्कथा-भ्रवणसे तथा भगवान्की सेवासे अनायास उपलब्ध होती है, वैसी एकाप्रता कर्मयोग या ज्ञानयोगसे नहीं होती। इसीलिये भक्तियोगसे भगवत्तत्त्वको जाननेवाले भक्त भगवान्से भक्ति ही माँगते हैं, जैसा कि प्रह्लादके वर्षाचनाके प्रसङ्गमें नारदजीने कहा है—

भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयार्भकः। मन्यमानो हृषीकेशं समयमान उवाच है॥

प्रहादजीने बालक होनेपर भी यही समझा कि बैकिक विषयोंकी याचना भक्तियोगके लिये विष्न है। इसिलिये उन्होंने सिस्मित भगवान्से कहा और आगे यही वर माँगा कि 'मेरे मनमें किसी वस्तुकी कामना न हो।' वस्तुत: वात यह है कि भगवत्तस्वकी उपलिबमें कर्म, ज्ञान और तप इत्यादि साधन अहंकारादि विकासे युक्त रहते हैं, किंतु भिक्त ही एक ऐसी निर्मल चिन्तामणि है जो भगवत्तस्वको सर्वदा प्रकाशित करती रहती है। अत: भगवान् व्यासने स्पष्ट कहा है कि विण्युभिक्त अनयोंकी शामिका है—

'अनर्थोपरामं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे^र।'

निष्कर्ष यह कि भक्तिके लिये किसी-न-किसी आश्रयकी आवश्यकता होती है; क्योंकि मनका यह खाभाविक वर्म है कि वह कभी भी निराश्रित नहीं रहता । अतः यदि मन भगवान्को अपना आश्रय बनाकर सदा उसीमें अनुरक्त हो जाय तो वह निरहंकारी मन भगवत्तत्त्वके साक्षात्कारसे कृतकृत्य हो जाता है। अर्थात् उस प्राणीके लिये संसारमें किसी भी पदार्थकी कामना नहीं रहती । इसलिये भगवान्की प्राप्तिमें भक्तिका सम्बन्ध सर्वथा श्रेष्ठ है।

भक्तिकी भव्यता

सगुणोपासना—भारतीय दृष्टिकी अनुपम उपल्रिब्ध

(लेखिका-कु॰ स्वेताम्बरी सहगल)

वंशीविभूषितकराञ्चवनीरदाभात् पीताम्बराद्रुणविम्बफलाधरोष्टात्। पूर्णेन्दुसुन्द्रमुखाद्रविन्द्नेत्रात् कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

निर्गुणमतके प्रतिपादक 'अद्वैतसिद्धिं'के प्रणेता श्रीमधुसूदन सरखतीका यह पद्य भारतीय दृष्टिकी सूक्ष्मता एवं व्यापकताका द्योतक है । भक्तिंकाळीन किवयों—सूर, तुळसी, मीराँ आदिके पदोंमें भगवान् कृष्ण एवं रामके सगुण-साकार-खरूपकी अगणित छटाएँ अपूर्व सीष्ठव एवं वैभव ळिये विद्योतित हुई हैं । भक्त किवयोंकी मनोवृत्ति अपने इष्टके मनोहारी ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य सम्पन्न-खरूपमें पूर्ण आश्रय पाकर आह्वाद-विभोर हो अपने अन्तर्हदयके क्वेश, दैन्यादिको निःसंकोच व्यक्तकर, आराध्यके सूक्ष्म, व्यापक-स्वरूपकी अनिवचनीयताको शब्दवद्ध करनेके प्रयासमें कह उठती है—

केसव किं न जाय, का किंहये। देखत तब रचना विचित्र अति समुद्दि मनहि मन रहिये॥

वस्तुतः भक्त और भगवान्के बीच एक विलक्षण आत्मीयताका सम्बन्ध है। भक्त माधुर्य, दास्य, सख्य, वात्सल्य—जिस किसी भावनासे भगवान्का स्मरण करता है, उसी खरूपमें वे उसे संतुष्ट करते हैं। भक्तकी अनन्यता उसे भगवान्पर अपूर्व विशेषाधिकार भी दिलाती है। समराङ्गणमें कुद्ध हो पितामह भीष्म जब कह उठते हैं—

आजु जौ हरिहि न सस्र गहावी।

तौ ठाजों गंगा जननी को, सांतजु-सुत न कहावों॥
तव पार्थसारथी भक्तकी प्रतिज्ञाकी रक्षाहेतु अपना
प्रण त्यागकर रथाङ्ग भारण किये हुए रात्रुपक्षकी ओर दौड़
पड़ते हैं और प्रमुहीकी सौगंध खा जब भक्त हठकर जड़ जाता है—

'प्रन करि हों हिंठ आज ते रामद्वार पर्यो हों तू मेरो यह बिन कहै उठिहों न जनम भिर ।' प्रभुक्षी सौ करि निवरयो हों।

तो भगवान्को भी हार माननी ही पड़ती है। छोहरियाँ छछिया सर छाछ है 'अहीरकी नन्दललाको नाच नचाती हैं। कोई उनकी वाँस्री कोई 'कामरिया' कहीं छुपाकर चुरा लेती है, नटवरको नाचनका आग्रह करती हुई- 'कामर देक नयो'का आश्वासन देती है। नित्य नये उलहने लिये वे धशोदा मैयांके आगे उनसे 'कन्हैयांकी शिकायतें करती हैं और कन्हैया भी तो कुछ कम नहीं — माखन चुरानेपर मैयाहीकी सौगंध खाकर साफ मुकर जाते हैं। फिर कहते हैं कि 'माँ! छोग तथा बळराम भी मुझे गालियाँ देते हैं, कहते हैं कि तुम नन्द-यशोदाके पुत्र नहीं हो । क्योंकि बावा नन्द और यशोदा मैया तो दोनों ही गोरे हैं। तुम इतने साँवले, भला उनके पुत्र कैसे हो सकते हो ? वालमित्र कन्हेयापर चुटकी दे-दे हँसते हैं। बेचारे कहाँतक सहन करें ? मैयाके लिये भीती भोही को मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीजैं की स्थिति है। अब फरियाद करें भी तो कहाँ ?

जन-साधारणके मूलमूत जीवनसे अभिनरूपसे जुड़ी भगवान्की ऐसी अगणित छीलाएँ, अपूर्व छटाएँ अनिवचनीय रसवाराकी अगाध संचार करती हैं। भक्तके छिये भगवान्की यह निकटता उनकी सर्वशिक्त मत्ताके साथ मिलकर एक ऐसा सुदृढ़ आधार उपस्थित करती हैं, जो उसे जीवनके सभी संघर्षोंका स्थिरिक्तसे सामना करनेका सामर्थ्य देते हुए अन्ततः संसारसागरि भोपद इवं पार करा देती है। भगवान्की अपार करणी, पतितपावनता, परमिहतिषिता, सामर्थ्य-पराकाष्ठा भक्तकी वातक-वत धारण करनेके छिये प्रेरित करती हैं

मान राखिबो माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु।

तुल्सी तीनिउ तब फबें, जब चातक मत लेहु॥

अपने बुद्धिचातुर्यसे कल्पना करता हुआ मक्त

क्मी सोचने लगता है—तक न सेरे अव-अवगुन गनिहैं।

जी जमराज काज सब परिहरि, इहै ख्याल उर अनिहैं।

तव तो—

विहें छूट पुंज पापिन के, असमंजस जिय जिनेहें॥

देखि बळ्ळ अधिकार प्रभूसों मेरी भूरि भलाई मनिहें॥

और फिर भगवान् भी—-

हुँसि करिंहें परतीति भगतकी, भगत-सिरोमनि मनिहैं। स्वांस्यों तुरुसिदास कोसलपित अपनायेहिं पर बनिहैं॥' (विनयपित्रका ५)

ऐसे सुदृढ़ विश्वाससे निश्चित हो भक्तकी हर क्रिया, हर वृत्ति, हर क्षण भगवान्में ही होने छगती है। यहाँतक कि—

'सोइबो जो राम के सनेह की समाधि सुख, जागिबो जो जीह जपे नीके रामनाम को।' (विनयपत्रिका)

भित्तके पळखरूप अपार संयम, तितिक्षा, विवेक, वैराग्य आदि भक्तको भगवल्क्षपासे प्राप्त हो जाते हैं। भक्तके क्रेश-बीज, मोहमूळ 'अहम्'को नाम शेष करना भगवान्का व्रत है, जिसके पाळनमें वे निष्ठुर एवं वज्रादिप करोर भी प्रतीत हो सकते हैं, परंतु अन्ततः भक्त भी खयं ही यह अनुभव कर लेता है कि—

जिमिसिसु तन वन होइ गोसाई। मातु चिराव कठिन की नाई॥
तिमि रष्टुपति निज नास कर, हरहिं मान हित लागि।
डिलिसेदास ऐसे प्रशुद्धि, कस न भजहु भ्रम त्यागि॥

मितिपय सुगम, निष्कण्टक राजमार्ग है । योग, जप, तप, उपनास, तीर्थाटन इसके अंग बन जाते हैं । यथाजम-संपृष्ट, परदोष स्वप्नमें भी न देखनेवाला, अधिक कमीसे विरक्त, सज्जन-धर्मरत, जो सभी स्नेहियोंका
भमताताग बटोरकर, उसकी एक ही डोरी बनाकर, अपने मनको प्रमुके चरणोंसे बाँध लेता है, जिसके हिये भाषन सिहि रामपद नेहूं ही हो जाता है,

उसका सुख केवल वह खयं ही जान सकता है। खयं रमापित उसके परम रक्षक हो जाते हैं। वह तो वस 'फिरत सनेह मगन सुख अपने।' अनन्य भक्ति भौतिक सुखोंको तो क्या, मोश्रको भी तुच्छ समझती है। गोपियाँ जब उद्भवजीके ब्रह्मको कन्हैयाके आगे नगण्य ठहराती हुई कहती हैं—

ब्रह्म मिलिबे तो कहा मिलिबे बतावी हमें ताको फल जबलौं मिले न नन्द्रलाला हूँ ?

तो उद्भवजीकी 'ज्ञान-गठरी' क्षणभरमें खुल्कर गिर जाती है। गोपियाँ कष्टसे नहीं उरतीं, उद्भवजीकी बतायी योगकी कठिनतम क्रिया करनेके लिये वे सुकुमारियाँ प्रस्तुत हैं, पर शर्त यह है कि उन्हें ब्रह्म नहीं, कन्हैया मिलना चाहिये—

'सिंह हैं तिहारे कहैं साँसित सबै पै बस, पति कहि देहु कि कन्हैया सिलि जाइगो।' सगुण ब्रह्मकी उपमा गहन अर्थपूर्ण दृष्टिरो सरोवरमें खिले कमलसे दी गयी है—

फूले कमल सोह, सर केसे। निरगुन ब्रह्म सगुन भए जैसे॥
भक्तकी यह गति, यह स्थिति देखनेपर कोई
संदेह नहीं रह जाता कि मनोवृत्तियोंके लिये
भगवान्के संनिकर, परम आत्मीय, सर्वेद्वर्य-सामर्थ्यसम्पन्न खरूपका किसी भी व्यक्तिके जीवनमें अपूर्व
परिवर्तन एवं उत्थानका कारण वन सकता है।
भक्तिरसका माधुर्य केवल वैयक्तिक सुलका ही कारण न
होकर सम्पूर्ण समाजके लिये एक महान् प्रेरणास्रोत बन
सकता है। परंतु सगुणोपासना केवल अपने दृष्ट
मनोवैज्ञानिक परिणामोंके आधारपर ही भारतवर्षमें
सुदीर्घकालसे इतने व्यापकरूपसे चली आ रही है,
ऐसा नहीं है। सगुणोपासनाका दार्शनिक आधार भी
अत्यन्त सुदृढ़ और सूक्त्म है, जिसका अवलोकन विस्तुत
रूपसे करना है। मगवान्के अवतरणका कारण
श्रीमद्भगवद्गीतामें इस प्रकार दिया गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ (४। ७-८)

'रामचरितमानस'में भगवान् इांकर इसके अतिरिक्त भक्तका प्रेम भी भगवान्के अवतरित होनेका कारण बताते हैं—

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेमु ते प्रभु प्रगटहिं जिमि आगी॥ स्वायम्भुव मनुके भगवान्-जैसा पुत्र माँगनेपर प्रभु कहते हैं—

आप सरिस खोजों कहें जाई। नृपतव तनय होब में आई॥ भगवान्का यश गाकर ही भक्त तरते हैं---'सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥' अतः सिद्ध यही होता है कि खयश:-रक्षा ही अवतरणका कारण है—परंतु इतनेहीसे अवतरणकी यथार्थता सिद्र नहीं होती । अतः पहले यह देखना होगा कि अवतारकी यथार्थताके सम्बन्धमें 'रामचिरतमानस'में कहाँ संदेह उपस्थित हुआ है और उसका क्या उत्तर दिया गया है तथा आगेके युगमें यह उत्तर कहाँतक प्रामाणिक माना जा सकता है ? 'परम रम्य गिरिबर' के छासपर जहाँ 'सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर सुनिवृंद? 'सिव सुक्कंद' की आराधनामें छीन रहते हुए 'नित नूतन' वनश्रीमण्डित विशाल वट-वृक्षकी 'सुसीतलं छायामें मृगचर्मपर भगवान् आञ्जतोप सुखस्थ हैं। उनके 'कुंद इंदु दर गौर' शरीरपर मुनिचीर सुशोभित हो रहा है और 'सुजगभूतिभूषण' के आननकी 'सरद चंद छवि हारी' शोभा वर्णनातीत है, मानो साक्षात् शान्तरस ही देह धारण कर स्थित हो--

जटा मुक्ट सुरसरित सिर छोचन निलन विसाल।
नील कंट लावन्यनिधि सोह बालविधु भाल॥
योग्य अवसर जानकर उसी समय भगवती श्रीगिरिजा
उनके चरणोंमें आकर प्रणाम करती हैं। उनके
आदरपूर्वक वामासन देनेपर गौरीजीके हृदयमें पूर्वजन्मकी

बातें स्मरण हो आती हैं। अत्यन्त विनम्नभावसे मगवान् शंकरकी स्तुति कर वे उनसे अपना अज्ञान नष्ट करनेकी प्रार्थना करती हैं। भगवान् शंकरके हृदयमें भी 'रामचिरत'का स्फुरण होता है और कुछ देरतक ध्यान-मग्न रहकर हर्पसे अपने इयदेवकी वन्दना कर विक स्वरूपका वर्णन करते हैं——

झूठेड सत्य जाहि बिजु जानें। जिमि भुजंग बिजु रजु पहिचानें॥ जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥ बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥

यहाँ वे विख्यात दृष्टान्त सर्प-रञ्जु तथा ख़ज-सृष्टिका उल्लेखकर पुनः वाल्रुक्षप रामकी वन्द्रना करते हैं । साथ ही सगुण-निर्गुणकी अभिन्नता भी प्रतिपादित करते हैं और पुनः कहते हैं—

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल विलग नहिं जैसें॥ तथा-—

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥ सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

इन उक्तियोंमें पुनः सगुण-निर्गुणकी एकता प्रतिपादित की गयी है। भगवान् शंकरद्वारा रजत-शुक्त्याध्यास, खप्नवत् सृष्टिका निर्देश करनेपर पार्वतीजीके हृद्यमें तत्काल्ठ'मइ रघुपति पद भीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥ —श्रीशंकरजीके 'भ्रमभंजन' वचनोंसे कुतक नष्ट हो गये। विचारणीय वात यह है कि रामकथाका तो अभी प्रारम्भ भी नहीं हुआ, परंतु श्रोताका संदेह नष्ट होकर उनका समाधान हो गया है। यहाँ 'अधिकार'का महल् स्पष्ट ज्ञात होता है। वक्ता खयं 'जोग ग्यान बैराग्यतिध प्रनत कलपतर' जगदुरु श्रीशंकरजी हैं, श्रोता साक्षात् श्रीजगज्जननी तपःपूता भगवती गिरिजा हैं। अतः वेदान्त-शास्त्रकी मार्मिक युक्तियोंके निर्देशमान्नसे अज्ञानावरण तुरंत हो नष्ट हो गया।

वेदान्त-शास्त्रानुसार जाग्रत्, खप्न, सुषुप्ति, तीर्ने अवस्थाओं में 'त्वं' पदका 'शोधन' करनेपर एक संवित चिन्मात्रकी सत्ता प्रमाणित होती है। 'विश्वदूर्पण' में दृश्यमान-

गारिके तुल्य सिद्ध होता है, जो पुनः 'निजान्तर्गत' है, गरंतु ख्रनसृष्टिकी भाँति वाह्यस्थ प्रतीत होता है। क् वित्तत्व सृष्टिका आधार एवं मायाके अध्यासका आश्रय है । श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका क्यन है-- 'बीजं मां सर्व भूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्' ण्हापि सर्वभूतानां वीजं तद्हमर्जुन' त्या—'न तद्स्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्'

चिन्मात्र 'सत्' है, फिर अनात्म क्या है ? अनात्म केतल अविद्यामुलक अज्ञान दृष्टि ही है। प्रातिभासिक सतासे गुद्ध चैतन्यका अविद्याद्वारा अभेद माननेमें ही अनासकी प्रतीति होती है । प्रतिपछ परिवर्तनशील संसारको शाबत मानकर उसमें चञ्चल चित्तका परमात्माके आसक्त होना ही अज्ञान है । परमात्माके यथार्थ अस्तित्व एवं शास्ति-सक्षको समझकर एक तत्त्वमें निष्ठावान् होना भक्ति है, <mark>ज्ञान मी वही है । वस्तुतः 'दृस्य' और 'दृष्टा' अभिन्न</mark> होनेपर भी अहं तथा ममतासे आवद्ध चित्तमें ये तथा अन्य प्रयेक पदार्थ भी भिन्न दीखते हैं। अतः चित्तशुद्धि ही साय है। चाहे वह ज्ञानसे, चाहे कर्मसे, चाहे भक्तिसे हो।

जड़-चेतनकी प्रन्थि आज भी विज्ञानके लिये दुरूह ^{पहें वनी हुई है; क्योंकि पाँच महाभौतिक इन्द्रियोंद्वारा} भौतिक जगत्का बोध मायिक है, अर्थात् वह जगत् वैसा नहीं है, जैसा प्रतीत हो रहा है । परंतु साधारण वृद्धि इस तथ्यको कैसे समझ सकती है ?——

कुरमिलन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखिहें किमि दीना॥

मौतिक्वादीकी संकुचित दृष्टि उसके अन्तःकरणरूपी र्र्पणपर जो मलावरण डाल देती है, वही उसके सत्-र्शनमें वाध होता है । बुद्धिद्वारा 'न भूमिन तोयं रतेजो न वार्युन खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः' अथवा भ गुक्लं न रुक्णं न रक्तं न पीतं न कुब्जं न पीनं न हेंस्वं न दीर्घम्' एवं 'न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न वाह्मम् (दशक्लोकी, सिद्धा० विंदु) का साक्षात्कार ही किय है। गोलामी तुलसीदासजी भी कहते हैं-

निरगुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ। सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥ जो निम्नलिखित गीताके भावसे भी मिळता है---क्लेशोऽधिकतरस्तेपामन्यकासकचेतसाम् । अन्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्गिरवाप्यते॥

(गीता० १२।५) निर्गुण-मतावलम्बी जीवनको निषेधात्मकदृष्टिसे देखता है । उसके लिये 'दृश्य' मात्र मिथ्या है, आभास 'बद्र समाना' है। परंतु सगुणारायकके लिये सम्पूर्ण सृष्टि आराध्यदेवका मूर्त विराट् विग्रह है, जित्तकी प्रत्येक छटा उसके हृदयमें अनुराग, उल्लासका संचार करती है । आनन्द उसके रोम-रोममें टपकता है, परंतु आसक्ति-की शृङ्खलाएँ उसके हृदयको कभी बाँघ नहीं पाती, चाहे वह अपार जनसमूहमें कर्मरत हो, चाहे नीरव एकान्तमें ध्यानमग्न, अपूर्व समर्पणमें उसका इदय सदा एकरस रहता है-गूँगेका गुड़। वह किसीको समझा नहीं पाता-न इसकी आवश्यकता ही होती है। सम्पूर्ण सृष्टिका विधान उसके लिये मङ्गलमय है--सचिदानन्दकी आनन्दमयताकी अमिव्यक्ति है--दिव्य वीणाकी मोहक झंकार स्थाम-सुन्दरकी वेणुकी अपूर्व ध्वनि, अखण्ड रासलीलाकी अनवरत गति—सगवान्का 'प्रसाद' है । सरोवरमें खिले अरुण-कमल-जैसे 'उसकी शोभामें चार चाँद लगा देते हैं, वैसे ही 'निर्गुण ब्रह्म' रूपी सरोवरमें 'सगुण' 'कमल्की भाँति सुशोभित होता है । 'साकार' ही सिचदानन्दकी आनन्दमयताका मूर्त प्रमाण है। इसीलिये जिन धर्मप्रवर्तकोंने मूर्तिपूजाका तीव्र विरोध किया, काळान्तरमें उन्हींके अनुयायियोंद्वारा उन्हींकी प्रतिमाएँ पूजित होने लगीं, पर भारत तो इस तथ्यको पहलेसे ही स्रीकार कर सबकी आराधना करता आ रहा है—

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गीता १० । ४१) — के न्यायसे भगवान् विष्णु

(लेखक - श्रीबाब्रामजी अवस्थी, एम् ० ए०, साहित्याचार्य)

भारतीय वाब्यय एवं जनजीवनमें भगवान् विष्णुको सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है । वेदोंसे लेकर सामान्य साहित्यतकमें भगवान् विष्णुके अनन्त नामों-रूपों, चौबीस अवतारों और छींछाओंकां विशद वर्णन मिळता है। वस्तुतः विष्णु वह परम सत्ता है, जिससे पृथक् किसीकी कोई सत्ता नहीं । समस्त चराचर जगत् उनके विराट रूपका साकार विप्रह है। विष्णु शब्द व्याप्यर्थक 'विश्' धातुमें 'विषेः किच' इस औणादिक सूत्रसे 'तु' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है । सर्वत्र व्याप्ततत्त्वका नाम ही विष्णु है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और खर्गतक विष्णुकी व्यापकता प्रसिद्ध है---

यसाद्विष्टिमदं सर्वे तस्य शक्त्या महात्मनः। तसादेवोच्यते विष्णुर्विदोधीतोः प्रवेशनात्॥ (विष्णुपुराण)

उन भगवान् विष्णुकी शक्तिसे ही यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है । गीतामें भी कहा गया है—'त्वया ततं विश्वमनन्तरूपं तथा 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सत्रे मणिगणा इव ।' वेदोंमें तीनों लोकोंके नापनेके कारण वे 'त्रिविक्रम' कहलाते हैं। विस्तृत गतियुक्त होनेसे वे ही (उरु—गच्छति) उरुगाय कहे गये हैं—

विष्णोर्च कं वीर्याण प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। अस्कभायदुत्तरं सधस्यं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः (ऋ०२।१५४।१)

भैं विष्णुके उन वीरतापूर्व कर्भांका वर्णन करता हूँ, जिन्होंने पृथ्वीसम्बन्धी कणोंको अथवा तीनों लोकोंको नाप लिया और उन्होंने विस्तृत गतिशील होकर तीन डगोंमें ही खर्गको नाप लिया। इनमें दो पादविक्षेप मनुष्योंद्वारा देखे जा सकते हैं, परंतु तीसरा कम मन्योंकी पहुँचसे

परे है। विष्णुका उच्चतम विक्रम खर्गमें स्थिर है, जो नीचेकी ओर बड़ा ही चमकता हुआ प्रकाश देता है और वहीं खर्ग वह स्थान है, जहाँ विष्णु रहते हैं तथा जहाँ पुण्यात्मा मनुष्य और देवता आनन्द भोगते हैं

तदस्य प्रियमभि पाथो अइयां यत्र देवयवो मदन्ति। उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥ (ऋ० १। १५४।५)

इस मन्त्रमें सूर्यके तीन मार्गके ही विष्णुके तीन विकास माने गये हैं । निःसंदेह पृथ्वी, अन्तरिक्ष और खर्ग ये उनके तीन पादविक्षेप-स्थल हैं-

ता वां वास्तून्युश्मिस गमध्ये यत्र गावो भूरिश्टङ्गा अयासः। तदुरुगायस्य अत्राह भाति भूरि॥ पदमव (ऋ०१।१५४।६)

'हम तुम्हारे उन निवासस्थानोंको जाना चाहते हैं जहाँ बड़ी सींगोंवाली उत्तम गायें अथवा विशाह किरणें हैं। वहीं विस्तृत गतिवाले अभीष्टवर्त्री विष्णुका विशाल परमपद शोभित होता है। वेदोंमें विष्णुका अर्थ सर्य भी है।

सौरचक्रकी नन्बे गतियाँ और तीन सौ साठ दिन ही उनका चक्र माना गया है । यह प्रकाशपूर्ण तीव सौर गित समस्त विश्वको न्यास कर लेती है, अतः सूर्य विष् हैं । पुराणोंमें बारह आदित्योंमेंसे एक विष्णु माने गये हैं विष्णुकी दूसरी विशेषता है — इन्द्रकी मित्रता। बृत्रवर्षे ये दोनों इतने घनिष्ठ हैं कि 'इन्द्राविष्णु'का इन्द्रसमार प्रयोग हुआ है । कोशोंमें विष्णुके पर्यायबाची शब्दी 'उपेन्द्र' शब्द भी आता है, जो दोनोंका साह्च्य्रीस्व इन्द्रावरजञ्चकपाणिश्चतुर्भुजः। (अमर० खर्गे॰ ११) है---उपेन्द्र



भगवान विष्णु CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri पुराणोंमें विष्णुके अगणित नाम-रूपों और लीला-प्राणोंकी कल्पना की गयी है । उनका वर्ण उज्ज्वल तथा

गुक्काम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
ग्रम्भवदनं ध्यायेत् सर्वविध्नोपशान्तये॥
ग्रम्भवदनं पीतकौशेयवासं
ग्रीवत्साङ्कं कौस्तुभोद्धासिताङ्गम्।
गुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं
वन्दे विष्णुं सर्वलोकैकनाथम्॥

ते चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, मुकुट-कुण्डल-कीत्तुम-मणिमण्डित, पीताम्बरसुशोभित, श्रीवरसपद-मन्द्रित, वनमालाविभूषित तथा सर्वाङ्गसुन्दर हैं। वे कृष्णरूपसे राधाके साथ गोलोकमें, रामरूपसे सीताके साथ साकेतमें, विष्णुरूपसे लक्ष्मीके साथ वैकुण्ठमें विराजमान रहते हैं। उनके शङ्खका नाम पाञ्चजन्य, चक्रका नाम स्दर्शन, गदाका नाम कौमोदकी, खङ्गका नाम नन्दक, मणिका नाम कौस्तुम, धनुष्का नाम शाङ्ग है और उनके बाहन गरुड़ हैं—

गङ्गो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यश्चकं सुद्दानम्। कौमोदकी गदा खङ्गो नन्दकः कौस्तुभो मणिः॥ वापः शार्ङ्गं मुरारेस्तु श्रीवत्सो लाञ्छनं स्मृतम्॥ (अमर० खर्ग० ३१)

मगवान् विष्णुके ये राष्ट्व, चक्रादि आयुध कोई वड पदार्थ नहीं हैं, बल्कि मूर्तिमान् चेतना-शक्ति-बक्ष हैं । वे निरन्तर उनकी जयशब्दादिद्वारा बित करते हुए उपासना करते रहते हैं—

देखक्षीगण्डलेखानां मद्रागविलोपिभिः। देतिभिरचेतनाविद्धरुदीरितज्ञयखनम् ॥ (रघु०१०।१र)

वनका चतुर्भुज रूप बड़ा सौम्य एवं मनोहर है । बहुन विराटरूपसे भयभीत होकर उसीके दर्शनार्थ

जित होण चंतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वसूर्ते। (गीता ११ । ४६) भगवान्के इस रूपमें अर्जुनकी विशेष आणि होनेका अभिप्राय यह है कि इस दिव्य खरूपमें उपस्कित अलौकिक गुणोंके दर्शन होते हैं। उनके मस्तक्ष्म मुकुट सब प्रकारके ऐश्वर्य तथा परहित-एकता, अनुभवका चिह्न है। राष्ट्र सब प्रकारकी विद्यार्थिक प्रतीक है; क्योंकि शक्क शब्दासक है और विद्यार प्राय: शब्दरूप ही हैं। किसी मस्तने कहा है

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिविश्वम्भरो गीयते नो चेद्रभकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निःसरेत्। इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यंदुपते लक्ष्मीपते केवलं त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते॥

(चाणक्यनीति)

गदा शारीरिक महाप्राणता तथा मानसिक शक्तिका चिह्न है—'कुं पृथ्वीं मोदयति इति कौमोदकी' अर्थात् समस्त पृथ्वीको प्रमुदित करनेवाछी कौमोदकी गदाको धारण करनेवाछे भगवान् विष्णु अत्यन्त परोपकारी और निर्भय हैं, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

चक्र आयुध पापियोंके लिये भयंकर कालके समान संहारक है, किंतु भक्त सज्जोंके लिये 'सुदर्शन' है। वह उनकी रक्षा करता है। दुर्वासाके कोधसे उत्पन्न 'कृत्या'का संहारकर अम्बरीपके रक्षाका कार्य सुदर्शनहींने किया था। साथ ही वह कार्यकौशल अथवा कर्मशीलताका प्रतीक है; क्योंकि चक्र विषम धारवाला और गोलाकार होता है। जिस प्रकार किसी यन्त्रके चक्के एक दूसरेसे शृङ्खलाबद्ध जुड़े हुए चक्कर काटते रहते हैं, तभी वह यन्त्रालय भी चलता है, उसी प्रकार सभी प्राणी अपनी-अपनी योग्यताके कर्म कुशलतासे करते हुए परस्पर शृङ्खलाबद्ध और एक दूसरेके सहायक होते हैं, तभी संसार-चक्क मलीमाँति चलता है। विण्युके हायमें ऐसा ही चक्क है। इसका आश्रय यह है कि सम्पूर्ण जगत्का संचालन उनके ही हाथमें है। प्रा

अनासक्तिपूर्ण स्नेहका प्रतीक है। वह सदा पानीमें रहता हुआ भी उससे पृथक् रहता है, भीगता नहीं। वह सदा सुरभित सौन्दर्यमय रहता है। भगवान्के हाथमें पद्म है, अर्थात् संसारमें अवतार लेकर सब कर्म करते हुए भी वे निर्छित रहते हैं । भगवान् श्रीकृष्णने कहा है— 'मुझे कर्म लिप्त नहीं करते और कर्मफल्लमें भी मेरी तृष्णा नहीं है । इस प्रकार जो कोई मुझे जान लेता है, वह भी कमोंसे नहीं बँघता । जो पुरुप सब कमोंको ब्रह्ममें अपण करके फलासिक त्यागकर कर्म करता है, वह जैसे कमलका पत्ता जलमें रहकर भी उससे अलग रहता है, वैसे ही पापसे लिप्त नहीं होता | (गीता ४ । १४, ५ । १०) पद्ममें सुगन्ध होती है । इससे यशका बोध होता है । भला भगवान्से अधिक यशस्वी और कौन होगा ? उनका सौन्दर्य, जिसके कणमात्रसे जगत्की अनोखी रमणीयताकी सृष्टि होती है, सर्वथा अवर्णनीय है। विण्युके ग्रुस्न-पीत वस्त्र उनकी निर्मलता तथा सत्त्वके प्रतीक हैं | वे देवत्रयीमें भी जगत्-रक्षक सत्त्वगुणात्मक शक्तिस्वरूप हैं-

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे॥ (कादम्बरी १) उनकी चार भुजाएँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी

ओर संकेत करती हैं। चारों पदार्थ उनके अङ्ग को हैं। अतः वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं। वैकुण्ठ आदि सर्वोच्च स्थानोंमें निबासकी कल्पना उनकी सर्वश्रेष्ठताका सूचक है।

पुराणोंमें वर्णित मत्स्य, कूर्म, वराह आदि दस अवतारोंको धारण करनेवाले विष्णु ही हैं। वैसे अंशावतार, आवेशावतार और पूर्णावतार आदि मेदसे उनके अवतारोंकी संख्या अनन्त है। इन अवतारोंके आधारण इनकी अनन्त गाथाएँ पुराणोंसे लेकर आधुनिक साहित्यतक विखरी हुई हैं। पाद्धरात्र, वैष्णव, सास्वत, वैखानस एवं भागवत आदि अनेक धर्म, मत, सम्प्रदायादि विष्णुकी उपासनाको लेकर प्रकट हुए। ज्ञानीजन समस्त जड-चेतन और अखिल ब्रह्माण्डमें उसी सत्ताके दर्शन करते हैं। वे यज्ञपुरुष हैं। दया, दाक्षिण्य, सिहण्णुता आदि समस्त गुण उनमें वर्तमान हैं। चञ्चल लक्ष्मी उनके चरणोंका सामीप्य नहीं छोड़ती—'चलापि यन्कूर्न जहाति कहिंचित्।' (श्रीमद्रा०३)

नमस्तुभ्यमनन्ताय

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितक्यात्मकर्मणे । निर्गुणाय सत्वस्थाय गुणेशाय च साम्प्रतम्॥ (ब्रह्माकी प्रणति, श्रीमङ्गा०८।५।५०)

'जो तीनों काल और उससे परे भी एकरस स्थित हैं, जिनकी छीछाओंका रहस्य तर्क-वितर्कके परे हैं जो खयं गुगोंसे परे रहकर भी सब गुणोंके स्वामी हैं तथा इस समय सत्त्वगुणमें स्थित हैं— ऐसे आप भावार विष्णुको हम बार-बार नमस्कार करते हैं।

क यह मन्त्र तैत्तिरीय, काण्व, कारुकादि कई संहिताओं में है । वाजसनेयसंहिताके अतिरिक्त अधिकांश अन्य स्थलीपर 'होश्चंश्का पाठ है।

परम शिव-तत्व

(लेखक—श्रीराजिन्द्रसिंहजी 'मान्', एम्॰ ए॰, वी॰ एड्॰)

वेदोंमें मूल तत्त्वके लिये शिव, विष्णु, इन्द्र, वरुण आदि—'पकं सद् विमा वहुधा वदन्ति' (ऋ०१। १६४।४६) अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं। स्वेतास्वतरोप-निषद्में यह तत्त्व शिव नामसे अभिहित है। उसके अनुसार शिवकी उपासनासे पूर्ण शान्ति मिलती है—

एको वर्शा निष्क्रियाणां वहूनामेकं वीजं वहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपदयन्ति धीरास्तेषां सुखं शादवतं नेतरेषाम्॥
(१वेताव्यतर० ६ । १२)

'एक अद्वितीय खतन्त्र परमात्मा जो बहुत-से जीवोंके अनेक रूप कर देता है, अपने अन्तःकरणमें स्थित उस सर्वशक्तिमान् परम सहृदय परमेश्त्ररको जो धीर पुरुष निरत्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा रहनेवाला परम आनन्द (नित्य सुख) प्राप्त होता है, औरोंको नहीं।' वे सभी ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ता— द्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥ (स्वेताश्वतरः ६ । ७)

मनु इन्हें एकाक्षर ब्रह्म—'ॐ' कहते हैं । विष्णु भगवान्ने रुक्ष्मीसहित शिव-पूजनकर अत्यन्त तेज प्राप्त किया । ब्रह्मादिक देवता उनके ही प्रचारक हैं—

तत्कृतं हिं जगत् सर्वे ब्रह्माद्यास्तस्य किकराः। (शि॰पु॰ वायवीय सं॰ अ॰ ३४। ३८)

रामायणके सभी पात्र शिवकी आराधना करते हैं।

पप्राणमें श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई शत्रुध्नसे कहते

के भी महेशकी चरणरजको धारण करता हूँ।

शिवे विष्णौ न वा भेदो न च ब्रह्ममहेशयोः।
तेषां पाद्रजः पूतं वहाम्यघविनाशनम्॥
(४।२५०)

महाभारतमें युग-युगमें श्रीकृष्णके द्वारा शिवपूजनका वर्णन मिळता है----

युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेर्वरः। (महाभारतः अनुः १४। १३)

यजुर्ने दमें शिवकी उपासनासे सम्बद्ध—'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।'(यजुर्नेद १६। ४१) इत्यादि ६६ मन्त्र 'शतरुद्रिय'नामसे उपलब्ध हैं। ब्रह्मवैवतपुराणमें श्रीकृष्णजी राधाजीको शिव-महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं—'जो महादेवका नाम लेता है, मैं उसके पीछे नाम-श्रवणप्रलोभनसे चलता रहता हूँ।'—

महादेव महादेव महादेवेति वादिनः। पश्चाद्यामि भयत्रस्तो नामश्रवणलोभतः॥ (ब्रह्मनै॰ पु॰ जन्मखण्ड)

श्रीमद्भागवतमें भगवान् रुद्रको जगदीस्वर तथा शिवपूजकको ही श्रेष्ठ वतलाया गया है.—

त्वमेकः सर्वजगतामीश्वरो वन्धमोक्षयोः। तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नातिहरं गुरुम्॥ भगवान् शंकराचार्य भी कहते हैं—

'त्वद्दन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः' पुष्पदन्तकी भी स्तुति है—

'नृणामेको गम्यस्त्वमिस पयसामर्णव इव' 'जैसे अनेक निदयोंका जल भिन्न-भिन्न मार्गोसे सीधा या टेढ़ा घूम-फिरकर अन्तमें एक समुद्रमें ही जाकर शान्त होता है, वैसे ही आप ही सबके प्राप्य हैं।' आगमोंपर आधृत शैवधमेंमें कई साम्प्रदायिक मत और दर्शन हैं । इनमें आगमोक्त शैवधर्म वैदिक परम्पराके अधिक अनुकूछ है, किंतु पाशुपतधर्ममें कालकमसे कई अवैदिक तत्त्व आ गये । श्रीकण्ठाचार्यने वेद और शिवागममें भी भेद नहीं माना है।

पाञ्चपतआगम या सम्प्रदायका मूल प्रन्य 'पाञ्चपतसूत्र' है । इसपर कौण्डिन्यकृत 'पञ्चार्थीमाष्य' है । इसके अनुसार संसारके पाँच पदार्थ हैं कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त । जीव और जड़को कार्य, परमारमाको कारण या पति कहा जाता है । जीवको पशु और जड़को पाद्य भी कहते हैं। चित्तद्वारा पशु और पतिके संयोगको 'योग' कहते हैं। पतिको प्राप्त करानेवाले मार्गको 'विधि' कहते हैं। साधकको पतिकी पूजाके समय हँसना, गाना, नाचना, जीम और ताछुके संयोगसे बैलकी आवाजके समान हुड़-हुड़ शब्द करना, नमस्कार आदि करना ही 'बिधि' है । दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति दुःखान्त या मोक्ष है। संत अप्पार, संत ज्ञानसम्बन्ध, संत सुन्दर तथा संत माणिक्क वाचक—ये इसके चार प्रमुख आचार्य हुए हैं, जो तमिल देशमें शैवधर्मके चार प्रमुख मार्ग-किया (सत्पुत्रमार्ग), योग (सहमार्ग), चर्या (दासमार्ग) और ज्ञान (सम्मार्ग)के संस्थापक रहे हैं। कश्मीर शैवमतकी भी दो शाखाएँ हैं—स्पन्द और प्रत्यभिज्ञा ।

कर्नाटकमें प्रचलित वीरशैवमतके संस्थापक 'वसवराज' हैं। इसमें सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट शक्ति और स्थूल-

चिदचिद्विशिष्ट शक्ति दो भेद हैं। इसमें पहली शक्ति 'पर-शिव'का ग्रहण है और दूसरीसे जीवका प्रमतस्य शिव पूर्णहंतारूप या पूर्णलातन्त्रयस्य है। उनकी पारिभाषिकी संज्ञा स्थ है। इसे छिङ्गायतमत भी कहते हैं । शिवलिङ्ग पहने रहते हैं । शैवागमके विधा क्रिया, योग और चर्या—ये चार पाद हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

विद्यापाव-इस पादमें पति, पशु और पासके सक्रपकी व्याख्या तथा सन्त्र, मन्त्रेखर, महेश्वर एवं मुक्तके महत्त्वका निरूपण है। (१) पति-नित्य-मुक्त निर्गुण, निर्मल, सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी परमसर्वद्व करने न करने और अन्यथा करनेमें समर्थ, अनन्त ऐश्वर्यमय, सब प्रकारसे खतन्त्र और सबपर अनुप्रह करनेवाले महेश्वर परमशिव ही पति हैं। उनपर शिवके पाँच मुख मन्त्र हैं। ईशानमेन्त्र उनका मस्तक है, तलुरुष मुख है, घोर हदय, वामदेव गुह्य और सद्योजात उनका पाद है। पशुपतिके पाँच कार्य प्रसिद्ध हैं—(१) सृष्टि (उद्भव-छक्षण), (२) स्थिति (स्थिति-छक्षण), (३) संहार, (४) तिरोमाव (आवरण) और (५) अनुप्रह (प्रसाद)।

रत्नत्रयोमें पति, कर्ता, करण, शकि तथा विन्दु-मेदप्रधान दृष्टिवाले शैव-सिद्धान्तमें शिव, शिव और बिन्दु—ये तीन रत्न माने गये हैं। ये ही समत

⁽१) भगवान् शिवके सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान—इन पाँचों मुखोंसे निःसृत तथा अर्ध्वार शिष्योंको उपदिष्ट 'कामिकादिक' आगम प्रसिद्ध हैं । इनका प्रभाव नाटक, शिल्प, वास्तु, संगीत, शब्द-शास्त्र, योग, व्या एवं सांख्यवैशेषिक सभीपर पड़ा है। कालिदासके नाटकोंके मञ्जलक्लोक शैवागमसे प्रेरणा ग्रहण करके लिखे गये हैं।

⁽२) मस्तक (ईशान-मन्त्र)-

[💞] ईशानः सर्वविद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणे ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवाम् ॥

⁽३) मुख-ॐ तत्पुरुषाय विद्वाहे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

⁽४) हृदय-ॐ अघोरेम्योऽथ घोरेम्यो घोरघोरतरेम्यः सर्वेभ्यः सर्वश्रवेभ्यो नमस्तेऽस्त रुद्ररूपेग्यः॥

⁽५) गुद्ध अङ्ग-ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो चद्राय नमः कालाय नमः कालविकरणाय नि बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभृतदमनाय नमो मनोन्मथाय नमः ॥

⁽६) पाद-ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवे नातिभवे भवस्य मां भवोद्भवाय नमः॥

तन्ति अधिष्ठाता और उपादानरूपसे प्रकाशमान होते हैं। ग्रुद्धतत्त्वमय ग्रुद्ध जगत्के कर्ता शिव, करण, शक्ति त्या बिन्दु हैं। इसीका नाम महामाया है। यही बिन्दु शब्दब्रह्म, कुण्डलिनी, विद्याशक्ति तथा व्योम—इन विचित्र मुबन तथा भोग्यरूपमें परिणत होकर ग्रुद्ध जगत्की सृष्टि करता है। क्षुच्य होनेपर इस बिन्दुसे एक और ग्रुद्ध देह, इन्द्रिय-भोग और भुवनकी उत्पत्ति होती है, दूसरी और शब्दका भी उदय होता है।

बिन्दुश्चे उत्पत्ति—

जायतेऽच्चा यतः शुद्धो वर्तते यत्र छीयते। स बिन्दुः परनादाख्यः नादिवन्द्वर्णकारणम्॥ (रत्नत्रयः, का० १२)

सूक्म बिन्दु—नाद (शब्द), अक्षर और कारण-मेदसे
तीन प्रकारका होता है। यह कारणभूत सूक्ष्म बिन्दु
बढ़ होनेपर भी शुद्ध है। जीवात्मा या क्षेत्रज्ञ पशु है।
बढ़ अज्ञ, अणु, परिच्छिन्नरूप, सीमित शक्तिसे समन्वित,
एक न होकर अनेक तथा क्रियाशील है। शिवपुराणकी
वायबीयसंहिताके अनुसार ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त
जो भी संसार-वशवर्ती चराचर प्राणी हैं, वे सब-के-सब
भगवान् शिवके पशु हैं। पाश हटा दिये जानेपर वे
नित्य एवं निरितशय ज्ञान-क्रिया-शक्तियोंसे सम्पन्न हो
चैतन्यरूप शिव बन जाते हैं। नित्यमुक्त शिवकी
अनुकम्पासे जीव मुक्त होते हैं। यद्यपि मुक्त होकर जीव
शिव हो जाते हैं तथापि वे स्वतन्त्र न होकर शिवके
अधीन रहते हैं।

पशुके प्रकार—पाशोंके तारतम्यके कारण पशु
तीन प्रकारके होते हैं—१ - विज्ञानाकळ, २ - प्रल्याकल
और ३-सकल।

(१)विश्वानाकल-जो परमात्माके खरूपका पहचान-कर जप, घ्यान, योग, संन्यास या भोगद्वारा कर्मोको क्षीण कर डालता है और कर्मोंके क्षय हो जानेके कारण जिसके लिये शरीर और इन्द्रिय आदिका कोई बन्धन नहीं रहता, उसमें केवल मल (आणव) रहता है। ये मल तीन प्रकारके होते हैं— 'आणवमल' 'कर्मजमल' तथा 'मायीयमल'। विज्ञानाकल विज्ञान (तत्त्वज्ञान) द्वारा अकल—कलरहित (कलदि मोग-वन्धनोंसे रहित) हो जाता है, इसल्पिये उसकी विज्ञाना-कल संज्ञा होती है। विज्ञानाकलके दो मेद हैं— (क) 'समास-कलुय' और 'असमास-कलुय'।

(क) 'समाप्त-कलुष'—जीवात्मा जो कर्म करता है, उस हर एक कर्मकी तहपर मल जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता, किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं। इसीलिये यह 'समाप्त-कलुष' कहलाता है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर अपने अनुप्रहसे 'विद्येश्वर' पद प्रदान करते हैं। तन्त्रशाखमें विद्येश्वरोंकी संख्या आठ मानी जाती है—१—अनन्त, २—सूक्ष्म, ३—शिवोत्तम, ४—एकनेत्र, ५—एकरुद, ६—त्रिमूर्ति, ७—श्रीकण्ठ तथा ८—शिखण्डी।

अनन्तर्श्वेव स्क्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः। एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिकः॥ श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे।

(ख) 'असमाप्त-कलुप'—'असमाप्त-कलुप' वे हैं, जिनकी कलुप-राशि अभी समाप्त नहीं हुई है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर 'मन्त्र' खरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किंतु मल्रूपी पाशमें बँघे हुए जीव ही मन्त्र हैं और इनकी संख्या सात करोड़ है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। ये विद्यातत्वके निवासी हैं—

प्शवस्त्रिविधाः प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकलौ सकलः। मलयुक्तस्त्वाचो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात्॥ मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः। आद्यः समाप्तकलुपः समाप्ताकलुषो द्वितीयः स्यात्॥ आद्यानुगृह्य शिवो विद्येशत्वे निजोजयत्यप्रौ। मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोटयः सप्त॥ (तत्त्व-प्रकाश)

२-प्रख्याकळ—जिस जीवात्माके देह-इन्द्रियादि
प्रख्यकाळमें लीन हो जाते हैं, इससे उसमें 'मायेय' मल
तो नहीं रहता, परंतु 'आणव' और 'कर्मज' ये दो मल्क्पी
पाश रह जाते हैं, प्रल्यकालमें ही अकल (कल्रहित)
होनेके कारण 'प्रल्याकल' कहलाता है। 'प्रल्याकल'
भी दो प्रकारके होते हैं—(क) 'पक्वपाशद्वय' और
(ख) 'अपक्वपाशद्वय'।(क) 'पक्वपाशद्वय'—जिनके
मल तथा कर्मक्तपी दोनों पाशोंका परिपाक हो गया है,
वे पक्वपाशद्वय होकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। (ख)
'अपक्वपाशद्वय'—जीव पर्युष्टकमय (पञ्चभूत, मन, बुद्धि
तथा अहंकार आठ तत्त्वमय) शरीर धारण करके नाना
कर्मोंको करते हुए अनेक जन्म प्रहण करता है।
पर्युष्टकयुक्त पश्चओंमें जो पुण्यसम्पन्न विशिष्ट पश्च हैं,
उन्हें भगवान् महेश्वर भुवनेश्वर या लोकपाल बना देते
हैं, अर्थात् उनको भुवनपतित्व प्रदान करते हैं।

३-सकल-पशुकलादिसे लेकर भूमिपर्यन्त सारे तत्वसमूहोंसे वैधा होता है, अर्थात् वह मल, माया तथा कर्मित्रविध पाशोंसे बँधा हुआ वताया गया है। इस 'सकल' जीवके दो भेद हैं—(क) 'पक्वकलुग' और (ख) 'अपक्वकलुप'। (क) 'पक्वकलुग'—कलुप परिपक्व हो चुका होता है। जैसे-जैसे जीवात्माके मल, कर्म तथा माया—इन पाशोंका परिपाक वहता जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते जाते हैं। तब वे पक्वकलुप जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, उन सात करोड़ मन्त्ररूपी-जीव विशेषोंके अधिकारी ये ही मण्डली आदि ११८ मन्त्रेश्वर होते हैं। रोधशक्ति सर्वथा विनाश हो जानेपर परमेश्वर आचार्यरूपमें प्रविष्ट होकर दीक्षाके द्वारा उनको मोक्ष प्रदान करते हैं।

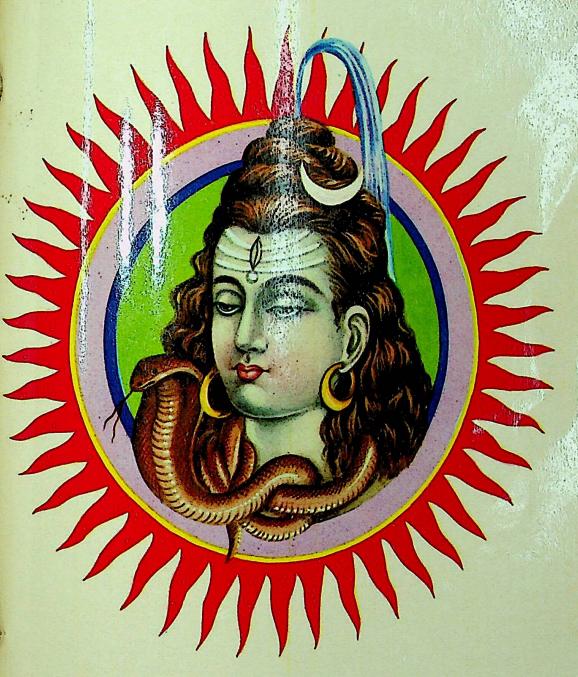
(ख)—'अपक्चकळुष'—कळुष परिपक्च नहीं हुआ। ये जीव (अणु) बद्ध हैं, उन्हें परमेश्वर कर्मोंके कारण भोग भोगनेमें लगाये रहता है और ये भवकूपमें गिरते हैं। (क्रमशः)

'प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्'

परात्मानमेकं जगद्वीजमाद्यं निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम्।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥
न भूमिने चापो न विद्वने वायुने चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ॥
अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम्।
नुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम्॥ (-आचार्यशंकर)

'जो परमात्मा हैं, एक हैं, जगत्के आदिकारण हैं, इच्छारहित हैं, निराकार हैं और प्रगवद्वारा जाननेयोग हैं तथा जिनसे सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति और पालन होता है और जिनमें उसका फिर लय हो जाता है, उन परमेश्वकों में भजता हूँ। जो न पृथ्वी हैं, न जल हैं, न अग्नि हैं, न वायु हैं और न आकाश हैं, न तन्द्रा हैं, न निद्रा हैं, न विद्रा हैं, न वेष है, उन मूर्तिहीन त्रिमूर्तिकी में स्तुति करता हूँ। जो अजनमा हैं, नित्य हैं, कारणके भी कारण हैं, कल्याणस्वरूप हैं, एक हैं, प्रकाशकोंके भी प्रकाशक हैं, अवधात्रवर्ष विलक्षण हैं, अज्ञानसे परे हैं, अनादि और अनन्त हैं, उन परमपावन अद्देतस्वरूप शिवकों में प्रणाम करता हूँ।





भगवान् शिव



भगवत्तत्व और शक्तितत्व

(ले॰—पं॰ श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

तत्त्वतः एक ही अन्याकृत ब्रह्मतत्त्व रुद्ध, विष्णु, व्रह्म, इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, आदित्य, गरुत्मान्, यम, मातिरित्रा, वुद्धिशक्ति तथा सर्वशक्तिमयी महामाया कुण्डिल्नीशक्तिके रूपमें अभिन्यक्त एवं अभिहित होता है—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिन्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विमा वहुधा वद्नत्यग्निं यमं मातिरिश्वानमाहुः।' (ऋवेद १।१६४।४६, अर्थ्ववेद ९।१०।२८, निरुक्त ७।१८)। कथमेकस्य नानात्विमित्युच्यते। ब्रह्मणोऽनन्यत्वेन सार्वात्म्यमुक्तं भवति। (सायणभाष्य)

देवीभागवत, त्रिपुरारहस्य एवं देवीमाहात्म्यके मध्यम चित्रमें इन सभी देवताओंके शरीरसे तेज निकलने तथा उसके एकत्र होकर महाशक्तिका रूप धारण करनेकी वात आती है——

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्। एकस्थं तदभूजारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥ (देवीमाहाःम्य २।१३)

परयतां तत्र देवानां तेजः पुञ्जसमुद्भवा। वभूवातिवरा नारी सुन्दरी विस्मयप्रदा॥ (देवीभागवत ५ । ८ । ४३)

देव्यथर्वशीर्ष, देवीगीता (देवीमागवत तथा कूर्म-पुराण), भावनोपनिषद् त्रिपुरातापिनी एवं भुवनेश्वरी उपनिषद्में खयं देवी अपनेको परब्रह्म बतलाती हैं। साववीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी । मत्तः प्रकृतिपुरुषा-प्रकं जगत्॥ (देव्यथर्वशीर्ष ३-४), 'स्वात्मैव लिलता' (भावनोपनिषद्), 'तुरीयया माययान्त्यया निर्द्षिष्टं परमं ब्रह्मित' (त्रिपुराता० ५।१), 'ब्रह्मरन्बे ब्रह्म-रूपिणीमाप्नोति' (भुवनेश्वर्युपनिषद्), 'त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।'

शृज्वन्तु निर्जराः सर्वे व्याहरन्त्या वचो मम।
यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते ॥
अहमेवास पूर्वे तु नान्यत् किर्चित्रगाधिप।
तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मकनामकम् ॥
(देवीभाग०, देवीगीता ७ । ३२ । १-२, कूर्मपुराण १०)

अन्यत्र इस तत्त्रको परब्रह्मकी शक्ति कहा गया है । इसका महर्षियोंने ध्यानयोगद्वारा साक्षात्कार किया था----'ते ध्यानयोगाजुगता अपश्यन्

देवात्मराक्तिं खगुणैर्विगृहाम् ।' (देवात्मराक्तिं खगुणैर्विगृहाम् ।'

'परास्य शक्तिविंविधेव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च।' (व्वेताक्वतर ०६। ८)

'तुरीया कापि त्वं दुरिधगमनिःसीममहिमा महामाया विश्व भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी।'

(सौन्दर्यलहरी)

किंतु इस प्रकार भी यही सब कुछ है; क्योंकि इस शक्तिके बिना वह परब्रह्म सृजन-पालन-संहार कुछ भी नहीं कर सकता। अधिक क्या, वह हिल-डुल भी नहीं सकता-—

शिवः शक्त्या युक्तोयिद भवित शक्तः प्रभवितुम् न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि (सौन्दर्यलहरी १)

चन्द्रमाकी चन्द्रिका, सूर्यका प्रकारा, पुरुपकी चेतना (चिति-शक्ति), पवनका वल, जलकी खादुता, अनिकी ऊष्मा तथा परब्रह्मकी प्रकाशिका भी वही है—

तथा प्रशिक्षका प्रकाशिया ना नश ए त्वं चिन्द्रका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वम् । त्वं चेतनापि पुरुषे पवने वलं त्वम् ॥ त्वं खादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा । तिःसारमेतद्खिलं त्वदते यदि स्यात् ॥ (कालिदासकृत अम्बास्तोत्र)

शक्त्या विरहितं चैतत् स्थितं न लभते जगत्। (अरुणामोदिनी)

भावुक भक्तोंने इस शक्तितत्त्वमें तथा उसकी समस्त क्रियात्मक हलचलोंमें एकमात्र कृपाको ही हेतु माना है । इनका शरीर कृपापरिपृरित मात्र है । इनके कोपमें भी कृपा छिपी रहती है—

चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा॥ (देवीमाहातम्य ४ । २२) एक अज कहता है—'माँ ! भगवान् विष्णु समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं और तुम उनके हृदयमें विराजती हो, पर तुम्हारे हृदयमें भी करुणा विराजती है, हम तो तुम्हारा ही आश्रय लेते हैं'—

शौरिर्चकास्ति इत्येषु धारीरभाकां तस्यापि देवि इद्ये त्वमनुर्यावेष्टा । पद्मे तवापि इद्ये प्रथते द्येयं त्यामेव जाप्रद्खिलातिशयां अयामः॥

भाँ ! तुम्हारे समझ ही हन प्रमुकी कृपा कांभिन्यक्ष होती है । तुम्हारे अभावमें तो वह कृपाछ परमात्मा भी निष्टुर हो जाता है । तुम्हारे न रहनेसे ही बेचारा निरपराध वाळी मारा गया और अधिक क्या, एक ब्री (ताइका) भी हत हुई । किंतु तुम्हारे सामने तो भीषण अपराधी तुम्हारे ही अङ्गोंमें चोट पहुँ चानेवाळा अविवेकी काक भी कृपाका ही पात्र बना'——

त्वच्येवाश्रयते द्या रघुपतेर्देवस्य सत्यं यतो वैदेहि त्वदसंनिधौ भगवता वाली निरागा हतः। निन्ये कापि वधूर्वधं तव तु सांनिध्ये त्वदङ्गन्यथां कुर्वाणोऽप्यभितः पतन्नशरणः काकोऽविवेकोज्झितः॥ (श्रीगुणरलकोश ४)

इसिंख्ये माँ ! एकमात्र तुम्हारी ही उपासना, सेवा-परिचर्या करनी चाहिये; क्योंिक पुराण स्थाणु जिससे कभी भी फल्की आशा नहीं की जा सकती, तुम्हारे आश्रय-सम्पर्कसे वह भी कैंवल्य (मोक्ष) फल देने लग जाता है—

अपर्णेका सेव्या जगित सकलैर्यत्परिवृतः। पुराणोऽपि स्थाणुः फलित किल कैवल्यपदवीम्॥ (आनन्दलहरी-७)

चिता-भस्मका आलेपन करनेवाले, विषमोजी, दिगम्बर, जटाधारी, कपाली, मूतेश्वर, सपोंकी माला पहने पशुपतिने भी जो भगवान् जगदीश्वरकी पदवी प्राप्त की, इसमें अम्ब । केवल आपके पाणिप्रहणमात्रका ही माहात्म्य है—

चिताभसालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः। कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥ (अपराध्वमापनस्तोत्र)

वर्ताम्बरं च शवभस्तविलेपनं च भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमी। वेतालसंहतिपरिग्रहता च शम्भोः शोभां विभर्ति गिरिजे तव साहचर्यात्॥ (अम्बास्तव १)

इन महाशक्तिकी उपासनाका भारतमें बड़ा भारी प्रसार ग और है। गायत्री एवं गीताके दूसरे अध्यायमें निर्दिष्ट 'बुद्धियोग' की बुद्धि ये ही हैं—'त्यं बुद्धियोधलक्षणा'। सभी सम्प्रदायों। ज्ञानरूपा कुण्डलिनी राक्तिकी उपासना चलती है। प्रा-स्तवीं में कुण्डिलनीको देवीका ही पर्याय माना गया है। शाक्ताद्वैत आदि खतन्त्र सम्प्रदाय तो हैं ही, शांकर-वेदान्त-जैसे विरक्त सम्प्रदायमें भी षोडशी आराधना चळती है। 'प्रपञ्चसार', 'रुद्रयामलादिमें कुण्डलिनीकी आराधना-पद्धति है । 'शाक्तप्रमोदादि'में दस महाविद्याओं की विस्तृत आराधनाविधि है। कालिकापुराण, देवीपुराण, महाभागवत, त्रिपुरारहस्य आदि कथा-प्रन्थोंमें भी इनकी कथाका विस्तार है। इनकी कथाएँ बड़ी लिखत हैं और भाषा भी बड़ी सरछ । त्रिपुरोपासनापर असंख्य प्रन्य हैं। गायत्री एवं सरखती आदिके रूपमें पवित्र ब्राह्मणोंद्वारा ये ही उपास्य हैं। इनकी महिमा अवाङ्मनसगोचर है। इनकी उपासनापद्धति-प्रदर्शनके लिये संस्कृत-वाङ्भयमे बड़ी भारी साहित्यराशि है । इनके तत्त्वनिरूपक स्तोत्रात्मक अनुष्ठान-पद्धति, कथानिरूपक आदि अनेक प्रकार हैं। कुण्डलिनी शक्ति एवं गायत्रीपर विशद विवार तथा पद्माङ्गादिका सविधि निरूपण विश्वामित्र-वसिष्ठा^{दि} स्पृतियों, शारदातिल्क तथा गायत्रीपुरश्चरण-पद्धित प्रपञ्चसार, गायत्री-पञ्चाङ्गादिमें अनुष्ठानके प्रकार एवं सभी विधियाँ वर्णित हैं। 'इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजर्स'

तथा शक्तियामलादिसे इन बातोंका पता चलता है कि पहले सम्पूर्ण विश्वमें ही देवीकी आराधना प्रचलित थी। धर्म, ब्रह्मचर्य, उपासना, ज्ञान-वैराग्यादिमें कुण्डलिनी जाप्रत् होकर शक्ति एवं ब्रह्मका साक्षात्कार होता है।

उस समय विशुद्ध दिव्य ज्ञान एवं आनन्दकी अनुभूति होती है । जगन्मातादेवी तो अत्यन्त कृपामयी हैं ही, आवश्यकता है—न्याय-धर्म, श्रद्धाभक्तिपूर्वक इनकी शरणागति प्रहण-पूर्वक उपासना-आराधनाकी ।

तत्व-चिन्तन और तत्व-निष्ठा

(डेखक -- डॉ॰ श्रीभवानीशंकरकी पंचारिया, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

असत्से सत्की जोर, जन्यकारसे प्रकाशकी ओर तथा पृख्यसे अमरताकी ओर चलना ये मानव-जीवनके तीन लक्ष्य बताये गये हैं — असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय'_श्वास-प्रश्वासके साथ जीवन क्षीण होता जाता है। अतः आसोद्धारके लिये शीघ्र ही परमात्माकी शरण जाना चाहिये । बहिर्मुखी मन हमारे छक्ष्यमें बाधक हो रहा है। मनका स्वभाव है कि वह जिस भी वस्तु या विषयका व्यसनी हो जाता है उसीका अहर्निश चिन्तन काता रहता है। यदि इसे हम अपने नियन्त्रणमें नहीं रखते तो यह निरङ्कश होकर चाहे जिधर ले जा सकता है। जैसे वेगसे दौड़ते हुए घोड़ेपर बैठे हुए सवारके हाथसे लगाम छूट जाय तो उसपर नियन्त्रण काला जिटल समस्या होती है, वैसे ही इस मनरूपी कुरङ्गपर सवार यात्रीको इन्द्रियरूपी लगामोंपर नियन्त्रण करना आवश्यक है। मानवके पतन और उत्यानके मूलमें मानव-मनकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। काकभुशुण्डिने तत्त्वनिष्ठ गरुङ्जीको मानवकी अक्सयनीय दशाका चित्रण करते हुए कहा था--

हैंस्तर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज मुखरासी॥
सो माया वस भयउ गोसाई। बँध्यो कीर मरकट की नाई॥
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जद्पि मुषा छूटत कठिनई॥
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होहिं सुखारी॥

होरन अंथि पाव औं सोई। तब यह जीव इसारव होई॥ (रामच॰ मा॰ ७। ११७। १—४) 'ममैवांशो जीवलों के जीवभूतः सनातनः।'

'जीवारमा ईश्वरका अंश, अविनाशी, चेतन और निर्मल हैं। वह खमावसे ही मुखकी राशि है, किंतु वह तोते एवं वानरकी तरह अपने-आप ही बन्धनमें पड़ गया है। इस प्रकार चेतनको जड़ प्रन्थि पड़ गयी है। इस विज्ञड़प्रन्थिका छूटना कठिन है। वेद, संत, पुराण अनेक उपाय बतलाते हैं, पर वह छूटती नहीं, वरन् अधिक-अधिक उलझती ही जाती है; क्योंकि जीवारमाके हृदयमें अज्ञानरूपी अन्धकार विशेषरूपसे छा रहा है, इससे गाँठ दिखलायी ही नहीं पड़ती। जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग करे कि जीव तत्त्वनिष्ठ या आत्मदशीं हो, तभी इस प्रन्थिसे मुक्ति

तत्त्वदिशयोंने जीवात्माके उद्घारहेतु दो निष्ठाओंका उपदेश किया है। इसी ज्ञानका उपदेश कर्तव्यक्षेत्रमें किंकर्तव्यमुग्ध अर्जुनको मगवान् श्रीकृष्णने कुरुक्षेत्रमें दिया है, जिसे सांख्ययोग अध्यायके नामसे जाना जाता है। इसमें मोहप्रस्त अर्जुनको, जो व्यक्तिनिष्ठ हो गये थे, मगवान् श्रीकृष्णने उन्हें तत्त्वनिष्ठ और आत्मनिष्ठ होनेका उपदेश दिया है। मगवान् श्रीकृष्णने

मिल सकती है।

अर्जुनको आत्माके अमरताके सिद्धान्तका तथा आत्मा-के खरूपका बोध कराया और कहा—

न जायते म्रियते वा कदाचि-न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (गीता २।२०)

यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न आत्मा हो करके फिर होनेवाला है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्चत और पुरातन है, शरीरके नाश होनेपर भी इसका नाश नहीं होता । यह आत्माके संदर्भमें कही वातें तव भी सत्य थीं और हमेशा सत्य रहेंगी । पर आज मानवकी दृष्टि संकुचित हो चली है । आज परिवार, राष्ट्र, समाज और विश्वमें प्रेम नामकी वस्तु दिखलायी नहीं पड़ रही है । सब्त्र खार्थ-ही-खार्थ नजर आता है; क्योंकि आत्म-निष्टात्मक दृष्टिकोणके वदले देह-निष्ठात्मक दृष्टिकोण सबके मित्तिष्कपर हावी है । विश्वमें आणिवक अख-शक्त मित्तिष्कपर हावी है । विश्वमें आणिवक अख-शक्त विश्वके ध्वंसकी तैयारी हेतु तैयार होते हुए भी विश्व वचा हुआ है, इसे आश्चर्यजनक घटना ही मानना होगा । अन्तर्यामीक्षपसे सबको सुमित प्रदान करते हुए ईश्वर ही इस समय सबकी रक्षा कर रहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (गीता १८ । ६१)

'हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी योगमायासे भ्रमाता हुआ सब भूतप्राणियोंके हृदयमें स्थित है।'

तत्त्वनिष्ठ बननेक लिये सर्वप्रथम खरूपबोध करना होगा, विचारना होगा कि जीवनका ध्येय क्या है ? आत्मा एवं शरीरका खरूप क्या है ? इसमें परिवर्तन क्यों होते हैं ? चेतन तत्त्वके अभावमें इसकी क्यां स्थिति हो जाया करती है ? परमात्माका साक्षात्कार कैसे सम्भव हैं ? आत्मखरूपबोधके कौन-कौनसे उपाय हैं ? इन प्रश्नोंके चिन्तन-मननके साथ इसके विशेपज्ञीसे परामर्श, सत्सङ्ग तथा सत्शास्त्रोंका अध्ययनकार्य हमें करना पड़ेगा।

संसार कर्मोंका वना हुआ एक जाल है। यह अनित्य, विकारयुक्त, प्रकृति-निर्मित और परिवर्तनशील है। मानव पूर्वकर्मोंसे निर्मित प्रारब्धवश, खक्मोंकी प्रतिकृति हुआ करता है। वह वस्तुतः अपने ही संस्कारोंका पुञ्ज है। उसमें सूक्ष्मरूपसे अच्छे-बुरे जैसे भी संस्कार होते हैं, उसीके अनुरूप वह होता है। इस जीव और जगत्का संचालक न्यायप्रिय परमात्मा है। वह प्रत्येकको कर्मानुसार फल देता है। जो उसकी शरणमें एक वार चला जाता है, वह उसे सदा-सदाके लिये अपना लेता है, यह उसका प्रमुख सिद्धान्त है। गीतोक्त सार-रूप निम्न इलोक दृष्टव्य है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं वज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुन्नः ॥ (१८ । ६६)

'हे अर्जुन! में सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि तू सम्पूर्ण धर्मों अर्थात् कर्मोंके आश्रयोंको त्यागकर केवल मुझ सिचदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो। मैं तेरे सम्पूर्ण पापोंसे तुझे मुक्त कर दूँगा। त् शोक मत कर। तत्त्वनिष्ठाकी ओर अर्जुनको संकेत करते हुए श्रीकृष्ण भगवान्ने कहा है—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्। विनञ्चरत्स्विनञ्चन्तं यः पञ्चयति स पञ्चिति॥ (गीता १३। २०)

'जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोंमें नाश-रहित परमेश्वरको समभावसे स्थित देखता है, वहीं तत्त्वदर्शी है।' तत्त्वनिष्ठ व्यक्ति ब्राह्मण, गौ, चाण्डाह, कुत्तेमें कोई भेददृष्टि नहीं रखता, वह तो सर्वत्र ही समभावसे संयुक्त होकर सबमें चैतन्य, अज, नित्य, बुद्द बुद्ध आत्माका ही प्रकाश देखता है। सचा तत्त्वदर्शी बही है जो प्रत्येक समय पृथक-पृथक भावोंको एक ही प्रमात्माके संकल्पके आधारपर अवस्थित देखता है तथा उस प्रमात्माके संकल्पसे ही सम्पूर्ण भूतोंका विस्तार देखता है और ऐसा अभ्यास करते-करते वह सचिदानन्द-बन ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है (गीता १३ । ३०)।

आत्म-प्रमात्मतत्त्वका वोध अन्तःकरणकी शुद्धिपर अवलियत है। विना सत्त्वशुद्धिके अन्तर्दर्शन होना सम्भव नहीं है। तत्त्वनिष्ठ जो भी वस्तु देखता है, उसमें वह आत्म-अनात्म विवेचन करता है। वह अनात्म वस्तुको असत् मानकर उसकी ओरसे मनको खींच लेता है। इस संदर्भमें तत्त्ववेत्ता महर्षि अष्टावक और कर्मयोगी महाराज जनककी यह कथा स्मरणीय है।

महाराज जनककी ज्ञान-सभामें एक अद्भुत वालक जो आठ वर्षका रहा होगा—िकसी कारणवश शास्त्रार्थ हेतु उपस्थित हुआ । वालकको द्वारपर ही रोक दिया गया। इसपर उस वालकने कहा—'जनकको कही अधावक उनकी सभामें शास्त्रार्थहेतु आना चाहता है।' जब वे ज्ञानसमामें पहुँचे और विद्वानोंने देखा तो उनके अधावक शरीरको देखकर हँस पड़े। इसपर उस वालकने जनकको फटकारते हुए कहा—'क्या यही तेरी ज्ञानसभा है ? मैं तो समझता था मुझे पण्डितोंका दर्शन होगा, पर यहाँ तो सव-के-सव चमकार प्रतीत होते हैं, जो तत्त्वके बजाय तनको देखकर हँस रहे हैं, इन्हें तो चमड़ेकी ही परख है।' वालकने उस

ज्ञानसभाको तत्त्वदर्शनकी ओर संकेत कराते हुए कहा—'इस नाशवान् जीर्ण-शीर्ण शरीरपर दृष्टि क्यों रखते हो ! आप छोगोंको तो इसमें चेतन तत्त्वका बोध करना चाहिये।' कहनेका आशय है कि तत्त्वदर्शी सर्वत्र केवछ तत्त्वको ही देखता है और निस्तत्त्वको व्यर्थ समझकर उससे प्रयोजन-पूर्तिमात्रका सम्बन्ध रखता है।

समस्त विश्व उसी एक वासुदेवका छीछा-विछास मात्र
है। यह बात वेद, द्रास्त्र, पुराण और संतगण भी
निरूपित करते हैं। वही एक ब्रस्न ही सर्वत्र अनेक
रूपोंमें व्यक्त एवं साकार हुआ है। मगवान् कहते
हैं— भैं वर्फमें जलके समान सब जगत्में ओतप्रोत हूँ। बर्फ जलका ही परिवर्तित रूप है, पर देखनेमें
जलसे मिन्न प्रतीत होता है, किंतु वह जलके अतिरिक्त
और कुछ भी नहीं है। वस्तुतः ब्रह्म ही सबका आदि
कारण, मूल तथा आदि, अन्त और मध्य है। 'मम'
ये दो अक्षर ही— 'यह मेरा है', ऐसा भाव ही मृत्यु है
और तीन अक्षर 'न मम' यह मेरा नहीं है, ऐसा भाव
अमृत सनातन ब्रह्म है। गोखामी तुलसीदासजीने इसकी
विवेचना करते हुए कहा है-

में अह मोर तोर तें माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥ इसके अनुसार मन:स्थिति वना लेने तथा सर्वत्र तत्त्वदर्शन करते रहनेपर ही हम संकुचित दृष्टि त्यागकर मायाके भवजालको होइकर भव-बन्धनसे मुक्त हो सकते हैं।

माया क्या है ?

अन्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा । कार्यानुमेया सुधियेव माया यया जगत् सर्वमिदं प्रस्थते ॥ (विवेक-चूड़ामणि ११०)

'जो अञ्यक्त नामत्राळी त्रिगुणानिका अनादि अविद्या परमेश्वरकी परा शक्ति है, वहीं माया है, जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। बुद्धिमान् जन इसके कार्यसे ही इसका अनुमान करते हैं।



भगवत्तत्व

(लेखक--शा॰ रा॰ शारङ्गपाणि, एम्॰ ए॰)

'भगवान्' शब्दकी परिभाषा पुराणने इस प्रकार की है—

ते विश्वर्यस्य समप्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । शानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ (विष्णुपुराण ६।५।७४)

समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यरा, श्री, ज्ञान और वैराग्य— इन छहोंका समग्र नाम है 'भग'। इन छः गुणोंसे युक्त विभूतिको 'भगवान्' कहा जाता है। इस दृष्टिसे ईश्वर, परमपुरुष, परमात्मा, ब्रह्म आदि नाम भी भगवान् के पर्याय माने जाते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि जो परम ज्ञानी भूतोंकी उत्पत्ति और विनाश, गित और अगित, विद्या और अविद्याको जानता है, वह भगवान् है— उत्पत्ति च विनाशं च भूतानामगितं गितिम्। वेशि विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥ (वही)

ईशावास्योपनिषद्के अनुसार ब्रह्मज्ञान ही विद्या है, अन्य ज्ञान प्रायः 'अविद्या'के अन्तर्गत हैं। अतएव विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ परमज्ञानियोंको भी 'भगवान्'की उपाधिसे विभूषित किया जाता है। महर्षि वाल्मीिक भी महर्षि अगस्त्यके छिये 'भगवान्' शब्दका प्रयोग करते हैं—

देवतेश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् । उपागम्यात्रवीद् राममगस्त्यो भगवान् ऋषिः ॥ (वाल्मी ॰ युद्धकाण्ड, आदित्यहृदयस्तोत्र १० । ३)

अतएव विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदिको भगवान् और छक्ष्मी, दुर्गा, सरस्रती आदिको भगवती कहते हैं। कोग प्रायः तत्त्वज्ञानी शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बुद्ध आदिको भी भगवान् शब्दसे अभिहित करते हैं। छौकिक व्यवहारमें महात्माओंको भी आदरभावसे भगवान् कहते हैं, तथापि मुख्यतया यह उपाधि परब्रह्म या उसके पर्यायों अथवा प्राण कर्षों, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदिके सत्यार्थमें व्यवहृत होती है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—'तत्त्व' एक है। योगी उसीको 'आत्मा', 'ज्ञानी', 'त्रहा' और मक्त--'भगवान्' कह कर पुकारते हैं। पदार्थ एक ही है, नाम भिन्न-भिन्न। उपनिषदोंका भी यही मत है—'एकं सद्धिपा बहुधा वद्दित।' भगवान्की सत्ता ही उनका तत्त्व है और यह सत्ता प्रायः अवर्णनीय है। उपनिषद् कहती है—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह', यह सत्ता मनोवाक्की पहुँचके बाहर है। 'श्रीविष्णु-सहस्रनाम'के अनुसार उसका आभासमात्र 'योगिभि-ध्यानगम्यं', योगियोंको ध्यानावस्थामें प्राप्त होता है। इसका विवेचन भगवान् कृष्ण गीतामें खयं करते हैं—अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

न इन्यते इन्यमाने शरीरे॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भृतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति सामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(२।२०;४।६)

भगवत्तत्त्वोंमें भगवान्का अनादि एवं अनन्त होना और अज एवं सर्वभूतेश्वर होनेपर भी साधुरक्षण, दुष्टनिप्रह, धर्म-संस्थापन आदि कार्योंके लिये अपनी ही माया और प्रकृतिके सहारे उनका जन्म लेना प्रसिद्ध है।

गीताके अनुसार इसका ज्ञान हो जानेपर संसारमें और कुछ भी ज्ञातव्य नहीं रह जाता—

ह्यानं तेऽहं सविज्ञानिमदं वक्षाम्यशेषतः। यज्ङ्यात्वा नेह भूयोऽन्यज्ञ्ञातव्यमविशिष्यते॥ (७।१)

भगवान्से परे कोई तत्त्व नहीं, वे समस्त जीवी और प्रकृतिको धारण करते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिद्स्ति धनंजय । मिय सर्वेमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ (गीता ७ । ७) जीवोंके हृदयोंमें रहकर वे ही सबको संचालित कारो हैं—

र्ध्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ (गीता १८ । ६१)

जीवोंकी बुद्धि, शक्ति, तेज आदि अव्यक्त एवं श्रेष्ठ
गुणोंके रूपमें वे खयं विद्यमान हैं। वे ही सबके कर्ता
है सनातन पुरुष हैं---

बीजं मां सर्वभृतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ! बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजखिनामहम् ॥ (गीता ७ । १०)

पर अभक्त मूढ़जन उनके परम भावको न समझकर उन्हें साधारण मानवमात्र समझते हैं—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। एरं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ (गीता ९। ११) श्रीमद्भगवद्गीताके दराम अध्यायमें आत्मविभृतियोंके भगवत्तत्त्वका विस्तृत विवेचन भगवान् श्रीकृष्णके श्रीमुखसे ही मिळता है । अर्जुनके कथनका सार है कि भगवान् ही सबसे श्रेष्ठ हैं, श्रेष्ठता उन्हींके कारण होती है । वे ही साश्वत पुरुष, आदि देव, अज और विमु हैं—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिन्यमादिदेवमजं विभुम्॥
(गीता १०। १२)
वेदोंका यह वाक्य भी है—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे।' वेदोक्त ये महापुरुष-भगवान् खच्छ, खयं प्रकाशमान अर्थात् निर्मल ज्ञानस्ररूपी हैं। संक्षेपमें कहा जाय तो ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज—इन छः गुणोंका निरतिशय, नित्य एवं समप्ररूप भगवत्तत्वमें पाया जाता है।

भगवत्तत्व और अवतारवाद

(लेखक-डॉ॰ श्रीविश्वम्भरदयालजी अवस्थी, एम्॰ ए॰ [हिन्दी, संस्कृत], पी-एच्॰डी॰, डी॰लिट्)

'ईश—ऐश्वरें' धातुमें 'बरच्' प्रत्ययका योग करनेपर ईश्वर शब्द सिद्ध होता है,। ईश्वरका अर्थ होता है—ऐश्वर्य- से युक्त। ईश्वर संकल्पमात्र से ही सम्पूर्ण जगत्का उद्धार कर सकते हैं'। ईश्वरमें वड् भग (शक्तियाँ) हैं। स्मिलिये उन्हें भगवान् कहा जाता है। ये वड् भग हैं—धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य और मुक्ति। इन शक्तियोंकी आंशिक स्थिति जीवोंमें भी होती है, किंतु भगवान्में ये सब पूर्णरूपमें होते हैं। भगवान्को सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय, जीवोंके जन्म और मरण तथा विद्या- भाया और अविद्या-मायाका ज्ञान होता है। जब भक्त भावान्का प्रेमपूर्वक कीर्तन करते हैं, तब वे शीघ्र ही प्रकट होकर भक्तोंको दर्शन देते हैं। भगवान्के जन्म

और कर्म दोनों दिव्य होते हैं । इसलिये श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि अवतारोंके प्रति की गयी भक्ति भी मुक्तिदायिनी होती है ।

भगवान्के अवतार

'अवतार' शब्द 'अव' उपसर्गपूर्वक 'त स्नुवनतरणयोः' धातुसे घज् प्रत्ययका योग करनेपर निष्पन्न होता है। अवतारका अर्थ है, उतरकर नीचे आना। अपने अवतार धारण करनेके प्रयोजनोंका उल्लेख करते हुए स्वयं भगवान्ने कहा है कि साधु पुरुष्नोंकी रक्षा करने तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये में युग-युगमें अवतार धारण करता हूँ। शास्त्रोंमें भगवान्के अवतारका एक प्रयोजन लीलाका विस्तार करना भी

१-ईशनशील इन्लामात्रेण सकलजगतुद्धरणक्षमः ईश्वरः। १-ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव वण्णां भग इतीरणा॥ (विष्णुगुराण ६। ५। ७४)

बतलाया गया है। भागवतके अनुसार प्रभुका अवतार जीवोंका कल्याण करनेके लिये होता है ।

वेदोंमें अवतारवाद—

वैदिक संहिताओंमें 'अवतार' शब्दका स्पष्ट प्रयोग नहीं मिखता । किंतु अवतृसे वननेवाले 'अवतारी', 'अवत्तर' और 'अवतर' आदि शब्दोंके प्रयोग मिलते हैं । तथापि पौराणिक साहित्यमें अति प्रसिद्ध अवतार शब्दके अर्थका मूल वैदिक साहित्यमें उपलब्ध होता है । निम्नाङ्कित मन्त्रमें 'अवतारी' राब्द का प्रयोग हुआ है --- आभिर्विद्वा अभियुजो विषुचीरायीय विश्वो वतारीदीसीः। (ऋग्वेद ६।२५।२)

सायणके मतसे यहाँ 'अवतारी'का अर्थ विध्न है-यञ्चादिकर्मकृते यजमानायावतारीः विनाशाय ।

अवत्तर शब्दका प्रयोग अथर्ववेदके निम्नाङ्कित मन्त्रमें हुआ है-उपचामुप वेदसम् अवत्तरो नदीनाम्। अग्ने वित्तमयामसि । (अथर्व० १८ । ३ । ५) । सायणके अनुसार रक्षणमें समर्थको अवतार या अवत्तर कहा जाता है-अवत्तरः अतिशयेन अवन् रक्षणसमर्थः सारभूतांशो विद्यते। अवत्तर इति अवरक्षणे इत्यस्मात लट्शत्रादेशः । ततः प्रकर्षार्थौ तरप् । ऋग्वेदमें 'अवतरम्' पदका प्रयोग हुआ है —अवतरमव शुद्धमिव स्रवेत् (ऋ०१।१२९।६)।

भाष्यकार सायणके मतसे यहाँ अत्रतरम्का अर्थ अत्यन्त निकृष्ट है---अवतरम् अत्यन्तनिकृष्टम् । शुक्ल यजुर्वेदमें भी अवतर शब्दका प्रयोग हुआ है——उप ज्यन्तुप वेतसे वतरः नदीप्वाः। (यजु०१७।६)

महीधरभाष्यके अनुसार अवतरका अर्थ आगमन होता है—पृथिन्यामुपावतर आगच्छ । नेदोंमें कुछ अवतारोंके सम्बन्धमें सूत्ररूपमें संकेत उपलब्ध होते हैं।

मत्स्यावतार-

रातपथत्राह्मण (१ | ६ | ३ | १-६) में मनुकी कथा आयी है। जब अत्यधिक बाढ़में मनुकी

नौका डूब रही थी, तब मनुने एक सींग्वाले मस्स्के सींगमें नौकाको बाँघ दिया था। इस प्रकार मत्स्के जलप्रलयसे मनुकी रक्षा की थी--मनवे ह वै यातः अवनेज्यमुद्कमाजहुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाः हरन्त्येचं तस्यावने निजानस्य मत्स्यः पाणी आपेरे। (इातपथब्राह्मण १।६।३।१)

स होवाच। अपीपरं वै त्वा चृक्षे नावंप्रतिवक्षीष तं तु त्वां मा गिरौ सन्तमुद्कमन्तर्छैत्सीयाक्या वदुदकंगिरेमेनोरव सर्पणमित्यापौ ह ताः सर्व्याः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे। (दातपथत्राह्मण १।६।३।६)

वराहावतार--

वैदिक साहित्यमें वराह-अवतारके सम्बन्धमें निमान्नि उद्धरण प्राप्त होते हैं--

१-प्रजापतिने वराहका रूप धारणकर जलके भीत निमज्जन किया । वे पृथ्वीको नीचेसे ऊपर हे आये— वराहेण पृथिवी संविदाना

स्कराय विजिहीते मृगाय। (अथर्ववेद १२ । १ । १८)

स वराहो रूपं कृत्वा अप्सुन्यमज्जत्। स पृथ्वीमधः आच्छत्। (तैतिरीय-त्राह्मण १।१।६)

२-पृथ्वीके स्वामी प्रजापति वराहका रूप घाण कर पृथ्वीको नीचेसे ऊपर ले आये---

इतीयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रदेशमार्त्र तामेमूप इति वराह उज्जघान । सोऽस्याः पितः। (दातपथत्राह्मण १४ । १ । २ । ११)

३—वराहके द्वारा पृथ्वीका उद्घार हुआ-—

वराहेण कृष्णेन उद्धतासि भूमिर्धेनुर्धरणी धरित्री लोकधारिणी इति। (तैत्तिरीय आरण्यक १।१।३०)

कूर्म-अवतार--

शतपथब्राह्मणमें कूर्मावतारका सूत्र उपलब्ध होताहै स यत् कूर्मो नाम । एतहे रूपं कृत्वा प्रजापित प्रजाः अस्जत । यत् अस्जतः अकरोत् तत् का अकरोत् तसात् कूर्मः । कञ्चयो वे कूर्मः । अकरोत् तसात् कूर्मः । कञ्चयो वे कूर्मः । तसात् । प्रजाः काञ्चयप्यः इति । (शतपय-तसात् । ५ । १ । ५) 'तै तिरीय आरण्यकः में भी कूर्मग्रतारका संकेत मिलता है—'अन्तरतः कूर्मभूतः तमग्रवीत् मम वे त्वङ्मांसात् समभूत् । नेत्यव्रवीत् पूर्वमेवाहमिहासमिति । तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम् । स सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद् भूत्वोद-तिष्ठत् ।' (तैतिरीय आरण्यक १२३ । ३) नृसिंहायतार—

भितिरीय आरण्यक' तथा नृसिंहतापनीमें नृसिंह-भवतारका वर्णन मिलता है—'वज्रनखाय विद्महें तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नर्रासहः प्रचोद्यात्।' (तैतिरीय आरण्यक १।१।३१)

वामन-अवतार--

ऋग्वेदमें कहा गया है कि विष्णुने वामनावतारमें तीनों छोकोंको नापा था—उन्होंने तीन वार पाद-विश्लेप किया था—'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुगोंपा अदाम्यः।' (ऋग्वेद १। २२। १८) 'यदा ते विष्णुगोंपा अदाम्यः।' (ऋग्वेद १। २२। १८) 'यदा ते विष्णुगोंपा अदाम्यः।' (ऋग्वेद १। २। १०) में वामनद्वारा तीन पगोंसे तीनों छोकोंको जीत छेनेका उल्लेख हुआ है। ऋग्वेदमें कहा गया है—'विष्णुने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अतिविस्तीर्ण छोकत्रयको तीन वारके पदक्रमण द्वारा मापा था'—

म विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे। य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥ (ऋग्वेद १। १५४। ३)

'शतपथत्राह्मणमें वामन और उनको यज्ञमें प्राप्त होनेवाही भूमिका वर्णन किया गया है—'वामनो ह विष्णुरास । तद्देवा न जिहीडिरे महद्वैनोदुर्ये नो यज्ञसम्मितमदुरिति।' (शतपथत्राह्मण १।२।३।५)

श्रीरामावतार—

भागी नरेशके रूपमें श्रीरामका उल्लेख हुआ है—

प्र तदुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु। ये युक्त्वाय पञ्च शतासमयु पथा विश्राव्येपाम्॥ (ऋ॰१०।९३।१४)

'जैसे सव देवता पाँच सौ रथोंमें घोड़े जीतकर यज्ञमें जानेके छिये मार्गमें जाते हैं, वैसे ही मैंने दु:शीम, पृथवान्, वेन और बछी राम आदि धनपति राजाओंके पास उनके प्रशंसायुक्त स्तोत्रका पाठ किया है। अगले मन्त्रमें उपर्युक्त नरेशोंके दानकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि इन राजाओंसे तान्व, पार्थ्य और मायव आदि ऋषियोंने शीघ्र ही सतहत्तर गायें माँगीं— अधीनन्वत्र सप्तति च सप्त च। सद्यो दिदिष्ट मायवः। (ऋषेद १०। ९३। १५)

त्राग्वेदके पूर्वोद्धृत मन्त्रोंके ऋषि पृथुके पुत्र तान्व हैं । ऋग्वेदके निम्नाङ्कित मन्त्रमें 'रामम्' शब्द देखकर कतिपय विद्वान् इसमें सम्पूर्ण रामकथाका मूलक्ष्प खोजनेका प्रयास करते हैं—

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पद्दचात्। सप्रप्रकेतैर्धुभिरग्निर्वितिष्ठन्

रुराद्भिवंगेरिभ राममस्थात्॥ (ऋग्वेद १०।३।३)

'शतपथन्नाह्मणं अंशुप्रहके प्रसङ्गमें उपतिस्तिके पुत्र औपतिस्तिनि रामके मतका उल्लेख किया गया है। ये राम याज्ञवल्क्यके समकालिक थे—'तदु होवाच राम औपतिस्तिनः। काममेव प्राण्यात् काममुदन्यायद्वे त्र्णीं जुहोति तदेवेनं प्रजापित करोतीति।' (शतपथन्नाह्मण ४। ५।३।७)

ऐतरेयब्राह्मण (७ | २४-३४)में जनमेजयके समकालिक भूगुवंशी स्थापणंकुलके ब्राह्मण भागवेय रामका उल्लेख हुआ है | जैमिनीय ब्राह्मण (३ | ७ | ३ | २ और ४ | ९ | १ | १)में शंख शात्यायिन आत्रेयके शिष्यऔर शंख बाभ्रव्यके शिक्षक तथा ब्रह्मजात एवं व्याव्रपद नामक आचार्योंके वंशज 'क्रातुजातेय'

भि॰ ते॰ अ॰ १५—— CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri वैयाघ्रपद्य रामका एक दार्शनिकके रूपमें उल्लेख किया गया है । 'तैत्तिरीय आरण्यक'में सायणके मतसे रमणीय पुत्रके अथमें राम शब्दका प्रयोग हुआ है— 'संवत्सरं न मांसमइनीयात्। न रामामुपेयात्। न मृण्मयेन पिवेत्। नास्य राम उच्छिण्टं पिवेत्। तेज पवं तत्संइयति ।' (तैत्तिरीय आरण्यक ५ । ८ । १३)

इसके अतिरिक्त जामदग्न्य राम नामक एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी हैं, जो ऋग्वेद ९ । ६५ एवं ९ । ६७के मन्त्रद्रया हैं। इन ब्राह्मण-प्रन्थोंमें उल्लिखित औपतिखिनी राम, और क्रतुजातेय वैयाघ्रपद्य राम तथा मन्त्रद्रष्टा भागवेय जामदग्नि रामका रामकथाके नायक दाशरथि रामसे ऐक्य न होनेपर भी यहाँ परशुराम-राम-संवादका संकेत उपलब्ध है।

वेदोंमें रामकथाकी स्थितिके सम्बन्धमें दो प्रकारकी विचारधाराएँ हैं। कतिपय विद्वानोंके मतसे वैदिक मन्त्रोंमें सम्पूर्ण रामकथाका प्रतिपादन किया गया है । पर कुछ दूसरे विद्वान वेदोंमें निर्दिष्ट दशास्य और राम आदिं ऐतिहासिक नामोंकी यौगिक न्याख्या करते हैं। इन विद्वानोंके मतसे वेदोंमें ऐतिहासिक व्यक्तियों (दशस्थ और राम आदि)का उल्लेख माननेसे वेदकी नित्यता समाप्त हो जायगी । इनका विचार है कि वेदोंमें प्रयुक्त संज्ञाओंके आधारपर ही परवर्ती व्यक्तियोंके नाम रखे गये हैं। मेरे मतसे पूर्वोक्त दोनों विचारधाराएँ अतिवादी हैं। वेदोंके मन्त्रद्रष्टा ऋषि विश्वामित्र, वसिष्ठ और जामदग्य प्रशुराम, दशरथ और रामके समकालिक थे। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद (१०।९३।१४)में श्रीरामके साथ वेन और पृथवान्का उल्लेख हुआ है। वेन े और प्रथवान्" या पृथु मन्त्रद्रष्टा भी हैं। इसी प्रकार ऋग्वेर (१०।११९)के मन्त्रद्रष्टा लव हैं। जब वेदोंने शन्तनु और देवापिके इतिहासकी मान्यता प्राप्त है, ^{१२} तब मन्त्रोक्त दशरथ¹³ और रामको³⁸ ऐतिहासिक दशर्थ और रामका सूचक न मानना न्यायसंगत नहीं है । इस प्रकार वैदिक मन्त्रोंमें राम-कथाके सूत्र बीजरूपमें अवस्य वर्तमान एवं सुसिद्ध हैं।

श्रीकृष्णावतार

वैदिक साहित्यमें कृष्णावतारका भी उल्लेख मिळता है। ऋग्वेदमें एक मन्त्रद्रष्टा कृष्णका उल्लेख हुआ है, जो ऋग्वेद (८।८५, ८।८६,८।८५, १०।४२,१०।४३,१०।४४) का मन्त्रद्रष्टा ऋषि है । इस मन्त्रद्रष्टा कृष्णको आङ्गिरस कृष्ण कहते हैं । अह कृष्ण अश्विद्वयको सोमगानके लिये आमन्त्रित करता है³⁵ । ऋग्वेदमें कृष्णके विश्वक नामक हुआ है। भी उल्लेख पुत्रका

३-(अ) रामकथा-उत्पत्ति और विकास, पृष्ठ २-३ (व) प्राचीन चरित्रकोश---पृष्ठ ७२४-७२५ ४-मन्त्ररामायण-श्रीनीलकण्ठ, वेदोंमें रामकथा-पं० श्रीरामकुमारदासजी, अयोध्या; ५-परंतु श्रुतिसामान्यमात्रम् (मीमांसादर्शन १। ३१) उक्तश्च नित्यसंयोगः । (मीमांसादर्शन १। ५०)

६-सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथकपृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ (मनुस्मृति १।२१) ७-ऋग्वेद-तृतीय मण्डलः ८-ऋग्वेद-सप्तममण्डलः ९-ऋग्वेद-१०।११०ः १०-ऋग्वेद-१०।१२३ः ११-ऋग्वेद-१० । १४८; १२-तत्रेतिहासमाचक्षते । देवापिश्चाष्टिषेणः शंतनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ यभूवतुः । (निरुक्त २ । ३ । १) १३-चत्वारिंशह्वारथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्ति । सद्च्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्तपन्नाः ॥

(ऋग्वेद १। १२६।४) (अरुप्य) । अरुप्याने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु । ये युक्त्वाय पञ्चशतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥ (ऋग्वेद १०। ९३। १४)

१५-'कृष्णो नामाङ्गिरस ऋषिः' ऋ॰ (८।८५) के सायणभाष्यका उपोद्घात।

१६-अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवस्। मध्वः सोमस्य पीत्तये। (ऋ०८।८५।३) श्रुणुतं बरितुहेवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा। मध्वः सोमस्य पीतये। (ऋ०८। ८५।४)

*

बो म्यंबेद ६। ८६ के ऋषि कृष्णके साथ मन्त्रद्रष्टा है। कृष्णपुत्र ऋषि विश्वक अपने पुत्र विष्णाप्वकी स्तियोंका उल्लेख करता है। अश्विनीकुमारोंने क्षित्रकके नष्टपुत्र विष्णाप्वकी रक्षा की थी और उसके पिता विश्वकसे उसे मिलाया था। अध्यक्ते १।११७। ७ और ऋ० १। ११६। २३ में भी विणाप्वका उल्लेख हुआ है। व कौपीतिक ब्राह्मणमें क्षेर आङ्गिरसके साथ ही आङ्गिरस कृष्णका भी उल्लेख क्या गया है। " ऐतरेय आरण्यकमें कृष्गेहारीत नामक एक उपदेशकका उल्लेख मिलता है, जिसने अपने पुत्रको वणीहरी ब्राह्मणके उपासना-सम्बन्धी विधानका कथन क्या था । तैत्तिरीय आरण्यकमें वास्तदेव (कृष्ण)का नम आया है।^{२२} छान्दोग्य उपनिषदमें कहा गया है कि घोरआङ्गिरस नामक ऋषिने देवकीपुत्र कृष्णको अन्य विषाओंके विषयमें तृष्णाहीन वनानेवाला यज्ञदर्शन धुनाया । इस यज्ञदर्शनमें दक्षिणाप्रधान द्रव्यमय यज्ञकी अपेक्षा अहिंसाप्रधान यज्ञका प्रतिपादन किया गया है और तप, दान तथा सत्यको इसकी दक्षिणा कहा गया

है। विशेषा क्षानमय यज्ञकी अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञको उत्तम कहा गया है। विशेष डॉ० मुंशीराम शर्माके मतसे छान्दोग्य उपनिषद् और गीतामें उल्लिखित शिक्षाओं के साम्यसे सिद्ध होता है कि छान्दोग्य उपनिषद्के देवकीपुत्र कृष्ण गीताके प्रवचनकर्ता वासुदेव कृष्ण ही हैं। विशेष इस यज्ञदर्शनको सुनाकर धोर ऋषिने कृष्णसे कहा कि अन्तकालमें निम्नाङ्कित तीन मन्त्रोंका जप करना चाहिये— विश्व अक्षय है। २—द् अब्युत है। ३—द् अति सूक्ष्म प्राण है।

घोर आङ्गिरस मन्त्रद्रष्टा ऋषि थे। इस प्रकार ऋग्वेदके मन्त्रद्रष्टा आङ्गिरस कृष्णकी छान्दोग्य उपनिषद्में उल्लिखित देवकीपुत्र कृष्णसे एकता सिद्ध हो जाती है। अश्वेदके निम्नाङ्कित मन्त्रमें अर्जुनके साथ कृष्णका उल्लेख हुआ है—'अहश्च कृष्णमहर्र्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः । यैश्वानरो जायमानो न राजा अवातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि॥'(ऋग्वेद६।९।१) किंतु सायण और यास्कके पति मन्त्रोक्त कृष्ण और अर्जुन क्रमशः रात्रि और दिनके प्रतीक हैं।

```
१७-युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्व दद्युवस्य इष्टये। तावां विश्वको इवते तन्कृथेमानो वियोष्टं सख्यासुमोचतम्।
                                                                              (ऋग्वेद ८।८६।३)
                                                                           ( ऋग्वेद १०। ६५। १२)
१८-कमद्युवं विमदायोह्थुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव स्जयः ।
१९-युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं दद्युर्विश्वकाय । घोषायै चित्पितृषदे दुरोणेपति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥
                                                                             (भ्रुग्वेद १। ११७।७)
    अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋज्यते नासत्या शचीभिः । पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददशुर्विश्वकाय ॥
                                                                           (ऋग्वेद १। ११६। २३)
                                                                      (कौषीतकिब्राह्मण ३०।९।७)
२०-कृष्णो ह तदाङ्गिरसो ब्राह्मणान् छन्दसीय तृतीयं सवनं ददर्श ।
२१-ऐतरेय आरण्यक ३ । २ । ६ ।
                                                                    (तैत्तिरीय आरण्यक १०।१।६)
२२-नारायणाय विद्महे वासुदेवाय घीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
                                                                       ( छान्दोग्य उप० ३। १७।४)
२३-अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अत्य दक्षिणाः।
                                                                                    (गीता ४। ३३)
२४-श्रेयान्
                                         परंतप ।
           द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः
२५-भारतीय साधना और सूरसाहित्य—डॉ॰ मुंशीराम शर्मा—पृष्ठ १३९।
२६ तद्वेतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स वभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं
                                                                       ( छान्दोग्य उप० ३ । १७ । ६ )
    मतिपद्येताक्षितमस्यन्युतमसि प्राणसंशितमसीति ।
२७-ऋग्वेद ३ । २६ । १०के मन्त्रद्रष्टा 'घोर आङ्किरस' हैं। २८-सूर और उनका साहित्य—डॉ॰ इरवंशलाङ
    शर्मा—पृष्ठ ११८ । २९- 'क्रुब्णं रात्रिः ग्रुक्छं चाहरर्जुनम्।' (निरुक्त २।६। ३-४)
```

त्रमुग्वेदके निम्नांकित मन्त्रमें वड़ी सींगोंबाछी गायोंके साथ भगवान्के परमधाम (गोछोक) का संकेत किया गया है—

ता वां वास्तून्युरमिस गमध्ये यत्र गावो भूरिश्टङ्गा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥ (ऋग्वेद १। १५४। ६)

निम्नाङ्कित मन्त्रमें गायोंके साथ व्रजका उल्लेख हुआ है—गवामपव्रजं चृथि । (ऋग्वेद १।१०।७) इसी प्रकार निम्नांकित मन्त्रमें यमुनाके साथ ही गो और राधाका उल्लेख हुआ है—

और राधाका उल्लेख हुआ ह—

यमुनायामधि श्रुतमुद् राधो गव्यं

मृजे नि राधो अरव्यं मृजे।

(ऋग्वेद ५। ५२। १७)

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्यों
श्रीकृष्णावतारकें सबल सूत्र उपलब्ध हो जाते हैं।

भगवत्तत्व और जीव-जगत्का दार्शनिक विवेचन

(लेखक-स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज)

कोसलदेशके राजकुमार हिरण्यनाभने मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजके पुत्रसे प्रश्न किया — क्या आप सोव्ह कलावाले पुरुपको जानते हैं ?' सुकेशाने कहा---'मैं इसे नहीं जानता । राजकुमार हिरण्यनाभ निराश होकर अपने स्थानपर चळा आया । फिर सुकेशाने यही प्रश्न काळान्तरमें मुनिप्रवर विप्पंठादसे पूछा । पिप्पळादजी बोले—'स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टरिमाः पोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते प्रश्नोपनिषद् ६ । ५)। 'अपने ओर प्रत्राहित होनेवाळी सरिताएँ जैसे सागरमें पहुँचकर लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार सर्वद्रशकी सर्वाधिष्ठान पुरुषमें छीन होनेवाली ये सोछह कछाएँ उस पुरुषको प्राप्तकर लीन हो जाती हैं। उन कलाओंके नामरूप नष्ट हो जाते हैं और वे 'पुरुष' नामसे पुकारी जाती हैं।'

महर्षि वेदव्यासने भी इसपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। भागवतके पुरञ्जनोपाख्यानके अनुसार पश्चतन्मात्राओं से निर्मित तथा सोल्ह तत्त्वोंके रूपमें विकसित यह त्रिगुणमय संघात ही लिङ्ग (शरीर) है। यही चेतना शक्तिसे युक्त होकर जीव कहा जाता है—— एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम्। एव चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते॥ (श्रीमद्रा०४। २९। ७४)

क्या हम दार्शनिक संत व्यासके या पुरंजवीके प्रति
कहे गये नारायणके इस सम्बोधनको सुन पायेंगे जो वे
हमें अपने पात्रोंके माध्यमसे 'मित्र'शब्दसे सम्बोधितका
उद्बोधित कर रहे हैं ! मित्र ! जो में हूँ, वही तुम
हो । तुम मुझसे भिन्न नहीं हो । और तुम विचारपूर्क
देखो मैं भी वही हूँ, जो तुम हो । ज्ञानी पुरुष
कभी हम दोनोंमें थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं देखते—
अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भोः।
न नौ पश्यन्ति कवयशिखदं जातु मनागिष ॥
(श्रीमद्भा० ४ । २८ । ६२)

भगवान् वेदव्यास जीव और परमात्माको पर्यायवाची मानते हैं— 'जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नाव भेदधीः।' (अ० रा० सर्ग ४। ३१)

अपने 'नानापुराणनिगमागमसम्मतम्' के मूलभाकी पोषक मानसके रचियता भी प्रायः यही कहते हैं—'ईबा अंस जीव अविनासी'। उनकी दृष्टिमें 'विश्वमिष्टलमं के समझनेके लिये 'यत्सस्वादमृषेव भाति सकलं रजी यथाहे भ्रेमः' का ज्ञानसम्पादन अत्यावस्यक है। ज्यों औ जगत्के खरूपका ज्ञान बढ़ेगा, त्यों-त्यों धर्म बढ़ेगा, व्राव

वर्गत् धर्म-पालनकी क्षमता भी बहेगी । 'धर्म' साधन व हिंदी साध्य बन जाय, यह संस्कृतबुद्धिकी हिंदी हैं और बुद्धिमें 'जिज्ञासा' खाभाविक प्रिक्रया हैं मैं क्या हूँ ? जीव और जगत् क्या है ? मेरे अतिरिक्त भी कोई चेतन व्यक्ति हो सकता है ? या वहीं ! इन प्रश्नोंकी उत्कट अभिलापा तथा उसके परम प्रमार्थको 'नित्यानन्द' या 'मोक्ष' कहा गया है जो प्रमार्थको 'नित्यानन्द' या 'मोक्ष' कहा गया है जो प्रमार्थको अन्तिम उपलब्धि है । वेदोंका डिण्डिम को है — तदेवागिनस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव गुक्तं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापितः ॥ (वाजसनेषि सं० यज्ञ० सं० ३२ । १)

इस विश्वमें अग्नि, वायु, जल आदि जो नाना पर्दार्थ हैं, वे सब-के-सब ब्रह्मके रूप हैं। तैंतीस देवसा अंशरूपमें इसमें आकर रहते हैं और इन सभीके साक्षी रूपमें—'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः' (गी० १५।१४) यह पर्याप्त संकेत है। 'सोमः कल्को शतयामना पथा' (अथर्व०१८।४।६०) 'शतधाराओंवाले मार्गसे अमृत भरनेवाले इस मानव-कल्शको यथार्थरूपमें जान लेना चरम उपल्लिय है।' इस निकटतम सत्यको भी दूर जाकर पूजनेकी वैज्ञानिक पद्धित जीव और जगत्के रहस्य अभीतक नहीं खोज पायी। भगवत्तत्त्वकी खोजके लिये दूर जानेकी आवश्यकता नहीं—जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ। ज्ञानका मूल म्रोत है, भारतीमा मुलातने वाक्षय। इसीमें गहराईसे गोता लगानी हैं।

भगवत्तत्व और माया

4-CB48-4-

(लेखक-शीवलरामजी शास्त्री, एम्॰ ए॰, साहित्यरेले.)

कहते हैं, एक बार अद्दैत-मतकी प्रचार-यात्रामें दिनिजय करते हुए आद्य शंकराचार्य शाक्त मत-वादियोंको पास करनेके लिये काश्मीर चले। मार्गमें वे अतिसारसे कुछ दुर्बल हो गये । इसी बीच उन्हें एक कन्या मिछी । पूछा--- 'महाराज ! आपका मन खिन्न-सा क्यों हैं!' आचारने कहा---'शाक्तोंपर विजयके लिये काश्मीर वा रहा था, पर अतिसारसे वड़ी अशक्ति हो गयी। क्त्या बोळी—'स्वामिन् ! आप तो केवळ स्य मानते हैं, पुनः 'अशक्ति'की आवश्यकता भी सीकारते हैं। ये परस्परविरोधी विचार कैसे ? ^{आचार्य} शंकरको मानो किसीने सोतेसे जगाया। वे औं बंदकर विचार करने छगे। ध्यानमें उन्हें अदिशक्ति भगवती महाशक्तिका दर्शन मिला । जव वे आँखें खोळकर कन्याकी ओर देखने लगे तो वहाँ 🐯 न मिला ।

वस्तुत: भगवानकी भाग या योगमाया ही महाराक्ति है। इस प्रसङ्गको स्पष्ट करते हुए श्रीमंद्रागवतकारने कहा है—'महाप्रलयके बाद सृष्टि-रचनाके पूर्व, समस्त आत्माओं के आत्मा, एक पूर्ण आत्मा 'ब्रह्म' (भगवतत्त्व) ही था। उस प्रलयका न तो कोई स्रष्टा था, न द्रष्टा ही। सृष्टिमें जो अनेकता दिखायी देती है, वह ब्रह्ममें लीन हो जाती है। भगवान्की इच्छासे 'योगमाया' सो जाती है। उस समय केवल अद्वितीय परमात्म-त्त्व्व ही प्रकाशित रहता है। द्रष्टा भी बही, दश्य भी बही। संसार-रचनाके लिये बही 'योगमाया' स्तवकी कारणरूपा बनकर सृष्टिकी प्रेरणा करती है—

वनकर सृष्टिका प्ररेशा पारता प्रमायानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः।
स वा एप तदा द्रष्टा नापस्यद् दृश्यमेकराट्।
सेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदक्॥
सा वा एतस्य संदुष्टुः शक्तिः सद्सद्दात्मिका।
माया नाम महाभाग यथेदं निर्ममे विभुः॥
(श्रीमद्रा०३।५।२३-२५)

ईश्वरत्वकी राक्ति माया ब्रह्माण्डमें स्थापिका, जगद्धात्री है । महाप्रख्य-समाप्तिके वाद 'शक्तिं की छीछा चलती रहती है । ब्रह्मको यदि ब्रह्माण्डका 'वृक्षं' माना जाय तो 'शक्तिं' उसकी 'छता' है । यदि भगवत्तत्त्वको 'पुष्प' माना जाय तो राक्ति उसकी 'गन्धं' है । इस प्रकार उस ईश्वरकी सत्तारूपी माया भगवत्तत्त्वकी प्रकाशिका—'ज्योतिं' है । भगवान्की यह 'शक्तिं' विभिन्न नामोंसे प्राख्यात है । उसे महाकाछी, महाल्क्ष्मी, महासरखती भी कहा जाता है । कुम्भकार जैसे नाना प्रकारके मिट्टी-वर्तनोंका निर्माण करता है, उसी प्रकार 'आदिशक्तिं' 'भगवत्त्त्व'-को प्रकाशित करती है ।

गोखामी तुळसीदासजीने 'भिक्ति'को मायासे भिन्न मानकर भिक्ति महत्त्वको बढ़ाया है। ज्ञानके पथमें माया बाधा पहुँचा सकती है। भिक्तिक पथिकका माया कुळ भी बिगाड़ नहीं सकती है। विशिष्टाद्वैतमतके अनुसार ईश्वर, जीव और माया—तीनों सत्य हैं। ईश्वर-जीवमें अन्तर नहीं। हाँ, जब जीव ईश्वरसे पृथक होता है, तब बह वैचारा मायाके चक्करमें पड़ जाता है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥ सो माया बस भयउ गोसाँई। बँध्यो कीट मरकट की नाई॥ जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

जो जीव 'ईश्वरत्व'का अविनाशी 'तत्त्व' है, वह उससे पृथक होते ही मायासे पृथक नहीं हो पाता, अर्थात् मायाके चक्करमें पड़ जाता है। मायाके चक्करमें पड़-कर वह संसारी हो जाता है। 'जड़' और 'चेतन' नामक गाँठोंमें बँध जाता है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, बृक्षादि योनियोंमें पड़कर नाना प्रकारके क्लेशोंमें पड़ जाता है। यह 'मम माया दुरत्यया'का साधारणीकरण—सरल व्याख्या है।

तब फिरि जीव बिबिध विधि पावइ संस्रुति क्छेस। हरिमाया अति दुस्तर तरि न जाइ विहगेस॥ (मानस उत्तर० दोहा ११८)

सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक श्रीकपिलने पुरुष और प्रकृतिके परस्पर सम्बन्धसे सृष्टि माना है । माता देवहृतिने उनसे पूर्छो-- भगवन् ! पुरुष और प्रकृति दोनों निव हैं, सत्य हैं, परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। प्रकृति पुरुक्ती नहीं छोड़ती । भगवन् ! जिस प्रकार पदार्थोंके मूलतत्त्व अर्थात् रस, रूप, गन्ध, स्पर्शीद जलादिसे पृथक् नहीं, उसी प्रकार प्रकृति पुरुष भी एक दूसरेसे भिन्न नहीं । अतः प्रभो ! जिनके आश्रयसे अकर्ता 'पुरुष'को यह 'कर्मबन्धन' प्राप्त हुआ है, उन प्रकृतिके गुणोंको रहते हुए उसे 'कैबल्य-परा कैसे प्राप्त होगा ?' कपिलजीने कहा—'माँ! अर्गापे होकर अरणिको भी जला देती अग्नि उत्पन्न है । इसी प्रकार अन्तःकरण शुद्ध हो जीवात्माकी मेरी भक्तिसे, ज्ञानसे, प्रवल वैराग्यरे, व्रतादि नियमोंके पालनसे, धारणा-ध्यान, समावि आदिसे प्रगाद एकाप्रता प्राप्त होकर क्रमशः क्षीण होती ईर 'अविद्या' प्रकृति समाप्त हो जाती है या पुरुषमें ही छीन हो जाती है^र ।' प्रसङ्गके अन्तमें भगवान् क^{पिछने} कहा—माँ ! यदि साधक (योगी)का नि योगसाधनासे प्राप्त अनेकानेक सिद्धियोंमें नहीं फँसता ते उसे मेरा अविनाशी परम पद प्राप्त हो जाता है। ऐसे योगियोंकी मृत्यु भी कुछ बिगाड़ नहीं सकती। स प्रकार भगवान्की महाशक्ति या प्रकृतिकी प्रधानताकी सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक कपिलभगवान्ने भी खीका किया है।

१-देखें - श्रीमद्भागवृत् ३ । २७ । १७-१९ । २-(श्रीमद्भागवृत् ३ । २८)

भगवत्तत्त्वकी व्यापकता

(लेखक - आचार्य श्रीरेवानन्दजी गौड़)

भारतीय संस्कृति अध्यात्मसे अनुप्राणित है । ज्ञात्के मूळमें व्याप्त अळक्ष्य, निरञ्जन, अव्यक्त, परात्पर प्रव्रक्षकी सत्ता, जो सबका सूत्रधार है, सूत्रमें मणियोंकी भाँति जिसमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अनुस्यूत है, मान्य है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः गुणोंका नाम भग है। अथवा उत्पत्ति, विनाश, जीवोंका आना (जन्म), जाना (मरण), विद्या और अविद्याका जो अधिपति है, वह भगवान् है— उत्पत्ति प्रळयं चैव भूतानामगति गतिम्। वेति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥ (विष्णुप् ६।५।७८)

प्रलयकालमें भगवान् अपने भग (षङ्गणों)का संहार भी करते हैं, अतः वे 'भगहा' भी हैं *- 'भगवान् भगहानन्दी' (वि॰सं०७३)।श्रीम द्रागवतमें उन्हें ब्रह्म,शिव,परमाःमा आदि कहा गया है- 'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति राज्यते' (१।२।११)।वस्तुतः जिस तत्त्ववेत्ताने जिस रूपमें इस तत्वको जाना, उसने उसका उसी रूपमें वर्णन किया। भगवत्त्त्व निर्गुण और सगुण, साकार और निराकार, व्यक्त और अन्यक्त, स्थूल और कृश, एक और अनेक, नेदिष्ठ और दिवष्ठ, अणीयान् और महीयान्, कहीं अदस्य, अप्राग्न, अगोत्र, अत्रर्ग, चक्कु-श्रोत्ररहित और पाणि-पाद-रहित है तो कहींपर वह मूर्तिमान्, महामूर्ति, दीप्तिमूर्ति, रातम्तिं, अनेकमूर्तिं, विश्वमूर्तिं, सहस्रमूर्घां, सहस्रपादं, और सहस्राक्ष है । वस्तुतः अपने तत्त्वको ठीक रूपसे भगवान् ही जानते हैं। भगवत्तत्व सर्वविलक्षण, अनिवचनीय समन्वित भावोंका और विरोधी 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र'में इसे विश्व, विष्णु, कामहा, कामकृत्, नर-नारायण, क्रोधहा, क्रोधकृत, भगवान्, भगहा, अर्थ-अनर्थ, नय-अनय, करण-कारण,

कत्ती-विकर्ता, सत्-असत्, क्षर-अक्षर, नन्द-नन्दन, दर्पहा और दर्पद भी कहा गया है। यह ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता, स्तन्य-स्तोत्र-स्तोता, कार्य-करण-कर्ता, हिक्ष्य-हिवन-होता सब कुछ है। वास्तवमें भगवत्तत्व जितना यूढ़, सूक्ष्म और अनिर्वचनीय है, उतना ही प्रत्यक्ष, स्थूछ और अनिर्वचनीय है। यह समस्त दश्य चराचर प्रपन्न भी भगवत्तत्व ही है! परंतु यही सब कुछ नहीं, इसीमें उसकी इतिश्री नहीं समझनी चाहिये। यह सब तो उसी तत्त्वका एक अंश है। श्रुति कहती है—

पतावानस्य महिमातो ज्यायाश्स्य पूरुषः। पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ (यजुर्दे ३१ । ३)

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। (गीता १०।४१)

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः॥
(गीता १५।७)

मानव-जीवनमें यही तस्त्र ज्ञेय, श्रोतव्य, मन्तव्य, द्रष्टव्य, निर्दिष्यासितव्यहै। इसके जान लेनेपर सब कुछ जान लिया जाता है, कुछ भी ज्ञेय रोप नहीं रहता, इद्प्रत्यि खुछ जाती है, मानस-रोग कट जाते हैं, अज्ञान, भ्रम, संशय, मायाका आवरण दूर हो जाता है। जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिसे मुक्तिका यही श्रेष्ठ उपाय है। वेदवाणी पद-पदपर यही संदेश दे रही है— आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निद्ध्यासितव्यश्चेति। आत्मनो वा अरेद्शीनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनदं सर्व विदितम्॥ (वृहदारण्यक २।४।५)

तमेवं विदित्वातिमृत्युमेति

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। (यजु॰ ३१।१७)

भिद्यते हृद्यग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। श्लीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥ (श्लीमद्रा०१।२।२१)

दक्षयज्ञमें भाग देवतापर भीषण प्रहार करनेवाले शिवसे ऐकात्म्य होनेके कारण भी वे भगहा हैं।

इस अध्यात्मतत्त्वकी उपलब्धि मन, बुद्धि, तर्भ-वितर्क, इन्द्रिय और बहुश्रुतमेधासे सम्भव नहीं है। इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं, इनसे सूक्ष्म है मन, मनसे बुद्धि और बुद्धिसे भी आत्मा सूक्ष्म और रहस्यम्य है। इसको वही जानता है, जिसपर उसकी कृपा होती है। श्रुति कहती है—

'यन्मनसा मनुते येनाहुर्मनो मतम्' 'यतो वाचो निवर्तन्ते अपाप्य मनसा सह'

मूख्तः भगवत्तत्व एक ही है। इंक्लपसे तो वह निर्विशेष है, पर उपाधिभेदसे स्विशिष । वैष्णव उसे ब्रह्म, योगी परमात्मा, अर्थार्थी, हिरण्यगर्भ, ज्ञानी भक्त भगवान्, शैव शिव, जैन अर्हत्, मीमांसक कर्म और नैयायिक कर्त्ता मानते हैं—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।

कोई विरला भाग्यवान् उसका कृपापात्र साधक ही उसके खरूपके किसी एक अंशको जान पाता है—

नायमातमा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न वहुना श्रुतेन। यमेवेष चुणुते तेन लभ्य-स्तस्येष आत्मा विच्चणुते तन् १॥ (कठ०१।२।२३)

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

जिज्ञासुको इसे जाननेके लिये विनीतमावसे, आत्मसमर्पणकी भावनासे सिमधा लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यके चरणोंमें जाना चाहिये। ऐसे तत्त्वज्ञानी इस तत्त्वका उपदेश करते हैं—

तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। (कठ०) तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। (गीता ४ | ३४)

भगवत्तत्त्वके संदर्भमें संक्षिप्त विचार कर हेनेपर अवतारवादपर कुछ चर्चा कर लेनी अप्रासिक्ति न होगी । भगवत्तस्व तो एक विज्ञान है, शास्त्रीय सिद्धान है और उसकी प्रयोगशाला, अवतारवाद, उसकी कसौटी है—अवतारवाद । अवतारवादके विना निर्गुण अध्यास, तत्त्व पङ्गु एवं निष्क्रिय है । आत्ममाया अर्थात् अवतरण-राक्तिके माध्यमसे ही भगवत्तत्त्व सार्थक, प्राह्म और ज्ञेय है । सामान्य प्रश्न है-अवतारसे क्या तात्पर्य है-अवतरति इति (अव-तृ-घञ्) अवतार, अवतरण अर्थात् ऊपरसे नीचे उतरना। इस नीचे उतरनेकी भी एक प्रक्रिया है कारणसे सूक्ष्म और सूक्ष्मसे स्थूलकी वैज्ञानिक प्रक्रिया, यथा पार्थिव परमाणु (कारण)से कपास एवं उससे वह (स्थूल)की प्रक्रिया । इसी भगवत्तत्त्वको अध्यासक्षेत्रमें योगमायाशक्तिसे अवतरितको अवतार कहते हैं। जैसे वस्नसे भिन्न सूत्र नहीं, सूत्रसे कपास, कपाससे पार्थिव परमाणु भिन्न नहीं है, वैसे ही अव-तरित श्रीविप्रहसे अन्यक्त, निर्गुण ब्रह्म भिन्न नहीं। दीपक प्रकाश, ज्योति (ब्रह्म) श्वेतकांचमें शित ज्योति (लैम्प) और रंगीन आवरण (त्रिगुणात्मक प्रकृति, योगमाया)से अधिष्ठित तत्त्वको अवतार कहते हैं। भगवान्ने गीतामें यही तो कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥ (४।६)

वेद जिसे अनादि, अनन्त, अभेद्य, अगय, अगोचर और नेति-नेति कहकर पुकारते हैं, वही तल वजमें छाछके छिये नाचता फिरता है—
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छिछया भरि छाछ पै नाच नवावै।

इन सब पूर्वापर विरोधाभासोंका समाधान ख्रं भगवान्ने गीतामें किया है— जन्म कर्म च मे दिन्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(४।९)

बास्तवमें उनके जन्म, कर्म दिव्य या छीछामय हैं। उनका जन्म और मरण नहीं होता, विक्ति प्राक्तव्य और तिरोधान होता है। भगवान् संत-महात्मा, गी-ब्राह्मणोंकी रक्षार्थ, पापियोंके विनाशार्थ और धर्मकी स्वापनाके छिये युग-युगमें अवतरित होकर पाप-भारसे कराहती पृथ्वी माँका भार दूर करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता ४। ७-८)

जब जब होइ धरम के हानी। बादहिं असुर अधम अभिमानी॥
जब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
(मानस)

मानव-शरीर पाञ्चभौतिक है। इसमें पार्थित्र तत्त्व
प्रधान है। यह पूर्व-कर्मानुसार उद्भिज, जरायुजादिक रूपमें
निर्मित होता है। इसमें खान-पान, स्वेद, मल-मूत्र, भूखपास आदि सभी व्यसन होते हैं। जन्म-मरण, जराव्याधि उसके धर्म हैं। मनुष्य भूमिको स्पर्श करता चलता
है। उसके शरीरकी छाया पड़ती है, पलक ऊपर-नीचे
होती है। देवताओंकी नहीं। उसके शरीरको छूनेसे फूल
उस्ल कालमें मुरझा जाते हैं। उसकी आयु सीमित
होती है। पर मानव अपने शरीरसे शुभ-कर्म करके देवल
भी पा सकता है। यौगिक कियाद्वारा मनुष्य अपने आत्माको
शरीरान्तरमें प्रवेश भी कर सकता है। मानव-शरीर
जरायुमें लिपटकर मल-मूत्रसे आवृत रोते-रोते जन्म
लेता है। देवशरीर तैजस होता है। उसमें मूख-प्यास
स्वेद-निद्रादिका अभाव होता है। वह सदा कुमारावस्थामें

ही रहता है, उसे मूँछ-दाढ़ी नहीं आती। शरीरपरकी फूलमाला कभी नहीं मुरझाती। वह योगसे नहीं, स्वेच्छासे भी शरीरान्तर-प्रवेशकी क्रांत एकता है—'इन्द्रो मायाभिः पुरुक्त ईयते' के अनुसार अनिक होरीर धारण कर सकता है। देवूशहीरिकी अविक समान होने पर मनुष्य-शरीरादि मिल्ह्या है—

ते तं प्रिक्त्वा स्वर्गछोकं विशाले प्रिपे पुण्ये मर्त्यछोकं विशिक्त । (गीता १ । २१)

अवतरित इस्र-श्रास्त्रिक्षेत्रश्रीर ही नहीं कहा जाता है। शरीर तो क्षीण (नाश) धर्मवाला होता है, अत: उसके लिये श्रीविग्रहका प्रयोग करना उचित है। ईश्वरका श्रीविग्रह भूतभावन ब्रह्माजीके शब्दोंमें—

अस्यापि देव वपुषो मद्तुप्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि। (श्रीमद्रा० १०। १४। २)

प्रभुकी एक खाभाविकी इच्छा—'एकोऽहं खहु स्थाम्'की है। उनका श्रीविग्रह वस्तुतः स्वेच्छामय, छीछामय, आनन्दमय, षाड्गुण्यमय, गुद्धतत्त्वमय, सन्मय, चिन्मय, आनन्दमय और नित्य गुद्ध-गुद्ध, मुक्त सर्वतन्त्र-खतन्त्र है। वे धर्म-संस्थापनार्थ छोक-मर्यादाकी रक्षाके छिये नर-छीछा करते हैं। वे रोते हैं, हँसते हैं, गाते हैं, नाचते हैं, खाते हैं, पीते हैं, देते हैं, माँगते हैं, वन्धनमें भी बँघते हैं; सब कुछ करते हैं, पर तत्त्वतः कुछ नहीं करते—अतत्त्वज्ञजनोंको वे कर्म करते हुए दिखायी देते हैं। श्रीभगवान् खयं कहते हैं

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न में कर्मफले स्पृहा। इति मां योऽभिजानाति कर्मभिनं स बध्यते॥ (गीता ४।१४)

अतः भगवत्तत्त्वको आत्मसात् करनेके लिये अवतारवादकी प्रक्रियाखरूप प्रयोजन और जन्म-कर्मकी दिव्यताका ज्ञान आवश्यक है।

भगवत्तत्व और उसकी उपादेयता

(लेखक—श्रीहर्षदराय प्राणशंकरजी वधेका)

पुराणपुरुषके विराट्ख्पका प्रतिपादन 'विश्वतश्चक्धु-रुत विश्वतो मुखो विश्वतो वाहुरुत विश्वतस्पात्' आदि श्रुतियोंमें हुआ है । विशिष्टाद्वैतमें निरविध आनन्दसे विमूषित भगवरखख्पको ज्ञान, वैराग्य, ऐस्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेजसे परिपूर्ण होनेके कारण षाड्गुण्य-विग्रह कहा है । 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपराम्ग्रप्ट-पुरुषविशेष ईश्वरः अर्थात् क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश), कर्म (पुण्य-पाप, पुण्य-पापमिश्रित और पुण्य-पापरिहत), विपाक (कर्मफल) एवं आशय (कर्म-संस्कारयुक्त हृदय)से परे पुरुष-विशेषको पतञ्जिने 'ईश्वर' नामसे निर्दिष्ट किया है । ईश्वर-तत्त्वका निरूपण श्वेताश्वतर-उपनिषद्के इस मन्त्रमें भी हुआ है—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी स भगवांस्तसात् सर्वगतः शिवः॥

'समस्त मुख, समस्त शिर और समस्त ग्रीवाएँ भगवान् शिवकी ही हैं। यह सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित है और सर्वव्यापी है, अतः शिव सर्वगत हैं। गीताका भी यही कथन है—

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमान्नत्य तिष्ठति॥ (१३।१३)

'वह सब ओरसे हाथ, पैर, नेत्र, शिर तथा मुखवाला है। सब ओरसे कानवाला है। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ वह न हो, ऐसा कोई शब्द नहीं, जिसे वह न सुनता हो, ऐसा कोई हस्य नहीं जिसे वह न देखता हो। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसे वह प्रहण न करता हो और ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ वह न पहुँचता हो। वह बिना नेत्रके देखता है, बिना कानोंसे सुनता है,बिना पैरके चळता है, बिना हाथोंके प्रहण करता है, वही सग्रका वेद्य है, कोई उसका दूसरा यथार्थवेत्ता नहीं—अपाणिपादो जयनो प्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकणः। श्रीगोखामीजी इस व्यापक अविनाशी चेतनघन आनन्दराशिका वर्गन इस प्रकार करते हैं— बिनु पद चल्ड सुनइ बिनु काना।कर बिनु कर्म करइ बिधि नाल आननरहित सक्ल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी। तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ प्रान बिनु बास असेषा। अस सब भाँति अलोकिक करनी।महिमा जासु जाइ नहिं बानी।

ब्रह्मका लक्षण बतलाती हुई उपनिषद् कहती है— इमानि भूतानि जायन्ते येन 'यतो वा जीवन्ति संविशन्ति तद्विजिश्वासल जातानि तद् ब्रह्म' (छान्दोग्य०) । 'प्राणिवर्ग जिससे पैदा होका जीवित रहते और जिसमें छीन हो जाते हैं, वही जिज्ञास ब्रह्म है। १ क्वेतास्वतर—'एक ही रुद्र, जो सब खेगोंको अपनी राक्तिसे वरामें रखता है, वही ईश्वर है। शिवया ब्रह्म सभी लोगोंको उत्पन्न कर अन्तकालमें संहार काता है। वही सभीके भीतर अन्तर्यामीके रूपसे स्थित है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अन्याकृत प्रकृतिके मध्यमें स्थि है। अथवेवेद (१३।४।४)का भी प्रायः गर्ही कथन है । पुनः उसका (१०।८।१६) कथन है— जिससे सूर्य उत्पन्न होता है और जिसमें लयको प्राप्त होता है, उसको ही मैं बड़ा मानता हूँ। यह बत निश्चित है कि कोई उसका उल्लङ्घन नहीं का सकता कोई उससे बढ़कर नहीं है, अर्थात् वही सर्वश्रेष्ठ है। अथववेद परमात्माकी स्तुति इन शब्दोंमें काता 'भगवन् ! तुम स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारी है। तुम ही बूढ़े हो, दण्ड लेकर चलते हो, तुम ही सर्वव्यापी होकर सर्वत्र प्रकट होते हो । जैसे आर्किंस विस्फुल्छिङ्ग निकलते हैं, उसी प्रकार इस प्रमारमामें सब प्राण, सब लोक-लोकान्तर, सर्वभूत, सर्वदेव पैदा होते के हैं। वह प्रकाशस्त्ररूप है, अणु-से-अणु हैं, उसीमें सभी

होक, होकान्तर और प्राणी स्थित हैं। वह अक्षर है, तीनों काहोंसे अपिरिच्छन सर्वेश्वरसे अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।' (१०।८।२७) वह सबका अधिपित, रचियता, पालियता, संहर्ता, सत्-चित् एवं आनन्दाम्बुनिधि, विज्ञानानन्दघन है। श्रुतिकी परिभाषामें—'अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिधित्सो पिपासः सत्यसंकरूपः सत्यकामः।' यह पुरुष पुण्यापुण्यरहित, जरारहित, नित्य, शोकसंसर्गशून्य है, क्षुधा-तृषारहित है और सत्यकाम तथा सत्यसंकल्प है। महर्षि याज्ञवल्क्य गार्गीसे कहते हैं— 'तस्यवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः।' (बृहदारण्यक-उपनिषद्) 'गार्गि ! इसी अक्षर-पुरुषके नियन्त्रणमें सूर्य और चन्द्रमा ठहरे हैं।' इसीके भयसे पवन चलता है और इसीके भयसे सूर्य भी उदय होता है—

भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। (कठोपनिषद्)

तुळ्सीदासजी कहते हैं कि वे परमात्मा——
'प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम ।'
(रामच० मा० २ । २९०)

और 'रामु प्रानिषय जीवन जी के।' है (मानसर। ७३।३) केंनोपनिषद्के शब्दोंमें 'स उ प्राणस्य प्राणः' (१।८) एवं कठोपनिषद्के अनुसार 'नित्यो नित्यानां वेतनश्चेतनानाम्'—'वह परमात्मा श्रोत्रका श्रोत्र, मनका मन, वाणियोंकी वाणी, प्राणोंका प्राण, चक्षुओंका चक्षु है। उसी परमात्माके खरूपको न आँखोंसे कोई देख सकता है, न वाणीसे वर्णन कर सकता है, न मनसे उसकी कल्पना कर सकता है और न वह समझमें आता है। उसका न तो कोई करण है न कार्य है और न कोई उसके समान है। वह महान् शिक्तशाळी एवं अद्वितीय है, उसकी शिक्त अप्रतिम है। विविध शिक्तयाँ उसमें होन, वल और कियारूपसे सदा विद्यमान रहती हैं।

तुल्रसीदासने कितने मधुर एवं प्रासादिक शब्दोंमें परमात्माकी महिमा गायी है—

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गां कोटि अमित अरि मर्दन ॥ सक्र कोटि सत सरिस विलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥

मरुत कोटि सत बिपुल बल रिव सत कोटि प्रकास । सिस सत कोटि सुसीतल समन सकल भव ग्रास ॥ बिष्नु कोटि सत पालन कर्ता । रुद्द कोटि सत सम संहर्ता॥ धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥ भार धरन सतकोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥

कितने मधुर शब्दोंमें गोखामीजीने प्रमुका वर्णन किया है। जीवन्मुक्त महात्मा परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं और जगत्-प्रपञ्चको छाँघकर मायाके बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो सकते हैं, पर जगत्का सजन, पालन और संहार करनेकी शक्ति परमेश्वरमें ही है। ब्रह्मसूत्रके जगद्व्यापार-वर्जन (४।४।१७) सूत्रके भाष्यमें आचार्यशंकर कहते हैं—'जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके सिवा अन्य अणिमादि सिद्धियाँ महापुरुशोंमें होती हैं; परंतु जगद्व्यापारकी, जगरप्रवर्तनकी शक्ति एकमात्र नित्यसिद्ध परमेश्वरमें ही है। इसी तरह जीव और ईश्वरके भेदका निरूपण करते हुए भगवान् श्रीरामने कहा है—

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव । बंध मोच्छप्रद सर्बंपर माया प्रेरक सीव॥ (रा० च० मा० ३ । १५)

'लक्ष्मण! जो माया, ईश्वर और अपने खरूपको नहीं जानता उसे जीव कहना चाहिये और (कर्मानुसार) बन्ध और मोक्ष प्रदान करता है, सबसे परे तथा मायाका प्रेरक है, वह ईश्वर है। श्रुग्वेदने ईश्वरकी महिमा ऐसे गायी है—आश्चर्य-खरूप देवोंके वलखरूप सूर्य, चन्द्र तथा अग्निका मार्गदर्शक परमात्मा हमारे बाहर-भीतर प्रकट हुआ है। उसने अपने प्रकाशसे पृथ्वी और अन्तरिक्ष मर दिया है, वह विद्वानोंके प्राप्त करनेयोग्य जङ्गम और स्थावरका आत्मा है (ऋ०१।११५।१),

जिसने चौ:को तेजवाला बनाया है और भूमिको दृढ़ वनाया है, जिसने सूर्य और चन्द्रको रोक रखा है। हम सब उस खामी देवकी ह्विष्से पूजा करते हैं। परमात्माकी मायाके द्वारा आगे-पीछे ये दो वालक (चन्द्र-सूर्यक्ष्प) अन्तरिक्षमें विचरते हैं। एक वालक (सूर्यक्ष्प) समस्त भुवनोंके पदार्थोंको देखता है, दूसरा वालक (चन्द्रक्ष्प) वसन्तादि ऋतुओंको रस-प्रदानद्वारा धारण करता है। चन्द्र और सूर्य उस मगवान्की आज्ञासे समयपर उदय और अस्तको प्राप्त होते हैं (ऋ०१०। ८५।१८)। श्रुतिने कहा है कि वही प्रभु सर्वत्र है—'स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेद्र सर्वमिति।' (छान्दो॰ उप० ७।२५।१)

सांसारिक स्रख अनारम पदार्थके योगसे उत्पन होता है और इसी कारणसे प्रागमाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्या-भाव एवं अत्यन्ताभावसे प्रस्त हो जाता है । भगवदीताने संसारको 'अनित्यम्' 'असुखम्' 'दु:खयोनि' शब्दोंसे निर्दिष्ट किया है। भौतिक सुख नारावान्, असार, अनित्य, क्षणभङ्ग्रर होनेसे उसमें अतृप्ति, असुख और अशान्तिहीकी अनुभूति होती है । उससे पूर्णानन्द, नित्यानन्द और अखण्डानन्द प्राप्त नहीं होता । मानव आत्माकी सिसृक्षा और आरज् सर्वकाळीन, सर्वदेशीय और सार्वजनिक, देशकाळातीत, जराव्याघि-विनाशादिरहित, अखण्ड एवं अचल शान्तिका अनवरत आस्वाद पानेकी है। इसके छिये साधकको ज्ञानयोगके साधनचतुष्टय, भक्तियोगकी षड्विध शरणागति और महर्षि पतञ्जलि-प्रणीत योगदर्शनके अष्टाङ्गयोगका आश्रय लेकर त्रिविध दु:खहरणपटु परमात्माकी क्रपाका साक्षात्कार करना पड़ेगा । श्रीतुल्सीदासजी कहते हैं--- 'जो आनन्दके समुद्र और मुखके खजाने हैं, जिस समुद्रके विन्दुमात्रसे त्रैलोक्य आनन्द-प्राप्त होता है, वे ही सुख्याम श्रीराम हैं। उनके द्वारा ही समस्त छोक्तमें सुख और शान्ति मिळती है, त्रिविध तापसे व्याकुल जीव आनन्दसिंधु परमात्माको प्राप्तकर सांसाहिक सुखोंसे मुक्त होकर आनन्दसागरमें सदाके खि निमग्न हो जाता है। उपनिषद्में कहा है कि जो व्यक्ति एक अद्वितीय खतन्त्र प्रमात्मा जो समस्त प्राणियोंके भीतर आत्मारूपसे वर्तमान है और एक ही रूपसे अनेक रूपको धारण करता है, जो अपने अन्तःकरणमें स्थित है, उसको जो धीर पुरू देखता है, उसीको नित्य सुख प्राप्त होता है, और्तको नहीं । स्वेतास्वतर उपनिषद्में ध्यानसे आत्मदेवका साक्षात्कार हो जानेपर तृतीय देह अविद्या-तमका नारा, सर्वक्लेशोंका क्षय, अहंता-ममतादि पाशोंकी हानि मृत्युका आत्यन्तिक विनारा, विश्वैश्वर्यकी प्राप्ति, केवला और आप्तकामता प्राप्त हो जाती है। जिस समय वह चेतन प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अगोचर, अशरीर, प्राकृतिक रूपसे अनिर्वचनीय, अनाधार, जगदीखरके भीतर अभ्य-रूपमें प्रतिष्ठित होता है, तदनन्तर वह भयरहित हो जाता है । इस भय और क्लेशकी निवृत्ति कैसे हो सकती है ! श्रुतिके अनुसार 'द्वितीयाद्वे भयं भवति ।' परमालाके अतिरिक्त भिन्न किसी दूसरी वस्तुकी अनुभूति होनेगर ही भय होता है। अथवा यदा होवेष एतसिन्दुर मन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति । तस्येत्वं भयं विदुषो मन्वानस्य ।' जब कोई परमात्मामें बोझ-सा भी मेद दर्शन करता है, उनके अतिरिक्त अव सत्ताका अनुभव करता है, तब उसे भय होता है। मेददर्शन करनेवाले विद्वान्के लिये वह परमात्मा ही ^{भग} रूप वन जाता है यही वात भागवतके—'भयं द्वितीयाः भिनिवेशतः स्यात्'—'देहादि अनात्म पदार्थमें अभिनिवेश होनेसे ही भय उत्पन्न होता हैं इत्यादिमें कही गरी है । यदि हम एकमात्र प्रभुकी सत्ताका ही सर्वत्र अनुभव करने छगेंगे, परमात्मामें स्थित होंगे, हमारा भय सदिक लिये नष्ट हो जायगा । वास्तवमें तो प्रमुके अतिर्वि अन्य कोई चीज है ही नहीं। हमें जो अन्य हा

प्रतीत होते हैं उन सभी कर्पोंमें एकमात्र सर्वसत्ताधीश गुपाला ही अभिन्यक्त हो रहा है।

श्रोगभाष्यकार कहते हैं कि सभी प्राणियोंकी यह ह्या बनी रहती है कि उसका नाश न हो। यद्यपि मृत्युका भय केवल प्रधान अभिनिवेशरूप ही है। उसी तरहसे अन्यान्य प्रकारका भी अभिनिवेश होता है। जैसे राग सुखानुशायी (सुखका स्मरण हिलनेवाला) और द्वेष दु:खानुशायी (दु:खका मारण दिळानेवाळा) क्लेश हैं, वैसे ही विवेक-ज्ञान-गुन्य मोहरूप क्वेंदा-भयका नाम अभिनिवेदा ज अभिनिवेशोंकी निवृत्तिके **छिये भगवत्तत्त्वकी** अविलम्ब प्रपत्ति ही अनिवार्य है 17 'दुःखक्लेशविहीनमक्षरसुखं' दु:ख-क्लेशरहित अविनाशी तथा सदा सुखमय तो अच्युत-नाम-पद ही है । श्रीसदानन्दने 'वेदान्तसार' नामक प्रन्थमें विक्षेपकी परिमाषामें वताया है कि 'अखण्डवस्त्वलम्बेन चित्तवृत्तेः अन्यावलस्यनं विक्षेपः।' यह अवलम्बन दुस्तर मायाके कारण होता है।

आचार्य रामानुजके मतानुसार त्रिगुणमयी माया बीबामय भगवान्की रचना है और उसके दो कार्य हैं—(१) जीवको भगवान्से तिरोहित करना और (२) अचेतन पदार्थीमें भोग्य-बुद्धि काना । इसी मायाको भगवान्ने गीतामें दुस्तर कहा है-'दैवी होषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।' साथ ही अभय भी किया है—'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते', जो पुरुष निरन्तर मेरी प्रपति- में रहता है, वह इस मायाका उल्लङ्घन कर जाता है, अर्थात् संसार-सागरको पार कर जाता है। परमेश्वर मायातीत और गायाका नियन्ता है इसीलिये मायानिवृत्ति-के लिये भगवच्छरणागति नितान्त आवश्यक है । आचार्य निम्बाकके मतसे गीताका उपक्रम शरणागतिसे आवृत्ति शरणागतिको और पर्यवसाय शरणागतिमें ही हैं। उनके मतसे उपक्रम-'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' से आवृत्ति ।निवासः शरणं सुहृत्, तमेव शरणं गच्छ, मामेच ये प्रपद्यन्ते' आदिसे और उपसंहार 'सर्वधर्मान् परित्यज्य "'से है।

वस्तुतः भगवत्तस्वकी विमुखता असीम दुर्भाग्यका घोतक है । अतः श्रुति प्रार्थना करती है-'माहं ब्रह्म निराकुर्यो मा मा ब्रह्म निराकरोत्।' 'प्रभो ! मैं आपका निराकरण न करने छग जाऊँ या आप खयं मेरा निराकरण न कर दें। भोग और मोक्षको श्रतिने कमशः प्रेय और श्रेय कहा है तथा घोषित किया है कि उनमेंसे श्रेयको स्त्रीकार करनेवालेका कल्याण होता है और जो प्रेयके पीछे दीइता है, वह अपने वास्तविक हितसे विश्वत रह जाता है। श्रेयोमार्गका वरण करनेपर मनुष्यकी कोई अभिलाया शेष नहीं रहती । उसे जो पाना होता है, वह सव मिल जाता है ।

इस परमपदके साक्षात्कार हो जानेपर हृदयकी गाँठ ख़ुल जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं और सभी कर्मजाल क्षीण हो जाते हैं। गीताके शब्दोंमें यही 'भगवरप्राप्ति' है और इस लामसे बढ़कर दूसरा कोई भी (६ 1 २२) लाभ नहीं।

490G4

सनातन परमपदकी आकाङ्क्षा

गन्तुमिच्छामि परमं पदं यत्ते सनातनम् । प्रसादात् तव देवेश पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ (ब्रह्मपुराण १७८ । १८३)

(कण्डुसुनि श्रीभगवान्से प्रार्थना करते हैं—) मुरेक्वर ! मैं आपकी कृपासे आपके ही सनातन परम पदको प्राप्त करना चाहता हूँ । वह पद ऐसा है, जहाँ जानेसे फिर इस संसारमें आना नहीं पड़ता ।

भगवत्स्वरूपकी भजनीयता

(लेखक--श्रीरामलालजी श्रीवास्तव)

भावुक भक्तोंके अनुसार भगवत्स्वरूप या भगवत्त्त्वके चिन्तन-स्मरण, ध्यान-मनन और दर्शनसे कहीं अधिक श्रेयस्कर उनकी भक्ति या भजन है । भजनमें सम्पूर्ण निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार भगवत्ताका रसास्वादन अपने मधुरतम खरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है । यही भगवत्स्वरूपकी भजनीयताका मौळिक और अळीकिक खारस्य अथवा अप्रतिम अनुभव है । भगवद्भक्तिकी मृतिमत्ता श्रीकृष्णके प्रति गोपिकाओंकी प्रीतिकी प्रतिष्ठा है । तप, वेद, ज्ञान अथवा कर्मके अनुष्ठानकी अपेक्षा हिकी प्राप्ति सिक्तसे होती है—

न तपोभिर्न वेदेश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा। हरिहिं साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः॥ (भागवतमाहात्म्य २ । १८)

भगवान्का भजन या भक्ति, प्रमेश्वरके प्रति
प्रेम—प्राणियोंका परम धर्म है। यह साक्षात् अमृतखरूप है। इसकी प्राप्तिसे मनुष्य सिद्ध और तृप्त
हो जाता है—अमृत हो जाता है। भक्तिके आचार्य
देविर्षि नार्दके वचन हैं—'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।
अमृतस्वरूपा च। यहाञ्च्वा पुमान् सिद्धो भवित,
अमृतो भवित, तृप्तो भवित।'(नारदभक्तिस्त्र १।४)
भगवान्के भजनमें निर्वाणपद प्रतिष्ठित है। बिना
भगवान्के भजनके जीवोंका क्लेश नहीं मिट सकता।
भगवत्तत्व सिद्धानन्दस्वरूप है, यह अनन्तराक्तिसे
सम्पन्न है। जिस प्रकार रूप-रसादि गुणोंका आश्रय एक
पदार्थ—दूध भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंद्वारा भिन्न-भिन्न दीख पड़ता है,
उसी प्रकार उपासनाभेदसे एक ही परम तत्त्व विभिन्न
रूपोंमें अनुभूत होता है। भक्तिके मध्यकालीन आचार्य
रूपोंसामीने भगवत्तत्वका प्रतिपादन किया है—

तत्तच्छ्रीभगवत्येव स्तरूपं भूरि विद्यते। उपासनानुसारेण भाति तत्तदुपासके॥ यथा रूपरसादीनां गुणानामाश्रयः सद्। क्षीरादिरेक पवार्थो जायते बहुधेन्द्रियैः॥ (लघुभागवतामृतम्)

भगवत्खरूपकी रूपाभिव्यक्ति भक्तिके ही राज्यें होती है। भगवान्के भजनका रसाखादन भक्त करता है और उसकी भजनीयताका आनन्दभोग स्वयं भगवान् करते हैं। निराकार चिन्मय होकर भी भगवान् भक्तके लिये अभिन्यक्त होते हैं—

भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः॥ (भागवतमाहात्म्य ३।५८)

भगवान भक्तकी प्रसन्तताके छिये 'निज इच्छानिर्मित तन् भे अवतरित होते हैं । उनका श्रीविष्रह मायातीत, गुणातीत और इन्द्रियातीत होकर भी सगुण-साकार-रूपमें अभिव्यक्त होता है । महाप्रभु वल्लमाचार्यने अविकृत परिणामवादके सिद्धान्तके धरातलपर यह मत व्यक्त किया है कि निर्गुण सिचदानन्द ब्रह्म ही अविकृतः भावसे जगत्में परिव्याप्त होता है। 'सुबोधिनी'में उनकी खीकृति है कि प्राणिमात्रको मोक्ष देनेके लिये (मिक राज्यमें प्रतिष्ठित करनेके लिये) ही भगवान् अभियक होते हैं-- 'प्राणिमात्रस्य मोक्षदानार्थमेव भगवाद अभिव्यक्तः।' मोक्षदानार्थका तात्पर्य है प्रामिक्ति प्राणिमात्रका भगवान्द्वारा प्रतिष्ठापन, जो भजनका ही सुफल अथवा परिणाम है; यह भजन ही परमोल्हा भागवतधर्म है । भजन भगवत्प्राप्तिका राजमार्ग है, वह राजमार्ग ही हमारे शास्त्रोंमें भक्तियोगके रूपमें विहित है। इस भक्तियोगकी तीव्रतासे मन भगवान्में अर्पित हो जाता है, यही प्राणियोंका निःश्रेयसोदय कहा गर्व है और यही भगवत्स्वरूपकी भजनीयताका मुख तात्पर्य है । यह भजन ही भगवत्पातित्रत है, स्वीपी भग्त्रत्सम्बन्ध है । भजनसे ही भगवान्की महिमान

बान होता है। भजनके प्रतापसे ही भक्त भगवान्की दुत्तर मायासे अप्रभावित रहता है, यह माया शित्र और ब्राह्म भी मोहित अथवा विमुग्ध कर लेती है, इसलिये पुनि निरन्तर परमात्माक मननमें लीन प्राणी मायापित भगवान्का ही भजन कर खरूपमें अवस्थित रहते हैं—

सिव बिरंचि कहुँ मोहद्द को है बपुरा आन। अस जियँ जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान॥ (मानस ७। ६२ ख)

द्वैतमतके आचार्य मध्वने ब्रह्मको सगुण और मिन्नोप कहा है। उनके सिद्धान्तानुसार जीव अणु एवं मावान्का दास है। श्रीभगवान्के प्रति दास्यपूर्वक मजनमें ही उसकी मुक्ति है। उन्होंने भक्तिको प्रमुक्तिका साधन कहा है। सत्य बोळना, हितकी बात कहना, प्रिय भाषण, खाध्याय, सत्पात्रको दान, दीनका उपकार, रारणागतकी रक्षा, दया, स्पृहा और श्रद्धा उनके द्वैतवादमें भगवद्भजन है। महाराज एकनाथकी विज्ञिति है—

हो का वर्णमाजी अग्रगणी। जो बिमुख हरिचरणीं॥

त्याहुनि स्वपच श्रेष्ठ। जो भगवद्गजनीं प्रेमल॥

(एकनाथी भागवत ५।६०)

कोई सव वर्णों श्रेष्ठ हो और हिरके चरणोंसे विस्तुत हो तो उससे वह स्वपच श्रेष्ठ है, जो भगवान्के भजनका प्रेमी है। जीव भगवान्के खतः शरणागत है, भक्त है, यही भगवान्की अचिन्त्य-अपार और असीम विस्ता है। भगवान्के अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु ही वहीं है, जिसे वस्तुतत्त्व कहा जाय। वास्तवमें वे ही सन हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं—

विनाच्युताद् वस्तु तरां न वाच्यं स एव सर्वे परमार्थभूतः।

(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४३) वहीं प्राणी सुन्दर और पुण्यवान् शरीरवाला है, जो दुष्म-शरीर प्राप्तकर भगवत्खरूपका प्रीतिपूर्वक सेवन-मजन करता है। भगवत्खरूपकी अनन्तता, अखण्डता, व्यापकता और अनिवचनीयताकी शरणागित ही मायावश परिच्छिन्न जड़-जीवका खाभाविक भजन है, जिसके द्वारा दुस्तर संसार-सागरका संतरण सहज सुल्म हो जाता है। सेवक-सेव्यभावमें दृढ़ आसक्ति ही भजनका सिद्धान्त है। यही आसक्ति सुखरायी भक्ति है—

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिश्र उरगारि। भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥ (रामचरित० ७। ११९ क)

भगवान्की अनन्य प्रेममयी भक्तिको संसारचक्रमें प्रस्त प्राणीके छिये प्राप्त करानेका साधन भगवान्का एकमात्र भजन है, यही कल्याणमार्ग है । भक्तिसे ही भगवान्की कृपा-प्राप्तिका निश्चय किया जाता है । भक्तितत्त्व ही भगवत्तत्त्व अथवा भगवत्वरूप है, यह खतःसिद्ध है । जिस तरह मोजन करनेवालेको प्रत्येक प्रासके साथ-साथ तुद्धि, पुष्टि क्षुधानिवृत्तिका अनुभव होता जाता है, उसी तरह मनुष्य जब भगवान्की शरण लेकर उनका भजन करने लगता है तो उसे प्रत्येक क्षण भगवान्की प्रति प्रेम, अपने प्रेमास्पद प्रमुक्ते खरूपका अनुभव और अन्य वस्तुओंमें वैराग्यकी वृद्धि होती जाती है । भजनकी यही सार्यकता है । यही भगवत्वरूपकी मक्तिमयी भावना अथवा भजनीयता है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाक्ततः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुद्यायोऽनुघासम्॥
(श्रीमद्रा०११।२।४२)

भगवत्खरूपकी भजनीयताके सम्बन्धमें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, भक्तिके अन्यान्य शास्त्र और भक्तिके आचार्योंने जो साधनक्रम व्यक्त किये हैं, उनमें सम्पूर्ण अमिन्नता अथवा समरसताका ही दर्शन होता है; क्योंकि भगवत्खरूपकी रसानुभूतिका एकमात्र प्रतिपाद्य एकरस भगवद्गक्ति ही है। भगवद्गीतामें—'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'के साधनकी सिद्धिमें भगवान्की विज्ञति है—

युक्तवैवमात्मानं मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिज्ञाने प्रियोऽसि मे ॥ मामेवैष्यसि (गीता ९ । ३४, १८ । ६५)

श्रीमद्भागवतमं मधुर भक्तिकी प्राणेश्वरी गोपिकाओंके प्रति उद्भवको निर्देश देते हुए भगवान्ने मन, प्राण, शरीर और आत्माके समर्पणपूर्वक साधनक्रमके स्तरपर भजनीयताका प्रकाशन किया है, जिसमें भगवत्खरूपकी सम्पूर्णतम प्राप्ति अथवा सिद्धि अभिन्यक्त है —

ता मन्मनस्का मत्त्राणा मद्धें त्यक्तदेहिकाः। धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्राणः प्राणान् कथंचन । प्रत्यागमनसं देशौर्वल्लच्यो मे मदारिमकाः॥ (श्रीमद्भा० १० । ४६ । ४, ६)

समस्त कामनाओंकी अन्तर्ळीनता और निष्काम भक्ति-भावनाकी अभिव्यक्ति भगवान्के भजनमें ही संनिहित है। भवके भयका नाश भजनसे ही होता है-'राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।' और 'बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥' (रामचरित० ७ । ८९ । १, ४)

भगवान्के खरूप भाव और छीछामें एकरसमयता और अभिन्नता है। भगवान्के अनुप्रह और कृपासे ही भक्ति मिळती है, भक्ति अथवा भजनीयता साधनरूपा नहीं फलरूपा है । भगवान्की प्राप्ति—भगवत्खरूपकी भक्तिरसमयी अनुभूति भावनागत है । भगवत्तत्त्व स्वरूप-भावना और छीछाभावनासे भगवत्कृपाके सहारे अनुभवमें प्रकाशित होता है । खरूप-भावनाकी सिद्धि अनुभव और श्रवणसे होती है । भगवान्की छीछाभावनासे भक्त भजनमें तल्लीन प्राणी उनके लीला-चिन्तनसे अभिन्न ळीळाखरूप हो जाता है, ऐसा होनेपर भक्तकी सारी क्रियाएँ अनायास भावनागत हो जाती हैं। भावकी भावनाद्वारा यह सिद्धि ही भगवत्ख्रक्रपकी भजनीयता है। सरूप-भावनाके भगवान् जड़को चेतन और चेतनको जड़ीमूत करनेमें समर्थ हैं। यही भगवत्खरूपकी महिमा है। संतिशरोमणि गोखामी तुल्रसीदासका वचन है---

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य। स्वरूप-भावनामें जड़-चेतन सत्र कुछ चैतन्य है। भगवरखरूपमें चिन्मयता ही चिन्मयता है। जड़-केतन भगवान्की चिन्मयता आकारित हो उठती है। अकार एकरस आनन्द ही खरूप-भावनामें अभित्रक हो उखा है। छीलाभावनाके अन्तर्गत भक्तिके वैष्णव आचार्यन लीलाके रसाखादन और लीलाखरूपताकी प्राप्तिके लि द्यान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावके प्र_{थर}-प्रहणपर ही वल दिया है। इस लीलामावनाके परिप्रेसमें संत तुकाराम महाराजने अनुभव व्यक्त किया —

सगुण निर्मुण जयाचीं ही ते चि आम्हां संग क्रीडा करी॥

सगुण-निर्गुण जिनके अङ्ग हैं, वे श्रीनाराण भगवान् हमारे साथ क्रीड़ा करते हैं। ऐसे ही बैक भावनाभावित भगवान्के लिये गीताकी गूढार्थदीफिले मधुसूदन सरखतीकी विज्ञप्ति है--

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बराद्रुणविम्बफलाधरोष्टात्। पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।

राघवचैतन्यके अनुसार भावभावित भक्तकी ही अभिलाषा होती है कि गोपियोंके पुत्नीमूत प्रेम, यहकैं मूर्तिमान् सौभाग्य तथा श्रुतियोंके गुप्त धन स्थाप इ

श्रीकृष्णमें ही मेरा चित्त सांनिघ्य प्राप्त करे—

गोपाङ्गनानां पुञ्जीभूतं प्रेम यहूनाम्। भागधेयं मूर्तीभूतं श्रुतीनां इयामीभूतं ब्रह्म में संतिधताप्। गुप्तवित्तं पकीभूतं (राघवचैतन)

भगवान् भावके वशीभूत हैं। ममता, मह हैं। मानका त्याग कर सुखनिधान, करुणाखरूप, भावाव ही भजन करना चाहिये-

भाद बस्य भगवान सुख निधान करूना भवन । ति ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ॥ (रामच० मा० ७ । ९२ (ख))

सूर्दासने भात्रभावक देव—भगवान्के ही भजनकी शीख दी है। भजन ही उनकी प्रसन्तताका कारण है।

भित सिंख ! भाव भावक देव । कोटि साधन करो कोऊ तऊ न माने सेव।… ब्रजवभू बस किये मोहन 'सूर' चतुर सुजान॥

नवधाभितिका अवलम्बन करनेसे खभावसे भी दोषयुक्त जीवका उद्घार हो जाता है। नवधाभितिका आश्रय-ग्रहण ही भजनमें प्रवृत्त होना है। आचार्य वल्लभने कहा कि 'सदा सर्वभावसे ब्रजानिप भगवान्का भजन ही जीवमात्रका कर्तव्य है। सदा सम्पूर्ण हृदयसे गोकुलाधीश श्रीकृष्णके युगल चरणारविन्दोंका चिन्तन और भजन कभी नहीं छोड़ना चाहिये, यही मेरा मत है।'

सर्वदा सर्वभावेन भंजनीयो व्रजाधिपः। स्रस्यायमेव धर्मो हि नान्यः कापि कदाचन॥ (चतुःस्लोकी १।४)

भगवान्का यह 'निज सिद्धान्त' है कि जीवात्मा भगवान्से व्यतिरिक्त अन्य संभी कुछका त्यागकर उनका भजन करे । भगवान् रामने काकसुगुण्डिको अपने एकमात्र भगवरस्करूपके ही भजनका उपदेश दिया— निज सिद्धांत सुनावउँतोही।सुनु मन धरु सब तजि भन्न मोही॥ (रामच० मा० ७। ८५। १)

रामचिरतमानसका समापन करते हुए गोखामी तुल्सीदासने मनको भजन करनेके लिये सीख देते हुए कहा है कि इस कलिकालमें रामका स्मरण, कीर्तन, रामगुणश्रवण ही भजन है—

रामहि सुमिरिश गाइश रामहि। संतत सुनिश्न राम गुन प्रामहि॥ ताहि भजहि मन तिज कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥ (रामच० मा० ७ । १२९ । ३,४)

'भक्तिरसायनकार'के अनुसार भगवत्वरूपके भजनसे मन भगवत्वरूप हो जाता है—

भगवान् परमानन्दसह्यः स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकाररसतामेति पुष्कलम्॥
(भक्तिरसायन १।३)

वास्तवमें बुद्धिमान् अथवा पण्डित वही हैं, जो भगवस्वरूपकी भजनीयताके रसमें निमग्न रहता है। भगवान्के भजनसे कितना आनन्द मिछता है, इसका वर्णन भक्तके ही अनुभवमें अभिन्यक्त हो सकता है।

भगवत्स्वरूप अविद्यासे सर्वथा परे है

जानन्ति नैवं हृद्ये स्थितं वै चामीकरं कण्ठगतं यथाद्याः। यथाप्रकाशो न तु विद्यते रवौ ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा। विशुद्धविद्यानघने रघूत्तमेऽविद्या कथं स्यात् परतः परात्मनि॥ (अध्यात्मरा०१।१।२१)

(भगवती सीता हनुमान्जीसे कहती हैं—)—'अपने गलेमें पड़े हुए कण्ठेको न जाननेके समान अपने ही हृदयमें स्थित परमाहमा रामको अज्ञानी जन नहीं जानते (इसीलिये ने उनमें भी अज्ञानादिका आरोप करते अपने ही हृदयमें स्थित परमाहमा रामको अज्ञानी जन नहीं जानते (इसीलिये ने उनमें भी अज्ञानादिका आरोप करते हैं)। जिस प्रकार सूर्यमें कभी अन्धकार नहीं रहता, उसी प्रकार प्रकृत्यादिसे अतीत, निशुद्ध निज्ञानघन, अपेति:स्रक्ष, परमेश्वर परमाहमा राममें अनिधा कभी नहीं रह सकती। (ऐसे शुद्ध-स्वयम्प्रकाश राम ही अपित्य एवं भजनीय हैं)।

भगवत्तत्व एवं सगुणोपासना

(डेलक-पं॰ भीरवीन्द्रकुमारजी पाठक, साहित्याचार्य)

भगवत्तस्य एवं उसके साथ उपासनाके सम्बन्धको यथातथ्य निरूपित करना अत्यन्त दुःसह कार्य है; क्योंकि परमतस्य कुछ प्रतीकोंके द्वारा ही समझा जा सकता है और उपासना कियारूप होती है।

'भगवत्तत्त्व क्या है'—इस विषयमें अनेकों मतान्तरों के होनेपर भी 'मैं हूँ' यह अनुभूति सबको होती है। पुनः जिज्ञासा होती है कि व्यक्ति-विशेषको होनेवाले अहं-तत्त्वका खरूप क्या है! इस जिज्ञासाके बाद अन्तःकरण उस आत्मानुभूतिका जो खरूप निश्चित कर पाता है, व्यक्ति उसे ही आत्मा समझता है। यह खरूप व्यक्ति, मत, सम्प्रदाय, धर्मादि भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारका प्रतीत होता है। भारतीय परम्परामें हम शरीरको ही आत्मा माननेवाले चार्वाकोंसे प्रारम्भकर कमशः मन, बुद्धि तथा ज्ञानािष्ठाता, चैतन्य, आनन्द, विज्ञान आदितकको आत्मा खीकार करनेवाले मतोंका दर्शन करते हैं।

इस अनुभूतिक साथ ही दो और स्थितियाँ जुड़ी रहती हैं। (क) — जिस समय व्यक्ति अपने आत्मखरूपका निश्चय करता है, उसी समय उसके आत्मतत्त्वका प्रवेश एक सूक्ष्मतर एवं गम्भीरतर अवस्था या स्तरमें हो जाता है; यहीं अवस्थित होकर आत्मतत्त्वके अन्तःकरणद्वारा प्रथम अवस्थामें निश्चित आत्मतत्त्वके खरूपका आधार बनता है। यह पहली स्थिति है।

(ख) व्यक्ति किसी छौकिक ज्ञानके साथ-साथ यह भी समझता जाता है कि 'मैं जो जान रहा हूँ, तदितिक कुछ और भी ज्ञातव्य है।' इस प्रकार एक अवस्थामें व्यक्ति खयं ही ससीमसे आगे बढ़ता हुआ असीमको मान लेता है। इस असीम एवं ज्ञेय पदार्यको ही भगवत्तरंत्रके रूपमें स्वीकार किया गया है। यही दूसरी स्थितिका परिणाम है।

इस असीम ज्ञेयतत्त्वकं साथ अन्तःकरणके तारे निश्चयोंके आधारभूत आत्मतत्त्वकं बीच सम्बन्धकं निर्यणं पर्याप्त मतवाद हैं और उनकी व्याख्याएँ भी विभिन्न हैं; तथापि दोनों पदार्थोंकी एक अवस्थामें एकता खीकृत की गयी हैं। उस एकताको छौकिक शब्दों (वैखरी वाणी) द्वारा व्यक्त कर सकना सम्भव नहीं हैं; क्योंकि वातें हो रही हैं असीमकी और यह शब्द है ससीम। यह असीम या परमतत्त्व इतना तेज या वख्युक होता है कि व्यक्तिकी सीमाएँ उसे अन्तर्भुक्त करनें सक्षम नहीं होतीं; फल्टतः व्यक्ति उस परम तत्त्वको भग अर्थात् परम तेज बल्चवाले असीमके खपमें भगवत्त्व मान रहेता है।

संगुणोपासना

'सगुणोपासना' शब्दके परस्पर मिछते-जुब्हते की अर्थ जन-मानसमें प्रचिछत हैं; जैसे देवी-देवताओं के विप्रहोंकी पूजा करना, अपने आराध्यको मानबेकित गुणों—जैसे दया, क्षमा आदि—से युक्त हीका करना इत्यादि इत्यादि।

थोड़ी गहराईमें विचार करनेपर प्रतीत होता है कि
गुणोंका तात्पर्य अन्तः करणके राब्द-(सामान्य भाषां
प्रचित्रत मध्यमा वाणी-) की सामर्थ्यकी सीमासे हैं, कि
सीमाके अनुदूष व्यक्ति उस परमतत्त्वको अपने अतः
करणमें निश्चित करता है या राब्दसे (नामतः) कि
है। सत्त्व, रज, तम एवं इनके सिम्मश्रण स्वार्धि
रूपमें गुणोंकी यह प्रक्रिया अतिसूक्ष्म स्तरसे लेका अपि

श्रृह स्तरतक चलती रहती है—ऐसा प्रायः सभी
भातीय आस्तिक मनीषियोंका मत है। इतना होनेपर
भी गुणों एवं भगवत्तत्वकें सम्बन्धको अनुरूप स्पष्ट
करना सामान्य पदावलीके वशकी बात नहीं है; क्योंकि
ये गुण या सीमाएँ ही माया, अज्ञान एवं अविद्या आदि
नामोंसे जानी जाती हैं, जो व्यक्तिकी अन्तरिन्द्रयों या
बहिरिन्द्रयोंकी क्षमतासे परे हैं। इस प्रकार व्यक्ति उस
पमतत्व या भगवत्तत्त्वको जैसे ही अपने अन्तःकरणकी
सीमित क्षमताद्वारा स्वीकार करता है, वैसे ही अपने
अन्तःकरणके खमाव एवं संरचनाके अनुरूप भगवत्तत्त्वको प्रकाशयुक्त, गतियुक्त आदि मानने लगता है।

निर्गुण मतको स्वीकार करनेवाले भी यही कहते हैं कि जो हम कह रहे हैं वही भगवत्तत्व नहीं है, वह उससे भी परे है और सगुणखरूप माननेवाला भक्त भी कहता है कि 'मैं तुम्हारा वर्णन नहीं कर सकता।' करात्व उपासनाका प्रश्न है, सामान्यतः उपासनाका तार्ण्य भक्ति-पूजा, संध्या-ध्यान-व्रत-होम और स्तुति-क्रनादिसे लिया जाता है।

संक्षेपमें उपासनाका तारपर्य अपने अन्तःकरणकी सीमाको ज्ञात करने एवं उस असीमकी ओर बढ़नेसे हैं। थोड़े विस्तारमें कहा जा सकता है कि अपनी सीमाके ज्ञानके आधारपर तदितरिक्त असीमको अन्तःकरणकी गहरी एवं सूक्ष्म पहलोंसे धीरे-धीरे सीमाओंका पर्यावरण चढ़ाता हुआ व्यक्ति उस तत्त्वको अन्तःकरणके बाहरी एवं स्थूल्तर पहलोंमें लाकर रखता है तथा उसे ही भगवत्तत्त्व समझा करता है। इस प्रकार प्रथम कोटिके आत्मतत्त्व (पूर्वक्षणमें अनुभूत) से द्वितीय कोटिके आत्मतत्त्व (पूर्वक्षणमें अनुभूत) से द्वितीय कोटिके आत्मतत्त्व (पूर्वानुभूतिका आधारभूत आत्मतत्त्व) की ओर बढ़नेकी एवं अन्तःकरणकी ससीमतासे असीम मगवत्त्वकी ओर बढ़नेकी एवं अन्तःकरणकी ससीमतासे असीम

स्थूलतः दृष्टिगोचर होनेवाली संध्या, ध्यान, पूजा, स्तुति, शरीर-शुद्धि आदि सगुणोपासनाकी क्रियाओंका खारस्य इसीमें प्रतीत होता है कि व्यक्ति या साधक धीरे-धीरे अपनी सीमाकी संक्षिप्तताको हटाता हुआ अपने आत्मतत्त्व एवं भगवत्तत्त्वकी ओर बढ़े । शास्त्रानुसार एक अवस्थामें यह सीमा, अज्ञान या त्रिगुणका पर्यावरण जब हट जाता है, तब आत्मतत्त्व एवं भगवत्तत्त्वके बीच कोई मेद नहीं रहता।

'मैत्रीकरणामुदितोपेशाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्'को मान लिया जाय तो स्पष्ट है कि
उस परमतत्त्रको कृपालु, दयालु, सर्वसमर्थ आदि
मानना तथा उसके प्रति तदनुरूप आचरण करना
अन्तःकरणकी संकीर्णताकी सीमासे मुक्त करना है।
बहु परमतत्त्व सर्वसमर्थ होनेके साथ सर्वरूप है, यह
मानकर पुनः उसे दयालु खीकारकर उस सर्वरूप जनार्दनके प्रति विश्वास करना एवं कृतज्ञता ज्ञापित करना किस
समाजके लिये कल्याणकारी न होगा। एवमेव दान,
होम आदि स्थूल पदार्थोमें भ्रमवश आरोपित तादास्यापत्तिको हटाना है; स्तुति, ध्यान, मानस-पूजा, भगवज्ञामजप, लीला-चिन्तन आदि बुद्धि आदिके विकारों एवं
चाच्चल्यको दूर करना एवं उनकी सामर्थ्य-वृद्धि करना
है। इस प्रकार क्रमशः परमतत्त्वके साथ तादात्म्य
स्थापित करनेकी प्रक्रिया ही सगुणोपासना है।

हम देहधारियोंके लिये भगवत्तत्त्वकी सगुणोपासना खभावानुकूछ एवं सर्वथा हितकारी होनेके साथ-साथ परमकर्तव्य भी है। निर्गुण और सगुणका मतवाद तो केवल नाम एवं रूपका मतवाद है; क्योंकि वह परमक्तव न निर्गुण है न सगुण; वह तो केवल वही है। हाँ, उसे प्राप्त करने, अपने जीवनकी लक्ष्य-सिद्धि करनेके लिये सगुणोपासना ही सामर्थ्यशालिनी है और इसीलिये वह हमारे लिये अनुष्ठेय है।

भगवत्तत्व और मूर्तिपूजावाद

(लेखक—पं० श्रीआद्याचरणजी झा, न्याकरणसाहित्याचार्य)

निर्गुण-निराकार-सिचदानन्द परमात्माक ही ये सारे विस्तारवाद-सृष्टिक्रम एवं सम्पूर्ण दश्य जगत् हैं, इसमें कोई वैमत्य नहीं, किंतु भगवदुपासना तथा भगवत्त्त्वको समझनेके लिये एक कोई आधारभूत वस्तुकी अनिवाय अपेक्षा है, जहाँ चित्तको एकाग्र किया जा सके। भारतीय-सनातन-विचारधारा ऐसी वैज्ञानिक पद्धतिपर आश्रित है, जिसके मार्गमें न कहीं अवरोध है न कोई विवाद। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छानुसार अपने किसी भी प्रियतम पदार्थ, पर्वत-नद-नदी-सिर्ति, वृक्ष-गुल्म-ल्ता, पद्य-पक्षी (हिमालय, विन्ध्य, सुमेरु आदि; गङ्गा, गोदावरी, नर्मदा, यमुना आदि; अश्वत्थ, विल्य, तुल्सी आदि; गौ, गज, अश्व, सिंह आदि तथा गरुड, नीलकण्ठ, क्षेमकरी आदि)से लेकर किसी भी अवतारको, किसी भी तीर्थ-स्थानको अपनी उपासना-एकाग्रताका साधन बनाकर अपने उच्चतम साध्यतक पहुँच सकता है।

इतना विशाल-उदार राजमार्ग अपने लक्ष्यपर पहुँचनेके लिये शायद ही त्रिक्वमें कहीं देखा गया हो। किसी भी मूर्ति (साकार रूप)में अपने ध्यानको केन्द्रित करते हुए उसी मूर्ति-सरणिद्वारा उस सिन्चदानन्द परालप परब्रह्मके समीपतक सरलतासे पहुँच सकता है। जो विभिन्न धर्मावलम्बी मूर्तिपूजावादके विरोधी हैं, वे भी गिरिजाघर आदिमें निश्चित दिशाकी और मुँहकर निश्चितरूपको लक्ष्य मानकर ही उपासना करते हैं।

यथार्थतः ईसाई आदि धर्मावल्यियोसहित विभिन्न समाजियोंका मूर्तिपूजाविरोध नितान्त हास्यास्पद ही है; क्योंकि ये लोग भी अपने श्रद्धेय पुरुषोंके चित्रों, मूर्तियोंकी पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं तथा उनका प्रचार भी करते हैं। परिणामतः मूर्तिपूजावाद ही भगवत्तत्त्वका सर्वप्रयम् निरापद-ऋजु-सुदृढ़ सोपान है, जहाँ कोई तर्क-विवाद या वैमनस्य नहीं है।

भगवत्तत्व-प्राप्तिमें नामजपकी उपादेयता

(लेखक—डॉ॰ श्रीभागीरथप्रसादजी त्रिपाठी, 'वागीदा' द्यास्त्री)

इस जड जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाळी कोई सूक्ष्म, अव्यक्त, अक्षर और कूटस्थ महाशक्ति अवश्य विद्यमान है, जिसके कारण यहाँ चेतनाका साक्षात्कार हो रहा है; सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रपुञ्ज और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका नियमन हो रहा है। दश्यमान इस स्थूळका विळय आदिकारण, जगन्नियन्ता उसी सूक्ष्म तत्त्वमें हो जाता है, जहाँसे यह उद्भूत हुआ था। पृथ्वी अपने सूक्ष्म कारण जलमें, जल अपनेसे सूक्ष्म अग्निमें, अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें विलीन हो जाती है। इसी प्रकार आकाश अव्यक्तमें और अव्यक्त परावर महाशक्तिमें विलीन हो जाता है। इसी महाशक्तिको निष्कल ब्रह्म, परमेश्वर, परमारमा इस्यादि अनेक अमिधानोंसे समरण किया जाता है—

जगत्मतिष्ठा देवपं पृथिन्यप्सु प्रलीयते। ज्योतिष्वापः प्रलीयन्ते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते॥ खे वायुः प्रलयं याति मनस्याकारामेव च। मनो हि परमं भूतं तद्वयक्ते प्रलीयते॥ अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन् निष्कले सम्प्रलीयते। नास्तितस्मात् परतरः पुरुषाद् वैसनातनात्॥

(महाभारत १२ । ३३९ । २९-३१)
यह व्यक्तसे अव्यक्त और स्थूछतासे सूक्ष्मताकी
ओर जानेकी प्रक्रिया है । स्थूछके बिना सूक्ष्मताकी
पहुँचना दु:शक्य है । जड शरीरका आधार लेका
सूक्ष्म आत्माका ज्ञान एवं साक्षात्कार सम्भव है । सूक्ष्म
तथा सर्वत्र व्याप्त परब्रह्मके ज्ञानके लिये शब्दाकी
(शास्त्र)का आश्रय लेना आवश्यक है । प्राणीम

हे इसर्णी वेदितच्ये शब्द इस्य परं च यत्। शब्द इस्यणि निष्णातः परं इस्याधिग च्छिति॥ शब्द इस्यों नैपुण्य-प्राप्ति अर्थात् शास्त्रपारंगत (विष्णु०६।५।६४)के अनन्तर ही उस प्रवस्त्रमा साक्षात्कार होता है, जो अन्यक्त, अजर, अचित्त्य, अज, अन्यय, अनिर्देश्य, अरूप, पाणि-पादरहित, विस्, सर्वगत, नित्य, भूतयोनि, अकारण तथा सर्वत्र व्याप्त है। योगी ध्यानमें उसका साक्षात्कार करते हैं। वही भगवान् विष्णुका अति सूक्ष्म परम पद है। प्रमात्माका वही स्वरूप 'भगवत्' शब्दका वाष्य है। यह 'भगवत्' शब्द उस आध एवं अक्षय परमात्माके सहपका वाचक है—

तदेव भगवद्धाच्यं खरूपं परमात्मनः। वाचको भगवच्छन्द्स्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः॥ (विष्णुपुराण ६।५।६९)

वक्त खरूपवाले उस परमात्माक तत्त्वका जिस विद्याके द्वारा वास्तविक ज्ञान होता है, वह परा विद्याके नामसे प्रसिद्ध है। त्रयीमय ज्ञान 'अपरा विद्याके नामसे जाना जाता है। यद्यपि परब्रह्म शब्दका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये उसे 'भगवत्' शब्दसे अभिहित किया जाता है। त्रिविध गुण और उनके क्लेश इत्यादिको छोड़कर ज्ञान, शक्ति, वल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इत्यादि सद्गुण ही 'भगवत्' शब्दके अर्थ हैं—

श्वानशक्तिबळैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छन्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥

(विब्णुपुराण ६ । ५ । ७९)

भगवत्तत्त्व-साक्षात्कारके लिये ध्यान लगाना आवश्यक है। भगवान् ध्यानगम्य हैं। किंतु प्रश्न उपस्थित होता है कि ध्यान कहाँ और कैंसे लगाया जाय! भगवन्नामके जप और भगवान्के खरूप-चिन्तनसे समरण बनता है। अतः शास्त्रोंमें स्पृति या समरणका अर्थ ध्यान किया गया है। भगवन्नाम-जप अथवा मन्त्र-जपके द्वारा साधक या भक्त क्रमशः स्थूछतासे सूक्ष्मताकी ओर अप्रसर होता है। जपके चार प्रकार हैं—१-कीर्तन-या संकीर्तन (स्थूछ जप), २-माछापर गुनगुनाते हुए जप (सूक्ष्मत), ३-उपांगुजप (सूक्ष्मतर) तथा ४-मानसजप (सूक्ष्मतम)। पाणिनीय जप धातु दो अथोंमें दृष्टिगोचर होता है—१-जप व्यक्तायां वाचि तथा २-मानसे । व्यक्त वाणीकी कोटिमें कीर्तन संकीर्तन एवं माछापर गुनगुनाते हुए जप एवं उपांगु जप आते हैं। मानसजपसे मध्यमा वाणीकी स्थिति व्यक्त होती है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें 'सततं कीर्तयन्तो माम्'(९।१४)के द्वारा स्थूल जपकी और संकेत किया गया है।
श्रीमद्भागवतमें उसी वाणीकी प्रशंसा की गयी है, जिसके
द्वारा भगवद्गुणोंका कीर्तन किया जाय—'सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते (श्रीमद्भा०१०।८०।३)।' गोपियों मन, कर्म और वचनसे भगवान् श्रीकृष्णका गुणगान करती हुई इस प्रकार तन्मय हो जाती थीं कि उन्हें अपने घर-द्वारका भी ध्यान नहीं रहता था—

तन्मनस्कास्तदाळापास्तद्विचेष्टास्तदारिमकाः । तद्गुणानेव गायन्त्यो नारमागाराणि सस्मरुः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३० । ४४)

जपकी यह विधा समष्टिकी उपकारक है। उपनिषद्,
महाभारत, पुराण तथा तन्त्र-प्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर
इसकी विधि और महिमा वतायी गयी है।
'यञ्चानां जपयन्नोऽसिंग' (श्रीमद्भगवद्गीता १०। २५)के द्वारा जपको भी यज्ञकी श्रेणीमें रखा गया है तथा
अन्य यज्ञोंसे इस जपयज्ञको श्रेष्ठ बताया गया है। यह जप
जैसे-जैसे स्थूलसे सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होता
जाता है वैसे-वैसे इसकी गुणवत्ता बढ़ती जाती है।
मनुस्मृति-(२। ८४)के अनुसार विधियज्ञसे जपयज्ञ
दस गुना, उपांशुजप सी गुना तथा मानसजप हजार
गुना श्रेष्ठ माना गया है—

विधियक्षाज्जपयक्षो विशिष्टा दशिभर्गुणैः। उपांशुः स्थाच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥ अस्पुटोच्चारित वाणीद्वारा किया गया उपांशुजप ही सूक्ष्म होक्तर मानसजप बनता है। इसे शास्त्रोमें 'स्मरण' कहा गया है। इसमें नाम अर्थक रूपमें परिवर्तित हो जाता है। नत्रधाभक्तिक प्रकारोंमें यह अन्यतम है— अर्थलं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्थनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

इस क्लोकमें कीर्तनद्वारा वाणीक मुखोच्चरित स्थूल रूपका तथा समरणद्वारा वाणीके हृदुच्चरित सूक्ष्म रूपका संकेत दिया गया है। शतपथन्नाह्मणके—'मनो वै सरस्वान् वाक् सरस्वती' (७।५।१।३१)में स्थूल वाणीका हृदुचरित आधार दिखाया गया है। अथववेदमें इसे यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा (५।७।५)के द्वारा अभिन्यक्त किया गया है।

श्रुतिमें 'श्रोतच्यो मन्तच्यो निदिध्यासितच्यः'के द्वारा १ —कथा अथवा भगवद्गुणोंका श्रवण, २ —मनन तथा ३ —निदिध्यासनका क्रम वताया गया है। श्रीमद्भागवतमें श्रवणके अनन्तर कीर्तनको भी आवश्यक समझा गया है—

तसात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा। श्रोतन्यःकीर्तितन्यश्चसर्तन्यो भगवान् नृणाम् ॥ (२।२।३६)

मननका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये श्रीमद्भागवतके उक्त रलोकमें 'स्पर्तव्यः'का प्रयोग किया गया है। निरन्तर मानस-जप करते रहनेवाले भक्तको भगवान् स्रूलभ हो जाते हैं। ऐसे जपकर्ताको नित्ययुक्त योगी कहा गया है—

अनन्यचेताः सततं यो मां सारति नित्यशः। तस्यादं सुलभः पार्थ नित्यगुक्तस्य योगिनः॥

्रांता ८। १४) भगवान् श्रीकृष्णके चरणारिवन्दोंके समरण अर्थात् मानस-जपसे तो अन्तःकरण-श्रुद्धि, भगवान्की भक्ति तथा विज्ञान-वैराग्ययुक्त ज्ञान प्राप्त होता ही है; इसके अतिरिक्त योगसाधनाके द्वारा जो सम्बद्धिः मिळती है, उसे वह भी अनायास उपलब्ध हो जाती है— अविस्मृतिः इज्जिपदारचिन्दयोः सिणोत्यभद्राणि रामं तनोति च।

सत्त्वस्य ग्रुद्धि परमात्मभक्ति झानं च विज्ञानविरागगुक्तम्॥ (श्रीमद्भा० १२ । १२ । ५४)

श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रायः सर्वत्र भगवान्के साण और अनुस्मरणपर बहुत बल दिया गया है, जैसे— 'मामनुस्मर युध्य च' आदि। प्रह्लादने तो भगवत्त्वरूपके अनुस्मरणसे गद्गद होकर भगवान्से प्रार्थना की है कि अविवेकियोंकी जैसी अविचल प्रीति विषयोंमें बनी रहती है, आपका अनुस्मरण करते हुए आपके प्रति वैसी ही प्रीति मेरे हृदयसे कभी न हटे—

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिती। त्वामजुसारतः सा मे हृद्यान्नापसर्पतु॥ (विष्णुपु०१।२०।१९)

नाम-स्मरण तथा अनुस्मरण करते-करते साधक ध्यानकी सहज अवस्थाको प्राप्त कर लेता है। समें सूक्मतर होकर साधकरें हृद्चरित वाणी क्रमशः भगवान्की दिव्य ज्योतिका आलोक भर देती है। नाम-जपकी यह स्थिति सबको सुलभ नहीं हो पाती। आंजनेय ह्नुमान् भगवान् रामके स्वरूपका सतत स्मरण किया करते थे। सीता-गवेषणाके प्रसङ्गमें जब तपःपुञ्जा नारीने वानरोंको 'मूँदहु नयन विवर तिजाई' का आदेश दिया, तत्र नयन-निमीछन करनेपर हुदु^{ब्रात} वाणीने क्रमशः सूरुमतर होकर हनुमान् जीको ध्यानाविशत कर दिया। उनका दैहिक कार्य यद्यपि यन्त्रवत् च रहा था, तथापि बाह्यज्ञान न रहनेके कारण बानरों और सम्पातीके वार्ताकापसे वे अनिमञ्ज बने रहे। फर्का सम्पाती-द्वारा संकेतित अशोकवाटिकामें न पहुँचका 'मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा'के अनुसार वे व्य

प्रयेक घरमें सीताजीको खोजते रहे । हृदयदेशमें हो रहा नामजप सूरमतर होकर स्वरूपदर्शनमें परिणत हो गया। वह स्त्ररूपदर्शन नाभिदेशमें स्थित पश्यन्ती वाणीक ग्रियमसे सम्पन्न होता है। पश्यन्तीका अर्थ है—-दर्शन अयवा ज्ञानालोक विखेरनेवाली वाणी । योगशास्त्रके अनु-सार नाभिदेशमें अवस्थित समान वायुपर संयम-द्वारा विजय का हेनेसे साधकमें प्रतिभाका प्रकाश छूट पड़ता है--'समानजयाज्ज्वलनम्' (योगद्र्यन)

जिस प्रकार चलनीसे सत्त् छाना जाता है, उसी प्रकार धीर--ध्यानवान् व्यक्ति वाणीको छानते हैं--सक्तिमव तितउना पुनन्तो धीरा मनसा वाचमकत' (ऋ०८।२। ३, निरुक्त ४।२) । ध्यानद्वारा इनी हुई नाभिदेशमें स्थित यही सृक्ष्मतर वाणी (नाद) भगवस्वरूपको प्रकाशित करती है । ऋषि इसीका आश्रय लेका मन्त्रद्रष्टा बनते थे और मुनि ज्ञानकी अजस धारा

बहाते थे। 'शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति' के अनुसार साधक शब्दब्रह्ममें निष्णात होकर परा वाक -परब्रह्मको प्राप्त करता है । जपसे भिन्न पूर्वजन्मके अभ्यासकी एक दूसरी भी अवस्था है, जिसमें साधक परामें अर्थात् शब्द-ऋसे परे चला जाता है---

पूर्वाभ्यासेन तेनैव द्वियते ह्यवशोऽपि सः। जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥ (गीता ६।४४)

क्रमशः स्थूलसे मूक्स तत्त्वकी ओर अप्रसर होनेके लिये भगवत्तत्त्व समझकर साधकको भगवनाम-जपके अभ्यासकी नितान्त आवश्यकता है। यदि उसे योग्य गुरुके निर्देशनके अभावके कारण इस जन्ममें भगवान्का साक्षात्कार हो सका तो इस जन्मके अभ्यासके कारण अगले जन्मोंमें सफलता अवस्य प्राप्त होगी। अतः प्रत्येक व्यक्तिको नामजप करना परम कर्तव्य है।

अंद अनुका अनेत और दिन् जेन भगवत्तत्व और भगवन्नाम

(लेखक—श्रीकृष्णकान्तजी वत्र) सृष्टिके प्रारम्भसे ही तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्राणी ठालायित रहा है । स्वयं ब्रह्माजीने तत्त्वकी प्राप्तिके **बिये प्रयास किया और तपके द्वारा उन्हें** भगवत्तत्त्वकी प्रीप्ति हुई । भागवत २ । ९के अनुसार भगवान्ने उन्हें बताया कि मेरे अतिरिक्त जगत्में और कुछ नहीं है। अजन्मा, अजर, अनादि, अद्वितीय, त्रिशुद्ध, सदा एक हप, चिन्मय संकल्परहित, सत्यख्रद्भप वस्तु परमात्मतत्त्व है। इसी तत्त्वकी पूर्ण जानकारीमें मानव-जीवनकी सायंकता है। भगवती श्रुति कहती है—

१६ चेदवेदीदथ सत्यमस्ति

न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (केनोपनिषद् २ । ५)

रस जीवनमें मनुष्यने ज्ञानद्वारा यदि परमात्मतत्त्रको नान लिया, तब तो उसका जीवन सार्थक है, अन्यथा वड़ी भारी हानि है। वह परमारमा ही सनने योग्य, मनन करने योग्य और ध्यान करने योग्य है। उपनिषद्के वचन हैं—

मन्तव्यो निद्ध्यासितव्यः।' श्रीतव्यो (बृहदा० ४ । ५ । ६)

निदिच्यासनको तत्त्व-साक्षात्कारका उपाय कहा गया है। क्वेतास्वतरोपनिषद् (२।८।१४)में भी इस बातकी पुष्टि की गयी है । ईशावास्योपनिषद्के अनुसार — 'अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतन-खरूप जगत् है, यह समस्त ईस्वरसे न्याप्त है । अतः सांसारिक पदार्थींका त्यागपूर्वक रक्षण-उपयोग करो, उनमें आसक्त न होओ; क्योंकि भोग्य-पदार्थ किसका है ! अर्थात् किसीका भी नहीं—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन मुर्जीथा मा गृधः कस्यसिद् धनम् ॥ (ईशावास्योप॰ १।१) जो साधक तत्त्वको पहचानकर अपने दृढ निश्चय-द्वारा संसारके अस्तित्वको खीकार न कर अपने खरूपमें स्थित रहते हैं, उन्हें विष्णुदेवके उस दिब्य परमपदका जो युल्लोकमें विश्वके चक्षुके रूपमें विस्तृत है, उसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त होता है—

'तद्विष्णोः परमं पदं सद्। पद्यन्ति स्र्यः। दिवीव बक्षुराततम्।तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥' (ऋग्वेद १।२२।२०-२१)

श्रीमद्भागवतके अनुसार ज्ञाता और ज्ञेयके मेदसे रहित अखण्ड अद्वितीय सचिदानन्दखरूप ज्ञानतत्त्व 'परमात्मा' या 'ब्रह्म' और 'भगवान्'के नामसे अभिहित हुआ है। (१।२।११) ब्रह्मसूत्रमें भी कहा गया है— 'जिससे इस विश्वकी सृष्टि-स्थिति और प्रलय होते हैं, वही 'परमात्मा' है ।' तैत्तिरीयश्रुति (३ । १) भी यही कहती है। कठोपनिपद् (१।२।१४)के अनुसार मनुष्यकी हृदयगुफामें स्थित अङ्गुष्ठमात्र आत्मा भूत, भविष्य और वर्तमानका नियामक है । वह निर्भूत तेजके समान है । बही नित्य एवं सनातन है । उस परब्रह्मके तेज और खरूपका विवेचन करते हुए मुण्डकोपनिषद्की श्रुति कहती है—'वह निर्मल, निर्विकार, अवयवरिहत, अखण्ड परमात्मा प्रकाशमय परमधाममें विराजमान है । वह सर्वथा विशुद्ध और समस्त प्रकाशयुक्त पदार्थोंके भी प्रकाशक तथा आत्मज्ञानियों द्वारा ज्ञेय है। उसी सत्यखरूप आत्माके प्रसादसे खर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है। सूर्य भी उसी सत्यके प्रतापसे तपते हैं और चन्द्रमा भी सत्यके प्रतापसे जगत्को आनन्दित करते हैं---सत्येन गम्यते खर्गों मोक्षः सत्येन चाप्यते। सत्येन तपते सूर्यः सोमः सत्येन रज्यते॥

(वराहपु॰ १३९ । ५३)
यजुर्वेदमें उसी सत्यके दर्शनकी आज्ञा दी गयी है—
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पृथन्नपाचुणु सत्यधर्माय दृष्टये॥
(यजु॰ ४० । १५)

भोनेके पात्रसे सत्यका मुख ढका हुआ है। हे पूर्वादेव ! मुझ सत्य धर्मोंको उस सत्यका दर्शन हो सके इसके लिये आप उस आवरणको हटाइये। स्कन्दपुराणमें भगवान् शंकर यमराजको आत्मज्ञान का उपदेश देते हुए कहते हैं—शुद्र अन्तःकाणके द्वारा मनुष्य खयं ही अपने आत्माका चिन्तन करे, व ही आत्मारूपसे सब प्राणियोंके भीतर स्थित हूँ। व नित्य सत्तायुक्त और व्यवधानशून्य हूँ, सर्वातीत भावगम्य तत्त्वको जानकर ज्ञानी पुरुष समतायुक्त बुद्धिसे व्यवहार करते हैं और केवल बौद्धस्तरूप अपने आत्माको भूल जानेके कारण जीवसमूह संसार-वन्धनमें बँघे हुए देखे जाते हैं। ब्राह्मखण्ड सेतु-माहात्म्यमें श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जीको उपदेश देते हुए कहते हैं- 'अञ्जनानन्दन ! तुम शोक रहित अद्वैत ज्ञानमय सत्यस्वरूप निर्मल परम्रह्म परमात्माका दिन-रात चिन्तन करो, ऐसी दृष्टि होनेपर तुम्हारा किया हुआ प्रत्येक कर्म मेरा किया हुआ है और मेरा किया हुआ प्रत्येक कार्य तुम्हारा किया हुआ है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि
प्रकाशास्त्रक्तप परमात्मतत्त्वके सिवाय जगत्में और कुछ नही
है। जैसे जलाशयमें आकाशके तीन भेद दिखायी देते
हैं—एक महाकाश, दूसरा जलावच्छिन आकाश और
तीसरा प्रतिविम्ब आकाश, इसी तरह चेतन पुरुष भी तीन
प्रकारका है। एक बुद्ध्यवच्छिन चेतन (जो बुद्धिं
व्याप्त है), दूसरा परिपूर्ण और तीसरा चेतन बुद्धिं
प्रतिविम्बत आभास चेतन। इसमें केवल आभास
चेतनके सिहत बुद्धिमें ही कर्तव्य है, किंतु अङ्गजन
आत्निवश निरवच्छिन निर्विकार साक्षी आत्मामें कर्तव्य
और जीवत्वका आरोप करते हैं।

राश्चोंके अनुसार यह सारा जगत् बहा ही है। क्योंकि यह ब्रह्मसे ही उत्पन्न होता है, ब्रह्ममें ही बीन होता और ब्रह्मसे ही जीवन धारण करता है। इस संकल्पमय जगत्का नाश संकल्प-स्पागसे हो जाता है। आगाको आकाशके समान अनन्त और व्यापक जानकर प्रमामके वास्तविक खरूपका निरन्तर चिन्तन करना ही तत्वज्ञ पुरुषोंके मतमें कल्पनाका त्याग कहलाता है। स्रीलिये तारिक्क ज्ञानका आश्रय लेनेवाले आसक्तिरहित महालाके हृदयमें सम्पूर्ण कर्म करते हुए भी कहीं कभी कर्तव्यापन नहीं होता। कर्तव्यमान न रहनेसे अभोक्तृत्वकी सिद्धि होती है और भोक्तृत्वके अभावसे समता और एकताकी सिद्धि होती है। उस समता और एकतासे अनन्तताकी सिद्धि होती है तथा उससे अनन्त नित्य विज्ञान आनन्दघन ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

वासनाके द्वारा ही जीव बन्धनमें पड़ता है। बासनाएँ तीन प्रकारकी होती हैं। लोक-वासना, शाब-त्रासना और देह-वासना । अन्त:करणमें स्थित बो मनको वृत्ति है, उसका यह निश्चय कि अमुक वस्तु प्रह्ण करने योग्य है; इसका विश्वास वासना क्हलाता है । वह वासना ही कर्तव्य शब्दसे प्रति-पादित होती है, क्योंकि वासनाके अनुसार ही मनुष्य चेष्टा करता है और चेष्टाके अनुसार ही वह फल भोगता है । तत्त्व-ज्ञानी सोता हुआ भी आत्मज्ञानमें जगता रहता है और वह जागता हुआ भी संसारसे उपरत हिता है। ब्रह्मतत्त्वको जान लेनेपर विद्वान्को पूर्ववत् संसारपर आस्था नहीं रहती । अतः साधक सबके साक्षी और ज्ञान-खरूप आत्मामें अपने शुद्ध चित्तको लगाकर धीरे-धीरे निरुचलता प्राप्त करता हुआ अन्तमें सवत्र अपनेहीको परिपूर्ण देखे। इसी स्थितिको प्राप्त करनेके लिये निरन्तर प्रयास करना मानवका कर्तव्य है। भगवत्-प्राप्तिके विषयमें स्वेतास्वतर उपनिषद्के छठे अध्यायके १३ वें मन्त्रमें कहा गया है—'तत्कारणं तांक्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपारीः।

भगवस्त्राप्तिके साधन सांख्य और योग हैं, उनके द्वारा भगवत्तत्त्वको जानकर ही मनुष्य सब बन्धनोंसे मुक्त होकर शान्तिको प्राप्त होता है। भगवद्गीता (३।३) में भी सांख्य और योगका दो खतन्त्र निष्ठाओंके रूपमें वर्णन किया गया है---श्रीमद्भागवतमें सांख्य और योगका समस्त सार बताते हुए इंसरूपमें भगवान् कहते हैं कि इस संसारमें मेरे सिवा कुछ नहीं है। तत्त्वदृष्टिसे यों समझो कि मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा दूसरी इन्द्रियोंसे जो कुछ प्रतीत होता है वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन और कुछ वस्तु है ही नहीं। अतः भगवत्तत्त्वकी प्राप्तिके लिये सर्वत्र भगवान्को आत्मरूपको देखना साधकका प्रथम कर्तन्य है। इस कार्यकी पूर्ति-हेतु भगवान् कृष्ण उद्भवसे कहते हैं 'समस्त कर्म मुझे समर्पित करनेसे और कर्म करते हुए मेरे नामका जप करनेसे इष्टकी प्राप्ति होती हैं भगत्रान्के नामकी महिमा अपार है। गोखामी श्रीतुल्सीदासजी लिखते हैं--

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाक। किल विसेषि नहिं भान उपाक॥ नाम छेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु विचारु सुजन मन माहीं॥ वेद पुरान संत मत पृहू। सकल सुकृत फल नाम सनेहू॥

मनुष्य भगवान्के नामके उच्चारण करनेमात्रसे ही कलिसे तर जाता है—'भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोचारणमात्रेण निर्धृतकलिभैवति ।' (कलिसंतरणोपनिषद्)

बृहनारदीय पुराणमें भी इस बातकी पृष्टि की गयी है कि मक्सागर पार होनेके लिये नामजप ही आक्स्यक है (३८। ११०)। ऋग्वेद (१।८९।८) तथा सामवेद (उ०२१।१।२)में भी भगवन्नाम सुनने और कीर्तन करनेका महत्त्व बताया गया है— भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम। अथवेवेदमें भगवान्के यशको सुननेका आदेश दिया गया है— भद्रं रुलोकं श्रूणासम्। (१६।२।४)

गीता (१० । २५)में भगवान् खयं कहते हैं कि
में जपयज्ञ हूँ । अग्निपुराणमें जपकी न्युरपत्तिमें कहा
गया है— 'जन्म और जन्मके हेतु पापका नाश करनेके
कारण इसे 'जप' कहा जाता है ।' जपमें किसी मन्त्रको
या नामको उसके अर्थकी भावना करते हुए बारबार
भीतर-ही-भीतर दोहराया जाता है । जपके द्वारा मनुष्य
प्रभुको सरखतापूर्वक प्राप्त कर लेता है ।

विष्णुपुराणमें कहा गया है कि जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं, उन सबमें भगवान् कृष्णका स्मरण ही महान् प्रायश्चित्तं है। वामनपुराणमें जपकी महिमा वताते हुए वताया गया है कि जिस भाग्यशाली मनुष्यकी जिह्वापर हरि इन दो अक्षरोवाला भगवान्का नाम विराजमान रहता है, उनके लिये गङ्गा, गया, सेतुबन्ध-रामेश्वर, काशी एवं पुष्कर तीर्थका कोई महत्त्व नहीं है । बाइबिलमें भी नामका महत्त्व है। दसवें रोमनकी तेरहवीं धारामें कहा गया है- 'जो लोग प्रभुका नाम लेंगे, वे मुक्त हो जायँगे। प्रत्येक नामका अर्थ वह परमारमा ही है। प्रत्येक नाम उनका वाचक है और वे ही प्रत्येक नामके वाच्य हैं। नामोंका शाब्दिक अर्थ पृथक्-पृथक् प्रतीयमान होनेपर भी तात्पर्यार्थ वही एक अद्वितीय सर्वकारण सर्वमङ्गलालय, अनन्त गुणाधार, अनन्त करुणा-महार्णव, परम तत्त्व है । वे ही विश्वकी आत्मा हैं, सब जीवोंकी आत्मा हैं।

नाम और रूपसे ही जगत्की समस्त वस्तुओंका बोध होता है। नाम और रूप प्रभुका ही खरूप है, इसीळिये गोखामीजीने कहा है कि—

'नाम रूप दोउ ईस उपाधी'आदिके अनुसार नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है । परब्रह्म परमात्मा राम जो काम नहीं कर सके, वह काम उनके नामके प्रभावसे हुआ है । नामकी ताकत ब्रह्मरूप होनेके कारण बहुत अधिक हैं । जपके द्वारा ही आजतक महापुरुयोंने भगवान्को पाया है और आत्मदर्शन किया है। जपके तीन प्रकार है, पर मानसिक जपका महत्त्व अधिक है। जप और जानसे ही योगकी सिद्धि होती है। योगके द्वारा ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है तथा तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेपर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयकी त्रिपुटिको नष्ट कर साधक अपने खरूपों स्थित हो जाता है। सांसारिक और पारलंकिक सुखकी प्राप्ति भी जपके प्रभावसे सुलभ हो जाती है।

जप करते-करते साधक जिस नामका जप करता है वह उसके तदाकार हो जाता है। भगवनामके जपका प्रभाव अनन्त है, इसके प्रभावसे, भंगवान्के अनुप्रहसे साधकको यह ज्ञान होता है कि संसारमें प्रकृति कार्य करती हैं और भगवान उस प्रकृतिको इच्छानुसार नचाते हैं । प्रकृति भी भगवान् है, प्रकृति और भगवान्में कोई अन्तर नहीं है। इसी बातको साधक अपने जपके रूपके अनुसार सीताराम, राधाकृष्ण, शिवाशिव या अन्य शक्ति और शक्तिमान्के रूपों देखकर प्रसन्न होता है। सीयराममय जगत् देखनेके कारण साधक प्रकृतिको सीता और प्रकृतिप्रेरंकको राम सम्बक्त प्रसन्न हो जाता है। अपना अस्तित्व नष्ट कर प्रभुको आत्म-समर्पण करनेके बाद साधक इस स्थितिको प्रांत हो जाता है । जपके प्रभावसे ही प्रभुकृपाके द्वारा साधककी यह ज्ञान होता है कि प्रकृति और पुरुषके रूपमें एक भगवान् ही विराजमान हैं। अतः वह अपने भगवान्की झाँकीको हर जगह निहारता है। संसारके प्रत्येक रूप्^{में}, प्रकृतिके प्रत्येक कार्यकलापमें वह अपने प्रमुको निहाक आनन्दित होता है। जपके प्रभावसे ही उसे यह भान होता है कि मैं खयं भगवान्का रूप हूँ, फिर तो वह मनही मन अपने और भगवान्की एकताका अनुभव करताहै।

अतः आस्मानन्द प्राप्त कर परमानन्दके सागरमें अपनी अस्तित्व समाप्त कर तल्लीन होनेके लिये जपकी विशेष आवश्यकता है।

ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें असृतमय जीवनका पथ

(देखक - प्रो॰ श्रीइन्द्रदेवसिंहजी आर्य, एम्॰ एक्॰ सी॰, एम्॰ ए॰, एल् एल् बी॰, साहित्यरत्न)

'तैतिरीय ब्राह्मण'में यह कथा आती है कि महर्षि भंदाजने अपना सम्पूर्ण जीवन वेदाध्ययनसे तपोमय बना ह्या। उनके तपसे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र प्रकट हुए और उन्होंने महर्षि भरद्वाजसे पूछा—'महर्षे ! यदि भापका एक और जन्म प्राप्त हो तो आप क्या करेंगे ! क्रिंपेन उत्तरं दिया कि मैं उस जीवन में भी तप और बेताध्यम करूँगा। गतब देवराज इन्द्रने पुनः प्रश्न किया क महर्षे ! यदि आपको तीसरा जन्म भी मिले तो आप क्या करेंगे !' भरद्वाजने कहा—'मैं फिर तप और **बेरोंका खा**च्याय करूँगा ।' तब इन्द्रने भरद्वाजके समक्ष तीन पर्वत प्रकट किये । इन्द्रने प्रत्येक पर्वतसे एक मुटरीभर पंथर लेकर कहा—भरद्वाजजी ! आपने आजतक जो अध्ययन किया है और आगेक जन्म-जन्मान्तरोंमें बो कुछ अध्ययन करेंगे वह इन विशास पर्वतोंकी तुलनामें ल ट्यु प्रस्तरोंके तुल्य हैं। वेद तो अनन्त हैं— 'अनन्ता वै वेदाः' (तेत्ति० ब्रा० ३ । १० । ११ । ४)।

तथापि वेदोंकी इस अनन्त ज्ञानराशिक मूलमें एक ऐसा सूत्र भी है, जिसके अनुसार आचरणसे मनुष्य एक ही जन्म क्या, एक क्षणमें ही समस्त वेदोंके सारको ज्ञान सकता है। वह सूत्र है—आत्माको ईश्वर ज्ञान लेना। वेद खयं कह रहे हैं कि परमात्माक यथार्थ सहस्को बतलानेके अतिरिक्त वेदोंका कोई अन्य प्रयोजन नहीं है और जो पुरुष, चाहे वह वेदोंका कितना ही बड़ा विद्वान् क्यों न हो, ईश्वरमें श्रद्धा नहीं खा, उसका समस्त वेदाध्ययन निष्फल ही है—

पत्तन वेद किस्चा करिष्यति'(ऋग्वेद १। १६४। ३९)।

भारतके प्राचीन ऋषियोंने ज्ञानके महाससुद्रका

विदेशा मन्थन किया है; उन्होंने न केवळ आध्यास्मिक

दिन्य तत्त्वोंको, अपितु सृष्टि-सम्बन्धी चिन्तनको तात्त्विक त्रिवेचनका विषय बनाया । अतः इस देशमें धर्मानुसार अर्थ एवं कामकी प्राप्ति करते हुए आत्मिक आनन्द और शान्ति (मोक्ष)को प्राप्त करना ही जीवनका आदर्श तरीका माना गया है । आजके संघर्षमय जीवनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुवार्थचतुष्टयमें सामञ्जस्य रखनेके लिये सृष्टिकर्ता प्रमुकी शरणमें जाकर अहरहः राक्ति-सम्पादन करना आवश्यक है, नहीं तो जीवनक लिये आवश्यक वस्तुओंको प्राप्त करनेकी होड़में पाश्चारय जीवनमें बढ़ रहे उतावलेपन, अशान्ति और भाग-दौड़के कारण हम भी भारी मानसिक तनावके शिकार बन जायँगे। पाश्चात्त्य संस्कृति केवल बाहरी चमक-दमक और भौतिक उन्नतिकी ओर दौड़ रही है, जिसके फल-खरूप वहाँकी अधिकतर जनता संत्रस्त हो चुकी है। किंतु ऐसी एकाङ्गी छौकिल उन्नतिसे मनुष्य दुःखी हो रहा है । वस्तुतः मनुष्यको बहुमुखी उन्नति तभी हो सकती है, जब उसमें छौकिक और पारलीकिक, सांसारिक और आत्मिक—दोनों प्रकारकी उन्नति समान-रूपसे हो; अतः सचा धर्म तो वही है, जिसका उपदेश महर्षि कणादने किया है—-'यतोऽभ्युद्यनिःश्रेय-ससिद्धिः स धर्मः।'

अर्थात्—'धर्म वही है, जिसमें मनुष्यकी सांसारिक और आध्यात्मिक उन्नति एक साथ हो ।' ऋषियोंके इस आध्यात्मिक चिन्तनके मूलमें एक और सूत्र—'यिएण्डे तदेव ब्रह्माण्डे'विद्यमान है, जिसके अनुसार विश्वसृष्टिका जो सत्य है, वही मानवके अध्यात्मका सत्य है । इसी दृष्टिसे ब्राह्मण-प्रन्थोंमें मन्त्रोंकी पृथक्-मृथक् आध्यात्मक, आधिमौतिक और आधिदैविक व्याख्याएँ हैं और उनमें बतलाया गया है कि विराट सृष्टिमें जो नैसर्गिक नियम कार्य कर रहे हैं वे ही इस वामनीभूत

नरदेहमें निष्पन्न हो रहे हैं। जो वामन (Microcosm) है, वहीं विष्णु (Macrocosm) भी हैं—
'वामनो हि विष्णुरास' (शतपथन्ना॰ १।२।५।५)

अर्थात्-'जो वामनरूपसे दृष्टिगोचर हुआ यथायमें अपने विराट्रूपमें विष्णु था। उदाहरणके लिये यदि हम परमाणुकी रचनापर आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे विचार करें तो उसमें अनेक 'इलेक्ट्रान' विभिन्न कक्षाओंमें प्रोटान और न्यूट्रानोंसे बने एक केन्द्रक (Nucleus) के चारों ओर उसी प्रकार परिश्रमण कर रहे हैं जिस प्रकार सौरमण्डलमें प्रह अपनी-अपनी कक्षाओंमें सूर्यकी परिक्रमा कर रहे हैं। इस प्रकार परमाणुकी सूक्ष्मता या उसका बौनापन बाहरी दिखावट भर है, बस्तुतः वह अति शक्तिशाली है। उसके भीतर अपरिमेय शक्तिका स्रोत है जिससे आधुनिक वैज्ञानिक भीषण परमाणुकी विस्फोटों और विशाल विजलीघरोंकी रचना कर रहे हैं । यही नहीं, इस वामनरूप परमाणुकी रचना या जीवनकी लघुतम ईकाईकोशिका (Cell) की रचना इतनी जटिल और सूक्ष्म है कि अनगिनत तारों, नीहारिकाओं और आकाशगङ्गाओंसे व्याप्त इस अनन्त-विश्वकी रचनाके समान वह भी इतनी जिंटल और रहस्यमयी है। उसके यथार्थरूपको समझ पाना वैज्ञानिकोंके लिये आज भी असम्भव है। अतः यह कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्डकी रचना और भौतिक जगत्के घटक एक परमाणु या सजीव जगत्की रचना की एक कोशिकामें घनिष्ठ सामञ्जस्य है; इसलिये सूक्ष्म दूरबीनसे भी न देखा जा सकनेवाला परमाणु भी मानो हाय उठाकर घोषणा कर रहा है कि-

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥ (काण्वयनुः० ४०। १६)

(काण्वयज्ञः ४०। १६) अर्थात्— जो पुरुष विराट् ब्रह्माण्डमें विद्यमान है, वही हमारे मीतर मी है। इसी प्रकार विशाल सृष्टिका निर्माण कर रहे सभी विराट् देवोंके प्रतिनिधि मानवके

इस वामन शरीरकी विभिन्न इन्द्रियों और अंगोंने भी विद्यमान हैं। इसिलिये मानव-शरीरको देवसभाकी उपमा दी जाती है; परंतु यह देवसमा भी इस शरीरके अधिपति इन्द्र-(आत्मा-)के विना कार्य नहीं कर सकती। इस सुरपित-इन्द्रके विना यह देवसभा निस्तेज और जइ वन जाती है। दूसरी ओर जवतक इन्द्रको अपनी शक्तियोंका ज्ञान या आत्मज्ञान नहीं होता तवतक वह आसुरी पशुवृत्तियोंका दास बना रहता है और असुर इसे बराबर हराते रहते हैं—'स यावद्ध वा स्मू पतमात्मानं न विज्ञज्ञों, तावदेनमसुरा अभिवभूदुः। स यदा विज्ञज्ञों, अथ हत्वासुरान् विज्ञित्य सर्वणं भूतानां श्रेष्ठयं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति॥' (कौषीतिकिन्ना॰ उ०४।२०)

अर्थात्-'जब इन्द्र-(आत्मा-) को अपना ज्ञान हो गया, तब असुरोंको हराकर वह सब देवींके शरीएँ विद्यमान प्रतिनिधि इन्द्रियोंका अधिपति बन गया और उसने श्रेष्ठता एवं स्वाराज्य प्राप्त किया ।' सच्चे अर्थोमें इस आत्मिक स्वाराज्यको प्राप्त करनेके लिये आत्माको यह समझ लेना आवश्यक है कि वह उस सर्वशक्तिगत ईश्वरका अमर पुत्र है, उसकी सहायता और शक्ति सा उसके पीछे है । इन्द्रियोंके अतिरिक्त जीवको प्रभुने मन बुद्धि, चित्त और अहंकार—अन्तःकरण दिये हैं औ अनन्त सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी उस अमृत ब्रह्मतेजके साथ अपने अन्त:करणके सूत्रकी धाराको संयुक्त करनेकी ही वैदिक साहित्यमें 'संज्ञान' कहते हैं। संज्ञान प्राप्त करनेपर ही 'हे आत्मन् ! तू इन्द्र है, तू इस शरीका खामी वन जाता है और इन देवों-(इन्द्रियों-) प शासन करता है । ऐतरेय ब्राह्मणके अनुसार सब देवी इन्द्र सबसे अधिक ओजस्त्री, बलवान् और साहसी है वह सबसे ज्यादा दूरतक पार पहुँचानेवाला है स (इन्द्रः) वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सिंह सत्तमः पारियच्युतमः। (ऐतः ब्रा॰ ७ । १६)

क्ष हम आत्माकी राक्तिको, अपने भीतर-बाहर अतिर्वचनीय दिन्य भूमासे भरे अमृतमय सुहकी शक्तिसे सम्पन्न अनुभव कर तो कभी भी अपनेको क्षेत्रहीन माननेका कोई कारण नहीं है; क्योंकि ह्माण्डके प्रत्येक कणमें, प्रत्येक कोशिकामें व्याप्त विनियन्ता ब्रह्मपुरुषको जब इन्द्र इस शरीरमें अपने बारों ओर ब्याप्त अनुभव करता है, तभी वह इस क्षार्थ दर्शनके कारण 'इन्द्र' कहला सकता है। जीवनके संप्राममें और अध्यारम-साधनाके पथमें हम तभी प्रतिदिन अप्रसा होते हुए मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकते हैं, जब हम अपनेको अल्पता, जड़ता और मृत्युसे सर्वधा पृथक् मानकर अपने अन्तःकरणमें सतत अमृतत्वकी भावना करें । हमारे भीतर-त्राहर निवास करती विराट् देवी शक्तियोंके द्वारा हमारा सूत्र ज्ञानरूप चित्-शक्ति और आनन्दरूप अमृतब्रह्मके साथ मिला हुआ है। इसी भावनाको जाप्रत् करनेके लिये नित्यप्रति यह शिवसङ्कल्प करना चाहिये--

अग्निमें वाचि श्रितः । वाग्घृद्ये । हृद्यं मिथ । अहममृते । अमृतं ब्रह्मणि ॥ १ ॥ वायुमें प्राणे श्रितः । प्राणो हृद्ये । हृद्यं मिथ । अहममृते । अमृतं ब्रह्मणि ॥ २ ॥ सूर्यों मे चश्चिष श्रितः । वश्चिष्टंदये । हृद्यं मिथ । अहममृते । अमृतं ब्रह्मणि ॥ ३ ॥ चन्द्रमा मे मनिस श्रितः । मनो हृद्ये । (शेषं पूर्ववत्) ॥ ४ ॥ दिशों मे श्रोत्रे श्रिताः । श्रोत्रं हृद्ये । (शेष्पू०) ॥ ५ ॥ आपो मे तिसि श्रितः । रेतः हृद्ये । (शेष्पू०) ॥ ६ ॥ पृथिवी मे शरीरे श्रिता । शरीरं हृद्ये । (शेष्पू०) ॥ ६ ॥ पृथिवी मे शरीरे श्रिता । शरीरं हृद्ये । (शेष्पू०) ॥ ७ ॥ पुनर्म आत्मा पुनरायुरागातः पुनः प्राणः पुनराकृतमागात् ॥ वैद्वानरो रिम्मिर्वावृधानः अन्तिसिष्ठन्नमृतस्य गोपाः ॥ (तैतिरीयक्षा० ३ । १०।८)

अर्थात्—'विराट् संसारमें जो अग्नि, वायु, सूर्य, वन्त्रमा, जल, पृथ्वी आदि देवता विद्यमान हैं, उन्हीं के प्रतिनिधियों-पाक, प्राण, चक्षु, मन, श्रोत्र, रेत आदिसे वह शरीर शोभायमान है। इन देवोंका विज्ञानात्मक

अधिष्ठान बुद्धितस्त्र-(इदय-) में है। विज्ञानात्मक तस्व चैतन्य मुझमें अधिष्ठित है। शरीरको चैतन्य प्रदान करनेत्राळा आत्मा अमृत अर्थात् अत्रनाशी अक्षर परमात्मामें प्रतिष्ठित है। वह अमृत अक्षर ही ब्रह्म है। मेरे इदय, आयु, प्राण, मन (आकृत अर्थात् संकल्प) सत्र पुनः सशक्त हों। उनकी खोयी हुई शक्तिको मैं अमृत-स्रोतके साथ एकत्व कर प्राप्त करूँ। अमृत स्प्यकी किरणोंमें वर्तमान मेरा वैश्वानर आत्मा अमृतत्वका रक्षक हो। मैं अमृतत्वका आकाङ्क्षी हूँ; मैंने मृत्युको परे ढकेळ दिया है तथा इन शिवसङ्कल्पोंके दृढ़ पारायणसे मैं प्रतिदिन अमृतत्वकी ओर बढ़ रहा हूँ।

इस प्रकार जो व्यक्ति सतत जागरूक होकर अपने हृदयको दिव्य विचारोंके आशामय चिन्तनसे आछोकित करते रहते हैं, जो अहर्निश ईस्त्रीय शक्तिसे अपने शरीर, मन और आत्माको पूर्णतः भर लेते हैं, उन्हें ही ईस्त्ररका सामीप्य प्राप्त होता है। उनके भीतर उदात विचार, उल्लास, साहस, निर्भीकता, पित्र प्रेमकी धाराएँ हिछोरे खाती हैं और वे उन्नित, खाल्ध्य, आरोग्य और दीर्घायुष्यको प्राप्त करते हैं। ऐसे पुरुषोंके छिये ही वेद भगवान्का उपदेश है कि 'प्रमुक्ते अमरपुत्रो! अपने हृदयकी वाणीको सुनो और उससे रिस रहे अमृत ज्ञानक्त्री रसका पान करों — 'श्र्युववन्तु सर्वे अमृतस्य ज्ञानक्त्री रसका पान करों — 'श्रयुवन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिच्यानि तस्थुः॥' (ऋ०१०।१३।१)

श्रद्धायुक्त व्यान, प्रार्थना और आत्मसमर्पणकी भावनासे जब हम अपने मनको भक्तिपूर्वक ईस्त्ररीय शक्तिशासे जोड़ देते हैं, तब हमें दिव्य स्कृति प्राप्त होती है। यह स्फुरण उनके लिये है जिनके हृदयमें देवका धाम है, जिन्हें अमृत और अनिर्वचनीय भावोंमें दृद आस्था है। ईस्त्ररीय शक्ति और ज्ञान विस्त्राकाशमें अनन्त और अनादिकपसे भरी हुई है। यह निस्य, सर्वगत और सर्वव्यापी है। फिर भी हरेक व्यक्ति उससे

क्यों दूर है। उस ईत्वरीय वाणीके मार्मिक ख़रोंको धुननेके लिये कुछ भान्तरिक साधना एवं पावित्र्यकी भावश्यकता है । जब इन्द्रियासक्ति और ईर्ध्या-द्वेषके कुसंस्कारोंका जंग इत्तन्त्रीके तारोंसे दूर हो जाता है और उससे नि:सृत रेडियोकी तरंगें विश्वात्माके रेडियोसे समस्वर और समताल हो जाती हैं तब वे खर हमें सहज सुनायी देने लगते हैं। उपर्युक्त वेदवाणीमें वर्णित अमृततत्त्वके साथ च्यानशक्ति अनिवार्य है और उस ज्ञानसूर्यकी रश्मियोंको आत्मसात् करनेके छिये अपनेको दिव्य आचार-विचारमें ढालना आवश्यक है। इसी कारण वैदिक शब्दोंका निर्वचन करते हुए ब्राह्मण प्रन्थोंमें अनेक स्थलोंपर कहा गया है कि 'स एवं भवति। य पवं वेद' अर्थात्—'जो ऐसा जान लेता है वह ऐसा ही बन जाता है ।' ज्ञानके अनुसार आचरण ही to the street the same are the transfer of the street of t

जीवन है । ज्ञान और जीवनकी इस अमेद स्थितिके बिना सस्य और अध्यात्मकी प्राप्ति तो दूर हो। साधारण जीवनमें भी हमारी प्रगति नहीं हो सकती। करनी और कथनीके भेदके कारण ही हमारे नैतिक मूल्योंमें गिरावट आयी है । हमारे आदर्श और जीवनमें आकाश-पातालका अन्तर ही हमारी आत्मिक उन्नतिमें ही नहीं, हमारी सामाजिक और राष्ट्रिय समस्याओं के मूलमें भी विद्यमान है । क्या हम अपने ही जमानेमें आचार और विचारके एकीकरणका सचा आदर्श उपस्थित करनेवाले आस्मिक और राष्ट्रिय जीवनमें अन्तर्नाद अयवा 'भीतरकी आवाज' के अनुसार ददताके साथ चलनेवाले महात्मागाँधीके पदचिह्नोंपर चलनेका शिवसंकल्प का सकेंगे ! यदि इम ऐसा कर सकें तो निःसंदेह इनारा जीवन अमृतमय बन सकता है।

पाश्चरात्र आगममें भगवत्त्व

(लेखक - डॉ॰ श्रीकृपाशंकरची शुक्क, एम्॰ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

भमरूप अन्ध्रकारको दूर करनेके लिये 'नारदपाञ्चरात्र' प्रन्थ दीपकके समान है। ' पाश्चरात्र शासके क्षेत्रमें 'रात्र' राब्दका अर्थ ज्ञान है । यह ज्ञान पाँच प्रकारका है, इसीलिये यह भागवत-मत-पोषित प्रन्थ 'पाञ्चरात्र' कहा जाता है । भगवान् 'आदिनारायण'ने ब्रह्माकं माध्यमसे देवर्षि नारदको इसका व्याख्याता बनाया है। यह मूर्तिमान् भागवत-ज्ञान है। एक प्रकारसे यह ईराकृपाका ही बाब्बय है। पाञ्चरात्र आगमके भक्ति-मुलक सिद्धान्तोंके अनुसार आचरण करनेवाले मानव-जन्म, जरा तथा आधि-व्याधिके वन्धनोंसे मुक्त हो जाते

हैं। यही प्रथम रात्रज्ञान है। दूसरा ज्ञान है मोक्ष-परायण मुमुक्षुओंकी भगवान्के भवभयहारी चरणींमें एकान्त अनुरक्ति अथवा शरणागति । तीसरा रात्र है— मङ्गलमय श्रीकृष्णका भक्तिप्रद दास्यभाव । चौथा रात्र है-सर्वसिद्धिप्रद् यौगिकज्ञान । पाँचवें रात्र या ज्ञानका रूप है-संसारका खरूप-विवेचन। इसके प्रति निर्वेद, विक्रि एवं त्यागद्वारा भागवत-जीवनका अनुष्ठान^र होता है अ<mark>य</mark>व यों कहें कि यह ब्रह्म, मुक्ति, भोग, योग और संसार-इन पाँच विषयोंका रात्र है। उपदेष्टा नारदने अपन जीवनमें उक्त धर्मका आचरण करते हुए आवि व्यापि

. १-पाञ्चरात्रमिदं ग्रुदं भ्रमान्धव्वंसदीपकम् ।

(नारदपाञ्चरात्र १ । १ । ४३)

२- 'शानं परमतत्वं च जन्ममृत्युजरापहम् । शानं द्वितीयं परमं शुद्धं मुक्तिप्रदं नृगाम् ॥ शानं शुद्धं तृतीयं च ग्ले दास्यं लमेद्धरेः । चतुर्थे यौगिकं ज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदं परम् ॥ सर्वस्वं योगिनाम् । सिद्धानां च सुखप्रदम्, अन चं तद् वे वैषयिकं नृणाम्।

ं ('नारदंपाश्चरात्र, प्रथम रात्रके प्रथम-अध्यायके ४३वेंसे ५२वें इस्रोकोंमें वर्णित है)।

विश्वते लिये भी इस श्रेष्ठ धर्म अयवा भागवत-

पश्चरात्र-शास्त्रके ज्ञानका सिद्धान्तरूपमें विस्तारसे विवेचन महाभारतके जनमेजय और वैशम्पायनके संवादहर्णमें शान्तिपर्वके ३४८वें और ३४९वें अध्यायोंमें
उपलब्ध होता है। इसके द्वारा पाश्चरात्र तथा वैदिक
परम्परापर भी प्रकाश पड़ता है। यह पाश्चरात्र अथवा
भागवतधर्म ऋग्वेदमें भी वर्णित है।

भगवान्की कृपादृष्टि कि वा शक्ति, शरणागितकी
प्रपन्नताके तात्त्विक स्वरूपका भगवदनुप्रह्की अनुभूति
एवं वैष्णवताका विवेचन पाद्धरात्रमें है। भगवान्
भक्तानुप्रह-कातररूपमें ही यहाँ देखनेको मिलते हैं।
सस पाद्धरात्रके प्रतिपाद्य नारायण अथवा वासुदेव श्रीकृष्ण
है। यह विभु-परात्पर प्रभु भक्तपर अनुप्रह करनेके लिये
सदा विह्नल बने रहते हैं।

नारद-प्रोक्त पाञ्चरात्रमें श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता, भावोद्रेककी तरलता एक साथ परिलक्षित होती है। जिसके रक्षक ने नित्य, सत्य, निर्गुण, ज्योतिरूप, सनातन प्रकृतिसे परे श्रीकृष्ण हैं, उसका सदा कल्याण होता रहता है ।

नारदपाश्वरात्रमें भगवान्का भक्तानुप्रहकारक,

सुलिनिधान, सौन्दर्यनिधि 'शिव'खरूप ही निरूपित हुआ है। भगवरकृपाकी अनुभूतिके पथमें प्रपन्नता-अकिंचनता अन्यय पाथेय है। निष्काम 'भक्तियोग'से ही यह पाथेय मिलता है। अतः महादेवजी यहाँ नारदको 'राधापित', 'त्रिगुणातीत' श्रीकृष्णकी उपासनाका आदेश और उपदेश देते हैं। नारदपाञ्चरात्रमें मुक्तिके अनेक साधन बताये गये हैं। उनमें हरिनाम-जप, हरिनाम-कर्तिन, कृष्णापण-कर्म, गुरुकृष्ण-पूजा, माता-पिता तथा गुरुकी सेवा, हन्द्रियनिप्रह, संन्यास, पाञ्चरात्र-श्रवण तथा नारियोंके लिये पतिसेवावत प्रमुख हैं।

नारदपाश्चरात्रका एक असाधारण भक्तिपरक खोक इस संदर्भमें उद्भृत करनेका छोभ-संवरण नहीं हो रहा है; देखिये—

नाराधितो यदि हरियेंन पुंसाधमेन च।
किं तस्य तपसा व्यर्थ निष्कलं तत्परिश्रमम्॥
भक्तप्राणो हि कृष्णश्च कृष्णप्राणा हि वैष्णवाः।
ध्यायन्ते वैष्णवाः कृष्णं कृष्णश्च वैष्णवांस्तथा॥

सम्पूर्ण पाञ्चरात्रमें भगवान्के कृपावत्सछ खरूपके दर्शन होते हैं।"

उपर्युक्त त्रिवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नारदपाञ्चरात्रका वैष्णव साहित्यमें अन्यतम स्थान है और इस प्रन्थमें भगवत्तत्त्वकी ही मीमांसा है।

३-(ऋग्वेदपाठपठितम्), महा० शान्ति० ३४९ | २२ |
४-वन्दे वन्द्यं च महतां परात्परतरं विभुम् । स्वात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुम्रहकातरम् ॥
५-(रक्षिता यस्य भगवान् कल्याणं तस्य संततम् ॥ (नारदपाञ्च० १ | १४ | ४)
६-(भुत्वं दृद्यं सुरूपं च भक्तानुम्रहकारकम् ॥ (तन्नैव १ | ३ । ७५)
७-(भज्ञ सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥ (नारदपाञ्च० २ | २ | १००)
८-नारदपाञ्चरात्र २ ॥ ७ ॥ ५ ॥ ५० ॥ ९ —नारदपाञ्चरात्र १ ॥ २ ॥ ३ ॥ १० ॥
१०-न त्वपरः सत्यवादी दयावान भक्तवत्सकः ॥ (नारदपाञ्चरात्र २ ॥ ३ ॥ १० ॥

ज्योतिषशास्त्रमें भगवत्तत्व

(लेखक—डॉ॰ भीनागेन्द्रजी पाण्डेय, ज्योतिपाचार्य (सिद्धान्त एवं फलित) स्वर्णपदकप्राप्त, विद्यावारिधि, पी-एच्॰ डी॰)

वेद ज्ञानके सागर कहे गये हैं। अन्य समस्त ज्ञान-विज्ञानके भ्रोत भी इन्हीं सारतत्त्वसे अनुप्राणित हैं। भगवान् वेदपुरुषके वडक्नके रूपमें जिन छः वेदाक्त शास्त्रोंका वर्णन है, उनमें ज्योतिषशास्त्रको वेद पुरुषका नेत्र कहा गया है। सभी अङ्गोंमें नेत्र ही श्रेष्ठ हैं। क्योंकि मानवके समस्त व्यापार, नेत्रोंके सहारे ही सुचार-रूपसे संचालित होते हैं। अतः चक्षुभूत ज्योतिषशास्त्रमें परम महत्त्वपूर्ण भगवत्तत्त्वका किस प्रकार विवेचन किया गया है, यह जानना आवश्यक है। यही प्रस्तुत निबन्ध-का प्रतिपाद्य विषय है।

ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्तप्रन्थोंमें 'सूर्यसिद्धान्त' विशेष प्रसिद्ध है । इस प्रन्थमें ईश्वरतत्त्वका विवेचन करते हुए खीकार किया गया है कि 'ब्रह्म'के द्वारा ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् विश्व और ब्रह्माण्डका प्रादुर्भाव हुआ। प्रन्थके प्रारम्भिक मङ्गळाचरणमें ही कहा गया है—

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने । समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः॥ (सूर्यसि॰ १-१)

'समस्त जगत्के आधारमूत अचिन्त्य, अव्यक्त और निर्गुण तथा सगुणरूप ब्रह्मको नमस्कार है।' इस प्रकार यहाँ वासुदेवको ही ब्रह्म एवं जगत्का आधार माना गया है। इसी प्रन्थमें सृष्टिके रहस्यका वर्णन करते हुए भगवान् सूर्यने जिस अध्यात्मतत्त्वका उपदेश किया है, उसमें भी स्पष्ट कहा है—

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः। अन्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविशात् परोऽन्ययः॥

(सूर्येषि० १२ । १२) 'ब्रह्म परम ब्रह्म वासुदेवेस्हर प्रधान पुरुष (पुरुषोत्तम) अन्यक्त, निर्गुण, शान्त तथा पश्चीस तक्त्वोंसे परे हैं । आगे यह स्पष्ट किया गया है कि इसी ब्रह्मसे इस सृष्टिका सर्जन हुआ है । इसका क्रम इस प्रकार बतलाया गया है—

वासुदेव (खयं ब्रह्म), सूर्य (अनिरुद्ध नामक वासुदेवांश), ब्रह्मा (अहंकार तत्त्वसे जगत्स्वष्टा)।

इसी ब्रह्मासे चन्द्र सूर्य, पश्चमहाभूत और समस्त चराचर विश्वका निर्माण हुआ है। (सूर्यसि० १२। १२। ३१)

ज्योतिषशास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् भास्कराचार्य (द्वितीय) हुए हैं। उन्होंने इस चराचर विश्व और ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका प्रतिपादन करते हुए लिखा है—
यसात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भेउहंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्ब्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरञ्चेविदेशं शद्यज्जयति परमं ब्रह्म तत् तस्वमाद्यम्॥

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय, भुवनकोश २।१)

इसका तारपर्य यह है कि 'आद्य तत्त्व वह प्रम ब्रह्म है, जिससे सभी तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है। वह तत्त्व वासुदेवरूप है। जब उसकी सृष्टिकी इच्छा होती है, तब उससे संकर्षण नामक अंशकी उत्पत्ति होती है। यह संकर्षण प्रकृति और पुरुषमें क्षोभ उपव करता है। प्रकृति-पुरुषके क्षोभसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्व बुद्धिरूप होता है और उसीका नाम प्रयुम्न है। इस प्रद्युम्न नामक महत्तत्त्वसे अनिहरू नामक अहंकारकी उत्पत्ति होती है। वैष्णवमत्में

रै वसति विश्वमिललमिसिन्निति वा विदवसिन्निलिले वसतीति वासुः, दिव्यति—भासते स्वयमिति देवः, वस्रभावि देवःनेति—वासुदेवः—विदवव्यापक्रो विभूरित्यर्थः।

बाहुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन मूर्तिमेदोंका विशेष महत्त्व है । अहंकार गुणके विभागसे तीन प्रकारका होता है जिसमें सत्त्व, रज और तमसे क्रमशः केबारिक, तैजस और भूतादिकी उत्पत्ति होती है । सु क्रमका विष्णुपुराणमें स्पष्ट वर्णन मिळता है।*

इस प्रकारसे विष्णुपुराण के अनुसार ही ब्रह्मतत्त्वका विवेचन ज्योतिषशास्त्रके अन्तर्गत हैं, जो सांख्यदर्शनसे प्रमावित है। आचार्य वराहमिहिरने जगदुत्पत्तिके सभी प्रचित्त मतोंका उल्लेख करते हुए परम-तत्त्रका विवेचन प्राचीन दार्शनिकोंपर ही छोड़ दिया है। महर्षि कपिल-प्रतिपादित सांख्यतत्त्व, कणादप्रतिपादित पदार्थतत्व, (अणु) पौराणिक मतसे काल्यतत्त्व, लोकायतिक समावतत्त्व तथा मीमांसकोंके कमतत्त्वका उल्लेख करते हुए विश्वके कारणभूत तत्त्वके निश्चयमें अपना कोई मन्तव्य नहीं दिया है। †

इस प्रकारसे ईश्वरतत्त्वके प्रतिपादनमें विष्णुपुराण, सांस्यमत इत्यादिके अनुसार ही ज्योतिषका मत है, जिसमें इस इस निखिल ब्रह्माण्डका रचयिता एवं नियन्ता है।

दूसरा मत उयोतिषके 'काल'के सम्बन्धमें हैं।
बालको भी ईश्वरके रूपमें अनादि, अनन्त तथा
व्यापक, विभु माना गया है। 'सूर्यसिद्धान्तकार'
कहते हैं—'लोकानामन्तकृत् कालः' ! अर्थात्—
बाल समस्त लोकोंका अन्त करनेवाला है। ज्योतिषशासका एक अन्य प्रसिद्ध वचन इस प्रकार है—

कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिकादिना। यो वञ्चयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः॥

'जो कला, काष्ट्रा, निमेष और घटीके रूपमें प्राणियोंको छलता जाता है-—मृत्युके समीप पहुँचाता है), उस कालात्माको नमस्कार है । कालको मङ्त्तामें यह प्रमाण भी उपलब्ध होता है कि—

कालः पचिति भूतानि सर्वाण्येय सहात्मना। काले स पक्वस्तेनैय सहाऽव्यक्ते लयं वजेत्॥

इस प्रकार कालको भी एक विश्वनियन्ताके रूपमें प्रतिष्ठापित किया गया है। इसी कालको भगवत्तत्त्वके रूपमें देखते हुए गोखामी तुल्सीदासजीने कहा है—

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड । भजिस न मन तेहि राम कहँ कालु जासु कोदंड ॥ (श्रीरामचरितमानस लंकाकांड दोहा १)

भगवत्तत्त्वके विवेचनमें ज्योतिषका तीसरा पक्ष बहुत ही महत्त्रका है, जिसमें 'शून्य' को परमत्रहा-तत्त्व या भगवत्तत्त्रके रूपमें अङ्गीकार किया गया है। 'शिव' धातुसे 'क्त' प्रत्यय लगकर 'शून' शब्द बनता है और इसी 'शून' से शून्य शब्द निर्मित है, जिसका अर्थ है-स्पीत, वर्द्धित, विस्तृत । इसी अर्थमें वेदका यह प्रयोग है--'मा शूने अग्ने नृणाम्' (७।१।११) ब्रह्म शब्द भी बृह् (भ्या०) धातुसे भिनिन् प्रत्ययकर इसी वर्धित अर्थमें बना है, जो शून्य शब्दके अर्थसे साम्य रखता है । श्रून्यके पर्यायवाची शब्द हैं,—'ख, आकाश, न्योम, नम, अनन्त और पूर्ण; और, ये ही शब्द ब्रह्मके लिये भी अनेक स्थानपर मिलते हैं; जैसे— बृहदारण्यक उपनिषद्में-'खं ब्रह्म', तन्त्रप्रन्यमें-'शून्यं तु सच्चिदानन्दं शब्दं तद् ब्रह्मसंक्षितम् ।' शून्यका गणितीय महत्त्व यह है कि—(क) श्रून्य वह है, जो खयं कोई संख्या नहीं, परंतु सभी संख्याओंका वर्द्धक एवं बौद्धोंकी दृष्टिमें आदि भी है। जैसे--१ के पूर्व शून्य होगा। (ख) शून्य

^{*} वैकारिकस्तैजसरच भृतादिरचैव तामसः । त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्वादजायत ॥ (विष्णुपुराण); तुळनीय सांख्यकारिका २२१

[†] कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणसुगस्य विश्वस्य । कालं कारणमेके स्वभावमपरे परे जगुः कर्म ॥ (बृहस्यंहिता १ । ७)

[‡] सूर्यसिद्धान्त-१

भि॰ त॰ अं॰ १७—CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खयं कोई संख्या न होकर भी सभी संख्याओंको परिवर्धित कर देता है; जैसे एकके आगे शून्य रखनेसे वह क्रमशः १०, १००, १००० और अनन्ततक हो जायेगा।

इस प्रकार शून्य कुछ भी न होकर अनन्त-राक्तिकी सामर्थ्य रखता है। आज भी आधुनिक गणितमें अनन्त संख्या-(Infinite Number)के परिज्ञानके छिये दो शून्योंको संयुक्त मिळाकर एक चिह्न (००) बनाते हैं । शून्य रहकर भी अनन्त होगा, यही ब्रह्मका सगुण और निर्गुण रूप है। आचार्य भास्करने वीजगणितके प्रसङ्गमें 'ख हर' (शुन्यविभाजित शुन्य) राशिको अनन्तकी देते इए कहा है कि--- 'ख हर' राशिमें कोई भी संख्या धन करें या ऋण करें, परंतु वह अविकृत ही रहती है—जिस प्रकार अनन्त सृष्टि एवं प्रलयके बाद भी वह परमात्मा अच्युत और अनन्त ही रहता है।* यही बृहदारण्यकोपनिषद्का भी कथन है, जो शुन्यकी शक्तिको ब्रह्मशक्तिके सदश सिद्ध करता है-

> अ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुद्च्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

'पूर्णसे पूर्ण निकालनेके बाद भी पूर्ण ही बचता है। ' 'यह ब्रह्मके पक्षमें कथन है' जो शून्यके गणितसे सिद्ध होता है। श्रून्यका कोई खरूप नहीं होता। इम व्यवहारके छिये एक विन्दुके रूपमें उसको

पहचानते हैं। वह भी काल्पनिक; क्योंकि रेखागणितमें बिन्दुकी परिभाषा है -- जिसमें लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई न हो । किसी भी बिन्दुके किसी स्थानपर स्थित होनेसे यह परिभाषा उसमें घटित नहीं हो सकती है, परंतु व्यवहारतः हमें उसकी सत्ता सीकार करनी ही पड़ती है; जैसे हम निर्गुण ब्रह्मकी पहचान सगुण रूपसे करते हैं। इसीलिये कहा गया है कि ब्रह्म श्रान्य होता हुआ भी श्रान्यतामें स्थित है ।†

बौद्धदर्शनमें तो शून्यवाद ही प्रख्यात है, जिसमें सभी कुछ शून्यसे प्रादुर्भूत और विछीन होना माना जाता है।

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रके अनुसार भगवत्तत्त्व तीन खरूपोंमें वर्णित है—(१) ब्रह्मपरक, (२) काल्परक और (३) द्रान्यपरक । भगवत्तत्त्व ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिमें वही है, जो पुराणोपनिषदादिमें स्तीकृत है। यह ज्ञातन्य है कि १८ महर्षि ज्योतिषशास्त्रके प्रवर्तक कहे गये हैं । 🕇 इनमें यवनको छोड़कर सभी पौराणिक और वैष्णवमतानुयायी हैं। उन महर्षियोंकी आध्यात्मिक अवधारणासे ज्योतिषशास्त्र पूर्ण प्रमानित और आप्लावित है । भारतीय वाङ्मयकी यह विशेषता है कि प्रमतत्त्वका विवेचन ही उनका मुख छक्य रहता है । वे इसीकी सिद्धि विभिन्न खरूप एवं सिद्धान्तोंसे करते हैं। इस भगवत्तत्त्वका ज्ञान और उसकी प्राप्ति मानव-जीवनका चरम फल है।

^{⇔⊃@}G→

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावविप्रविष्टेष्वविनिःसृतेषु। स्याल्लयसृष्टिकाले ततेऽच्युते भूतगणेषु यद्यत्॥ बहुष्वपि

⁽ बीजगणित, खषड्विधान १२, क्लोक ४)

[†] भ्रून्यता विद्यते त्वत्र तस्यामिप स विद्यते । (मध्यान्तविभाग टीका, पृ० १०) ‡ सूर्यः पितामहो व्यासो विश्वष्टोऽत्रिः पराशरः। कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरिक्तराः॥ पौल्रशक्त्वेव च्यवनो यवनो भृगुः । शौनकोऽष्टादशक्त्वेते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ॥

विविध दार्शनिकोंकी दृष्टिमें भगवत्तत्व

(लेखक-पं॰ श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी, व्याकरण-वेदान्त-धर्मशास्त्राचार्य)

भग शब्द विविध निरुक्ति और व्युत्पत्तिके द्वारा अनेक अर्थोका वाचक है तथा तीनों छिङ्गोंमें प्रयुक्त है। भज्यतेऽनेन, भज्यतेऽस्मिन्, भज्यतेऽसौ' इत्यादि विचनोंमें भज्-सेवायाम् (भ्वादि, उभयपदी, अनिट् १९८) धातुसे पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' (पा० ३। ३। ।।। प्यतो घ च' (पा० ३।३।१२५) घित्करण-क्षापनार्थम् इस ज्ञापनद्वारा उक्त ग्रन्योऽप्ययमिति सुत्रसे मजनीय अर्थमें 'घ' प्रत्यय करनेपर 'भग' शब्दकी र्षिद्व होती है । विभिन्न कोशों तथा शास्त्रों, पुराणोंमें भग शब्दका प्रयोग वराङ्ग (सिर), कलत्रत्र, श्री, वीर्य, इच्छा, **ज्ञान, वैराग्य, कीर्ति, माह्रात्म्य, ऐश्वर्य, यत्न, धर्म, मोक्ष,** पुरुका यश, सौभाग्य, कान्ति, सूर्य विशेष, चन्द्र, पूर्वा-पालुनी नक्षत्र, स्त्रीचिह्न, ऐश्वर्यादिषट्क, भाग्यमोगास्पद त्या स्थूल-मण्डलाभिमानी एक देवता आदि अनेक अयोमि प्रयुक्त हुआ दीखता है । प्रकृत स्थलमें भग शब्दका तालर्प समप्र ऐश्वर्य, वीर्य, यशा, श्री, ज्ञान और वैराग्य ह्हीं छः पदार्थोंसे है, (विष्णुपु॰ ६।५।७४)।

इसीका पुँछिङ्गमें भगवान् और स्रीलिङ्गमें भगवती प्रयोग बनता है । इस प्रकार यह सर्वशक्तिमान् प्रमेश्वरकी संज्ञा है, जिसे परब्रह्म, परमात्मा, परमार्थतत्त्व, क्ष्य, विश्चद्व ज्ञान, वासुदेव आदि विविध संज्ञांओंसे भी विभिन्न किया जाता है—

शानं विशुद्धं परमार्थमेक-मनन्तरं त्वबहिर्बद्ध सत्यम्। प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छञ्दसंबं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति॥ (श्रीमद्भां०५।१२।११)

सि न्युत्पत्तिके अतिरिक्त विष्णुपुराणमें भगवत्-शक्ते तकारको छोड़कर शेष तीन वर्णीका पृथक्-पृथक् भि किया गया है। भकारके दो अर्थ हैं— एक पोषण करनेवाला दूसरा सबका आधार । गकारके अर्थ हैं—कर्मफल प्राप्त करानेवाला, लय करनेवाला और रचयिता । वकारका अर्थ है—अव्यय परमात्मा, जिसमें सम्पूर्ण भूत निवास करते हैं तथा जो समस्त भूतोंमें विराजमान है—

सम्भतेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः। नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने॥ वसन्ति यत्र भूतानि भूतात्मन्यखिळात्मनि। स च भूतेष्वरोषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः॥ (विष्णुपुराण ६। ५। ७३, ७५)

ये सभी अश्वरार्थ पूर्णतया परब्रह्ममें ही घटित होते हैं। अतः उसीके लिये इस पदका मुख्य प्रयोग होता है। ब्रह्मके मायाशविल्त त्रिगुणात्मक त्रिविश्रक्षप ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा सभी राम, कृष्ण, बुद्ध आदि अवतार भी भगवत्-पद वाच्य हैं; क्योंकि उस ब्रह्मके ही ये मूर्त रूप हैं—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (श्रीमद्रा॰ १।३। २८) 'रामकृष्णाविति मुवो भगवानहरद् भरम्॥' (श्रीमद्रा॰ १।३।२३)। शक्ति तथा शक्त्यवतार—दुर्गा, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरखतीके लिये, भगवत् दुर्गा, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरखतीके लिये, भगवत् शब्दके श्रीलिङ्गरूप भगवती शब्दका प्रयोग होता है—

सेव्यते या सुरैः सर्वेस्ताइचैव भजते यतः। धातुर्भजेति सेवायां भगवत्येव सा स्मृता॥ (देवीपुराण अ० ४५)

शेष देवी-देवता, ऋषि-मुनि, आचार्य, गुरु, माता, पिता, श्रेष्ठ, पूज्य व्यक्तियोंके प्रति प्रयुक्त भगवत्-पद औपचारिक है। इनके लिये पूजनीयता और समादर- बोतनके लिये उसका प्रयोग होता है, न कि मुख्य बृत्तिके लिये। इस प्रकारके गीण प्रयोग प्रायः लोक और शास्त्र दोनोंमें देखे जाते हैं—जैसे—भगवदाज्ञा, अत्वाह भगवान् जैमिनिः इत्यादि। अन्यत्र भी भग

शब्दार्थके अंशतः घटित होनेपर तद्र्थ भगवत् शब्दके प्रयोगका औचित्य है । गीतामें भगवान् कृष्णकी उक्ति है—

यद्यद्विभूतिमन्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्त्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽरासम्भवम्॥ (१०।४१)

ऐश्वर्य, लक्ष्मी, बलातिशयसे सम्पन्न प्राणीको मेरे अंशिवशिषसे सम्भूत समझना चाहिये। यद्यपि परमेश्वर शुद्ध-बुद्ध अप्रमेय, अनिर्देश्य, अनौपम्य, अनामय, सर्वगत, नित्य, ध्रुव, अन्यय, खप्रकाश, आनन्दघन, स्थूल-सूक्ष्मादिरूपरहित, नानाविध विकल्पोंसे मुक्त वाड्यनोऽतीत, नाम-गुण-क्रिया-धर्मादिविहीन चिन्मात्र है। वह कथमपि किसी संज्ञासे अभिधेय नहीं, किंतु योगवृत्ति (लक्षणावृत्ति)के द्वारा वह विष्णु, नारायण, ब्रह्म, ईश्वर, भगवान, शिव आदि अनेक नामोंसे व्यवहृत होता है—

विकल्परिहतं तत्त्वं ज्ञानमानन्दमव्ययम्।
न च नामानि रूपाणि शिवस्य परमात्मनः॥
तथापि मायया तस्य नामरूपे प्रकल्पिते।
शिवो छद्रो महादेवः शंकरो ब्रह्म तत्परम्॥
विष्णुनारायणादीनि नामानि परमेश्वरे।
कथंचिद्योगवज्ञातु वर्तन्ते न तु मुख्यया॥
(स्कन्दपुराण, स्तसंहिता)

वह एक परमेश्वर ही कार्य, कारण आदि होनेसे विभिन्न नामोंसे सदा सर्वत्र विराजमान है—'एको हि नामगेभेदेः स्थितः स परमेश्वरः।' इतना ही नहीं, शाखोंमें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण, विचारसरिण,मार्ग, अधिकारी आदि भेदोंसे तथा विभिन्न सम्प्रदायों और वर्गोमें भिन्न-भिन्न उपास्य भावोंसे, लोक-सामान्यमें विभिन्न भावनाओंसे वह परमेश्वर अनेक रूपोंमें विशेष संज्ञाओंके द्वारा उपोष्य, सेन्य, आराध्य और भजनीय भी है। अद्वैतवादी वेदान्ती उसे निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्म, विशिष्टाद्वैतवादी वेष्णवागमानुयायी सगुणसविशेष ईस्वर और माध्य, विष्णु,

निम्बार्फ, बल्लभ तथा चैतन्यमताबलम्बी बैष्णवोंमें कृष्ण. षाड्गुण्यविप्रह, परब्रह्म, वैखानस—पञ्चमूर्ति नारायण, योगशास्त्रानुयायी क्लेश-धर्म-कर्मविपाकादि संस्कारींसे रहित असङ्ग पुरुषविशेष, ईश्वर, भगवान् या परमतत्व कहकर पुकारते हैं । चार्वाकदर्शन यद्यपि ईश्वरको नहीं मानता, किंतु उसके यहाँ 'खभाव' ही सर्वश्रेष्ठ प्रेरक माना जाता है । सांख्य भी ईश्वरको नहीं मानता, किंतु वह प्रकृति और पुरुपको ही सर्वश्रेष्ठ तत्त्व और जगत्का कर्ता मानता है। प्राचीन मीमांसक इन्हें ही कर्म, अवान्तरवर्ती मीमांसक यज्ञपति, नैयायिक और वैशेषिक नित्य ज्ञान-प्रयत्न-इच्छा आदि गुणसम्पन्न जगत्कर्ता, हैरण्यार्भ हिरण्यगर्भ, वैराजगण विराट्, चतुर्मुखोपासक चतुर्मुख, भागवत विष्णु, शैव शिव, गाणपत्य विनायक, सौर सूर्य, शाक्त शक्ति (दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्रती), बौद बुद्ध, जैन अर्हन्, रामानन्दीवैष्णव राम, अष्टछाप कृष्ण, भैरवोपासक भैरव, नृसिंहोपासक नृसिंहभगवान् ग परमेश्वर कहते हैं और उसी नाम तथा रूपमें उपासना करते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न देवोपासक भिन्न-भिन देवोंको ईश्वर मानकर उंपासना करते हैं। संसारमें ऐसे भी छोग हैं, जो स्थावर आदिको तथा व्यक्तिविशेष (जीवित या मृत)को भी सर्वश्रेष्ठ मानकर आराधना करते हैं। इस विषयमें आचार विद्यारण्यने वड़ा सुन्दर कहा है-

इनमें सामान्यजनोंको छोड़कार शास्त्रीय मतातुयारियोंने ख-खमतानुसार अभीष्ट एवं उपास्य ईश्वरका जो-जो स्थ्रण कहा है, वह सभी लक्षण प्रायः समानरूपसे एक प्रकार-का ही प्राप्त होता है। इससे यह सिद्ध है कि सभीका अभीष्ट परमेश्वर एक है; केवल नामोंका ही मेद है, जिस मेदसे उपास्यमें कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। उक्त विवेचनका फलतः यह निष्कर्ष है कि सभीके म्तोंमें सर्वश्रेष्ठ सर्वशक्तिमान् तत्त्व भगवत्-पदवाच्य भगवान् हैं, जो अनेक नामोंसे गेय और उल्लेख्य है। भगवत् शब्दका संक्षेपरूपमें यह विचार प्रस्तुत कर अव तत्त्व शब्दपर विचार किया जा रहा है।

भगवत्तत्त्व

'भगवतस्तत्त्वम् —भगवत्तत्वम्' भगवान्केतत्त्व-को भगवत्तत्व कहते हैं । भगवत्तत्त्वके निरूपणके पूर्व तल शब्दपर विचार करना आवश्यक है । 'तनु-विस्तारे' (तनादि उभयपदी) धातुसे क्विप् प्रत्यय तथा तुक्का आगम करनेपर तत् शब्दकी सिद्धि होती है। तत् शब्द सर्वनाम है। सर्वका अर्थ ब्रह्म और नामका अर्थ संज्ञा है। इस प्रकार सर्वनाम ब्रह्मवाचक होनेके कारण तत् शब्द ब्रह्मवाचक है । उपनिषदोंमें तत् शब्दका प्रयोग ब्रह्म और आत्माके लिये प्रायः प्रयुक्त होता है। लेकमें भी तत् शब्द सर्ववाची है और सभीकें लिये ^{प्रयुक्त} भी होता है। 'तस्य भावस्तत्त्वम्' तत् शब्दसे ल प्रत्यय करनेपर तत्त्व शब्दकी सिद्धि होती है। इस युगित्तिके अनुसार तत्त्वका अर्थ ब्रह्मभाव होता है, किंतु सका प्रयोग यथार्थस्वरूप, ब्रह्म, विलम्बतनृत्यवाद्यादि, सार्मत पदार्थ, सांख्योक्त प्रकृति आदि २५ तत्त्व आदि अयोंमें भी होता है। इन अथोंके अतिरिक्त प्रत्येक राह्मोंके पारिभाषिक तत्त्वखरूप भी हैं, जैसे शून्यवादी वीद् सदसदुभयानुभयात्मक—चतुण्कोटि विनिमुक्त ग्यको ही तत्त्व मानते हैं । चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, गयु चार मतोंको तत्त्व कहते हैं। जैन जीवमतालम्बी और अजीव दो तत्त्व स्त्रीकार करते हैं। इनमें कोई किदेशी पाँच और कोई सात तस्व भी अनीकार करते

हैं । द्वेतनादी पूर्णप्रज्ञानुयायी खतन्त्र और अखतन्त्र दो तत्त्व, रामानुज-मतानुयायी चित्, अचित् और ईश्वर तीन तत्त्व, वल्लभमतानुयायी अट्ठाईस तत्त्व, पाशुपत नकुलीरा और शैव लत्तीस तत्त्व, सांख्य पचीस और योगी ल्ल्बीस तत्त्व खीकार करते हैं । शुद्ध वेदान्ती एक ब्रह्मको ही परमार्थ तत्त्व मानते हैं ।

वस्तुतः भगवत्तत्व एक ही अर्थके प्रतिपादक हैं। इनकी पुनरुक्तिसे क्या लाम है! वादियोंद्वारा पारिमापिक अर्थ खीकार करनेपर सबका सामञ्जस्य और सम्बन्ध नहीं बनेगा, प्रत्युत वैषम्य होगा। दूसरी बात यह है कि कुळ वादियोंके यहाँ भगवान्की सत्ता ही नहीं खीकृत है और कुळ वादी अपने-अपने अङ्गीकृत तत्त्वोंके अन्तर्गत ईश्वरकी भी गणना कर लिये हैं, इन दो दृष्टियोंसे भगवत् और तत्त्व शब्दका परस्पर सम्बन्ध भी नहीं बनेगा। इसीलिये यहाँ तत्त्व शब्दसे भगवान्के खरूप, धर्म, गुण आदि ही अभिमत मानना होगा। फलतः प्रस्तुत अङ्गमें भगवत्त्त्वका तात्पर्य भगवान्के खरूपादिसे ही समझना चाहिये।

भगवत्तत्व (भगवरखरूपादि)का विवेचन महर्षियोंद्वारा वैदिक प्रन्थोंसे लेकर पुराणोंतकमें साङ्गोपाङ्ग अनवरत
हुआ है। तदनन्तर सूत्रोंसे लेकर ईसाकी सोळहवी शताब्दीतकके आचार्योद्वारा वह ऊहापोहात्मक विश्वद्रूपमें
वहुचर्चित हुआ। वैण्णवसम्प्रदायने इसे सर्वत्र वितानित
कर दिया। इस खल्पकाय निवन्धमें सभी मतोंका देना
असम्भव तो है ही, किसी एक मतका भी पूरा वर्णन
दुष्कर कार्य है। मोनियर विलियम्स आदिने अपने दर्शनदुष्कर कार्य है। मोनियर विलियम्स आदिने अपने दर्शनसंप्रहोंमें गीताको भी एक दर्शन माना है। गीता वेदान्तके
प्रस्थानत्रयीका अन्यतम, समस्त उपनिषदोंका सारभूत,
कृष्णके मुखारिवन्दसे नि:सृत अमृत, महाभारतका तत्त्व,
सर्वसम्प्रदाय-मान्य, काण्डत्रयात्मक प्रन्थ है। इसमें भी
भगवत्तत्त्वका विवेचन भिन्न-भिन्न अध्यायोंमें किया गया है।
प्रस्थेक सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें गीताके वचनोंको

प्रहण किया है। उसके तेरहवें अध्यायमें भगवत्तत्त्वका विशेष वर्णन है। भगवान्का विराट् व्यापक, सर्वमय खरूप इस प्रकार निर्दिष्ट है—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतःश्रुतिमछोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ (१३।१३)

भगवान् अपनी अचिन्त्य-शक्तिसे सर्वरूप हैं। वह सभी दिशाओं में सर्वत्र बाहर, भीतर, पाणिपाद, अक्षि, सिर, मुख, कर्ण आदिसे युक्त छोकमें सब चराचरको आवृत (व्याप्त) कर विद्यमान है। गीता ब्रह्म (भगवान्)के सगुण सविशेष तथा निर्गुण निर्विशेष उभय रूपोंका परिचय कराती हुई दोनोंको एक ही अभिन्न तत्त्व मानती है— सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चेव निर्गुणं गुणभोकृ च॥

वह परमात्मा (भगवान्) सभी चक्षुरादि इन्द्रियोंके ह्रपादिवृत्तियोंके आकारसे भासित होता है अथवा सभी इन्द्रियों और तद्विषयोंको आभासित करता है तथा सभी इन्द्रियोंसे रहित है। वह वस्तुतः देहेन्द्रियादि सम्बन्धश्चन्य है तथापि सबको धारण और पालन करता है। वह सत्त्वादि गुणसे रहित और सत्त्वादि गुण तथा उसके परिणामोंका भोका है। भगवान् एक अभिन्न तत्त्व है और उसकी सत्ता सर्वत्रं विद्यमान है—

(१३।१४)

विहरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
स्क्मत्वात्तद्विक्षेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥
(१३।१५)

जिस प्रकार सुवर्ण कटक, कुण्डल आदि आसूषणोंके और जल जलतरङ्गोंके बाहर तथा मीतर रहता है, उसी प्रकार परमेश्वर चर और अचर जगत्के बाहर और भीतर विद्यमान है; क्योंकि कार्य कारणरूप होता है। वह रूपादिरहित होनेसे अत्यन्त सूक्ष्म है, जिससे अविज्ञेय है अर्थात् इदम्, तत् इत्यादि स्पष्ट ज्ञानके योग्य नहीं। आत्मज्ञानसे शून्य प्राणियोंके लिये वह परमेश्वर करोड़ों

कोस दूर है और हजारों वर्षोमें भी वे उसे नहीं पा सकते। किंतु आत्मतत्त्ववेत्ता विद्वानोंके लिये वह अत्यन्त निकट है; क्योंकि वह प्रत्यक् (आत्म) खरूप है— अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्। भूतभर्तः च तज्ह्रेयं प्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥ (१३।१६)

सब प्राणियोंमें वह परमेश्वर (भगवान्) विभागरिहत एक है, न कि प्रतिशरीर भिन्न; क्योंकि वह आकाशकी तरह व्यापक है । किंतु शरीरमेदरूपसे प्रतीयमान ह्योनेके कारण प्रति शरीर विभक्तकी भाँति स्थित है। अर्थात उसमें औपाधिक मेदकी ही प्रतीति है, पारमार्थिक नहीं अथवा कारणरूपसे अभिन्न रहता हुआ कार्य-रूपसे भिन्न है। वह परमेश्वर स्थितिकालमें भूतों तथा प्राणियोंका धारक और पोषक है। वह प्रलयकालमें सक्की प्रसन करनेवाळा है और उत्पत्तिकाळमें नाना-रूपों उत्पत्तिशील है। जिस प्रकार भ्रमजन्य सर्पका रसी आधार है, उसी प्रकार मायाकल्पित जगत्का परमेश्वर आधार है । अतः समस्त संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण परमेश्वर ही है और वही ज्ञेय है। यह परमात्मा खयम्प्रकारा और सत्रका प्रकाशक है— ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। क्षानं क्षेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्। (१३ | १७)

वह ब्रह्म (भगवान्) बाह्म पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशकों तथा अम्यत्र प्रकाश करनेवाले बुद्धि आदि अन्तः करणोंका प्रकाशक है। वह अविद्या (अज्ञान) तथा अविद्याकार्य समस्त जडवंगसे परे है अर्थात् असंसृष्ट है। वही बुद्धिवृतिं अमिन्यक्त ज्ञान और रूपादि आकारसे ज्ञेय तथा ज्ञान हारा प्राप्य है। वह परमात्मा प्राणिमात्रके हृद्यमें जीव तथा अन्तर्यामी रूपमें स्थित है। 'अनादिमत्परं ब्रह्म सक्तन्तसम्बद्धच्यते' (१३।१२) अनादि, निर्वश्य देश-काल-वस्तु त्रिविध परिच्छेदोंसे रहित, सदस्र

विलसण ब्रह्म है। परमात्मा इस प्रकार ही सम्पूर्ण हुम्म प्रश्नित आधार है। वह स्थावर-जङ्गम जगत् भी भगवदाकार ही है। यह जगत् तथा समस्त जीव असते ही अंश हैं। उससे भिन्न या अतिरिक्त किसीकी सत्ता नहीं है, किंतु वह एतावन्मात्र ही नहीं है, अपितु अनत्त विश्वातिंग भी है और सब प्राणियोंमें वास करता है। जब प्राणी जगत्को भगवदाकार समझ लेता है, तब वह राग-द्रेष, मान-अपमान, सुख-दु:ख, खकीय-परकीय, शत्रु-मित्र, त्याज्य-उपादेय, प्रिय-अप्रिय, इदम्-अहम्, खत्व-पत्त आदि भावोंसे मुक्त होकर भगवन्मय हो जाता है। इसलिये वह भगवान् प्राणिमात्रके लिये सर्वथा आराष्य, ख्येय, श्रोतल्य, मन्तल्य, द्रष्टव्य और प्राप्य है। उसे प्राप्त करतेका भगवद्भक्त ही अधिकारी है, जो मान, दम्भ, हिंसा, कृटिलता आदि दोषोंसे रहित शान्त, दान्त, पित्रत्र,

स्थिरचित्त, आचार्योपासनारत, एकान्तवासी और विरक्त है। ऐसे ही भक्तोंको स्थितप्रज्ञ, स्थितथी, स्थिरथी, ज्ञानी, भक्त, गुणातीत आदि नाना नामोंसे अभिहित करते हैं— अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ (१२।१३)

गीता भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म, ज्ञान, घ्यान, भक्ति, प्रपत्ति एवं योगादि साधनोंका उपदेश करती है। प्रत्येक मनुष्य इनके द्वारा परमपुरुषार्थक्षप परमात्मतत्त्व प्राप्त करनेका अधिकारी है और तीव्र चेष्टाकर उसकी प्राप्ति शीव्र करनी चाहिये। अन्तमें हम भगव-तत्त्वके विषयमें आचार्य अभिनवगुप्तकी उक्तिका स्मरण दिलाकर इसे भगवदर्पित करते हैं—

पुमान् प्रकृतिरित्येष भेदः सम्मूढवेतसाम्। परिपूर्णास्तु मन्यन्ते निर्मलात्ममयं जगत्।

संत-मतमें भगवत्तत्वकी मीमांसा

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी विन्नानी 'ब्रजेश', साहित्यरल, धर्मरल, विज्ञानरल, आगम-वाचस्पति)

'संत' शब्दका प्रयोग पवित्रात्मा परोपकारी, सदाचारी पुरुष साधुओं एवं महात्माओं के छिये किया जाता है। व्यनिषदों के अनुसार यह ऐसे व्यक्तिका बोध कराता है, जिसने सत्-रूपी परमतत्त्वका अनुभव कर छिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्वसे ऊपर उठकर उसके साथ तद्भूप हो गया हो—'अस्ति ब्रह्मोति यो वेद संतमेनं ततो विदुः' (केनोप०)। 'संत'शब्दका व्यवहार उन आदर्श महापुरुषों के छिये किया जाता है, जो पूर्णतः आत्मिनष्ठ होने के अतिरिक्त समाजमें रहते हुए, निःखार्थ-मावसे विश्वकल्याणमें प्रवृत्त रहा करते हैं। यह शब्द आचार्य शंकरादि संन्यासी ज्ञानेश्वर आदि उन निर्गुण भक्तों-के छिये भी प्रयुक्त होता आया है, जो दक्षिणके विट्ठ या वारकरी सम्प्रदायके प्रचारक थे। उपनिषदों की परम्परा अविच्छिनक्रप्रमें अवतक भी प्रचित्रत है। इसकी एक

शाख 'निर्गुणमत' है, जिसे प्रसिद्ध वेदान्तसे अभिन्न समझा जाता रहा है (दे०—'निरगुन मत सोई वेदकी अन्ता, (संत गुलाल, अठारहवीं शताब्दी), किंतु संत तुल्सीसाहव (उन्नीसवीं शताब्दी) के समयसे इसका प्रयोग अधिक व्यापक रूपमें होने लगा (घटरामायण, पृष्ठ १४३)।

'संत-मत' खमावतः किसी सम्प्रदाय-विशेषके मूळ प्रवर्तकद्वारा प्रचळित किये गये सिद्धान्तोंका संग्रहमात्र नहीं है और न यह किसी ऐसे पद्धतिविशेषका ही परिचायक समझा जा सकता है, जिसे विभिन्न संतोंके परिचायक समझा जा सकता है, जिसे विभिन्न संतोंके उपदेशोंके आधारपर निर्मित किया गया हो। ईश्वरका अनुमव दूसरोंके कहने-सुननेपर विश्वास कर लेनेपर अनुमव दूसरोंके कहने-सुननेपर विश्वास कर लेनेपर निर्मर नहीं है और न उसे हम तर्क-वितर्कद्वारा सिद्ध करके समझ सकते अथवा इदयङ्गम कर सकते हैं। निर्गुण रामकी चर्चा सभी किया करते हैं, किंतु इसके रहस्यका परिचय जल्दी नहीं हो पाता। तात्पर्य यह कि शुद्ध खानुभूति ही उनके मतकी आधारशिला है और उनके ज्ञानको भी इसी कारण (सहज ज्ञान)का नाम दे सकते हैं।

संतोंने अपनी रचनाओं में, परमतत्त्वके विषयमें कथन करते समय उसके अनेक नाम दिये हैं, जिनमें से कुछ तो व्यक्तिगत हैं और अन्य केवल भाववाचक हैं। इन दोनों के उदाहरण में हम क्रमशः 'राम' एवं 'सत्' की चर्चा कर सकते हैं। 'सत्' उसे इसल्ये कहा जाता है कि उसके विषयमें हम विशुद्ध अस्तित्वसे अधिक कुछ भी नहीं कह सकते और उसे 'राम' भी केवल इसलिये कहा जा सकता है कि वह सारी वृत्तियों के रमण करनेका परमोत्कृष्ट तत्त्व है। उसका तात्विक खरूप कैसा है, यह पूर्ण रूपसे किसीको भी विदित नहीं हो सकता, किंतु उसे हम 'अद्धैत' शब्दसे व्यक्त कर सकते हैं और यदि उस 'अद्धैत' तत्त्वको किसी ईश्वरके रूपमें भी खीकार किया जाय तो उसे एकेश्वरवाद भी कह सकते हैं।

अद्वेतवादी वेदान्ती संतोंकी दृष्टिमें परमात्मतत्त्व एवं जीवतत्त्वमें मूळतः कोई भी अन्तर नहीं है । वे इन दोनोंको एक और अभिन्न ठहराते हैं । जीव उस परमात्माको तभीतक अपनेसे पृथक् मानता है, जवतक उसे उसका बोध नहीं होता । वस्तुस्थितिका परिचय पाते ही वह उसके साथ जलमें जलकी माँति मिलकर एक और अभिन्न वन जाता है और फलतः एक ऐसी स्थितिमें आ जाता है, जिसमें उसे पूर्ण शान्ति एवं परमानन्दका अनुभव होने लगता है । इस दशामें ऐसे साधकको उस परमात्मतत्त्व और अपने आत्मतत्त्वसे पृथक् किसी भी जगत्तत्त्वका ज्ञान नहीं रह जाता । वह सर्वत्र केवल उसी अभिन्नरूपको व्याप्त पाता है । वह जगत्के प्रत्येक पदार्थमें परमात्मतत्त्वका साक्षाद

करता है और इसी कारण उसे अपनेसे भी कभी भिन्न नहीं समझता। ऐसी मनोदशा हो जानेपर उसका न तो कोई अपना निजी आत्मीय रह जाता है और न कोई ऐसा ही प्राणी मिल्रता है, जिसके प्रति वह देखमाव प्रकट कर सके। संतोंके व्यापक प्रेम एवं भिन्वीर धर्म के लिये यह मनोवृत्ति महान् काम करती है और वे इसीके अनुसार विश्वकल्याणकी भावना भी प्रकट करते दीख पड़ते हैं।

संत-मत और सहज समाधि

संत-मतमें सिद्धान्तोंकी अपेश्वा साधनाओंका परिचय करानेकी ओर कहीं अधिक ध्यान दिया गया है। उनकी धारणा है कि परमतत्त्वको अपने अनुभवों लानेके लिये हमें अपनी वृत्तियोंको बहिर्मुखसे अन्तर्मुख कर लेना अत्यन्त आवश्यक है । संत-मतकी साधना 'सहज साधना' कहळाती है। उसमें न तो किसी मार्गविशेषको प्रहण करनेका आप्रह है और न वहाँ यही व्यवस्था दी गयी कि या तो अपने सांसािक बन्धनोंका सर्वथा परित्याग कर दिया जाय अथवा अपनेको प्रपञ्चोंमें आचूडमान कर दिया जाय। उसका अपना मार्ग विशुद्ध 'मध्यम' मार्ग है, जिसके अनुसार समाजमें रहते हुए या एकान्तमें रहकर किसी भी एक साधनाको अपनाते हुए आत्मोपछिभकी दशातक पहुँच सकते हैं। संत-मतकी आदर्श समाधि वह अपूर्व स्थिति है, जो साधकोंके जीवनभर एकरस बनी रहे और उसमें किसी क्षणिक परिवर्तनकी आशङ्का न आने पाये। इसीलिये उसे 'सहज समाधि'का नाम दिया गया है।

सामान्य जीवनमें अनेक प्रलोभन आते हैं जिनकी और हमारी वृत्तियाँ स्वभावत: बाहरकी ओर खिंचने लग जाती हैं। बहुत-से ऐसे प्रतिकृत्ल प्रसङ्ग भी आ जाते हैं, जिनके कारण पलायनकी प्रवृत्ति बल प्रहण करने लगती है। राग-देष एवं हर्ष-शोकके भाव जाप्रत् करनेवाले अवसर क्षाः प्रत्येक क्षणमें आ जाया करते हैं और हमारे चित्तको विक्ति कर देते हैं । संतोंने इसी कारण इस प्रश्न-ए बड़ी गम्भीरताके साथ विचार किया है और इसे मुख्झानेके लिये कुछ उपाय भी निर्दिष्ट किये हैं। उनका सर्वप्रथम उपदेश यह है कि हम अपने मनको ह्य भाग-स्मरणामें लगाये रहें और उससे एक पलके ब्रिय भी विरत न हों । जिस प्रकार कोई माता अपने हंनिक कार्योमें व्यस्त रहते हुए भी अपने बच्चेकी सुधि बहीं मूळती, कोई गाय चरागाहमें चरती हुई भी अपने क्रहेका स्मरण करती रहती है तथा जिस्स प्रकार कोई र्णिहारिन अपनी सिखयोंके साथ हँसती-खेळती जाती ई भी अपने सिरपर रखें घड़ेकी ओरसे घ्यान नहीं हाती, उसी प्रकार हम 'सुमिरन'का स्वभाव डालकर भी कभी परमात्मतत्त्वसे विलग नहीं रह सकते और इस प्रकार यदि उसमें हमारी स्थिति सदा वनी रह गयी तो प्ति हमारा संतुलन भी नहीं बिगड़ सकता । संतोंद्वारा निर्दिष्ट की गयी 'नाम-स्मरण' या 'सुमिरन'की साधनाको जनके पारिभाषिक राज्दों में, 'सुरतराब्दयोग'का भी नाम दिया गया मिलता है। 'सुरत'हमारी मूल-वृत्ति है, जो 'शब्द' अर्थात् हमारे शरीरमें उठनेवाले अनाहत गदसे बराबर जुड़ी रहा करती है और इस प्रकार उसके साथ तदाकारता प्रहण किये (हनेके कारण

इसके ऊपर किसी दूसरे रंगके चढ़नेका कभी कोई संयोग ही नहीं आ पाता।

संतोंने हमारी 'सुरत'को 'शब्द'की ओर प्रथम उन्मुख करनेके छिये किसी 'सत्गुरु'के माध्यमकी भी आवश्यकता बतलायी है । ऐसा गुरु कोई विस्तृतरूपसे शिक्षा देनेत्राला साधारण उपदेशक नहीं हुआ करता, प्रत्युत वह एक मार्गप्रदर्शकमात्र ही रहा करता है। वह केवल संकेत कर देता है और उसके शब्दोंमें निहित विलक्षण 'जुगुति'के सहारे साधक अपनी साधना आप-से-आप ठीक कर लेता है। इसके सिवा, ऐसे साधकके लिये 'संत-मत'में सत्सङ्गके वातावरणमें रहना भी अत्यन्त आवश्यक ठहराया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि उसका काम केवल अपनी साधनामें सिद्धि-लाभ कर लेनेसे ही नहीं चल सकता, प्रस्युत वह तबतक पूरा नहीं होता, जबतक उसे अपने सिद्धान्तको व्यवहारमें परिणत कर देनेकी क्षमता नहीं हो जाती। पहुँचे हुए साधु-संतोंके बीच रहकर ही वह अपनी अनेक रहस्यमयी गुल्यियोंको सुल्झा पाता है और उनके आचरण एवं व्यवहारको निकटसे देखकर ही वह भली-भाँति समझ सकता है कि जिस आदर्शकी उपलिचके लिये वह प्रयत्नशील है, उसका वास्तविक रूप क्या हो सकता है।

सत्सङ्गके बिना भगवत्प्राप्ति सहज नहीं

हरिनामकी, कथा विना सतसंग ना भागै। मोह ना हरिनाम विना ना मिलेगी, मुक्ति भागे विना अनुराग नाहि वित्र मुक्ति न होयगी, भक्ति अनुरागके जागै। प्रेम उर नाहि बिना विनु भक्ति प्रेम विजु राम ना, राम विजु संत ना, माँगै॥ वरदान सतसंग संत पलट्टास पलदू



सामाजिक एवं दार्शिनक पृष्ठभूमिमें भगवत्तत्व

(लेखक-प्रो॰ श्रीप्रफुल्लचन्द्रजी तायल)

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिक्रपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
'जड्-चेतन सभी प्राणियोंके भीतर कहीं गुप्त और
कहीं व्यक्त भावसे अवस्थित शक्तिक्रपिणी देवीको हम

बारंबार प्रणाम करते हैं।

सामाजिक संघटनके विश्लेश्रणमें जिन तत्त्वोंका योगदान है, उन सबमें अनन्तरूप श्रीभगवान्के रूपमें प्रकट होनेवाळी शक्ति ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका केन्द्रविन्दु सत्-चित्-आनन्दका एक ऐसा प्रकाशपुष्ठ है, जो सम्पूर्ण विश्वको आलोकित किये हुए है। इस शक्तिके प्रभावसे वटके बीजमें विशाल बृक्षके समान मांस-पिण्डरूप मानव-शरीरमें चैतन्यमयी बुद्धि तथा सूक्ष्म मनमें अनन्त ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित हैं। देश, महादेश, पृथ्वी, अनन्त जगत्, जाति, परिवार, समाज आदि अनादिकालसे इसी महाशक्तिसे प्रेरित होकर बनते-विगड़ते रहते हैं। पञ्चेन्द्रयोंद्वारा हम जिसका स्पर्श करते हैं, मनके द्वारा जिसका अनुमान लगाया जाता है वह सब इसी शक्तिसे सम्पन्न होता है—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ई श्रणोत्युक्तम्। अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥ (ऋग्वेदीय देवीसूक्त)

श्रीरामानुजिक मतानुसार ईश्वर चित् (जीव) और अचित् (जिड़ प्रकृति) दोनों तत्त्वोंसे युक्त है। वह एकमात्र सत्ता है, अर्थात् उससे पृथक् या खतन्त्र किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है। ब्रह्म और जगत्का कारण-कार्य-सम्बन्ध है, जैसे मकड़ी सतत् अपने जालेके साय रहती है। वह तत्त्व क्या है १ अद्भैतवादी समस्त विश्वको एक सामान्य रूप देना चाहते हैं, विश्वके एकमात्र तत्त्वको बतलाना चाहते हैं । उनके सिद्धाना-नुसार सारा विश्व एक है और एक ही सत् नाना रूपोंमें प्रतिभासित है। विश्वकी जितनी भी अन्य सत्ताएँ हैं, सभी भगवत्तत्त्वके भिन्न-भिन्न रूप हैं। प्रमतत्त्वके विघटनसे सांसारिक नाम-रूपोंके प्रतिभासित होनेके कारण मनुष्यका पारमार्थिक रूप छिप जाता है. परंत उससे वास्तविक परिवर्तन कदापि नहीं होता। निम्न-से-निम्न जीवमें और श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मनुष्यमें एक ही आध्यात्मिक तत्त्व विद्यमान है । जिस वस्तुमें अध्यास सबसे कम है, वह उतना ही उच्च कोटिका प्राणी है । प्रत्येक व्यक्तिको अभिन समझकर उसके साथ स्नेह करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण जगत्का मौलिक सार एक है। दूसरेको कष्ट देना अपने-आपको कष्ट देना है। दूसरेसे प्रेम करना अपने-आपसे प्रेम करना है। मनुष्य जब एक छोटे-से कीड़ेके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करनेके छिये तत्पर हो जाता है तो वह पूर्णत्वको प्राप्त कर लेता है। यही जीवनका अभीष्ट है । ईश्वरका अनन्त तत्त्व हम सबमें समाविष्ट है । व्यक्तित्वके निर्माणके लिये भौतिक अवपव (Orgons), समाज (Society) और संस्कृति (Culture) इन तीन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है। कहां करते हैं-इसी आधारपर समाजशास्त्री 'ईश्वर आत्मा है और आत्मा एवं सत्यके <u>द्वारा</u> ही उसकी उपासना होनी चाहिये। सम्पूर्ण जगत् एक ही सत्ता है । विभिन्नताओंके माध्यमसे हम इसी विराट् विश्वसत्ताकी ओर वढ़ रहे हैं । परिवासी कबीले, कबीलोंसे गाँव, गाँवसे जनपद, प्रदेश, राष्ट्र और राष्ट्रसे मानवता । इसीकी अनुभूति ही सम्पूर्ण झन

विवान है। एकत्व ज्ञान है और अनेकता अज्ञान। वगत्के सृजन-पालन और संहारकी जिसमें शक्तियाँ हैं और सर्वव्यापक, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् जिसकी अपधियाँ हैं, वह देवोंका भी देव परमेश्वर है। शुमेश्वर सर्वव्यापी, अप्रमेय, निर्गुण, निर्विकार और जात्का महाकवि है । सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र उसके इद हैं। जब वह सर्वव्यापी है तो फिर यह सत्य है कि सभी वस्तुएँ उसके तत्त्वरूपमें हैं। हमारे चारों और व्याप्त मायाका आवरण भी ईश्वरकी राक्ति है। किंतु गाया ब्रह्म अनित्य स्वरूप नहीं है, बल्कि इच्छामात्र है जिसको वह जब चाहे त्याग सकता है। आत्म-_{इान} प्राप्त करनेके वाद मनुष्य इस मायाके फंदेसे दूर हो सकता है। मायाके भी दो रूप हैं—शुद्ध सत्त्वा (विद्या) और मिश्र सत्त्वा (अविद्या) । शुद्ध सत्त्वनिष्ठ प्रमात्मा कह्छाता है । वही जगत्का कर्ती-धर्ता है । भविद्या-निष्ठ आत्मा जीव कहलाता है। वह अल्पज्ञ, शराक, परिच्छिन और भोक्ता है। इन दोनोंसे जो परे है, वह शुद्ध ब्रह्म है । अविद्यामें लिस प्राणी परमात्माको भूछ जाता है, अतः इस संसारचक्रमें युमता रहता है। शास्त्रोंमें इसी अज्ञानी जीवके लिये बान और भक्तिका विधान किया गया है। ब्रह्म शुद्ध सावमें छीन अपने उपासकको अपना पद प्रदान करता है। जीव, माया और परमात्मा ये तीनों तत्त्व अपृथक्, अनादि और अनन्त हैं। ब्रह्म सदा जीव और मायाके साथ रहता है।

तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे ईश्वर सर्वश्रेष्ठ सत्ता, सर्वश्रेष्ठ स्त्य और सर्वश्रेष्ठ साध्य है । उसकी सत्ता पारमार्थिक एवं आध्यात्मिक है । वह सभी प्रकारकी क्वाओंका आधार है । उसका मूल्य चरममूल्य है और कितनी भी वस्तुएँ मूल्यवान् हैं, उनका मूल्य सिंडिये है कि वह इस चरममूल्यसे सम्बद्ध हैं । श्वि अनन्त, पूर्ण और नित्य है । वह पुरुषोत्तम

है और परम कल्याणमय, प्रेममय है । जगत्की सृष्टि और प्रलय जो कुछ भी है, उसीकी इच्छासे है। जिस प्रकार एक अच्छा राजतन्त्र होता है, उसी प्रकार ईश्वर और सृष्टि है । दया, स्नेह और उदारतासे पूर्ण वह एक आदर्श सम्राट् है; जो प्रत्येक प्राणीके कर्मफलका हिसाव रखता है। उसीके अनुसार सुख-दुःख तथा जीवन-मरण आदि सांसारिक क्रियाकछापोंको मोगना पड़ता है । मनुष्य जिस प्रकारका कर्म करता है, उसको उसीके अनुरूप फल प्राप्त होता है। कर्मके महत्त्वको भारतीय दर्शनने बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे समझाया है। जिस किसी साधनके द्वारा उस ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार कर अपने कमोंपर नियन्त्रण रख सकते हैं। श्रीगीताके अनुसार भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग ब्रह्मतत्त्वके साक्षात्कारके मार्ग हैं । इनका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है । ईश्वर-लाभका सबसे सुगम उपाय है—भक्ति । भक्त वह है, जो सब कुछ त्याग कर भगवान्का ही नाम जपा करता है। वह निरन्तर स्नेहपूर्वक भगवान्की सेवा करता है । भक्त और परमात्माके साथ विश्वास और प्रेमका सम्बन्ध है।

भक्तिका मार्ग प्रत्येक वर्णके छिये खुछा है और यह सरछ भी है । भक्तको तो अनन्य मनसे भगवान्का घ्यान और स्मरण करना पड़ता है । कभी-कभी अत्यधिक कष्ट भी उठाना पड़ता है । नारदने भक्तिकी परिभाषा करते हुए उसे परमात्माके प्रति उत्कट प्रेम वताया है । यह भगवान्की करुणाके प्रति विश्वासपूर्ण आत्म-समर्पण है । मानवीय आत्मा परमात्माकी द्यक्ति, आत्म-समर्पण है । मानवीय आत्मा परमात्माकी द्यक्ति, जान और अच्छाईके चितनद्वारा भक्तिपूर्ण हृदयसे उसके निरन्तर स्मरणहारा दूसरे छोगोंके साथ उसके गुणोंके निरन्तर समरणहारा दूसरे छोगोंके साथ उसके गुणोंके विषयमें चर्चा करनेके द्वारा अपने साथियोंके साथ मिलकर उसके गुणोंका गान करनेके द्वारा और सभी मिलकर उसके गुणोंका समझकर करनेके द्वारा भगवान्के निकट पहुँचता है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

भक्त अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको भगवान्की ओर प्रेरित करता है। यथार्थमें श्रीभगवान् पूर्ण चिदानन्द-खरूपमें प्राणिमात्रके हृदय-देशमें प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान रहकर समस्त प्राणियोंको घुमाते-फिराते और विशेष उद्देश्योंके मार्गमें चला रहे हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

'आत्मामें परमात्मा'के निवासकी वात प्रत्येक धर्म स्वीकार करता है । आत्मा अनन्त-आनन्द-खरूप है, लिक्नमेदरहित है । अज्ञान ही जीवके बन्धनका कारण है, ज्ञानसे अज्ञान दूर होता है । इस ज्ञानप्राप्तिका उपाय क्या है !— भक्तिपूर्वक ईश्वर-आराधन एवं सर्वमूतोंको परमात्माका मन्दिर समझ उनसे प्रेम करना । शास्त्रोंमें परमात्माके दो रूपोंका वर्णन है । सगुण और निर्णुण । सगुण ईश्वरके अर्थसे वे सर्वव्यापी हैं । संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयकर्ता हैं । संसारके अन्तर्व हैं । सुक्तिका अर्थ उनके सामीप्य और सालोक्यकी प्राप्ति है ।

यज्ञ, दान, तप, खाध्याय, दयापूर्वक प्राणियोंकी सेवा, सत्सङ्ग आदि आत्मवलके सहायक और विषयेन्द्रियोंके सहयोग वन्धनकी ओर घसीटनेवाले शरीर-धर्मके पोषक हैं। इनके माध्यमसे व्यक्ति इन्द्रियोंपर विजय पाकर अज्ञानसे दूर हो सकता है। अतः भगवद्-भक्ति मीह एवं अन्धकारसे दूर ले जाकर प्रमुका साक्षात्कार कराती है, जो सत्त्वगुणसे सम्पन्न है। भोजन किया जाता है, शरीरको जीवित रखनेके लिये और शरीरका अस्तित्व रखा जाता है—भगवान्की सेवा अपनी बुद्धिके अनुसार करानेके लिये। जिन सौभाग्यशाली मनुष्योंके हृदयमें भगवान्का ध्यान निरन्तर बना रहता है, वे सब

पापोंसे शनै:-शनै: छूटकर परमपदको प्राप्त होते हैं। अतः प्रत्येक कर्म करते समय उनका स्मरण-चिन्तन-ध्यान करते रहना चाहिये।

ऋषियोंने परब्रह्मके खरूपको उसके क्षर-अक्षर, व्यक्त-अव्यक्त, प्रकृति-पुरुष, जड़-चेतन, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-रूपमें समझा है। जड़ पदार्थ क्षर होनेसे रूपान्तरशील हैं, परंतु निर्विकाररूप अक्षर सदेव एक रस है। आत्मभावसे प्राणिमात्रमें नहीं, अपितु चातुर्वर्ण्य अर्थात् मनुष्य, पद्यु, पक्षी, वनस्पित, खनिज पदार्थमें भी इस वेदान्तिक तत्त्वको अनुभव करके सत्य माना है। अव्यक्त आत्मा और उससे भी परे अव्यक्त पुरुषोत्तम यही ज्ञानीको सत्य रूप दीखते हैं। यही ज्ञानकी पराकाष्ठा है।

तत्त्वदर्शी इस सत्यका प्रत्यक्ष दर्शन अपने पाँचों कोशोंके साधन एवं संयमद्वारा पूर्णरूपसे कर चुके हैं। पर वे भी उस (प्रभु)का वाणीसे वर्णन करनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं। उसके अनन्त गुण गाते-गाते पुरुषोत्तम, भूतभावन, भूतेश, देवाधिदेव, जगत्पते इत्यादि-इत्यादि कोटिशत नाम लेते-लेते जब थक जाते हैं, तत्र अन्तमें 'तत्सत्' वह हे—न्त्रस, इतना ही संकेत करके मौन हो जाते हैं। इस परम तत्त्वकी प्राप्तिका मार्ग दिखानेवाले भगवान्के उच्चतम सत्य क्या संसार्मे कोई है ! 'तत्त्वकी प्राप्ति'का अर्थ ज्ञानचक्षुद्वारा परमेश्वरमें समझे हुए गुणोंको अम्यास और वैराग्यद्वारा अपनेमें स्थापित करना है। श्रीगीतामें भगवान्ने कहा है कि दैवी प्रकृतिके महान् पुरुष अविनाशी परमेश्वरकी सकल जगत्का उत्पत्तिकर्ता दढ़तापूर्वक समझकर फलतः यह जानकर कि उनसे बढ़कर संसारमें कोई वस्तु नहीं है, उसमें ऐसे संलग्न होते जाते हैं, जिससे उनका चित्त फिर किसी दूसरी वस्तुमें भटकने ही नहीं पाता।

अहंकारका त्याग, क्षमाकी वृत्ति धारण करनी, सरकता, स्नेह, गुरुसेवा, ग्रुद्धता (मन, वचन और कर्मकी), आचार-विचारमें स्थिरता, इन्द्रियसंयम, क्रोगोमें अरुचि, हिंसाका त्याग, अनासिक्त, सुख-दुःख, क्रिय-अप्रिय आदि इन्द्रोंमें समभाव रखना भगवान्की अनन्य एवं एकनिष्ठ सेवा (भिक्त) जनसमूहमें रहते हुए भी उसमें छिप्त न होना अर्थात् स्त्री-पुत्र-बन्धु-बान्धव आदिके प्रति अछिप्त रहना, सदा प्रमुके ध्यानमें छगे हिना, तत्त्वज्ञानके अर्थके रूपमें भगवान्को सर्वत्र देखना यही ज्ञान है । भगवत्त्त्वके अन्तर्गत सम्पूर्ण संसार चक्रीय परिवर्तनके सिद्धान्तमें बँधा है । बीजसे हुस, हुक्षका बीजमें समा जाना, बीजसे फिर हुक्ष—संसारका यह खेळ इसी प्रकार आदि-अन्तसे रहित उसके निर्देशनमें चळता रहता है । सम्पूर्ण सत्ताका अस्तित्व एरमात्माके कारण ही है । परब्रह्म प्रकृषोत्तम सारी

वस्तुओंके भीतर व्याप्त है । मानवकी आत्मामें तो उसका निवास है । वह इन्द्रियप्राह्य नहीं है, शास्त्रनिर्दिष्ट साधनोंद्वारा परमात्मकृपासे उसे जानकर साधक कृतकृत्य हो जाता है—

'जानत तुम्हिं तुम्हइं होइं जाई' जिसे ईश्वरकी चाह हैं, उसीको भक्तिकी प्राप्ति होगी, जिसमें दृढ़ भक्ति होगी, उसीपर भगत्रत्-कृपा होगी, उसे ही वे वरण करोंने और वही उन्हें प्राप्त करेगा—

नायमात्मा प्रवचनेन रूभ्यो न मेधया न यहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन रूभ्य-स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूश्स्वाम्॥ (कठोपनिषद् १।२।२३)

विनयपत्रिकामें भगवत्तत्व

(लेलक—श्रीविजयकुमारजी ग्रुक्क, एम्० ए० (हिन्दी, संस्कृत)

'विनयपित्रका' मिक्तका एक अपूर्व काव्य है। गोखामी तुल्सीदासजीने श्रीरामको परात्पर-ब्रह्म मानकर उन्हें अपनी यह रचना अर्पित की है। 'भगवत्' शब्द भग (ऐश्वर्य) शब्दमें मतुप् प्रत्ययके संयोगसे बना है। इसका अर्थ है— पडैश्वर्यवान्। 'विनयपित्रका'में गोखामीजी श्रीरामको जगिलयन्ता, ईश, अव्यक्त, सिबदानन्द आदि नामोंसे सम्बोधित करते हैं और अपनी पित्रका प्रेषित करनेसे पूर्व भगवान्के विविध रूप—गणेश, सूर्य, शिव आदिकी भी स्तुति करते हैं, जो क्रमशः इस प्रकार है—

गणपति तत्त्व

भगवान् शंकरके गण भूत-प्रेतादि हैं, जो अत्यन्त क्र खभावके हैं और सभी कार्योमें प्रायः विष्न उपस्थित करते हैं। गणेश गणोंके खामी या ईश हैं। खामीकी वन्दना करनेपर वे गण विष्नकारक नहीं रहेंगे, अतः विनयपित्रकामें उनकी सबसे पहले वन्दना की गयी। पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें व्यासजीने विष्नोंको दूर करनेके लिये गणेशजीकी पूजाका विधान वताया है। गणेशके नाम-रूप-गुण आदिके विषयमें 'विनयपित्रका'में इस प्रकार कहा गया है—श्रीगणेश शंकरजीके सुवन तथा भवानी-नन्दन हैं। शिवजीके पुत्र और भवानीके आनन्द-कर्ता। कहनेका भाव यह है कि गणेशजीका आविर्भाव जगदम्बाके गर्भसे नहीं हुआ है। पुराणोंमें गणेशके नामसे अभिहित किये जानेवाले देव वेदोंमें 'ब्रह्मणस्पित'के नामसे अभिहित किये गये हैं। ऋग्वेदके निम्नलिखित मन्त्रसे यह स्पष्ट है—

गणानां त्वा गणपति ५ हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तम् । ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रवणवन्नृनिभिः सीद्सद्नम् ॥

१-प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ । (मानस १ । १९ । ४)

उपर्युक्त मन्त्रमें गणेश 'ब्रह्मणस्पति' कहे गये हैं। 'ब्रह्मन्' शब्दका अर्थ वाक् (वाणी) है। अतः ब्रह्मणस्पतिका अर्थ वाणीका पति या वाणीका खामी हुआ। आरण्यक भी ब्रह्मणस्पतिके इसी अर्थका प्रति-पादन करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्में कहा गया है—'एष उ एव ब्रह्मणस्पतिवीग् वे ब्रह्म, तस्या एव पतिस्तसाद् ब्रह्मणस्पतिः। वाग्वे बृहती तस्या एव पतिस्तसाद् बृहस्पतिः।'

गणेशके जिस रूपका वर्णन पुराणोंमें मिळता है, उसकी पुष्टि भी वैदिक मन्त्रोंसे होती है। उनमें गणपतिके 'महाहस्ती', 'एकदन्त', 'वक्रतुण्ड' तथा दन्ती नामोंका उल्लेख है। गणपति शब्द इस अर्थका बोतक है कि गणेश समस्त देवसमूहके रक्षक, महत्तत्वादि समस्त सृष्टि-तत्त्वके खामी हैं तथा जगत्की उत्पत्तिके कारण भी हैं । मौद्रलपुराणमें मनो-वाणीमय सर्व दश्यादश्य जगत्का वाचक 'ग' तथा मनोवाणीविरहित जगत्का वाचक 'ण' वर्ण बताया गया है । अतः सर्वजगत्के ईश होनेके कारण गणपति हमारे सर्वतोमहान् आराध्यदेव हैं । ऐसे परमात्माका समस्त कार्योंके आरम्भमें स्मरण और पूजन पूर्णतः युक्तियुक्त है । गणेशकी मूर्ति साक्षात् (ॐ) प्रणव-जैसी प्रतीत होती है । शास्त्रोंमें गणेश ॐकारात्मक माने गये हैं। एक बार शिव-पार्वती चित्र-छिखित प्रणव (ॐ) पर ध्यानावस्थित दृष्टिसे देख रहे थे। अकस्मात् 'ॐ'कारकी भित्तिको भङ्ग कर गजमुख गणेशजी प्रकट हो गये। शिव-पार्वती इन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन हुए । गणेशके ॐकारात्मक होनेके कारण सब देवोंमें पहले उनका पूजन होना उचित ही माना जाता है; क्योंकि प्रणव (ॐकार) सब श्रुतियोंके आदिमें प्रमूत माने जाते हैं। इसी कथाके आधारपर शिव और पार्वतीके मानस-पुत्र गणेशके होनेकी पुष्टि होती है। सूर्यतत्त्व

'त्रिनय-पत्रिका'में गणेश-स्तुतिके पश्चात् सूर्यकी वन्दना की गयी है। सूर्य आयोंके प्रमुख देवोंमें है। सूर्यको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी माना गया है—

एव ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एव हि भास्करः। (सूर्योपनिषद्)

सूर्य जगत्के प्रकाशक हैं । मत्स्यपुराणमें सूर्यकी प्रतिमाके विधानमें इनके एक चक्रवाले दिन्य रथका जिसमें सात घोड़े जुते हैं -- वर्णन है । वह दिव्य वस मुकुटादिसे भी मण्डित है । पुराणों में सूर्यको 'त्रिमूर्ति' कहा गया है। वे ब्रह्म-विष्णु-शिव रूप हैं। सूर्यके सार्षि अरुण पङ्क है । यह उनकी अत्यधिक दयाका प्रतीक है कि सार्थिको पङ्ग होनेपर भी उन्होंने धारण किया । सामान्यरूपसे संसारमें मनुष्यकी कार्यशक्ति क्षीण हो जानेपर उसे सेवा-मुक्त कर दिया जाता है, पर सूर्यने पङ्गुको भी अपना रखा है। उनके रथकी दिव्यताका कारण है उसका एक चक्रयुक्त होना तथा उसमें सात घोड़ोंका जुतना । सूर्यकी दिव्य तेजोराशि, अलैकिक शक्ति और संसारके लिये उनका कल्याणकारी खरूप उनकी भगवत्ता ज्ञापित करता है। वेदोंमें सूर्यसे सी वर्षतक देखने, बोलने, सुनने और अदीन होका जीवित रहनेकी प्रार्थना की गयी है। सूर्यका तेज मेघ-जळादिसे सम्बन्धित होकर सप्तरिक्मयोंसे युक्त हन्द्र-धनुष्का उत्पादक होता है । सूर्य अपनी किरणोंसे सात

२-आत् न इन्द्र क्षुभन्तं चित्रं प्रामं संग्रभाय महाहस्ती दक्षिणेन । एकदन्ताय विदाहे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ॥ (तैत्तिरीयारण्यक) ३-मत्स्यपुराण २६० । १-४ ।

४-उदये ब्रह्मरूपस्त मध्याह्ने तु महेश्वरः । अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिस्तु दिवाकरः ॥ (भविष्यपुराण) ५-कुछ लोगोंद्वारा संवत्सरको रथका एक चक्र तथा सात रङ्गोंमें अश्वत्वकी कल्पना की भी व्याख्या प्रस्तुत की बाती है। ६-ग्रक्लयजुर्वेद ३६ । २४ ।

ंगोंका निर्माता है। विश्वके विभिन्नरूपोंको सृष्टि इसीके ह्या होती है। इसके रसका भौतिक रूप वर्षा है। इस अन्नाद उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सूर्य साशि भी है। गोखामी तुल्सीदासके इष्टदेव रामका जम सूर्यवंशमें हुआ है, अतः उन्होंने उपर्युक्त महिमा और दिव्य गुणोंसे मण्डित सूर्यकी वन्दना दूसरे स्थानपर की हैं। श्रीरामको भी उन्होंने दिनेश, भानुकुल्कानन-विकासी आदि उपमाओंसे विभूषित किया है।

शिवतत्त्व

गणेश और सूर्यके पश्चात् गोखामीजीने शिवकी स्तुति की है। शिव संसारका कल्याण करनेवाले हैं। उनका नाम शंकर भी है—'शं करोति इति शंकरः'।' समुद्रमथनके समय संसारका कल्याण करनेके लिये उन्होंने वित्रपान किया था। त्रिपुरासुरको उन्होंने मनो-वाञ्चित वरदान दिया, अतः वे अवढरदानी हैं।" काशीमें मरनेवालोंको वे राम-नामका मन्त्र देते हैं, अतः वे मुक्तिप्रदाता हैं। वे कामदेवके संहारक हैं।

कामदेवका निवासस्थान मन है। कामको भस्म किये जाने और रितके विलाप एवं देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जानेपर उन्होंने उसे अशरीरी होनेका वरदान दिया या। काम (कामनाओं) के नष्ट हुए विना मनकी शुद्धि या एकाप्रता नहीं हो सकती और मनके एकाप्र और कामनाश्चान्य हो जानेपर ही वह परम-तत्त्व या भगवत्-तत्वकी अनुभूतिके योग्य बनाता है।

'विनयपत्रिका'में गोखामीजीने अनेक पदोंमें शिवकी बन्दना की है। इसके दो कारण हैं—(१) शिवकी उपासना उन्होंने 'काम'के विनाशके लिये की हैं; क्योंकि 'काम' श्रीरामकी भक्तिमें बाधक है। ³ वह भगवद्गित्तिसे मनको हटाता है तथा मनमें स्नी-धनविषयक तथा यशोविषयक कामनाओंको उद्बुद्ध करता है। शिव कामके शत्रु हैं। अतः उनकी स्तुतिसे मिक्तमार्गमें आनेवाळी बड़ी-से-बड़ी बाधाको भी दूर किया जा सकता है। (२) शिवकी स्तुतिमें मायाके भेद-भ्रम-रूपको दूर करनेकी भी प्रार्थना की है। शिश्व खयं श्रीरामके परम भक्त हैं। श्रीराम सदा शिवके हृदयमें निवास करते हैं। शिरामकी सेवाके लिये ही उन्होंने हनुमद्वतार भी धारण किया। इसी प्रकार उन्होंने काली एवं सीताके रूपमें शक्तितत्त्वका भी वर्णन किया है।

भगवद्भुप राम

गोखामी तुल्सीदासजी श्रीरामको परब्रह्म मानते हैं। वेद-स्मृति-पुराणोंमें ब्रह्मके जितने विशेषण प्राप्त हैं, विनयपत्रिकामें तुलसीके राम उन सभी विशेषणोंसे विभूषित हैं । विनयपत्रिकामें रामके दो रूप हैं—(१) मानव और (२) ब्रह्म। राम यद्यपि मानवके रूपमें हैं, तथापि तुळसी बार-बार इस बातका घ्यान दिलाते हैं कि वे वस्तुत: साक्षात् ब्रह्म हैं और नर-रूप धारण कर लीला कर रहे हैं।¹⁸ नर-रूपमें आनेपर श्रीरामके लैकिक और अलैकिक गुणोंका समन्वय हो जाता है । श्रीराममें अलौकिक भक्तवत्सल्ता एवं शरणागत-वत्सळताके साथ अछौकिक सौन्दर्य-शीछ और शक्ति है । सीता और राम' उसी प्रकार अभिन हैं जैसे वाणी और अर्थ तथा जल और व्हर 2 । अवतारी रामके भी दो रूप हैं —सामान्य और असामान्य । विनयपत्रिकार्मे श्रीरामके असामान्य चित्रका सम्बन्ध रामके अवतारी-रूपसे जोड़ दिया गया है।" अपने सामान्यरूपमें भगवान् राम पूर्ण मानव हैं । उनका खभाव सरल है तया वे

प्यवंश १। ११। ८—विनयपित्रका ४५।३। ९—विनयपित्रका ४४।२। १०—विनयपित्रका ७—रघुवंश १। ११। ८—विनयपित्रका ४५।३। ९—विनयपित्रका ४५।३। ११—विनयपित्रका ७।५। १३—जहाँ राम तहँ काम निहं, जहाँ काम निहं राम। ११।११—विनयपित्रका ७।५।१२—विनयपित्रका ७।५।१२६ छन्द। १४—विनयपित्रका ७।५,१०।९।१५—वही १४।९। १६—मानस १।१३।३-४।१७—वही २।१२६ छन्द। १८—वही १।१८। १९—वही ७।११९ छ।

सबके प्रिय हैं। पुत्र, राजा, खामी, सखा आदि सभी रूपमें वे आदर्श हैं। इस प्रकार तुल्सीदासजी श्रीरामके चित्रमें लौकिक तथा अलौकिकका समन्वय कर पूर्ण मानवका आदर्श चित्रत्र प्रस्तुत किया है, जो अपने समिष्टिरूपमें ग्रुम (कल्याण)का प्रतीक बन गया है। विनय-पित्रकामें तुल्सीकी भिक्तका आधार भी यही रूप है। विसष्टसंहितामें श्रीरामके नाम, रूप, लीला और धाम — चतुष्ट्यको परात्पर सिंबदानन्दका नित्य-विप्रह कहा गया है। विनय-पित्रकामें भगवान् श्रीरामके इस विग्रह-चतुष्ट्यका पूर्णरूपेण निर्वाह हुआ है, जो इस प्रकार है—

नाम—गोखामीजीने नामका विशेष महत्त्व दिया है। विनय-पित्रकाके अनेक पदोंमें नाम-महत्त्व निरूपित है। यद्यपि भगवान्के असंख्य नाम हैं, किंतु 'राम' नाम ही सर्विधिक है। राम-नाम रिव, शिशा और अग्निके बीजाक्षरोंकी सहयोजना है। श्रीराम-नाममें विविध-रूपता है। राम-प्राप्तिका मूल साधन राम-नाम है। इसे गोखामीजी वीजमन्त्र मानते हैं । राम-नाम निर्गुण-सगुण दोनों तत्त्वोंको ग्रहण किये हुए है। यदि सगुणके ध्यानके योग सरस रुचिका अभाव हो और निर्गुण मनकी पहुँचसे परे हो तो ब्रह्मानुभूतिका मूल राम-नामका स्मरण उपादेय होगा। हृदयमें निर्गुण, नेत्रोंमें सगुण और जिह्नापर राम-नामका माधुर्य बसाना चाहिये। सीतारामका नाम प्रत्यक्ष चैतन्यखरूप ही हैं। इसीलिये विनय-पित्रकामें गोखामीजीने कहा है—

तुछसीके मतानुसार कलियुगमें रामका नाम ही कल्याणप्रद है।

रूपतत्त्व-गोखामी तुळसीदासजीने रामके नाम और रूप दोनोंको ईशकी उपाधियाँ माना है^{२२}। विनय-पत्रिकामें रामके रूपका इस प्रकार चित्रण हुआ है—

> संग्राम-जित-खरदृषणं॥ (विनयपत्रिका ४५)

श्रीरामचरितमानसमें उनका खरूप आद्-अल-रहित है। वेदोंका भी कथन है—उस ब्रह्मका अनुमान केवल बुद्धिसे ही हो सकता है। विनय-पित्रकार्में उनके रूपकी विश्वोत्तरताका प्रतिपादन हुआ है । श्रीराम ब्रह्महैं। वे जगत्के कल्याण-हेतु तथा भक्तोंको सुख देने एवं लीला करनेके लिये ही अवतार धारण करते हैं। इस प्रकार उनके निर्गुण और सगुण दो रूप हैं। विनय-पित्रकामें हरिशंकरी पदमें विष्णु तथा शिवकी एकरूपता प्रदर्शित की गयी है। श्रीराम पद्मह्म, परमिवष्णु तथा परमिशव भी हैं। इस प्रकार राममें शिवक और सीतामें शक्तित्वकी विद्यमानता है। श्रीराम परम विष्णुके ही सगुणरूपमें आविर्भूत हैं। अतः राम विष्णुके अवतार हैं। रमा सीताके रूपमें रामकी सहयोगिनी हैं।

गुण-भगवान् राम सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंसे युक्त हैं। एक ही ब्रह्म श्रमवश सगुण एवं

२०-विनय-पत्रिका २२७ । ४, २१-वही १०८ । ४, २२-मानस १ । २१ । १ । २३-विनयपत्रिका ४५

विग्ण दो रूपोंमें आभासित होता है । यथा—आँखमें अंगुड़ी इगाकर देखनेसे एक ही चन्द्रमा दो दिखायी के हैं । वेदों और उपनिषदोंने निर्गुण-ब्रह्मका सगुण होना बताया है । पुरुषसूक्तमें सम्पूर्ण विश्वको ब्रह्मका शरीर कहा गया है । 'विनय-पत्रिका'में रामको सगुण- विग्रुण, सकल दश्य-द्रष्टा' बताया गया है । राम सुविदानन्द्षन हैं । श्रीरामके गुणोंके ज्ञाता शिव, हनुमान, लक्ष्मण और भरत हैं । षड्-दर्शन, अष्टादश पुणा तथा वेद—सभी उनके गुणोंका भिन्नरूपसे गान करते हैं । विनय-पत्रिकामें कहा द्वाग्या है—

तमुक्ति समुक्ति गुनम्राम रामके, उर अनुराग बढ़ाउ। तुक्तिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ॥ (विनयपत्रिका १००। १०)

लीला- निर्गुण-ब्रह्म संसारके पाप-तापको दूर करनेके लिये सगुणरूप धारण करता है । सगुण भगवान् रामकी लीलाएँ भक्त, ब्राह्मण, देवता, चेनु तथा भूमिके कल्याणके लिये हुई हैं । विनय-पत्रिकामें श्रीरामके द्वारा की गयी लीलाओंका उल्लेखमात्र किया गया है—

पिछा, गुह, गीघ, किप, भीछ, भाछ, राविचर
स्थाल ही कृपालु कीन्हे तारन-तरन।
पीठ-उद्दरन! सील-सिंधु ढील देखियतु
गुलसो पै चाहत गलानि ही गरन॥
(विनयपत्रिका २४८। ४)

गोखामी तुल्रसीदासजीने विनय-पत्रिकामें अपने देन्यको ही प्रधानता दी है। अतः भगवान्की इन अलाओंका स्मरणकर उनके प्रति अपनी दास्य मावनाका प्राबल्य प्रदर्शित किया है।

धाम-साकेत एवं अयोध्या मगवान् रामके नित्य एवं छीछाधाम हैं । वन्च अयोध्या नगरी रामके परम धामको देनेवाछी है । मगवान् श्रीराम खयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं कि नेद-पुराणादिमें नेकुण्ठकी महिमाका बहुत अधिक वर्णन है, किंतु अवधपुरीके समान तो वह भी मुझे प्रिय नहीं है । श्रीराम अपने धाम अयोध्यामें जन्म लेनेवाछोंको मुक्ति प्रदान करते हैं।

'विनय-पत्रिका'में चित्रक्टको श्रीरामका प्रिय विहार-स्थळ बताया गया है। श्रीगोखामीजी अपने मनको संबोधित करते हुए मनसे चित्रक्ट चळनेके ळिये कहते हैं। वनवास-अवधिमें चित्रक्ट ही रामका विहार-स्थळ था। अतः उसकी महिमा किसी प्रकारसे कम नहीं है। चित्रक्टका कामदगिरि सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाळा चिन्तामणि और कल्पवृक्ष है ।

इस प्रकार विनय-पत्रिकाके भगवान् श्रीराम समस्त हैय गुणवर्जित अनन्त गुणराशि त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे परे पूर्ण परब्रह्म हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्के नियन्ता हैं। भक्तोंके हितके छिये वे सगुण-रूप धारणकर अवतार प्रह्ण करते हैं। सगुणरूपमें उनकी की गयी छीछाएँ अमित माधुर्यसे ओत-प्रोत हैं। वे शीछ-शक्ति-सौन्दर्यके भंडार हैं। जगत्में धर्म-यश-श्री-ज्ञान और वैराग्यकी वृद्धि करनेवाले हैं। उनका सबसे बड़ा गुण है—करुणा। अतः वे करुणासागर भी हैं। संसार-सागरसे पार पानेके छिये उनके चरण-कमछ नित्य वन्दनीय हैं— बन्दैं, रचुपित करूना-निधान। जाते छूटे भव-भेव-ज्ञान॥

रेप-मानस १। ११७। २, २६-गुक्र यजुर्वेद ३१। १९, २७-विनयपत्रिका ५३। ७, २८-वही ५५। १, १९ मानस १। ११७। २, ३०-विनयपत्रिका ४३। १-२। ३१-विनयपत्रिका ४४। २, १०। १, ३८-वही ७। ४। २, ३५-विनयपत्रिका ६६। ४। १०। १, ३२-मानस १। ३५। २, ३३-वही १। १६। १, ३४-वही ७। ४। २, ३५-विनयपत्रिका ६६। ४।

किसको भजूँ ?

(त्रेलक—प्रभुपाद श्रीप्राणिकदोरजी गोम्बामी)

इस विश्वका परम कारण कौन है ! इसका अन्वेत्रण अनन्तकालसे चल रहा है। यह विश्व कहाँसे आया, इसकी गति किस ओर है ? वृक्षादि मूढ योनियोंसे ज्ञानी मनुष्यका उत्कर्प किस प्रकार सार्थक होगा ! ऋषि, मुनि, साधु, सज्जन, ज्ञानी, गुणी, विज्ञानी और कल्याणकामी लोगोंने कितनी ही बार इन सब बातोंपर विचार किया होगा। प्रगतिका पथ प्रशस्त और आलोकित करनेके लिये प्राचीन मनीषियोंका अनुसरण करना चाहिये। 'ज्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'—संसारका ज्ञानभण्डार त्र्यासका उच्छिष्ट-सा है---ऐसी प्रसिद्धि एवं मान्यता रही है । त्रिश्वके कारणानुसंधानमें अप्रदूत, ज्ञान-विज्ञान-विग्रह ज्यासकी वात सर्वप्रथम विचारणीय है। विरक्तके अनुसार संसारमें छः भावविकार हैं । वे हैं---(१) जन्म, (२) अस्तित्व, (३) वृद्धि, (४) विपरिणाम, (५) अपक्षय एवं (६) विनारा । ज्ञानी पण्डितोंने फिर यह भी स्थिर किया कि सभी कारणोंका कारण परमात्मा इन छ: प्रकारके भावविकारोंके अधीन नहीं हो सकता । निश्चय ही वह इन सबसे अतीत है । पर कालकी गोदमें रहनेवाले सभी संसारी इन्हीं भावविकारोंक अधीन हैं । मात्र परम पुरुषोत्तम निश्चय ही इन भावविकारोंसे मुक्त है। 'वेदान्तसूत्रमें' व्यासजी कहते हैं.... 'जन्माद्यस्य यतः ।' इस विश्वगोचरका जन्म, स्थिति और प्रलय जिससे होता है, वह परमतत्त्व ही हमारे अनुसंधानकी वस्तु है। वही वस्तु आनन्दमय है---

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते तत्समश्चाभ्यधिकश्च द्रवते। शक्तिर्विविधैव परास्य श्रुयते

खाभाविकी शानवलिकया च ॥ भगवान्का शरीर प्राकृत नहीं है। वह कार्य भी

नहीं है । कार्यका अभाव होनेके कारण उनकी प्राकृत

इन्द्रियाँ भी नहीं हैं। उनके समान या उनसे अधिक भी किसीको नहीं कहा जा सकता। उनकी ये ज्ञान और क्रिया आदि शक्तियाँ विचित्र, अगणित एवं अपनी स्वाभाविक हैं। विष्णु त्रिलोकके स्रष्टा हैं। अग्नि, ग्राय आदित्य सभी उनकी सृष्टि हैं । प्रत्येक ध्रुलिकण उनकी सृजनी-शक्तिका फल है । उनकी महिमाकी का ऋग्वेद कहते हैं-

'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं य पार्थिवानि विममे रजांसि।' (ऋक्संहिता २ । २ । २४)

परम इश्वर विष्णुके परमधाममें माधुर्यका उत्त निकलता है। इसी विष्णुलोकमें गमनकर मनुष्याण पूर्ण तृप्तिलाम करते हैं । त्रिष्णुका प्रियधाम सक्का ही सेःय है। त्रह स्थान ही सबका अभिलित है।

तदस्य प्रियमभि पायो अस्मा-मदन्ति । देवयब्ये बन्धुरिक्थाः हि स विष्णोः पदे परमे सर्व उत्सः॥ (ऋक्संहिता १ । १५४ । २)

-- 'जो लोग भगवान् के प्रति ऐकान्तिक भाव धाए। करते हैं एवं सर्वदा प्रार्थनानिरत रहते हैं, वे ही स भ्रान्तिहीन मानव विप्णुका परम पद लाभ करते हैं -

तद्विप्रासो विपण्यवो जागृवांस समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदम् । (ऋ०१।२२।२१)

—'हे स्तोतृवृन्द! आपलोग विष्णुको ही प्रम स्तवनीयक रूपमें समझें । वे ही अनादि, सिद्ध, यह एवं यज्ञेश्वर हैं । यज्ञ ही विष्णु हैं । उनकी महिमाके विज्ञानके लिये ही उनकी स्तुति करनेका प्रयोजन है। वे सर्वव्याक हैं । उनका नाम नमस्य है और वे सर्वप्रकारी

श्रीमाणाओंको परिपूर्ण करनेमें समर्थ हैं। विध्युका सम भी खयं विष्णुकी मौति ही सर्वस्यापी है— तमु स्तोतारः पूर्व यथाविद ऋतस्य गर्भ जनुषा पिपर्तन। यस्य जानन्तो नाम चिद्धिविक्तन महस्ते विष्णो सुमृति भजामहे॥ (% २।२।२६)

·तुम उसका ही एक कथामें प्रसिद्धि-प्राप्त सर्ववेद-_{धनिर्वारित} परम देवताका ही स्तवन करो प्रिवर्गिति परम देवता भगवान् श्रीकृष्ण हैं'— स मन्त्रके तात्पर्य-वर्गन-प्रसङ्गमं 'श्रीहरिभक्तिविछास'की वैकामें कई सुन्दर विषयोंका उल्लेख किया गया है। किस प्रकार उसकी स्तुति करनी होगी--यही ब्स करके कहते हैं--- 'यथाचिद्' अर्थात् जिस प्रकार एवं जितना जानो उसी प्रकार महिमाकीर्नन करो। उसके स्तोत्र-कीर्तनका कोई नपा-तुला नियम नहीं है। उनका क्या रूप है, यदि इस वातकी जिज्ञासा करते हो तो ऐसा होनेपर कहा जाता है 'पूर्व' पुरातन । अभी द्वापरमें, कल्टिमें अवतार हुआ है ^{पह} मानकर नूतन मत समझ लेना । वे सब अवतारोंका अवतारी हैं। ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विष्रहः। अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥ वी वेदके गर्भ 'ऋतस्य गर्भम्' या तात्पर्यगोचर वातक्य सिवदानन्द्घन सूर्ति हैं-'तं देवं जनुषा पिर्तन' खच्छन्द चरित्रवाले उनके बहुविध मतस्यादि अतारोंकी छीलाकथाओंद्वारा परिपूर्णरूपमें उनका वर्णन भो। पण्डितगण ! आपलोगोंने उनको सर्वोत्कृष्टरूपमें

ही अवधारण (निश्चय) किया है । आप 'आ विविक्तन' सम्यक्-रूपमें उनकी महिमाका कीर्तन करें । भगवन् ! हम आपको ठीक-ठीक जाननेमें भी असमर्थ हैं और स्तवनमें भी शक्तिहीन हैं । हमलोग आपके नामका ही भजन करते हैं । आपका नाम-सेवादारा ही आपकी सम्यक् रमृति, ज्ञान एवं कीर्तन सम्पन्न होगा । भगवान्के नामकीर्तनद्वारा ही उनके प्रति आसक्ति-अनुराग उद्भूत होता है । अत्रव नाम ही सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ अवलम्बन है । अर्जुन कहते हैं—स्थाने हर्णिकेश तब प्रकीर्त्या जगत्मह स्थाने हर्णिक स्थाने स्थान स्थ

'ह्रवीकेश ! आपकी महिमाके कीर्तनमें समस्त जगत् हर्षित और आपके प्रति अनुरक्त होता है, यह उचित ही है । क्योंकि आप ही सबके आदिदेव, पुराणपुरुष एवं विश्वके परम आश्रय हैं—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

श्रीसनत्कुमारजीने पृथुसे कहा था 'जिनके चरणोंकी भक्ति—भजनसे संत लोग कर्मप्रन्थिको छिन कर डाळते हैं, वे भगवान् वासुदेव ही भजनीय हैं—

यत्पाद्पङ्कजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं प्रथितमुद्रथयन्ति सन्तः। तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम्॥ (श्रीमद्रा॰ ४। २२। ३९)

इस प्रकार भगवान् कृष्ण ही एकमात्र भजनीय 'तत्त्व' सिद्ध होते हैं ।

श्रीकृष्णकी भक्ति ही श्रेष्ठ है

अन्याभिलापिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् । आनुक्ल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥ (इरिमक्तिसामृतिसम् पूर्व०१।११)

'प्रपत्तिकी अनुकूल-भावनासे (प्रेमपूर्वक) श्रीकृष्णका तत्त्वतः अनुशीलनरूपी भजन करना ही श्रेष्ठ भक्ति है, जिस न तो कामना हो, न जिसपर ज्ञान-कर्म आदिका आम्रहावरण हो।'

सबमें रमता राम तुई।

(रेखक-श्रीकृणदत्तजी भड़)

प्रकृतिकी रंग-त्रिरंगी फुळवारीको देखकर, मानव पशु-पक्षी, कीट-पतंगों आदिकी अद्भुत सृष्टिको देखकर, सूर्य-चन्द्र-तारोंको, षड्-ऋतुओंको यथासमय चक्कर लगाते देखकर मानव सहज ही सोचने लगता है कि निश्चय ही इस सारे खेलके पीछे कोई परम कुशल मदारी है। बड़ा चतुर है वह मदारी—'पन्ते पनेको कतरन न्यारी, हाथ कतरनी कहीं नहीं।'

सृष्टिके सौन्दर्यको देखकर ऋषिछोग उस अनुपम ल्रष्टाकी खोजमें लग गये । उनका चिन्तन-मनन, ध्यान, धारणा और समाधि—सबका रुक्ष्य यही रहा कि उस परम ज्ञानी नियन्ताका पता छगे। 'कैसा है वह ! कैसा है उसका खरूप ! क्या-क्या हैं उसमें गुण !' आदि आदि । यह खोज चळती रही, शताब्दियों, सहस्राब्दियोंतक चळती रही । पर वह मदारी, जादगर तो सहज पकड़में आनेवाळा नहीं। जो कोई उसे देख पाता है, समझ पाता है, उसमें यह शक्ति और सामर्थ्य नहीं कि उसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन कर सके—'जो जाने सो कहै नहिं कहै सो जाने नाहिं!' 'गिरा कनयन नयन बिन्न बानी' वाठी स्थिति आ जाती है—गूँगेका गुड़ है वह।

x x x

ऋषियोंने इदयकी पावन-गुहामें समय-समयपर उस अनुपम रूपराशिक जो दर्शन किये, वे कभी-कभी वेदकी ऋचाओंके रूपमें मुखरित हो उठे। आइये, हम उन्हींके सहारे उस परमतत्त्वकी हलकी-सी झाँकी करनेका प्रयत्न करें। ऋषि कहते हैं—'स पर्च्यगाच्छु-क्रमकायमवणमस्नाविरं गुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यव्धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥'(ग्रुह्मयजु० ४०।८)

त् अकाय अज्ञण अस्नावित परम शुद्ध है ब्रह्म तुद्दी। किव त्रिकालन्दर्शी सुमनीबी, सबका कर्ता एक तुद्दी॥

त् अकाम निष्काम धीर है, ज्योतिरूप है विश्वमार। अजर-अमर आनन्दपूर्ण है, देव दयामय एक तृही॥
त् परिभू है तृही स्वयंभू त् प्रकाश देता रिको।
रससे रहता सदा नृह त् देवोंका भी देव तृही॥

हे प्रभु ! तू सारे जगका रचियता है, तू काण,
सूक्ष्म और स्थूछ-शरीरोंसे रहित है । नस-नाड़ीके
बन्धनोंसे तू मुक्त है । तू शुद्ध है, पित्र है,
अपापिबद्ध है । तू कि है, मनीषी है, त्रिकाळदर्शी है,
सर्वव्यापी है, स्वयम्भू है । तू अनादिकाळसे जीवोंको
वेदोंद्वारा ज्ञान देता आया है ।'

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कृतश्चनीनः। तमेव विद्वान् न विभाय मृत्यो-रात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

(अथर्वेद १०।८।४४)

'वह परमेश्वर परम प्रभु निष्काम है, धीर है, अमा है। खयम्भू है, अनादि है। वह रससे तृत है, आनन्दम्य है। सर्वधा परिपूर्ण है। उस परमतत्त्वको जो लेग जान लेते हैं, उन्हें जन्म-मृत्युका भय नहीं रहता। श्रामियोंने आँख खोलकार जब उस परम तत्त्वके दर्शन किये तो उन्हें लगा कि यह तत्त्व तो यत्र-तत्र-सर्वत्र मैला है। फिर तो भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे—उनकी रोम-रोम पुकार उठा—

सहस्राणि पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र^{पात्।} स भूमिश् विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठहराङ्क्ष्म्। (ऋ॰ १०।९०।१)

और—
विश्वतश्चश्चरुत विश्वतोमुखो
विश्वता बाहुरुत विश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यां धमति सम्पतन्नर्याचाभूमी जनयन् देव प्रभागः।
(शुक्लम्बु॰ १० । १०)

कैसा अद्भुत है वह परम प्रभु ! वह परमपुरुष अनन्त ब्रॉगला, अनन्त नेत्रोंबाला है । अनन्त पग हैं उसके । ह सारी पृथ्वीको, सारी भूमिको, सारे ब्रह्माण्डोंको चारों और पूर रहा है। इतना होनेपर भी वह सबसे दस अङ्गृह ऊपर है अर्थात् वह हमारी दर्शन और परिगणनकी हीमारे कहीं परे हैं।

अनन्त नेत्रोंसे देखता है वह परमेश्वर, अनन्त मुखोंसे बेला है। अनन्त भुजाएँ हैं उसकी—'दयालु रीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं।'--वह अनन्त बल और पराक्रमसे भरा है। सर्वव्यापी है, वह एक है, अद्वितीय है। वह स्वयम्प्रकाशरूप है। वह सूर्य और <u>श्र्वीको कार्यरूपमें प्रकट करता है। अनन्त बरू-</u> पाक्रमद्वारा वह सबको धारण करता है। अर्थात्---सारे जगको है तू लखता नहीं छिपा तुझसे कुछ भी। सको घटमें तू बसता है, सबमें ब्यापक एक तु ही।। त् भनन्त बाहोंबाला है भरा पराक्रम औ बलसे। णवा पृथिवीका प्रकाश तू भरता सबमें ज्योति तु ही॥

'त्विमनद्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरीचयः विश्वकर्मा विश्वदेवो महां असि ।' (सामवेद उत्तर॰ १०।२६)

हे प्रमु!त् सबसे महान् है, सबसे बड़ा है। त एयको प्रकाश देता है, तू विश्वकर्मा है, सारे विश्वका चियता है। त् विश्वदेव है। देवोंका भी देव है। तेरी महत्ताका पार नहीं ।

वेदमें परमेश्वरके अनेक नाम मिलते हैं— अग्नि, मित्र, वरुण, इन्द्र, मातरिश्वा, मघवन् आदि । और सभी कते-एक महान् । क्या है इसका रहस्य ! कि प्रभु एक, रूप अनेक, तो नाम भी अनेक । ऋषियोंने इस भ्यको समझा और गहराईसे समझा । वे कहते हैं-

रन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुतमान्। एकं सद्विमा बहुधा वद्नित अग्निं यमं मातरिश्वानमाडुः॥ (ऋ० १ । १६४ । ४६)

ज्ञानीस्रोग एकमात्र सत्ताधारी परमेश्वरको अनेक नामोंसे पुकारते हैं। जैसे इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि। वही प्रभु दिन्य गरूमान् सुपर्ण भी हैं, वे ही यम हैं, वे ही मातरिश्वा हैं।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥ (यजुर्वेद ३२।१)

इन्द्र अरिन सविता है तू ही मित्र, विष्णु और वरुण तुही। पूषन मचवन जगन्नियन्ता रुद्ध और शिव एक तु ही ॥ तु ही बृहस्पति वाचस्पति है मघवा मंगलधाम तुही। अदिती माता भूमियावा सस्व रूपमें एक तुही॥ कहें मातरिश्वा हम तुझको गरूलान या सोम कहें। कह सुपर्ण इम नुझे पुकार उत्तरदाता प्रभू तु ही ॥

ऋषियोंकी यह अनुभूति अद्वैतवादकी परम पवित्र और सर्वोत्तम भूमिका है। नानारूपोंमें उन्होंने एक ही परम प्रभुके दर्शन किये। विविधतामें एकताकी यह पृष्ठभूमि परम मंगळमय, आनन्दमय और शान्तिमय है। ऋषि कहते हैं — 'क्रपं कपं प्रतिकपो बभूव तदस्य कपं प्रतिपक्षणाय ॥' (ऋ॰ ६। ४७। १८)

परमेश्वरने नाना रूप धारण कर रखे हैं। यत्र-तत्र , सर्वत्र हमें उसीके दर्शन होते हैं---

सुपर्णं विप्राः कवयो वाचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति॥ (स०१०।११४।५)

तत्त्रदर्शीलोग परमेश्वरको एक होते हुए भी नाना-रूपोंमें कल्पित करते हैं। इसीलिये ऋषि सभी नाम-ह्यपोंकी वन्दना करते हुए कहते हैं-

विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यश्चियानि वः॥ (ऋग्वेद १०। ६३।२)

हे प्रमो ! तेरे सभी नाम आद्राणीय हैं, सभी वन्दनीय हैं। आइये, हम भी उस परमनत्त्रके चरणोंमें यही निवेदन करें — नाम रूप तेरे अनन्त हैं करते हम चन्दन तेरा।

कवि ज्ञानी कहते सम स्वरसे-सबमें रमता राम तु ही ॥

प्रगव--भगवत्तत्व

(তৈৰেক – ভাঁত श्रीसर्वानन्दजी पाठक एम्० ए० (द्वय), पी-एच्० डी० (द्वय), डी० लिट्०)

पाणिनीय व्याकरणके अनुसार प्र उपसर्गपूर्वक स्तुत्यर्थक न् धातुसे करणार्थक अप् प्रत्यय और णत्यके द्वारा प्रणय शब्दकी निष्पत्ति होती है। 'प्रणूयतेऽनेन इति प्रणवः'का शाब्दिक अर्थ है—'वह साधन या करण जिससे भगवान्की स्तुति की जाय। प्रणवका दूसरा पर्याय 'ओम्' है । रक्षणार्थक 'अव् धातु एवं 'मन्' प्रत्ययके योगसे 'ओम्' वनता है । इसका अर्थ है— त्राणकर्ता या रक्षक । कोशोंके अनुसार ये दोनों शब्द समानार्थक हैं। ओम् पद अ, उ और म् इन तीन वर्णोंके योगसे बना है। प्रथम अक्षर 'अ' ब्रह्म, विष्णु, शिव, वायु और वैश्वानरका वाचक है। 'उ' शिव और ब्रह्मका वाचक है और अन्तिम अक्षर 'म' ब्रह्मा-विष्णु-शिव-यम आदि तत्त्वका अभिधायक है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- 'जो मनुष्य (व्यक्ति) समस्त इन्द्रिय-द्वारोंको रोककर और मनको हृदय-देशमें स्थिरकर, प्राणको मस्तकमें स्थापित कर परमात्मसम्बन्धी योग-धारणामें स्थित हो 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ मुझ निर्गण ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ देहको त्यागकर जाता है, वह पुरुष परमगति मोक्षको प्राप्त होता है । भगवान् कृष्णने ब्रह्म सिंबदानन्दघनका नाम निर्देश तीन प्रकारसे किया है (१) ॐ, (२) तत्, (३) सत्। इन्हीं तीन नामोंसे सृष्टिक आदिमें ब्राह्मण, वेद और यज्ञादि तत्त्वोंकी रचना

हुई | इन तीन नामोंमें प्रगत्रका ही प्राथम्य है। ओंकारक महत्त्वके वर्णनमें उपनिषद्का प्रतिपादन है कि 'सम्पूर्ण वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, सपूर्ण तपस्याएँ जिसके अन्तर्गत हैं, जिसकी इच्छासे ब्रह्मचारी व्रतका परिपालन करते हैं, संक्षिप़ रूप 'ॐ ही उसका पद है । अतएव इस अश्वर 'ॐ' प्रगवको जानका जो पुरुष जो चाहता है, उसे वही प्राप्त हो जाता है। यह तत्त्व परम आलम्बन है, इसे जानकर साक्र ब्रह्मलोकमें महामहिमामय हो जाता है।

🗫 यह अक्षर ही सब कुछ है। यह जो कुछ भूत-भविष्यत् और वर्तमान है यह सब न्याख्यारूप ओंबार ही है। इसके अतिरिक्त जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु हैं वे सब भी ओंकार हैं। यह जितना भी प्रतिपादका पदार्थसमूह है, वह अपने प्रतिपादकसे अभिन्न होनेने कारण और सम्पूर्ण अभिनान भी ओंकारसे अभिन होनेके कारण यह सब कुछ अनुभूयमान परार्थ ओंकार ही है। परत्रहा भी वाच्य-वाचक उपायोंके द्वारा ही जाना जाता है, इसिलये यह भी ओंकार ही है। छान्दोग्य-उपनिषद्के अनुसार 'ॐ' यह पद परमानमञ्ज निकटतम नाम है । इसके उचारणसे उपासक वैसा ही प्रसन्न होता है, जैसे अपने प्रमीक नाम सुनकर सांसांकि जन प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। आचार्य शंक्षते प्रणवको ब्रह्मका अर्थरूप माना है और प्रतिपादन किया है कि प्रणवक द्वारा हृदयमें मन आदि इन्द्रियोंके

१- प्रकर्षेण न्यते स्त्यते अनेन इति प्रणवः' 'ओंकारप्रणवी समी

⁽पातञ्जलयोग-दर्शन १।२७) २-अमर॰, १।६।

३-संस्कृतशब्दार्थकौस्तुभ-पृ० १, २१८, २१९, ८४७। ५-ॐतत्सिदिति निर्देशो ब्रह्मणिबिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ (गीता १७ । २३) ४-गीता ८। १२, १३

६-सर्वे वेदा यत्यदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्दन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्ये चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येत्त्। महीयते ॥ (कठोप० १ | २ | १५,१३) एतदालम्यनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं ब्रह्मलोके परम् । एतदालम्बनं शात्वा

[।] यचान्यत् त्रिकालातीत (माण्ड्स्योपः १ । १) ७-ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वे तस्योपन्याख्यानं भूतं भवन्द्रविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव तद्वाङ्कार एव ।

संयमित कर विद्वान् साधक संसार-सरिताको अनायास ही पार कर जाता है।

प्रणवकी व्यापकता

वौराणिकमतसे भूळींक, भुवळींक और खर्गळीक—-समस्त त्रिलोकी प्रणव (ॐ)से ओत-प्रोत है। प्रणव ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथववेद—लोक-बतुष्टयका प्रतीक है। प्रणव ब्रह्मको ही जगत्की उत्पत्ति और प्रलयका कारण माना गया है । शब्दशास्त्रके अनुसार अकार-उकार-मकार इन भिन्नाक्षरोंके योगसे 🕉 शब्द निष्पन हुआ है । इन तीन अक्षरोंसे भिन्न हिनेपर भी ॐकार ज्ञानियोंके लिये अभिन्न ही है। एक इसके अतिरिक्त किसी भी तत्त्व या पदार्थका अस्तित्व नहीं माना गया है । ओंकार जाप्रत्, लन और सुषुप्तिरूप धर्मोंसे युक्त होकर सर्वत्र विद्यमान भगवान् विष्णुका अभिन्न रूप माना गया है।

वह निखिल वाड्ययोंका अधिपतिरूप घोषित किया गया है । सूर्य विष्णुके श्रेष्ठ अंश और निर्विकार, अन्तर्ज्योति हैं । ओंकार विष्णुका वाचक ही है। स्तायम्भुव मनुने प्रणवके साथ भगवान्के नामजपके प्रणवसे त्रैलोक्यदुर्लभ अभिल्वित सिद्धि प्राप्त की थी तथा सप्तर्षियोंके द्वारा उपदेश पाकर उत्तानपादके पुत्र धुवने इसी मन्त्र-जपके प्रभावसे तीनों छोकोंमें उत्कृष्ट और अक्षयपद प्राप्त किया था, यह पौराणिक घोषणा है।"

उपर्यक्त विवेचनसे निष्कर्ष निकलता है कि विश्वमें कोई तत्त्व या पदार्थ ऐसा नहीं, जहाँ प्रणवतत्त्वकी व्यापकता न हो । सम्पूर्ण यज्ञाचरण, तपश्चरण आदि सत्कर्मोंकी सिद्धिमें ॐ (प्रणव) ही मूल कारण है और बिना प्रणवके किसी भी कियामें सिद्धि असम्भव है। अतएव ओंकारके साधनमें ही समस्त सिक्रयाएँ निहित हैं।

भगवत्तत्व और नामतत्व

(लेखक--श्रीरामपदारथसिंहजी)

श्रीभगवान्की भक्तिसे भगवत्कृपाद्वारा आसक्तिरहित

भक्तको भगवत्तरवका अनुभव होता है--

भगवद्धक्तियोगतः। पवं प्रसन्नमनसो जायत ॥ भगवत्तस्वविद्यानं मुक्तसङ्गस्य (श्रीमद्भा० १।२।२०)

गीता भी यही कहती है-

'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चासि तत्त्वतः। (१८ | ५५)

रामचरितमानसका भी कथन है कि भगवान् कृपा करके अपने भक्तोंको अपने सम्बन्धमें जब जना देते हैं, तब वे उन्हें जानते हैं--

'गुम्हरिहि कृपाँ तुम्हिहं रघुनंदन।जानिह भगत भगत उरचंदन॥' (२।१२६।४)

भक्तिके विविध भेदोंमें भगवन्नाम-जप अप्रगण्य है-

भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥ (श्रीमद्भा॰ ६ । ३ । २२)

दूसरे सभी साधन नामाधीन हैं---

भक्ति.चैराग्य-विज्ञान-सम-दान-दम-नाम,शाधीन साधन अनेकं। (विनय० ४६)

भगवत्तत्त्ववोधार्थः भगवन्नाम-जपकी सव साधनोंसे श्रेष्ठता शास्त्र-सिद्ध है । गोखामी तुल्सीदासजीका मन है कि नामके बिना रूपका ज्ञान नहीं होता--

रूप ग्यान निहं नाम विहीना। (रामच० मा०१।२१)

व्यात्रहारिक जीवनमें देखनेमें आता है कि हथेलीपर

भी प्राप्त परार्थका ज्ञान नामके विना नहीं होता-

रूप विसेप नाम विनु जाने । करतल गत न परहिं पहिचाने ॥ (१1२१14)

८-द्र०-विष्णुपुराण ३ । ३ । २१-२२ । ९-यही तथा माण्डूक्योगिनषद् १ । ८ । ११ १०-ओंकारो भगवान् विष्णुस्त्रिधामा वचसां पतिः । वैष्णवीऽशः परः सूर्यो योऽन्तर्थोतिरसम्प्रवम् । अभिधायक ओकारस्तस्य तस्रेरकः परः ॥

· (विष्णुपु २ १-८ । ५५-५६) **११-वही** १ । ११-१२ ।

श्रीहनुमान्जीके चरित्रसे भी यह बात सिद्ध होती है। खयं भगवान् श्रीहनुमान्जीके सम्मुख खड़े थे और वे विकल्पमें पड़े पूछ रहे थे कि वे कौन हैं। भगवान् श्रीरामने जब अपना नाम बतलाकर परिचय दिया, तब वे उन्हें पहचानकर उनके चरणोंमें गिरे—

कोसछेस दसरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन आए ॥ नाम राम लिख्निन होउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥ इहाँ हरी निसिचर बेदेही । बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥ प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥

(रामच॰ मा॰ ४।२।१-३)

इस नामयुक्त परिचयसे श्रीहनुमान्जीको भगवान्के स्राह्म पहचान मिल गयी और उन्हें वह वर्णनातीत सुख प्राप्त हुआ, जो भगवान्के समक्ष रहनेपर भी बिना नाम जाने अप्राप्त था।

इस प्रसङ्गसे भगवान्के नामके महत्त्वका अनुमान किया जा सकता है। भगवत्तत्त्वका ज्ञान बहुत कम छोगोंको होता है। ज्ञान सर्वाधिक दुर्लभ वस्तु है— 'नहिं कछु दुर्लभ क्यान समाना। (रामच॰ मा॰ ७। ११४)। सामान्यतः यह निश्चित करना भी कठिन होता है कि भगवान् सगुण हैं या निर्गुण। जिन्हें निरुचय हो जाता है, उनमें भी वादालम्बन और पश्चपात पाया जाता है। रामचिरत-मानसका लोमशा-मुग्जुण्डि-प्रसङ्ग इसका उदाहरण है। पर श्रीभगवन्नाममें इन दोनों समस्याओंका समाधान है। नामद्वारा भगवान्के निर्गुण-सगुण दोनों खरूपोंका ज्ञान होता है। नामको निर्गुण-सगुण दोनों खरूपोंको ज्ञान होता है। नामको निर्गुण-सगुण दोनों खरूपोंको ज्ञान होता हुना स्था और दोनों खरूपोंका प्रवाध करानेवाला चतुर दुमाविया कहा गया है—

अगुन तगुन बिचनाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥ (रामच० मा० १। २१।४)

भगवन्नाम सुसाश्चीके समान है । वह निर्गुण-सगुण-सम्बन्धी उल्जनको मिटाकर दर्शाता है—-'अगुनाई'

सगुनहिं नहिं कछ भेदा'। एक नामाराधनहीसे निर्गृण सगुण दोनों खरूपोंकी आराधना भी हो जाती है। नाम वह चतुर दुमाषिया है, जो निर्गृण-सगुण दोनों खरूपोंका प्रकर्ष बोध कराकर दृद प्रीति करा देता है। इसीलिये भगवान्के रूपको न माननेवाले भी भगवान्के नामको जपते हैं। भगवान्के निर्गृण-सगुण दोनों खरूप अनादि हैं, सनातन हैं—

भ्रानुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अन्पा। (रामच० मा०१ । २३१)

सगुण खरूप व्यक्त विश्वमें सदा व्यक्त नहीं हता है। इसिल्ये वह ध्यानका विषय है। ध्यानमें प्रीतियुक्त रुचि विशेष सहायक है। निर्गुण खरूप मनसे दूर है, वह समझमें नहीं आता। अतः भगवान्के दोनों खरूप सबके लिये सुगम-सुबोध्य नहीं हैं, दोनों अगम हैं, पर नामसे दोनों सुगम हो जाते हैं—'उभय अगम सुन सुगम नाम ते' (रामच॰ मा॰ १।२३)। गोस्तामी तुलसीदासजीने दोहावलीमें दोनों खरूपोंकी उपासनामें आनेवाली कठिनाइयोंके परिहारके लिये एक ही अचूक औषध सुझाया है, वह है—भगवान्के नामका जप—

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन ते दृरि। तुकसी सुमिरहु रामको नाम सजीवनि सूरि॥ (दोहा॰ ८)

भगवनाम सगुण-निर्गुण दोनों खरूपोंकी प्राप्ति है नहीं कराता, अपितु दोनोंको वशमें कर लेता है -- 'मोरे मत बद नाम दुहू तें। किये जेहिं जुग निज बस निज हैं। (रामच० मा० १। २३)

नामका पराक्रम अद्भुत है। वे भगवान्के अजि रूपको बिना किसी साहाय्यके अपने बलसे ही वर्शे कर लेते हैं। तास्पर्य यह कि बिना किसी अय साधनका अवलम्बन लिये केवल नाम-जपसे भगवार वशीमन हो जाते हैं। श्रीहनुमान्जी इसके प्रमाण हैं उन्होंने नाम-स्मरणद्वारा भगवान् को अपने वशमें का खा है—

धुमिरि पवनसुत पावन नाम् । अपने बस करि राखे राम् ॥
(रामच० मा० १ । २६)

आर्ष ग्रन्थोंके अनुसार भगवान्के नाम और रूपमें ग्रेद नहीं है। श्रीमद्भागवतमें भगवान्को 'मन्त्रमूर्ति' कहा गया है और नामद्वारा पूजनका परामर्श दिया गया है—

इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रसूर्तिममूर्तिकम्। यजते यश्चपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान्॥ (१।५।३८)

'इस प्रकार जो पुरुष भगवन्मूर्तियोंके नामद्वारा प्राकृतरूपरहित मन्त्रमूर्ति भगवान् यज्ञपुरुषका पूजन करता है, उसीका ज्ञान यथार्थ है। इससे यह सिद्ध होता है कि मन्त्र भगवान्की मूर्ति है । नाम तो महामन्त्र है । जिह्वापर नामका भाना, वहाँ भगवान्का भाना है । अतः भगवान्में जैसी आराध्य-निष्ठा होती है, वैसी ही निष्ठा नाममें भी होनी चाहिये। अनुभवी नामाराधकोंका अनुभव है कि नाममें आराध्य-निष्ठाका उदय होनेसे आराधकके हृदयमें नामीकी सम्पूर्ण बीलाएँ विशेष प्रभावी रूपमें प्रकट होने लगती हैं। गोखामी तुल्सीदासजीने रामचिरतमानस-(१।२४-२५) में श्रीरामावतारमें भगवान् श्रीरामद्वारा की गयी सम्पूर्ण ळीळाओंको नामाराधनद्वारा आराधकके जीवनमें होते दिखाया है । भगवान् श्रीरामने अवतरित होकर साधु-अहल्योद्धारण, संरक्षण, ससैन्यसुत-ताडका-विनाशन, श्रीशिवधनुष-खण्डन, दण्डकवन-सुहावनकरण, निशिचर-निकर-दलन, शवरी-गीध-सुगति-दान, सुग्रीव-विभीषण-आश्रय-दान, सेतुबंधन, सकुल रावणवध, राज्यसंचालन-द्वारा प्रजापालन आदि प्रधान लीलाएँ की । पर— नाम-जपसे तो साधकके हृदयमें नाम अवतरित होकर अपार मोदमङ्गलका निधान बना देते हैं। नाम-निष्ठासे दास-दोष-दुःख-दुराशारूपी ससैन्यसुत ताडका

विनष्ट होती है, और कुमितिरूपी अहल्याएँ सुधर जाती हैं, जन-मनरूपी अनेक दण्डकवन पवित्र होते हैं, सकल कलिकलुषरूपी निशिचर-निकरका अनायास दंलन हो जाता है । शबरी-जटायु तो सुसेवक थे, नाम कृपाकर अनेक खलोंका उद्धार करते हैं । सुग्रीव-विभीषण तो दो थे, नाम उनके-जैसे असंख्य दीनोंपर दया करते हैं। नाम लेनेसे संसार-सागर सूख जाता है, बड़े-बड़े अनुष्ठान-रूपी पुल बाँधनेके परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती। सेवक सप्रेम नामस्मरणसे मोहरूपी रावण और उसके दलको जीतकार खच्छन्द अपने मुखमें विचरते हैं। नामकी कृपासे उनको खप्नमें भी सोच नहीं सताता। इस प्रकार श्रीरामावतारके सभी प्रमुख कार्य श्रीरामनामा-राधनद्वारा सम्पन्न होनेका सुस्पष्ट प्रमाण मिलता है। इसलिये नामको इष्ट मानकर नाम-जप करनेसे सब कुछ मुलभ होता है, इसमें संदेह नहीं । यह शास्त्रका संकेत है।

नाम-जपमें—'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (पा॰ यो॰ द॰ १। २८)का भी विधान है, पर उसकी अनिवार्यता नहीं; केवल जप आवश्यक है। मनमें नामाश्वरकी भावना करके जप करना चाहिये अथवा केवल जप भी किया जा सकता है। नामस्मरणसे नामी खिंचा चला आता है—

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें । आवत हृद्य सनेह बिसेपें ॥ (रामच० मा० १ । २०)

गोखामी तुलसीदासजीका अटल विश्वास है कि केवल नामाश्रयणसे भी श्रीभगवान् कभी-न-कभी अवस्य दरेंगे।

मित राम-नाम ही सों, रित राम-नाम ही सों, गित राम-नाम ही की विपति-हरिन । राम-नामसों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक, तुल्सी हरैंगे राम आपनी हरिन ॥ दम्भ साधकका शत्रु है। वह सत्क्रमोंको उड़ा ले जाता है और साधकके हाथों जुड़ नहीं लगता। 'विनयपित्रका'में दम्भके दुष्कापको दिखाया गया है— करों जो कछ धरों सचि-पचि सुकृत सिलां बटोरि। पंठि: उर बरबस दयानिधि दंभ लेत। क्रिंजोरि॥ (विनयप० १५८)

मनमें कोई बुरी बात रावना और बाहर होगोंको नवीन क्रिया दिखाना दम्भ है कि दुर्गोंका विश्वास नहीं। परमोदार भगवान् श्रीराम भी दम्भी क्ष्मिटीको पसन्द नहीं करते हैं। उनका कहना है—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥ (रामच० मा० ५ । ४४ । ५)

लेकिन उनके नामका औदार्य और शक्ति आश्चर्यमय है। नामका द्वार दम्भीके लिये भी खुटा है। दिखानेके लिये किया गया नाम-जप भी निष्फल नहीं होता। दम्भ उसे उड़ा नहीं सकता है। दम्भपूर्वक जप भी सोच-सागरको सोखनेके लिये अगस्त्यजीके समान बन जाता है। नामके ऐश्वर्यका उद्घाटन नामके प्रभावका उत्तम ज्ञान रखनेवाले भगवान् शिवने किया है—

संभु सिखवन रसन हूँ नित राम-नामिह घोसु।
दंभहू किल नाम कुंभज सोच-सागर-सोसु॥
(विनयप० १५९)

मन और मन्त्रके योगका नाम जप है। मनसे न बन पड़े तो केवल जिह्नासे जैसे-तैसे भी नाम-जपका माहात्म्य है—

भावें कुभावें अनल आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥ (रामच० मा० १। २८)

इसका तात्पर्य यह नहीं कि नाम दम्भ-कुभावादिसे जपे जायँ, बल्कि किसी भी प्रकारसे जपना न जपनेसे अच्छा है। प्रतीति, प्रीति और सुरीतिसे किया गया नाम-जप आदि-मध्य-अन्त तीनों कालोंमें कल्याणकारी है। ऐसा

एक बारका नामोबारण भी तरनेवाला ही नहीं, तारनेवाला बना देता है---

बारक राम कहत जग जेऊ । होत तरन तारन नर तेऊ ॥ (रामच० मा० २ । २१५)

गजराज तो आधा नाम ही बोल पाया था, पर उसका उद्घार हो गया—

तरचौ गयंद जाके अर्द्ध नायं (विनयप०८३)।

भगवान्के नाम अनन्त हैं। सभी अनन्त मिहमामय हैं, पर श्रीरामनामकी एक स्पष्ट विशेषता सबकी समझमें आनेयोग्य है। वह है—उसका सुमधुर उच्चारण। मुँहको खोळकर पुनः बंद कर लेनेमात्रसे श्रीराम-नामका उच्चारण सुखपूर्वक हो जाता है। गोखामी तुल्सीदासजीने भी इस विशेषताकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है—

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। (रामच० मा० १।२०।२)

किंधुगके लोग खल्प सामर्थ्यवाले हैं । इन्हें खल्पायाससे सिद्ध होनेवाली साधना चाहिये। इस दृष्टिसे श्रीरामनाम सर्वाधिक सरल और सुखोपास्य है। देविषे नारदने वरदान माँगकर श्रीरामनामको अन्य नामोंसे वड़ा करवाया—

तब नारद बोले हरषाई। अस वर मागउँ करउँ दिराई॥ जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥ राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अब खग गन विधिका॥ (रामच० मा० ३। ४२। ६-८)

ऐसा प्रतीत होता है कि नारदजीन होगोंद्वारा श्रीरामनामके प्रति अनादरकी भावना निराकरण कराया है। छोटे आकारको देखकर भगवन्नामको छोटा समझना भी खयं घाटेमें रहना है। नाम देखनेमें छोटा होनेपर भी महान् है। जैसे पृथ्वी बीजमय है और आकाश नक्षत्रमय, यैसे ही नाममें सभी छोटे-बड़े धर्म समाय हए हैं—

विश्व विजमय नखत निवास अकास । विश्व मिस्स विजमय जानत तुल्सीदास ॥ (दोहावली २९)

अविश्वास, आलस्य, प्रमाद आदि नाम-जपमें वाधा है। इन्हें प्रयत्नपूर्वक छोड़कर जपका अभ्यास करना चाहिये। अन्तकालकी असमर्थताकी स्थितमें भगवान्के नाम ही सहारा होते हैं। इन्हें ज्याण करते हुए मरनेवालोंकी मुक्त खानिश्वत है। विकास श्री असमर्थ मुमुक्षुको भगवाने नाम सन्त खुनाना भी श्रेयकर है।

कर्मतत्त्व और भगवत्त्व

(लेखक-याज्ञिक-सम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौह, बेदाचार्य कार्यातिथे)

वेदोंक अनुसार देवताओंके राजा इन्द्र हैं। वे समत देव-देवियोंको अपने-अपने पद-मर्यादाके कार्योमें गाते हैं एवं उनका निरीक्षण करते हैं। वेदोंमें वे र्था कहे गये हैं। इन्द्रके द्वारा ही विश्व संचालित, मुरिशत एवं नियन्त्रित होता है । अग्नि, वायु आदि देवता इन्हींकी आज्ञाके अधीन रहकर अपना-अपना कार्य करते हैं । ब्रह्माण्ड-सृष्टिकी तरह णिडसृष्टिमें भी परमेश्त्ररका नियन्तृत्व वेदशास्त्रोंमें बीकृत है एवं अन्तर्मुख व्यक्तिगण प्रत्येक कार्यमें इस स्यका अनुभव करते हैं। कर्म स्वभावसे ही जड है, अतः मनुष्य जो कर्म करता है, उसका वह खयं पल नहीं उत्पन्न कर सकता । जड़ कर्मसमूह चेतन भगवान्की प्रेरणासे ही यथासमय यथावत् फलोत्पादन करते हैं और अपने कमों के अनुसार जीव पाप-पुण्यका उपभोग नरक अथवा स्वर्गमें करता है । न्यायद्शनक चौथे अध्यायक प्रथम आहिकामें इस आशयका ^{एक ग्}त्रहे—'ईश्वरः कारणं पुरुवकर्माफल्यदर्शनात्।'

जीव कमींके करनेमें खाधीन अवस्य है, परंतु
उसका फल भोगनेमें वह खाधीन नहीं है। क्योंकि
कर्म जड़ होनेसे फल नहीं दे सकते।
नियन्ता चिन्मय ईश्वरकी प्रेरणासे ही कर्मफल उत्पन्न
करता है और उसीसे कर्मानुसार जीव ऊँच-नीच
गितियोंको प्राप्त करता है। इससे कर्मोंको फलोत्पत्तिमें
भी ईश्वरकी निमित्तकारणता प्रमाणित होती है। यह

प्राक्तन पुण्य-पापमय कार्न स्वीतार न किया जाय तो अनन्त वैचित्रयपूर्ण इस जगत्म भोगवैचित्रयक्षी समस्याकी कोई भी दूसरी मीमांसा नहीं हो सकती। कई मनुष्य जन्मसे ही लँगड़े-खूले पैदा होते हैं। कोई सदा स्वस्थ—सवल रहता है । किसीको साधारण निमित्तमात्रसे ही चिरकालके लिये तीव वैराग्य एवं संसारसे विरक्ति होती है । किसीको लाख उद्योग करनेपर एवं संसारके नाना प्रकारके वार-वार धके लगनेपर्भी विषय-विरक्ति उत्पन्न नहीं होती । किसीकी प्रतिभा खाभाविक ही बड़ी तीत्र होती है, किसीको जीवनपर्यन्त परिश्रम करनेपर भी प्रतिभा प्राप्त नहीं होनी। प्राक्तन कर्मका अस्तित्व यदि खीकार न किया जाय तो इन प्रश्नोंका समाधान होना कथमपि सम्भव न होगा, अतः इन वैचित्र्योंका कारण पूर्वजन्मोपार्जित कर्म ही मानना होगा । भगत्रान् पतस्र्रालिने इसी कारण प्राक्तन कर्मोंको सिद्ध किया है।

भगवान्को परम करुणाम्य, परम प्रेममय, परम वास्तन्य-मय, ज्ञानका आधार, न्यायका आगार एवं प्राणिमात्रके प्रियतमरूपसे मानकर ही हम उनकी शरण आते हैं एवं अपने त्रितापजजिति प्राणोंको शीतल करते हैं। एवं अपने त्रितापजजिति प्राणोंको शीतल करते हैं। भगवान्के इन परम शान्तिप्रद एवं मधुर भावोंकी जगह भगवान्के इन परम शान्तिप्रद एवं मधुर भावोंकी जगह यदि हम उन्हें अहेतुक केवल अपनी इच्छाप्तिरूप लीला-गिलासके लिये मनमाना कार्य करनेवाले महानिष्ठ्रर लीला-गिलासके लिये मनमाना कार्य करनेवाले महानिष्ठ्रर एवं खार्यपूर्ण मान लें, तभी यह युक्ति आश्रय पा सकती है। अन्यया केवल अपनी लीलाकें लिये खयं इच्छारहित, पश्चपातशून्य, सर्वोपिर उदार ईश्वर इस जगत्को ऐसा विषमतापूर्ण बना किसीको दुःखी, किसीको सुखी करके इस प्रकार अनन्त प्राणियोंको अनन्त दुःख-सागरमें क्यों गोता लगवायेंगे ! वे क्यों किसीको अत्यन्त सुख-सम्पत्त एवं वैभवका अधिकारी और क्यों किसीको आजन्म महादरिद्र बनायेंगे ! यह असम्बद्ध लीला ईश्वरकी कैसी मानी जा सकती है ! मायाके नियामक, खयं मायाके प्रभावसे अतीत, निरन्तर ज्ञानमय 'समोऽ इं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः' की घोषणासे पक्षपातराहित्यका परिचय देनेवाले परमेश्वरके लिये ऐसी कल्पना महापाप है । भगवान् श्रीकृष्णने इस विषयको गीता (५। १४। १५) में स्पष्ट किया है। तारप्य यह कि—

'परमात्मा किसीके पाप अथवा पुण्यके लिये उत्तरदायी नहीं हैं। वे मनुष्योंके कर्तृत्वकर्मका कर्मफलमोग आदि कुछ भी नहीं बनाते। अज्ञानद्वारा ज्ञान ढका हुआ है, इस कारण जीव विमोहित हो रहे हैं, और इसीलिये जीव अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार नाना प्रकारके शुभाशुभ कर्म करते हैं एवं उनका फल भी भोगते हैं। ईश्वरके सम्बन्धमें ऐसा अवैज्ञानिक महान् भ्रमपूर्ण विचार करना अनुचित है। कर्म जड़ होनेसे, ईश्वरकी प्रेरणासे उसमें फलोत्पत्ति होती है। इसीलिये वेदान्तदर्शनने जैवकर्मोंके साथ ईश्वरका सम्बन्ध निम्नलिखित ढंगसे दिखलाया है— 'फलमतः उपपत्तेः', 'कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रति-पिद्ववैयर्थ्यादिभ्यः', 'वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति।'

ईश्वर कर्मफलकं दाता हैं, किंतु कर्मोंके वैचित्र्यके अनुसार ही वे जीवोंको भिन्न-भिन्न प्रकारका फल प्रदान करते हैं। यदि ऐसा न हो तो शास्त्रीय विधि-निषेध निर्यक हो जायगा। जीवोंके कर्मानुसार ही ईश्वर विभिन्न प्रकारकी सृष्टि-रचना किया करते हैं। जिसका प्राक्तन पुण्य है, उसको सुख-समृद्धिशाली एवं जिसका

प्राक्तन पाप है, उसे हीन-प्रारब्ध एवं दु:खी बनाते हैं। वे जगदीश्वर प्रत्येक ब्रह्माण्डमें देवता, ऋषि, अर्थमा आदि निस्य पितर तथा अन्यान्य नाना देवपदाधिकार्ति के द्वारा ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड इन दोनोंकी कर्मशृह्याकी सुव्यवस्था कराते हैं । इसी तरह सूक्ष्म देव जगत्ह्या भौतिक स्थूल जगत्की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था होती है। भाष्यकार भगवान् श्रीशंकराचार्य उपर्युक्त सूत्रके भाष्यों ईश्वरके विषयमें लिखते हैं—'ईश्वरस्तु पर्जन्यवद द्रष्टव्यः । यथा हि पर्जन्यो वीहियवादिसृष्टौ साधारणं कारणं भवति, वीहियवादिवैषम्ये तु तत्तद्वीज-गतान्यैवासाधारणानि सामर्थ्यानि भवन्ति । पवमीश्वरो देवमनुष्यादिसृष्टौ भवति, देवमञुष्यादिवैषम्ये तु तत्तज्जीवगतान्येषा-साधारणानि कर्माणि कारणानि भवन्ति । एवमीश्वरः सापेक्षत्वाज्ञ वैषम्यनिर्घुणाभ्यां दुष्यति ।

सुजन-कार्यमें ईश्वरको मेघक समान समझना चाहिये। जैसे मेघ ब्रीहि, यब, धान्य आदिकी उत्पत्तिके विषयमें साधारण कारण होता है, िकतु ब्रीहि, यबदिकी उत्पत्ति जो विभिन्न प्रकारकी होती है, उसका कारण मेघ नहीं है, िकंतु उन-उन वस्तुओंके बीजगत असाधारण पृथक-पृथक् राक्ति ही उसका कारण होती है। ठीक इसी प्रकार देव-मनुष्यादिस् हिमें ईश्वर साधारण कारण है। इसमें पृथक-पृथक् जीवोंक पृथक् पृथक् सुख-दु:खके कारण उनके पृथक् पृथक् असाधारण कर्म ही होते हैं। मेघ-जल तो सभीके लिये समान है, परंतु उन-उन वृक्षोंके पृथक्-पृथक् बीजके अनुसार पृथक्-पृथक् रसके फल उत्पन्न होते हैं।

ईश्वरकी अपनी इच्छा कुछ भी नहीं है। वे गुणधर्मरूपी इच्छासे परे हैं। इस प्रसङ्गमें यह शङ्का हो सकती है कि ईश्वर यदि केवल जीवोंके कर्मके अनुसा ही फल दिया करते हैं, तब उनकी सर्वशक्तिमल एवं ऐश्वर्यशक्ति ही क्या रही ! इसका समाधान यह है कि ईश्वर शुभाशुभ कर्मोंका यथायोग्य जो फल प्रान क्रिते हैं, वहीं उनके सर्वशक्तिमस्व एवं ऐश्वर्यशक्तिका कार र प्रमाण है । यदि अग्निमें दाहिकाशिक न हो मं वह दाह्यवस्तुको किस प्रकार जला सकती है ? व रहीं दाह्यवस्तु ही नहीं है, वहाँ अग्निमें दाहिकाशिक भी नहीं है, यह कैसे माना जा सकता है। दाह्यवस्तु-हो एकमात्र अग्नि ही जला सकती है, उसे जल या वायु या पृथ्वी नहीं जला सकती, क्योंकि इनमें अनिकी तरह दाहिकाशक्ति नहीं है! राजामें रण्ड देनेकी शक्ति है। इससे वह दुष्टोंको दण्ड दे स्वता है और सज्जनोंको सम्मान देता है। राजाके अतिरिक्त दूसरेमें यह शक्ति न होनेसे दूसरा कोई इस कार्यको नहीं कर सकता । इसी तरह ईश्वर अनन्त एवं अनन्त ऐश्वर्यवान् हैं, अतएव वे नीवोंके ग्रुभाग्रुभ कमेंकि अनुसार उन्हें ग्रुभाग्रुभ पछ प्रदान कर सकते हैं। यदि उनमें यह शिक वे जीवोंके कर्म करनेपर भी तो न होती

उनको फल कदापि नहीं दे सकते थे । इससे ईश्वरके सर्वशक्तिमस्वमें कोई भी बाधा नहीं आती। कर्मोके यथायोग्य फलप्रदानसे परमेश्वरके सर्व-तन्त्र-खतन्त्रभावमें भी कोई बाधा नहीं हो सकती। शुभाशुभ कर्मोंका पुरस्कार तथा तिरस्काररूप शुभाशुभ फ्लप्राप्तिके अलङ्कनीय नियमसे ही ब्रह्माण्डकी समताकी दशा होती रहती है। इससे सर्वतन्त्रखतन्त्र सर्वशक्ति-शाली शास्ता परमेश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता एवं खतन्त्रता और भी पुट है। अतएव विचार एवं शास्त्रीय प्रमाणोंसे यह सिद्ध हुआ कि भगवान्की इच्छासे अतीत एवं मायाराज्यसे परे होनेपर भी समष्टि और न्यष्टि दोनों ही सृष्टिक्रियामें उनके नियन्तृत्वकी अपेक्षा है । उन्हींकी अलौकिक नियामिकाशिकके अधीन कोटिप्रह उपप्रहोंसहित यह ब्रह्माण्डभाण्ड अनन्त शून्यमें भ्रमण कर रहा है। अतः यह सिद्ध हुआ कि भगवत्तरव सर्वत्र ब्याप्त है।

भगवत्तत्वके महत्त्वका गीत

निरखत जित तित ही तुम व्यापक। मुविसों नभ लों प्रति पदार्थ तव कार्यकुशलता-क्षापक ॥ संध्या प्रात रैन दिन पट् ऋतु क्रमसो सब चुपचाप। जात जगत अभिनय-थल अविकल अपने आप॥ गिरि उत्तुंग शृंग नभ-चुम्बत प्रकृति मनोहर देश। उमंग अशेष ॥ रविकररंजित नित करत रास्य इयाम अभिराम दोष बहु सजल सरित जल पावन। **हिममंडित** मलयज शीतल ही तल सुखप्रद धीर समीर सुहावन॥ सुभग खच्छ खच्छन्द द्रुमाविल नम्र लता मृदु काया। हरसावत द्रसावत तव माया॥ रचि शशि आदि दारु-योषित सम करत खकाज निरंतर। अचरज सरसावत अद्भुत्र अमित परत निर्द्ध तामे तिल भरहको अंतर॥ पुण्य पंक्तिमें नित-नव नाचनहरे। बिहसत अधर प्रमोद चमत्कृत चंत्रल चाह सितारे॥ प्रतिपल मुखमंडल अनुपम विश्वरूप तव गीत॥ नोलोकवासी पं सत्यनारायण कविरलः अञ्चक सुध्वतिसौ

भगवद्भावनासे हीन मनुष्य शून्यवत् है

(ठेखक - आचार्य श्रीधिश्चिरकुमार सेन, एम्० ए०, बी० एल्)

भगवत्तत्वपर कल्याण-सम्पादकके अनुरोधपर जब मैं कुछ लिखनेकी वात सोचने लगा तो सहसा मुझे आलबन्दार-मुनिका यह पद्य ध्यानमें आया—

तत्त्वेन यस्य महिमार्णवशीकराणुः शक्यां न मातुमि शर्विपतामहाद्येः। कर्त्तं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय महां नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय॥ (स्रोत्र-रला०—५)

अहो ! ब्रह्मा, शिव आदि भी जिनके तत्त्र या मिहमिसिन्धुके एक विन्दुतकका भी अनुमान एवं वर्णन न कर पाये, उनकी स्तुति करने या तत्त्व-वर्णन करनेके छिये तत्पर मुझ निर्छज किव या पण्डित नामधारी व्यक्तिको नमस्कार है । (यहाँ आत्म-नमस्कारमें जुगुप्सा अभिःयिद्धात है)। वास्तवमें यह तो एक प्रकारसे निर्छजाताकी सीमा ही है।

फिर दूसरे ही क्षण मुझे यह लगा कि अरे, मैं भी कैसा मूर्क हूँ, जो इस प्रकार हतारा हो रहा हूँ । वे कृपाल परमात्मा जो निर्गुण एवं सर्वन्यापक होकर भी भक्तानुप्रहके लिये स्वेच्छापूर्वक विप्रहतक धारण कर लेते हैं, जो मेरे भी खामी, पालक और निर्माता हैं और जो सब कुछ कर-करवा सकते हैं, वे मुझसे भी तो अपना कुछ यहा एवं तस्त्रादि लिखवा सकते हैं। कहा भी गया है—

श्वानं च राक्तिमिप धैर्यमथो विवेकं त्वइत्तमेच सकलं लभते मनुष्यः। किं मेऽस्ति येन भवतो विद्धामि चर्या स्वेनैव तुष्यतु भवान् करुणागुणेन॥

'प्रभो ! कोई भी ज्ञान, राक्ति, धैर्य, विवेक या अन्य पदार्थ आपके द्वारा दिये जानेपर ही मनुष्य प्राप्त करता है। इसिल्ये मेरी कोई अपनी वस्तु नहीं है।

मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? वस, आप अपने द्वारा दिये गये पदार्थसे ही और अपने करुणागुणके द्वारा ही मुझपर प्रसन्न हो जायँ ।'

शास्त्र भी भगवान्की ही वाणी है । ये निर्गुण-निराकार भगवान्के सगुण एवं साकारताके प्रमाण हैं। ये अदृश्यको दृश्य रूपमें, अप्रकटको साश्चात् रूपमें तथा अवाच्यको मधुर वचनके रूपमें, अप्रमेयको ससीम रूपमें प्राप्त करा देते हैं।

वुळ महान् विद्वानोंने जो उच्चकोटिकं मक्त भी रहे हैं, भगवान् के प्रेम, करुणा, मैत्री, दया, अप्रतिहत शिंक, ज्ञान, गाम्भीर्य आदिका वर्णन किया है। पर इतने मात्रसे भगवत्त्त्वकी सम्पूर्ण अभिन्यिक नहीं होती। भगवान् क्या हैं और कैसे हैं, इस वातको श्रीभगवान् खयं ही जानते हैं। हम-जैसे किलमलप्रस्त दीनोंके लिये उन दीनानुकम्पीने ज्यास-जैसे महान् आचारको भेजकर वेदोंका विभाजन, पुराणोंका निर्माण आहि कार्यके द्वारा संसारका संतरण-कार्य सुगम कर दिया है। (महाभारतोक्त) गीता-जैसी पित्रत्र वाणीके द्वारा उन्होंने अपनी अनन्यभक्तिका मार्ग प्रशस्त किया है। इससे अनेक साधकोंका श्रेय हुआ है और हो रहा है।

अस्तु ! मैं यहाँ हजारों उदाहरणोंमंसे केवल दो बातोंका ही उल्लेख करूँगा । मुझे विश्वास है कि इससे पाठकोंको कुछ प्रकाश अवस्य मिलेगा, इससे वे भगवान्के महिमा-सागरमें प्रवेश कर पायेंगे।

अर्जुन और उनका व्यामोह

गीतामें अर्जुन-मोहकी कथा सभी जानते हैं। इसके अतिरिक्त भागवतमें भी अर्जुनकी एक ऐसी कथा आती है कि एक बार एक ब्राह्मणका पुत्र नष्ट हो गया।

क्षणते उस लड्केंको उठाया और यदुवंशियोंके वीचमें ्_{णकं पास} उसे रख़कर कहने लगा— क्रिक्षः शठियो लुन्धस्य विषयात्मनः। क्षत्रवाधीः कर्मदोषात् पञ्चत्वं गतमर्थकः॥ ये धर्महीन क्षत्रिय ही इस बच्चेके निधनके क्षि उत्तरदायी हैं। ये ब्राह्मणोंके द्वेषी एवं उनको क्षित पहुँचानेवाले हैं। इनकी बुद्धि दुष्ट है। ये लोभी है और सदा विषयमें डूबे रहते हैं।

इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने या किसी अन्य यदुवंशीने भी कुछ न कहा । ब्राह्मणका लड़का जब भी नष्ट होता ते वह यही करता । एक बार ऐसी ही स्थितिमें अर्जुन भी वहाँ उपस्थित मिल गये । वे गरज पड़े । उन्होंने ब्रह्मणको चुप रहनेको कहा और कहने छगे 'क्या पृथ्वी शींसे शून्य हो गयी है ? क्या इन यादत्रोंमें क्षत्रियका रक्त नहीं हह गया है, जो ब्राह्मणके कष्टको देखकर भी कुछ भी नहीं करते।' फिर ब्राह्मणकी ओर मुड़कर कहा---'मैं अगेसे तुम्हारे संतानोंकी रक्षा करूँगा। मैं यदुवंशी नहीं, अर्जुन हूँ । यदि अपनी प्रतिज्ञामें असफल रहा तो अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ।' त्राह्मणने कहा— 'तुम्हारी वातोंपर मैं कैसे विश्वास करूँ, जब कृष्ण, संकर्षण, प्रशुम्न और अनिरुद्ध भी इसमें असफल रहे ?'

अर्जुनने कहा- भी कृष्ण, संकर्षण अथवा उनका वंशज नहीं हूँ, मैं गाण्डीवधारी अर्जुन हूँ, अर्जुन ! गुरुको भी जीत सकता हूँ और तुम्हारे पुत्रको उसके अधिकारसे भी छीनकर तुम्हें वापस कर सकता हूँ।

नाहं संकर्षणो ब्रह्मन् न कृष्णः कार्ष्णिरेय च। वहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धतुः। मृत्युविजित्वः प्रधने आनिष्ये ते प्रजां प्रभी॥ अजुनद्वारा आश्वस्त होकर ब्राह्मण घर आया। असने सोचा कि अर्जुन वह कर दिखायेगा जो श्रीकृष्ण भी नहीं कर सकते । अगली संतानकी उत्पत्तिके समय

उसने अर्जुनको सूचना दी और अर्जुनने वहाँ जाकर वाणोंका ऐसा पंजर या जाल विद्या दिया, जिसमें कोई मच्छर भी नहीं प्रवेश कर सकता था, किंतु आरचयकी बात ! वचा जन्मते ही गायव हो गया। ब्राह्मणने कहा-- भृषावादी अर्जुनको घिकार है ! उसके धनुषको भी धिक्कार है! मैं कैसा मूर्ख था, जिसने अर्जुनकी इस वातपर आश्वस्त हो गया ! जो कृष्ण या उनके वंशज नहीं कर सकते वह अर्जुन कर लेगा !

इसपर अर्जुन खर्ग, नरक और यमपुरी तीनों लोकोंमें घूम आये। बन्चेका कोई सुराग न पाकर अपनी प्रतिज्ञानुसार आगमें कृदनेको उद्यत हुए, तवतक कृष्णाने उनका हाथ पक्षड़ लिया और कहा—चली, तुम्हें ब्राह्मणके बच्चेको दिलाता हूँ । इतके बाद श्रीकृष्ण अर्जुनको रथपर लेकर पश्चिम दिशाकी ओर ले गये । आगे बढ़नेपर घोर अन्धकार मिला, उसे उन्होंने मुदर्शनचक्रसे प्रकाशित कर दिया । यात्राके अन्तर्मे परमेष्ठिपतिके दर्शन हुए । उन्होंने कृष्ण और अर्जुनसे कहा कि वे उन्हें देखनेको उत्सुक थे और ब्राह्मणके बच्चेको लौटा दिया । ने लोग बच्चेको लेकर द्वारका लौट आये । अर्जुनको पता लगा कि उनकी सारी शक्ति कृष्णकी कृपापर ही निर्भर थी। अर्जुनकी आँखें खुल गयीं, इससे कृष्णके राक्तिका पता लगता है। युद्धेत्रमें अर्जुनके व्यामोहको दूर करनेवाले श्रीकृष्ण ही थे। उनकी कृपासे ही अर्जुनको महाभारतयुद्धमें विजयका श्रेय मिला ।

अर्जुन और उनका गाण्डीव धनुष

द्वापर-युगका अन्त हो रहा था और तमोमय कल्युगकी छाया संसारको आदृत कर रही थी। पृथ्वीपर धर्मका हास हो रहा था, लोम, स्रोध, छल एवं मिथ्या बढ़ रहे थे, स्त्री-पुरुष आपसमें झगड़ने रुगे थे, पिता-पुत्र और मित्रोंमें भी परस्पर कलह होने लगा था। युधिष्ठर कलियुगके इन लक्षणोंको देखकर बड़े उदास हो रहे थे। इसी बीचमें अर्जुन द्वारकासे लौटे। उनका चेहरा उतरा हुआ था। युधिष्ठरने उनसे यदुवंशियोंका समाचार पूछा; अर्जुन रोने लगे और बोले—भगवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीका परित्याग कर दिया, साथ ही यह भी कहा कि अर्जुनकी सारी शक्ति भी श्रीकृष्णके साथ ही चली गयी है। यद्यपि उनके पास वे ही रथ, बोड़े और धनुष-वाण थे, जिससे उन्होंने सभी देवताओं और राजाओंपर विजय पायी थी, किंतु वे भसमें किये गये हवनके समान अथवा ऊसरमें बीज बोनेके समान वर्ष हो गये और उन्हें आभीरोंने परास्त कर श्रीकृष्णके

ब्री-बन्चोंको छीन लिया। यह सब कुछ जाद्-जैसा हो गया—

तद्वे धनुस्त इषयः स रथो इयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति। सर्वे क्षणेन तद्भृद्सदीशरिक्तं भस्मन् द्वतं कुद्दकराद्धमिवोप्तमृष्याम्॥ (श्रीमद्भा० १।१५।२१)

वस्तुतः हमलोगोंको समझ लेना चाहिये कि भगवान्का भजन ही सच्ची सुख-समृद्धि एवं भगवान्की विस्मृति ही वास्तविक दुःख-दिद्दता है। इसे हम जितना शीव्र समझ सकों, उतनी ही बुद्धिमता और उतना ही कल्याणकारी है।

भगवत्कथा

(लेखक-भागवततीर्थ श्रीगुक्राजिकशोरजी गोखामी)

कहते हैं, 'ब्रह्मात्मबोध जिनके अन्तःकरणमें जाप्रत् नहीं होता, ईश्वर-रचित इस संसारमें परिन्याप्त यह अनुभूति जिनके जन्ममें नहीं होती, वे सब आत्मघाती ही हैं। आत्माके साथ जिनका परिचय नहीं हुआ, वे सर्वदा तमोमय गहन लोकमें पड़े रहते हैं। कारण कि यह जगत् ब्रह्मके प्रभावसे संजीवित, रक्षित एवं संचाळित है। जिस प्रकार वस्त्र मनुष्यके शारीरपर रहकर उसका शीत-आतपसे त्राण करता है, उसी प्रकार ईश्वर या परमात्मा इस विश्व-ब्रह्माण्डकी रक्षा-संचालन करता है । वह सर्वभूतमय है । उपनिषद् कहती है-'अन्यायरूपसे परद्रव्यका हरण न करो, त्यागद्वारा भोग करो, अनासक्त होकर कर्मयोगी बनो एवं ईश्वरके प्रसाद-रूपमें इस जीवनका भोग करो। शास्त्र भी कहते हैं-तुम सुख-दु:ख, जय-पराजय, मान-अपमान, ग्रीष्म-वर्षा आदिको संतुष्टचित्तसे हँसते हुए सहन करते चलो। अन्यके धनके लिये लोभ न करो । ईश्वरद्वारा प्रदत्त शक्ति-सफल, देह-मन-प्राण-कामना-वासना सब कुछ उन्हींकी प्जामें, उन्हींकी यज्ञ-तपस्यामें नियोजित करो ।

ब्रह्म आनन्दस्वरूप रसस्वरूप है । श्रुति कहती है-'रसो वे सः'। यहाँ रस शब्दके दो अर्थ हैं—रस्के आस्वाद्यत इति रसः,अथवा रसयति **आस्वा**द्यतीति रसः। इस प्रकार वह आखाद एवं आखादक दोनों ही है । ब्रह्म रसस्वरूपमें आखाद्य एवं आखादक है। राक्तिके विकासमें ब्रह्मकी भगवत्ता शिवत एवं सौद्ये प्रतिफल्टित होता है । ऐश्वर्य, माधुर्य, कृपा, तेज, सर्वज्ञता, भक्तवत्सळता, भक्तवश्यता इत्यादि अनन राक्तियाँ ब्रह्मके मध्य स्थित हैं । इसी कारण अनत शक्तिके आकार ब्रह्मको ऋषिगण—'सत्यं विवं सुन्दरम्' कहते हैं। उनका मङ्गलमयत्व या शिवत सौन्दर्य, माधुर्य नित्य है । ब्रह्मके शक्तिविकार्त तारतम्यानुसार अनन्तस्वरूप उनकी अभिव्यक्ति प्रकाशित होती है । इस्। समस्त खरूपके मध्य इस प्रकार बे एक खरूपमें हैं, यह उनकी न्यूनतम अभिन्यिति एवं उनके इस प्रकार एक खरूपमें रहनेपर जो उनि शक्तिवैचित्रय आदि हैं, यह उनकी पूर्णतम अभिव्यक्ति है। प्रथमोक्त खरूपको साधारणतः बह्न कहा जी वे खरूपमें ब्रह्म हैं, किंतु शक्तिसे पूर्णरूपमें ब्रह्म वहीं हैं। यह खरूप निर्विशेष-निर्विकार है। इस खरूपमें शक्ति होनेपर भी शक्तिके विकासमें वे पूर्ण नहीं हैं। किंतु इस शक्तिको एकदम निःशक्ति नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ब्रह्मकी स्वरूपगत शक्ति है। किंतु सत्तामात्र रक्षा करने एवं खरूपानन्दमात्र अनुभव करने या करानेके छिये जितनी भी शक्तिकी आवश्यकता है, उसके अतिरिक्त शक्तिका विकास नहीं है। यह ब्रह्मशक्ति पूर्णखरूप है। श्रीकृष्णको भी पूर्ण परमब्रह्मकी अभिव्यक्ति कहा है। शास्त्र कहते हैं—

कृषिभूवाचकः राब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरेक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥ (गोपालतापनीयोपनिषद्)

'कृष्णो वै परं दैवतम्' (गोपालतापनीयोपनिषद्) ॐ योऽसौ परं ब्रह्म गोपालः ॐ (गोपालतापनीयोपनिषद्) ईश्वरः परमः कृष्णः सम्चिदानन्द्विग्रहः। अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥ (ब्रह्मसंहिता)

परम ब्रह्म श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्ण परम देवता हैं। वे सिचदानन्दमूर्ति हैं, अनादि अथवा सबके आदि हैं। वे समस्त कारणोंके कारण हैं-—

> स्तयं भगवान् कृष्ण कृष्ण परतत्त्व । पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥ (चैतन्यचरितांमृत)

श्रीजीवगोस्तामी श्रीमद्भागवतके प्रथम क्लोककी वैकामें कहते हैं—

'सर्वत्र बृहत्वगुणयोगेन हि ब्रह्मशब्दः प्रवृत्तः । गृहत्वं च स्वरूपेण गुणेश्च यत्रानिधकातिशयः सोऽस्य मुख्यार्थः । अनेन च भगवानेवाभिहितः । स च स्वयं भगवत्वेन श्रीकृष्ण प्रवेति । सर्वत्र वार्धक्य गुणयोगमें ही ब्रह्म शब्दकी प्रवृत्ति है । वह स्वरूप एवं गुणोंमें भी बृहत् है । इस विषयमें ब्रह्मके समान कोई नहीं है । यही ब्रह्म शब्दका मुख्यार्थ है । भगवत्ताका निर्देश काले उस ब्रह्म शब्दमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका ही वोध कराया जाता है । ब्रह्मसंहिताका वचन है— यस्यैकिनःश्वसितकालसमावलम्ब्य जीवन्ति लोमविलजा जगदन्यनाथाः। विष्णुर्मद्दान् स इद्द यस्य कलाविशेषो गोविन्दमादिपुरुषं तमद्दं भजामि ॥ रामादिमूर्तिषु कला नियमेन तिष्ठन् लीलावतारमकरोद् भुवनेषु किंतु। कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुषं तमद्दं भजामि॥

जिन महाविष्णुके मात्र एक ही निःश्वासकालका अवलम्बन करके उनके रोमकूपसे उत्पन्न ब्रह्माण्डनाथ ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि अधिकारी खरूपमें, जगत्में प्रकट होकर अवस्थान करते हैं वही महाविणु हैं। जो गोविन्दकी एक कला हैं उन्हीं आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ। जो रामादि मूर्तिमें विभिन्न लीलावतार-रूपमें मुवनमें अवतीर्ण होकर विविध लीला-प्रकाश करते हैं अथवा श्रीकृष्णमूर्तिमें साक्षात् परम पुरुष रूपमें खयं अवतीर्ण होते हैं, उन्हीं गोविन्दका मैं भजन करता हूँ। श्रीमन्महाप्रमु कहते हैं—

एकई ईश्वर मक्तेर ध्यान अनुरूप।
कई विप्रहे धरे नानाकार रूप॥
श्रीभगवान् अखिल रसामृतसिन्धु होनेपर भी मिनभिन्न लोगोंकी रुचि एवं प्रकृतिके अनुसार अनन्त रसवैचित्र्य-खरूपमें आविर्भूत होते हैं एवं उसको उसके
भावानुसार रसवैचित्र्यका आखादन कराकर तृप्त
करते हैं। वही श्रीमन्महाप्रभु गौर सुन्दर कहते हैं—

माधुर्येर स्वाभाविक एक कृष्ण आदि नर नारी करये च चल ॥ कृष्णावलोकन विना नेत्रे फल नाइ आन। सेई यंड जन कृष्ण देखे अपूर्व माधुरी कृष्णेर अपूर्व तार श्रवणे मन इय ढलमक ॥ कृष्णे माध्रये उपजये कुष्णेर आस्वादिते नारे मने रहे छोम॥ (श्रीचैतन्यचरितामृत)

आइये, हम उसी परमेश्वर श्रीकृष्णकी दारण ऋहण करें।

भगवत्तत्व ईश्वरत्वके साधक प्रमाण

विभिन्न मतवाद

प्रत्यक्षप्रमाणमात्र माननेवाले बाहस्पत्यमतानुयायी ईश्वरको नहीं मानते; क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं है ।

बुद्रमतानुसारी लोग अनुमानको भी प्रमाण मानते हुए देहातिरिक्त क्षणिक-विज्ञानस्कन्धरूपी आत्माको तथा सर्वज्ञ विज्ञान-सन्तानरूप ईश्वरको भी मानते हैं । वे ईश्वरको अनुमानसे ही सिद्ध करते हैं।

जैनमतानुयायी देहातिरिक्त स्थिर आत्माको मानते हुए, स्थिर अर्हन् नामक ईश्वरको मानते हैं।

मांध्यमिक-मतावलम्बी सर्वश्चान्यवादका पुरस्कार करते हुए शून्यको ही ईश्वर कहते हैं।

यतः उपर्युक्त ये चारों मतावलम्बी वेदको प्रमाण नहीं मानते, अतएव नास्तिक कहलाते हैं । मनु कहते हैं-**मास्तिको वेदनिन्दकः ।' वेदको प्रमाण** माननेवाले आस्तिक कहे जाते हैं।

आस्तिकोंमें पातञ्जलमतानुयायी ईश्वरको अनुमानसे सिद्ध करते हैं।

'तत्र निरतिशयं सर्वेश्ववीजम्' (१।२५)

—इस पातस्रलसूत्रमें ईश्वर-साधकानुमान सूचित हुआ है। उनका यह कहना है कि संसारमें ज्ञान एकसे दूसरेका अधिक और उससे तीसरेका अधिक होता है; यों उत्तरोत्तर अधिकाधिक ज्ञानवान पुरुष देखनेमें आते हैं। ज्ञानकी अधिकता ज्ञान-विषयक पदार्थोंकी अधिकताके कारण होती है, जो जितना ही अधिक पदार्थीका जाननेवाला होता है वह उतना ही अधिक ज्ञानवान् कहलाता है। इस ज्ञानाधिक्यकी अन्तिम सीमा भी होनी ही चाहिये; क्योंकि तारतम्यवान् पदार्थोंकी अन्तिम सीमा होती है, जैसे कि परिमाणकी । परिमाण तारतम्यवान् पदार्थ है; यथा---राईसे मूँग बड़ा, मूँगसे चना बड़ा, चनेसे आँवछा

बड़ा, आँवलेसे नीबू बड़ा, उससे बेल बड़ा, क्रम्हा यह बड़ाई बढ़ते-बढ़ते मकान, पहाड़ी, पहाड़, आकान आदितक पहुँच जाती है और उसकी अन्तिम सीम विमु परिमाण माना गया है। इसी प्रकार ज्ञान सीमा सर्व-पदार्थ-विषयक ज्ञान महत्त्वकी अन्तिम मानना होगा । तब सर्वविषयक ज्ञानवान् अर्थात् एक सर्वज्ञ पुरुष अवस्य होना चाहिये। बस, वही श्वा है। इसी प्रकार ऐश्वर्यके विषयमें भी मानना चाहिये। ऐश्वर्य भी तारतम्यवान् पदार्थ है। उसकी भी अति। सीमा होनी चाहिये। सर्वैश्वयं ही वह सीमा है, त सर्वेश्वयसम्पन एक पुरुषकी सत्ता माननी पहेगी; बा वही सर्वेश्वर है।

वैशेषिक-मतावलम्बी भी अनुमानसे ईश्वरका साम करते हैं । उनका अनुमान इस प्रकार है। इमले देखते हैं कि घट आदि कार्य-पदार्थिक कर्ता होते हैं; कत्तीके बिना कार्य घट आदि पदार्थ नहीं बनदे तब पृथ्वी, अंकुर आदि जिन कार्य-पदार्थीके कर्त प्रत्यक्षमें दिखायी नहीं देते, उनके कर्ता अवस हो चाहिये; क्योंकि वे भी कार्य हैं। वे कार्य झ कार्ण हैं कि सावयव हैं। जिनके अवयव होते हैं वे स कार्य होते हैं। इस प्रकार जव पृथ्वी, अंकुर आह कार्य-पदार्थोंका कर्त्ता मानना पड़ता है और हम बीकी इतनी सामध्य नहीं प्रतीत होती कि उन महान् प्राधीन हम बना सकों—कर्ता हो सकों, तब हम जीवोंसे अर्ति एक कत्ती अवश्य होना चाहिये; वही सर्वेश्वर है।

नैयायिक भी ईश्वरको अनुमानसे ही सिंह करे हैं। किंतु वैशेषिकोंके अनुमानसे नैयायिकोंका अवस्थ भिन्न प्रकारका है।

र्भ्श्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शतार्थः (न्यायः ४।१।॥)

यह न्यायसूत्र है। पुरुष-जीव प्रयत्न करता है, किंतु नियमसे प्रयत्नका फल उसको नहीं मिलता। हमसे यह सिद्ध होता है कि जीवके कर्मका फल पाधीन है। जिसके अधीन जीवकृत कर्मफल है, वही ईश्वर है। सभी अचेतन पदार्थ किसी चेतनसे अधिष्ठित होकर ही किसी व्यापार-(किया-)को करते हैं। बीव धर्माधर्मरूप अचेतन-कर्म जिस चेतनसे अधिष्ठित होकर कर्म-फल-दानमें प्रवृत्त होता है, वह चेतन सर्वज्ञ परोस्वर है।

सांख्यमतावल्रम्वी वैशेषिक आदिमें कथित अनुमानोंका दूषण करते हुए खतन्त्र जीवातिरिक्त ईश्वरको न मानकर कहते हैं कि रागादिरहित अणिमादि सिद्धिमान् अनित्य ज्ञानवान् सिद्धपुरुष ही वेद-शास्त्रमें ईश्वरके गमसे व्यवहृत हैं । इसके अतिरिक्त ईश्वरनामक पुरुष कोई नहीं है । सांख्य-दर्शनमें—

'ईश्वरासिद्धे मुक्तवद्धयोरन्यतराभावान्न तिसिद्धिः । उभयथाप्यसत्करत्वम् । मुक्तात्मनः ग्रांसा उपासासिद्धस्य वा ।'

इन चार सूत्रोंमें यही बात कही गयी है।

वेदप्रामाण्यवादी वेदान्ती छोगोंका कहना है कि दिस अनुमानसे सिद्ध नहीं हो सकता, ईश्वर-सिद्धिमें केवछ शास्त्र ही प्रमाण है। वैशेषिकोंने ईश्वर-साधनमें जो अनुमान बताया है, उससे सर्वत्र, सत्यसंकल्प, मर्वशक्ति, परमद्याछ, सर्वकल्याणपूर्ण ईश्वरकी सिद्धि नहीं हो सकती। घटको दृष्टान्त मानकर मही, महीधर, सागर, वृक्ष, अंकुर आदि सावयव कार्योंके कर्ताका साधन किया जाता है, यह ठीक है। किंतु सिसे जीविमन्न ईश्वरकी सिद्धि नहीं हो सकती; क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि मही आदिका जो कर्ता सिद्ध हो वह जीविमन्न भी हो। यह सन्च है कि इमलोगोंमेंसे कोई निके कर्ता नहीं हैं। इसीसे यह मान लेना आवश्यक नहीं

हो सकता है कि किसी भी जीवने इनकी रचना नहीं की । मनुष्योंमें एक-से-एक बढ़कर ज्ञान-शक्तिशास्त्री पुरुष देखनेमें आते हैं, मनुष्योंसे देनताओंकी शक्ति अधिक मानी जाती है, योगी, तपस्त्री आदिकी विचित्र अलैकिक शक्तियाँ सब लोग मानते हैं, ऐसे अलैकिक राक्तिशाली किसी जीवने ही इन पृथिवी, अङ्कर आदि पदार्थोंकी रचना की, ऐसा मान लेनेमें क्या आपत्ति है ? सिवाय इसके इन सब चीजोंको एक ही व्यक्तिने बनाया, इसमें ही क्या प्रमाण है ! हम देखते हैं कि छोटी कुटियाको एक ही मनुष्य बना लेता है, बड़े-बड़े राजमहलोंको अनेक मनुष्य मिलकर बनाते हैं; तब ऐसा भी तो हो सकता है कि मही-महीधर आदि बड़ी-बड़ी चीजें एक व्यक्तिकी बनायी हुई न होकर अनेक पुरुषोंकी बनायी हुई हों । ऐसी हालतमें उक्त अनुमानसे सकलपदार्थ-निर्माण-क्षम एक ईश्वरकी सिद्धि कैसे हो सकती है ! और, अनुमानसे जो ईश्वर सिद्ध होगा, वह घटके कर्ता (दृष्टान्तभूत) कुम्हारके समान अल्पज्ञ, अल्पराक्ति कर्मपरवश दुःखी ही सिद्ध होगा। मही-महीधर आदिके कर्त्तामें दृष्टान्तभूत घटके कर्ता कुम्हारसे कुछ अधिक ज्ञानशक्ति भले ही कार्यानुसार सिद्ध हो, किंतु जिस प्रकार ईश्वर शास्त्रसिद्ध है, वैसा अनुमानसे सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि सामान्यतया अनुमानका यह लक्षण किया जाता है--

'अनुमानं ज्ञातसम्बन्धयोरेकज्ञानेनान्यस्य ज्ञानम्।'

अर्थात् 'जिन दो पदार्थोमें परस्पर नियत सम्बन्ध पहले ज्ञात हो उनमेंसे एकके ज्ञानसे दूसरेका जो ज्ञान होता है वह अनुमान है।' अग्नि और धूम इनमें परस्परका सम्बन्ध जिनको माछम है, उनको उन दोमेंसे एक धूमके ज्ञानसे अग्निका ज्ञान होता है, वही अनुमान कहजाता है। प्रकृतमें मही-महीधर आदि पदार्थोके कार्यस्वके साथ ईश्वर-कर्तृकत्वका कोई भी सम्बन्ध पूर्वमें ज्ञात नहीं है,

भगवत्तत्व - ईश्वरत्वके साधक प्रमाण

विभिन्न मतवाद

प्रत्यक्षप्रमाणमात्र माननेवाले वार्हस्पत्यमतानुयायी ईश्वरको नहीं मानते; क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं है ।

बुद्धमतानुसारी लोग अनुमानको भी प्रमाण मानते हुए देहातिरिक्त क्षणिक-विज्ञानस्कन्धरूपी आत्माको तथा सर्वज्ञ विज्ञान-सन्तानरूप ईश्वरको भी मानते हैं। वे ईश्वरको अनुमानसे ही सिद्ध करते हैं।

जैनमतानुयायी देहातिरिक्त स्थिर आत्माको मानते हुए, स्थिर अर्हन् नामक ईश्वरको मानते हैं।

माध्यमिक-मतावलम्बी सर्घश्चन्यवादका पुरस्कार करते हुए शून्यको ही ईश्वर कहते हैं।

यतः उपर्युक्त ये चारों मतावलम्बी वेदको प्रमाण नहीं मानते, अतएव नास्तिक कहलाते हैं। मनु कहते हैं— •नास्तिको वेदनिन्दकः।' वेदको प्रमाण माननेवाले आस्तिक कहे जाते हैं।

आस्तिकोंमें पातञ्जलमतानुयायी ईश्वरको अनुमानसे सिद्ध करते हैं।

'तत्र निरतिशयं सर्वेद्यवीजम्' (१।२५)

—इस पातक्षलस्त्रमें ईश्वर-साधकानुमान स्चित हुआ है। उनका यह कहना है कि संसारमें ज्ञान एकसे दूसरेका अधिक और उससे तीसरेका अधिक होता है; यों उत्तरोत्तर अधिकाधिक ज्ञानवान् पुरुष देखनेमें आते हैं। ज्ञानकी अधिकता ज्ञान-विषयक पदार्थोंकी अधिकताके कारण होती है, जो जितना ही अधिक पदार्थोंका जाननेवाला होता है वह उतना ही अधिक ज्ञानवान् कहलाता है। इस ज्ञानाधिक्यकी अन्तिम सीमा भी होनी ही चाहिय; क्योंकि तारतम्यवान् पदार्थोंकी अन्तिम सीमा होती है, जैसे कि परिमाणकी। परिमाण तारतम्यवान् पदार्थ है; यथा—राईसे मूँग बड़ा, मूँगसे चना बड़ा, चनेसे आँवला

वड़ा, ऑवलेसे नीवू वड़ा, उससे वेल वड़ा, कामाः यह वड़ाई बढ़ते-बढ़ते मकान, पहाड़ी, पहाड़, आकाश आदितक पहुँच जाती है और उसकी अन्तिम सीमा विभु परिमाण माना गया है। इसी प्रकार ज्ञान महत्त्वकी अन्तिम सीमा सर्व-पदार्थ-विषयक ज्ञान मानना होगा। तब सर्वविषयक ज्ञानवान् अर्थात् एक सर्वज्ञ पुरुष अवस्य होना चाहिये। बस, वही ईषा है। इसी प्रकार ऐश्वर्यके विषयमें भी मानना चाहिये। ऐश्वर्य भी तारतम्यवान् पदार्थ है। उसकी भी अन्तिम सीमा होनी चाहिये। सर्वैश्वर्य ही वह सीमा है, तम सर्वेश्वर्यसम्पन्न एक पुरुषकी सत्ता माननी पहेगी; बस, वही सर्वेश्वर है।

वैशेषिक-मतावलम्बी भी अनुमानसे ईश्वरका साक्ष करते हैं। उनका अनुमान इस प्रकार है। इमलेग देखते हैं कि घट आदि कार्य-पदार्थों के कर्ता होते हैं; कर्त्तां के बिना कार्य घट आदि पदार्थ नहीं बनते; तव पृथ्वी, अंकुर आदि जिन कार्य-पदार्थों के कर्ता प्रत्यक्षमें दिखायी नहीं देते, उनके कर्त्ता अवस्य होते चाहिये; क्योंकि वे भी कार्य हैं। वे कार्य इस कारणे हैं कि सावयव हैं। जिनके अवयव होते हैं वे सक कार्य होते हैं। इस प्रकार जब पृथ्वी, अंकुर और कार्य-पदार्थोंका कर्त्ता मानना पड़ता है और हम जीवीं इतनी सामर्थ्य नहीं प्रतीत होती कि उन महान् पदार्थोंके हम बना सकों—कर्ता हो सकों, तब हम जीवोंसे अर्तिष्ठ एक कर्त्ता अवस्य होना चाहिये; वहीं सर्वेश्वर है।

नैयायिक भी ईश्वरको अनुमानसे ही सिंद्र करि हैं। किंतु वैशेषिकोंके अनुमानसे नैयायिकोंका अनुमान भिन्न प्रकारका है।

'ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यवर्शतात्' (न्याय॰ ४ । १ । १) यह न्यायसूत्र है। पुरुष-जीव प्रयत्न करता है, किंतु नियमसे प्रयत्नका फल उसको नहीं मिलता। अससे यह सिद्ध होता है कि जीवके कर्मका फल पाधीन है। जिसके अधीन जीवकृत कर्मफल है, वही ईश्वर है। सभी अचेतन पदार्थ किसी चेतनसे अधिष्ठित होकर ही किसी व्यापार-(किया-)को करते हैं। जीव धर्माधर्मरूप अचेतन-कर्म जिस चेतनसे अधिष्ठित होकर कर्म-फल-दानमें प्रवृत्त होता है, वह चेतन सर्वज्ञ परमेश्वर है।

सांख्यमतावलम्त्री वैशेषिक आदिमें कथित अनुमानोंका दूषण करते हुए स्वतन्त्र जीवातिरिक्त ईश्वरको न मानकर कहते हैं कि रागादिरहित अणिमादि सिद्धिमान् अनित्य ज्ञानवान् सिद्धपुरुष ही वेद-शास्त्रमें ईश्वरके गमसे व्यवहृत हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वरनामक पुरुष कोई नहीं है। सांख्य-दर्शनमें—

र्ध्ध्वरासिद्धे मुक्तवद्धयोरन्यतराभावान्न तिसिद्धिः । उभयथाप्यसत्करत्वम् । मुक्तात्मनः ग्रांसा उपासासिद्धस्य वा ।'

इन चार सूत्रोंमें यही बात कही गयी है।

वेदप्रामाण्यवादी वेदान्ती छोगोंका कहना है कि श्विर अनुमानसे सिद्ध नहीं हो सकता, ईश्वर-सिद्धिमें केवल शास्त्र ही प्रमाण है। वैशेषिकोंने ईश्वर-साधनमें जो अनुमान बताया है, उससे सर्वत्र, सत्यसंकल्प, सर्वशक्ति, परमद्याछ, सर्वकल्याणपूर्ण ईश्वरकी सिद्धि नहीं हो सकती। घटको दृष्टान्त मानकर मही, महीधर, सागर, वृक्ष, अंकुर आदि सावयव कार्योंक कर्ताका साधन किया जाता है, यह ठीक है। किंतु सिद्धे जीविमन्न ईश्वरकी सिद्धि नहीं हो सकती; क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि मही आदिका जो कर्ता सिद्ध हो वह जीविमन भी हो। यह सन्व है कि हमलोगोंमेंसे कोई निक कर्त्ता नहीं हैं। इसीसे यह मान लेना आवश्यक नहीं

हो सकता है कि किसी भी जीवने इनकी रचना नहीं की । मनुष्योंमें एक-से-एक बढ़कर ज्ञान-राक्तिशास्त्री पुरुष देखनेमें आते हैं, मनुष्योंसे देवनाओंकी शक्ति अधिक मानी जाती है, योगी, तपस्त्री आदिकी विचित्र अलैकिक शक्तियाँ सब लोग मानते हैं, ऐसे अलैकिक राक्तिशाळी किसी जीवने ही इन पृथिवी, अङ्कर आदि पदार्थोंकी रचना की, ऐसा मान लेनेमें क्या आपत्ति है ? सिवाय इसके इन सन चीजोंको एक ही व्यक्तिने बनाया, इसमें ही क्या प्रभाण है ! हम देखते हैं कि छोटी कुटियाको एक ही मनुष्य बना होता है, बड़े-बड़े राजमहलोंको अनेक ननुष्य मिलकर बनाते हैं; तब ऐसा भी तो हो सकता है कि मही-महीधर आदि बड़ी-बड़ी चीजें एक व्यक्तिकी बनायी हुई न होकर अनेक पुरुषोंकी बनायी हुई हों । ऐसी हालतमें उक्त अनुमानसे सकलपदार्थ-निर्माण-क्षम एक ईश्वरकी सिद्धि कैसे हो सकती है ! और, अनुमानसे जो ईश्वर सिद्ध होगा, वह घटके कत्ती (दृष्टान्तभूत) कुम्हारके समान अल्पज्ञ, अल्पराक्ति कर्मपरवश दुःखी ही सिद्ध होगा। मही-महीधर आदिके कत्तीमें दृष्टान्तभूत घटके कर्ता कुम्हारसे कुछ अधिक ज्ञानशक्ति भले ही कार्यानुसार सिद्ध हो, किंतु जिस प्रकार ईश्वर शास्त्रसिद्ध है, वैसा अनुमानसे सिद्ध नहीं हो सकता; क्योंकि सामान्यतया अनुमानका यह लक्षण किया जाता है--

'अनुमानं श्वातसम्बन्धयोरेकज्ञानेनान्यस्य ज्ञानम्।'

अर्थात् 'जिन दो पदार्थोमें परस्पर नियत सम्बन्ध पहले ज्ञात हो उनमेंसे एकके ज्ञानसे दूसरेका जो ज्ञान होता है वह अनुमान है।' अग्नि और धूम इनमें परस्परका सम्बन्ध जिनको माछम है, उनको उन दोमेंसे एक धूमके ज्ञानसे अग्निका ज्ञान होता है, वही अनुमान कहजाता है। प्रकृतमें मही-महीधर आदि पदार्थोके कार्यस्वके साथ ईश्वर-कर्तृकत्वका कोई भी सम्बन्ध पूर्वमें ज्ञात नहीं है, तब उस कार्यत्वके ज्ञानसे ईश्वर-कर्तृकत्वका ज्ञान कैसे हो सकता है ! यही कारण है कि वेदप्रामाण्यवादी वेदान्ती ईश्वरको केवल शास्त्रोंसे सिद्ध मानते हैं । सामान्यतया वेदका लक्षण भी वैदिक लोग यही बतलाते हैं कि—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न युध्यते। यत्तं विद्गित वेदेन तसाद्वेदस्य वेदता॥ अर्थात् 'प्रत्यक्ष या अनुमानसे जो उपाय जाना नहीं जाता, उसको जिससे जानते हैं वही वेद है।' यहाँ उपाय शब्द होनेपर भी उससे वस्तुमात्रको छेना चाहिये। वेद ऐसे ही तत्त्वोंका बोधन करनेवाला है, जो अन्य प्रमाणोंसे नहीं जाने जाते।

जो ज्ञान इन्द्रियोंसे उत्पन्न होता है, उसको प्रत्यक्ष कहते हैं। जिन दो पदार्थोंका परस्पर नियत सम्बन्ध पहलेसे ज्ञात हो, उनमेंसे एकके ज्ञानसे दूसरेका जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको अनुमिति या अनुमान कहते हैं। जैसे ये दोनों प्रमाण हैं, वैसे ही शब्दोंके श्रवणसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह भी प्रमाण है। किसीके पिताको प्रमाणित करनेवाला माताका शब्द (कथन) ही प्रमाण होता है। तब ईश्वरकी सिद्धि प्रत्यक्ष तथा अनुमानसे न होकर शब्दसे हो तो इसमें क्या आपत्ति है! क्योंकि तीनों ही तो प्रमाण हैं।

स्वतःप्रामाण्यवाद

किसी पदार्थका ज्ञान होनेपर वह इष्ट-साधन और खप्रयत्नलभ्य विदित हो तो उसकी ओर मनुप्यकी प्रवृत्ति हुआ करती है । प्रवृत्ति 'सकम्प-प्रवृत्ति' के नामसे दो प्रकारकी होती है । सकम्प-प्रवृत्ति' के नामसे दो प्रकारकी होती है । सकम्प-प्रवृत्ति उसे कहते हैं जो भय या आशंकाक साथ होती है । निष्कम्प-प्रवृत्ति वह होती है जिस प्रवृत्तिके समय मनुष्यके हृदयमें कोई शंका या भय नहीं रहता । इस प्रकारकी निष्कम्प-प्रवृत्तिके लिये पदार्थज्ञानमें प्रामाण्य-ज्ञानकी भी आवश्यकता होती

है । कठिन प्रयत्नसाध्य या बहुवित्तव्यय-साध्य कार्यो मनुष्यकी प्रवृत्ति निष्कम्प-प्रवृत्ति ही होती है और वह प्रामाण्यज्ञानके बिना हो नहीं सकती। तब इस वातका विचार करना चाहिये कि मनुष्यको जिस किसी भी वस्तुका जब ज्ञान होता है, तब उसके साथ उस ज्ञानमें प्रामाण्य-ज्ञान कैसे होता है । मीमांसकोंका यह कहना है कि किसी भी वस्तुका ज्ञान उत्पन्न होता है तो अ ज्ञानमें उस वस्तुके साथ यथार्थताका भी मान हो जात है । उसके लिये स्वतन्त्र सामग्रीकी आवस्यकता ही नहीं, जिस सामग्रीसे किसी भी वस्तुका ज्ञान होता है उसी सामग्रीसे उस ज्ञानमें यथार्थताका भी मान हो जाता है। अतएव दूरसे देखनेवाला मनुष्य रजतन ज्ञान होते ही उसे लेनेके लिये दौड़ पड़ता है। उसको जो रजतका ज्ञान हुआ वह प्रमाण है या अप्रमाण-इस तरहका विचार करते हुए वह प्रामाण्य-निधक लिये प्रतीक्षा नहीं करता । इससे यह सिद्ध होता है कि उस पुरुषको रजतका ज्ञान जिस समय हुआ था, उसी समय उस ज्ञानमें यथार्थताका भी ज्ञान हो गया था । अन्यथा वह रजत लेनेके लिये कैसे दौड़ता! अयथार्थताका ज्ञान कारण-दोष और बाधक-ज्ञानसे होत है, खतः नहीं । दूरसे देखनेपर एक मनुष्यको जितका ज्ञान हुआ और उसके लेनेके लिये वह दौड़ा जाता है। पास पहुँचनेपर उसको चाँदीके बदले सीप दिख्लापी देती है, तब वह समझता है कि दूरसे देखनेपर मु जो चाँदीका ज्ञान हुआ था वह यथार्थ नहीं था। 🕅 प्रकार पूर्वज्ञानमें अयथार्थताको समझनेक छिये वी दो कारण उपस्थित हैं, एक तो उसको समीप पहुँचतेष जो सीपका प्रत्यक्ष हुआ वह, इसीको बाधक ज्ञान बहते हैं; दूसरा दूरत्व-दोषका ज्ञान, यह कारणदोष कहना है। वह निश्चय करता है कि मुझे जो पहले खर्म बीध हुआ या उसमें दूरी कारण है। यह दूरशत दी ही रजत-ज्ञानका कारण था, किंतु यह बात पहि मासूम नहीं होती । पहले तो उसको जो रजत-ज्ञान हुआ उसको यह यथार्थ ही समझता था, तभी तो वह जितको लेनेके लिये दौड़ा गया था। समीप जानेपर उसको सीप दिखायी दी, तब वह विचार करने लगा कि पहले जितका बोध कैसे हुआ ? प्रत्यक्षमें सीपका ज्ञान हुआ है, तब वह पहलेके ज्ञानको अयथार्थ जान लेता है और उसका कारण दूरस्थत्व-दोष समझता है। अतएव ज्ञानमें यथार्थतारूपी प्रामाण्यका ज्ञान स्वतः अर्थात् सीय सामग्री—ज्ञान-सामग्रीसे ही हो जाता है। अग्रामाण्यका ज्ञान कारणदोष और वाधक ज्ञानसे होता है। क्ष्मामाण्यका ज्ञान कारणदोष और वाधक ज्ञानसे होता है। क्ष्मामाण्यका ज्ञान कारणदोष और वाधक ज्ञानसे होता है। क्षमामासकोंका सिद्धान्त है; इसी सिद्धान्तको वेदान्ती भी मानते हैं। नैयायिक आदि अन्य मतावलम्बी स्थार्थ ज्ञानको गुणज्ञानजन्य मानते हैं; जैसे—अय्यार्थताका ज्ञान कारण-दोष-ज्ञानसे होता है, वैसे ही यथार्थताका ज्ञान मी गुणज्ञानसे होता है।

हाँ, तो जब ज्ञानमात्रमें खतः ही प्रामाण्य ज्ञान होता है, तब वेदजन्य ज्ञानमें भी यथार्थताका बोध होनेमें क्या आपत्ति हो सकती है ? जवतक कारणदोप-**बान और वाधकज्ञान न हो तवतकके छिये वेदज**न्य ज्ञानकी यथार्थतामें कोई वाशा नहीं । वेद ऋपी शब्द-राशि, अनादि-अविच्छिन्न-अध्ययन-अध्यापनप्रम्परागत अपौरुषेय नियं निर्दोष प्रन्थरूप है। शब्दमें और परम्परया बद्जन्य ज्ञानमें अप्रमाणताका कारणभूत-दोव प्रन्थ-क्तिक भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि ही हैं । जिस श्यिक कत्तीमें भ्रम, प्रमाद विप्रलिप्सा आदि दोष हैं, वह म्य-कर्तृदोपके कारण अप्रमाण होता है । वेद भगेरुपेय अर्थात् किसी भी पुरुषका बनाया हुआ वहीं है और उसका अध्ययन ऐसे नियमोंके साथ अतिच्छिन्नतासे चला आता है कि जिससे उसमें एक अस्ता भी वैपरीत्य या न्यूनाधिक भाव नहीं हो किता; अतएव वह नित्य और निर्दोष है। सर्वेज्ञ सि कल्पादिमें केवल तपदेश करता है—पूर्वकल्पमें वेद जिस रूपमें था, उसी रूपमें वह उपदेश करता है; अतएव ईश्वर भी नेदका कर्ता नहीं, उपदेष्टामात्र है। जब कि नेदका कोई कर्ता ही नहीं, तब नेदमें कर्त्रदोत्र आ नहीं सकता। इस प्रकार नेदकी प्रमाणताका मझक कारण-दोषका अभाव है। बाधक-ज्ञान आजतक न हुआ, न होगा, न हो ही सकता है; क्योंकि बाधक-ज्ञान प्रत्यक्षरूप या अनुमानरूप होना चाहिये; नेद प्रतिपाध-विषयक प्रत्यक्षादि प्रमाणान्तरोंका विषय नहीं है। केवल अलोकिक विषय ही नेदनेब हैं, तब उन विषयोंके विपरीत वस्तुबोध करनेकी सामध्य अन्य प्रमाणोंमें कैसे हो सकती है! अतः कारण-दोषज्ञान और वाधक-ज्ञानके अभावमें नेदकी प्रमाणता अक्षुण्ण रहती है। (और, नेद खतःप्रमाण सिद्ध होते हैं।)

इस प्रकार खतः प्रमाणभूत नित्य निर्दोष वेदरूपी प्रमाणसे ईश्वर सिद्ध होता है; इसके विरुद्ध कोई भी प्रमाण काम नहीं कर सकता । यदि कोई प्रत्यक्ष या अनुमानसे ईश्वरका अभाव सिद्ध करना चाहे तो उनसे यह कहना चाहिये कि ये दोनों प्रमाण अलौकिक ईश्वरकी सत्तामें जब प्रमाण नहीं हो सकते तो उसका अभाव ही इनसे कैसे सिद्ध हो सकता है ? हम छोगोंके अनुभवमें यही वात आयी है कि जो प्रमाण जिस वस्तुकी सत्ताका बोधन करा सकता है, वही उसके अभावका भी वोधन करा सकता है। हम अपनी आँखोंसे भूतलपर रखे हुए घड़ेको जानते हैं तो उन्हीं आँखोंसे वहाँसे घड़ेको हटा देनेपर घड़ेका अभाव भी जानते हैं, अन्य इन्द्रियोंसे नहीं । आँख मींचकर कोई यह नहीं जान सकता कि घड़ा है या नहीं। किसी पेड़पर पिशाच है कि नहीं, यह बात हम किसी भी इन्द्रियसे नहीं जान सकते। वहाँपर यह जान लेना चाहिये कि पिशाचकी सत्ता और अभाव दोनों ही हमारी इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं। ऑखसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि पेड़में पिशाच नहीं है; क्योंकि पिशाच आँखोंका विषय नहीं है — इन्द्रियवेध नहीं है । अतएव उसका अभाव भी इन्द्रियवेध नहीं है । जब यह बात है तो ईश्वरके अभावको ही हम प्रत्यक्ष या अनुमानसे कैसे सिद्ध कर सकते हैं ? ईश्वर इन्द्रियातीत है, अतएव उसका अभाव भी इन्द्रियातीत है । अतएव शास्त्र-सिद्ध ईश्वर-सत्ताके विरुद्ध बाधकान किसी भी प्रमाणसे हो नहीं सकता, इस प्रकार शास्त्रकेख ईश्वरकी सिद्धि निर्वाध है । (इसके सिवाय अनेक ऋष-महर्षियों, संत-महात्माओं और मक्तोंके अनुभव एवं प्रत्यक्ष ज्ञानकी लम्बी प्ररानी परम्परा भी श्रद्धा

और विश्वासके परिपेक्यमें ईश्वरकी सत्ता-महत्तका प्रतिपादन करती है। इतनी लम्बी और विश्वमन परम्पराका अपलाप नहीं किया जा सकता। विज्ञान भी आज अचित्त्य शक्तिके रूपमें विश्वाभार और विश्वमन संचालकके रूपमें ही सही, ईश्वरको शब्दान्तरसे लीका करता है। फलतः ईश्वरकी सत्ता निर्वाध है। हम्मी पृष्ट और प्रामाणिक मान्यता है कि इस विश्वस संचालक—सूत्रधार ईश्वर है, जिसे हम परमेश्वर कहन्न उपासित करते हैं।)

(संकलित)

बह्यानुसंधान

(टेखक--दीवानदरादुर त्व॰ के॰ एस॰ रायस्वामी शास्त्री, बी॰ ए॰, बी॰ एक्॰)

१-अनुसन्धान

पूर्वके विशेषकर भारतवर्षके अध्यात्मशास्त्रमें अन्तर्ज्ञानकी जो ज्योति या दिव्य सृक्ष्मदृष्टि अथवा सिसद्भान्तके प्रतिपादनमें जो सत्साहस देखनेमें आता है, पश्चिमके अध्यात्मशास्त्रमें उसका कहीं कोई नाम-निशान नहीं है । चार्ल्स ह्विटवी कहते हैं कि 'सामान्यतः पाश्चाच्य तत्त्वज्ञानका इतिहास प्लेटोद्वारा स्थिर गृहीत मूछ तत्त्वविभागका क्रमागत विकारमात्र है। प्लेटोका गृहीत सिद्धान्त भी चन्नल ही था । प्लाटिनसने प्लेटोके विचारोंको प्राच्य अध्यात्मज्ञानके सिद्धान्तोंसे प्रकाश पाकर तदनुसार और ऊँचे स्तरपर चढ़ाया और उन्हें और भी युक्तिसंगत बनाया । इनके कथनानुसार मननके द्वारा मनुष्य प्रकृतिसे अन्तःकरणको, अन्तःकरणसे शुद्रसत्त्व बुद्धिको और शुद्रसत्त्वसे परम पुरुषको प्राप्त करता है । यहाँ हमें आत्मा और अखण्ड सचिदानन्द तथा 'पकमेवाद्वितीयम्'के सम्बन्धमें उपनिपदींके ही मन्त्रस्वर स्पष्ट सुनायी देते हैं। इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनीके तत्त्ववेत्ता प्रायः संदिग्ध शब्दों और अस्पृष्ट

ध्येयके पक्कमें जा धँसे हैं। मौतिक ब्रान-(सार्त्तः) के तत्त्वविद्, विशेषकर हर्वर्ट स्पेन्सरने अपने शब्दबार और कल्पनाजालसे इस विवशताको और भी बढ़ा रिषा है, और इनका जो अज्ञेय-वाद है वह—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

—इस खानुभवोक्तिके सर्वथा विपरीत ही है।

मौतिक शास्त्र, तत्त्वज्ञान और धर्म—ये ज्ञानके बे तीन अलग-अलग विभाग माने गये हैं, यह पाश्चालोकी ही मनमानी है। मौतिकशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र बीच कभी समाप्त न होनेवाला घोर विरोध और अध्यात्मशास्त्र की मानना पाश्चात्त्योंकी ही कुकल्पना है। भारतीय बोन तत्त्वज्ञानको 'दर्शन' कहते हैं, परंतु पाश्चाल्योंके वित्तत्त्वज्ञान सर्वतः प्राप्त तत्त्वोंका विचारमात्र है। दर्शन विद्वल्प्यां विद्वल्पन विश्लेषण, अनुसन्धान और मीमांसा ब बुद्धिपूर्वक विश्लेषण, अनुसन्धान और मीमांसा ब दर्शन हो हो जीवनका वास्तविक लक्ष्य है।

इस प्रकार ब्रह्मदर्शन पानेका मुनिश्चित मार्ग व्यतिरेक और अन्वयकी पद्धतिसे अपने आपको देखना है। जाप्रत, खप्न और मुष्ठुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंको व्यतिरेक्षपूर्वक देखनेसे हम उस साक्षीकी अलक पाते हैं जो इस अवस्थात्रयके पीछे है, जो कभी बदलता नहीं, जो वृद्धि-क्षयरहित अविकार्य है और जो सर्वव्यापी और खयंप्रभ है, जैसा कि अमर 'पञ्चदशी' में विद्यारण्य खामी कहते हैं—

भोदेति नास्तमेत्येका संविदेका स्वयंप्रभा ।'

भर्यात्—इस शाश्वत अनन्त सनातन आत्माके होनेका खानुभूत प्रतिपादन ही भारतीय परम विविध तत्त्वज्ञानकी पराकाष्ठा है। इसी एक परमात्माके ये रूप और कर्म हैं जो इस नानाविध नामरूपात्मक गात्में देख पड़ते हैं।

इस परमारमाके अनुसन्धानके लिये इस पृथ्वीसे व्हकर ऊपरके प्रह-नक्षत्र-मण्डलोंमें जानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती । इसका अनुसन्धान और इसकी प्राप्ति इसी शरीरमें, इदयकी अँघेरी कोठरीमें (इदयगुहा या दहराकाशमें) होती है; यही वास्तवमें ब्रह्मपुर है। बुद्धिके स्थानभूत मस्तिष्कका अन्तर्ज्ञानके स्थान इसपसे वही सम्बन्ध है जो कि चन्द्रमाका सूर्यसे । असकी कलाएँ सूर्यसे लिया हुआ प्रकाश हैं और उसकी वृद्धि और क्षयके पक्ष हुआ करते हैं; पर यह अधिक सुसहा ज्योत्स्ना है, यद्यपि धुँधलापन इसमें सर्वथा नष्ट नहीं है । श्रुति और स्मृतिका भी परस्पर ऐसा ही सम्बन्ध है ।

अनन्त चक्रके पीछे भटकलेके बदले जब हम केन्द्रमें ही पहुँचते हैं तब सब बातं खुल जाती हैं और विश्वकी समस्या हल हो जाती है। 'एक' ही किस प्रकार अनेकोंमें और अनेकोंद्वारा खेल खेल रहा है, यह स्पष्ट देख पड़ता है। वहाँ आत्मा और जगतकी कोई पहेली नहीं रह जाती। एकके अनेकिय होनेका क्रम वहाँ ध्यानमें आ जाता है। वहाँ एकत्व और बहुत्व परस्पर मिन्न या निरोधी तत्त्व नहीं हैं। वेदान्तमें प्रकृति, पुरुष या परमेश्वरसे पृथक् या विरुद्ध तत्त्व नहीं है। प्रकृति परमेश्वरकी परमेश्वरी शक्ति ही है—

'मायां तु प्रकृतिं विद्यानमायिनं तु महेश्वरम्।'

जैसा कि स्वेताश्वतरोपनिषद्में कहा है— 'एकका एक बने रहते हुए अनेक रूपोंमें प्रादुर्मूत होना जीवनका महत्तम आश्चर्य है । प्रकृतिके तेईस विकार प्रकृतिके आत्म-प्राकट्यके ही एकके वाद एक क्रम-विकास हैं, पर सबके मूलमें ब्रह्मकी सत्ता सदा और सर्वत्र विद्यमान है ।' ऐसे सिद्धान्तको अनेकेश्वरवाद कहना शब्दोंका दुरुपयोगमात्र है । चार्ल्स ह्विटवी बड़े अच्छे ढंगसे कहते हैं कि 'अनेकेश्वरवाद'का यदि कुछ अर्थ हो सकता है तो वह यही हो सकता है कि विश्व ही ईश्वर है, परंतु वेदान्तका सिद्धान्त तो यह है कि विश्वमें जो कुछ भी सत् सत्ता है उसके अणुमात्रका भी कारण विश्व नहीं है, परमेश्वर हैं ।

अनेकोंका जो खेळ हो रहा है उसके बीचमें हमळोग हैं और उस एकको नहीं देख पाते हैं। इसे कोई भी तभी देख सकता है जब यह अपनी इच्छासे अपने-आपको हमारे सामने प्रकट करे। पश्चकोशात्मक त्रिविध शरीर उस आत्मज्योतिको सहस्रशः विकीण करते हैं। इन विकीण और विविध वर्णरिक्षत ज्योतियोंको आत्मप्राप्तिको केवळ एक श्रुम ज्योतिमें एकीभूत करनेके लिये परब्रह्मके सगुण रूपकी दया ही कारण है। इसीलिये निरपेक्ष ब्रह्मका अनुसंधान करनेवाले हिन्दू मूर्तिपूजक भी होते हैं। भिगनी निवेदिताने अच्छा कहा है कि 'संसारके सब लोगोंमेंसे हिन्दू ही ऐसे हैं जो बाह्यतः सबसे अधिक और हृदयतः सबसे कम मूर्तिपूजक हैं।'

जब सब वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं और मन आत्मज्योतिको विकीर्ण करनेका कारण नहीं होता तब निरपेक्षब्रस्का विशुद्ध अनन्त सनातन परमानन्द प्रकाशने स्थाता है। तब कोई अनुसन्धान नहीं रहता; क्योंकि अनुसन्धित्सु, अनुसन्धेय और अनुसन्धान तीनों एक ऐसे एकत्वमें एक हो जाते हैं कि जिसमें कोई द्वेत नहीं रह जाता और वह समाकीर्ण शुभ आत्मज्योति दिक्कास्थ-चनविष्ठिकरूपसे अपनी महिमामें स्थित हो जाती है (स्वे महिम्न प्रतिष्ठितः)।

२ अन्तराय-अविद्या

धर्मका रूप या तत्व चाहे कुछ भी हो, उसके द्वारा व्यष्टिगत पुरुषका खरूपगत ईश्वरत्व ही घोषित होता है। यदि पूर्णत्व या सिद्धि अप्राप्तकी प्राप्ति है तो अन्य सब प्राप्तियोंके समान इसका भी किसी कालमें आरम्भ होना अनिवार्य है और इसिंछिये फिर इसका किसी कालमें अन्त होना भी निश्चित है। इस प्रकार वह अवस्था भी क्षणिक ही हुई । अनन्तत्वमें असीमत्व संनिहित है और दोनोंमें ही कोई पूर्वसत्ता है-यदि कोई सनातन पराक्-स्रता भी है। वर्तमान अपूर्णत्व अवस्य ही किसी पूर्णत्वका ही सूचक हो सकता है। चिरंतन पूर्णत्व तभी सम्भव हो सकता है जब वस्तुतः उसकी सनातन सत्ता हो । वर्तमान अपूर्णत्वका खरूप यही है कि यह क्षणभङ्क्षर जीवन है और यह सुख-दुःखका कर्दम है । इस अपूर्णत्वका कारण मिन्न-भिन्न धर्मोमें भिन्न-भिन्नरूपसे बताया गया है। यह पाप अथवा अविद्या कहा गया है। पापका सम्बन्ध व्यवहारसे है और व्यवहार मानसिक और कायिक दोनों होता है । कायिक व्यवहारका मुख्य कारण मानस ही है, इसलिये इस क्षणभङ्गरता और दुःखका कारण वासना या काम कहा गया है। तत्त्वविचार इस मीमांसाको और आगे बढ़ाकर इस प्रश्नका उत्थापन करता है कि

इस कामका भी कारण क्या है। इसका उत्तर यह है कि आत्माकी ज्योतिका सम्मुख न होना इसका काण है; क्योंकि यदि वह ज्योति अन्तर्हित न होती, अन्तराय-रहित प्रकाशती रहती तो किसीको कोई वासना न होती और यदि वासना न होती तो कोई पाप न होता। तत्त्वज्ञानका हेतु आत्मसत्ताका ज्ञान और अनुमव कराना ही है।

जगत्का जो वाह्यरूप हमलोग देखते हैं, यह वास्तविक नहीं है तो यह बात सामान्य बुद्धिको बड़ी ही विचित्र माल्रम होगी; पर विचारनेसे स्पष्ट हो जायगी और तत्त्वज्ञानके सभी सम्प्रदायोंने इस बातको माना भी है। जगत्के सम्बन्धमें हमलोग केवल उतना ही जानते हैं जितना इन्द्रियोंसे जाना जाता है; यह वस्तु खयं क्या है! सो कुछ भी नहीं जानते। जड प्रकृतिको हम दिक्कालाविक्ष्यन देखते हैं और यह देखते हैं कि रूपमात्र अशाखत है। पर आत्मा अपने-आपको अशाखत नहीं समझ सकती, वह अपनेको शाखत ही अनुमव करती है।

अद्रैत-सिद्धान्त यह है कि हम पदार्थों की जो नानाविधता देखते हैं, यह अविद्या के कारण देखते हैं, यथा भें सद्वस्तु तो एक ब्रह्म ही है। इस अविद्याका कारण क्या है, यह प्रश्न नहीं हो सकता; क्यों कि कारण रूप कार्योत्पादनका क्षेत्र ही अविद्याका क्षेत्र है। अविद्याका क्षेत्र है। अविद्याक्ष अनिवचनीय है, पर विद्यासे इसका निराकरण होता है। जगद्भमके पीछे तदाश्रयस्वरूप सनातन सत्ता है। जब हम विकार या कार्यको देखते हैं तब हम उसके कारणको प्रकृति कहते हैं; जब हम उसे ब्रह्मानुमवकी हिसे देखते हैं तब उसे अविद्या माया कहते हैं। सांह्म-सिद्धान्तके अनुसार प्रकृति अनाद्यनन्त है। परंतु ब्रह्मि सिद्धान्तके अनुसार अविद्या अनादि है, पर अनन्त नहीं सान्त है। सांह्म-सिद्धान्तके अनुसार अविद्या अनादि है, पर अनन्त नहीं सान्त है। सांह्म-सान्त है। सांह्म-सान्त है। सांह्म-सिद्धान्तके अनुसार अविद्या अनादि है, पर अनन्त नहीं सान्त है। सांह्म-सान्त है।

हैं और दोनों एक-दूसरेके बिना रह सकते हैं, पर अद्वैत-सिद्धान्तमें अविद्याकी गौंण सत्ता है और ब्रह्मसत्ताके बिना वह नहीं रह सकती। (ब्रह्मसत्ता ही भगवत्तत्त्व है।)

यह कहना ठीक नहीं कि अविद्या भावरूपा है।
यदि जगत् मनोमय ही होता तो इनमें स्थिरता, हेतु या
क्रम कुछ भी न होता । मनोमय सृष्टि जब चाहे गढ़ी
और तोड़ी जा सकती है । जगत्को कोई ऐसे गढ़
और तोड़ नहीं सकता । फिर यदि अविद्या केवल
मनोगत ही होती तो सुप्तिमें इसका रहना न बनता,
जब कि मन सर्वथा निष्क्रिय होता है । अद्वैत सिद्धान्त
यह है कि अविद्या ब्रह्मको छिपाये रहती और जगत्को
सामने रखती है । इसकी इन शक्तियोंको आवरणशक्ति
और विक्षेपशक्ति कहते हैं । आत्मसत्ताका अवोध ही
अविद्याका कारण है । तुरीय अवस्थामें जब हमें आत्मखरूपका बोध होता है, तब सब भ्रम दूर हो जाते हैं
और बहुविधा नष्ट हो जाती है । तब एकत्वका भान
होने लगता है ।

धर्मभावका सम्बन्ध जितना बुद्धिसे है उतना ही अन्तर्ज्ञानसे है। मि० ओ० सी० क्वियकने अन्तर्ज्ञान और बुद्धिकी यथाक्रमपर फिरनेवाले क्खूतर और जहाजके अफसरसे तुल्लना की है। क्बूतरका मन जहाजी गणितसे बिल्कुल खाली रहता है, पर वह अपने स्थानपर ठीक पहुँच जाता है। जहाजका अफसर नक्षत्रादिसे दिशा निश्चितकर जहाजका रास्ता ठीक करता और अपने स्थानपर पहुँचता है। अपने-अपने हिसाबसे दोनों ही ठीक हैं। अन्तर्ज्ञानी अपने हिसाबसे और बुद्धिवादी अपने हिसाबसे ठीक है। कोई किसीको अपनेसे हीन समझे, यह ठीक नहीं। अन्तर्ज्ञान आस्म-बोधका नाम है और बुद्धिवाद तर्ककी प्रणाली है।

धर्ममें अन्तर्ज्ञानीका भी उतना ही महत्त्व है जितना कि बुद्धित्रादीका। स्टार्वकने अन्तर्ज्ञानके विषयमें अपना अनुभव इस प्रकार वर्णित किया है—'अन्तरकी गहराई और भी अधिक गहराईमें प्रवेश करने लगी—गेरी ही साधनासे जो गहराई मेरे अंदर उत्पन्न हुई उससे आकर मिलने लगी; वह अथाह गम्भीरता जो बाहर है, जो नक्षत्रोंको भी पार कर गयी है। कई अवसरोंपर मैंने यह अनुभव किया कि मुझे भगवत्सत्ताके सारूप्यका आनन्द भोगनेको मिला। इतना ही महत्त्व उस आध्यात्मिक बुद्धिवादी या विश्लेषणकारी विचारकका है, जो अपनी बुद्धिका प्रयोग करके अज्ञानके परदेको उठाकर सत्तत्त्वको प्रकट कराता है। वह यह जान लेता है कि जीव सत्तत्त्व है। वह शरीरसे सर्वथा खतन्त्र और सनातन है।'

इस प्रकार क्या अन्तर्ज्ञान और क्या बौद्धिक मीमांसा दोनोंमें ही, भिन्न-भिन्न प्रकारसे ही क्यों न हो, 'अन्तश्रक्षु' का ही सहारा लेना पड़ता है।

्रिक्टा असून के **३**—प्राप्ति

श्रीमान् शंकराचार्यके विख्क्षण तत्त्वज्ञानका यह केल्द्रबिन्दु है। हमलोग अपने परिच्छिन अहंकारमें इतने फँसे हुए हैं कि हमें अपनी आत्मा और उसके सान्त परिछिन्न अति कोमल अयगुण्ठनके वीच वियोगकी कल्पना भयावनी लगती है। जब यह बन्धच्छेद हो जाता है और हमारा वास्तव अन्तर्हित अपरिच्छिन्न सनातन सिच्चदानन्दखरूप प्रकाशित होता है, तब कुछ भी अल्प नहीं रह जाता, सब कुछ मुमा हो जाता है; तब अविद्या नष्ट होती है और जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है तथा ब्रह्मानुसंधान पूर्ण हो जाता है। यही पूर्णता भगवत्त्वकी प्राप्ति और जीवनकी सिद्धि है।

भगवद्दर्शनका सूत्र

(लेखक—आचार्य भीतुल्सी)

प्रत्येक भक्तके मनमें ठाठसा रहती हैं—अपने आराध्यका दर्शन करनेकी । उसके छिये वह कुछ भी करनेको तैयार रहता है। मगवान् और भक्तके मिठनकी चामस्कारिक घटनाएँ भी उसको रोमाश्चित कर देती हैं। उसके जीवनका सर्वोपिर ठक्ष्य रहता है—मगवान्से साक्षास्कार । इसी दृष्टिसे कुछ छोग इमारे पास भी आते हैं। वे जिज्ञासुभावसे पूछते हैं—साक्षास्कारकी प्रक्रिया। इस उनकी भावनाका आदर करते हैं और उन्हें समझाते हैं कि पहछे आप उतनी योग्यताका अर्जन करें, अपने-आपकी पहचान तो करें।

प्रमात्म-दर्शनसे पहले खात्मदर्शन होना चाहिये। आत्मदर्शन होता भी है । व्यक्ति देखता है-अपनी आत्माको विविधक्त्पोंमें । कभी वह गर्वित आत्माको देखता है, कभी उत्तेजित आत्माको देखता है, कभी मायानी आत्माको देखता है, कभी आसक्त आत्माको देखता है और कभी देखता है—आवृतात्माको । किंत यह आत्मदर्शन नहीं है; क्योंिक यहाँ जो कुछ दिखायी देता है, वह केवल विकार है । आत्माने जितने मुखीटे पहन रखे हैं, उनका दर्शन आत्मदर्शन नहीं है । इन सब मुखौटोंको उतारनेके बाद ही आत्माका सही रूप देखा जा सकता है। ग्रुद्ध आत्माका दशन ही प्रमात्म-दर्शन है । आत्मा एवं परमात्मामें और अन्तर ही क्या है ? आत्मा आवृत है और परमात्मा अनावृत । आवरण हट जाये तो आत्मा खयं परमात्मा बन जाता है; अन्यथा प्रमात्म-दर्शनकी बात केवल कल्पनालोककी बात बनकर रह जाती है।

आत्माके तीन रूप हैं—दुरात्मा, महात्मा और परमात्मा। जब हम दुरात्मा और महात्माको प्रत्यक्ष

देखते हैं, तब परमात्माको क्यों नहीं देख सकते! परमात्मा आत्माका ही शुद्ध खरूप है। यह बात किसी मत या सम्प्रदाय-विशेषकी नहीं है, प्रत्युत प्रत्येक आत्मवादी दर्शनकी है। कोई भी दर्शन ऐसा नहीं है, जो आत्माको न मानता हो। इसिलिये परमात्माको पाने, पहचानने या देखनेके लिये आत्म-दर्शनके सिद्धानको समझना आवश्यक है।

आत्मा है; आत्माका दर्शन हो सकता है। तब प्रक्र यह उठता है कि आत्मदर्शनकी प्रक्रिया क्या है! बहुत सीधी-सी प्रक्रिया है इसकी, जो आज प्रेक्षा-ध्यान-साधनाक नामसे बहुचर्चित हो रही है। प्रेक्षा-ध्यान क्या है! 'संत्पिक्खए भप्पगमप्पएणं'—आत्मासे आत्माको देखो, आत्माक अतिरिक्त आत्माको देखनेवाला कोई हो ही नहीं सकता। जिस प्रकार दर्पणमें चेहरेका स्पष्ट प्रतिविम्ब उभर आता है, उसी प्रकार प्रेक्षाध्यानका अम्यास करते समय आत्माका स्पष्ट अनुभव होने लगता है। यह अनुभव जितना पुष्ट होता है, आत्म-दर्शनकी बात उतनी ही खामाविक हो जाती है। यह अध्यात्मकी प्रक्रिया है, जादू या चमत्कार नहीं है। अध्यात्मके साथ जहाँ भी चमत्कारकी बात जुड़ती है, आत्मदर्शनका पक्ष गौण हो जाता है।

युवक नरेन्द्र परमहंस रामकृष्णके पास गया। खामीजीने प्रश्नायित आँखोंसे उसकी ओर देखते हुए कहा—'नरेन्द्र! तुम क्या चाहते हो ! अणिमा-र्लाभ पाना चाहते हो ! उससे तुम बिल्कुल छोटे बन सकते हो । महिमा-लिभ्यसे तुम अपने आकारको बढ़ा सकते हो । हल्के और भारी बननेकी भी लिभ्यमाँ हैं। तुम चाहो तो तुम्हें आकाश-बिहारी बना दूँ । बताओ तुम चाहते क्या हो ?

नरेन्द्र खामीजीकी बात सुनकर गम्भीर होता जा हा था। उसने प्रश्नके उत्तरमें कहा—'इन सबसे मुझे मिलेगा क्या !' खामीजी बोले—'तुम्हारा नाम होगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी, प्रख्यात हो जाओगे तुम ।' नरेन्द्र बोला—'गुरुदेव ! मुझे ये सब नहीं चाहिये। आपको देना ही है तो मुझे वह तत्त्व दें जिससे मैं खयंको पा सकूँ।'

नरेन्द्रके शब्द उसकी भावनाका सक्षम प्रतिनिधित्व कर रहे थे। खामीजीने उसके अन्तःकरणको पढ़ा, परखा और उसे अध्यात्मविद्याके लिये योग्य पात्र

S no wasp in the street

पाया । उनकी वर्षोकी खोज पूर्ण हुई । उन्होंने उसे अपना शिष्य बना लिया । यही नरेन्द्र आगे जाकर विवेकानन्द बना, जिसने भारतीय अध्यात्मविद्याको उजागर करनेमें अपना जीवन लगा दिया ।

अध्यात्मका मूल आधार आत्मा है। आत्मतत्त्व जितना गूढ़ है, उतना ही स्पष्ट है। उसे सही रूपसे समझ लिया जाय तो परमात्म-तत्त्वका कोई रहस्य अज्ञात नहीं रहता। इसलिये आत्माको ही देखने, समझने और विशुद्ध करनेकी अपेक्षा है। यही है भगवहर्शनका प्रथम सिद्ध-सोपान अथवा भगवहर्शनका सूत्र।

वेदोंमें भगवत्तत्व

(छेखक-आचार्य भीग्रुंशीरामची शर्या 'सोय')

भगवान्का ऐश्वर्य चतुर्दिक् बिखरा पड़ा है, पर उधर विरले पुरुष ही अपनी दृष्टि ले जा पाते हैं। योगदर्शन भगवान् या ईश्वरको ऐसा पुरुष विशेष मानता है, जो क्लेश, कर्मविपाक और आशयसे अपरामृष्ट अथवा असम्पृक्त है । क्लेशका मूल कर्माशय अर्थात् वासना जाल है । यह जीवात्माके साथ तवतक लगा रहता है, जबतक वह मुक्त होकर भगवान् नहीं बन जाता या उनके पास नहीं पहुँचता। कमीशयरूप मूलके रहनेसे जाति, आयु और भोग जीवात्माके साथ छगे रहते हैं। उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है और एक योनिसे दूसरी योनिमें जाना पड़ता है। परंतु ये ही कर्म परमात्माको बन्धनमें नहीं डालते । श्वासकी सहज गतिके समान ईश्वरकी भी सृष्टि-संहारादि क्रियाएँ सहज हैं । दार्शनिक दृष्टिसे प्रमात्मा सत् (सत्तायुक्त), चित् (चेतन) और आनन्दखरूप है; यही उसका तात्विक रूप है। वेद ईश्वरके इस ऐश्वर्य अथवा ईश्वरत्वपर कई दृष्टियोंसे प्रकाश डालते हैं। ऋग्वेदका कथन है—

मन्ये त्वा यश्चियं यश्चियानां मन्ये त्वाच्यवनमञ्ज्युतानाम्। मन्ये त्वा सत्त्वामामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम्॥ (ऋ०८।९६।४)

ईश्वर सबका पूजनीय है, वह शक्तिमें भी सबसे बढ़कर है। वह बलवानोंमें बलवत्तम है। वेद उन्हें 'शचीव' कहते हैं। सभी शक्तियाँ उन्हींकी हैं। अतः वेदोंने उन्हें शिवसम्पत्ति कहा है। इसका अर्थ है— बलोंका खामी, शक्तिपर आधिपत्य रखनेवाला—

त्विमन्द्र वलाद्धि सहसो जात ओजसः। त्वं वृषन् वृषेद्सि॥ (ऋ॰१०।१५३।२) वृषा त्वा वृषणं हुवे विज्ञन् चित्रामिवितिभः॥ (ऋ॰५।४०।४)

न बीलवे नमते न स्थिराय न राधेते दस्युज्ताय स्तवान्। अज्ञा इन्द्रस्य गिरयश्चिद् ऋष्वा गर्मीरे चिद्भवति गाध यस्मै॥ (ऋ॰६।२४।८) इन मन्त्रोंमें ईश्वरको बृषण अर्थात् वलवान् एवं सभी बलोंका मूल-स्नोत कहा गया है। वह बज़ी है। जितना भी संहननत्व इस विश्वमें है, उसका मूल आधार ईश्वर है। इसीलिये अनेक मन्त्रोंमें उसे 'वज्जवाहु' भी कहा गया है। एक मन्त्रमें यह भी कहा गया है कि प्रमु स्थितर हैं, बृद्ध हैं, परंतु उनके बाहु विशाल और बलवान् हैं—'ऋष्वा त इन्द्र स्थिवरस्य बाहू।' प्रमुका वीर्य अनुत्त अर्थात् अप्रेरित है, क्योंकि प्रमुसे बढ़कर कोई है ही नहीं। निम्नाङ्कित मन्त्रमें प्रमुकी महत्ताका विशिष्ट निदर्शन है—

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि महा। ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्या दर्दिशे भुवना दर्दरीमि॥ (ऋ०८।१००।४)

ईश्वर भक्तके लिये सर्वत्र उपस्थित है । भक्त सदैव उसके संदर्शनमें निवास करता है । विश्वमें जितने उत्पन्न पदार्थ हैं, ईश्वर उन सबके ऊपर है। वह अपनी महिमासे सवका धारक और वशी बना हुआ है। जो व्यक्ति जितना अधिक ज्ञानके क्षेत्रमें प्रवेश करता है, वह उतना ही अधिक ईश्वरकी राक्तिसे परिचित हो जाता है। ऋतके दिशा-संकेत ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञानको संवर्धित करते हैं। ईश्वर पछमरमें समस्त भुवनोंको प्रलयमें परिणत कर सकता है—'सो अर्थः पुष्टीः विज इव आमिनाति' जैसे मूचालके समय बड़े-बड़े और पक्के से पक्के भवन और नगर धराशायी हो जाते हैं, वैसे ही अदानी, कृपण, द्वेषी और दस्युकी समस्त पोषण-सामग्री ईश्वरके द्वारा नष्ट-श्रष्ट कर दी जाती है। वेदोंने शक्तिके क्षेत्रमें प्रमुके रौद्ररूपका मी कई बार वज्लेख किया है । सामान्य मानव ही नहीं, बड़े-से-बड़े इानी और शक्तधारी भी प्रमुके इस रूपको अनुमव करके स्तम्भित रह जाते हैं। घोर-से-घोर अनीश्वरवादी

भी किसी अज्ञात बलवती सत्तामें विश्वास करने लाते हैं। वेद कहते हैं-

द्यावा चिद्रस्मै पृथिवी नमेते . शुष्माचिद्रस्य पर्वता भयन्ते। (ऋ॰२।१२।१३)

प्रभुके बलके आगे द्यावा और पृथ्वी झुक जाते हैं और अचल पर्वत भी काँपने लगते हैं, भयभीत हो जाते हैं—'न यस्य देवा देवता न मर्त्ताः आपश्च न रावसो अन्तमापुः'। यहाँ जितनी अमर तथा मत्ये शक्तियाँ है, जितने अमित क्षेत्रमें फैले हुए जल हैं - उनमेंसे कीई भी प्रमुके बलका पार नहीं पा सकता। ईश्वर जहाँ पुज्य है, उपासनीय है, भक्ति और अर्चनाका केंद्र है. अपने ओजसे दूसरोंको अभिभूत करनेवाळा धृष्णु और ख्यं अघृष्ट है अर्थात् दूसरोंके द्वारा अभिमृत होनेवाळा नहीं है। वह सत्त्वोंका केत्र है, ज्ञानियोंमें शिरोमणि है, विश्ववित् है और सर्वज्ञ है। वेद उसे 'विचर्षण' भी कहता है । इम सब अल्पचर्षणि हैं, खल्पमात्रको देखनेवाले हैं, परंतु ईश्वर विशेषचर्षणि अर्थात् द्रष्टा है। वह 'अभिज़ु' है। सबको सामनेसे, ऊपरसे और सब ओरसे देख रहा है, जान रहा है। कोई भी अस्तिल उसकी दृष्टिसे ओझल नहीं रह सकता। वेद उसे अक्तवियोंमें कवि कहता है अयं कविरकिषु प्रचेता मर्त्येष्विग्नरसृतो निधायि। (७।४। ४)। अन्य सब अकवि हैं, अक्रान्तदर्शी हैं। वही केवल कवि है। प्रचेता भी वही है। हमारे पास चेतनाके कतिपय कण हैं, परंतु प्रभुके पास प्रकृष्ट चेतना है; सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है--

सुदक्षो दक्षैः कतुनासि सुक्रतुः अग्ने किश्ववित्। कविः कान्येनासि विश्ववित्। (ऋ०१०।९१।३)

प्रमु क्षपनी काव्य-शक्तिसे, क्रान्तदर्शिनी वेतनासे सबको जानसा है— यस्तिष्ठित चरित यश्च वञ्चिति
यो निलायं चरित यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मंत्रयेते
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥
(अ०४।१६।२)

कोई कितना ही छिपकर काम करे, गुप्तरूपसे षड्यन्त्रद्वारा दूसरोंको धोखा देना चाहे, अनुचितरूपसे दवाव डाले, आतंकित करे या दो पुरुष एकान्तमें बैठकर कुटिल यन्त्रणामें लीन हों, तव भी वे प्रमुकी दृष्टिसे बच नहीं सकते—

सर्वे तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्। संख्याता अस्य निमिषा जनानाम् अक्षात्रिव्श्वच्नी निमिनोति तानि॥ (अ०४। १६। ५)

धावासे लेकर पृथ्वीपर्यन्त जो कुछ है, सबको वरणीय प्रमु देख रहा है। मनुष्योंके निमिषतक उसके गिने हुए हैं। उसने सबको नाप रखा है—

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान् न स मुच्याते वरुणस्य राज्ञः। दिवः स्पराः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षाः अति पश्यन्ति भूमिम्॥ (अ०४।१६।४)

ईश्वरकी अन्य विशेषताएँ उनके दान, त्याग और उदारता आदि कर्म हैं। उन्हें सभी पुकारते हैं, संकटमें भी, सुखमें भी। आर्त अपनी आर्तिको—दु:खको दूर करना चाहता है। जिज्ञासुको ज्ञानप्राप्तिकी आकांक्षा

है । निर्धनको धन चाहिये । एक ईश्वरमें सबकी अभिलापाओंको पूर्ण करनेकी शक्ति है। वह अकेला अनेकोंकी कामनाओंको पूर्ण कर रहा है- 'एको बहुनां यो विद्धाति कामान्' । वे 'वृपभ' हैं, वर्षक हैं, अपने उदार दानकी वर्षा करनेवाले हैं। उनके-जैसा दानी कोई भी नहीं है। हम यदि किसीको कुछ देते हैं. तो उन्हीं प्रभुके दिये हुएमेंसे देते हैं। उसमें हमारा अपना कुछ भी नहीं होता । प्रभु वसुओंके भी वसु हैं, 'तुवीमच' है। उनके ऐश्वर्यकी कोई इयत्ता नहीं है। वे वसुपित हैं, वसुओंके सम्राट् हैं। भक्तको वे ही निहाल करते हैं। मार्गमें आनेवाले वृक्षों, अवरोधोंको वे ही हटाते हैं। जो कुछ यहाँ पार्थिव तथा दैवी सम्पदाएँ हैं, वे सब उन्हींकी हैं । हम तो हृदयसे उन्हें पुकारते भर हैं । पर उसी पुकारमें ही उनके दान वरसने लगते हैं और हम तृप्तिका अनुभव करने लगते हैं। हमारी अभीष्ट और तृप्ति दोनोंकी पूर्ति उन्हींके द्वारा होती है।

भगवत्तत्वकी जो छः विशेषताएँ वंष्णव-आगममें प्रतिपादित हुई हैं, वे वेदोंमें भी पायी जाती हैं। भग तथा भगवान् दोनों शब्द वेदमें विद्यमान हैं। इन्द्र तथा मघवा दोनों वैदिक शब्द ऐश्वर्यके वाचक हैं। वेदमें वीर्य, सुवीर्य, सहस्रवीर्य, श्रवः, यशः (सुश्रवः), दर्शत-श्री, वसुओंका वसु, सुविदत्र, विश्ववित, सुभग, अरति (वैराग्य) आदि शब्द आये हैं, जो भगवत्तत्वकी विशेषताओंके द्योतक हैं।

सर्वव्यापक तत्त्व

ब्रह्मैंचेद्ममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्व च प्रसृतं ब्रह्मैंचेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ (मुण्डक॰ २।२।११)
यह अमृतस्रुरूप प्रब्रह्म ही सामने है। ब्रह्म हो पीछे है, ब्रह्म हो दायीं ओर तथा बायीं ओर, नीचेकी
ओर तथा ऊपरकी ओर भी फैला हुआ है। यह जो सम्पूर्ण जगत् है, यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।

ईशावास्यमिदं सर्वम्—विश्वव्याप्त भगवत्तत्वका विवेचन

(लेखक स्वर्गीय म॰ म॰ पं॰ श्रीगिरिधरशर्माजी चतुर्वेदी)

एक सूर्यके प्रकाशकी परिधिको ब्रह्माण्ड कहा जाता है। सूर्य अनेक हैं, उनकी प्रकाश-परिधियाँ भी अनेक हैं । कहते समय उन्हें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डतक कह देते हैं । उनकी संख्याका पता नहीं । सभी ब्रह्माण्डोंके नायक, नियामककी संज्ञा परमेश्वर है । नायकत्वमें एक एक ब्रह्माण्डकी गतिविधिको परिचालित करनेवाली शक्ति 'ईश्वर' कही गयी । एक-एक ब्रह्माण्डमें भी अनेक विभागोंके नियामक या परिचालक जीव कहे गये । वे सभी 'ईश्वरशक्तिंग्से नियन्त्रित हैं ।

शक्तिरूपसे विद्युत् सर्वत्र व्याप्त है । वह परमेश्वरके उदाहरणके रूपमें समझी जा सकती है। एक नगरमें काम लेनेके लिये वही विद्युत् ईश्वरस्थानीय हुई । मकानोंमें बल्बोंमें जळनेवाळी वियुत् जीवस्थानीय समझी जा सकती है।

सारे जीव ईश्वरके अधिकारमें हैं । उनकी राक्तिसे चलते हैं। ईश्वरसे प्रकाश लेकर अपना खतन्त्र जीवन चलाते हैं। एक-एक बल्ब प्रकाश प्रहण करता, प्रकाश फेंकता, प्रकाश्यको प्रकाशित करता है; परन्तु 'पावर हाउस'के बिना उसमें कोई प्रकाश नहीं।

विद्युत्-शक्ति दृष्टान्तमात्र है । ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियाँ परमेश्वर, ईश्वर और जीवमें हैं । अपनी-अपनी शक्तिसे अपना-अपना काम चलाया जा रहा है। व्यापक शक्ति-पुद्धोंकी परमेश्वर, ईश्वर और जीव ये तीन संस्थाएँ हैं। प्रत्येक संस्थामें अव्यय, अक्षर, क्षर, परात्पर ये चार विभाग हैं परमेश्वरमें भी, ईश्वरमें भी, जीवमें भी । समस्त कार्य-प्रपन्नका निर्वाह इन्हींसे हो रहा है ।

जगत्के निर्माणका श्रीगणेश यज्ञसे होता है। 'गति' और 'आगति' को यज्ञ कहते हैं। गति अर्थात् किसी वस्तुका भीतरसे बाहर जाना, आगति अर्थात् किसी वस्तुका बाहरसे भीतर आना । किसी पदार्थका खरूप बद्दक्नेपर भी उसमें होनेवाले गति-आगतिमय इस यङ्गसे ध्यइ वही वस्तु है-ऐसी प्रत्यमिक्का बनी रहती है।

सूर्यसे प्रतिक्षण तापकी क्षनन्त ज्वाकाएँ निकल-

कर बाहर फैळती हैं । सूर्य एक यज्ञसहर है इसीलिये प्रतिदिन प्रातःकाल 'यह वही सूर्य हैं ऐसा हम समझते हैं । इन शक्तियोंका विवरण यों है जिसे 'यह वही है' इस रूपमें समझा जा रहा है, वह ब्रह्मा है, बाहर फेंकनेवाला इन्द्र है, भीतर लानेवाला 'विष्णु' है। ये तीनों देव सभी पदार्थोंके हृदयमें प्रतिक्षि हैं। आगे यज्ञकी प्रक्रियामें एकसे अधिक पदार्थोंको मिलाकर सृष्टि होती है; संसृष्टि ही सृष्टि है। आधुनिक सिनेमाको ही लीजिये; एक संसृष्टि ही तो है वहाँ। छायाचित्र, रोशनी, ध्वनियन्त्र इनकी संसृष्टि का दी गयी है। एक नयी वस्तु बन गयी, 'सिनेमा' कहा जाने लगा उसे । ऐसी ही संसृष्टि सर्वत्र होती रहती है । जगत्का प्रवाह आदिकालसे आजतक इसी प्रक्रियासे चल रहा है। पुरुष सभीमें न्याप्त है, उसकी कलए व्याप्त हैं । उन कलाओंसे रिक्त जगत्का कोई परार्थ नहीं होगा, इसीलिये सम्पूर्ण जगत् 'ईशावास्य' हैं। ईश्वरके द्वारा वासित है — अभिन्याप्त है । पृथक्-पृथक् ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा, विष्णु, महेरासे भी यह अभिव्यात है। प्रत्येक पदार्थके केन्द्रमें ये प्रतिष्ठित हैं।

पुरुषकी कळाएँ—प्राण, आप्, वाक् और अनादि— सवंत्र फैली हुई हैं। इनका परस्पर हवन होता रहता है। यह हवन 'सर्वेद्धतयज्ञ' कहलाता है । श्रुति कहती है— 'तसाद् यज्ञात्सर्वेहुत ऋचः सामानि जिहें। छन्दांसि जिहारे तसाद्यजुस्तसादजायत ॥ सर्वहुत यज्ञसे छोक, वेद और देव बनते हैं। प्रत्येक पदार्थका आकार 'ऋक्' उसकी दर्शनिक्ष परिधि 'साम' और दोनोंके मध्यमें अवस्थित प्रभावात्मक अंश 'यजुः' कहलाता है । घने जंगलमें एक दीपक जल रहा है, उसकी ली 'ऋक्' हैं, जहाँतक दीखता है, वहाँतक उसका 'साम' है, मणी प्रकाशरूप उसका प्रभावांश 'यजुः' है । वने जंगले एक दीपककी जो स्थिति है, वही ब्रह्माण्डमें सूर्यकी स्थिति है। सूर्यको उदाहरण बनाकर वेदमें——

'यदेतन्मण्डलं तपति'

इत्यादि सन्दर्भोंके द्वारा 'ऋक्', 'यजुः', 'साम' को समझाया गया है। सर्वत्र परिव्याप्त ऋक्, यजुः, साम, 'सर्वहुतयज्ञ'से ही समुद्भूत हैं। अव्यय पुरुषकी कलाओंके परस्पर हवनसे शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध समुद्भूत होते हैं और इन्हींसे उत्पन्न हो जाते हैं पाँचों महासूत।

सबको उत्पन्न करनेवाला यही यज्ञ है । गति-आगति इसके रूप हैं। इसके दो भाग हैं। वैदिक परिभाषामें उनके नाम हैं 'ब्रह्मोदन' और 'प्रवर्ग्य' । किसी पदार्थमें बाहरसे आनेवाले तत्त्वोंका एक अंश तो उस पदार्थके स्रक्पमें प्रविष्ट होता हुआ उपयोगमें आता है और उस पदार्थका पोषण करता है तथा दूसरा अंश उसके द्वारा त्यक्त होता है । प्रथमकी 'ब्रह्मोदन' संज्ञा है और दूसरेको 'प्रवर्ध' कहा गया है । अथर्वनेदमें प्रवर्ग्यको 'उच्छिष्ट' भी कहा गया है। जगत्की निर्मितिमें उच्छिष्टका ही बहुत योग है। एक उदाहरणके द्वारा उच्छिष्टको समझाया गया है । देखा जाता है कि सूर्यास्तके अनन्तर भी शिलाप्रस्तरोंमें किरणोंकी गर्मी कुछ कालतक बनी रहती है । किरणें तो अपने आधारभूत स्पंके साथ चली गयीं, उनकी गर्मी भी तत्क्षण चली जानी चाहिये; परन्तु जो सूर्यका प्रवर्ग्य या उच्छिष्ट-रूप है वह रह गया। गर्मीका कुछ अंश तो पदार्थके मीतर प्रवेश कर गया और कुछ अंश उच्छिष्ट होकर उणा स्परांके रूपमें अवस्थित है ।

प्रतिदिन हम जो भोजन करते हैं, उसमें शरीरका पोषण 'ब्रह्मोदन' करता है और प्रवर्ग्य या उन्छिष्ट उत्सर्जनके द्वारा बहिर्भूत हो जाता है।

सूर्यमें सोम आहुत होता है । कुछ भाग ब्रह्मोदनके रूपमें सूर्यके संरक्षणमें हुग जाता है और रोष भाग

गर्मीके रूपमें चारों ओर फैलकर नाना धान्य, ओषधि-वनस्पति आदिको उत्पन्न करता है । इसी आशयसे कहा गया है—'उच्छिष्टात्सकलं जगत्'—सम्पूर्ण जगत् उच्छिष्टसे ही समुद्भत है।

'तेन त्यक्तेन भुक्षीथाः'—इस उपनिषद्वाक्यका मी यही तात्पर्य है कि ईशके केन्द्रसे जो त्यक्त हो चुका है, उसीसे हमारा भोग होना सम्भव है; वही हमारा भोग्य है । जो ईश्वरसे आकान्त है, वह हमारी भोग-सीमासे बहिर्भूत है । ईश्वरसे सम्बद्ध, ईश्वररूपमें ही रहता है और उसके परित्यक्त भागसे ओषि-वनस्पति-अन्नादि समुत्पन्न होकर हमारी भोग-सीमामें आते हैं।

कौन-सा पदार्थ किसकी भोग-सीमाके अन्तर्गत है ! इसका उत्तर कर्म-सिद्धान्तके द्वारा मिलता है । जो पदार्थ जिसके कर्मसे आकान्त है, वह उसकी भोग-सीमार्मे है । कर्मकी परिणति बड़ी सूक्ष्म होती है । गीतार्मे— 'गहना कर्मणो गतिः'आदिके स्थलपर कर्मविज्ञानकी गहनताका प्रतिपादन हुआ है ।

इस जगत्में कर्मानुसार भोगको सभी खीकार करते हैं; परन्तु मनुष्य इससे आगे जानेको सर्वदा तैयार रहता है । उसीके सम्पर्कमें आकर पशुपक्षी भी वैसा करते हैं । संसारमें इसीसे उथळ-पुथळ मचती है, अशान्ति होती है, दमन चळता है । उसीकी शान्तिके छिये उपदेश दिये जाते हैं । देवता, पितर, पशु, पक्षी आदिके छिये किसी प्रकारके उपदेशकी आवश्यकता नहीं होती । ये सभी खतः मर्यादित हैं । मनुष्यके छिये ही सभी उपदेश हैं; क्योंकि मर्यादाका अतिक्रमण इसीके हारा होता है, इसीको उपदेश होता है—'मा पृष्यः कस्यिवद् धनम्।' अर्थात् 'किसी अन्यके उपभोग्य धनका ग्रहण मत करो ।' (विश्वव्याप्त भगवत्तत्वकी अनुभूति ही इस विचारको आचरणमें उतारनेमें सक्षम है; अतएव सवत्र उस एक परमतत्त्वकी सत्ताका अनुभव कराना हम सभीका कर्तव्य है ।)

'सत्यलोकका वासी'

विभु है विश्वविभृतिविधायक।

अपनी सकल अलौकिकतामें लौकिकता-परिचायक॥१॥

उसका है अकुण्ठपद इससे है वैकुण्ठ निवासी।
है वह सत्यस्वरूप इसलिये सत्यलोकका वासी॥२॥

—हिरिऔष

'अनायास उनको मिल जाते, पूर्ण परात्पर श्रीभगवान्'

(रचयिता—श्रीरतनलालजी गुप्त)

सृष्टिकालमें विश्वजगत्को अपने बाहर करके व्यक्त, फिर उसमें प्रविष्ट हो जाते अन्तर्योमी ही अव्यक्त । निराकार, निरवद्य, निरंजन, निष्किय, निष्कल, अद्वय ज्ञान, षडैश्वर्यसम्पन्न जगत्पति, व्यक्तरूप होते भगवान्॥

ज्ञान, धर्म, ऐश्वर्य, शक्तिके भीतर करते आत्मप्रकाश, लोकोत्तर लीलामें करते नित नव-नव आमोदविलास। दुःख, दैन्य, अज्ञान, आसुरी भावराशिका करके नाश, अनुरागी भक्तोंमें करते, ज्ञान-प्रेमका मधुर विकास॥

राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, कालिका, गणपित, सविता रूप अनेक, अज, अरूप, अविकारी सबमें, चिदानन्द भासित हैं एक। भूषण, आयुघ, शक्ति, वेषके, पार्षद, घाम आदिके भेद, नाम अनन्त प्रकाशित होते, मूलतत्त्वमें नित्य अभेद॥

एक देशमें स्थित रिव करता दिग्दिगन्तमें पूर्ण प्रकाश, उसी तरह सम्पूर्ण क्षेत्रमें क्षेत्री करता नित्य विकास। क्षर-अक्षर-अतीत पुरुषोत्तम, जीवरूप है जिनका अंश, क्षर होनेसे प्रकृति-राज्यमें पाता जन्म, दुःख, विध्वंस॥

परमहंस मुनि मन-इन्द्रियको वशमें करके घरते ध्यान, नेति-नेति कर ब्रह्मरूपमें, पाते जिनका अनुसन्धान। देह-प्राण-मन अर्पित करके प्रियतमका करते गुणगान, अनायास उनको मिल जाते, पूर्ण परात्पर श्रीभगवान्॥

भगवत्तत्व विवेचन

(लेखक—वीतराग स्वामी १०८ श्रीनारायणाश्रमजी महाराज)

'अयमात्मा ब्रह्म' (बृह० उ० २ । ५ । १९, माण्डूक्य २, वृतिहपूर्वताप० ५-४ । २, रामोत्तरताप० २ । १) इस महावाक्यके अनुसार जीवात्मा परमात्माका ही रूप है, उससे भिन्न नहीं । शरीर-मन-इन्द्रियादिकी उपाधिसे परिच्छिन एवं त्रिगुणमयी वृत्तियोंसे परिवेष्टित होकर अपनेको कर्ता मानकर वह सुख-दु:खादि द्वन्द्वधर्मका उपमोक्ता—जीव वन गया है (गीता १३ । १४) 'विशेषानुप्रहाच' (ब्रह्मसू०३ । ४ । ३ ८) इस सूत्रके अनुसार परब्रह्म परमात्माके 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणख्य' (व्वेताश्वर उप०६ । ११) होनेपर भी प्राणिमात्रके अनुप्रहार्थ सगुणखरूपमें आविर्भूत होनेके लिये हृदयदेशकी विशेष कल्पना करनी पड़ती है, जैसा कि शांकरभाष्यमें कहा है— 'सर्वस्थापि ब्रह्मणोप- स्व्यर्थ देशविशेषकल्पना न विरुध्यतेति ।'

यद्यपि भगवान् सर्वव्यापक हैं, तथापि भक्तोंके अनु-प्रहार्थ उनके हृदय-देशमें विशेष रूपसे निवास करते हैं— ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (गीता १८ । ५८)

'प्राणिमात्रके हृदयमें भगवान् निवास करते हैं। सम्चे संसारके जड-चेतन प्राणीको मायासे भ्रमित करा देनेवाले भगवान् चिन्मयखरूप हैं।' उन अपौरुपेय भगवान्का परम सूक्ष्म तात्विक खरूप भक्तियोगके द्वारा हृष्ट होता है—

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले। अपरयत् पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम्॥ (श्रीमद्भा०१।७।४)

'सम्यक् प्रणिहित कर लेनेपर मन निर्मल हो जाता है। निर्मल मनमें जब भगवान्की अनन्य मक्ति उदित होती है, तब उस परम पुरुष परमात्माका साक्षात्कार होता है। महर्गि व्यासने अध्यात्मयोगाधिगमसे मनको निर्मल

वर लेनेके पश्चात् अनन्य भक्तियोगसे उस अप्रमेय पुरुषके दर्शन किये थे। उस समय अनादि-अनिर्वचीया भायाशक्ति उस चिन्मय पुरुषमें आश्रित थी। वह भगवत्तत्त्वका सगुण अपौरुपेय तेज था। माया उस चिन्मय पुरुषकी छाया है। उसे चिच्छाया भी कहते हैं। जिस तरह समुद्रमें तरंगें उठती हैं, उसी तरह परम पुरुष परमात्मामें मायाशक्ति संकल्पके खरूपमें उदित होती है। परमात्माके आश्रयमें रहनेवाळी मायाका नाम 'योगमाया' है। जब उस चिन्मय पुरुषकी छाया मायापर पड़ती है, तब उपाधि-संयोगसे वह निर्गुण ब्रह्म भी सगुण ईश्वर वन जाता है—

चिच्छायावेशतः शक्तिश्चेतनेन विभाति या। तच्छक्त्युपाधिसंयोगाद् ब्रह्मापि ईशतां ब्रजेत्॥ (पञ्चदशी)

'चिन्मय परमात्माकी छाया जब चेतनके आश्रयमें रहती है और उसपर चिन्मय परमात्माका आवेश होता है, तब वह चिन्मयी-संवित् चेतना-शक्ति कहलाती है। सिचदानन्द ब्रह्म उस मायाके संयोगसे सगुण भगवान् बनता है। भगवत्तत्त्वका यह दिव्य चिन्मय शरीर लीलामय तथा प्राणिमात्रके अनुप्रहके लिये होता है। सम्पूर्ण संसार ही उस अप्रमेय भगवान्की लीला-विलासमात्र है। मगवान्का तात्विक खरूप दर्पणके तुल्य है। संसार उसमें एक दश्यमान नगरीके समान है। दर्पणमें नगराभासके सदश यह सम्चा संसार ही भगवान्का लीला-विलासमात्र है।

सम्पूर्ण जड-चेतनात्मक-भूत-प्राकृतिक-स्थूल-सूक्ष्म दर्यमान विश्व मायाका कार्य है और भगवान् खराट् इसके अभिज्ञ । मायामें विक्षेप, आवरण दो प्रकारकी राक्ति रहती है । निर्गुण-निर्विकार सिबदानन्द परमात्मामें इस अव्यक्त मायाकी विश्वेप-राक्तिके संसर्गसे अनन्त- कोटि ब्रह्मण्डके प्राणियोंके अदृष्ट कर्म-संस्कार-बीजसे अङ्कुरके समान उदित होता है। तत्पश्चात् मायाशक्तिके गुणधर्मके उन अनन्त प्राणियोंके अदृष्ट कर्म-संस्कारमेंसे क्रमशः कारण, सृक्ष्म एवं स्थूल-शरीरका निर्माण होता है।

परमपुरुपका स्थूल विराट्-शरीर चिद्विलासिनी मायाके गुणोंसे व्याप्त था। सूक्ष्म-शरीर, हिरण्यगर्भमें अनन्त जीव, जगत्, प्रकृतिके अदृष्ट कर्म-संस्कार अधिष्ठित थे। कारणशरीर ईशानमें समूचे भूत-प्रकृतिके जीव, जगत् आदिके सृक्ष्मतम अदृष्ट कर्म-संस्कारोंको प्रेरणा देनेके लिये संवेदना-शक्ति थी। मायाके सभी दृश्य गुण तथा प्रकृतिके समूचे वैभव उस अपीरुपेय भगवान् विराट्के शरीरमें विद्यमान थे, जैसा कि निम्नाङ्कित स्लोकसे व्यनित है—

भूद्वीपवर्षसरिदद्विनभःसमुद्र-पातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था । गीता मया तव नृपाद्धतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम॥ (श्रीमद्रा०५।२६।४०)

सम्पूर्ण पृथ्वीके जम्बू, प्लक्ष, क्रौश्च आदि सप्तद्वीप, जम्बूद्वीपके किम्पुरुप, हरिवर्ष, केतुमाल, भद्राश्च-—भारत आदि नौ रूण्ड, समुद्र-हिमाल्य, विन्ध्य-सतपुरा, सद्य आदि पर्वत, शोण, गङ्गा-यमुना, नर्मदा, सिन्धु, सरस्वती आदि नद-निदयाँ, स्वर्ग-नरक, दिशाएँ, अन्तरिक्षके सभी प्रहमण्डल आदि उत्त अपौरुपेय भगवान् विराट्के दिव्य मौतिक शरीर हैं। वह विराट पुरुप सम्पूर्ण जीव-लोकके निकाय—धाम है, अर्थात् सम्पूर्ण भूत-प्रकृति जीवलोकके अदृष्ट कर्म-संस्कार और उनकी संवेदनाशक्ति उस महापुरुषके शरीरमें अधिष्ठित है। पृथ्वी, जल, अग्नि, नायु, आकाशके महत्तत्वपर्यन्तके सभी तत्व, भौतिक प्रकृतिके सामान्य-विशेष गुण-धर्ममें क्षय या अतिशय अर्थात् पारस्परिक न्यूनाविक्य हैं। इनके

खाभाविक गुणधर्म प्रतिक्षण बदलते रहते हैं, किंतु अपौरुषेय भगवत्तत्व निरितिशय है, अर्थात् उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता ।

अनन्य-भक्ति

सम्पूर्ण अधिभूतके कार्य अध्यक्तसे धक तथा व्यक्तसे अन्यक्त अर्थात् प्रलयसे उत्पत्ति तथा उत्पत्तिसे प्रलयके अभिमुख जाते-आते रहते हैं । किंतु अधिदेवमें परिवर्तन नहीं होता । वह निरतिशय भगवत्तव, क्षयानिशयसे मुक्त सदा शाश्वत सनातन ध्रुव स्वमहिमाने प्रतिष्ठित रहता है । उस अप्रमेयस्वरूपमें कभी भी प्रभवाप्यय-भाव उद्य होता ही नहीं । जब कभी समूर्ण विश्वप्रकृति विकृत होने लगती है और सम्पूर्ण महाभतके कार्यकलाप, अपौरुपेय भगवान्के अनुशासनसे विपीत चळने ळगते हैं, तब संसारके सम्पूर्ण प्राणियोंमं पारसिक हिंसा-द्वेपकी प्रवृत्ति उभर उठती है और सम्पूर्ण जीवलेक क्षुभित होने लगता है। प्राणियोंको भीपण द्वेपाप्रिको न्याकुळतासे संतप्त देखकर अकरण-करणावरणाख अशरण-शरण-रक्षक भक्तवत्सल भगवान्का हृद्य द्रवीभूत होने लगता है । जब अपौरुषेय भगवान् सम्पूर्ण जीवलो क्रे प्रित दयाई हो करुणासे कम्पायमान होने लगते हैं, तब पूर्णकाम परमेश्वरका सम्पूर्ण अङ्ग स्नेहानुरागमें द्वीभूत होने लगता है। भगवत्तवक उस द्रत्रीमूत-अवस्थामें अधरामृत रसधाराके ख^{ह्}ष्में निरितशायिनी, अनन्या भक्ति आविर्भूत हो जाती है। तव सत्र परस्पर मिळते हैं, सबमें पारस्परिक श्रद्धा-ग्रेम-स्नेहका उद्य होता है । व्यक्ति, समाज तया राष्ट्रश उच्छित्र श्रृङ्खला पुनः जुड़ जाती हैं। प्राणिमात्रक हृद्य चाहे फौलादके समान ही अतिशय कठोर क्यों न हो, अनन्यभक्तिसे कोमलतामें परिणत होने ला ^{जाता} है। इससे अपौरुषेय भगवत्तत्त्वके साथ समूचे विश्वके जीवोंकी तात्विक अनन्यताका सिन्नकर्ष होता है। कहा भी गया है---

भक्त्या त्वनन्यया राक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। इतुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ (गीता ११। ५४)

जिस तरह तरंगका समुद्रक साथ अन्योग्याश्रय सम्बन्ध है, उसी तरह सम्पूर्ग जीवलोकका उस परम पुरुषोत्तम परमात्माके साथ पारस्परिक अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इस तरहकी अनन्य भक्तिसे उस अपौरुषेय भगवत्-तत्त्वके साथ निष्काम प्रेमानुरागी भक्तका वात्त्विक संनिकर्ग (भगवत्-साक्षात्कार) होता है। यह भगवत्त्व-संनिकर्म तीन प्रकारसे होता है, प्रथम—सचोत्कर्म ज्ञानसे, दूसरा—भावोत्कर्म दृष्टिसे तथा तीसरा—अनन्य तत्त्व-भावनासे। अनन्यभावसे तत्त्वतः भगवान्क ध्यानादिमें लीन हो जाना उनमें प्रवेश कर

जाना है। जिस तरह नमककी डली गङ्गाजीकी जलधारामें प्रवाहित कर देनेपर वह गङ्गाजलमें तथा गङ्गाजल उसमें मिलकर गङ्गाजलके साथ अनन्यता प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार निष्काम प्रेमानुरागी भक्तकी अन्तरात्मा अनन्य-प्रेमानुरागिणी भगवद्भक्तिके भगवक्तव्यमें और भगवक्तर उस भगवद्भक्तके अन्तरात्मामें परस्पर प्रवेश कर लेनेके उपरान्त वह भगवक्तव्यमें अनन्यता प्राप्त कर तत्वके साथ मिल जाता है, अर्थात् भक्त भगवान्में अनन्यभावका सन्निकर्ष होता है। इस भगवक्तव्यमें अनन्यभावका सन्निकर्ष होता है। इस भगवक्तव्यमें अनन्यभक्तिसे तत्वतः प्रवेश कर जाना ही 'सन्यं परं धीमहिं का वास्तविक रूप है।

भगवत्तत्व एवं भक्तियोग

(त्रेखक - श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव, शास्त्री, एम्० ए०, एम्० ओ० एह०)

अचिन्त्य, अन्यक्त, सर्वन्यापक, आदिकारण परब्रह्म ही 'भगवत्' शब्दवाच्य है। उपनिषदों में ब्रह्मको मुख्यक्तपसे 'सत्य, ज्ञान, अनन्त' खरूप कहा गया है। बह् आदित्यवर्ण है एवं उसका ज्ञान प्राप्त करके ही जीव मृत्युका अतिक्रमणकर अमृत (आत्मखरूप, मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मके मुख्यतया दो रूप हैं—निर्गुण और सगुण ।
प्रकृति, माया अथवा त्रिगुणकी उपाधिसे रहित ब्रह्मका शुद्धस्रक्षप निर्गुण अथवा अध्यक्त कहलाता है । यही अभयअमृतपद अथवा विष्णुलोक है । जगत्की सिसृक्षाव्यापारसे युक्त, माया, प्रकृति अथवा त्रिगुणकी उपाधिसे
युक्त ब्रह्मका सगुण स्वरूप,—शबल, मिश्रित अथवा व्यक्त
कहलाता है । निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्मका आधार है ।
यथा समुद्र समुद्रलहरियोंकी क्रीडाका आध्य है ।
प्रवृक्षका अल्पांश अथवा परांश ही सगुणकूपमें सिक्तय
हो विश्वव्यापारका संचालन करता है । उसका त्रिपाद

तो सदैय अपने शुद्ध, निर्विकार, अमृतख्रह्मपमें स्थित रहता है। शुद्ध, अव्यक्त, निर्मुण ब्रह्मकी सत्ता प्रकृति एवं सगुण ब्रह्मसे ऊपर है, अतएव जवतक बुद्धि एवं प्रकृतिका अतिक्रमणकर सगुण व्यक्त ब्रह्मको प्राप्त नहीं कर लिया जाता, तवतक शुद्ध ब्रह्मका ज्ञान एवं साक्षात्कार सम्भव नहीं। इसीलियं शास्त्रोंमें प्रायः सर्वत्र पहले सगुण ब्रह्मको ही उपासनाका विषय बनानेका परामर्श दिया गया है।

सगुणब्रह्मकी उपासना विराट, सूर्य, अग्नि, प्रतिमा एवं यन्त्र आदिमें की जाती है। साथ ही सर्वत्र नारायणकी भावना रखना तथा सभी प्राणियोंसे मैत्री एवं करुणाका भाव रखते हुए उनका दान, मान, सत्कार करना आवश्यक है, अन्यथा पूजा निष्फल हो जाती है। सर्वत्र आत्मभाव होना तथा सर्वत्र ब्रह्मका दर्शन करना ये ही दो उपासनाके फल हैं। निष्काम- उपासनासे ही मुक्ति, आत्मदर्शन या ब्रह्मोपलन्ध होती है, सकामोपासनासे नहीं।

उपासनाके प्रकरणमें यह भी ज्ञातव्य है कि ब्रह्मोपासनाकी अपेक्षा देवोपासना अवरकोटिकी है तथा इससे आत्मज्ञान या मोक्ष प्राप्त नहीं होता। प्रत्येक देवताकी शक्ति तथा आधारक्षेत्र सीमित है तथा उन्हें वह शक्ति आदि भी ब्रह्मसे ही प्राप्त होती है। भगवद्गीताने विभिन्न देवोंकी उपासनाको अल्पज्ञताका सूचक बताया है। उपनिषदोंने मेद-बुद्धि रखनेवाले सकाम देवोपासकोंको 'देवताओंका पशु' कहा है। उपासनाके फल्ट-सिद्धान्तके अनुसार देवोंके उपासक अपने-अपने इष्टदेवोंको प्राप्त होते हैं तथा परब्रह्मके उपासक परब्रह्मको प्राप्त करते हैं।

परब्रह्मकी प्राप्तिका मुख्य साधन ज्ञान है (वि० पु० ६ । ५ । ६०) । यह दो प्रकारका है—शास्त्र-जन्य अथवा शब्दब्रह्ममय तथा विवेक्तज । शास्त्रजन्य आगमोत्थज ज्ञान दीपतुल्य अल्प ज्ञान—प्रकाश देता है । विवेक्तज ज्ञान सूर्य प्रकाशवत् व्यापक है एवं परब्रह्मक प्राप्ति करनेवाला है । शास्त्रजन्य ज्ञानको ही अपरा विद्या एवं विवेक्तज ज्ञानको परा विद्या कहा गया है । शास्त्रजन्य ज्ञानकी परिणित भगवत्प्रीतिकी उत्पत्तिके लिये होनी चाहिये, अन्यथा उसमें किया गया श्रम वन्थ्या चेतुकी सेवाके समान निष्कल है । शास्त्रोंके अध्ययनसे ईश्वर, जीव एवं सृष्टिके खरूपका, बन्व एवं मोक्षके हेतुका तथा वर्णाश्रमधर्मके कर्तव्यका ज्ञान होता है । ईश्वरके खरूप, गुण, कर्म, खमाव आदिके ज्ञानसे

ईश्वरके प्रति प्रीतिका उदय होता है एवं ईश्वर तथा जीवके नित्य अभेद-सम्बन्धका ज्ञान होता है। हैशा-विषयक अतिशय प्रीतियुक्त यह सिवशेष ज्ञान ही मित कह्ळाता है । अतएव ईश्वर-प्राप्तिके साधनोंमें खाच्याय-को सर्वत्र प्रमुख स्थान दिया गया है। शास्त्र प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों पक्षोंको नियन्त्रित करता है। शास-विहित कमें जब फलकामनाका त्याग करके ईक्ष-प्रीत्यर्थ सम्यक् रीतिसे अनुष्ठित किये जाते हैं, तन वे पूर्वजन्मके कर्म-संस्कारोंको नष्ट करके साथ-साथ चित-ग्रुद्धिके कारण बनकर आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें सहायक बनते हैं । योगशास्त्रमें प्रतिपादित विधिसे योगाझेंका अभ्यास करनेपर तमोगुण तथा रजोगुणरूपी मल्का क्षय ज्ञान-दीप्तिके अधिकाधिक बढनेपर होनेपर क्रमशः अन्तमें विवेकज ज्ञानकी प्राप्ति होती है। विवेकज ज्ञान-की प्राप्ति होनेपर आत्माके प्रकृतिके साथ तादास्यभव नष्ट हो जाता है तथा वह अपने शुद्ध खरूपमें कैक्य-रूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है।

भक्ति भगवरप्राप्तिका सर्वोत्तम साधन है। परंतु भक्तियोगकी सिद्धिके लिये श्रद्धापूर्वक यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आहि योगके आठों अङ्गोंका अभ्यास आवश्यक है। धारणा द्वारा हृदयमें भगवद्भावकी प्रतिष्ठापूर्वक भगवद्भूषा स्थिरभावसे दर्शन होनेपर भक्तियोगका उदय होता है तथा हृदय द्वित होकर पुलक, प्रमोद आदिका अनुमव करता है। इससे आत्मामें अनात्माके धर्मोंकी प्रतीतिका नाश होता है एवं अविद्यादि क्लेश निवृत्त हो जाते हैं। योगीके लिये भी समाधिद्वारा ब्रह्म-साक्षाका

१—यमादिभिर्योगपथैरम्यसन् श्रद्धयान्वितः । मिय भावेन सत्येन मत्कथाश्रवेणन च ॥ (श्रीमद्भा० ३ । २७ । ६) जितासनो जितश्वासो जितसङ्को जितेन्द्रियः । स्थूले भगवतो रूपे मनः संघारयेद् घिया ॥ (वही २ । १। २३ अन्यत्र देखिये—वही ३ । २६ । ७२, ३ । २८ । ३४-३५, ३ । २५ । २७, ३ । ३२ । ३० । २—एवं हरौ भगवित प्रतिलब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ (वही ३ । २८ । ३४ । ३४ । ३४ । ३४ । ११ –१३ ।

करनेके लिये भक्ति सर्वोत्तम सायन है । अतएव भगवद्गीतामें भक्त योगीको युक्ततम (६ । ४७, १२ । २) अर्थात् सर्वश्रेष्ठ योगी बताया गया है । ऋषि पतञ्जलिने भी समाधि-प्राप्तिके उपायोंमें ईखर-प्रणिधानको अन्यतम उपाय बताया है ।

वस्तुतः योग और भक्तिमें मूखतः कोई अन्तर नहीं है । अन्तर है--केवल साधनविधि एवं लक्ष्यमें । योगका लक्ष्य है—चित्तवृत्ति-निरोधपूर्वक द्रष्टा पुरुषकी निजलक्एपमें स्थिति तथा सर्वगुरु ज्ञानखरूप ईश्वर-(सगुण, ओंकार) की प्राप्ति । भक्तिद्वारा उपास्य है— आनन्दब्रह्म तथा इसके साधन हैं-अनन्य-प्रेम, शरणागति एवं समर्पण । इन्द्रियरंयम, चित्तशुद्धि, वैराग्य, चित्तकी एकाप्रता, समदृष्टि, निर्वेरता, अहंकार-त्याग, एकत्वज्ञान एवं सर्वभूतोंमें सतत सर्वत्र आत्मा या ब्रह्मका दर्शन करना— दोनोंमें ही समान हैं। विश्वात्मा पुरुषके साक्षात्कारके पूर्व हृद्यस्थित आत्मा एवं परमात्माका साक्षात्कार आवश्यक है । आत्माके साक्षात्कारके छिये योगी एवं भक्त दोनोंके छिये ही त्रिगुणातीत होना आवश्यक है । भक्तिको जब अमृतस्त्ररूप कहा ज़ाता है, तब इस संकेतसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति आत्मानुसंधानखरूपिणी है; क्योंकि अमृतत्व आत्माका गुण है। इस आत्मातु-संधानपूर्वक चित्तकी भगवद्रागामिका वृत्तिको अखण्ड तेल (जल)- पारा-प्रवाहवत् हृदयस्थित भगवान्की ओर सदैव प्रवाहित किये रखना भक्ति हैं। इसे ही कहते हैं । आचार्यशंकरने गीताभाष्य उपासना उपासनाके खरूपको स्पष्ट करते (१२।३)में

हुए बतलाया है कि उपारय-त्रस्तुको बुद्धिका त्रिपय बनाकर उसके समीप पहुँचकर तैलत्राराकी तरह समानवृत्तियोंके प्रवाहसे दीर्घकालतक उसमें स्थिर रहनेको उपासना कहते हैं। भक्तियोगमें, चित्तमें केवल एक भगवरप्रेमासिका वृत्तिका समान प्रवाह दीर्घकालतक बना रहता है।

भक्तियोगमें अहर्निश नामजप, व्यान आदिके हारा सतत् भगवान्की उपस्थितिका सर्वत्र अनुभव करते हुए एवं उनका स्मरण तथा चिन्तन करते हुए अपने शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, हृदय एवं बुद्धिकी समस्त चेष्टाएँ भगवन्त्रीत्यर्थ करके भगवानुको ही समर्पित की जाती हैं—'तद्रथेंऽखिलचेष्टितम्।' भक्तिमार्गको अपनानेवाले भक्तके जीवन एवं चेष्टाओंके केन्द्र खयं भगवान् ही हो जाते हैं। जबतक उसमें किसी प्रकारकी कामना या अहंकार शेष है, तबतक वह क्षुद्र अज्ञान एवं पृथकताके जीवनमें निवास करता है। भगवान्को पूर्णतया समर्पित होनेपर वह अनन्त जीवनमें प्रवेश करता है, प्रकृति और अविद्याकी क्षूद्र परिधिसे वाहर निकल जाता है । अनन्त ब्रह्मको समर्पित की हुई उसकी प्रत्येक वस्तु अनन्त फलवाली हो जाती है। यही नहीं, अपितु ब्रह्मको कर्मसमर्पणकी यह साधना उसे ब्रह्मज्ञानकी भी प्राप्ति करा देती है--

यद्त्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम्। श्वानं यत्तद्धीनं हि भक्तियोगसमन्वितम्॥ (श्रीमद्भा०१।५।३५) खयं भगवान्की दृष्टिमं आत्मासिहत सर्वकर्मोको समर्पित करनेवाला भक्त विश्वका सर्वश्रेष्ट प्राणी है (श्रीमद्भा०३।२९।३३)।

४—न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मिन । सहशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥ (वही ३ । २५ । १९)

५—कायेन वाचा मनसेन्द्रियेवी बुद्धयात्मना वानुसृतत्वभावात् । करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ (श्रीमद्भा० ११ । २ । ३६)

६---यद्यदिष्टतमं लोके यञ्चातिप्रियमात्मनः । तत्त्वन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कस्पते ॥ (श्रीमद्भा०११।११।४१)

योगियोंका कथन है—िचत्त जिसमें छीन है, वैसा ही बन जाता है—'यचित्तस्तन्मयः ।' जैसा चित्त होता है, वैसा ही पुरुषका व्यक्तित्व बन जाता है—यो यच्छूद्धः स एव सः (गीता १७ । ३)। जिस प्रकार विषयोंका सतत चिन्तन करनेसे चित्त उन विषयोंमें आसक्त होकर पुरुषको विषयी बना देता है, उसी प्रकार चित्तद्वारा निरन्तर भगवान्का चिन्तन करनेसे चित्तके भगवन्मय हो जानेपर पुरुष भक्त एवं भगवन्मय हो जायगा—

विषयान् ध्यायतिश्चत्तं विषयेषु विषज्जते। मामनुस्मरतिश्चत्तं मय्येव प्रविलीयते॥ (श्रीमद्भा॰ ११। १४। २७)

इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१२ । ८)में अर्जनको कहा है कि 'तुम मन और बुद्धिको मुझमें स्थापित करो । मेरा ही स्मरण, मनन तथा चिन्तन करो तो मुझमें ही निवास करोगे ।' इसका उपाय उन्होंने यह वताया है कि 'मनकी वृत्तियोंका लक्ष्य मुझे बनाओ एवं मनको मुझमें केन्द्रित करो । केवल मुझसे ही अनन्य एवं अहैतुकी प्रीति करों (गीता ९ । ३४, ११ । ५५)। भगवद्गीताके मतमें चित्तको ब्रह्ममें एकाप्र कर सृष्टिके सभी पदार्थोंको ब्रह्मरूप समझते हुए सभी कर्मोंको ब्रह्मप्रीन्यर्थ सम्पादित करके ब्रह्मको ही समर्पित कर देनेकी प्रक्रियाका नाम 'क्रसकर्मसमाधि' है तथा इस कमसमाशिद्वारा ब्रह्मकी प्राप्ति होती है — 'ब्रह्मैय तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना' (गीता ४। २४)। परंतु समात्रि-प्राप्तिके छिये भक्तिभावका अत्यन्त तीत्र — 'तीबेण भक्तियोगेन' होना आवश्यक है।

भक्तिके लिये खयं भगवान् ही आश्वासन दते हैं कि मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता—'न मे भक्तः प्रणक्यित (गीता ९ । ३१) तथा यदि वह सभी प्राकृत धर्म-कर्मोंका परित्याग करके एकमात्र मेरी शरणमें आ जाय तो में उसके सभी अशुभोंका नाश कर उसे मोक्ष प्रदान करता हूँ ।' (गीता १८ । ६६)

श्रीमद्भागत्रतपुराणके अनुसार भक्ति ऐसा अपूर्व साधन है, जिसका आश्रय लेनेसे प्रन्येक क्षणमें भगवद्नुराग, विरक्ति एवं परमात्माका अनुभव एवं परम-शान्तिकी प्राप्ति होती है (११।२। ४२-४३)। वह कर्म-संस्कारोंके कोश लिङ्गशरीरको जला देती है (३।२५।३३)। चित्तके सभी दोष मिलिहारा नष्ट हो जाते हैं। भगवत्कथारसामृतके पानसे तुम भक्तका संसारके प्रति राग समाप्त हो जाता है (१२।१३।१६, १०।३१।३४), भगवानके भक्तके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है, वह खर्गापवर्गादि सभी कुछ शीघ्र प्राप्त कर लेता है, परंत निष्काम एकाल भक्त तो कैवल्य देनेपर भी उसे नहीं लेते (११।२०। ३३-३४)। भक्ति कैवल्यसम्मत है (२।३।१२) तथा शीत्र परवेराग्यको उत्पन्न करके ब्रह्मका दर्शन करानेवाली है (३ | ३२ | २३) । अतः बुद्रिमान् मनुष्यको सर्वकामनाओंकी प्राप्तिके लिये अथवा निष्काम होकर मोक्षप्राप्तिके लिये केवल परम पुरुष भगवान्का तीत्र भक्तियोगसे भजन करना चाहिये —(२।३।१०)।

भगवान् रसम्बरूप हैं -- रस्तो वै सः'। वे परमानन्दखरूप हैं। अतः उपासकता जीवन भी अंदरबाहर सर्वत्र रससे परिपूर्ण, पर शुद्ध निष्काम होना चाहिये।
भक्त एवं महात्मालोग देवी प्रकृतिके आश्रित होका
ही (भगवद्गीता ९। १३) तथा ज्ञान-विज्ञानसे सण्क
होकर (श्रीमद्भा० ११। १९। ५) अनन्यमनसे
प्रीतिपूर्वक नित्ययुक्त रहकर भगवान्का भजन करते
हैं। इस भक्तिद्वारा उन्हें बुद्धियोगकी प्राप्ति होती है।
उसके द्वारा उनका अज्ञान नष्ट हो जाता है तथा वे
भगवान्को यथावत् तत्वतः जानने, दर्शन करते क्
मागवत-चेतनामें प्रवेश कर मुक्त होनेमें समर्थ होते
हैं (भगवद्गीता १०। १०-११; ११। ५४)।
गीतामें प्रोक्त भक्तके लक्षण देवीसम्पक्तिके गुण, ज्ञानके
चिह्न, त्रिगुणातीतके लक्षण तथा ब्राह्मी-स्थितिकी प्रक्र

श्वितप्रज्ञ पुरुपके लक्षणों में कोई अन्तर नहीं है। जो इन लक्षणोंसे युक्त है यही ज्ञानी है, त्रिगुणातीत है, श्वितप्रज्ञ है, उत्रपुरुप है। ऐसे निरपेक्ष, निर्वेर, शान्त, समदर्शन, मुनि भक्तका अनुगमन तो खयं भगवान् करते हैं (श्रीमद्भागवत ११।१४।१६)। अनन्य-चित्तसे सतत एवं नित्य समरण करनेवाले नित्ययुक्त भक्तके लिये भगवान् सदेव सुलम हैं (गीता ८।१४)।

भगवान् श्रीकृष्ण गीनामें कहते हैं कि 'जो मेरी भक्ति करते हैं, वे मुझमें निवास करते हैं तथा मैं उनमें निवास करता हूँ' (९ / २९) । इस वातपर श्रद्वापूर्वक विश्वास करके ही हृदयमें एवं सर्वत्र भगवान्की उपस्थितिका अनुभव करते हुए उनके साथ नित्य एवं सतत युक्त हुआ जा सकता है। भगवद्गीनाके अनुसार सर्वत्र ब्रह्मदर्शन (६।३०;७।१९.), भगवत्परायणता, सर्वभूतोंके प्रति समभाव (१८।५४), वैराग्ययुक्त ज्ञान-तिज्ञानसे युक्त होना, सर्वथा ब्रह्मभावनासे मात्रित होना, निःसङ्गता, निर्वेरता, प्राण-मन-बुद्धि एवं अन्तरात्माको भगवान् में स्थित करना, अनन्य एवं अहेतुकी प्रीति, अनन्यचित्तता, नित्ययुक्तता, प्रयनामा एवं दढ़बनी होना, निर्दुन्द्रता एवं समस्व भगवदुपासनाके आवस्यक तथा अपरिहार्य अङ्ग हैं। 'शाण्डिन्यभक्ति-स्त्रके अनुसार भक्तिके अनेक अङ्गोमें किसी एकका भी पूर्णरूपेण अनुष्ठान करनेसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है, परंतु समर्पण सबसे मुख्य तथा सर्वोत्तम साधन है (सूत्र ६३-६४)।

जो लोग प्रवृत्तिमार्गी हैं तथा भगवान्की भक्ति करना चाहते हैं, उन्हें इन्द्रियसंयम एवं राग-द्रेष-परित्यागपूर्वक अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मके आचारोंको भगवान्को भजनेका साधन बनाना चाहिये। भगवद्भक्तियुक्त होकर भगवत्प्रीत्यर्थ वर्णाश्रमके आचारोंका पालन नि:श्रेयस् प्रदान करनेवाला होता है

(श्रीमद्भागवत ११ । १८ । ४४-४७)। अपने जीवनमें रजोगुण तथा तमोगुणकी प्रवृत्तियोंका पित्याग करते हुए सत्त्वगुणकी वृद्धिका प्रयत्न करना चाहिये। सदैव सात्त्विक शास्त्र, देश, कर्म, अन्न-जल, मन्त्र, ध्यान आदिका सेवन करनेसे चित्त शान्त होता है, धर्म, ज्ञान एवं वैराग्यकी प्राप्त होती है, भिक्तकी वृद्धि होती है एवं आत्मज्ञान प्राप्त होता है। पुनः सत्त्वका निरोध भी निरपेक्षताके द्वारा करके त्रिगुणातीत अवस्थामें पहुँच जाना चाहिये (श्रीमद्भागवत ११। १३। २—६; ११। २०। २०; ११। २५। ३२—३६; ३।२५।२६-२७)। उपनिषद्का कथन है कि ब्रह्मका ज्ञाता ब्रह्म हो जाता है — 'ब्रह्मविद्धह्मैव भवति।' गीताका कथन है कि अव्यभिचारी भक्तियोगके सेवनसे साधक गुणोंका अतिक्रमण कर ब्रह्म हो जाता है —

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते । स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ (गीता १४ । १६)

ब्रह्मभूत भक्त शास्त्रन, अविनाशी ब्रह्मपदको पाकर परम आनन्द एवं परमशान्तिको प्राप्त करता है (११ । ५४-५६, ६२; २ । ७२) । अतः श्रद्धा, वैराग्य, निःसंगता एवं भक्तिपूर्वक योगित्रिधिसे समाहितिचित्त होकर नित्य भगवान्की उपासना करनी चाहिये तथा भगवद्गुगोंका आश्रय लेकर सर्वात्मभावसे भगवान्की भक्ति करनी चाहिये । भक्ति ही मानवजीवनका परम पुरुपार्थ है, आत्मा एवं परमात्माकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है—

प्तद्वै श्रद्धया भवत्या योगाभ्यासेन नित्यशः।
समाहितात्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपद्दयति ॥
तस्मान्त्रं सर्वभावेन भजस्य परमेष्ठिनम्।
तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम्॥
(श्रीमद्भा०३।३२।३०,२२)

भगवत्तत्व और भगवद्भक्ति

(लेखक-आचार्य खामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् ही परतत्त्व हैं। समस्त वेद-शास्त्र भगवान्की महत्ताका गान करते रहते हैं। वेद कहते हैं-'आत्मा वाऽरे द्रग्रव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'—आत्माका श्रवण-मनन-पूर्वक दर्शन करो। यहाँ आत्माका तात्पर्य परमात्मासे ही है। सामान्य जीवात्माओंकी आत्मा चेतनोंके चेतन, नित्य-तत्त्वोंके भी परमनित्यतत्त्व परमात्मा ही हैं। श्रुति कहती है—

नित्यो नित्यानां चेतनइचेतनाना-मेको बहूनां यो विद्धाति कामान्।

(श्वेताश्वतरोप०)

सचिदानन्दघन ब्रह्मकी प्राप्तिमें ही वेद-शास्त्रोंका तात्पर्य है । तीनोंके छिये परमात्मा ही परम प्राप्य हैं । सभी स्मृतियाँ, रामगीता, गणेशगीता, भगवद्गीतादि समस्त गीताएँ, वाल्मीकीयरामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि इतिहास-पुराण भी डिण्डिम-घोषके साथ परमात्माका प्रतिपादन करते हैं । अतएव साधकको प्रमुकी प्राप्तिके छिये प्रयत्न अवस्य करना चाहिये । श्रीरामचितमानसमें स्पष्ट कहा गया है——

देह घरे कर यह फल भाई। भजिअ राम सय काम बिहाई॥

अनन्त सुखकी प्राप्ति सभी बुद्धिमान् प्राणी चाहते हैं। सिचदानन्द भगत्रान् ही अनन्त सुख-खरूप हैं— 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् (तै॰ उ॰ ६), 'सुखस्करप रच्चबंसमिन'। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आनन्द्खरूप ब्रह्मेसे ही उत्पन्न हुआ है। श्रुति कहती है—'आनन्दाद्धयोव खिलवमानि भूतानि जायन्ते'। अर्थात् आनन्दरूप परमात्मासे ही समस्त जड़-चेतन प्राणी उत्पन्न होते हैं। आनन्दके कणमात्र छीटेसे सभी प्राणी जीवित हैं— 'जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैकोक सुपादी॥ तथा अन्तमें सभी प्राणी आनन्दमें ही ठीन हो जायँगे।

सत्, चित्, आनन्द ब्रह्मके खरूप हैं, अतएव ब्रह्मके अंश होनेके कारण जीव भी सत्, चित्, आनन्द-खरूप ही है। गोखामीजीने कहा है——

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

तैत्तिरीय उपनिषद्में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, दिज्ञानमय, आनन्दमयके भेदसे पञ्चकोशोंका वर्णन प्रसिद्ध है। आनन्दकी मात्रा प्रचुर होनेके कारण ब्रह्मको आनन्दमय कहा जाता है । ब्रह्मसूत्रके आनन्द-मयाधिकरणके अनुसार ब्रह्मको आनन्दमय कहा गया है-'आनन्दमयोऽभ्यासात्' (ब्रह्मसूत्र अ०१।१।५३) यहाँ आनन्दमय शब्दमें मयट प्रत्यय प्राचुर्य-अर्थमें है, विकार-अर्थमें नहीं। मनोमय, अनमयादिमें विकारार्थमें प्रयुक्त है । विभिन्न दार्शनिकोंने इस एक सूत्रका ही रसाखादन विविध प्रकारसे किया है। वेदान्तका मर्मस्पर्शी विवेचन इस प्रसङ्गमें सर्वत्र उपलब्ध है । तैत्तिरीय-उपनिषद्में तो एक महान् रूपके साथ त्रह्माका निरूपण वड़ा ही विलक्षण किया गया है। वहाँ ब्रह्मके पक्षों और पूँछका भी वर्णन है __ 'तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणः पक्षः, प्रमोद उत्तरः पक्षः आनन्द्रश्रातमा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' (तै० उ० अ० ५)। अन्तमें पुच्छस्थ ब्रह्ममें ही श्रुतिका तात्पर्य खीकार किया गया है । अर्थात् अन्नमयादि कोशोंसे विलक्षण एवं प्रचुर आनन्दका ही है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें पहले प्रमात्माको अन्नमय कहा गया। अन्नसे शरीर बना है, अन शरीरको आत्मारूपमें स्वीकार करते हुए स्थूल बुद्धि वालोंके जिज्ञासामें प्रवृत्तिकी दृष्टिसे पहले साध्ककी शरीरके रूपमें ही आत्मा वतायी गयी। जब स्थूब्से प्रवेश काने लगता है। मुक्तमकी ओर साधकका मन

तव ब्रह्मवेत्ता साथकका स्क्म आत्मतत्त्वकी ओर क्रमशः ले जानका प्रयत्न करते हैं।

अन्नमयके वाद् प्राणमय, अर्थात् इन्द्रियके ऊपर, संकेत मनोमयसे मनका, विज्ञानमयसे बुद्धि एवं बुद्धिका आश्रय जीवात्माका भी संकेत है। 'विज्ञानमयका बुद्धि एवं बुद्धिका आश्रय जीवात्मा किया गया है, क्योंकि 'विज्ञानं यक्षं च तनुते कर्माणि' इस शृतिमें विज्ञानको कर्ता मानकर यज्ञ करना कहा गया है। 'तजुते' यह किया है। इस कियाका आश्रय कोई चेतन ही हो सकता है, जड़ नहीं । बुद्धि जड़ है, फिर कर्ता वनकर यज्ञ कैसे कर सकती है ! कर्ता तो चेतन ही होगा, अतः 'विज्ञान'का अर्थ विज्ञानका आश्रय आत्मा ही है, बुद्धि नहीं । निष्कर्ष यह कि विज्ञानमय जीवात्मासे भी आनन्द-मय परमात्मा पृथक् है । अल्प एवं सीमित आनन्द्युक्त जीवात्मासे अनन्त आनन्दका एकमात्र आश्रय परमात्मा ही है । अतः परमात्मा ही उपास्य है । इस प्रकरणमें परमात्माको प्रकृति एवं जीवात्मा दोनोंसे अत्यन्त विखक्षण एवं दोनोंका स्त्रामी तथा आश्रय कहा गया है। समस्त जगत्का कारण परमात्मा है । यह वात—'जन्माचस्य यतः' इस सूत्रसे स्पष्ट है । 'ईक्षतेर्नाशन्दम्' इस मृत्रसे वेदान्त-शास्त्रका विचार माना जाता है। इससे पूर्व चार सूत्र वेदान्तदर्शनकी भूमिकाएँ हैं।

सांख्यवादी दार्शनिकोंने प्रकृतिको जगत्के कारण रूपमें खीकार किया है । प्रकृतिको जगत्का कारण माननेमें अनेकों दोष आते हैं । प्रथम तो प्रकृति जड़ है । चेतन विश्वका कारण कोई चेतन ही हो सकता है, क्योंकि जब जगत्-कारण-तत्त्वने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊँ, तभी सृष्टिका विस्तार हुआ, यह बात प्रसिद्ध है । वेदान्तसे अनिमज्ञ लोग भी प्रायः— 'तदेशत वहु स्यां प्रजायेय' इस श्रुतिको किसी-न-किसी कृपमें बोलने रहते हैं । यहाँ जब ब्रह्ममें जगत्की

सिस्क्षा हुई, तभी वह बहुत हुआ । जड़ प्रकृतिमें इच्छा कैसे हो सकती है, अतः प्रकृति जगत्का कारण नहीं बन सकती। दूसरी बात--सृष्टिके पूर्व जगत्-कारणखरूप परमात्माको सृष्टिका एवं सृष्टिके भीतर त्रिराजमान समस्त जड़-चेतन एवं उनके संस्कारका ज्ञान भी मलीगाँति रहता है। चींटीसे लेकर ब्रह्मा-पर्यन्त भोग्य-सामग्री भोगनेके लिये इन्द्रिय, मन आदि एवं भोगस्थानोंका एक साथ सृजन करना महान् परमात्माके लिये ही हो सकता है । जड़ प्रकृतिकी तो बात ही क्या, साक्षात् परमात्माका अंशखरूप जीत्रात्मा चेतन एवं ज्ञानखरूप होता हुआ भी सृष्टिके कारणके योग्य नहीं वन सकता। यह वात इतना स्पष्ट है कि ब्रह्मसूत्रके प्रारम्भ 'आनन्दमयाधिकरण' एवं चतुर्थ अध्यायके 'जगद्-ज्यापारवर्ज्य-अधिकरण'में कहा गया है कि जगत्का कारण मुक्त जीत्र भी नहीं हो सकता। ब्रह्ममृत्रकार वादरायण कहते हैं--- 'जगद्व्यापारवर्ज्य-प्रकरणाद्संनिहितत्वाच' (ब्रह्मसूत्र ४ । ४ । १७) । अर्थात् मुक्त होनेपर भी, ब्रह्मके समान हो जानेपर भी, भोगमात्रमें समानता पानेके बाद भी जीवको जगत्की सृष्टि, स्थिति, संहार करनेका अधिकार नहीं है। 'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति' (मुण्डक)। इस श्रुतिके अनुसार मुक्त जीव ब्रह्मके समान हो जाता है, किंतु ब्रह्मखरूप नहीं होता-- 'अस्मात् रारीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरूपं सम्पद्य स्वेन रूपेणाभि-निष्पचते न स पुनरावर्तते ॥'

इस शरीरसे निकलकर आत्मा परमञ्चोतिमें मिलकर अपने ही खल्पमें रहता है, वह लौटकर पुन: इस प्रकृतिमण्डल मायिक लोकमें नहीं आता । 'स्वेन क्रिपण निष्पचते' इस श्रुतिपर विचार करते हुए ब्रह्म-सूत्रकारने यही निर्णय किया कि विज्ञानखल्प आत्मामें—अपहतपाप्मा, विजर, विमृत्यु, विशोक, क्षुधा, पिपासासे रहित सत्यकाम एवं सत्यसंकल्प—ये आठ

गुण नित्य हैं । मुक्त होनेपर जीवमें भी ये आठ गुण आ जाते हैं। इसीलिय ब्रह्मधिकरणके तीन सूत्रोंमें इस सम्बन्धकी एकतापर विशद विचार किया गया है । श्रीह्तुमान्जी श्रीजनकतन्दिनीसे कहते हैं---'रामसुत्रीवयोरेक्यं देव्येवं समजायत' । देवि ! श्रीरामजीके साथ सुग्रीवर्जीकी एकता हो गयी है । तात्पर्य दोनों स्वामी-सेवक एक हो गये हैं । इस वातको कभी भी भुलना न चाहिये कि जिस प्रकार अभेद अलौकिक है, उसी प्रकार भेद भी अछौकिक है। अर्थात् देव, मनुष्य, पशु आदिका भेद शरीरकी दृष्टिसे है, अतः मायिक है। शरीरका भेद मायाके ही कारण है। आत्मा न तो देवता है, न मनुष्य है और न पशु । अतः ये देव, मनुष्य आदिके भेदसे आत्मामें भेदकी कल्पना वेद्विरुद्ध है; क्योंकि सभी शरीरोंमें आत्मा तो एक ही रूपसे विराजमान है। यद्यपि सिद्धान्तरूपसे आत्मा अणु तथा अनेक है, किंतु आकार तो सभी आत्माओंका एक ही--ज्ञानखरूप है । अतः खरूपसे अनेक होने-पर भी जानि-स्वभाव आदिसे आत्माकी एकता सिद्ध है ।

इस प्रकार मुक्त जीवोंके भी प्राप्य परमात्मा अनन्त आनन्दका केन्द्र हैं। आनन्दमय अधिकरणमें अनेकों स्त्रोंने विश्वदक्षपये परमात्माको ही प्राप्य कहा गया है। प्रकृति तथा जीवके भी नियामक शेपी भगवान् हैं। यह वेदान्तका अन्तिम निर्णय है। अनन्त रसखरूप परमात्माको प्राप्त कर ही जीव आनन्दसे पूर्ण हो सकता है। श्रुति कहती हैं— 'रस्तो चै सः।' 'रसं होवायं खब्धाऽऽनन्दी भवति।' परमात्मा रसखरूप है। इस रसको पाकर ही जीव आनन्दसे पूर्ण होता है। 'रर्श्वगन्धः सर्वरसः' समस्त गन्ध एवं समस्त रसोंका एकमात्र मूळ कारण परमात्मा ही है। जड़-चेतनसे पिष्पूर्ण प्रपन्नमें जो भी कुळ आकर्षण है, जहाँ भी कहीं रस है, वह सब परमात्माका ही रस है। वास्तवमें यदि आनन्दिसन्धु परमात्माके कुळ कण इस नीरस

प्रपश्चपर नहीं पड़ते तो प्रकृतिमें इस प्रकारके रसम्य खरूप नहीं दीख पड़ते। गुष्क काष्ठोंमें आम, अमरूद, सन्तरा, सेव, अंग्र्र आदि सरस मुलादुम्य फलोंकी प्राप्ति सत्स्वरूप परमात्माकी ही देन है। कण्टकाकीण गुलाव आदिके पौधोंमें सुन्दर सुगल्भम्य पुष्पोंका सौरम सर्वगन्ध परमात्माकी ही देन है। तभी तो श्रुति कहती है—'यदि यह परमात्मा रसस्प न होता तो संसारमें आनन्दकी अनुभूति कहाँसे होती —'को होवान्यात् कः प्राण्याद् यद्येष आकाश आनन्दों न स्यात्' (ते० उ० अ० ७)। सिचदानन्दकन्द परब्रह्म परमात्माके आनन्दकणसे सभी चेतन सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं—'पषोऽस्य परम आनन्द पतस्यवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रासुपजीवन्ति।'(व० उ० ४।३।३१)

वेदान्तवेद्य परात्पर पुरुषोत्तम भगवान् ही एकमात्र प्राप्य हैं, यह श्रुतिके प्रवल प्रमाणोंसे पृष्ट किया गया। स्मृति भी भवत्तत्वका ही प्रतिपादन करती है—वेद रामायण चैंच पुराणे भारते तथा। आदे मध्ये तथा चान्ते हिरः सर्वज्ञ गीयते॥ वेद, रामायण, पुराण तथा महाभारत आदिके आदि, मध्य एवं अन्तमें सर्वत्र श्रीहरिका ही प्रतिपादन है। सभी शास्त्र भगवान्का ही गान करते हैं। गीता स्पष्ट कहती है—वेदेश सर्वेरहभेच वेद्यः' समस्त वेदोंसे में ही (प्रभु ही) जानने योग्य हूँ। जड़ प्रकृति एवं चेतन दोनोंसे परे भगवान् ही पुरुषोत्तम हैं—

यसात्क्षरमतीतोऽहमक्षराद्यि बोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

पुराणशिरोमणि वेदान्तसार श्रीमद्भागवतके प्रारम्भें ही डिमडिमघोषके साथ भगवान्का प्रतिपादन किया गया है, तथा परतत्त्वको ही भगवान् कहा गया है 'सत्यं परं धीमहि।'

वद्ग्ति तत्तरविद्स्तरवं यज्ञ्ञानमद्वयम्। ब्रह्मोति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥ (श्रीमद्भा०१।२।११) अर्थात् अद्भय ज्ञानस्वरूप परमतस्वको वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं, योगिजन परमात्मा कहते हैं तथा भक्तगण भगवान् कहते हैं। इस विषयकी पृष्टि पाँचवें स्कन्धमें की गयी है—

क्कानं विद्युद्धं परमार्थमेक-मनन्तरं त्वविहर्वह्मसत्यम्। प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छव्दसंक्षं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति॥ (शीमद्भा०५।१२।११)

भागवतकार कहते हैं कि यद्यपि एक ही परमात्मा जगतकी सृष्टि, स्थिति, संहारके लिये श्रह्मा, विष्णु, महेश-इन तीन रूपोंमें प्रकट होता है, फिर भी कल्याण चाहनेवाले साधकोंको सत्त्वखरूप श्रीभगवान्की ही आराधना करनी चाहिये——

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते। स्थित्याद्ये हर्शिवरिश्चिहरेति संइाः श्रेयांसि तत्र खळु सत्त्वतनोर्नुणां स्युः॥ (श्रीमद्भा०१।२।२३)

इसीलिये पूर्वकालमें भी महापुरुपोंने अधीक्षज भगवान्का ही भजन किया है---

भेजिरे मुनयोऽधाये भगवन्तमधोश्रजम् । सत्त्वं विद्युजं श्लेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह् ॥ (श्लीमद्भा० १ । २ । २५) जो साधक उन ऋषि-मुनियोंके अनुयाया होंगे, वे भी भगवान्की पूजा करेंगे । सम्पूर्ण यज्ञ, योग, क्रिया, ज्ञान, तप, धर्म एवं गति भगवान् वासुदेवमें ही समाप्त होते हैं। इन सभी साधनोंके आश्रय भगवान् ही हैं—

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः। वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः॥ वासुदेवपरं क्षानं वासुदेवपरं तपः। वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः॥ (श्रीमद्भा०१।२।२८-२९)

संस्कारक अनुकूछ ही छोग देवताओंका भजन करते हैं । तमोगुणी, रजोगुणी साधक अपनी कामनाओंकी पूर्तिके छिये भूत, प्रेत, प्रजापित आदिका भजन करते हैं, किंतु संसारसे मुक्त होनेवाले साधक इन घोररूप भूतपितयोंको छोड़कर भगवान्का ही भजन करते हैं—

मुमुक्षवो घोरक्षपान् हित्वा भूतपतीनथ। नारायणकलाः शान्ता भजन्ति हानस्यवः॥ (श्रीमद्भा०१।२।२६)

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीब्रेण भक्तियोगन यजेत पुरुषं परम्॥ (श्रीमद्भा०२।३।१०)

वस्तुतः साथक सकाम हो अथवा निकाम या मोक्ष-कामी हो, तीत्र भक्तियोगसे भगवान्का भजन करना चाहिय।

तमाराधय गोविन्दम्

यस्यान्तःसर्वमेवेदमच्युतस्याव्ययात्मनः । तभाराध्य गोविन्दं स्थानमध्यं यद्गिच्छसि ॥ (विष्णुपुराण १। ११। ४५)

'यदि तू श्रेष्ठ स्थानका इच्छुक है तो जिन अविनाशी अच्युतमें यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है, उन गोविन्स्को ही आरायना कर ।'





भगवत्तत्व और जीवन-दर्शन

(लेखक—क०भ्रीगोकुलानन्दजी तेलंग साहित्यरत्न)

जिसकी मधु निःस्वन म्त्रर लहरी से निस्पन्दित , संतत गे स्फूर्तिमान प्राणी सब चर-अचर । भुक्तिहीन मुक्तिकी अनुरक्ति भक्ति ग्रुक्ति-साज पालें उस विभु को हम निर्मल अन्तरतल कर ॥

परात्पर परतत्त्वकं अमृत-स्नेहसे सम्पोपित जीवनका ज्योतिदीप नव-नवोन्मेषके साथ दिग्दिगन्तको झिलमिल-क्षिलमिल आलोकित करता है ! वह चिरन्तन अक्षुण्ण एवं अखण्ड दिन्य ज्योति-पुञ्ज सतत प्रवाहमान निखिल जीव-जगत्की जीवन-धाराको प्रकाशित एवं आप्यायितकर आनन्दमय बनाता है । यह तस्त्र खयंमें रुचिर, सत्य, चिन्मय और अमृतोपम आनन्दमूल है । इसिंखये उसमें निखिल श्री, समृद्धि, सिद्धिसे सम्पृरित वरदानकी गरिमा संनिहित है । उसकी एक मधुर नि:खन स्वरल्हरीसे जन-जनका अन्तरचेतन अपने-आपमें निस्पन्दमान है । इस तत्त्वका आश्रय लेकर जीव अटल हिमगिरिकी भाँति खस्थ, योगसिद्ध, समाधिस्थ और अन्तर्मुख होता है । वह उस समरसताकी अटूट किइयोंसे निवद्ध महोदिधका रूप है, जो बडवाग्नि पीकर भी अन्तर्मनसे प्रशान्त है—सभी प्रकारकी हलचल, चम्रलता आदिसे मुक्त । उसे सम्पूर्ण मनोवलके साथ आत्मा-छोचनमं निमग्न होना है, संयम और शीछब्रती होकर अपने मनके कपाटोंको अनगिलत करना है।

ऐसा भगवत्तस्त्रामिभूत जीव आत्माभिराम, आप्तकाम, अथच पुण्यधाम है। वह चिर-संतृप्त निष्काम और निश्चल है। वह जागतिक सुखोंकी क्षुद्र मृग-मरीचिकासे अस्थिर नहीं, सम्भ्रान्त नहीं—वह दीन, लक्ष्यहीन, मनश्चन्नल नहीं, उसके अन्तस्तलमें निरविध उच्छलित, रस-तरंगित आनन्द-सिन्धु है—असीम, ससीम नहीं, विधि-विधानवश वह अपने कूल-किनारोंसे छिटककर,

उस गहन-गम्भीर रसोद्धिसे वियुक्त होकर, भवसागरक बीचधारमें आ पड़ा है। अतः उसे उसी आत्मरूप मुल रसनिधिमें समा जाना है, उसीको जीवनका चरम लक्ष्य मानकर । आवश्यकता है मनुष्यको अपने सर्वस भगवत्तत्त्वको दृष्टिमें रखकर आत्मबोधकी-स्वबोधकी। जीवका वास्तविक खरूप अन्तर्मुख होका दिय ज्योतिमें 'सर्वे खिटवदं ब्रह्म'का दर्शन करनेकी आवश्यकता है और आवश्यकता है उस भगवत्तव-प्रतीकरूप आत्म-दर्शन करने, सचिदानन्द्घन-खरूप, 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' उस असीम शक्तिपुत्रको अपनेहीमें अन्तर्भाव करने एवं उस स्वतःप्रकाश, अक्षय कान्तिमान् भगवत्खरूपको अपनेमं समाहित कर लेनेकी । अपने निःश्रेयस्के लिये 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नियोधत' इस श्रुतिवाक्यसे सत्प्रेरणा लेका, मनुप्य-जीवनको कर्मनिरत करनेकी, लब्धकीर्तिमान् होने तथा स्थूल-सूक्ष्म यावन्मात्र सृष्टि-जगत्को — जड्-चेतनको उसी परवसका प्रतिरूप मानकर उसके प्रति सतत अप्रसर होना नितान्त आवश्यक है।

मनुष्य-जन्म अनमोल हीरा है — उसका मूल्याङ्कन कोई रत्न-पारखी जीव ही कर सकता है, अन्यथा यह मौतिक मोह-प्रस्त, मायासक्त जीव, अपने मिध्या अहंमें भ्रान्तिमान् होकर अपने ही खरूपको भूल रहा है जीवनको कौड़ी-मोल गवाँ रहा है। हमारा उद्गम, हमारा गन्तव्य — वही परम चिन्त्य, समाराध्य, साध्य भगवत्तत्त्व है। यह पह चान ही निगमागम-बोध है, अन्यशं स्विववेक भूलकर, लक्ष्यविस्मृत होकर, यह जीव सदा-सर्वदा भटकता रहेगा।

इसीलिये आवश्यकता है बाहरसे दृष्टि हटाकर अन्तर्की ओर झाँकनेकी, आत्म-ज्ञानके प्रति उन्मुख होनेकी। बहाँ एक दिव्य ज्योति-शिखा हमारे समक्ष झिलमिला हि। है, जो चिर चेतन-सन्दीपित, कितनी प्राणवान्, अज्ञान-तिमिरके समूल निरसनमें कितनी सक्षम है। उसकी अनन्त गरिमाका इस जीवको भान ही नहीं हो रहा है। वह जीवके चरम लक्ष्यकी प्राप्ति करानेमें कितना सक्षम, कितना समर्थ है—उस सर्वव्यापक भगवत्तस्वका महादान आत्म-ज्ञानमें ही सुलभ है।

'कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने'का तत्त्व-बोध इसी भगवत्तत्त्वको इङ्गित कर रहा है, जिससे यह जीय-तत्त्व अनुप्राणित है, अभिभावित है। इसी भगवद्भावसे अभिभूत हमारा तत्त्व-ज्ञान हमारा जीवन-दर्शन है । यही भगवद्भाव तत्त्ववेत्ता, तत्त्व-साधक और पूर्णतत्त्व तळस्पर्शी भक्तके रोम-रोममें यशोदोत्सङ्गळाळित मधुर स्याम और स्यामकी मादक वेणु-माधुरीके रससिक्त गुङ्गायमान खरोंका संचार कर उसे भगवद्भावपूर्ण बनाता है । भगवान् स्यामसुन्दरके रसखरूपका अवगाहन कराता है--तद्रप और तन्मय बनाता है। इसी भगवत्तत्त्वमें अनन्त शक्ति-शील-सौन्दर्यमय श्रीरामका अभिराम खरूप समाया हुआ है, जो भावाभिनिवेशके क्षणोंमें भक्तको तदासक्त, तल्लीलामग्न, शक्तिसुषमासे ऊर्जखित करता है। हमारा जीवन-दर्शन उससे विलग कैसे हो सकता है ! उसीके संस्पर्श, संस्मृति और खरूपावगाहनसे वह धन्य-धन्य है।

जीवनके लिये यह भगवचिन्तन, भगवत्तत्वावबोधन

एक बहुत बड़ा मनोवल है, आत्मनिष्ठाका एक गुरु सम्बल है। विना इसके जीवनमें गतिरोव है। भगवत्तत्व-बोधके बिना जीवन विगत-ओज है, मन विगलित और तन अनुत्साह, विथकित है। उस भगबद्भावके बिना जीवनके मार्गपर मनुष्य डगमग पर्गोसे वढ़ रहा है— उसका मार्ग निपट विकट है, बीहड़ है।

अतः समग्र आनन्दकी अनुभूति, अन्तर्मुख होनेमें ही है। अन्तर्मुख होकर जीवको उस भगवत्तत्वके साथ एकरस, एकरूप, एकसत्त्व, एकतत्त्व होना है और उसीके दिव्याठोकमें यावद्दश्य जड़-चेतनमें अभेद मानकर सभीको ब्रह्ममय देखना है। जीव और ब्रह्म—दोनोंसे सदंश, चिदंश और आनन्दांश अभिगत कर दोनोंको महाप्राण, ज्योतिर्मय, महान् विभु एवं एकशक्ति, एकसत्ता खीकार करना है।

वह 'उच्छल रस-महोद्धि' लहर-लहरायित कान्तिमान् अमिय-सिन्धु जीवके भीतर ही निरवधि नितान्त प्रशान्त-रूपमें तरङ्गायमान है । जीवका सर्वाराध्य-साध्य वही परमतत्त्व है। वह कितना व्यापक, कितना विराट्, कितना अनुपमेय और अपिरमेय है! उसी दिव्य रूपकी मधुरिमाका अनुल विभव हमें अपने पलकपुटोंमें समेट लेना है, हृदयमें भर लेना है। उन परमतत्त्वमय प्रमुका सगुण-साकाररूप प्रेमवश्य है, भीगे भाव-वन्धनोंमें बँघे हुए वे प्रेमी भक्तके पास वहाँ खतः चले आने हैं। यही वह तत्त्व है, जो मनसा-वाचा अचिन्त्य है।

शरणं प्रपद्ये

CORED.

न धर्मितिष्ठोऽस्मि न चात्मचेदी न भक्तिमांस्त्वचरणारिवन्दे। अकिञ्चनोऽनन्यगितः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

भैं न तो धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञानी और न आपके चरण-कमलोंमें भक्ति ही रखनेवाला हूँ। मैं अकिंचन हैं, आपके सिवा कोई दूसरा भेरा सहारा नहीं है, इसलिये आपके ही शरण लेनेयोग्य चरणोंकी शरणमें आ पड़ा हूँ। (— यामनाचार्य)

भगवत्तत्व-लीलादर्शन

(टेखन डॉ० श्रीटक्ष्मीप्रसादची दीक्षित, एम्० एस्० सी० [टेक्नॉला०], पी-एच्० डी०, वैज्ञानिक)

च्यक्तिके जीवनकी घटनाओंका संग्रह ही उसकी लीला या जीवनी होती है। श्रीकृष्ण-लीला तथा श्रीराम-लीला सबकी सुपरिचित गृह लीलाएँ हैं। इस प्रकार सृष्टिका प्रत्येक कण प्रतिचण कुछ लीला कर रहा है। पर तत्वत: सब वासुदेव ही हैं (गीता ७। १८)। श्रीगोखामीजी कहते हैं—

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुजं बिमोहनि सुर सुखकारी॥
'उमा राम गुन गृहः'''। (रामच०३।१)
'पावहिं मोह बिमूछ। जे हिर बिमुख न धर्मरिति॥'
निरगुन रूप सुलम अति सगुन जान नहिं कोय।
सुगम अगम नाना चरित सुनि सुनि मन अम होय॥
(रामच०७। ७३)

सामान्य जनको श्रीभगवान्की सगुण छीछाएँ ठीकसे समझमें नहीं आतीं । दुधमुँहें छोटे शिशुक्तप श्रीकृष्णने पूतना-जैसी राभसीको उसका दूध पीकर ही मार हाला । कहाँ सुकोमल वालकृष्ण और कहाँ वह भयानक तथा प्रोहा राभसी ! ऐसी विचित्र घटनाएँ संसारमें अन्यत्र देखने या सुननेको कम मिलती हैं । ऐसी घटनाओंको साधारण मानव-बुद्धिसे समझा भी नहीं जा सकता है । यही सगुण-छीछाओंकी दुक्दहता है । इस छीछाको मक्त कित्रयोंने चिरत्रवद्ध करनेका प्रयास किया है । छीछा माया-सापेक्ष होती है । मानसकार पूज्य श्रीगोस्वामीजीने इसे उदाहरणसहित बहुत सुन्दर ढंगसे समझाया है—

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ। जानें छाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥ (रामच०२।९२)

लीलासे परे जो ज्ञान-गूड़, केवल अनुभवगम्य बातें हैं, उन्हें तत्व, भगवतत्त्व, आत्मतत्त्व, परमतत्त्व, ब्रह्म प्रमृति शब्दोंसे व्यक्त किया गया है। उनका सामान्य परिचय इस प्रकार है—

तत्त्व-मीमांसा—'तत्त्व' शब्दका प्रयोग अनेक अथोंमें होता आया है। सांख्यदर्शन प्रकृति और पुरुष नामक तत्त्वोंपर गढ़ा गया है। गीतामें तीन तत्त्वों— सत्, रज और तमकी व्याख्या की गयी है। इन्हींपर जीवका स्वभाव आधृत है। भौतिक शरीर पश्चतत्त्र्वोंका बना होता है——

छिति जलपावकगगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीता। (रामच० मा० ४। ११।४)

कुछ तस्व-चिन्तक चित्त, मन और अहंकारको भी तस्वकी संज्ञा देकर अपने विषयका प्रतिपादन करते हैं। अद्वैतमात्र एक तस्वसे ही सारा प्रपन्न उद्भूत बतलाते हैं। अतः तस्त्रोंकी संख्याका निर्धारण नहीं किया जा सकता है। यह प्रतिपादित विषय तथा उसके प्रतिपादकके बुद्धि-कौशलपर निर्भर करता है।

अधिनिक विज्ञानमें भी तत्त्रोंकी संख्यापर मतभेर है। रसायनज्ञ इसकी संख्या ९२ वतलाते हैं। 'रिएक्टरों'की सहायतासे तत्त्व-अन्वेषकोंने कुल और तत्त्वोंके संश्लेपित कर इनकी संख्या ९९ कर दी है। जनका कहना है कि यह संख्या और भी बढ़ सकती है। मूलकण या मूल तत्त्व शास्त्र या (Elementary Particle) भौतिकी (Physics.) शास्त्र पहले केवलतीन काणों—एलक्ट्रान, प्रोटान और न्यूटान—से ही समस्त ब्रह्माण्ड-की उत्पत्ति भानता था। लेकिन आधिनिक अन्वेषणोंने इन तथाकथित मूल काणोंको भी विभाजित कर दिया है। इन सृक्ष्म काणों (तत्त्वों) की संख्यापर भी वैज्ञानिक एकमन नहीं हैं। इन अतिस्क्ष्म तथा लघुजीवनधी (Short Lined) काणोंको काजीसे बनाया जा सकता है। इस प्रकार वैज्ञानिक इस निष्कर्षपर पहुँचे कि इन्यको काजीसे बनाया जा सकता है। यह निष्कर्ष

अहेत-सिद्धान्तसे भी बहुत कुछ मिळता है। लेकिन इनमें एक अन्तर भी है । अद्दैत-तत्त्व चेतन तथा अविकारी है । विज्ञानका अद्देत-तत्त्व जड़ एवं विकारी 💡 । विज्ञान इस् समस्त ब्रह्माण्डको द्रव्य और विकिरण (Rediction) नामक अभिनामक और अभिनामिकाका आकाश और कालरूपो मञ्जपर खेल मानती है। विज्ञानका यह अभिनय सांख्यके प्रकृति-पुरुष-छीठाके सदरा है। सांख्य और विज्ञानके नाटक शाधत तथा अनुपम हैं । फिर भी उनमें अन्तर है । सांख्यके तत्त्व प्रकृति और पुरुष तथा विज्ञानके द्रव्य और विकिरण ब्रह्माण्ड संरचनाके संदर्भमें अत्यन्त सदश हैं, किंतु सांख्यका पुरुष अविकारी है, चेतन है, बहाँ विज्ञानके दोनों तत्त्व विकारी तथा जड हैं। विज्ञानमें 'चेतन' नामका कोई तत्त्व नहीं है, चेतनता द्रव्य (Matter) संरचना विशेषका एक गुणमात्र है। सांख्यमें चेतनताका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व (Existence) है, विज्ञानमें नहीं । विज्ञानकी ऊर्जा (Energy) भारतीय शक्ति-द्र्शनकी आद्याशिकके सदश है । किंतु जहाँ भारतीय दर्शनोंमं प्रतिपादित आद्याशक्ति अनिर्वचनीय है, वहाँ विज्ञानकी ऊर्जा वचनीय एवं विकारी है।' संक्षेपमें भारतीय दर्शनोंका परमतत्त्र अविकारी है और विज्ञानका मूल तत्त्व विकारी है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक तथा वैशेषिक न्यायादि भारतीय दर्शन समानतः एक या अनेक ऐसे तत्त्रोंकी खोजमें रहे हैं या हैं, जो नित्य, अविकारी और अखण्डनीय हों। उपनिपद्, श्रीमद्रगवद्गीना, रामचिरतमानस आदि हिन्दू-धर्मशाख ऐसे ही परमतत्त्वका निरूपण करते हैं। निम्न स्लोक द्रष्ट्य हैं—

नैनं छिन्द्नि शस्त्राणि नैनं दहित पावकः। न चैनं क्लेद्यन्त्यापो न शोपयित मारुतः॥ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च। नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ (शीता २।२३-२४)

'इस तस्त्र (आत्मा)को शस्त्राद्दि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं जला सकती है तथा जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु नहीं सुखा सकता है। यह आत्मा अच्छेच है, अक्लेच और अशोध्य, नित्य, व्यापक, अचल और सनातन है। जिन तस्त्रोंकी खोजमें विज्ञान लगा है, वह ऐसा होना चाहिये, जिससे समस्त जगत्की सृष्टि सम्भव हो सके। जिससे जड़ता तथा चेतनता दोनों गुणोंको समझा जा सके। संक्षेपमें यह तस्त्र ही सभी भ्तोंका अधिष्टान होना चाहिये। इस संदर्भमें गीताका निम्न क्लोक उल्लेखनीय है

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥ (१०।२०)

'अर्जुन! में सब भूतोंके हृद्यमें स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।' ये शब्द भगवान् श्रीकृष्णजीके श्रीमुखसे निकले हैं। अतः उपरोक्त तत्त्वमात्र कल्पना-प्रसूत नहीं है, किंतु वास्तवमें तत्त्व ऐसा ही है। इसी अनुपम तत्त्वको हमारे शास्त्रोंमें विभिन्न नामोंसे सम्बोधित किया गया है। यह तत्त्व अद्वितीय है। इस अल्लोकिकताका मानसकार पूज्य गोलामीजीने निम्न चौपाइयोंमें बड़ा सुन्दर वर्गन किया है-—

अरान अद्भा ितरा गोतीता । समदरसी अनवद्य अजीता । निर्मम निराकार निरमोहा । निरय निरंजन सुख संदोहा ॥ प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ब्रह्म निरीह बिरज अविनामी ॥ इहाँ मोह कर कारन नाहीं । रिव सन्मुख तम कयहु कि जाहों ॥ (रामच० मा० ७ । ७१ । ३-४)

इस तत्त्वकी अनुपर्भयताका दर्शन द्वेताश्वतरोपनिषद् और भी त्रिचित्र क्यमें करता है । उसका कथन है

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरम्यं पुरुषं महान्तम्॥ (३। १९) 'बह हाथ-पावसे रहित होकर भी वेगवान् और प्रहण करनेवाला है, नेत्रहीन होकर भी देखता है और कर्णरहित होकर भी सुनता है। वह सम्पूर्ण वेद्य वर्गको जानता है, किंतु उसे जाननेवाला कोई नहीं है। उसे (ऋषियोंने) सबका आदि, पूर्ण एवं महान् कहा है। इसी अद्वितीय परमतत्त्वका निरूपण तथा उसकी प्राप्तिके साधनोंका वर्णन हमारे धर्मशास्त्रोंका एकमात्र उद्देश्य है। सभी शास्त्र अन्तमें इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि इस तत्त्वका दर्शन तो किया जा सकता है, किंतु उसे वैसा ही भाषाबद्ध करना असम्भव है। इसीलिय अन्ततोगत्वा वेदोंने भी नेति-नेति कहकर इस परमतत्त्वके निरूपणमें विराम लगाकर विश्राम पाया।

भगवान्की क्रीडा—यह अनन्त ब्रह्माण्ड, चराचर जगत् सब उसी एक परमतत्त्वका खेळ ही तो है। इसके प्राक्तव्य, स्थिति और लयका कोई अन्य कारण नहीं है। बह अळख निरक्षन है। इन असंख्य ब्रह्माण्डोंका पैदा करना, कुछ देर उनसे खेळना और फिर मिटा डाळना— बस, यही उस परमतिचित्र, परमविलक्षण, अकथनीय, अनोखे परमतत्त्वका 'मनोरक्षन' है। देखिये—

मम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥ सब मम प्रिय सब नम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए (रामच० मा० ७। ८५। २)

इस समस्त चराचर जगत्को माया नचा रही है। हमलोग प्राय: यही समझते हैं कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं। यही तो उसकी योगमायाकी जादू है। यह नचा रही है और हम समझ रहे हैं कि हम खयं खानन्दके लिये नाच रहे हैं— जो माया सब जगिह नचावा। जासु चरित लिख का हुँ न पावा॥ सोइ प्रभु श्रु बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥ (रामच० मा० ७। ७१। १)

कठपुतली क्या खयं नाच सकती है ? क्या मात्र डोरियाँ उसे नचा सकती हैं ? नहीं, उनको अपने इशारेपर

नचानेवाला नट (सृत्रधार) दर्शकोंको दिखायी ही नहीं पड़ता। वह तो उनकी दृष्टिसे ओझल रहकर अपने कार्यको करता है। दर्शक कठपुतलीके नाचसे आनन्ति हो उठते हैं और अपनेसे पूछते हैं कि यह निजीव पुतली मला कैसा सुन्दर नाचती है! फिर उस लीलाभरका खेल क्यों न मनोहारी हो! जिसे हम समझ नहीं सकते। यह उसीकी कृपाके अधीन बताया गया है—

यह गुन साधन तें नहिं होई । तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई॥

हम जिसके बारेमें सोचते हैं, समझनेका प्रयास करते हैं, देखते हैं या जिसे हम इन्द्रियोंद्वारा प्रहण कर पाते हैं, वह परमतत्त्वकी क्रीडामात्र है। इस खेळ तथा इसके खिळीनोंका अन्त नहीं है। गोखामीजी हमें सावधान करते हैं—

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार। सुनि आचरज्ञ न मानिहर्हि जिन्ह के बिमल बिचार॥

(रामच० मा० १। ३३)

जब मनुष्यनिर्मित खेळ या नाटक खयं उसीको आश्चर्यचिकत कर सकता है, मनोरख्नन कर सकता है आर मोह भी सकता है, तब उस परमतत्त्वकी क्रीडामें हमें क्यों न वास्तविक प्रतीत हो और हम उससे क्यों न मोहित हों ? वह तो विचित्र छगेगी ही । उसे क्रेंसे समझा जा सकता है । परमतत्त्वके इस वैचित्र्यका उद्घीष मानस निम्न दोहामें कर रहा है—

अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान । जे मितमंद बिमोह बस हृद्यँ धरहिं कछु आन ॥ (रामच० मा०१।४९)

साधारण मनुष्यकी वात ही कौन करे, बड़े-बड़े ज्ञानियोंको भी प्रभुकी छीछाने भ्रममें डाछ दिया है। साक्षात् ज्ञानके अवतार भगवान् शंकरकी सहप्रिणी सतीजी पृछ बैठती हैं—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद । सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥ (रामच० मा० १ | ५०

जलचर, यलचर, कीट-पतंग, नद-नदी-पर्वत, सूर्य-चन्द्र आदि नक्षत्र और वृक्ष-वनस्पति इत्यादि सभीके ह्यमें उसी लीलाधरकी लीलाएँ हैं। लेकिन श्रीकृष्ण त्या श्रीरामरूपमें तो भगवत्तत्त्व-छीछाकी पराकाष्ट्राका दर्शन उपलब्ध होता है। यह गोखामीजीकी निम्न-सिक्तिसे स्पष्ट हो जाता है-

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं। कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥ सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी। अवतरेड अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥ (रामच० मा० १ । ५१)

वेद-शास्त्र और पुराण भगवान्के इन विचित्र चित्रों

of files fama soften for for F

और गाथाओंके अनुपम धरोहर हैं। ये चिरत्र तकसे परे हैं। मानवीय बुद्धि सभी कुछ नहीं माप सकती। उसकी अपनी सीमा है। भगवान् उससे भी परे हैं। कहा भी है-

राम अतर्कं बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहु सयानी॥ उनकी लीलाएँ भी परम गूढ़ हैं। वास्तवमें यही तो प्रभुका लीला-वैचित्रय है । वे मायापति हैं । उन माया-पतिकी लीलाओंमें मानव-बुद्धि और विज्ञानकी पहुँच ही नहीं है। उनके परमतत्त्वको जान पाना प्रभुकी ही कृपासे साध्य है । वे कृपाकर जिसे अपना रहस्य समन्ना दें, बस मात्र वही जान सकता है—'जानहिं भगत

पुराणोंमें भगवत्तत्वका प्रकाश

भगति उर चंदन ।

(लेखक--श्रीरतनलालजी गुप्त)

भारतके युगसन्धिकालमें भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य मेद होनेका कोई प्रश्न ही नहीं है। किंतु इन बीळा-सहचर महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास उनके धर्म-संस्थापन महायज्ञके आचार्यरूपमें अवतीर्ण हुए थे। वेदान्तसूत्रोंके सर्वभावातीत अवाड्यनोगोचर परब्रह्मके लोकवल्लीलाकैवल्यम्'को उन्होंने अपने लौिकक चक्षओंके अतिरिक्त समाधिद्वारा उपलब्ध चेतनामें भी साक्षात्कार किया था। उनका परम करुणामय हृदय सभी प्रचलित मर्यादाओंको तोड़कर लोकमानसके समक्ष अपने इस नवीन आविष्कारको प्रस्तुत करनेके लिये भातुर हो उठा और उनकी लेखनी अकर्ताका कर्म, अजन्माका जन्म, मुक्तिपतिका बन्धन, आत्मारामका अयुत प्रमदाओंके साथ विहार चित्रित करनेके लिये भगहित हो उठी । फलखरूप जन्म हुआ वेदों और वपनिषदोंके प्रामाणिक अर्थका प्रतिपादन करनेवाले ष्यदश पुराणींका।

जब सभी पुराणोंके रचियता एक हैं तो उनकी भगवत्तत्त्वसम्बन्धी मान्यता भी एक ही होगी, इसमें

पुराणोंमें भगवत्तत्त्वके अनेक साधकोंका वर्णन हुआ है, जिन्होंने एक-एक भावविशेषका अवलम्बन लेकर अपनी रुचि-प्रकृति, परिस्थितिके अनुसार विभिन्न रूपोंने भगवत्सत्ताके प्रकाशकी उपलब्धि की है। भगवत्स्वरूपमें ऋषि- किसी प्रकारका तारतम्य न होनेपर भी साधकके भाव-विकासपर प्रकाशमें तारतम्य तो होता ही है। बालक ध्रुव, अवधूत जडभरत, पतित अजामिल, तामसी पशुयोनिको प्राप्त गजेन्द्र, राजर्षि अम्बरीष, दैत्यपुत्र भक्तराज प्रह्लाद, कृष्णसखा उद्भव और देवर्षि नारद— ये एक-एक भक्त एक-एक प्रकारके भावकी प्रतिमृति हैं एवं इनमेंसे प्रत्येकके निकट भगवरखरूप-प्रकाशका अपना वैशिष्ट्य है । फिर एक-एक भक्तके साधन-जीवनमें भावके क्रमविकासमें भगवान्का आविर्माव भी नये-नये रूपोंमें हुआ है।

पुराणोंमें इस भगवत्तत्त्वका विष्णु, कृष्ण, काली, शिव, दुर्गा, श्रीराम, गणेश और सूर्य आदि अनेक

40 To 22 CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूपोंमें वर्णन किया गया है। पर पार्थक्य है केवल इनके रूपमें, खरूपमें कोई पार्थक्य नहीं है। एकमात्र अन्यक्त चिह्न परब्रह्म ही विविध शक्ति, परिकर, आयुध एवं आभूषणों आदिसे सुसज्जित होकर विभिन्न नामोंसे अभिहित होते हैं । जब वे गरुड़, नन्द, सुनन्द इत्यादि पार्षदों, राह्व-चक्र, गदा, पद्म इत्यादि आयुघों, कौस्तुम-वनमाला इत्यादि आभूषणोंसे युक्त होते हैं तो विष्णु कहलाते हैं । जब वे नन्दी वृषम, वीरमद्र, भूत-पिशाच इत्यादि पार्षदों, चन्द्रकला एवं नागराज आदि आभूषणोंसे विलिसत होते हैं तो शिव कहलाते हैं; जब वे सिंहपर ,आरूढ़ हो डािकनियों-पिशाचिनियोंसे आवृत होकर घंटा, शूल, हल, शङ्क, मुसल, चक्र, धनुष, बाण इत्यादि आयुघ धारण करते हैं, तो वे ही दुर्गा कहलाते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत, शत्रुष्न, हनुमान् इत्यादि पार्षदों, धनुष-वाण इत्यादि आयुधों एवं चँवर-छत्र, राजमुकुट इत्यादि आभूषणोंको धारण करनेसे वे श्रीराम कहे जाते हैं।

ब्रह्मसूत्रके 'अनुबन्धादिभ्यः प्रश्चान्तरपृथक्त्ववद्-हृष्टक्ष तदुक्तम्' (३।३।५०) सूत्रका भाष्य करते हुए श्रीमन्मव्याचार्यने इस विषयपर प्रकाश डाला है । उनके अनुसार उपासनाके मेदसे श्रीभगवान्के दर्शनमें भी मेद होता है—'उपासनाभेदात् दर्शनभेदः' । श्रीनारद-पाश्चरात्रमें भी उक्त मतका प्रतिपादन हुआ है—

्म मणिर्यथाविभागेन नीलपीतादिभिर्युतः । रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात्तथा विभुः॥

जिस प्रकार वैदूर्यमणि उज्ज्वल होनेसे नील-पीत आदि वर्णीके सम्पर्कमें आकर उन-उन वर्णीसे युक्त प्रतीत होने लगती है, वैसे ही उपासकोंके ध्यानमें मेद होनेसे प्रमुक्ते भी रूपमेद हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवतमें वामनावतारके प्रसङ्गमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधै-रन्यक्तचिद् न्यक्तमधारयद्धिः। बभूव तैनेव स वामनो वदुः संपद्दयतोर्दिन्यगतिर्यथा नटः॥ (८।१८।१२)

जो शरीर किसी प्रकार भी व्यक्तित नहीं होता, अन्यक्त अवस्थामें भी परमानन्द ही जिसका रूप है, उसको विशिष्ट आभूषणों एवं आयुधोंका अवलम्बन लेका श्रीहरिने विश्वप्रपञ्चमें जिस प्रकार अभिव्यक्त हो सके, स प्रकार स्थापित कर दिया । तदनन्तर वे उसी हमो वामन वट्ट बन गये । अपनेमें ही नित्य स्थित नाना संस्थाओंके प्रकाश-अप्रकाशरूप जिनकी परम अविन्य चेष्टाएँ हैं, वे प्रभु जैसे बाजीगर हायकी सफाईसे नान आकारोंमें अपनेको परिवर्तित कर लेता है, वैसे ही माता-पिताके देखते-देखते वामन वटुके रूपमें अविभूत हो गये। यहाँपर इस राङ्काका होना खामाविक है अवतारोंमें जन-साधारणने आदि राम-कृष्ण उनके जिस रूपका दर्शन किया था, वह साधाएग मनुष्योंके समान पश्चमहाभूतोंके संयोगसे निर्मित वा अथवा उसमें कोई लोकोत्तर वैशिष्ट्य था ! मानवदेह और अवतारदेहमें क्या मेद है ? इन राङ्गाओंका समाधान सामान्य व्यक्तियोद्वारा किये जानेपर मतमेदके लिये स्थान रहता, अतएव व्यासदेवने खयं पुराणीं श्रीभगवान्की दिव्य देहके विषयमें विशद स्वी की है।

वस्तुतः श्रीमगवान्के आविर्मावकालमें उनके श्रीविष्ठ विशुद्ध सत्य, विशुद्ध ज्ञान, विशुद्ध आनन्त्य, विशुद्ध आनन्तः रूपमें ही अभिव्यक्त होते हैं। उनमें किसी विजातीय मेदकी कल्पना नहीं की जा सकती और उनकी अभिव्यक्ति भी सदा एकरूप ही होती है। आल्बान इि जिनका नेत्र है, वे महात्मा भी उनके अन्त माहात्म्यका स्पर्श नहीं कर पाते। सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रेकरसमूर्तयः । अस्पृष्टमूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिपद्दशाम्॥ (श्रीमद्भा०१०।१३।५४)

श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर 'विद्युद्धविज्ञानघनम्'
(१० | ३७ | २०), 'विद्युद्धज्ञानमूर्तये' (१० |
२७ | २१), 'त्वच्येच नित्यद्धख्वोधतनौ' (१० |
१४ | २२) आदि पदोंसे भगवान्के श्रीविश्रहको
विज्ञानमय वतलाया गया है तथा 'आनन्दमूर्तिमुपगुद्धा
हशाऽऽत्मल्ब्धम्'(१० | ४१ | २८), 'दोभ्यां
स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम्' (१० | ४८ | ७) आदि पदोंसे
उनके उस आनन्दमय श्रीविश्रहके दर्शन, आलिङ्गन
आदिका वर्णन करके लाक्षणिक अर्थकी प्रतीतिको भी
बोधित कर दिया गया है । वराहपुराणका भी मत है—

सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः। हेयोपादेयरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥ परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः। देहदेहिभिदा चात्र नेश्वरे विद्यते क्वचित्॥

उन परमात्माकी सभी देहें नित्य एवं शाश्वत हैं, उनमें कुछ भी हेय-उपादेय नहीं है; वे प्रकृतिका आश्रय लेकर उत्पन्न नहीं होते हैं। वे सम्पूर्णतः घनीभूत परम आनन्द और विशुद्ध ज्ञानमय हैं। उन ईश्वरमें शरीर या शरीरीका कोई मेद नहीं है। स्कन्दपुराणके अनुसार भी उनका श्रीविग्रह शाश्वत एवं विशुद्ध चिद्-आनन्दघन है। इस रहस्यको न जानकर जनसाधारण उसमें जड़, पाञ्चभौतिक एवं जन्म-मृत्यु आदि विकारोंसे यक्त होनेका आरोप करते हैं—

अविश्वाय परं देहमानन्दात्मानमञ्ययम् । आरोपयन्ति जनिमत् पञ्चभूतात्मकं जडम् ॥ जन्म और कर्म हमारे सुपरिचित न्यापार हैं । यह परिचय हमको मायिक जगत्में जीवके सम्बन्धसे प्राप्त होता है । जीवका जन्म उसके कर्मद्वारा नियन्त्रित होता है । यह एक सुविदित तथ्य है । इसील्ये किस देह,

किस काल, किस जाति, किस रुचि अकृति, बल-बुद्धिसे युक्त माता-पिताके घरमें, देश और समाजकी किन परिस्थितियोंमें वह जन्म प्रहण करे, इसमें उसकी कोई खतन्त्रता नहीं है । बहुत बार यह भी देखा जाता है कि अनुकूछ परिस्थितियोंमें जन्म प्राप्त न होनेके कारण व्यक्तिको जीवन-पर्यन्त दु:ख, दैन्य और अभावका भोग करना पड़ता है। अतएव जीवका जन्म पराधीन है और उसके परिणामपर भी वह किसी-न-किसी प्रकार आश्रित है । किंतु श्रीमगवान्के कर्म दिव्य हैं, वे कर्म एवं कर्मफलसे लिस नहीं होते; अतएव कर्मफलभोगद्वारा नियन्त्रित जन्मकी प्रणालीके अनुसार माता-पिताके रजो-विन्दुसंयोगसे उनका जीवकी भाँति नौ मासतक माताके उदरमें वास करके जन्म लेना ही असंगत प्रतीत होता है । उनका आविर्माव उनकी इच्छासे जिस किसी देशमें, कालमें, जातिमें, त्रिशिष्ट माता-पिताके घरमें, देश और समाजकी विशिष्ट परिस्थितियोंमें होता है । उनका जन्म वस्तुतः उनका आविर्माव है । वे अपनी स्वरूपा राक्तिका आश्रय लेकर जीवके समक्ष अपने स्वरूप एवं लीलका प्रकाश करनेके लिये देश और कालकी सीमाको स्त्रीकार करते हैं। किंतु साथ ही उस अवस्थामें भी वे देशकालसे अतीत बने रहते हैं। सान्तको स्वीकार करके भी उनका अनन्तत्व अखण्डित बना रहता है।

श्रीभगवान्के अवतारतत्त्वके विषयमें श्रीमद्भागवतमें मुख्यरूपसे विचार हुआ है। व्यासदेवके अनुसारं जन-जनके हृदयमें निवास करनेवाले उन प्रभुने देवकीके गर्भसे जन्मग्रहण किया है, यह प्रवादमात्र है—'जयित जननिवासो देवकीजन्मवादः।' फिर भी श्रीमद्भागवतमें उनके जन्म, लीला एवं लीला-संवरण आदिका वर्णन हुआ है, अतएव ग्रन्थकारके मूल तात्पर्यको ध्यानमें खते हुए इस विषयकी आलोचना करना समीचीन होगा। महर्षि यास्कके अनुसार जीवशरीरमें छः प्रकारके विकार होते

हैं—जन्म, अस्तित्व, दृद्धि, विभिन्न अवस्थाओं में परिणति, अपक्षय और नारा—

तदेवं जायते अस्ति वर्धते विपरिणमति अपक्षीयते नश्यति ॥ (निष्तनैवण्डुकाण्ड १ | १ | ३)

किंतु भगवान् इन सभी विकारोंसे रहित हैं, अतएव उनकी दिव्य देहमें जन्मादि विकारोंका होना संगत नहीं प्रतीत होता । श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णचन्द्रके आविर्माव-तिरोधान आदि प्रसङ्गोंके अनुशीलनसे यह बात स्पष्ट-रूपसे ज्ञात की जा सकती है। श्रीमगवान्के जन्मके प्रसङ्गमें कहा गया है कि देवरूपिणी देवकीमें समस्त भूतप्राणियोंकी हृदय-गुहामें वास करनेवाले सर्वन्यापक विष्णु इस प्रकार आविर्भूत हो गये, जैसे चन्द्रमा निरन्तर विद्यमान रहते हुए भी निशीयकालमें प्राची दिशामें प्रकाशित होते हैं। यहाँपर चन्द्रमाके उदयको उपमा रूपमें नहीं, केवल अवतार-देहकी अभिन्यक्ति या प्रकाशकी प्रक्रियाके दृष्टान्तके रूपमें प्रहृण करना ही उपयुक्त होगा। किंत उनकी यह अभिव्यक्ति हुई शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी अद्भुत बालकके रूपमें;तदनन्तर माता-पिताकी प्रार्थनापर श्रीभगवान्ने अपने अछौिकक रूपका संवरण करके अपनी खरूपभूत योगमायाका आश्रय लेकर प्राकृत शिशुका रूप धारण कर लिया-

इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूर्णी भगवानात्ममायया । पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो वभूव प्राकृतः शिद्युः ॥ (श्रीमद्रा० १० । ३ । ४६)

इस स्थितिमें श्रीकृष्णचन्द्रके इस प्राकृत शिशुदेवकी भी माताके गर्भसे उत्पत्ति कैसे प्रमाणित हो सकेगी ? जिनकी सत्ता किसी देशमें, किसी कालमें खण्डित नहीं होती, उनमें किसी अपूर्व देहका प्रहण या नवीन

अस्तित्वकी कल्पना कैसे की जा सकती है। श्रीजीवगोखामी भी इस विषयपर विचार करते हुए कहते हैं-

श्रीभगवित सदैवाकारानन्त्यात् प्रकाशानन्त्या-ज्ञन्मकर्मेळक्षणळीळाऽऽनन्त्यादनन्तप्रपञ्चानन्त वै वेकुण्ठगततत्त्तळीळास्थानतत्त्त्व्ळीळापरिकराणां व्यक्ति-प्रकाशयोरानन्त्याच । यत एवं सत्योरि तत्त्वा-कारप्रकाशगतयोस्तदारम्भसमाप्त्योरेकत्रकत्र ते जन्मकर्मणोरंशा यावत्समाप्यन्ते न समाप्यन्ते वा तावदेवान्यत्रान्यत्रात्यारच्धा भवन्तीत्येवं श्रीभगवित विच्छेदाभावान्नित्ये एव तत्र ते जन्मकर्मणी वर्ततें (—भगवत्सन्दर्भ)॥

'श्रीभगवान्में सदैव आकारकी अनन्तता, खरूप-प्रकाशकी अनन्तता, अपनी जन्म-कर्मलक्षणा, लीलाकी अनन्तता एवं अनन्त विश्वप्रपन्न तथा अनन्त वैकुष्ठ आदि लोकोंमें उनके उन-उन लीलाक्षेत्रों एवं परिकारेंकी अभिन्यिक्त और प्रकाशकी अनन्तताके कारण सब बुख सम्भव है। इस प्रकार अभिन्यिक्त और प्रकाशके होते हुए भी उस-उस आकारमें प्रकाशकालमें लीलाओंके आरम्भ एवं संवरणमें एक-एक स्थानविशेषमें वे जन्म-कर्मके खण्ड जवतक समाप्त होते हैं अथवा समाप्त नहीं होते, उनके साथ-साथ उसी समय दूसरे-दूसरे स्थानोंमें भी उनके जन्मकर्मकी लीला चलती रहती है; अतएव श्रीभगवान्से विच्छेदके अभावके कारण उनके जन्म-कर्म नित्य ही विद्यमान रहते हैं।'

इसी प्रकार अवतारदेहमें वृद्धिरूप विकार भी सङ्गत नहीं होता । उनके द्वारा अपने आविर्मावके तीसरे मासमें ही पूतना, शकटासुर एवं तृणावर्तका प्राणहरण, पौगण्डकतामें गोवर्धन-धारण, गुरुगृहमें चौसठ दिनोंमें

१-श्रीमधुसूदन सरस्वतीने श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायके पाँचवें दलोककी व्याख्या करते हुए भी ऐसा ही भाव व्यक्त किया है—'जन्मानि लीलादेहप्रहणानि लोकहृष्ट्याभिप्रायेणादित्यस्योदयवन्मे मम बहूनि व्यतीतानि' अर्थात क्लीलादेहके प्रहणरूप मेरे बहुत-से जन्म बीत चुके हैं। जो लोकसमाजकी दृष्टिमें जिस प्रकार सूर्यका किसी देह विशेष या काल-विशेषमें उदय होता है, उसी प्रकार मैं भी देश-विशेष या काल-विशेषमें अभिव्यक्त होता हूँ।'

विधाध्ययन आदि अद्भुत कर्म पूर्ण विकासको प्राप्त मानवके लिये भी सम्भव नहीं कहे जा सकते। अतएव उनमें ज्ञानशक्ति आदिके क्रमिक विकास या वृद्धिका भी आरोप कैसे किया जा सकता है ? और, जब वृद्धि ही नहीं तब कौमार्य, यीवन, जरा आदि अवस्थाओं में परिणति भी युक्तिसङ्गत नहीं हो सकती।

जीव-शरीर जिस प्रकार विकासको प्राप्त होता है, उसी प्रकार कालान्तरमें क्रमिकरूपसे अपक्षय भी उसका खभाव है; किंतु श्रीभगवान् षोडश सहस्र प्रमदाओं से विवाहके छिये नाना शरीरों में अभिव्यक्त होनेपर भी अव्यय एवं अक्षुण्ण बने रहते हैं—

अथो मुद्धर्त एकस्मिन्नानागरेषु ताः स्त्रियः। यथोपयेमे भगवान् तावद्रूपधरोऽन्ययः॥ (श्रीमद्भा०१०।५९।४२)

इसी प्रकार एक ही मुहूर्तमें विविध प्रकोष्ठोंमें उन सोखह हजार राजकन्याओंसे भगवान्ने यथोचित रीतिसे विवाह किया और उन अध्यय प्रभुने जितनी राजकन्याएँ थीं उतने ही रूप धारण कर लिये; इस प्रकार अनेक स्थानोंमें एक ही कालमें उनका अनेक रूपोंमें प्रकाश उनके सर्वव्यापकत्वको भी साथ-साथ सूचित करता है।

भरे जन्मके रहस्यको देवता और महर्षि कोई नहीं जानते; क्योंकि देवता और महर्षि सब मुझसे उत्पन्न हुए हैं । मैं सबका आदि हूँं,—ऐसा वे खयं गीतामें कहते हैं; अतएव उनके इस अवतारदेहके विषयमें देवताओंकी जिज्ञासा आश्चर्यकी बात नहीं कही जा सकती। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण इत्यादि देवताओं- ह्या श्रीकृष्णचन्द्रके खरूपतत्त्वके विषयमें मोह एवं उन्हें साधारण गोपबालक मानकर उनकी परीक्षामें श्रृष्टत्त होने जाकर अन्ततः उनके असमोर्घ्व प्रभावका ज्ञान होनेपर क्षमा, याचना और स्तुति द्यार्खीमे वर्णित हुई है। भगवान् श्रीकृष्णके लीलासंवरणके समय भी देवसमूह इसी प्रकार उत्किण्टित हो उठता है—-उनका

खधामप्रयाण देखनेके लिये; किंतु जिस प्रकार साधारण मनुष्ण, मेघोंको चीरकर जाती हुई विजली आकाशमें कहाँ विलीन हो गयी, यह नहीं जान पाते, वैसे ही देवता भी श्रीभगवान् कहाँ अन्तर्हित हो गये, यह नहीं जान पाये——

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशानतं खधामनि। अविज्ञातगति कृष्णं दृदशुश्चातिविस्मिताः॥ सौदामन्या यथाऽऽकाशे यान्त्या हित्वाश्चमण्डलम्। गतिर्न लक्ष्यते मत्यस्तथा कृष्णस्य दैवतैः॥ (श्रीमद्भा० ११। ३१। ८-९)

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपने लोकामिराम श्रीविप्रहको, जो उपासकोंके ध्यान और धारणाका मङ्गलमय आधार है, अग्निदेवता-सम्बन्धी योग-धारणाके द्वारा दग्ध न करके अपने उसी श्रीविप्रहसे अपने परमधाममें प्रवेश किया—

लोकाभिरामां खतत्तुं धारणाध्यानमङ्गलम्। योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्याधामाविशत्खकम्॥ (श्रीमद्रा०११।३१।६)

महात्मा विदुरने भी 'हरिरिप तत्याज आकृतिं इयधीराः' कहकर त्रैलोक्येश्वरके किसी प्रपञ्च-कलेक्सका नहीं, अपितु जिस आकृतिसे वे दश्य-प्रपञ्चमें व्यक्त हो रहे थे, उसीको दश्यप्रपञ्चसे हटा लेनेका संकेत किया है।

अतएव श्रीभगवान्की मौतिक देहका अभाव होते हुए भी उनकी दिव्य अवतारदेहमें जो मनुष्यत्व आदिकी प्रतीति होती है, उसमें उनकी मायाशक्ति ही प्रमुख कारण है। मानवलोकमें जीवानुग्रह-कातर होकर जब वे अवतार प्रहण करते हैं, तब रावण, कंस, शिशुपाल, दुर्योधन आदिकी दृष्टिमें वे साधारण मानवसे अभिन्न प्रतीत होते हैं; किंतु अर्जुन, भीष्म, उद्भव, हनुमान् आदि उनके अनुग्रह-भाजन भक्त उसी विग्रहमें उनके सिचदानन्द-धन, अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अन्ययरूपकी प्रकाशोपलिंच करते हैं। अतएव प्रमुके खरूपमें कोई तारतम्य अथवा नानात्व न होते हुए भी जीवमात्र अपनी भावनाके विशिष्ट दर्पणमें उनका विचित्र रूपोंमें दर्शन करता है। भगवान् श्रीशंकराचार्यने श्रीमद्भगवद्गीताके 'अजोऽपि सन्' आदि स्लोकपर विचार करते हुए अवतार-देहके विषयमें अपना मत व्यक्त किया है—

'स च भगवान् ज्ञानेश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभिः सदा सम्पन्नः त्रिगुणात्मिकां मायां प्रकृति वशी-कृत्याजोऽव्ययो भूतानामीश्वरो नित्यशुद्धवुद्ध-मुकस्वभावोऽपि सन्स्वमायया देहवानिव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वल्लक्ष्यते स्वप्रयोजनाभावेऽपि भूतानुजिघृक्षया इति।'

के भगवान् ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेजसे सदा सम्पन्न रहते हुए त्रिगुणात्मिका माया—
प्रकृतिको अपने अधीन करके (जीवके समान प्रकृतिके अधीन न होकर) अज, अव्यय, सर्वभूत महेश्वर एवं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तबरूप होते हुए भी अपनी योगमायासे देहधारीके समान—जन्म लिये हुएके समान लोकानुप्रह करते हुए लक्षित होते हैं, उनके अवतारमें कोई प्रयोजन न होते हुए भी जीवमात्रपर उनकी अनुकम्पा ही इसमें प्रमुख कारण है।

इस प्रकार भगवान् वासुदेवमें भगवत्तत्वका परिपूर्णतम प्रकाश हुआ है। खयं श्रीकृष्ण उद्धवको अपनी विभूति-वर्णनके प्रसङ्गमें कहते हैं—'वासुदेवो भगवताम्' अर्थात्—'भगवान्की जितनी अभिव्यक्तियाँ हैं उनमें मैं वासुदेव हूँ।' अवधूत जडभरतके अनुसार विशुद्ध परमार्थ-रूप बाह्य-आभ्यन्तर-भेदसे रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है। वह सर्वान्तर्यामी और सर्वथा निर्विकार है; इसीकी संज्ञा 'भगवान्' है और मनीषिगण इसीको 'वासुदेव' कहते हैं।

ह्यानं विद्युद्धं परमार्थमेक-मनन्तरं त्ववहिर्वह्य सत्यम्। प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्द्संइं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति॥ (श्रीमद्भा०५।१२।११)

अतएव आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि मन-बुद्धि, हृदयको भगवद्भाव-भावित करके अपनेमें और सम्पूर्ण दश्यप्रपञ्चमें एकमात्र भगवान् वासुदेवका अनुमव किया जाय, यही भागवती दृष्टि है और विश्व-चैतन्यसे नित्ययोग प्राप्त करनेका यही एकमात्र मार्ग है एवं समस्त पुराणोंका तात्पर्यार्थ भी इसीमें प्यवसित है।

पुराणोंका मिथतार्थ

पुराण वेदोंके उपबृंहण (विस्तार) हैं। उन्होंने वेदार्थोंका स्वरूप-प्रकाश विभिन्न शैलियोंमें—ताचिक विवेचनों, प्रश्नोत्तरों आल्यानों, उपाल्यानों और कथाओं आदिकी शैलियोंमें किया है। उनमें अचिन्त्य चैतन्यकी सूक्ष्मता और व्यापकताक वर्णनके साथ उसकी विश्वव्यापिनी विभूतिमती शक्तियों और मूर्त्तप्रतिकों—मूर्तियोंमें उसी तत्त्वकी सत्ताका सुनिपुणताले वर्णन मिलता है। भगवत्तत्वका प्रकाश जैसे अवतारोंमें श्रील-शक्ति-सौन्दर्य विमण्डित होकर पूजा-अर्चा किंवा अदा-भक्ति विशय बनता हैवसे ही उसका विशद विवेचन प्रत्यक्षतः, उपदेशतः और अनुसंगतः पुराणोंमें स्थान-स्थानपर प्राप्त होता है। हों पर एक अलग बात है कि उस भगवत्तत्त्वका जो रूप प्रकृतमें वर्ण्य होता है उसीकी प्रधानता प्रतिपादित की गयी होती है यद्यपि सभी रूपोंके मूलमें एकस्वरूपकी सुरक्षा सर्वत्र है। पुराणोंकी मान्यता है कि एक परमेश्वर विविश्वरूपोंमें य्यावल यथासान अवतीर्ण होकर धर्म-संरक्षण करते हैं और विश्वन्यवस्थाकी सुचाहता स्थापित करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महिष्य पुराणोंके मूल भगवदूप हैं। तारतम्यपूर्ण अंशोंबाले अवतार उसी अचिन्त्य अंशिक्त रूप हैं जो स्वरूपतः एक है। अदिवेच हैं और भूमा किंवा सर्वव्यापक है। वह सर्विका मूल, विश्व व्यवस्थितिका सूज्यार और विश्वको अपने आपमें समेड अविविध्याद है। वस्तुतः पुराण दर्शनके व्याख्यान हैं। दर्शनका प्रतिपाद्य ही उनका मिथतार्थ है।

वैष्णवधर्ममें भगवत्तत्व

(लेखक-स्वामी श्रीशिवानन्दजी)

भारतवर्षके विभिन्न सम्प्रदायोंके विद्वान् आचार्योने ब्रह्मसूत्रके विभिन्न भाष्योंका प्रणयन कर दार्शनिक आधारपर भगवत्तरवके निरूपण और प्रतिष्ठाकी चेष्टा की है। वैण्यव आचार्योंके अन्तर्गत भी अनेक सम्प्रदाय हैं। उनके भी अप्रगण्य पण्डित तथा आचार्योंने भी ब्रह्मसूत्रभाष्य-वृत्ति आदिका प्रणयन कर ख-खसम्प्रदायके आधारशिछा-निर्माणकी चेष्टा की है।

वैण्गवसम्प्रदायके वेदान्तीवर्गके अन्तर्गत निम्नार्कानुयायी मेदामेदवादी हैं। उनके मगवत्तत्त्वका व्याख्यान
हैताहैतपरक है। श्रीरामानुजने जिस प्रकार बोधायनहितका अवलम्बन कर 'श्रीमाण्यंका प्रणयन किया है,
चतुःसनसम्प्रदायी श्रीमित्रम्वार्कने भी उसी प्रकार औडुलोमिप्रणीत वेदान्तस्त्रवृत्तिका अवलम्बन कर ब्रह्मस्त्रका
'वेदान्तपारिजात-सौरमं' नामक एक लघुव्याख्या-प्रन्थ या
हत्तिका प्रणयन किया है। निम्बार्कसम्प्रदायका वास्तविक
माष्यप्रन्थ श्रीश्रीनित्रासाचार्यरचित 'वेदान्तभौस्तुमं' है।
ये श्रीनिवासजी श्रीमित्रम्बार्कके ही शिष्य थे। यह प्रन्थ
असाधारण पाण्डित्यपूर्ण है। वेदान्ती करमीरीकृत
'कौस्तुभप्रभावृत्ति' प्रचुर विचारपूर्ण प्रन्थ है। निम्बार्कसम्प्रदायका 'परपक्षगिरिवज्ञ' भी एक पाण्डित्यपूर्ण वेदान्तप्रन्थ है। उन्होंने प्रन्थारम्भमें एक स्थानपर अपना इस
प्रकार भाव व्यक्त किया है—

'भगवान् वासुदेव पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने भ्रान्त, समिक्तिविवर्जित जीवोके हृदयमें स्वतत्त्व दृढ् करनेके छिये कृष्णद्वैपायन रूपके द्वारा परमतत्त्वप्रकाशक, समन्वय एवं अविरोधके साधनरूप इस चतुरध्यायात्मक केरान्तसूत्रका प्रकाश किया ।' श्रीमिन्नम्बार्काचार्यका विदान्तपारिजात' नामसे इसका एक व्याख्यार्थ प्रकाशित है। इसके पश्चात् शंकरावतार श्रीश्रीनिवासाचार्यने उसके एक भाष्यका प्रणयन कर उसमें प्रतिष्ठित तत्त्वकी प्रतिष्ठाका प्रयास किया है।

or the received positive scriptor

इस प्रन्थका पाठ करनेसे ज्ञात होता है कि भगवान् औडुळोमि ऋषि ही द्वैताद्वैतमतके मूळ प्रवर्तक हैं। इसमें श्रीनिम्बार्काचार्यके 'वेदान्तकौस्तुमग्के आळोचित तस्त्रका भी उल्लेख पाया जाता है। इनके मतमें तस्त्र त्रिविध हैं—चित्, अचित् और ब्रह्म। अब ये चित्, अचित् और ब्रह्म मिन्न होकर भी अमिन्न हैं—

'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वप्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म पतत्।'...

भगवत्तत्वके सम्बन्धमें यही कहा जाता है कि वह तत्त्व अचिन्त्य, अनन्त, एकान्त खामाविक, बृहत्तम-खरूप, कर्मादिका आश्रयभूत, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर, सर्वकारणखरूप, समानातिशयशून्य, सर्वव्यापक, सर्ववेदा-वेद्य श्रीकृष्णखरूप ही है। इस प्रकरणमें उल्लेख बात यह है कि बहुत-सी श्रुतियोंका उल्लेख करके भाष्यकारने परमतत्त्वके खरूपका निर्धारण करके पूर्वोक्त संज्ञाओंवाले परमतत्त्वको अभिहित किया है।

अब विशुद्ध द्वेतमत आता है। इस मतके प्रवर्तनके
प्रायः एक सहस्राब्दि बाद भारतके बंगदेशमें धर्मभावके एक नये खरूपका आविर्भाव हुआ। इसके
प्रवर्तक थे—नदियाके श्रीगौराङ्गचन्द्र या निमाईचन्द्र ।
उन्होंने प्राचीन एवं नवीन, एक एवं बहु, अनुकूछ एवं
प्रतिकूछ इत्यादि सर्वभावोंमें एक अपूर्व सामझस्यका
विधान कर वेदान्ततत्त्वकी एक सुन्दर मीमांसामें
भगवत्तत्त्वका निरूपण किया है। उनके द्वारा की गयी
वह मीमांसा अति सम्यक्ष एवं समीचीन है। उससे
पण्डितमात्र थोड़ा-बहुत परिचित हैं। इससे भिन्न आचार्य
शंकरका अद्देतवाद, श्रीरामानुजका विशिष्टाद्देतवाद

हत्यादि भी अनुधारणके योग्य हैं । श्रीगौराङ्ग महाप्रमुका प्रतिष्ठित अचिन्त्यभेदाभेदवाद भी एक विशिष्ट मत है । इस मतका दिग्दर्शक बलदेवका गोविन्दभाष्य है । प्रकृत पक्षमें श्रीगौराङ्ग महाप्रमुने अन्यान्य आचार्य-गणोंके मत लेकर अपने भाष्यका प्रणयन नहीं किया है । अवस्य उसका कुछ कारण होगा । तत्काल उक्त भाष्यके प्रणयनकी प्रयोजनीयता भी भक्त-समाजमें अनुभूत नहीं हुई । श्रीमहाप्रमुके मतमें श्रीमद्वागवत ही वेदान्तस्त्रका अकृत्रिम भाष्य है । यही या सम्भवतः उनके वेदान्त-स्त्रके भाष्यकी प्रचेष्टाके अभावका कारण । जो भी हो, श्रीमहा-प्रमुने उस अचिन्त्यभेदाभेदभावके आधारपर ही भगवत्तवकी प्रतिष्ठा की ।

गौडीय वैष्णवसमाजके खीकृत भगवत्तत्त्व श्रीवृन्दावनमें श्रीपाद सनातनादि गोखामी वर्गने अपने-अपने प्रन्थोंमें संनिविष्ट किया है । श्रीपाद श्रीजीवगोखामीने अपनी भागवतकी टीका-(क्रमसंदर्भ-) में इसे लिपिबद्ध किया है । बल्देव विद्याभूषणविरचित श्रीगोविन्द-भाष्य लघुतर, पर सुन्दर प्रन्थ है । पूर्वोक्त समयके पर्वर्ती-कालमें मान्य वैष्णवोंने एक वेदान्त-भाष्यके अभावका अनुभव किया । यहीं श्रीगोविन्दभाष्यका उद्भव हुआ । इसके सारांशरूप एक कथन प्रचलित है—इस भाष्यमें श्रीकृष्ण ही परम एवं चरम वस्तु हैं । ईश्वर, जीव, काल, कर्म एवं प्रकृति सर्वानुसार ही यह सत्य है—

हेतुत्वाद्विभुचैतन्यानन्दत्वादिगुणाश्रयात् । नित्यलक्ष्म्यादिमत्वाच कृष्णः परतमो मतः॥

मुण्डक उपनिषद्से इसका प्रमाण उद्भृत किया गया है। तदनुसार मगवान्, निखिल निगमवेद्य हैं। यही विश्वसत्य है। जीव अणु चैतन्यविशेष है, पर सत्य

और नित्य है। इन्हीं सब सत्योंके आधारपर ही मावताव प्रतिष्ठित है। श्रीकृष्णके चरणोंकी प्राप्ति ही मोक्ष है। पराभक्ति ही भगवत्तत्त्वके ज्ञानका उपाय है। इससे भिन्न, विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायोंके विभिन्न प्रन्योंमें भगवत्तव-विषयक और भी बहुत-से तत्त्व आलोचित हुए हैं।

भगवत्तत्त्वके विषयमें जानना चाहिये कि वेदाल-दर्शनका मत है-जन्माचस्य यतः। श्रीमद्भगवद्गीतामे भी कहा है — 'अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्त्या। यहाँ भी भगवत्तत्त्वके प्रतिपाच विषयकी बात है। विद्युद्धाद्वैत भाष्यमें जीवको चिद्घन कहकर अभिद्रत किया गया है । जीव अतिसूक्ष्म, परिच्छिन, चित्-प्रधान और आनन्दखरूप है । अर्थात जीव पूर्ण ब्रह्मानन्द एवं चित् है। इस मतके अनुसार ग्रह जीव एवं ब्रह्म वस्तुतः एक ही तत्त्व हैं । श्रीमत् शंकराचार्यके मायावादमें जगत् मिथ्या कहकर प्रकल्पित किया गया है । उसकी दृष्टिमें सब तत्त्व ही भगवत्तत्व है और सब कुछ भगवान्से अनन्य है । यहाँ खपक्षमें कहा गया है-भावे च उपलब्धेः।' इससे भिन्न उन्होंने अनेक श्रौत प्रमाण भी दिये हैं । शुद्धाद्वैतमें भिक्त ही परमंतत्त्व है । इसी स्थानपर विशिष्टाद्वैतवादके साथ उनका पार्थक्य है । वह पार्थक्य यह है कि विशिध-द्वैतवादीगण स्थूल और सूक्ष्म चित्-पदार्थसमूहको अचित् कहकर खीकार करते हैं, किंतु विशुद्धाद्वेतवार इन दोनों पदार्थोंको भी भगवत्तत्वके साथ अमेर कहकर ही मानता है। अन्तमें परमार्थसारका एक रलोक उद्धृत करके इस प्रबन्धका उपराहार करता हूँ -

व्यापिनमभिन्नमिन्दुं सर्वातमानं विद्युन्नानात्वम्। निरुपमपरमानन्दं यो वेद स तन्मयो भवति॥ (परमार्थनार १०)

पश्चिमकी एक उत्कट जिज्ञासा—भगवत्साक्षात्कार

(देखक--हॉ॰ भीमोतीलालजी गुत एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰)

इस बार यूरोपकी यात्राका एक मुख्य उद्देश्य था। जर्मनीकी कई धार्मिक संस्थाओंने सम्मिलित निमन्त्रण मेजा या कि मैं उनके बीच भगवत्तत्व, भगवत्वरूप तथा भगवत्साक्षात्कारके बारेमें कुछ कहूँ। वहाँ इस प्रसङ्गमें कई गोष्ठियाँ तथा प्रवचन आयोजित किये गये—मुख्यतः फेकफुर्टके पास इंगल्हाइम तथा कोलनके पास बीजलमें कार्यक्रम रखे गये और इन कार्यक्रमोंमें धार्मिक शिक्षा देनेवाले अध्यापक, अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी तथा गिरजाघरोंसे सम्बद्ध व्यक्ति बड़ी संख्यामें उपस्थित हुए।

🦥 कुछ छोगोंको यह एक आश्चर्य-सा छग सकता है, पर यूरोपके अनेक देशोंमें धार्मिक शिक्षाकी विधिवत् व्यवस्था है और ईसाईमतके प्रचलित दोनों रूपों— कैयोलिक एवं प्रोटेस्टेंटका योग्य अध्यापकोंद्वारा अध्यापन कराया जाता है, जिनसे अपेक्षा की जाती है कि वे तुल्लनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टिसे धर्मोंका अध्ययन करायेंगे और यतः भारतमें हिन्दूधर्मके अतिरिक्त बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसल्मान तथा सिख आदि धर्मोंके अनुयायी प्रचुर मात्रामें हैं अत: यह माना जाता है कि हम लोग उन्हें धर्मके बारेमें बहुत-सी बातें बता सकोंगे। दूसरे, उनका यह भी अनुमान है कि हमारे धर्मने हमें बहुत बल प्रदान किया है, संतोषकी उपलब्धि हुई है और उसने आनन्दमय जीवनकी ओर हमें अग्रसर किया है; जब कि वे भौतिक जीवनके पंकमें फँसकर असन्तोष-मिश्रित विषादके शिकार हो रहे हैं। यही कारण है कि अनेक पश्चिमी व्यक्तियोंकी दृष्टि भारतकी ओर है कि वे भी सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्दका कुछ अंश प्राप्त कर सकें।

तो उन्हें उतना ज्ञान नहीं है; पर सगुण भक्तिके भगवान्

श्रीकृष्णके पुण्यस्रह्मपसे वे बहुत आकृष्ट हुए हैं और 'हरे कृष्ण' जैसे धार्मिक आन्दोलन प्रचलित किये हैं। इस्कौनके जन्मदाता प्रभुपाद ए०सी० भक्तिवेदान्त खामीने इस ओर अधिक काम किया और न केवल नवद्वीप तथा वृन्दावनमें ही वरन् विदेशके अनेक देशोंमें इनके अनुयायी कीर्तन-पूजन करते देखे जा सकते हैं। इंगळैंडके ळंदनमें दो विशाल मन्दिर हैं जहाँके देव-दर्शनोंका सौभाग्य मुझे प्राप्त . हुआ है । अमेरिकाके न्यूयार्क, शिकागो, लांस एन्जेलेस आदि नगरोंमें भव्य ब्राँकियाँ मिलती हैं तथा नगरोंके चौराहोंपर संकीर्तन करती,वैष्णव-वेषभूषायुक्त विदेशी मण्डलियाँ देखी जा सकती हैं मैंने अमेरिकाके अनेक नगरोंमें उत्साहसे परिपूर्ण कीर्तन करती हुई ऐसी कीर्तन-मण्डलियाँ देखी हैं । आरतीके समय तो उनकी उन्मत्तता और भी अधिक हो जाती है तथा बी-पुरुष-बालक वाद्ययन्त्रोंके साथ कीर्तन करते हुए उछड-उछलकर नृत्य भी करते हैं। मुझे स्मरण आ रहा है लंदनके उस जुद्धसका जो रथयात्राके अवसरपर निकाला गया था और भगवान्की सवारी मन्दिरसे यात्रां करती हुई प्रसिद्ध स्थल रैफलगर स्क्वायर पधारी थी जहाँ दिनमर भगवान्के दर्शन होते रहे; भक्त भगवान्का कीर्तन करते रहे तथा दर्शनार्थी दर्शनोंके साथ विशुद्ध भारतीय प्रसाद—पूड़ी, हलवा, आॡ-छोलेका—प्राप्त करते रहे । प्रसाद पानेवाले व्यक्तियोंकी संख्या हजारोंमें रही होगी। इन पंक्तियोंका लेखक भी उस शोभायात्रामें शामिल हुआ था तथा इसने भी प्रसाद प्राप्त किया था। वहाँ पूजाकी पद्धति भी बड़ी विस्तृत तथा विधियुक्त है जो कृष्णके किसी भी विदेशी मन्दिरमें देखी जा सकती है। वृन्दावनमें जब कृष्ण-बल्राम-मन्दिरकी सायंकालीन आरती होती है तब उस आरतीका दर्शन एक विशेष आकर्षक होता है और अनेक छोग शामिल होते हैं तथा नृत्ययुक्त कीर्तन एवं पूजनका आनन्द लेते हैं।

पर मेरा निमन्त्रण कुछ सैद्धान्तिक पश्चोंका प्रतिपादन-हेतु था जिसमें विविध प्रन्थोंके आधारपर भगवत्तत्व, सगुण-निर्गुणका खरूप-विवेचन, नाम-जप, उपासनाके रूप, तत्त्वकी व्यापकता, खरूपका निर्णय एवं साक्षात्कार आदि शामिल थे। उनकी जिज्ञासाका खरूप उनकी प्रश्नावलीसे मिळता है, जिसका सामान्य विधिसे सार्वजनिक श्रोताको ध्यानमें रखते हुए उत्तर दिया गया था। कुछ प्रश्न उनके उत्तरोंसहित नीचे दिये जा रहे हैं—

प्रश्न-१—भगवान्के अस्तित्वके प्रति हिन्दुओंका क्या दृष्टिकोण है ! व्यक्ति, प्रकृति एवं भगवान्का पारस्परिक क्या सम्बन्ध है ! भगवान्का खरूप क्या है ! भगवान्तक पहुँचनेके क्या साधन हैं !

उत्तर—हिन्दू भगवान् के अस्तित्वमें विश्वास रखते हैं—वे ब्रह्मको सर्वव्यापी मानते हैं तथा सम्पूर्ण विश्वमें उसीका प्रसार देखते हैं। व्यक्ति और बाह्य प्रकृति सभी उसीका प्रसार, उसीके रूपका विस्तार है—एक प्रकारसे सब कुछ वही है। इस प्रश्नका उत्तर देनेके छिये हमारे ऋषि-मुनियोंने बहुत प्रयास किया है और विविध उपनिषद् तथा दर्शन इसका विश्लेग्ग करते हैं। भगवान्के खरूपका वर्णन करना शब्दोंमें सम्भव नहीं, किंतु निर्गुण-सगुण दोनों खरूपोंकी उपासना हिन्दुओंने खीकार की तथा उनका विस्तार किया । अनेक लोग अवतारोंको भी भगवान्का खरूप मानते हैं, पर अधिक छोग उसके खरूपको अगम, अगोचर, वर्णनातीत ही बताते हैं । उनतक पहुँचनेके साधनोंपर बड़े विस्तारसे विचार क्तिया गया है---- ज्ञान, कर्म, उपासना-जैसी अनेक विधियाँ हैं; और उनके भी अनेक रूप हैं। मुक्तिके भी कई रूप हैं जैसे साछोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य । जीवका चरम उद्देश्य उसमें ही छय हो जाना है और

यह शायद सायुज्य मुक्तिके द्वारा प्राप्त हो। मावान् तक पहुँचना एक अति किटन कार्य है और कोर्य साधना तथा अनेक जन्मोंकी सिद्धिपर आधारित है। (ईसाई छोग अनेक जन्मोंमें विश्वास नहीं रखते अतः जब उन्हें 'अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परांगितम् की बात कही जाती है तो वे चौकन्ने हो जाते हैं और यह बात उन्हें जमती नहीं माछम होती है)।

प्रश्न-२—ज्यक्तिका सृष्टिमें क्या महत्त्व है! आत्माकी अनेक योनियोंमें जानेसे क्या अभिप्राय है! यह कैसे होता है! क्या धार्मिक शिक्षाके द्वारा मानवका उत्थान सम्भव है! इस मौतिक संसारमें आध्यात्मिक जीवकी क्या वास्तविकता है! अनेक पीढ़ियोंसे हमें अनुभव तथा ज्ञानकी प्राप्ति किस प्रकार होती है!

उत्तर—हमारे यहाँ सभी जीवधारी समान हैं। क्योंकि उन सभीमें उसी चेतन-तत्त्वका आभास है। ईसाईमतवाले मानवको सृष्टिकी उत्तम कृति मानते हैं और पशुपक्षीको निम्न कोटिका । किंतु हमारे अनुसार मानवका ही नहीं, जीवमात्रका सृष्टिमें महत्त है तथा सभी उस उद्देश्यकी पूर्तिमें छग सकते हैं जो जीवका धर्म है । हमलोग पुनर्जन्ममें विश्वास करते हैं और एक योनिसे दूसरी योनिमें जानेकी एक प्रिक्तया है । 'मरना' हमारे यहाँ कोई दुःखका विषय नहीं; क्योंकि वह तो जीर्ण शरीरको एक नवीन शरीर प्राप्त करनेकी किया है। यही कारण है कि हमार जीवनमें सिद्धान्ततः अवसाद और खेदके छिं स्थान नहीं है। एक योनिसे दूसरी योनिमें जाना तो सिद्ध है, पर यह किया किस प्रकार सम्पादित होती है इसे जानना एक कठिन विषय है। और, अनेक पुराणोंमें इसपर विचार किया गया है। धार्मिक शिक्ष मानवके उत्थानमें अवस्य सहायक होगी; क्योंकि हैं

वृतियोंके सुधार-परिष्कारमें विश्वास रखते हैं, जिन्हें धार्मिक शिक्षा बलप्रदान करती है। पर दुर्भाग्य है कि हमारे यहाँ विधिवत् धार्मिक शिक्षा स्कूल-कालेजोंमें नहीं दी जाती। यह ठीक है कि आजके भीतिक जीवनमें धार्धात्मक जीवन अटपटा-सा लगता है, पर हमारे यहाँ दोनों ही प्रकार अपना स्थान रखते हैं और हम आध्यात्मिक जीवनको मानवके लिये आवश्यक समझते हैं। हमारी आश्रम-व्यवस्थामें भी इसके लिये सान रखा गया था और मानवका वास्तविक उत्थान तथा जीवनको परम उपलब्धि—आध्यात्मिक जीवनके विना सम्भव नहीं—इसीमें भगवत्तत्त्वका निरूपण भी शामिल है।

प्रश्न—३—वर्णन्यवस्थाके अर्थ, उद्गम तथा बावहारिकतापर प्रकाश डालें।

उत्तर-वर्णाश्रम-व्यवस्था हिन्दू धर्मका अंग है। शाश्रममें व्यक्ति-विशेषकी जीवितावस्थाका विवरण है त्या वर्ण-व्यवस्था समाजकी क्रिया-प्रणालीको व्यवस्थित करनेकी कला है । आश्रमोंद्वारा जीवनको परिपूर्ण बनाया जाता है और वर्णोद्वारा समाजको पूर्णता प्रदान की जाती है। 'वर्ण' के रंग, रूप, श्रेणी आदि अनेक अर्थ हैं, इसका उद्गम अति प्राचीन है; क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णोंका विवरण-व्यवस्था अति प्राचीन कालसे उपलब्ध है। 'वर्ण'का आत्म कैसे हुआ ! यह एक विवादप्रस्त प्रश्न है। उछ इसे जन्मजात बताते हैं, कुछ इसे ब्रह्मके विविध अंगोंका प्रतिनिधित्व करते मानते हैं और कुछ इसे कर्मानुरूप मानते हैं। वर्ण अथवा जातिकी वर्तमान अवस्था अपनी प्राचीन परम्परा खोती जा रही है; पर समें संदेह नहीं कि वर्णव्यवस्थासे सामाजिक जीवनको व्यवसा प्राप्त हुई थी और समाजका क्रिया-कराप वैक चलता था।

प्रश्न-४—क्या भगवान्का साक्षात्कार किया जा सकता है ! किस कियासे यह उपलब्धि हो सकती है ! भारतमें भगवान्को जाननेवाले व्यक्ति क्या हमें भगवान्का दर्शन करा सकते हैं !

उत्तर——भगवत्साक्षात्कार भारतीय आध्यात्मिकताका मुख्य ध्येय रहा है, पर यह किसी व्यक्तिका दर्शन नहीं हो सकता; इस दर्शनमें कोई रूप सामने नहीं आता; क्योंकि भगवान्का कोई निर्धारित रूप नहीं है । वे तो सर्वत्र व्याप्त हैं—हममें और आपमें भी हैं; जब उनका रूप नहीं तो दर्शन कैसे सम्भव होगा । हाँ, उनका अनुभव, मानसिक आभास और सूक्ष्म साक्षात्कार सम्भव है, पर उनका वर्णन नहीं किया जा सकता; वे तो वर्णनसे परे हैं— जिनके रूप-रंग नहीं उनका वर्णन कैसा । वे तो अनुभवगम्य हैं जो अनेक जन्मोंकी साधनासे प्राप्त होते हैं । उनका दर्शन कोई भी व्यक्ति किसीको कैसे करा सकता है—चाहे वह अपनेको भगवान् कहे अथवा कितना ही पहुँचा हुआ महापुरुष । भगवत्साक्षात्कार व्यक्तिका अपना अनुभव हो सकता है और इसके छिये निश्चय ही कठिन साधना अपेक्षित है। यह कार्य इतना आसान या इसी जीवनमें सम्पन होनेवाला नहीं है—बहुत ही दु-फर कार्य है और इसके लिये अच्छे गुरुके सान्निष्यमें गहन-साधना अपेक्षित है।

पश्चिमका धार्मिक समाज हमारे धर्मसे प्रेरणा प्राप्त करना चाहता है। इसमें संदेह नहीं कि हमारे ऋषि-मुनियों, पित्र प्रन्थों, धार्मिक मान्यताओं एवं आध्यास्मिक विचारकोंने जिस खस्थ परम्पराक्षा निर्माण किया उसमें पश्चिमके छोगोंकी बहुत रुचि है और वे यथा-सम्भव उस मगवत्तत्त्वको भी जानना चाहते हैं जिसमें भगवान्के खक्रप एवं उनका साक्षात्कार सम्मिछत है।

ब्रह्मनिष्ठ याज्ञवल्क्यका गार्गीको भगवत्तत्त्वका उपदेश

एक समय प्रसिद्ध विदेहराज जनकने बहुदक्षिण नामक बड़ा यज्ञ किया । यज्ञमें कुरु और पाञ्चाल आदि देशोंके बहुत-से ब्राह्मण एकत्र हुए । जनक राजाने ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी । अन्तमें 'इन ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेता कौन हैं -- यह जाननेकी इच्छासे जनकने अपनी गोशालामेंसे एक हजार गायें निकालकर प्रत्येक गायके दोनों सींगोंमें दस-दस सोनेकी मुहरें बाँध दी और ब्राह्मणोंसे कहा कि—'हे पूजनीय ब्राह्मणो ! भाप लोगोंमें जो वेदोंके पूर्ण पण्डित हों, वे इन गायोंको अपने घर ले जायँ। परन्तु किसी भी ब्राह्मणका उन्हें ले जानेका साहस नहीं हुआ । अन्तमें महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने शिष्य ब्रह्मचारीसे कहा कि —'हे प्रियदर्शन! हे सामश्रवः!(सामवेदके अध्ययन करनेवाले!) इन गार्योको अपने घर ले चल । गुरुके इन वचनोंको सुनकर शिष्य उन गौओंको हाँककर गुरुके घरकी ओर ले जाने लगा। यह देखकर सभामें बैठे हुए ब्राह्मणोंको इस बातपर बड़ा क्रोध हुआ कि हमछोगों के सामने भी ब्रह्मिष्ठ हूँ - ऐसा याज्ञवल्क्य कैसे कह सकता है ?

महाराज जनकके होता ऋत्विक् अश्वलने आगे बढ़कर याज्ञवल्क्यसे पूछा—'हे याज्ञवल्क्य ! क्या तुम्हीं हम सबमें ब्रह्मिष्ठ हो ?' यद्यपि ये शब्द अपमान-जनक थे, परन्तु इस उद्धतपनसे कुछ भी विकारको न प्राप्त होकर याज्ञवल्क्यने नम्रताके साथ उत्तर दिया—

'नमो वयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मों गोकामा एव वयं साः।'

'माई ! ब्रह्मिष्ठको तो हम नमस्कार करते हैं । हमें तो गौओंकी चाह है । इसीलिये हमने गौएँ ली हैं ।

व्रह्मनिष्ठामिमानी अश्वल याज्ञवल्क्यको नीचा दिखानेके लिये उनसे एकके बाद एक बड़े-बड़े जटिल प्रश्न पूछने लगा। याज्ञवल्क्य सबका उत्तर तुरंत ही देते गये। इसके बाद ऋतमागपुत्र आतमाग, ल्ह्यपुत्र मुज्यु, चक्रपुत्र उषस्त, कुत्रीतकपुत्र कहोल, वचक्तुपुत्री गां और अरुणपुत्र उदालकने कई गम्भीर फ्रन कि और याज्ञवल्क्यसे तुरन्त उनका उत्तर पाया। सव ब्राह्मणे थक गये, तब अन्तमें गार्गीने आगे बढ़कर सब ब्राह्मणें कहा—'हे पूज्य ब्राह्मणों! यदि आपकी अनुमित होते में इस याज्ञवल्क्यसे दो प्रश्न फिर करना चाहती है। यदि उन दो प्रश्नोंका उत्तर यह दे सका तो फिर व यह मान लूँगी कि आपमेंसे कोई भी इस ब्रह्मलादीन नहीं जीत सकेंगे। ब्राह्मणोंने कहा, भागिं! पृष्ठ।

गार्गीने गम्भीर खरसे कहा—'हे याज्ञवल्य! की वीरपुत्र विदेहराज या काशिराज उतारी हुई बीक्षे धनुषपर फिरसे डोरी चढ़ाकर शत्रुको अत्यन पीड़ देनेवाले दो बाणोंको हाथमें लेकर शत्रुके सामने खड़ा होता है, उसी प्रकार मैं दो प्रक्रोंको लेकर तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। तुम यदि ब्रह्मवेत्ता हो तो इन प्रक्रोंका मुझे उत्तर दो।' याज्ञवल्क्यने कहा—'गार्गि! पृष्ठ!'

गार्गी बोळी—'हे याज्ञवल्क्य! जो ब्रह्माण्डसे क्या है, जो ब्रह्माण्डसे नीचे है और जो इस खाँ और पृथिवीके बीचमें स्थित है, तथा जो भूत, वर्तमान और मविष्यरूप है, जैसा कि शास्त्र जाननेवाले लोग कहते हैं, वह 'सूत्रात्मा' (जगद्रूप सूत्र) किसमें ओतप्रोत है!

याञ्चवल्क्यने कहा—'हे गार्गि! जो खर्गसे उप है, जो पृथिवीसे नीचे है और जो खर्ग और पृथिविक बीचमें स्थित है, तथा जो मृत, वर्तमान और भविष्यस्प है, जिसे शास्त्रवेत्ता अद्धय कहते हैं वह व्याकृत (विकृतिक) प्राप्त कार्यरूप स्थूल) जगद्रू प्रमुत्र अन्तर्यामिस्प आकाशमें ओत-प्रोत है।'

इस उत्तरको सुनकर गार्गीने कहा—'हे याइवल्य! तुमने मेरे इस प्रश्नका ऐसा स्पष्ट उत्तर दिया, इसी लिये तुम्हें नमस्कार है । अब दूसरे प्रश्नके लिये तैयार हो जाओ ।'

याज्ञवल्क्यने सरलतासे कहा, 'गार्गि ! पूछ ।' गार्गीने एक बार उसी प्रश्नोत्तरको फिरसे दोहराकर याज्ञवल्क्यसे कहा—'हे याज्ञवल्क्य ! तुम कहते हो

बाकृत जगद्रू ए सूत्रात्मा तीनों कालोंमें सर्वदा अन्तर्यामिरूप आकाशमें ओतप्रोत है तो वह आकाश किसमें ओतप्रोत है ?

याश्चवरक्यने कहा—'हें गार्गि! अन्तर्यामिरूप अव्याश्वतका अधिष्ठान यही वह अक्षर है, इस अविनाशी शुद्ध ब्रह्मका वर्णन ब्रह्मवेत्तालोग इस प्रकार करते हैं—यह स्थूलसे भिन्न, सूक्ष्मसे भिन्न, हस्वसे भिन्न, रीवसे भिन्न, लोहितसे भिन्न, स्नेहसे (चिकनाहटसे) भिन्न, प्रकाशसे भिन्न, अन्धकारसे भिन्न, वायुसे भिन्न, आकाशसे भिन्न, संगरहित, रसरहित, गन्धरहित, चक्षुरहित, श्रीत्ररहित, वाणीरहित, मनरहित, तेजरहित, प्राणरहित, मुखरहित, परिणामरहित, छिद्धरहित और देश, काल, वस्तु आदि परिच्छेदसे रहित सर्वन्यापी एवं अपरिच्छिन्न है; वह कुछ भी खाता नहीं और उसे भी कोई खाता नहीं, इस

प्रकार वह सब विशेषणोंसे रहित एक ही अद्वितीय है।

इस प्रकार समस्त विशेषणोंका ब्रह्ममें निषेध करके अब उसका नियन्तापन बतलाते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं—'हे गार्गि! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञामें यह सूर्य और चन्द्रमा नियमितरूपसे वर्तते हैं। हे गार्गि! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञासे ही स्वर्ग और पृथिवी हाथमें रिखे हुए पाषाणकी तरह मर्यादामें रहते हैं। हे गार्गि! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञामें रहकर ही निमेष, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर इस कालके अवयवोंकी गणना करनेवाले सेवककी तरह नियमितरूपसे आते-जाते हैं। हे गार्गि! इस प्रसिद्ध अक्षरके शासनमें किन्नर ही पूर्ववाहिनी गङ्गा आदि नदियाँ स्वेत हिमालय

आदि पहाड़ोंसे निकलकर समुद्रकी ओर बहती हैं तथा पश्चिमवाहिनी सिन्धु आदि और अन्यान्य दिशाओंकी ओर बहती हुई दूसरी नदियाँ इसी अक्षरके नियन्त्रणमें आजतक वैसे ही बहती हैं। हे गार्गि! इस प्रसिद्ध अक्षरकी आज्ञासे मनुष्य दाताओंकी प्रशंसा करते हैं और इन्द्रादि देवगण, यजमान और पितृगण दर्वीके अनुगत हैं अर्थात् देवता यजमानद्वारा किये हुए यज्ञसे और पितृगण उनके लिये किये जानेवाले होममें घी डालनेकी चमचीसे यानी उस होमसे पुष्ट होते हैं।

इसके बाद याज्ञवल्क्य फिर बोले—

'हे गार्गि! इस अक्षरको बिना जाने यदि कोई पुरुष इस लोकमें हजारों वर्षोतक देवताओंको उद्देश्य करके यज्ञ करता है, ब्रतादि तप करता है तो उस कर्मका फल अन्तवाला होता है; अर्थात् फल देकर वह कर्म नष्ट हो जाता है—वह अक्षय परम कल्याणको प्राप्त नहीं होता।

हे गार्गि! जो पुरुष इस अक्षरको नहीं जानकर (भगवत्प्राप्ति होनेसे पूर्व ही) इस छोकसे मृत्युको प्राप्त होता है, वह (वेचारा) कृपण (दीन, दयाके योग्य) है और हे गार्गि! जो इस अक्षरको जानकर इस छोकमें मरणको प्राप्त होता है वह ब्राह्मण (ब्रह्मिवद्) मुक्त हो जाता है।

अब याज्ञवल्क्य ब्रह्मका उपाधिरहित खरूप बतलाते हुए कहते हैं—'हे गार्गि! यह प्रसिद्ध अक्षर किसीको नहीं दीखता, पर यह सबको देखता है। इसकी आवाज कानोंसे कोई नहीं सुन सकता, परंतु यह सबकी सुनता है। यह किसीकी धारणामें नहीं आता, परंतु यही सबका मन्ता है। कोई इसे बुद्धिसे नहीं जान सकता, परंतु यही सबका विज्ञाता (जाननेवाला) है। इससे मिन द्रष्टा नहीं है, इससे मिन श्रोता नहीं है, इससे मिन कोई मन्ता नहीं है और इससे मिन कोई विज्ञाता

नहीं है । हे गार्गि ! वह अव्याकृत आकाश इसी प्रसिद्ध अक्षर अविनाशी ब्रह्ममें ही ओतप्रोत है ।'

महर्षि याज्ञवल्क्यके इस विलक्षण व्याख्यानको सुनकर गार्गी सन्तुष्ट हो गयी और प्रमुदित होकर ब्राह्मणोंसे कहने लगी कि—'हे पूज्य ब्राह्मणों! याज्ञवल्क्यको नमस्कार करो। ब्रह्मसम्बन्धी विवादमें इनको कोई भी नहीं हरा सकता। इनकी पराजय मनकी कल्पनामें भी नहीं आ सकती। इतना कहकर गार्गी चुप हो गयी।

इसके बाद शकलके पुत्र शाकल्य या विदग्धने इ याज्ञवल्क्यसे कई इधर-उधरके प्रश्न किये । अन्तमें अन्तमें याज्ञवल्क्यने उससे कहा कि 'अब मैं तुज्ञसे एक बात प्रमाण

पूछता हूँ; त् यदि उसका उत्तर नहीं दे सकेगा तो के मस्तक कट जायगा। शाकल्य उत्तर नहीं दे सका को उसका मस्तक धड़से अलग हो गया। याक्कलक ज्ञान और तेजको देखकर सारी समा चिकत हो गयी। तदनन्तर याज्ञवलक्यने फिर ब्राह्मणोंसे कहा— 'तुमलोगोंमेंसे कोई एक या सब मिलकर मुझसे कुछ पूजा हो तो पूछो; परन्तु किसीने कुछ भी नहीं पूछा। जो ओर याज्ञवलक्यकी जयध्विन होने लगी। विज्ञानानन्तरे याज्ञवलक्य और गार्गीका चेहरा चमक रहा था।

इसी ब्रह्मको यथार्थरूपसे जाननेकी चेष्टा करना और अन्तमें जान लेना मनुष्य-जन्मकी सफलताका एकमा प्रमाण है। (बृहदारण्यकोपनिषद्के आधारणः)

ब्रह्म क्या है ?

गर्ग-गोत्रमें उत्पन्न बलाकाके पुत्र बालाकि नामके एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन तो किया ही था, वे वेदोंके अच्छे वक्ता भी थे। उन दिनों संसारमें सब ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। वे उशीनर देशके निवासी थे, परंतु सदा विचरण करनेके कारण कभी मत्स्य देशमें, कभी कुरु-पाध्वालमें और कभी काशी तथा मिथिलामें उपस्थित रहते थे। इस प्रकार वे सुप्रसिद्ध गार्ग्य (बालाकि) एक दिन काशीके सुप्रसिद्ध विद्वान् राजा अजातशत्रुके पास गये और अमिमानपूर्वक बोले—'राजन्! आज मैं तुम्हें ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करूँगा।' इसपर राजा अजातशत्रुने कहा—'आपकी इस बातपर हमने आपको एक सहस्र गौएँ दीं। आज आपने हमारा गौरव राजा जनकके समान कर दिया; अतः आप इन्हें स्वीकार करके हमें ब्रह्मतत्त्वका उपदेश शीष्ठ करें।'

इसपर गार्ग्य बालाकिले कहा 'राजन् ! यह जो स्पमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मबुद्धिसे

उपासना करता हूँ। यह सुनकर प्रसिद्ध राजा अजातशक्ते कहा— 'नहीं, नहीं, इस विषयमें आप संवाद न करें। निश्चय ही यह सबसे महान् ग्रुक्ताम्बरधारी तथा सर्वोच्चस्थितिमें स्थित सबका मस्तक है। मैं इसकी हरी प्रकार उपासना करता हूँ। इस प्रकार उपासना करतेबाब कोई दूसरा मनुष्य भी सबसे ऊँची स्थितिमें स्थित हो जाता है।'

तव गार्ग्य बालाकि पुनः बोले—'यह जो चन्द्रमण्डलें अन्तर्यामी पुरुष है, मैं इसकी ब्रह्मरूपसे उपासना कर्ता हूँ।' यह सुनकर अजातरात्रुने कहा—'नहीं, नहीं, हैं विषयमें भी आप संवाद न करें। यह सोम राजा है औ अन्नका आत्मा है। इसकी इस प्रकार उपासना करनेवाला व्यक्ति मुझ-जैसा ही अन्तराशिसे सम्पन ही जाता है।'

अब वे गार्ग्य बोले—'यह जो विद्युमारहरूं अन्तर्यामी पुरुष है, इसकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना कर्ण हूँ।' अजातरात्रुने इसपर भी कहा कि जहीं, ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषयमें भी आप संवाद न करें, यह तेजकी आत्मा है। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह तेजस्वी हो जाता है।

इसी प्रकार गार्ग्य क्रमशः मेघ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दर्पण, प्रतिष्वनि, पद्ध्वनि, छायामय पुरुष, शरीरान्तर्वर्ती पुरुष, प्राण तथा उभयनेत्रान्तर्गत पुरुषको ब्रह्म बतलाते गये और अजातशञ्जने इन सबको ब्रह्मका अङ्ग तथा ब्रह्मको इनका अङ्गी सिद्ध किया। अन्तमें हारकर बालांकिने चुप्पी साध ली और राजा अजातशञ्जको अपना गुरु स्वीकार कर उनके सामने समिधा लेकर वे शिष्यभावसे उपस्थित हुए।

इसपर राजा अजातशत्रुने कहा—'यदि क्षत्रिय ब्राह्मणको शिष्य बनाये तो बात विपरीत हो जायगी, अतः एकान्तमें चिलये, हम आपको ब्रह्मका ज्ञान करायेंगे।' यों कहकर वे बालािकको एक सोये हुए व्यक्तिके पास ले गये और उसे 'ओ ब्रह्मन्! ओ पाण्ड्रवास ! ओ सोमराज ! इत्यादि सम्बोधनोंसे पुकारने लगे। पर यह पुरुष चुपचाप सोया ही रहा। तब उसे दोनों हाथोंसे दबाकर जगाया। अब वह जगा। तदनन्तर राजाने बालािकसे पूला—'बालाके! यह जो विज्ञानमय पुरुष है, जब सोया हुआ था, तब कहाँ या और अब यह कहाँसे आ गया ! किंतु गार्ग्य यह कुछ न जान सके।

अजातरात्रुने कहा—'हिता नामसे प्रसिद्ध बहुत-सी नाड़ियाँ हैं। ये हृदयकमलसे सम्बद्ध हैं और वहींसे निकलकर सम्पूर्ण रारीरमें फैली हुई हैं। यह पुरुप सोते समय उन्हीं नाड़ियोंमें स्थित रहता है। जैसे क्षुरधानमें छूरा (अस्त्र्रा) रखा रहता है, उसी प्रकार रारीरान्तर्गत हृदयकमलमें इस परम पुरुष परमात्माकी उपलब्धि होती है। वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ अनुगत सेवककी भाँति उसका अनुसरण करती हैं। इसके सो जानेपर ये सारी इन्द्रियाँ प्राणमें तथा प्राण इस आत्मामें लीन एकीमावको प्राप्त हो जाता है।

'यही आत्मतत्त्व है। जबतक इन्द्रको इस आत्मतत्त्व-का ज्ञान न था, तबतक ने असुरोंसे पराजित होते रहे; किंतु जब ने इस रहस्यको जान गये, तब असुरोंको पराजित कर सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ हो गये; ने खर्गका राज्य तथा त्रिभुवनका आधिपत्य पा गये। इसी प्रकार जो विद्वान् इस आत्मतत्त्वको जान लेता है, उसके सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे खराज्य, प्रभुत्व तथा श्रेष्ठत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

—जा० श० (बृहदारण्यक० २। १, कोषीतिकबाद्याणोपनिषद्))

आत्मज्ञानीकी मुक्ति

"आत्मवित् मंसारं तीर्त्वा ब्रह्मानन्दिमहैव प्राप्नोति । 'तरित शोकमात्मवित्, 'एको देवः सर्वभूतेषु गृढः', 'भिद्यते इदग्रन्थिः इत्यादिश्रवणात् । ज्ञानिदेहः काश्यां चाण्डाल-वाटिकायां वा पतित तथापि ज्ञानी मुक्तः सिन्चदानन्दरूपः इतायां भवति । तथा च समृतो'—

तजुत्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा । ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥''

आत्मज्ञानी संसारको तरकर यहीं ब्रह्मानन्दको प्राप्त होता है । शास्त्रोंमें कहा है कि 'आत्मज्ञानो सब शोकोंको आत्मज्ञानी संसारको तरकर यहीं ब्रह्मानन्दको प्राप्त हैं। 'आत्मज्ञानसे हृदयकी प्रन्थि खुल जातो हैं। ज्ञानीकी देह तर जाता है, 'एक ही आत्मदेव सब भूतोंमें व्यापक हैं। 'आत्मज्ञानसे हृदयकी प्रन्थि खुल जातो हैं। समृतिमें काशीमें अथवा चाण्डालके घरमें छूट जाय तो भी ज्ञानी सन्विदानन्दरूप होकर मुक्त होता हुआ कृतार्थ होता है । समृतिमें कहा है कि 'ज्ञानी काशीमें शरीर-त्याग करें, चाहे चाण्डालके घरमें शरीर-त्याग करें, वह ज्ञान-प्राप्ति होनेके समयमें कहा है कि 'ज्ञानी काशीमें शरीर-त्याग करें, चाहे चाण्डालके घरमें शरीर-त्याग करें, वह ज्ञान-प्राप्ति होनेके समयमें कहा है कि 'ज्ञानी काशीमें शरीर-त्याग करें, चाहे चाण्डालके घरमें शरीर-त्याग करें, वह ज्ञान-प्राप्ति होनेके समयमें कहा है कि 'ज्ञानी काशीमें शरीर-त्याग करें, चाहे चाण्डालके घरमें शरीर-त्याग करें, वह ज्ञान-प्राप्ति होनेके समयमें कहा है कि 'ज्ञानी काशीमें शरीर-त्याग करें, चाहे चाण्डालके घरमें शरीर-त्याग करें, वह ज्ञान-प्राप्ति होनेके समयमें कहा है कि 'ज्ञानी काशीमें शरीर-त्याग करें, चाहे चाण्डालके घरमें शरीर-त्याग करें, वह ज्ञान-प्राप्ति होनेके समयमें कहा है विगताश्य होकर मुक्ति होता है ।

परम गूढ परमात्मतत्त्व

एक बार उपमन्युके पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष-पुत्र सत्ययज्ञ, मल्लिब-पौत्र इन्द्रचुम्न, शर्कराक्षके पुत्र जन और अश्वतराश्वके पुत्र बुडिल—ये महागृहस्य और श्रोत्रिय एकत्र होकर आपसमें आत्मा और ब्रह्मके सम्बन्धमें विचार-विमर्श कर रहे थे। पर जब वे किसी ठीक निर्णयपर न पहुँचे, तब अरुणके पुत्र उद्दालकके पास जाकर इस रहस्यको समझनेका निश्चय किया।

उद्दालकने जब उन्हें दूरसे ही आते देखा, तभी उनका अभिप्राय समझ लिया और विचारा—'इसका ठीक-ठीक निर्णय तो मैं कर नहीं सकता, अतएव इन्हें राजा केक्यके पुत्र अश्वपतिके पास भेजना चाहिये।' उसने उनके आनेपर कहा—'भगवन्! इस वैश्वानर आत्माको अश्वपति ही अच्छी तरह जानते हैं, चलिये, इमलोग उन्हींके पास चलें।' सब तैयार हो गये और राजा अश्वपतिके यहाँ पधारे।

राजाने सभी ऋषियोंके सत्कारका अलग-अलग प्रबन्ध किया । दूसरे दिन प्रातःकाल उसने उनके सामने बहुत बड़ी अर्थराशि सेवामें रखी; परंतु उन्होंने उसका स्पर्शतक नहीं किया । राजाने सोचा— 'ज्ञात होता है, ये मुझे अधर्मी अथवा दुराचारी समझ रहे हैं, इसीलिये इस धनको दूषित समझकर नहीं प्रहण करते । अतएव उसने कहा—'न तो मेरे राज्यमें कोई चोर है, न कोई कृपण, न मद्यपायी (शरावी)। हमारे यहाँ सभी ब्राह्मण अग्निहोत्री तथा विद्वान् है। कोई व्यभिचारी पुरुष भी मेरे देशमें नहीं है, और जब पुरुष ही व्यभिचारी नहीं हैं, तब स्त्री तो व्यभिचारिणी होंगी ही कहाँसे ?' अतएव मेरे धनमें भी कोई दोप नहीं है। * ऋषियोंने इसका कोई भी उत्तर नहीं दिया।

राजाने सोचा—'थोड़ा धन देखकर ये खीकार नहीं करते होंगे।' अतएव उसने पुनः कहा— 'भगवन्! मैं एक यज्ञका आरम्भ कर रहा हूँ, उसमें प्रत्येक ऋत्विक्को जितना धन दूँगा, उतना ही आपमेंसे प्रत्येकको दूँगा।'

राजाकी बात सुनकर ऋषियोंने कहा—'राजन्! मनुष्य जिस प्रयोजनसे जहाँ जाता है, उसका बही प्रयोजन पूरा करना चाहिये। हमलोग आपके पार धनके लिये नहीं, अपितु वैश्वानर-आत्माके सम्बच्धे ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आये हैं।' राजाने कहा— 'इसका उत्तर मैं कल प्रातःकाल दूँगा।'

दूसरे दिन पूर्वाह्ममें वे हाथमें समिधा लेकर राजाके पास गये और राजाने उन्हें बतलाया कि यह समस्त विश्व मगवत्स्वरूप है तथा आत्मा एवं परब्रह्ममें सरूपतः कोई मेद नहीं है।

(छान्दोग्य० उपनि०)

चेतन परमात्माकी सर्वात्मता

'वह चेतन परमात्मा ही अपने संकल्पसे आकाश आदि पाँच भूतों, शब्दादि पाँच विषयों, प्राणापानादि पाँच प्राणों और देश-कालके रूपमें परिणत होता है। सिचदानन्दधन ब्रह्म ही नारायण होकर समुद्रमें शयन करता है, ब्रह्मा होकर ब्रह्मलों क्यानिस्थित रहता है, हिमालय पर्वतपर पार्वतीके सिंहत महादेवजीका रूप धारण कर निवास करता है और वेकुण्डमें देवश्रेष्ठ विष्णुका रूप धारण कर रहता है। वह परमात्मा ही सूर्य बनकर दिवसका निर्माण करता है मेघ वनकर बहुता है। सबकी आत्मा, सर्वत्र व्यापक एवं अपनी समस्त संकल्पशक्तिके प्रभावसे सर्ववस्थ होनेके कारण वह चिन्मय ब्रह्म जगत्-रूप हो जाता है।

न में स्तेनो जनपदे न कद्यों न मद्यपः । नानाहिताग्निर्नायज्वा न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।

अश्विनीकुमारोंको ब्रह्मविद्या या भगवतत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति

अश्विनीकुमार देवलोकके चिकित्सक हैं । इन्होंने देव अथर्वण ऋषिके शिष्य दध्यङ् अथर्वण ऋषिसे वेदाध्ययन किया था । दध्यङ् ऋषि बसज्ञानी थे, परंतु उन्होंने वैराग्यादि साधनोंके अभावमें अश्विनीकुमारोंको अन्धिकारी समझकर इन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं किया था। विद्याके अभिमानमें एक समय अश्विनी-कुमारोंने इन्द्रका अपमान किया । इन्द्रने इन्हें यज्ञभागसे बहिष्कृत कर दिया । तबसे इनको किसी भी यज्ञमें भाग मिलना वंद हो गया। इन्होंने नाराज होकर गुरु दध्यङ् ऋषिसे इन्द्रसे लड़कर उन्हें जीतने अथवा ओषि आदिके द्वारा उनका विनाश करनेकी आज्ञा चाही। दध्यङ् ऋषि महान् पुरुष थे; अतः उन्होंने काम-क्रोधादिकी निन्दा करते हुए अश्विनीकुमारोंको अन्यान्य उपायोंसे सफलता प्राप्त करनेकी आज्ञा दी और यह कहा कि तुमलोग यदि इदयके अभिमान, काम-क्रोधादि दोषोंसे रहित और वैराग्ययुक्त होकर मुझसे पूछोगे तो मैं तुम्हें अधिकारी पाकर दुर्लभ ब्रह्मविद्याका उपदेश करूँगा । पश्चात् गुरुकी आज्ञासे अश्विनीकुमारोंने च्यवन ऋषिके नेत्र अच्छे कर दिये और च्यवनजीने अपने तपोबलसे इन्हें यज्ञमें अधिकार दिलवा दिया । इस प्रकार बिना ही छड़ाईके अश्विनीकुमारोंका मनोरथ सिद्ध होगया । इन्हें ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेका अधिकार भी हो गया।

एक समय उन्हीं दध्यङ् ऋषिके आश्रममें इन्द्र आये। अतिथिवत्सल ऋषिने इन्द्रसे कहा कि 'आप मेरे अतिथि हैं, जो कुछ कहिये सो मैं कहाँ।' इन्द्रने कहा—'मुझे ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये।' दध्यङ् ऋषि दुविधामें पड़ गये। वचन देकर नहीं करते हैं तो वाणी असत्य होती है और उपदेश देते हैं तो यह अनुचित होता है; क्योंकि उपदेशके योग्य अधिकारी इन्द्र हैं नहीं। आखिर, उन्होंने वचनको सत्य रखनेके लिये भलीमाँति ब्रह्मविद्याका उपदेश करते समय ऋषिने प्रसंगवश मोगोंकी निन्दा की, और मोगदृष्टिसे इन्द्रको और एक

कुत्तेको एक-सा सिद्ध किया । इन्द्र ब्रह्मविद्याके अधिकारी तो थे ही नहीं, खर्गादि भोगोंकी निन्दा धुनकर उन्हें क्रोध आ गया । उन्होंने दध्यङ् ऋषिपर कई तरहसे संदेह करके निन्दा, शाप और हत्याके डरसे उन्हें मारनेकी इच्छा तो छोड़ दी, परंतु उनसे यह कहा कि 'यदि आप इस ब्रह्मविद्याका उपदेश किसी दूसरेको करेंगे तो मैं उसी क्षण वज्रसे आपका सिर उतार छूँगा।' अनिधकारीको उपदेश देना कितना अशोभनीय हो गया! इसिछिये शास्त्रोंने पात्रतापर विशेष जोर दिया है। भोगाभिनिवेशी ब्रह्मविद्याका अधिकारी नहीं हो सकता।

क्षमाशील ऋषिने शान्त हृदयसे इन्द्रकी बात सुनकर बिना किसी क्षोभ या क्षोधके कहा—'अच्छी बात है, हम किसीको उपदेश करें तब सिर उतार लेना।' इस बातको सुनकर इन्द्र शान्त होकर स्वर्गको छैट गये। क्षमा और शान्तिका प्रभाव अच्छा ही होता है।

कुछ दिनों बाद अश्वनीकुमारोंने वैराग्यादि साधनोंसे सम्पन हो करके ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये गुरुके ब्रह्मविद्याका उपदेश उपस्थित होकर करनेके लिये प्रार्थना की । इसपर सत्यपरायण दथ्यह्ने सोचा कि 'इनको उपदेश न देनेसे मेरा वचन असत्य होगा और उपदेश करनेपर इन्द्र मेरा सिर उतार लेंगे । वचन असत्य होनेकी अपेक्षा मर जाना उत्तम है । प्रतिज्ञा-भङ्ग और असत्यका जो महान् दोष होता है उसके सामने मृत्यु क्या चीज है । शरीरका नाश तो एक दिन होगा ही ।' यह विचारकर उन्होंने उपदेश देनेका निश्चय कर लिया और अधिनीकुमारोंको इन्द्रके साथ जो बातचीत हुई थी वह कहकर सुना दी। अश्वनीकुमारोंने पहले तो कहा कि—'भगवन्! आप हम छोगोंको अब कैसे उपदेश देंगे । क्या आपको इन्द्रके वज़से मरनेका डर नहीं है ! परंतु जब दथ्य त्रमुषिने कर्मवश शरीरधारीकी मृत्युकी निश्चयता, परमार्थ-क्रपसे निःसारता और सत्यकी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी तब अश्वनीकुमारोंने कहा—'भगवन् ! आप किश्चित् भी भय न करें । हम एक कौशल करते हैं, जिससे न आपकी मृत्यु होगी और न हमें ब्रह्मविद्यासे विद्यत होना पड़ेगा । हम पृथक्-पृथक् हुए अङ्गोंको जोड़कर जीवित करनेकी विद्या जानते हैं । पहले इस घोड़ेका सिर उतारते हैं, फिर आपका सिर उतारकर इस घोड़ेका दे देते हैं । आप घोड़ेके सिरसे हमें ब्रह्म-विद्याका उपदेश कीजिये। फिर जब इन्द्र आकर आपका घोड़ेवाला सिर काट देंगेतब हम पुनः उसका सिर उतारकर आपके धड़से जोड़ देंगे और इन्द्रके द्वारा काटा हुआ घोड़ेका सिर घोड़ेके धड़से जोड़ देंगे । न घोड़ा ही मरेगा और न आपको ही कुछ होगा। दध्यङ ऋषिने इस प्रस्तावको स्वीकार करके उन्हें मलीमाँति ब्रह्मविद्याका

उपदेश किया । जब इन्द्रको इस बातका पता ला तो इन्द्रने आकर वज़से दघ्यङ् ऋषिके धड़से जोड़ा हुवा घोड़ेका सिर काट डाला । पश्चात् अश्वनीकुमारेने सिं विद्याके प्रभावसे घोड़ेके धड़से जुड़ा हुवा ऋषिका सिर उतारकर उनके धड़से जोड़ दिया और घोड़ेके धड़पर घोड़ेका सिर रखकर उसे जोड़ दिया और घोड़ेके धड़पर घोड़ेका सिर रखकर उसे जोड़ दिया। इस प्रकार दोनों जीवित हो गये। ब्रह्मविद्या-(भगवत्तन-) का ज्ञान प्राप्तकर अश्वनीकुमारोंने इन्द्रद्वारा उपस्थापत अनिष्टको दूर कर दिया। अश्वनीकुमार ब्रह्मविद्या किं भगवत्त्त्वके ज्ञाता हो गये और उनकी कटे अङ्गोंको जोड़नेकी कला प्रसिद्ध हो गयी। ब्रह्मविद्या या भगवत्त्वके ज्ञाता अश्वनीकुमार आज भी वन्दनीय हैं और देवताओं के वैद्यस्त्पमें स्तुत्य हैं।

तत्त्वज्ञानके श्रवणका अधिकारी

महर्षि व्यास एक बार मिथिछा पधारे और नियमित रूपसे प्रतिदिन भगवत्तत्वका उपदेश करने छगे। उनके साथके अनेक विरक्त शिष्य तथा मुनिगण तो श्रोता थे ही, महाराज जनक भी प्रतिदिन उनका उपदेश सुनने आते थे। महर्षि प्रायः तबतक प्रवचन प्रारम्भ नहीं करते थे, जबतक महाराज जनक न आ जाते। इससे श्रोताओंके मनमें अनेक प्रकारके संदेह उठने छगे। वे संकोचके कारण कुछ कहते तो नहीं थे, किंतु मनमें सोचते रहते कि 'महर्षि शरीरकी तथा संसारकी अनित्यताका प्रतिपादन करते हैं, माना-पमानको हेय बतछाते हैं, किंतु विरक्तों, ब्राह्मणों तथा मुनियोंके रहते हुए भी राजाके आये बिना तत्त्वोपदेश प्रारम्भ नहीं करते।

भगवान् व्यासजीने अपने श्रोताओंका मनोभाव छक्षित कर छिया। प्रवचन प्रारम्भ होनेके पश्चात् उन्होंने अपनी योगशक्तिसे एक छीछा रची। एक दिन आश्रमसे एक ब्रह्मचारी दौड़ा आया और उसने समाचार दिया— 'वनमें अन्नि छगी है, आश्रमकी ओर छपटें बढ़ रही हैं।' समाचार मिळते ही श्रोतागण घबराकर उठ पहें और अपनी-अपनी कुटियोंकी ओर दौड़े । अपने कमण्डल, बल्कळ तथा नीवार आदि अपनी सभी बत्तुओंके सुरक्षित रखकर जब वे पुन: प्रवचन स्थानपर आकर बैठ गये; उसी समय एक राजसेवकने आकर समाचार दिया—'मिथिळा नगरमें भी अग्नि प्रवेश कर गयी है।"

वह तुम ही हो

अरुणके पुत्र उद्दालकका एक लड़का खेतकेतु था। उससे एक दिन पिताने कहा, 'खेतकेतो! तू गुरुकुलमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन कर; क्योंकि हमारे कुलमें कोई भी पुरुष खाध्यायरहित ब्रह्मबन्धु नहीं हुआ।' तदनन्तर क्वेतकेतु गुरुकुलमें उपनयन कराकर बारह वर्षोतक विद्याध्ययन करता रहा। जब वह अध्ययन समाप्तकर घर लौटा तो उसे अपनी विद्याका अहंकार हो गया। पिताने उसकी यह दशा देखकर पूछा—'सौम्य! तुम्हें जो अपने पाण्डित्यका इतना अभिमान हो रहा है तो क्या तुम्हें उस तत्त्वका ज्ञान है, जिसके जान लेनेपर सारी क्लुओंका ज्ञान हो जाता है, जिस एकके सुन लेनेसे सारी सुननेयोग्य वस्तुओंका श्रवण तथा जिसे विद्यार लेनेपर समी विद्यारणीय वस्तुओंका विद्यार हो जाता है ?'

श्वेतकेतुने कहा—'मैं तो ऐसी किसी भी वस्तु या तत्त्वका ज्ञान नहीं रखता। ऐसा ज्ञान हो भी कैसे सकता है ?

पिताने कहा—'जिस प्रकार एक मृत्तिकाके जान लेनेपर घट, शरावादि सम्पूर्ण मिट्टीके पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है, अथवा जिस प्रकार एक सुवर्णको जान लेनेपर कटक (कड़े), मुकुट, कुण्डल, पात्रादि एवं सभी सुवर्णके पदार्थ जान लिये जाते हैं अथवा एक लोहेके नखलेदनीसे सम्पूर्ण लोहेके पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है कि तत्त्व तो केवल लोहा है, टाँकी, कुदाल, नखलेदनी, तलवार आदि वाणीके विकारमात्र हैं। वैसे ही परतत्त्वको जान लेनेपर सारी वस्तुओंका ज्ञान निश्चितरूपसे हो जाता है।

इसपर श्वेतकेतुने कहा—'पिताजी ! पूज्य गुरुदेवने मुझे इस प्रकारकी कोई शिक्षा नहीं दी। अब आप ही कृपा करके उस तत्त्वका मुझे उपदेश करें, जिससे सबका ज्ञान हो जाय। सचमुच मेरा ज्ञान अत्यन्त अल्प तथा नगण्य है।'

इसपर पिताने कहा—'आरम्भमें एकमात्र अद्वितीय
सत् तत्व ही विराजमान था। उसने विचार किया
कि मैं बहुत हो जाऊँ। उसने खयमेव तेज
(अग्नि) तत्व उत्पन्न किया। तेजसे जल,
जलसे अन्न और पुनः सब अन्य पदार्थ उत्पन्न किये।
कहीं भी जो लाल रंगकी वस्तु है, वह अग्निका अंश
है। इसी प्रकार शुक्त वस्तु जलका अंश है तथा कृष्ण
वस्तु अन्नका अंश। अतएव इस विश्वमें अग्नि,
जल और अन्न ही मुख्य तत्त्व हैं। इन तीनोंके
ज्ञानसे विश्वकी सारी वस्तुओंका ज्ञान हो जाता
है और इन समस्तोंक भी मूल 'सत्तत्त्व' के
जान लेनेपर पुनः कुल भी ज्ञेय अवशिष्ट नहीं
रह जाता।

श्वेतकेतुके आग्रहपर आरुणिने पुनः इस तत्त्वका दहीं, मधु, नदी एवं वृक्षादिके उदाहरणोंसे बोध कराया और बतलाया कि 'सत्-तत्त्वं से उत्पन होनेके कारण ये सब तत्त्व सत् आत्मतत्त्व ही हैं और वह आत्मा तुम ही हो । इस प्रकार श्वेतकेतुने सच्चा ज्ञान प्राप्त किया कि एक परमात्मतत्त्वके जान लेने, चिन्तन एवं आराधन-पूजन करनेसे सबकी जानकारी और आराधना हो जाती है।

—जा० श० (छान्दोख०)

देवताओंका अभिमान और परमेश्वर-तत्त्व

एक बार भीषण देवासुर-संग्राम हुआ । उसमें भगवान्की कृपासे देवताओंको विजय मिली । परमेश्वर तथा शास्त्रकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले असुर हार गये । यद्यपि देवताओंकी इस महान् विजयमें एकमात्र प्रभुकी कृपा एवं इच्छा ही कारण थी, तथापि देवता इसे समझ न पाये । उन्होंने सोचा—'यह विजय हमारी है और यह सीभाग्य-सुयश केवल हमारे ही पराक्रमका परिणाम है ।' भगवान्को देवताओंके इस अभिप्रायको समझते देव न लगी । वे उनके सम्पूर्ण दुर्गुणोंकी खान इस अहंकारको दूर करनेके लिये एक अद्भुत यक्षके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए ।

देवता उनके इस अद्भुत रूपको कुछ समझ न सके और बड़े विस्मयमें पड़ गये । उन्होंने सर्वज्ञकल्प अग्निको **उ**नका पता छगानेके छिये मेजा । अग्निके वहाँ पहुँचनेपर यक्षरूप भगवान्ने उन से प्रश्न किया कि 'आप कौन हैं ?' अग्निने कहा- 'तुम मुझे नहीं जानते ? मैं इस विश्वमें 'अग्नि' नामसे प्रसिद्ध जातवेदा हूँ।' यक्षरूप भगवान्ने पूछा—'ऐसे प्रसिद्ध गुण-सम्पन्न आपमें क्या शक्ति है ?' अग्नि बोले—'मैं इस चराचर जगत्को जलाकर भस्म कर सकता हूँ । इसपर यक्ष (भगवान्)ने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा- 'कृपाकर इसे जलाइये। अग्निने बड़ी चेष्टा की, क्रोधसे खयं पैरसे चोटीतक प्रज्वित हो उठे; पर वे उस तिनकेको न जला सके । अन्तमें वे निराश तथा लजित होकर लौट आये और देवताओंसे बोले कि 'मुझे इस यक्षका कुछ भी पता न लगा ।' तदनन्तर सबकी सम्मतिसे वायु उस यक्षके पास गये और भगवान्ने उनसे भी वैसे ही पूछा कि 'आप कौन हैं तथा आपमें क्या शक्ति है ?' उन्होंने कहा कि 'इस सारे विश्वमें वायु नामसे प्रसिद्ध मैं मातिरिया हूँ और पृथ्वीके सारे पदार्थोंको उड़ा सकता हूँ। इसपर मगवान्ने उसी तिनकेकी ओर इनका ध्यान भाकृष्ट कर उसे उड़ानेको कहा। वायुदेवताने अपनी सारी शक्ति छगा दी, पर वे उसे टस-से-मस न कर सके और अन्तमें छज्जित होकर देवताओं के पास छौट आये । देवताओं ने उनसे पूछा—'पता छगा कि यह यक्ष कौन था ?' वायुदेवताने सीधा-सा उत्तर दिया भी तो विछकुछ न जान सका कि वह यक्ष कौन है !

अन्तमें देवताओंने इन्द्रसे कहा—'भगवन् ! आप ही पता लगायें कि यह यक्ष कौन है ? 'बहुत अच्छा कहकर इन्द्र उसके पास चले तो सही, पर वह यक्ष उनके वहाँ पहुँचनेके पूर्व ही अन्तर्धान हो गया। अन्तरं इन्द्रकी दृढ भक्ति एवं जिज्ञासा देखकर साक्षात उमा-मूर्तिमती ब्रह्मविद्या, भगवती पार्वती वहाँ आकाशमें प्रकट हुई । इन्द्रने उनसे पूछा-- 'माँ ! यह यक्ष कौन था ! भगवती उमाने कहा—'यक्षरूपमें प्रसिद्ध परब्रह्म परमेश्वर थे। इनकी ही कृपा एवं छीछाशक्तिसे असुर पराजित हुए हैं, आपळोग तो केवल निमित्तमात्र रहे हैं। आपळोग जो इसे अपनी विजय तथा शक्ति मान रहे हैं, वह आपका व्यामोह तथा मिथ्या अहंकारमात्र है। इसी मोहमयी विनाशिका भ्रान्तिको दूर करनेके लिये परमेश्वरने आपके सामने यक्षरूपमें प्रकट होकर कुत्हल प्रदर्शन कर आपलोगोंके गर्वको नष्ट किया है। अब आपलेग अच्छी तरह समझ लें कि इस विश्वमें जो बड़ेबड़े पराक्रमियोंका पराक्रम, बळवानोंका बळ, विद्वानोंकी तेजिलयोंका तेज एवं तपिखयोंका तप, ओजिंखयोंका ओज है, वह सब उसी परम लीलाम्य प्रमुकी छीलामयी विविध राक्तियोंका लवलेशांश है और सम्पूण हलचलोंके केन्द्र एकमात्र वे इस विश्वके सचिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर ही हैं। प्राणीकी अपनी राक्तिका अहंकार मिथ्या भ्रममात्र है।'

उमाके वचनोंसे इन्द्रकी आँखें खुल गयीं। उन्हें अपनी भूलपर बड़ी लजा आयी। उन्होंने लौटकर सभी देवताओं को सम्पूर्ण रहस्य बतलाकर सुखी किया। (कोनोपनिष्द्)

भगवान् श्रीरामद्वारा लक्ष्मणजीको भगवत्तत्वका उपदेश

अपने पिता महाराज श्रीदशरथजीकी आज्ञा पाकर मर्यादापरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकीजी श्रीलक्ष्मणजीके साथ अयोध्यासे वनवासके लिये निकल पड़े । वे नाना प्रकारके तीथों, पर्वतों और ऋषि-मुनियोंके **क्षाश्रमों**को देखते हुए श्रीअगस्त्यजीके आश्रममें आये और उन्होंने ऋषिवरसे प्रश्न किया—'ऋषे!आप मुझे ऐसा स्थान बतलाइये जहाँ रहकर मैं अपने जीवनका कार्य सुचारुरूपसे पूरा कर सकूँ। १ परमज्ञानखरूप छीछाविप्रह भगवान्के इस प्रश्नको सुनकर ऋषिको बड़ा संकोच हुआ । भगवान् श्रीरामने उन्हें जो सम्मान दिया, उससे वे प्रेममग्न हो गये । उन्होंने श्रीसीताजी और अनुज लक्ष्मणके साथ अपने हृदयमें निवास करनेकी प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि पश्चवटी नामक एक परम पवित्र और रमणीक स्थान है, जहाँपर गोदावरी नदी बहती है, वहींपर दण्डकवनमें आप निवास करें और सब मुनियोंपर दया करें।

दण्डकवन पहले एक प्रसिद्ध तपोवन या। वहाँ अनेक ऋषि-मुनि रहकर तपस्या किया करते थे। परंतु इधर ऋषि-शापसे वह राक्षसोंका निवासस्थान बनकर अत्यन्त भयावह हो रहा था। आनन्दके स्थानमें वहाँ आतङ्कका राज्य छाया हुआ था। वहाँके छ्ता-वृक्षतक राक्षसोंके कुकृत्य और ऋषि, मुनि तथा ब्राह्मणोंकी दुर्दशा देखकर निरन्तर आँसू बहाया करते थे। ऋषिकी आज्ञा पाकर भगवान् दण्डक पधारे। उनके पधारते ही मानो वहाँसे भय, शोक, दुःख एकदम विख्य हो गये और सर्वत्र आनन्दका राज्य छा गया। ऋषि-मुनि निर्भय हो गये। छता, वृक्ष, नदी, ताळ आदितक श्रीराम, श्रीसीता और श्रीछक्मणके चरणकमछोंके दर्शन कर अत्यन्त आनन्दित और शोमायमान हो गये। भगवान्ने गोदाबरी-तटपर एक पर्णकुटी बनायी और वह उस्में

श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीके साथ सुखपूर्वक निवास करने लगे।

एक दिन भगवान् श्रीराम सुखपूर्वक आसनपर विराजमान थे। पासमें ही श्रीजानकीजी तथा श्रील्क्समणजी भी यथास्थान आसनपर बैठे हुए थे। एक सुन्दर अवसर जानकर श्रीलक्ष्मणजीने निष्कपट अन्तःकरणसे, दोनों हाथ जोड़कर बड़ी नम्रताके साथ भगवान्से निवेदन किया—

सुर नर मुनि सचराचर साई। मैं पूछों निज प्रभु की नाई॥ मोहि समुझाइ कहहु सो देवा। सब तजि करों चरन रज सेवा॥ कहहु स्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया

हुंस्वर जीव भेद प्रभु सकल कही समुझाइ। जातें होइ चरन रित सोक मोह भ्रम जाइ॥

सारांश यह कि हे सुर, नर, मुनि तथा समस्त जगत्के खामी! में आपको अपना प्रमु समझकर पूछ रहा हूँ। कृपाकर मुझे समझाकर कहिये कि ज्ञान, वैराग्य और माया किसे कहते हैं, वह कौन-सी-मिक्त है जिससे आप मक्तोंपर दया करते हैं और ईश्वर तथा जीवमें क्या मेद है, जिससे मेरा शोक, मोह, भ्रम इत्यादि दूर हो जाय और मैं सब कुछ छोड़कर आपके चरणरजिसी सेवामें ही तल्लीन हो जाऊँ।

भगवान्ने कहा—में और मेरा, त् और तेरां
(का माव) ही माया है, जिसने समन्त जीवोंको अपने
वशमें कर रक्खा है। इन्द्रियाँ और उनके विषयोंमें
जहाँतक मन जाता है, वहाँतक माया ही जाननी
चाहिये। इस मायाके दो मेद हैं—विद्या और अविद्या।
इनमें एक अविद्या तो दुष्ट और अत्यन्त दु:खरूप है,
जिसके वशमें होकर जीव भवकूपमें पड़ा हुआ है।
दूसरी अर्थात् विद्या, जिसके वशमें समस्त गुण हैं,
संसारकी रचना करती है, वह प्रमुक्ती प्रेरणासे सब
कार्य करती है, उसका अपना कोई बल नहीं है।

हे तात ! जिस मनुष्यमें ज्ञानाभिमान बिल्कुल नहीं है, जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मको व्याप्त देखता है, जिसने तृणके समान सिद्धियों और तीनों गुणोंको त्याग दिया, उसीको परम वैराग्यवान् कहना चाहिये।

जो अपनेको मायाका खामी नहीं जानता, वही जीव है और जो वन्धन और मोक्षका दाता है, सबसे श्रेष्ठ है, मायाका प्रेरक है, वही ईश्वर है।

वेद कहते हैं कि धर्मसे वैराग्य, वैराग्यसे योग,
योगसे ज्ञान होता है और ज्ञान ही मोक्षको देनेवाला
है। परंतु मैं जिससे शीघ्र प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी
मिक्त है और वही मक्तोंको सुख देनेवाली है। वह
मिक्त खतन्त्र है, वह किसी दूसरे साधनपर अवलिम्बत
नहीं है, ज्ञान और विज्ञान सब उसके अधीन हैं। हे
तात! मिक्त अनुपम सुखका मूल है और वह तभी प्राप्त
होती है, जब भगवद्भक्त या संत अनुकूल होते हैं।

अब मैं भक्तिके साधनका वर्णन करता हूँ और वह सुगम मार्ग बतलाता हूँ जिससे प्राणी मुझे सहजमें ही

पा सकें। पहले तो ब्राह्मणके चरणोंमें बहुत प्रीति होने चाहिये और वेदविहित अपने-अपने धर्ममें प्रवृत्ति होनी चाहिये । इसका फल यह होगा कि मन विश्वोत हो जायगा और तब मेरे अनुराग उत्पन्न हो जायगा । फिर श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—यह नौ प्रकारकी मक्ति दृढ़ होनी चाहिये और मनमें मेरी छीलाओंके प्रति अत्यन्त प्रेम होना चाहिये । जिसे संतोंके चरण-कमलोंमें अत्यधिक प्रेम हो, जो मन-वचन-कमसे भजन करनेका दृढ़ नियम रखनेवाळा हो, जो मुझे ही गुरु, पिता, माता, माई, पति और देवता सब कुछ जानता हो और मेरी सेवा करनेमें रहता हो, मेरा गुण गाते समय जिसके शरीलें रोमाध्व हो आता हो, वाणी गद्गद हो जाती हो और नेत्रोंमें ऑसू गिरते हों तथा जिसके अंदर काम, मद, दम्भ न हों, मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ। मन, वक्न और कर्मसे जिनको मेरी ही गति है, जो निष्काममावसे मेरा भजन करते हैं, मैं सदा उनके हृदय-कमल्में विश्राम करता हूँ।

(गाड़ीवाले)रैक्व मुनिका ज्ञानतत्त्व

एक राजा बड़ा दानी था, उसका नाम था जानश्रुति । उसने इस आशयसे कि सबलोग मेरा ही अन्न खार्ये, सर्वत्र धर्मशालाएँ बनवा दीं और अन्न-सत्रादि खोल दिये। एक दिन रात्रिमें कुछ हंस ठड़कर राजाके महल्की छतपर जा बैठे। उनमेंसे पिछले हंसने अगले-से कहा—'अरे ओ मल्लाक्ष ! देख, जानश्रुतिका तेज खुलोकके समान फैला हुआ है। कहीं उसका स्पर्श न कर लेना, अन्यथा वह तुम्हें भस्म कर डालेगा।'

इसपर दूसरे (अप्रगामी) हंसने कहा—'बेचारा यह राजा तो अत्यन्त तुच्छ है। ज्ञात होता है—तुम गाड़ीवाले रैक्वको नहीं जानते। इसीलिये इसका तेज इसकी अपेक्षा अत्यल्प होनेपर भी तुम इसकी वैसी प्रशंसा कर रहे तो ।' इसपर पिछले हंसने पूछा—'भाई । गाड़ीवाला रैक्व कैसा है ?' अगले हंसने कहा—'भाई । उस रैक्वकी महिमाका वर्णन कैसे किया जाय । जुआरीका जब पासा पड़ता है, तब जैसे वह तीनोंकी जीत लेता है, इसी प्रकार जो कुछ प्रजा शुभ कार्य करती है, वह सब रैक्वको प्राप्त हो जाता है। वास्तवमें जो तत्त्व रैक्व जानता है, उसे जो भी जान लेता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है।'

जानश्रुति इन सारी वार्तोको घ्यानसे सुन हा य। प्रातःकाल उठते ही उसने अपने सेवकोंको बुलका कहा—'तुम गाड़ीवाले रैक्वके पास जाकर कही कि राजा जानश्रुति उनसे मिलना चाहता है।' राजीके

आज्ञानुसार सर्वत्र खोज हुई, पर रैक्वका कहीं पता न बला। राजाने विचार किया कि इन सबने रैक्वको ग्रामों तथा नगरोंमें ही ढूँढ़ा है और उनसे पुनः कहा— अरे; जाओ, उन्हें ब्रह्मवेत्ताओंके रहनेयोग्य स्थानों (अरण्य, नदीतट आदि एकान्त स्थानों) में ढूँढ़ो। अत्तमें वे एक निर्जन-प्रदेशमें गाड़ीके नीचे बैठे हुए शरीर खुजलाते हुए मिल ही गये। राजपुरुषोंने पूछा—'प्रमो! क्या गाड़ीवाले रैक्व आप ही हैं ?' मुनिने कहा—'हाँ, मैं ही हूँ।'

पता लगनेपर राजा जानश्रुति छः सौ गौएँ, एक रानजटित हार और खच्चिरियोंसे जुता हुआ एक रथ लेकर उनके पास गया और बोला—'भगवन् ! मैं यह सब आपके लिये लाया हूँ। कृपया आप इन्हें सीकार कीजिये तथा जिस देवताकी उपासना करते हैं, उसका मुझे उपदेश कीजिये । राजाकी बात सुनकर मुनिने कहा—'अरे शूद्ध! ये गायें, हार और रथ तू अपने ही पास रख।' यह सुनकर राजा घर छौट आया और पुनः दूसरी बार एक सहन्न गायें, एक हार, एक रथ और अपनी पुत्रीको लेकर मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'भगवन्! आप इन्हें खीकार करें और अपने उपास्य देवताका मुझे उपदेश दें।'

मुनिने कहा— 'ओ दूाद ! त् फिर ये सब चीजें मेरे छिये छाया (क्या इनसे ब्रह्मज्ञान खरीदा जा सकता है) ! राजा चुप होकर बैठ गया । तदनन्तर राजाको धनादिके अभिमानसे द्वान्य जानकर उन्होंने संवर्गविद्यात्मक ब्रह्मतत्त्वका उपदेश किया । जहाँ रैक्व मुनि रहते थे, उस पुण्य स्थळका नाम रैक्वपर्ण हो गया ।—जा० श० (वेदान्तदर्शन १। ३। ३४-३५ छान्दोग्य० उप० ४। ३। १-२)

श्रीविष्णु-तत्त्व और लक्ष्मी-तत्त्व

एक बार भगवान् शंकरसे पार्वतीजीने पूछा— 'देवेश्वर! आप मन्त्रोंके अर्थ और पदोंकी महिमाको विस्तारके साथ बतलाइये। साथ ही ईश्वरके खरूप, गुण, विभूति, श्रीविष्णुके परमधाम तथा न्यूह-मेदोंका भी यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये।'

महादेवजीने कहा—देवि ! सुनो—में परमात्माके सहूप, विभूति, गुण तथा अवस्थाओंका वर्णन करता हूँ । भगवान्के हाथ, पैर और नेत्र सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं। समस्त मुवन और श्रेष्ठ धाम भगवान्में ही स्थित हैं। वे महर्षियोंका मन अपनेमें स्थिर करके विराजमान हैं। उनका खहूप विशाल एवं व्यापक है। वे लक्ष्मीके पति और पुरुषोत्तम हैं। उनका लावण्य करोड़ों कामदेवोंके समान है। वे नित्य तरुण किशोर-विग्रह धारण करके जगदीश्वरी भगवती लक्ष्मीजीके साथ परम व्योम परमपद—वैकुण्ठधाममें विराजते हैं। परमव्योम ऐश्वर्यका उपमोग करने-

के लिये हैं और यह सम्पूर्ण जगत् लीला करनेके लिये। इस प्रकार मोगभूमि और कीड़ाभूमिके रूपमें श्रीविष्णुकी दो विभूतियाँ स्थित हैं। जब वे लीलाका उपसंहार करते हैं, तब मोगभूमिमें उनकी नित्य स्थिति होती है। मोग और लीला दोनोंको वे अपनी शक्तिसे ही धारण करते हैं। मोगभूमि या परमधाम त्रिपाद्विभूतिसे व्याप्त है। अर्थात् भगविद्धभूतिके तीन अंशोंमें उसकी स्थित है और इस लोकमें जो कुल भी है, वह मगवान्की पाद-विभूतिके अन्तर्गत है। परमात्माकी त्रिपाद्धभूति नित्य और पादि म्यूति अनित्य है। परमधाममें भगवान्का जो शुम विप्रह विराजमान है, वह नित्य है। वह कभी अपनी मिहमासे च्युत नहीं होता, उसे सनातन एवं दिव्य माना गया है। वह सदा तरुणावस्थासे सुशोमित रहता है। वहाँ मगवान्को भगवती श्रीदेवी और भूदेवीके साथ नित्य संभोग प्राप्त है। जगन्माता लक्ष्मी भी नित्यरूपा हैं। वे श्रीविष्णुसे कभी पृथक् नहीं होतीं। जैसे भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त हैं, उसी प्रकार भगवती छक्ष्मी भी हैं। पार्वती ! श्रीविष्णुपत्नी रमा सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी और नित्य कल्याणमयी हैं। उनके भी हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक और मुख सब ओर व्याप्त हैं । वे भगवान् नारायणकी शक्ति, सम्पूर्ण जगत्की माता और सबको आश्रय प्रदान करनेवाली हैं । स्थावर-जङ्गमरूप सारा जगत् उनके कृपा-कटाक्षपर ही निभर है। विश्वका पालन और संहार उनके नेत्रोंके खुलने और बंद होनेसे ही हुआ करते हैं। वे महालक्ष्मी सबकी आदिभूता, त्रिगुणमयी और परमेश्वरी हैं। व्यक्त और अव्यक्त मेदसे उनके दो रूप हैं। वे उन दोनों रूपोंसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। जल आदि रसके रूपसे वे ही छीछामय देह धारण करके प्रकट होती हैं । लक्ष्मीरूपमें आकार वे धन-सुख प्रदान करती हैं। ऐसे खरूपवाछी छक्ष्मीदेवी श्रीहरिके आश्रयमें रहती हैं । सम्पूर्ण वेद तथा उनके द्वारा जाननेयोग्य जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब श्रीलक्ष्मीके ही खरूप हैं। स्नीरूपमें जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब लक्ष्मीका ही विप्रह कहलाता है। स्त्रियोंमें जो सौन्दर्य, शील, सदाचार और सौभाग्य स्थित है, वह सब लक्ष्मीका ही रूप है। पावती! भगवती लक्ष्मी समस्त स्त्रियोंकी शिरोमणि हैं, जिनकी कृपा-कटाक्षके पड़नेमात्रसे ब्रह्मा, शिव, देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, कुबेर, यमराज तथा अग्निदेव प्रचुर ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

उनके नाम ःस प्रकार हैं— छक्ष्मी, श्री, कमला, विद्या, माता, विष्णुप्रिया, सती, पद्माख्या, पद्महस्ता, पद्माक्षी, पद्मासुन्दरी, भूतेश्वरी, नित्या, सत्या, सवगता, श्रुमा, विष्णुपत्नी, महादेवी, क्षीरोदतनया (क्षीरसागरकी कन्या), रमा, अनन्तलोकनामि (अनन्त लोकोंकी उत्पत्तिका केन्द्रस्थान), भू, लीला, सर्वसुखप्रदा,

रुक्मिणी, सर्ववेदवती, सरस्रती, गौरी, शान्ति, बाह्रा, स्वधा, रित, नारायणवरारोहा (श्रीविष्णुकी सुरी पत्नी) तथा विष्णोर्नित्यानुपायिनी (सदा श्रीविष्णुके समीप रहनेवाली)। जो प्रातःकाल उठकर इन सप्पं नामोंका पाठ करता है, उसे बहुत वड़ी सम्पत्ति तथा विशुद्ध धान्यकी प्राप्ति होती है—

हिरण्यवर्णो हीरणीं सुवर्णरजतस्रजाम्। चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदोमऽऽवह॥ गन्धद्वारां दुराधर्षो नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वेमूतानां तामिहोपह्नये श्रियम्॥ (श्रुग्वेद परि० श्रीस्क्त १,९, पद्मपुराण २२५। २८। २६)

'जिनके श्रीअङ्गोंका रङ्ग सुवर्णके समान सुन्तर एवं गौर है, जो सोने-चाँदीके हारोंसे सुशोमित और सबको आङ्कादित करनेवाली हैं, भगवान् श्रीविष्णुसे जिनका कभी वियोग नहीं होता, जो खर्णमयी कान्ति धाएप करती हैं, उत्तम लक्ष्मणोंसे विभूषित होनेके कारण जिनका नाम लक्ष्मी है, जो सब प्रकारकी सुगन्धोंका द्वार हैं, जिनको परास्त करना कठिन है, जो सदा सब अङ्गोंसे पृष्ट रहती हैं, गायके सूखे गोबरमें जिनका निवास है तथा जो समस्त प्राणियोंकी अधीखरी हैं, उन भगवती श्रीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ।'

ऋग्वेदमें कहे हुए इस मन्त्रके द्वारा स्तृति कालेश महेश्वरी छक्ष्मीने शिव आदि सभी देवताओंको स्व प्रकारका ऐश्वर्य और सुख प्रदान किया था। श्रीविष्णु पत्नी छक्ष्मी सनातन देवता हैं। वे ही इस जगत्का शासन करती हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत्की श्वित उन्होंके कृपा-कटाक्षपर निर्भर है। अग्निमें रहतेवाली प्रभाकी माँति भगवती छक्ष्मी जिनके वक्षः स्थलमें निवाध प्रभाकी माँति भगवान् विष्णु सबके ईश्वर, परम शोग करती हैं, वे भगवान् विष्णु सबके ईश्वर, परम शोग सम्पन्न, अक्षर एवं अविनाशी पुरुष हैं। वे श्रीनाराष्ण सम्पन्न, अक्षर एवं अविनाशी पुरुष हैं। वे श्रीनाराष्ण वात्सल्य गुणके समुद्र हैं। सबके खामी, सुशिक सुभग, सर्वञ्च, सर्वशिकानन्, नित्यपूर्ण, खमावा

सबके सुहद्, सुखी, दयासुधाके सागर, समस्त देह-धारियोंके आश्रय, खर्ग और मोक्षका सुख देनेवाले और भक्तोंपर दया करनेवाले हैं । उन श्रीविष्णुको नमस्कार है। मैं सम्पूर्ण देश-काल आदि अवस्थाओं में पूर्णक्रपसे भगवान्का दासत्व स्वीकार करता हूँ । इस प्रकार ब्ररूपका विचार करके सिद्धि-प्राप्त पुरुष अनायास ही दासभावको प्राप्त कर लेता है। यही पूर्वोक्त मन्त्रका अर्थ है । इसको जानकर भगवान्में भलीभाँति भक्ति करनी चाहिये। यह चराचर-जगत् भगवान्का दास ही है । श्रीनारायण इस जगत्के खामी, प्रमु, ईश्वर, भाता, माता, पिता, बन्धु, निवास, शरण और गति हैं। भगवान् छक्ष्मीपति कल्याणमय गुणोंसे युक्त और समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले हैं । वे ही जगदीश्वर शास्त्रोंमें निर्गुण कहे गये हैं। 'निर्गुण' शब्दसे यही बताया गया है कि भगवान् प्रकृतिजन्य हेय गुर्णोसे रहित हैं। जहाँ वेदान्तवाक्योंद्वारा प्रपञ्चका मिध्यात्व बताया गया है और यह कहा गया है कि यह सारा दश्यमान जगत् अनित्य है, वहाँ भी ब्रह्माण्डके प्राकृत रूपको ही नश्वर वताया गया है। प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले रूपोंकी ही अनित्यताका प्रतिपादन किया गया है।

महादेवि! इस कथनका तात्पर्य यह है कि लीला-विहारी देवदेव श्रीहरिकी लीलाके लिये ही प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई है। चौदह भुवन, सात समुद्र, सात द्वीप, चार प्रकारके प्राणी तथा ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंसे भरा हुआ यह रमणीय ब्रह्माण्ड प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। यह उत्तरोत्तर महान् दस आवरणोंसे घिरा हुआ है। कल-काष्टा आदि मेदसे जो कालचक चल रहा है, उसीके द्वारा संसारकी सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्य होते हैं। कि सहस्र चतुर्युग व्यतीत होनेपर अव्यक्तजन्मा

ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। इतने ही बड़े दिनसे उनकी आयु सौ वर्षोंकी मानी गयी है। ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर सबका संहार हो जाता है। ब्रह्माण्डके समस्त छोक कालाग्निसे दग्ध हो जाते हैं। सर्वात्मा श्रीविष्णुकी प्रकृतिमें उनका लय हो जाता है। ब्रह्माण्ड और आवरणके समस्त भूत प्रकृतिमें छीन हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत्का आधार प्रकृति है और प्रकृतिके आधार श्रीहरि । प्रकृतिके द्वारा ही भगवान् सदा जगत्की सृष्टि और संहार करते हैं। देवाधिदेव श्रीविष्णुने लीलाके लिये जगन्मयी मायाकी सृष्टि की है। वही अविद्या, प्रकृति, माया और महा-विद्या कहलाती है। सृष्टि, पालन और संहारका कारण भी वही है। वह सदा रहनेवाली है। योगनिद्रा और महामाया भी उसीके नाम हैं। प्रकृति सत्त्व, रज और तम-इन तीन गुणोंसे युक्त है। उसे अव्यक्त और प्रधान भी कहते हैं। वह छीळाविहारी श्रीकृष्णकी क्रीडास्थली है। संसारकी उत्पत्ति और प्रलय सदा उसीसे होते हैं । प्रकृतिके स्थान असंख्य हैं, जो घोर अन्धकारसे पूर्ण हैं । प्रकृतिसे ऊपरकी सीमार्मे विरजा नामकी नदी है, किंतु नीचेकी ओर उस सनातनी प्रकृतिकी कोई सीमा नहीं है। उसने स्थूछ, सूस्म आदि अवस्थाओंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्को न्याप्त कर रखा है। प्रकृतिके विकाससे सृष्टि और संकोचावस्थासे प्रलय होते हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण भूत प्रकृतिके ही अन्तर्गत हैं। यह जो महान् शून्य (आकाश) है, वह सब भी प्रकृतिके ही मीतर है । इस तरह प्राकृत-रूप ब्रह्माण्ड अथवा एक पादनिभूतिके खरूपका अच्छी तरह वर्णन किया गया।

गिरिराजकुमारि ! अब त्रिपाद्-विभृतिके खरूपका वर्णन सुनो । प्रकृति एवं परम व्योमके बीचमें विरजा नामकी नदी है । वह कल्याणमयी सरिता वेदाक्नोंके

स्वेदजनित जलसे प्रवाहित होती है । उसके दूसरे पारमें परम व्योम है, जिसमें त्रिपादविभूतिमय सनातन, अमृत, शास्त्रत, नित्य एवं अनन्त प्रमधाम है । वह शुद्ध, सत्त्वमय, दिन्य, अक्षर एवं परब्रह्मका धाम है। उसका तेज कोटि सूर्य तथा अग्नियोंके समान है। वह धाम अविनाशी, सववेदमय, शुद्ध, सब प्रकारके प्रख्यसे रहित, परिमाणश्चान्य, कभी जीर्ण न होनेवाला, जाप्रत्-खप्न आदि अवस्याओंसे रहित. हिरण्यमय, मोक्षपद, ब्रह्मानन्दमय, सुखसे परिपूर्ण, न्यूनता-अधिकता तथा आदि-अन्तसे शून्य, शुभ, तेजस्ती होनेके कारण अत्यन्त अद्भुत, रमणीय, नित्य तथा आनन्दका सागर है। इसे सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेव नहीं प्रकाशित करते, वह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। जहाँ जाकर जीव फिर कभी नहीं छौटते, वही श्रीहरिका परमधाम है । श्रीविष्णुका वह परमधाम नित्य, शाखत एवं अच्युत है। सौ करोड़ कल्पोंमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता | मैं, ब्रह्मा तथा श्रेष्ठ मुनि श्रीहरिके उस पदका वर्णन नहीं कर सकते। जहाँ अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले साक्षात् परमेश्वर श्रीविष्णु विराजमान हैं, उसकी महिमाको वे खयं ही जानते हैं। जो अविनाशी पद है, जिसकी

महिमाका वेदोंमें गूढरूपसे वर्णन है तथा निसमें सम्पूर्ण देवता और छोक स्थित हैं उसे जो नहीं जानता, वह कैवल ऋचाओंका पाठ करके क्या करेगा। जे उसे जानते हैं, वे ही ज्ञानी पुरुष समभावसे खित होते हैं। श्रीविष्णुके उस परमपदको ज्ञानी पुरुष सदा देखते हैं । वह अक्षर, शास्त्रत, नित्य एवं सर्वत्र व्याप्त है। कल्याणकारी नामसे युक्त भगवान् विष्णुके उस प्रमधाम—गोलोकमें बड़े सींगोंवाली गीएँ रहती हैं तथा वहाँकी प्रजा बड़े सुखसे रहा करती है। गौओं तथा पीनेयोग्य सुखदायक पदार्थींसे उस परम धामकी बड़ी शोभा होती है । वह सूर्यके समान प्रकाशमान, अन्धकारसे परे, ज्योतिर्मय एवं अच्युत-अविनाशी पर है । श्रीविष्णुके उस परमधामको ही मोक्ष कहते हैं। वहाँ जीव बन्धनसे मुक्त होकर अपने लिये मुख्कर पदको प्राप्त होते हैं। वहाँ जानेपर जीव पुनः इस लोकमें नहीं लौटते, इसलिये उसे मोक्ष कहा गया है। मोक्ष, परमपद, अमृत, विष्णुमन्दिर, अक्षर, परमधाम, वकुण्ठ, शास्त्रतपद, नित्यधाम, परमञ्योम, सर्वोत्कृष्टपद तथा सनातनपद-ये अविनाशी परमधामके पर्यायवाची (पद्मपुराण) शब्द हैं।

परम भागवत ही वैकुण्ठधामके अधिकारी

यच व्रजन्त्यिनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः। भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः॥ (श्रीमद्रा०३।१५।२५)

(श्रीब्रह्माजी कहते हैं—)'देवाधिदेव श्रीहरिका निरन्तर चिन्तन करते रहनेके कारण जिनसे यमराज दूर रहते हैं, आपसमें प्रमुके सुयशकी चर्चा चळनेपर अनुरागजन्य विह्वळतावश जिनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगती है तथा शरीरमें रोमाख्न हो जाता है और जिनके से शील-स्वभावकी हमलोग भी इच्छा करते हैं—वे परमभागवत ही हमारे लोकोंसे ऊपर उस वैकुण्ठधाममें जाते हैं।



भगवद्धाम, श्रीभगवान् और उनका चतुर्व्यूह

महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा-सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माके स्तवन करनेपर भगवान् श्रीविष्णु योगनिद्रासे _{हठे} और योगनिद्राको नियन्त्रित कर, उन्होंने एक क्षणतक कुछ विचार किया। पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की । उस समय सब लोकोंसे युक्त मुवर्णमय अण्ड, सात द्वीप, सात समुद्र और पर्वतोंसहित क्यीको तथा एक अण्डकटाहको भी भगवान्ने अपने नामिकमलसे उत्पन्न किया । तत्पश्चात् उस अण्डमें श्रीहरि खयं ही स्थित हुए । तदनन्तर नारायणने अपने मनसे इच्छानुसार ध्यान किया । ध्यानके अन्तमें उनके छलाटसे पसीनेकी बूँद प्रकट हुई। वह बूँद बुद्बुदेके आकारमें परिणत हो तत्क्षण पृथ्वीपर गिर पड़ी। पार्वति ! उसी बुद्बुदेसे मैं उत्पन्न हूँ । उस समय रुद्राक्षकी माला और त्रिशूल हाथमें लेकर जटामय मुकुटसे अळंकृत हो मैंने विनयपूर्वक देवेश्वर श्रीविष्णुसे पूछा— भेरे छिये क्या आज्ञा है ? तब भगवान् नारायणने प्रसन्तापूर्वक मुझसे कहा—'रुद्र ! तुम संसारका संहार-कार्य करोगे । तत्पश्चात् भगवान् जनार्दनने मुझे संहारके कार्यमें नियुक्त करके पुनः अपने नेत्रोंसे अन्थकार दूर करनेवाले चन्द्रमा और सूर्यको उत्पन्न किया। फिर कानोंसे वायु और दिशाओंको, मुखकमळसे इन्द्र और अग्निको, नासिकाके छिद्रोंसे वरुण और मित्रको, मुजाओंसे साध्य और मरुद्रणोंसहित सम्पूर्ण देवताओंको, रोमकूपोंसे वन और ओषधियोंको तथा त्वचासे पर्वत, समुद्र और गाय आदि पशुओंको प्रकट किया। भगवान्के मुखसे ब्राह्मण, दोनों मुजाओंसे क्षत्रिय, जाँघोंसे वैश्य तया दोनों चरणोंसे श्रूद्रजातिकी उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि कर देवेश्वर श्रीकृष्णने उसे अचेतन रूपमें स्थित देख खयं ही विश्वरूपसे उसके भीतर प्रवेश किया। श्रीहरिकी शक्तिके

विना संसार हिळडुळ नहीं सकता । इसळिये सनातन श्रीविष्णु ही सम्पूर्ण जगत्के प्राण हैं। वे ही अव्यक्त रूपमें स्थित होनेपर परमात्मा कहलाते हैं। वे प्रड्विध ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सनातन वासुदेव हैं । वे अपने तीन गुणोंसे चार खरूपोंमें स्थित होकर जगत्की सृष्टि करते हैं। रामावतारमें ये चार भाइयों तथा कृष्णावतारमें बल्हराम आदि चार रूपोंमें प्रकट होते हैं। प्रवुम्नरूपधारी भगवान सब ऐश्वयोंसे युक्त हैं। वे ब्रह्मा, प्रजापति, काल तथा जीव—सबके अन्तर्यामी होकर सृष्टिका कार्य मलीमाँति सिद्ध करते हैं। महात्मा वासुदेवने उन्हें इतिहाससहित सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्रदान किया है। छोकपितामह ब्रह्माजी प्रद्युम्नके ही अंशभागी हैं। वे संसारकी सृष्टि और पालन भी करते हैं। भगवान् अनिरुद्ध राक्ति और तेजसे सम्पन्न हैं। वे मनुओं, राजाओं, काल तथा जीवके अन्तर्यामी होकर सबका पालन करते हैं। संकर्षण शेष, लक्ष्मण या बलराम भी महाविष्णुरूप हैं । उनमें विद्या और बल दोनों हैं । वे सम्पूर्ण भूतोंके काल, रुद्र और यमके अन्तर्यामी होकर नगत्का संहार करते हैं। इस प्रकार मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और किल्क—ये दस भगवान् विष्णुके अवतार हैं।

पार्वति ! श्रीहिरिकी उस अवस्थाका वर्णन सुनो । जो परमश्रेष्ठ वैकुण्ठलोक, विष्णुलोक, खेतद्वीप और क्षीर-सागर—ये चार व्यह महर्षियोद्वारा बताये गये हैं । वेकुण्ठलोक जलके घेरेमें है । वह कारणरूप और श्रुम है । उसका तेज कोटि अग्नियोंके समान उद्दीप रहता है । वह सम्पूर्ण धमोंसे युक्त और अविनाशी है । परमधामका जैसा लक्षण बताया गया है, वैसा ही उसका भी है । नाना प्रकारके रत्नोंसे उद्धासित वैकुण्ठनगर चण्ड जय, विजय आदि द्वारपालों और कुमुद आदि दिक्य गृहोंकी पिक्तियोंसे वह नगर घरा हुआ है । उसकी चौड़ाई पचपन योजन तथा लंबाई एक हुजार योजन तथा लंबाई एक हुजार योजन

है। करोड़ों ऊँचे-ऊँचे महल उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वह नगर तरुण अवस्थावाले दिन्य स्त्री-पुरुषोंसे सुशोभित है। वहाँकी क्रियाँ और पुरुष समस्त शुभ छक्षणोंसे सम्पन दिखायी देते हैं । खियोंका रूप भगवती छक्ष्मीके समान होता है और पुरुषोंका भगवान् विष्णुके समान । वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होते हैं तथा भक्ति-जितत मनोरम आह्नादसे सदा आनन्दमान रहते हैं। उनका भगवान् विष्णुके साथ अविच्छिन सम्बन्ध बना रहता है। वे सदा उनके समान ही सुख भोगते हैं। जहाँ कहींसे भी श्रीहरिके छोकमें प्रविष्ट हुए ग्रुद्ध अन्तः करणवाले मानव फिर संसारमें जन्म नहीं लेते। मनीषी पुरुष भगवान् विष्णुके दास-भावको ही मोक्ष कहते हैं। उनकी दासताका नाम बन्धन नहीं है। भगवानके भक्त तो सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त और रोग-शोकसे रहित होते हैं । ब्रह्मलोकतकके प्राणी पनः संसारमें आकर जन्म लेते, कर्मोंके बन्धनमें पड़ते और दु:खी तथा मयभीत होते हैं । पार्वित ! उन छोकोंमें जो फल मिलता है, वह बड़ा आयाससाध्य होता है। वहाँका प्रुख-मोग विषमिश्रित मधुर अन्नके समान है। जब पुण्यकर्मोंका क्षय हो जाता है, तब मनुष्योंको खर्गमें स्थित देख देवता कुपित हो उठते हैं और उसे संसारके कमबन्धनमें डाल देते हैं, इसलिये खगका सुख बड़े क्लेशसे सिद्ध होता है। वह अनित्य, कुटिल और दु:ख-मिश्रित होता है, इसलिये योगी पुरुष उसका परित्याग कर दे। भगवान् विष्णु सब दुःखोंकी राशिका नाश करनेवाले हैं, अतः सदा उनका स्मरण करना चाहिये। भगवान्का नाम लेनेमात्रसे मनुष्य परमपदको प्राप्त होते हैं । इसलिये पार्वति ! विद्वान् पुरुष सदा भगवान् विष्णुके लोकको पानेकी इच्छा करे । अतः दयाके सागर भगवान्की अनन्य भक्तिके साथ भजन करना चाहिये । जो प्रम कल्याणकारक और सुखमय अष्टाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वैकुण्ठ-धामको प्राप्त होता है।

वहाँ भगवान् श्रीहरि सहस्रों सूर्योंकी किरणोंसे

सुशोभित दिव्य विमानपर विराजमान रहते हैं। अ विमानमें मणियोंके खम्मे शोमा पाते हैं। उसमें क सुवर्णमय पीठ है, जिसे आधारशक्ति आदिने धारणका रखा है तथा जो भाँति-भाँतिके रत्नोंका बना हुआ एवं अलौकिक है। उसमें अनेकों रंग जान पहते हैं। पीठपर अष्टदल कमल है, जिसपर मन्त्रोंके अक्षर औ पद अङ्कित हैं । उसकी सुरम्य कर्णिकामें लक्ष्मीबीज्ञा शुभ अक्षर अङ्कित है । उसमें कमलके आसनपर दिव विग्रह भगवान् श्रीनारायण विराजमान हैं, जो अवाँ खरबों बालसूर्योंके समान कान्ति धारण करते हैं। उनके दाहिने पार्श्वमें सुवर्णके समान कान्तिमती जगनाता श्रीलक्ष्मी विराजती हैं, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्मा और दिव्य मालाओंसे सुशोमित हैं। उनके हार्यों सुवर्णपात्र, मातुलुङ्ग और सुवर्णमय कमल शोभा पाते हैं। भगवान्के वामभागमें भूदेवी विराजमान हैं, जिनकी कान्ति नीलकमल-दलके समान स्याम है। वे नाना प्रकारके आभूषणों और विचित्र बस्नोंसे विभूषित हैं। उनके ऊपरके हाथोंमें दो लाल कमल हैं और नीके दो हाथोंमें उन्होंने दो धान्य-पात्र धारण कर रखे हैं। विमला आदि शक्तियाँ दिव्य चँवर लेकर कमलके आर्थे दलोंमें स्थित हो भगवान्की सेवा करती हैं। वे सभी समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। भगवान् श्रीहरि क सबके बीचमें विराजते हैं। उनके हाथोंमें शहु, की गदा और पद्म शोभा पाते हैं। भगवान् केयूर, अहर और हार आदि दिन्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके कानोंमें उद्यकालीन सूर्यके समान तेजोमय कुण्डल झिलमिला रहे हैं। पूर्वोक्त देवता उन परमेश्वरकी सेवामें सरा संलग्न रहते हैं। इस प्रकार नित्य वैकुण्ठधाममें भावात् सव भोगोंसे सम्पन हो लक्ष्मी, संकर्षण, गरुडादिके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। वह प्रम रमणीय छोक अद्यक्ष मन्त्रका जप करनेवाले सिद्ध मनीषी पुरुषों तथा श्रीविणु भक्तोंको प्राप्त होता है। पावती! पुनः वे ही कृष्णावतासं बल्राम, प्रद्युम्न, अनिरुद्धके रूपमें विराजित हैं। स प्रकार मैंने तुमसे श्रीभगवान्के व्यूह्का वर्णन किया। (परापुराण) < > + < > +

सभीका ईश्वर एक

(शिव तथा कृष्णकी तात्त्विक एकरूपता)

'भगवान् विद्वलनाथने प्रसन्न होकर मुझे पुत्र दिया है। मैं आज उन्हें रत्नजिटत कमरपद्या चढ़ाने आया हूँ। पंढरपुरमें तुम्हारे सिवा उसे कोई गढ़ नहीं सकता। इसिलिये उठो और भगवान्की कमरका नाप हे आओ और शीव्र उसे तैयार कर दो। पंढरपुरके एक साहूकारने नरहरि सुनारके पास आकर कहा।

इधर नरहरिने पंढरपुरमें रहकर भी विट्ठलनाथका दर्शन नहीं किया था। वह परम शैव था। शिवके भजन-पूजनमें सदा अनुरक्त वह भक्त वैष्णवोंके देव विट्ठलनाथसे इतना बचता कि बाहर निकलते समय सिर नीचा करके चलता। जिससे कहीं भूलसे भी विट्ठल-मन्दिरके शिखरतकका भी दर्शन न हो जाय। नरहिरने मन्दिरमें जाना स्पष्टक्रपसे अखीकार कर दिया। विवश होकर व्यापारी खयं वहाँ जाकर नाप ले आया। कमरपद्दा बना और भगवान्को पहनाया गया तो छोटा होने लगा। किर उसे नरहिरके पास लया गया। नरहिरने वड़ी कुशलतासे उसे बड़ा कर दिया। अबकी बार अपेक्षासे अधिक बड़ा हो गया।

साहूकार चिन्तित हो उठा—'क्या सचमुच भगवान् हमपर अप्रसन्न हो गये हैं ? वे इसे खीकार क्यों नहीं कार्ते ?' उसने आकर नरहिरसे बड़ी अनुनय-विनय की। अन्ततः नरहिर मन्दिर चलने और नाप लेनेको हस शर्तपर तैयार हुआ कि 'उसकी आँखोंपर पृष्टी बाँधकर ले जाया जाय और वह अपने हाथोंसे ट्योलकर

नाप ले सके ।' जब आँखोंपर पट्टी बाँघे हुए उस नरहिर सुनारको पकड़कर मन्दिरमें लाया गया और उसने मूर्तिको टटोला तो दशभुज, पश्चवदन, भुजङ्ग-भूषण, जटाधारी भगवान् शंकर ईटपर खड़े माछम हुए । अपने आराध्यदेवको पाकर उनके दर्शनसे बचने-की अपनी बुद्धिपर उसे तरस आया और उसने अत्यन्त अनुतप्त हो आँखोंसे पट्टी खोली । पट्टी खोलते ही पुनः पीताम्बरधारी वनमालीको देख वह सकपकाया और फिरसे पट्टी बाँघ ली । पर जब हाथोंसे टटोला तो वे ही भवानीपित भोलानाथ लगे और पट्टी खोलते ही रुक्मिणीरमण पाण्डुरङ्ग ईटपर खड़े तथा कटिपर हाथ धरे दिखायी पड़ते।

नरहरि अव वड़े असमञ्जसमें पड़ गया । उसे ईश्वरमें मेद-बुद्धि रखनेका अच्छा पाठ मिल गया । शिवका अनन्य भक्त होनेके कारण उसे अब ईश्वराद्धैत-का रहस्य समझते देर न लगी । उसने दीनवाणीसे प्रमुकी प्रार्थना की ।

भगवान् प्रसन्न हो उठे। ईश्वरमें मेदबुद्धि नष्ट करना ही उनका छक्ष्य था। उसके सिद्ध हो जानेपर भक्तकी अनन्यताके वशीभूत हो उन्होंने उसकी प्रसन्नता-के छिये अपने सिरपर शिवछिङ्ग धारण कर छिया। तबसे पण्ढरपुरके विट्ठछ भगवान्के सिरपर आज भी शिवछिङ्ग विराजमान है।

(गो॰ न॰ वैजापुरकर, भक्तिविजय, अध्याय २०)

भगवान् हरिहर सबकी रक्षा करें

गाङ्गयामुनयोगेन तुल्यं हारिहरं वपुः। पातु नाभिगतं पद्मं यस्य तन्मध्यगं यथा॥

क्ष्मलयुक्त गङ्गायमुनाकी संगमकी तरह नाभिपद्मयुक्त भगवात् विष्णु एवं शिवका समिलित (स्यामश्रमः)

क्षीर सबकी रक्षा करे।

भगवान्के परात्पर स्वरूप--श्रीकृष्णकी महिमा

एक समयकी बात है, राजा अम्बरीष बद्दिकाश्रममें गये । जहाँ परम जितेन्द्रिय महर्षि वेदव्यास विराजमान थे। राजाने विष्णु-धर्मको जाननेकी इच्छासे महर्षिको प्रणामकर उनका स्तवन करते हुए कहा—'भगवन् ! विषयोंसे विरक्त हैं । मैं आपको बारंबार नमस्कार काता हूँ । प्रमो ! जो परमपद, उद्देग-श्रून्य— शान्त है, जो सिचदानन्दखरूप और परब्रह्मके नामसे प्रसिद्ध है, जिसे 'परम आकाश' कहा गया है, जो इस मौतिक जड आकारासे सर्वथा विलक्षण है, जहाँ किसी रोग-व्याधिका प्रवेश नहीं है तथा जिसका साक्षात्कार करके मुनिगण भवसागरसे पार हो जाते हैं, प्रमात्मामें मेरे मनकी नित्य स्थिति उस अव्यक्त कैसे हो ?

वेदव्यासजी बोले-राजन् ! तुमने अत्यन्त गोपनीय प्रश्न किया है, जिस आत्मानन्दके विषयमें मैंने अपने पुत्र शुक्तदेवको भी कुछ नहीं बतलाया था, वही आज तुमको वता रहा हूँ, क्योंकि तुम भगवान्के प्रिय भक्त हो । पूर्वकालमें यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड जिसके रूपमें स्थित रहकार अव्यक्त और अविकारी खरूपसे प्रतिष्ठित था, उसी परमेश्वरके रहस्यका वर्णन करता हूँ, सुनो-- "प्राचीन समयमें मैंने फल, मूल, पत्र, जल, वायुका आहारकर कई हजार वर्षोतक कठिन तपस्या की । इससे भगवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'महामते ! तुम कौन-सा कार्य करना अथवा किस विषयको जानना चाहते हो ! मैं प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे कोई वर माँगो। संसारका बन्धन तमीतक रहता है, जबतक कि मेरा साक्षात्कार नहीं हो जाता, यह मैं तुमसे सची बात बता रहा हूँ। यह मुनकर मेरे शरीरमें रोमाझ हो आया। मैंने श्रीकृष्णसे कहा—'मधुसूदन ! मैं आपके ही

नाथ ! जो इस जगत्का पालक और प्रकाशक है उपनिषदोंमें जिसे सत्यखरूप परब्रह्म बतलाया गया है, आपका वही अद्भुत रूप मेरे समक्ष प्रकट हो यह मेरी प्रार्थना है।

श्रीभगवान्ने कहा—महर्षे ! मेरे विषयमें लोगी भिन-भिन धारणाएँ हैं। कोई मुझे 'प्रकृति' कहते हैं, कोई पुरुष । कोई ईश्वर मानते हैं, कोई धर्म । किही-किन्हींके मतमें मैं सर्वथा भयरहित मोक्षखरूप हूँ। की भाव (सत्ताखरूप) मानते हैं और कोई-कोई कल्पाण-मय सदाशिव बतलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लेग मुझे वेदान्तप्रतिपादित अद्वितीय सनातन ब्रह्म मानते हैं। किंतु वास्तवमें जो सत्ताखरूप और निर्विकार है, सद-चित् और आनन्द ही जिसका विग्रह है तया वेदींने जिसका रहस्य छिपा हुआ है, अपना वह पारमार्थिक सहस आज तुम्हारे सामने प्रकट करता हूँ।

'राजन् ! भगवान्के इतना कहते ही मुझे एक बालक्तका दर्शन हुआ, जिसके शरीरकी कार्ति नीव मेघके समान स्याम थी । वह गोपकत्याओं और बार-बालोंसे घिरा हुआ हँस रहा था। वे भगवान् स्यामहुद्र श्रीकृष्ण थे, जो पीत वस्त्र धारण किये कदम्बर्धके मूलपर बैठे हुए थे। उनकी झाँकी अद्भुत थी। उनके दर्शनके साथ ही नूतन पल्छवोंसे अछङ्कृत 'वृद्धका नामवाला वन भी दृष्टिगोचर हुआ। इसके बाद भेने नील कमलकी आभा धारण करनेवाली कल्दिक^{वा} यमुनाके दर्शन किये। फिर गोवर्धन-पर्वतपर दृष्टि पड़ी जिसे श्रीकृष्ण तथा बल्रामने इन्द्रका घमंड चूर्ण कर्ति लिये अपने हाथोंपर उठाया था । वह पर्वत गौओं तथा गोपोंको बहुत सुख देनेवाला है। वहाँ गोपाल श्रीहण श्रीगोपाङ्गनाओंके साथ बैठकर बड़ी प्रसन्तताके सा तालका यथार्थरूपसे साक्षात्कार करना चाहता हूँ । वेणु बजा रहे थे । उनके शरीरपर सब प्रकारके आपूर्ण CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शोमा पा रहे थे । उनका दर्शन करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ । तब चृन्दावनमें विचरनेवाले उन श्रीभगवानने खयं मुझसे कहा- 'मुने ! तुमने जो इस दिव्य सनातन ह्रपका दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और सिच्चदानन्दमय पूर्ण विग्रह है। इस कमछ-बोचनखरूपसे बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्त्व नहीं है। वेद इसी खरूपका वर्णन करते हैं। यही कारणोंका भी कारण है । यही सत्य, परमानन्दखरूप, चिदानन्द-**धन, सनातन और शिवतत्त्व है । तुम मेरी इस** मथुरापुरीको नित्य समझो । यह वृन्दाविपिन, यह यमुना, ये गोपकन्याएँ तथा ग्वाल-बाल सभी नित्य हैं। यहाँ जो मेरा अवतार हुआ है, यह भी नित्य है। इसमें संशय न करना । राधा मेरी सदाकी प्रियतमा हैं । मैं सर्वज्ञ, परात्पर, सर्वकाम, सर्वेश्वर तथा सर्वानन्दमय परमेश्वर हूँ। मुझमें ही यह सारा विश्व, जो मायाका विलासमात्र है, प्रतीत हो रहा है।'

तब मैंने जगत्के कारणोंके भी कारण मगवान्से कहा—'नाथ! ये गोपियाँ और ग्वाले कौन हैं तथा यह वृक्ष कैसा है ?' तब वे बड़े प्रेमसे बोले—'मुने! इन गोपियोंको श्रुतियाँ समझो तथा कुछ देवकत्याएँ भी इनके रूपमें प्रकट हुई हैं। तपस्यामें छगे हुए मुमुक्षु मुनि ही इन ग्वाल-बालोंके रूपमें दिखायी दे रहे हैं। ये सभी मेरे आनन्दमय विश्रह हैं। यह कदम्ब कल्पवृक्ष है, जो परमानन्दमय श्रीकृष्णका एकमात्र आश्रय बना हुआ है तथा यह पर्वत भी अनादिकालसे मेरा भक्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अहो! कितने आश्रयंकी बात है कि दूषित चित्तवाले मनुष्य मेरी इस लक्क सनातन एवं मनोरम पुरीको, जिसकी देवराज कित हो, नहीं जानते। यद्यप काशी आदि अनेकों

मोक्षदायिनी पुरियाँ विद्यमान हैं; तथापि उन सबमें मथुरापुरी ही धन्य है; क्योंकि वह अपने क्षेत्रमें जन्म, उपनयन, मृत्यु और दाह-संस्कार—इन चारों ही कारणोंसे मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करती है । जब तप आदि साधनोंके द्वारा मनुष्योंके अन्तःकरण श्रुद एवं ग्रुभसंकल्पसे युक्त हो जाते हैं और वे निरन्तर ध्यानरूपी धनका संग्रह करने छगते हैं, तभी उन्हें मथुराकी प्राप्ति होती है । मथुरावासी धन्य हैं, वे देवताओंके भी माननीय हैं, उनकी महिमाकी गणना नहीं हो सकती । मथुरावासियोंके जो दोष हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, उनमें जन्म लेने और मरनेका दोष नहीं देखा जाता । जो निरन्तर मथुरापुरीका चिन्तन करते हैं, वे निर्धन होनेपर भी धन्य हैं; क्योंकि मथुरामें भगवान् भूतेश्वरका निवास है, जो पापियोंको भी मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् भूतेश्वर मुझको सदा ही प्रिय हैं; क्योंकि मेरी प्रसन्तताके छिये वे कभी भी मथुरापुरीका परित्याग नहीं करते। जो भगवान् भूतेश्वरको नमस्कार, उनका पूजन अथवा स्मरण नहीं करता, वह मनुष्य दुराचारी है। जो मेरे प्रम भक्त शिवका पूजन नहीं करता उस पापीको मेरी भक्ति किसी तरह प्राप्त नहीं होती । ध्रुवने बाळक होने-पर भी जहाँ मेरी आराधना करके उस परम विशुद स्थानको प्राप्त किया, जो उसके पूर्वजोंको मी प्राप्त न हुआ था, ऐसी यह मेरी मधुरापुरी देवताओंके छिये भी दुर्लभ है । वहाँ जाकर मनुष्य यदि लँगड़ा या अंघा होकर भी प्राणोंका परित्याग करे तो उसकी भी मुक्ति हो जाती है । महामना वेदव्यास ! तुम इस विषयमें कभी सन्देह न करना । यह उपनिषदोंका रहस्य है, जिसे मैंने तुम्हारे सामने प्रकाशित किया है।" (परापुराण)

परात्परतत्त्वकी शिशु-लीला

नित्य प्रसन्न राम आज रो रहे हैं। माता कौसल्या उद्धिन हो गयी हैं। उनका छाछ आज रो क्यों रहा है; किसी प्रकार शान्त ही नहीं होता! वे गोद में लेकर खड़ी हुई, पुचकारा, थपकी दी, उछाछीं; किंतु राम रोते रहे। बैठकर स्तनपान करानेका प्रयत्न भी किया; किंतु आज तो रामछछाको पता नहीं क्या हो गया है! वे बार-बार चरणोंको उछाछते हैं, करोंको पटकते हैं और रुदन करते ही जा रहे हैं। पाछनेमें झुछानेपर भी वे चुप नहीं होते। उनके दीर्घ हगोंसे काजछयुक्त बड़े-बड़े विन्दु टप-टप टपक रहे हैं।

श्रीरामके रोनेसे सारा राजपरिवार चिन्तित हो उठा है। तीनों माताएँ व्यप्न हैं। भरत, छक्ष्मण, शत्रुष्न— तीनों शिशु श्रीरामकी ओर बार-बार शाँकते हैं, बार-बार हाथ बढ़ाते हैं। सोचते हैं कि अप्रज आज क्यों रो रहे हैं! माताएँ अत्यन्त व्यथित हैं। इससे अत्यन्त चिन्तित हैं कि कहीं ये तीनों भी न रोने छगें।

'अवस्य किसीने नजर छगा दी हैं?—किसीने कहा । सम्भवतः राजप्रासादकी किसी रामस्नेही परिचारिकाने ममत्वसे भरकंर ऐसा उच्चरित कर दिया हो । अविलम्ब रथ मेजकर राजकुल-पुरोहित महर्षि वसिष्ठको बुल्वाया गया । रघुकुल्के तो एकमात्र आश्रय जो ठहरे ने तपोमूर्ति ।

'श्रीराम आज रो रहे हैं और चुप ही नहीं होते' ऐसा जब महर्षिने राजप्रासादमें आकर धुना तो उन ज्ञानधनके गम्भीर मुखपर मन्दिस्मिति छा गयी। राजभवनमें उन्हें उत्तम आसन दिया गया। उनके सम्मुख तीनों रानियाँ विनीतमावसे बैठी थीं।

'मेरे पास क्या है, राम ! तुम्हारा तो नाम ही त्रिभुवनका रक्षक है, मेरी एकमात्र अमूल्यनिषि और साधन भी वही है।' महर्षिने यह बात मनमें कहकर प्रभुको नमन किया। प्रकटतः उन्होंने हाथमें कुश लिया तथा नृसिंह-मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर श्रीरामपर कुछ जहसीकर कुशाग्रसे डाले। सुमित्रा और कैंकेयीजीने लक्षण तथा शत्रुष्नको गोदमें ले रखा था और माता कौसल्याकी गोदमें थे दो इन्दीवर सुन्दर सुकुमार-श्रीराम तथा भरत।

महर्षिने हाथ बढ़ाकर श्रीरामको गोदमें छे ल्या और उनके मस्तकपर हाथ रखा। उन नील्युन्दर्के स्पर्शसे महर्षिका शरीर प्रेमानन्द-पुलकित हो गया, के भर आये। उधर रामजी रुदन भूल चुके थे। उन्होंने एक बार महर्षिके मुखकी ओर देखा और फिर आनन्दसे किल्कारी मारकर विहँसने लगे।

'देव! आप इस रघुवंशके कल्पबृक्ष हैं। आपकी कृपा तथा प्रभावसे ही राम प्रकृतिस्थ हो हँसने लगते हैं। रानियोंने अञ्चल हाथमें लेकर भूमिपर मस्तक रख दिया महर्षिके सम्मुख।

'इसमें मेरा क्या है देवियो ! मुझको कृतार्थ करना श आज इन त्रिभुवनमोहन कृपामयको ।' महर्षिने करणा-विगलित विरक्तभावसे कहा । उनके नेत्र तो शिष्ठ रामके प्रफुल्ल कमलमुखपर सुस्थिर थे।

एक ओर बैठे महर्षिके वटु-शिष्य तथा दूसी ओर खड़ी हुई अन्त:पुरकी वात्सल्यवती परिचारिकाएँ, सभी सानन्द परात्पर रामकी इस मधुर शिर्ध छीलादृश्यका निर्निमेष नेत्रों तथा जिज्ञासुभावसे अवलेका कर रहे थे।

बह्मज्ञानका अधिकारी

एक साधकने किसी महात्माके पास जाकर कहा-भन्ने आत्मसाक्षात्कारका उपाय बताइये । महात्माने एक मन बताकर कहा-'एकान्तमें रहकर एक वर्षपर्यन्त इस मन्त्रका जाप करो । जिस दिन वर्ष पूरा हो, उस दिन स्नानकर मेरे पास आना ।' साधकने वैसा ही किया । वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने वहाँ झाड़ देनेवाळी भंगिनसे कह दिया कि जब वह नहा-घोकर मेरे पास आने लगे, तब उसके पास जाकर झाड़से गर्दा उड़ा देना । भंगिनने वैसा ही किया। साधकको क्रोध आ गया और वह भंगिनको मारने दौड़ा। भंगिन भाग गयी। वह फिरसे नहाकर महात्माजीके पास आया । महात्माजीने कहा—'भैया ! अभी तो तुम साँपकी तरह काटने दौड़ते हो । सालभर और बैठकर मन्त्र-जप करो, तत्र आना ।' साधकको वात कुछ बुरी हमी, पर वह गुरु-आज्ञा समझकर चला गया और मन्त्र-जप करने लगा।

जिस दिन दूसरा वर्ष पूरा हो गया, उस दिन महात्माजीने उसी मंगिनसे फिर कहा कि 'आज जब बह आने लगे, तब उसके पैरसे जरा झाडू छुआ देना।' उसने कहा, 'मुझे मारेगा तो ?' महात्माजी बोले, 'आज नहीं मारेगा, बस बककर रह जायगा। भंगिनने जाकर शाड़ू छुआ दी । साधकने झल्लाकर दस-पाँच कठोर शब्द सुनाये और पुनः नहाकर वह महात्माजीके पास आया । महात्माजीने कहा-भाई ! काटते तो नहीं, पर अभी साँपकी तरह फुफकार तो मारते ही हो। ऐसी अवस्थामें आत्मसाक्षात्कार कैसे होगा ! जाओ, एक वर्ष और जप करो। इस बार साधकको अपनी भूल दिखायी दी और मनमें बड़ी ग्लानि हुई । उसने इसको महात्मा-जीकी कृपा समझा और वह मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करता हुआ अपने स्थानपर आ गया ।

उसने वर्षभर पुन: मन्त्र-जप किया । तीसरा वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने भंगिनसे कहा-'आज जब वह आने लगे, तब कूड़ेकी टोकरी उसपर उड़ेल देना । अव वह खीझेगा भी नहीं ।' भंगिनने वैसा ही किया। साधकका चित्त निर्मल हो चुका था। उसे क्रोध तो आया ही नहीं; बल्कि उसके मनमें उलटे भंगिनके प्रति कृतज्ञताकी भावना जाप्रत् हो गयी। उसने हाथ जोड़कर भंगिनसे कहा-'भाता ! तुम्हारा मुझपर बड़ा ही उपकार है, जो तुम मेरे अंदरके एक बड़े भारी दोषको दूर करनेके लिये तीन सालसे बराबर प्रयत्न कर रही हो। तुन्हारी कृपासे आज मेरे मनमें तनिक भी दुर्भाव नहीं आया। इससे मुझे ऐसी आशा है कि मेरे गुरु महाराज आज मुझको अवस्य वपदेश करेंगे।

इतना कहकर वह स्नान करके महात्माजीके पास जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा । महात्माजीने उठाकर उसको हृदयसे छगा छिया । मस्तकपर हाथ फिराया और ब्रह्मतत्त्वका उपदेश कर दिया। अन्तःकरण गुद्ध होनेसे उपदेश आत्मसात् होने छगे और तदनुसार धारणा वनती गयी । अज्ञान मिट गया । ज्ञान तो था ही, आवरण दूर होनेसे उसकी अनुभूति प्रत्यक्ष हो गयी। साधक कृतार्थ हो गया।

वस्तुतः एक ओर क्रोधपर विजय पाना बहुत ही कठिन है तो दूसरी ओर क्रोधसे सभी साधन व्यर्थ हो जाते हैं, अतः परमात्मतत्त्वके जिज्ञासुको सर्वात्मना क्रोधको ही सर्वप्रथम वशमें करना चाहिये—

यत्क्रीधनो यज्ञति यच व्दाति नित्यं यद्वा तपस्तपति यच जुहोति तस्य। प्राप्नोति नैय किमपीह फलं हि लोके मोघं फलं भवति तस्य हि कोपनस्य॥ (वामनपुराण ४३ । ८९)

प्रमतस्वकी शासिके उपाय

श्रीविसष्ठजी कहते हैं श्रीराम ! चिन्मय आकाश-स्रह्म जो 'जीवात्मा' है, वही रजोगुणसे रक्षित होकर अपने खाभाविक स्ररूप—खप्रकाशपरताका स्याग न करता हुआ ही अहङ्कार, प्राण, देह और इन्डिय भादिके संघातरूप इस विरूप देहको भी अपनी आत्मा समझता है । असत्य होकर भी सत्य-सी प्रतीत होनेवाळी मृगतृष्णामें जल-बुद्धिके समान अपनी ही अविद्यामुलक वासनाकी भ्रान्तिसे जीव मानी क्षपने चिन्मयरूपसे भिन्नता-(जडदेहरूपता-)को प्राप्त होता है । जो छोग महावाक्यरूप शास्त्रसे दृज्य-प्रपञ्चको आगन्तुक समझकर निर्वाण-भावमें स्थित हैं, वे अन्तरात्माकी ओर उन्मुख हुई अपनी बुद्धिसे ही भवसागरसे पार हो जाते हैं। जो **छदारचेता पुरुष त्रिलोक्तीके वैभवको भी सदा तृ**णके तुस्य समझता है, उसे सारी जापसियाँ इस तरह छोड़ देती हैं, जैसे साँप अपनी केंचुळको । जिसके श्रीतर सदा सत्यरूप ब्रह्मका जमत्कार एकरित होता है, हसकी सारे छोकपाळ अखण्ड ब्रह्माण्डके समान एका करते 🖁 । अपार विपत्तिमें पड़नेपर भी कभी कुमार्गर्ये पैर नहीं रखना चाहिये। क्योंकि राष्ट्र अनुचित मागेसे अपृत पीनेका प्रयत्न करनेके कारण ही मृत्युको प्राप्त हो गया । जो पुरुष उपनिषद् आदि उत्तम शाख ब्लौर **डनके अनु**सार चलनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके सम्पर्करूपी सूर्यका, जो कि परमात्माका साक्षात्काररूपी तीव प्रकाश दैनेवाला है, आश्रय लेते हैं, वे फिर कभी मोहरूपी अन्यकारके वशीभूत नहीं होते । जिसने शम-दम बादि गुर्णोंके द्वारा यश प्राप्त किय है, वशमें न आनेवाले प्राणी भी उसके वशीभूत हो जाते हैं। उसकी सारी आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उसे अक्षय कल्याणकी प्राप्ति होती है। जिनका गुणोंके विषयमें संतोष नहीं है, जिनका शास्त्रोंके प्रति अनुराग है तथा

जिन्हें सत्य-पालनका खाभाविक अभ्यास है, वे ही वास्तवमें मनुष्य हैं। उनके अतिरिक्त जो दूसरे लेग हैं, वे पशुओंकी ही श्रेणीयें हैं। जिनकी यशक्रपी चन्नमकी चाँदनीसे प्राणियोंके हृदयक्षपी सरोवर प्रकाशित हैं, वे श्रीर-सागरके समान उज्जवल हैं। उनके शरीरमें निक्षय ही सगवान् श्रीहरिका निवास है।

परम-पुरुषार्थरूपी अयत्वका आश्रय हे एसम उच्चेम-को अपनाकर शास्त्रानुकूक छद्देगङ्गन्य कास्त्रण करता हुआ कौन पुरुष सिद्धिका भागी नहीं होता। वर्षांच वह सिदिका भागी अवस्य होता है। शासके वस्ता कार्य करनेवाले पुरुषको सिद्धियोंके छिये शीव्रता नही करनी चाहिये; क्योंकि चिरकालतक परिपद्य हुई सिंह ही पुष्ट एवं इत्तम फल्को देनेवाली होती है। बोक, क्लेका क्षीर भयका परित्याम करके घमंड कीर शीकताके धाप्रदक्ती छोड़कर शास्त्रके अनुसार व्यवहार करना चादिये । इसके निपरीत चळकर जपना विनास नही करना चाहिये । परिणायमें हुर्साच्य प्रदान करनेवाजे, दीम, शुस-फलसे रहित—जो धन, पुत्र बादि कैंकिड वस्तुओंकी चिन्ता है, वह मानो दीर्घकालतक की रहनेवाकी प्रमाद महानिदा है। इसे त्यागकर स्केट हो जाना चाहिये; विशुद्ध झानका प्रकाश प्राप्त का हैना चाहिये । व्यवहारपरायण पुरुषोंके विचारसे डोकनपरिके अनुसार तथा शास्त्र और सदाचारके अनुकूछ की करके उत्तम फलकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना वाहिये। जिनका चरित्र सदाचारसे सुन्दर तथा बुद्धि-विवेक्सी है और संसारके सुख-फलक्पी दु:खद दशाओंने जिस्की आसक्ति नहीं है, उस पुरुषके यहा, गुण और आए ये तीनों ही वसन्तऋतुकी छताओंके समान उत्तम पूर्व देनेके लिये शोभाके साथ विकासको प्राप्त होते हैं। (योगवा० स्थितिप्र० सर्ग ३२)

मगवचत्वकी शांतिका उपाय

श्वहो माग्य! सगझान् विष्णुने मुझे राजा वनाकर मेरे इदयमें अपनी भक्ति भर दी। यनन्तश्चयनतीयमें शेवशायी विष्णुके श्रीविप्रहको खर्ण और मणियोंकी मालाओंसे समक्कृत कर महाराज चोल मदोन्मत्त हो उठे, मानो वे वत्य मक्तोंसे कहना चाहते थे कि 'सगवान्की पूजामें मेरी स्पर्धा करना ठीक नहीं है। वे मगवान् विष्णुका दितन करने लगे।

'यह आप क्या कर रहे हैं ! देखते गई कि मगवान्का विप्रह रत्नोंकी माठाओंसे कितना रमणीय हो चछा है, नयनोंके लिये ! बार-बार तुल्सीदल्से आप रूप और मिणयोंको दक्कर मगवान्का रूप अझन्दर कर रहे हैं। महाराजने दीन ब्राह्मण विष्णुदासके हृदयपर आधात किया धनके मदमें । 'भगवान्की पूजाके लिये हृदयके माय-पुष्पकी आवश्यकता है, महाराज ! सोने और हीरेंग्रे अनका महत्त्व नहीं बाँका जा सकता । भगवान्की प्राप्ति पिलसे होती है।' विष्णुदासने चोक्शवासे निवेदन किया और विष्णुस्कका पाठ करने हो। 'देखना है, पहले मुझे भगवान्का दर्शन होता है या आपकी मिक सफल होती है।' राजाने काञ्चीनिवासी अपनी एक दिस प्रजाको चुनौती दी । वे राजधानीमें छोट आये।

महाराजाने मुद्रक ऋषिको आमिन्तित कर भगवान्के दर्शनके छिये विष्णुयज्ञका आयोजन किया। मास्ति। ताम्रणीं नदीके कल्रवसे निनादित उनकी राजधानी काश्रीमें स्वर्णयूपकी आमा ऐसी लगती थी, मानो अपने दिव्य वृक्षोंसमेत चैत्ररथ वनकी साकारश्री ही धरतीपर उत्तर आयी हो। वेदमन्त्रोंके मधुर गानसे यज्ञ आरम्म हो गया। काश्री नगरी शास्त्रज्ञ पण्डितों और मन्त्रदर्शी श्रीमें परिपूर्ण हो उठी। नगरीमें दान-दिश्लिणाकी वर्षा नित्य ही होने लगी।

इघर दीन ब्राह्मण भी क्षेत्रसंन्यास ग्रहणकर अनन्त-रायनतीयमें ही भगवान् विष्णुकी आराधना और

उपासना तथा अत आदिका जनुष्ठान करने करें। उनका प्रण या कि जनतक भगवान्का दर्शन नहीं मिल जायगा तनतक काम्बी नहीं जाऊँगा। वे दिनमें भोजन बनाकर भगवान्को भोग लगानेपर ही प्रसाद पाते थे।

एक समय छगातार सात दिनोंतक भोजन चोरी
चला गया । दुबारा भोजन बनानेमें समय न लगाकर वै
निराहार रहकर भगवान्का भजन करने लगे । सातवें
दिन वे छिपकर चोरकी राह देखने लगे । एक दुबळापतला चाण्डाल भोजन लेकर भागने लगा । वे करुणासे
द्रवीभूत होकर उसके पीछे घी लेकर दौड़ पड़े ।
चाण्डाल मूर्च्छित होकर गिर पड़ा तो विष्णुदास अपने
वक्षसे उसपर समीरका संचार करने लगे ।

'परीक्षा हो गयी, मक्तराज !' 'चाण्डाळके स्थानपर शक्क, चक्र, गदा, प्रश्न घारण किये साक्षात् विच्यु प्रकट हो गये । अतसीके इकके समान श्याम शरीरकी शोमा निराक्षी थी—इदयपर श्रीवत्स-चिइ था । वक्षपर कौल्तुम-प्रश्नि थी । मुकुट और पीताम्बरकी आमा अनुपम थी । श्रीविष्णुका दर्शन करते ही जिष्णुदासके इदयमें साच्चिक प्रेमका उदय हो गया । वे अचेत हो गये । वे उस मुष्ट्रित अवस्थामें नारायणको प्रणामतक न कर सके । सगवान्ने ब्राह्मणको अपना रूप दिया । विष्णुदास विमानपर बैठकर वेकुण्ठ गये । देवोंने पुष्पवृष्टि की, अप्सरा तथा गन्धवोंने नृत्य-गान किया ।

×

'यज्ञ समाप्त कर दीजिये, महर्षे!' चोलराजने मुद्रलका ध्यान आकृष्ट किया । उन्होंने विष्णुदासको विमानपर जाते देख लिया था। यह सोचकर कि मिक्त ही श्रेष्ठ हैं, महाराज धंधकते यज्ञकुण्डमें कृद पड़े । विष्णुभगवान् प्रकट हो गये । उन्हें दर्शन देकर वैकुण्ठ ले गये । विष्णुदास पुण्यशील और चोलराज सुशील नामसे नित्य विष्णुपार्यदके रूपमें प्रसिद्ध हैं । (पद्मपुराण उत्तर॰)

प्रमपद-शासिके उपाय

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं — 'रघुनन्दन! जबतक मन विळीन नहीं होता, तबतक वासनाका सर्वया विनाश नहीं होता और जवतक वासना विनष्ट नहीं होती, तबतक चित्त शान्त नहीं होता । जबतक परमात्माके तत्त्वका यथार्थ झान नहीं होता, तबतक चित्तकी शान्ति कहाँ और जबतक चित्तकी शान्ति नहीं होती, तबतक परभात्माके तत्त्वका यथार्थ ज्ञान महीं होता । जबतक वासनाका सर्वधा नारा नहीं होता, तवतक तत्त्वज्ञान कहाँसे होगा ! और जबतक तत्त्वज्ञान नहीं होता, तबतक वासनाका सर्वेषा विनाश नहीं होगा । इसल्रिये परमात्माका यथार्थ ज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय-ये तीनों ही एक-दूसरेके कारण हैं। खतः ये दुस्साच्य हैं, किंतु असाच्य नहीं । विशेष प्रयक्ष करनेसे ये तीनों कार्य सिद्ध हो सकते हैं। श्रीराम ! विवेकसे युक्त पौरुष प्रयत्नसे भोगेच्छाका दूरसे इी परित्यागकर इन तीनों साधनोंका अवलम्बन करना चाहिये। यदि इन तीनों उपायोंका एक साथ प्रयत्नपूर्वक मलीप्रकार बार-बार अभ्यास न किया गया तो सैकडों वर्पोतक भी परमपदकी प्राप्ति सम्भव नहीं । किंतु महाबुद्धिमान् श्रीराम ! वासनाक्षय, परमात्माका यथार्थ ज्ञान और मनोनाश—इन तीनोंका एक साथ दीर्घकालतक प्रयत्तपूर्वक अभ्यास किया जाय तो ये प्रमपदरूप फल देते हैं। * इन तीनोंका चिरकालतक प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने-अत्यन्त दृढ़ हृदयप्रन्थियाँ नि:शेषरूपसे टूट जाती हैं।

'श्रीराम ! यह संसारकी दृढ़ स्थिति सैकड़ों जन्म-जन्मान्तरोंसे मनुष्योंके द्वारा अभ्यस्त है, अतः चिरकालतक अम्यास किये बिना वह किसी तरह भी नष्ट नहीं हो सकती । इसिंख्ये चलते-फिरते, श्रवण करते, स्पर्श कारते, सूँघते, खड़े रहते, जागते, सोते—सभी अवस्थाओं में परम कल्याणके लिये इन तीनों उपायोंके अभ्यासमें लग

जाना चाहिये। तत्त्वज्ञोंका मत है कि वासनाओंके पित्यागके समान ही प्राणायाम भी एक उपाय है। इसिंखिये वासना-पित्यागके साथ-साथ प्राण-निरोधका भी अभ्यास करना आवश्यक है। वासनाओंका मलेगाँह परित्याग करनेसे चित्त भूने हुए बीजके समान अचितहर हो जाता है और प्राणस्पन्दके निरोधसे भी वित अचितरूप हो जाता है, इसलिये तुम जैसा उचित समझो, वैसा करो । चिरकालतक प्राणायामके अम्यासरे, योगाम्यासमें कुराल गुरुद्वारा बतायी हुई युक्तिसे, खिला आदि आसनोंकी सिद्धिसे और उचित भोजनसे प्राण-स्पन्दका निरोध हो जाता है।

साक्षात् अनुभव होनेगर परमात्माके खरूपका आदि, मध्य और वासना उत्पन्न नहीं होती । अन्तर्में कभी पृथक् न होनेवाले एकमात्र सत्यस्क्ष परमात्माको भलीमाँति यथार्थरूपसे जान लेना ही ज्ञान है। यह ज्ञान वासनाका सर्वथा विनाश का देता है तथा अनासक्त होकर व्यवहार करनेसे, संसास्त चिन्तन छोड़नेसे और शरीरको विनाशशील समझनेसे वासना उत्पन्न नहीं होती । जिस प्रकार पवन-सन्दर्भ शान्त हो जानेपर आकाशमें धूल नहीं उठती, वैसे ही वासनाका विनाश हो जानेपर चित्त विषयोंमें नहीं भटकता । बुद्धिमान् पुरुषको एकाप्रचित्तसे बारंबा एकान्तमें बैठकर प्राणस्पन्दके निरोधके लिये विशेष या करना चाहिये। जिस प्रकार मदमत्त दुष्ट हाथी अङ्करावे बिना दूसरे उपायसे वशमें नहीं होता, उसी प्रकार पवित्र युक्तिके बिना मन वशमें नहीं होता । अध्यात विद्याकी प्राप्ति, साधु-संगति, वासनाका सर्वया परिवा और प्राणस्पन्दका निरोध—ये ही युक्तियाँ विश्वा विजय पानेके लिये निश्चितरूपसे दृढ़ उपाय हैं।

⁽ योगवा॰ उप॰ ९२ । १७) चासनाक्षयविज्ञानमनोनाञ्चा महामते । समकालं चिराम्यस्ता भवन्ति फलदा मुने ॥

अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च। वासनासम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम्॥ पतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किछ। (योगवा० उप० ९२।३५–३६)

इनसे तत्काल ही चित्तपर विजय प्राप्त हो जाती है। हपर्युक्त इन चार युक्तियोंके रहते जो पुरुष हठसे चित्तको हरीभूत करना चाहते हैं, उनके सम्बन्धमें मेरा यही मत है कि वे दीपकका परित्याग करके अञ्चनोंसे अन्यकारका निवारण करना चाहते हैं। उपर्युक्त इन चार युक्तियोंको त्याग कर जो पुरुष चित्त या चित्तके निकटवर्ता अपने शरीरको स्थिर करनेके लिये यत करते हैं, उन इठ करनेवाले पुरुषोंको विवेकी लोग दुराप्रही समझते हैं। (योगवासिष्ठ, उपशम-प्रकरण)

नारदजीद्वारा पुण्डरीकको भगवत्तत्त्वका उपदेश और पुण्डरीकको भगवत्प्राप्ति

पुण्डरीक द्वादश भागवतोंमें अन्यतम हैं। ये वेद-वेदाङ्गमें पारंगत, तप और खाध्यायके प्रेमी, क्षमाशील **ब्राह्मण** थे । वे प्रतिदिन नियमसे त्रिकाल संघ्या, विष्णुका ध्यान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते थे। बल, ईधन और पुष्पादिके द्वारा उन्होंने बहुत दिनोंतक अद्धापूर्वक गुरुकी सेवा की थी। उनके मनमें अभिमान, हेष कुछ न था । इस प्रकार जब उनके अन्तःकरणकी ग्रुद्धि हो गयी और संसारके किसी भी पदार्थमें उनकी आसक्ति, ममता न रही तो वे प्रधान तीर्थोमें भ्रमण करते हुए शाल्प्रामक्षेत्र पहुँचे । यह स्थान बहुत ही रम्य, पवित्र, एकान्त तथा भगवदीय चिह्नोंसे भूषित या। यहाँ बढ़े-बड़े तत्त्वज्ञ महात्मा रहते थे । इस पुण्यतीर्थके ज्ञाशय और कुण्डोंमें स्नानकर वे वहीं रहकर परम भिक्तिके साथ भगवान्का सतत ध्यान करने छो। इन्होंने अपनी आराधनासे भगवान्को संतुष्ट कर लिया । भगवान्ने भी अपने परम भक्त देवर्षि नारदको बुळाका कहा--- 'नारदजी ! मैं भक्त पुण्डरीककी भक्तिसे बहुत प्रसन हूँ । आप उसकी भक्तिको और सुदृढ़ करनेके छिये उचित उपदेश दें।'

श्रीमगवान्की आज्ञासे देवर्षि नारद पुण्डरीकके पास पहुँचे । नारदजीको सामने उपस्थित देखकर पुण्डरीकने उन्हें अर्घादि देकर प्रणाम किया और कहने स्मे—प्रमो । आज मेरा जन्म सफड हो गया और मेरे

सभी पूर्वज मुक्त हो गये, अब आप मुझे कुछ उपदेश करें । पुण्डरीककी अभिमानशून्य सरल विनयपूर्ण वाणी सुनकर नारदजीको बड़ी प्रसन्तता हुई । वे बोळे— 'द्विजोत्तम! इस छोकमें अनेक प्रकारके मनुष्य हैं और जनके अनेकों मत हैं। नाना प्रकारके तकोंसे स**ब** अपने-अपने मतोंका समर्थन करते हैं, मैं सबके तकोंको समझकर जो निश्चित परमार्थतत्त्व है, वही तुमस्रे कहता हूँ । यह परमार्थतत्त्व गूढ है और सहज समझमें नहीं क्षाता । तत्त्ववेत्तागण प्रमाणोंद्वारा ही इसका प्रतिपादन कारते हैं। जो लोग सूर्ख हैं, वे केंबड प्रत्यक्ष और वर्तमान प्रमाणको ही मानना चाहते हैं। वे अनागत, असीत प्रमाणोंको स्तीकार नहीं करते। मुनिगण कहते हैं कि जो पूर्वरूप परम्परासे चळा आता है, वह भागम प्रमाण है । उसीसे परमार्थतत्वकी सिद्धि होती हैं। जिसके अभ्याससे ज्ञान होता है, राग-द्रेषका मल नष्ट होता है, वह प्रथम आगम है। जो कर्भ, कर्गफल, तत्त्व, विज्ञान, दर्शन और विमु है, जिसमें जाति आदिकी कोई कल्पना नहीं है, जो नित्य आत्म-क्रपमें संविदित है, जो सनातन, अतीन्द्रिय, चेतन, अपृत, अज्ञेय, अनन्त, अज, अविनाशी, अञ्यक्त, व्यक्त, व्यक्तमें स्थित और निरक्षन है, वही विश्वमें व्याप्त होनेके कारण विष्णु कहलाता है, उसीके और भी अनेक नाम हैं। प्रमार्थसे विमुख न्यक्ति उस योगियोंकी परम ध्येय वस्तुको प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे नहीं जान सकते।

देवर्षि नारदजी इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। धर्मात्मा पुण्डरीककी नारायणपरायणता और भी दृढ़ एवं उज्जल हो गयी । वे 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका जप करने छगे और भगवान्के अमृतमय मधुर घ्यानमें निमन हो गये । स्थिति यहाँतक पहुँची कि अमृतात्मक भगवान् गोविन्ददेव उनके हृदयक्तमल्पर आ विराजे। सारा अन्तःकरण भगवान्कं पवित्र ससगसे दीप्तिमान् और भगवन्मय हो गया । अब उनकी बुद्धि और मनमें भगवान् केशवको छोड़कर खप्नमें भी कोई बस्तु नहीं रह गयी । यहाँतक कि पुरुषार्थविरोधिनी निद्रा भी नष्ट हो गयी। पुण्डरीकजीने समस्त भुवनोंके एकमात्र साक्षी पुरुषोत्तम वासुदेव भगवान्की परम कृपासे अपनी इसी निष्पाप देहमें परम दिव्य वैष्णवी सिद्धिको प्राप्त किया । पुण्डरीकने देखा, उनका अङ्ग स्यामवर्ण हो गया है, चार भुजाएँ हो गयी हैं, जिनमें राष्ट्र, चक्र, गदा और पद्म है, पवित्र पीत वस्न है, तेजोमण्डलने उनके शारीरको घर लिया है और वे पुण्डरीकाक्ष बन गये हैं। वनके सिंह, व्याघ्र और अन्यान्य हिंसक पशु सहज ही सारे वैर-भावको मुलाकर उनके समीप एकत्र हो रहे हैं और प्रसन्न मनसे यथेन्छ प्रेमपूर्वक विचरण कर रहे हैं । इस प्रकार विरोधी जीव परस्पर हितेषी हो गये, नदी और सरोवरोंका जल प्रसन्न और मधुरतम बन गया, शीतल स्नुगन्ध मुखकर वायु बहने छगी, श्रातु मुप्रसन्न हो गयी, वनके वृक्षसमूह सुगन्धित और मधुर पुष्प-फल्मारसे नत हो गये । सभी पदार्थ पुण्डरीकके अनुकूछ और परम सुखकर हो उठे। मक्तवत्सळ देवदेवेश्वर भगवान्क प्रसन होनेपर समस्त चराचर जगत् प्रसन्न हो ही जाता है, समी जीव और प्रकृतिकी सारी वस्तुएँ इस

जगद्दन्य भक्तकी सेवाकर अपने जीवनको सफल करना चाहती हैं।

यों तो अब पुण्डरीकजीका देह, मन, बुद्धि, सब कुछ भगवन्मय ही हो गया था, परंतु भक्तके हृदयनिष कमलदललोचन भगवान् अपने भक्त पुण्डरीक्को जगत्प्रसिद्ध पावन बनाने और इस मक्तिका चरम पह देनेके लिये खयं अपने दिन्य मङ्गलविप्रहमें उनके सामने आविर्भूत हुए । भगवान्के हाथोंमें राह्न चक्र और गदा थी, एक हाथमें अभयमुद्रासे आप भक्तको आश्वासन दे रहे थे । भगवान्का प्रकाश करोड़ों सूर्योंके तुल्य था। करोड़ों चन्द्रमाओंके समान भगवान्के प्रत्येक अङ्गसे सुधा-वृष्टि हो रही थी। क्रोड़ों कामदेवोंके दर्पको चूर्ण करनेवाला भगवान्का सौदर्प था । भगवान्के नेत्र कमळके समान अत्यन्त सुन्दर और विशाल थे। चन्द्रविम्बकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाल भगवान्का मुख-कमल अत्यन्त सुशोमित हो रहा या। भगवान्के कानोंमें कुण्डल, गलेमें रत्नहार, वनमान, वक्षः स्थलपर लक्ष्मीजीकी मूर्ति और विप्रपदिचह विराजित थे । कीस्तुभमणि गलेमें सुरोमित हो रही थी। भगवान्के अधर और मोतियोंकी-सी दन्तपङ्कि अल्पत सुशोभित हो रही थी। मस्तकपर अति मनोहर मुक्ट था । स्कन्धपर चैतन्य ब्रह्मसूत्र विराजित था । देव, सिंद, गन्धवं, श्रेष्ठ मुनि, नाग और यक्ष भगवान्की सेवा का रहे थे। भाग्यवान् पार्षद चँवर, पंख और छत्र आदिरे भगवान्की सेवा कर रहे थे। पवित्रात्मा पुण्डरीकने भगवान्के इस अचिन्त्यसुन्दर दिव्य खरूपको देखका खत्यन्त प्रेमविद्धक और आनन्दपूर्ण वित्तसे दोनों हाप जोड़ किये और उनके चरणोंमें जिस्कर स्तुति कान भारम्स किया।

विविध मॉलिसे भगवान्की स्तुति कार्तेकारी
पुण्डरीककी वाणी बंद हो गयी। वे एकटक भगवार के मुखारियन्दकी मधुर शोआको देखने हुने। भवकी पित्र एवं अचिन्त्य दशाको देखकर उसकी समाधिको भंग करते हुए भगवान् गम्भीर खरसे बोले—'क्स पुण्डरीक ! में तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। जो मनमें आवे वह वर माँग लो।' पुण्डरीकने हर्य-गद्गद खरसे कहा—'भगवन् ! कहाँ मुझ-सरीखा अत्यन्त दुर्बुद्धि प्राणी और कहाँ आप-सदश सर्वज्ञ, परम सुहृद्द् खामी। आपके दुर्लभ दर्शनोंके बाद और क्या बस्तु शेष रह जाती है, यह मेरी समझमें नहीं आता। फिर भी आप माँगनेकी आज्ञा करते हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि भगवन् ! मेरे लिये जिसमें कल्याण हो, आप मेरे प्रति वही आज्ञा कीजिये।'

भगवान्नं, चरणोंमं पड़े एवं प्रेमाश्रुओंसे चरणोंको धोते हुए महाभाग पुण्डरीकको उठाकर हृदयसे लगा लिया और बोले—'सुन्नत ! तुम्हारा कल्याण हो । वत्स ! तुम मेरे साथ चलो और नित्यात्मा एवं जगत्के उपकारी होकर सदा-सर्वदा मेरी लीलामें मेरे साथ रहो ।'

मक्तवत्सल भगवान् के प्रीतिपूर्वक इतना कहते ही समस्त दिव्य लोकों में दुन्दु भियाँ वजने लगीं। आकाश से पुण्पोंकी वृष्टि होने लगी। ब्रह्मा आदि देवता 'साधु-साधु' ध्वनि करते हुए भगवान् और भक्तकी महिमा गाने लगे एवं सिद्ध, गन्धर्व और किंनर आनन्द में उन्मत्त होकर नाचने-गाने लगे। तदनन्तर समस्त लोकोंकों नमस्कारको प्रहण करते हुए देवदेव जगत्पित भगवान् अपने प्यारे भक्त पुण्डरीकको साथ लेकर गरु पर सवार हुए और देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। [पश्पपराण, उत्तरखण्ड अ० ८१]

्राजा बलिको भगवतत्त्वका साक्षात्कार

विरोचनने बिख्से कहा—पुत्र ! तुम्हारी इस श्रीतिक विश्वविजयसे कोई लाभ नहीं, यदि तुमने उस अद्भुत विश्वविजयसे कोई लाभ नहीं, यदि तुमने उस अद्भुत विश्वविजयसे कोई लाभ तथा मन्त्री रहते हैं, विजय ज पायी । महामते ! मनुष्यसे लेकर ब्रह्मपदतक सम्पूर्ण पदोंका अतिक्रमण करनेवाला—जो मन, बुद्धि, इन्द्रिय और हारीरका खामी शुद्ध आत्मा है, वही उस शरीर- देशके राजाके समान है। उसने बुद्धिगुक्त मनको अपना मन्त्री बनाया है । इस मन्त्रीको जीत केनेपर सबको जीत लिया जाता है और सब कुछ प्राप्त हो जाता है । परंतु उसे अत्यन्त दुर्जय समझना चाहिये । वह बळसे नहीं, मात्र युक्तिसे ही जीता जाता है ।

बलिने कहा—भगवन् ! उस मन्त्रीपर आक्रमण करनेके लिये जो युक्ति या उपाय हो, उसे बाप भक्तीभाँति बताइये, जिससे में उस भयंकर मनपर षिजय पा सक्तुँ ।

विरोखन बोळे—वेटा ! सभी विवयोंके प्रति सब पद्मासे जो शस्यन्त धनाखा (वैगुन्य) है, वही समप्त

विजय पानेके लिये उत्तम युक्ति है। यह अनास्या ही वह उत्तम युक्ति है, जिससे महान् मदमत्त मनरूपी मातङ्ग-(गजराज-)का शीव्र ही दमन किया जा सकता है। महामते। यह युक्ति अत्यन्त दुर्लभ और परम पुरुम् भी है । यदि इसके छिये अम्यास न किया जाय तो यह अत्यन्त दुर्लभ है। परंतु यदि इसके लिये भलीमाँति अभ्यास किया जाय तो यह अनायास ही प्राप्त हो जाती है। बेटा । यदि क्रमशः विषयोंसे विरक्ष होनेका अभ्यास किया जाय तो जैसे सींचनेसे छता **छह्छहा उठती है, उसी प्रकार यह विरक्ति भी सब** ओरसे सुस्पष्टतः प्रकट हो जाती है । पुत्र ! जैसे बोये बिना धान नहीं प्राप्त होता, वैसे ही यदि विरक्तिके लिये अभ्यास नहीं किया जाय तो विषय-लोलुप पुरुष क्तिना भी क्यों न चाह, उस क्रांक नड़ी माळ सकती, अतः तुम विरक्तिको भी अभ्यासके द्वारा दढ करो संसारक्पी गतमें निवास करनेवाले ये जीव तबतक नाना प्रकारके दुःस्त्रीमें भटकते रहते हैं, सबतक इन्हें विष्योंदे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैराग्य नहीं हो जाता । जैसे कोई अत्यन्त बलवान् शरीरवाला मनुष्य भी यदि पैर ठठाकर कहीं जाय नहीं तो वह देशान्तरमें नहीं पहुँच सकता, उसी तरह कोई शारीरिक शक्तिसे सम्पन्न पुरुष भी यदि अभ्यास न करे तो वह विषयोंसे वैराग्य नहीं प्राप्त कर सकता । इसिंखये देइधारी मनुष्यको चाहिये कि वह जीवन्मुक्तिके हेतुभूत पूर्वकथित ध्येय नामक वासना त्यागकी अभिलाषा एवं चिन्तन करते हुए भोगोंकी ओरसे विरक्तिका अभ्यासपूर्वक विस्तार करे---ठीक वैसे ही, जैसे सींचने आदिके द्वारा ल्गायी हुई बेलको बढ़ाया जाता है । बेटा ! हुर्ष और अमर्षसे रहित ग्रुभ कर्मफलको प्राप्त करनेके लिये इस संसारमें परम पुरुषार्थके सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है। पुरुषार्थसे ही उसकी प्राप्ति होती है। संसारमें दैवचर्चा बहुत की जाती है, परंतु दैव कहीं देह धारण करके स्थित हो, ऐसी बात नहीं है । अवस्य होनेवाली जो भवितव्यता है--नियतिके द्वारा मिळनेवाळा जो अपने ही ब्रुमाञ्चम कर्मोंका फल है, उसीको शास्त्रोंमें दैव अथवा प्रारच्य नामसे अभिहित किया गया है।

प्रारम्थ-मोगरूप जो दैव है, उसे प्रम पुरुषार्थसे ही जीता जाता है। जीवात्मा पुरुष्ठ शरीर धारण करके पुरुषार्थसे जिस पदार्थका जैसे संकल्प करता है, इस छोकमें वह पदार्थ उसे उसी रूपमें प्राप्त होता है, दूसरे किसी रूपमें नहीं। बेटा! इस जगत्में पुरुषार्थके सिवा दूसरा कुछ नहीं है। अतः उत्तम पुरुषार्थका भाश्रय छे मोगोंकी ओरसे वैराग्य प्राप्त करे। जबतक मोगोंसे वैराग्य, जो संसार-बन्धनका विनाश करनेवाछा है, नहीं प्राप्त होता, तबतक विजयदायक परमानन्दकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जबतक मोहमें दाळनेवाछी विषयासिक बनी हुई है, तबतक भवदशारूपी झूळा चंचळ गतिसे आन्दोल्त होता रहता है अर्थात् जीवको संसारमें भटकलेवाछी अस्थिर अवस्था प्राप्त होती रहती है।

पुत्र ! अभ्यासके बिना विषयभोगक्रपी भुजङ्गमोंसे भरी हुई दु:खदायिनी दुराशा कदापि दूर नहीं होती।

बिलने पूछा—असुरेश्वर ! विषयोंकी ओरसे जे वैराग्य है, वह दृढ़तापूर्वक जीवके अन्तःकरणमें कैसे स्थित होता है ?

विरोचनने कहा—पुत्र ! आत्मसाक्षात्कारकाणी जीवके अन्तःकरणमें विषयभोगोंसे फलदायिनी लता विरक्तिरूपी फल अवस्य उत्पन करती है। आत्म-साक्षात्कार होनेपर विषयोंमें राग (आसक्ति)का अत्यन अभाव हो जाता है । इसलिये पुरुष पवित्र और तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा अति उत्तम विवेक-विचारसे परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार करे, साथ ही वह विषयोंकी आसक्तिसे सर्वथा मुक्त हो जाय। पवित्र एवं तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष दिनके दो भागोंमें अपने चित्तको वैराग्यपूर्वक परमार्थ साधनरूप सत्-शास्त्रके अनुशीयनमें लगाये, तीसरे भागमें एकान्तदेशमें स्थित होकर मनको सिचदानन्दघन परमात्माके ध्यानमें लगाये तथा चौथे भागमें अपने चित्तको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरुकी सेवा और आज्ञापालनमें लगाये । साधुस्रभाव (श्रेष्ट आचरण)को प्राप्त हुआ पुरुष ही ज्ञानोपदेश पानेका अधिकारी होता है। जैसे खच्छ वस्त्र ही उत्तम रंगकी प्रहण करता है, उसी तरह सदाचारी पुरुष ही ज्ञानोपदेशको अपने हृदयमें धारण करता है । वह विर एक बालकके समान है। इसे पवित्र वचनों, युक्तियों और शास्त्रके अनुशीलनसे धीरे-धीरे लाइ-प्या^{(के} साथ रिश्नाकर वशमें करना चाहिये। बेटा ! शुद्ध और सूक्म बुद्धिसे तृष्णा-आसिकका सर्वया अभाव करते हुए ही सचिदानन्द्घन परमात्माका चिन्तन करना चाहिये। क्योंकि परमात्माका साक्षात्कार होनेपर वृष्णा एवं बासिकका सर्वथा अभाव होता है और तृष्णा एवं आसक्तिका अभाव होनेपर परमात्माका साक्षात्कार होता

है। इस तरह ये दोनों बातें एक-दूसरेपर अवलिक्त है। इसिल्ये दोनों साधनोंको एक साथ करते रहना बाह्ये। जब भोग-समूहोंमें आसक्तिका अत्यन्ताभाव हो जाता है तथा परावरखरूप सिचदानन्दघन परमात्म-देवका साक्षात्कार हो जाता है, तब जीवको कभी नष्ट न होनेवाली सीमारहित परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। बिषयोंमें ही आनन्द मानकर उनका आखादन करनेवाले संसारी मनुष्योंको इस जगत्में कभी भी परमात्मतत्त्वके अवण बिना नि:सीम एवं निरितशय आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती। सकामभावसे किये गये यज्ञ, दान, तप और तीर्थ-सेवनसे तो खर्गादि सुख ही प्राप्त होते हैं। बात्माका यथार्थ ज्ञान हुए बिना उन तप, दान और तीर्थ-सेवनरूप सकाम साधनोंद्वारा जीवको कभी विषयोंसे बैराग्य नहीं होता।

पुत्र ! अपने परमपुरुषार्थके विना पुरुषकी बुद्धि किसी भी युक्तिसे कल्याणके हेतुभूत आत्मज्ञानमें प्रवृत्त गृहीं होती । भोगोंके सर्वथा त्यागसे प्राप्त होनेवाले परम पुरुषार्थके विना ब्रह्मपदकी प्राप्तिरूप परम शान्ति एवं परमानन्दकी उपलब्धि नहीं होती । परम कारणरूप परमात्माका यथार्थ बोध हो जानेपर मनुष्यको जैसी शान्ति प्राप्त होती है, वैसी ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त इस सम्पूर्ण जगत्में कहीं भी नहीं मिलती । बुद्धिमान

मनुष्य परम पुरुषार्थका आश्रय ले दैव (प्रारब्ध)को दूरसे ही त्याग दे तथा कल्याणरूपी भवनके द्वारको दृढ़तापूर्वक बन्द रखनेवाले अगेळा रूप जो भोग हैं, उनसे घृणा करे—उनकी ओरसे सर्वथा विरक्त हो जाय । भोगोंके प्रति वैराग्यसे परमात्मविषयक विचार उत्पन होता है और परमात्मविषयक विचार उदित होनेपर भोगोंकी ओरसे वैराग्य होने लगता है। जैसे समुद्र बादलको और बादल समुद्रको भरते हैं, उसी तरह ये दोनों साधन एक दूसरेके पूरक हैं । जैसे परस्पर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले सुदृद् एक-दूसरेके मनोरथ सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार भोगोंसे वैराग्य, परमात्मविषयक विचार और नित्य आत्मदर्शन—ये तीनों एक-दूसरेको पृष्ट करते हैं। मनुष्यको चाहिये कि पहले देशाचार और सदाचारके अनुकूछ तथा बन्धु-बान्धवोंकी सम्पत्तिके अनुरूप न्याययुक्त पुरुषार्थद्वारा क्रमशः धनका उपार्जन करे । उस धनके द्वारा कुळीन और गुणशाळी सजनोंको अपनाये उनकी सेवा करके उन्हें अपने अनुकृष बनाये । उन सत्पुरुषोंका सङ्ग करनेसे भोगोंकी ओरसे विरक्ति होने लगती है । तदनन्तर विवेक्सपूर्वक विचारका **उदय होता है । तत्पश्चात् शास्त्रोंके यथार्थका अनुभव** होता है। उसके बाद ऋमशः परमपद्खरूप परमारमाकी प्राप्ति होती है । (योगनासिष्ठ, उपश्चम-प्रकरण)

तत्त्वज्ञ संत एवं उनकी संगतिकी महिमा

श्रीविसिष्ठजी कहते हैं —श्रीराम! जो विवेकी पुरुष संसारसे विरक्त हो परमपद परब्रह्म परमात्मामें विश्राम कर रहे हैं, उनके लोभ, मोह आदि रात्रु खतः नष्ट हो गाते हैं। वे तत्त्वज्ञानी महात्मा न कोई अनुकृत वस्तु पाकर हर्षित होते हैं, न किसीके प्रतिकृत्न वर्तावसे अपित होते हैं। न आवेशमें आते हैं, न आहारका संप्रह करते हैं, न लोगोंसे डिह्मिन होते हैं और न ख्रमं ही लोगोंको उद्देगमें डालते हैं। वे किसी भी ब्रुरी-

अच्छी कामनासे इठपूर्वक कष्टसाध्य वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानमें नहीं प्रवृत्त होते हैं । उनका आचरण मनोरम और मधुर होता है । वे प्रिय और कोमछ वचन बोछते हैं । चन्द्रमाकी किरणोंके समान अपने सक्से अन्तःकरणमें आहाद प्रदान करते हैं । कर्त्तव्योंका विदेचन करते और क्षणभरमें ही विवादका निर्णय कर देते हैं । इनका क्षाचरण दूसरोंको छहेगमें डाइन्वेवाका नहीं होता है । वे सबके प्रति बन्धुमाव रखते हैं और बुद्धिमानोंके समान समुचित व्यवहार करते हैं। वाहरसे उनका आचरण सबके समान ही होता है, किंतु भीतरसे वे सर्वथा शीतल होते हैं। तत्त्वज्ञानी महात्मा शास्त्रोंके अयोंमें बड़ा रस लेते हैं । जगत्में क्या उत्तम, अधम अथवा भला-बुरा है, इसका उन्हें अच्छी तरह ज्ञान होता है। त्याज्य और प्राह्मका भी वे ज्ञान रखते हैं तथा प्रारम्थवश जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसका अनुसरण करते हैं। छोक और शास्त्रके विरुद्ध कार्योंसे वे सदा बिरत रहते हैं । सज्जनोंके बीच रहने या सत्सङ्ग करनेके रसिक होते हैं। घरपर आये हुए याचकरूपी भ्रमरका वे प्रफुछ कमछोंके समान अपने ज्ञानका अनावृत सुगन्य फैलाकर तथा उत्तम आश्रय एवं सुखद भोजन देकर भादर-सत्कार करते हैं। जनताको अपनी ओर खींचते 🖁 और छोगोंके पाप-ताप हर लेते हैं। वर्षाकालके मेबोंकी माँति वे स्निग्ध एवं शीतल होते हैं। धीर खमाववाले ज्ञानी पुरुष राजाओंके नाराक और देशको क्रिन-भिन करनेवाले व्यापक जन-क्षोभको उसी प्रकार रोक देते हैं, जैसे पर्वत भूकम्पको ।

ज्ञानी पुरुष चन्द्रमण्डलके समान सुन्दर अङ्गवाली गुणशाब्निनी पत्नीके समान विपत्तिकालमें उत्साद एवं धैर्य प्रदान करते हैं और सम्पत्तिके समय सुख पहुँचारे हैं। साधुपुरुष वैशाख मास या वसन्तके समान अपने

सुयशरूपी पुष्पसे सम्पूर्ण दिशाओंको निर्मल क्नाते. उत्तम फलकी प्राप्तिमें कारण बनते और कोकिलके समान मीठी बाणी बोलते हैं । आपदाओंमें, बुद्धिनाशके अवसरोंपर, भूख-प्यास-शोक-मोह तथा जरा-मरण— इन छ: ऊर्मियोंके प्राप्त होनेपर, व्याकुलताकी दशामें तथा घोर सङ्गट आनेपर साधुपुरुष ही सपुरुषे आश्रयदाता होते हैं । काल-सर्पसे भरे हुए असन भयङ्कर संसार-सागरको सत्सङ्गरूपी जहाजके विना दुसी किसी नौकासे पार नहीं किया जा सकता। उपर्यक्त उत्तम गुणोंमेंसे एक भी गुण जिसमें उपलब्ध हो, उसके उसी गुणको सामने रखकर उसमें दीखनेवाले सब दोवें-की उपेक्षा करके उसका आश्रय लेना चाहिये। सारे कामोंको छोड़कर सत्पुरुषोंका सङ्ग करे; क्योंकि यह सत्सङ्गरूपी कर्म निर्वाधरूपसे इहलोक और परनेक दोनोंका साधक होता है । किसी समय कहीं भी सत्पुरुषसे अधिक दूर नहीं रहना चाहिये। विनयपुष न्यवहार करते हुए सदा साधुपुरुषोंका सेवन करना चाहिये। क्योंकि सत्पुरुषके समीप जानेवाले मनुष्यका उसके शान्ति आदि प्रसरणशील उत्तम गुण अनायास ही लर्श करते हैं, जैसे सुगन्धित पुष्पबाले बृक्षके निकट जानेहे इसके पुष्प-पराग विका यत्नके ही सुक्य हो जाते हैं। (योगदाविष्ठ, निर्याणग्रहरण उ॰)

यो-सेवासे बहाड़ान

एक सदाचारिणी ब्राइणी थी । उसका नाम था नवाका । उसका एक पुत्र या सत्यकाम । वह जब विधाध्ययन करनेयोग्य हुआ तो एक दिन अपनी मातासे कहने क्या—'माँ ! मैं गुरुकुकों निवास करना चाहता हूँ, गुरुजी जब मुखसे नाम, गोत्र पूछेंगे तो मैं अपना नोब क्या बताकँगा ?' इसपर ब्राइणीने कहा 'पुत्र ! मुसे तेरे पितासे नोब पूछनेका अवसर ही प्राप्त न हुआ; क्योंकि उन दिनों में सदा अतिथियोंकी सेनाने ही व्यक्त रहती थी। अतएव जब आचार्य तुमसे गोत्रादि पूछें हो तुम बस हतना ही कह देना कि ने जवाकाका पुत्र सत्यकाम हूँ। भाताकी आहा कि सत्यकाम हारिहुमत गीतमऋषिक यहाँ गया की सत्यकाम हारिहुमत गीतमऋषिक यहाँ गया की बाब करने वोका—'में श्रीमान्क यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक सेना करने खादा हूँ। जाचार्यने यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक सेना करने खादा हूँ। जाचार्यने यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक सेना करने खादा हूँ। जाचार्यने यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक सेना करने

है ! सत्यकामने कहा—'भगवन् ! मेरा गोत्र क्या है, इसे मैं नहीं जानता । मैं सत्यकाम जावाल हूँ; बस, इतना ही अपने सम्बन्धमें जानता हूँ ।' इसपर गौतमने कहा—'बत्स ! ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई भी इस प्रकार सरल भावसे सची बात नहीं कह सकता । जा और थोड़ी समिधा ले आ । मैं तेरा उपनयन-संस्कार करूँगा ।'

सत्यकामका उपनयन करनेके बाद चार सौ दुर्बल गायोंको उसके सामने लाकर गौतमने कहा—'तू इन्हें बनमें चराने ले जा। जबतक इनकी संख्या एक हजार न हो जाय, इन्हें बापस न लाना।' उसने कहा— भगवन्! इनकी संख्या एक हजार हुए बिना मैं न कोह्रँगा।'

सत्यकाम गायोंको लेकर वनमें गया । वहाँ वह कुटिया बनाकर रहने लगा और तन-मनसे गौओंकी सेवा करने लगा । धीरे-धीरे गायोंकी संख्या प्री एक हजार हो गयी । तब एक दिन एक दृषभ-(साँड-)ने सत्यकामके पास आकर कहा—'वत्स ! हमारी संख्या एक हजार हो गयी है, अब तुम हमें आचार्यकुलमें पहुँचा दो । साथ ही ब्रह्मतत्त्वके सम्बन्धमें मैं तुम्हें एक चरणका उपदेश देता हूँ—'वह ब्रह्म प्रकाशस्वरूप हैं । इसका दूसरा चरण तुम्हें अनिदेव बत्रलायेंगे।'

सत्यकाम गौओंको हाँककर आगे चळा। संध्या होनेपर उसने गायोंको रोक दिया और उन्हें जळ पिळाकर वहीं रात्रि-निवासकी व्यवस्था कर दी। तत्पश्चात् काष्ठ लाकर उसने अग्नि जलायी। अग्निने कहा—'सत्यकाम! मैं तुझे ब्रह्मका द्वितीय पाद बतलाता हूँ, वह 'अनन्त' लक्षणात्मक है, अगले पादका उपदेश हसे करेगा।'

दूसरे दिन सायंकाल सत्यकाम पुनः किसी सुन्दर जलाशयके किनारे ठहर गया और वहाँ उसने गीओंके रात्रिनिवासकी व्यवस्था की। इतनेमें ही वहाँ एक हंस उड़ता हुआ आया और सत्यकामके पास बैठकर बोला—'सत्यकाम!' सत्यकामने कहा—'भगवन्! क्या आज्ञा है !' हंसने कहा—'में तुझे ब्रह्मके तृतीय पादका उपदेश करता हूँ, वह 'ज्योतिष्मान् है। चतुर्थ पादका उपदेश तुझे मुद्ग (जलकुक्कुट) पक्षी करेगा।'

दूसरे दिन सायंकाल सत्यकामने एक वटवृक्षके नीचे गौओंके रात्रिनिवासकी व्यवस्था की तथा अग्नि जलाकर वह वहाँ बैठ ही रहा था, तभी एक जलमुर्गने आकर उसे पुकारा और कहा—'वत्स ! मैं तुझे ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश करता हूँ । वह आयतन-खरूप है।'

इस प्रकार उनसे सिंबदानन्द्धन-छक्षण परमात्माका वोध प्राप्त करके एक सहस्त्र गौओंको साथमें लेकर सत्यकाम आचार्य गौतमके यहाँ पहुँचा । आचार्यने उसकी चिन्तारहित, तेजपूर्ण दिज्य मुखकान्तिको देखकर कहा—'करस! त ब्रह्मज्ञानीके सदश दिखळायी पदता है ।' सत्यकामने कहा—'भगवन् ! मुखे मनुष्येतरोंके विधा मिळी है । मैंने मुना है कि आपके सदश आचार्यके द्वारा प्राप्त हुई विधा ही श्रेष्ठ होती है, अतएव मुझे आप ही पूर्णक्रपसे उपदेश कीजिये ।' आचार्य बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'कर्स! त्ने जो प्राप्त किया है, वही ब्रह्म तत्त्व है ।' आचार्यने सत्यकामके प्रति पुनः उस सम्पूर्ण तत्त्वका ठीक उसी प्रकार उपदेश किया ।

—जा० श० (छान्दोग्य० ४ । ४—६)

अमियोंद्वारा ब्रह्मतत्त्वका उपदेश

सत्यकाम जात्राल जब आचार्य हुए, तव उनके ब्रह्मचयपूर्वेक उपकोसङ पुत्र कमलका यहाँ अध्ययन करने आया । उसने बारह वर्षोतक भाचार्य एवं अग्नियोंकी उपासना की । आचारने अन्य सभी ब्रह्मचारियोंका समावर्तन-संस्कार कर दिया और उन्हें घर जानेकी आज्ञा दे दी, पर उपकोसळको ऐसा नहीं किया । इससे उपकोसलके मनमें दु:ख हुआ। गुरु-पत्नीको भी उसपर दया आयी। उसने अपने पतिसे कहा-इस ब्रह्मचारीने बड़ी तपस्या की है, ब्रह्मचर्यके नियमोंका पाळन करते हुए विद्याध्ययन किया है । साथ ही आपकी तथा अग्नियोंकी विविधूवक परिचर्या की है । अतएव कृपया इसको उपदेशकर इसका भी समावर्तन कर दीजिये। अन्यथा अग्नि आपको उलाह्ना देंगे, परंतु सत्यकामने बात अनसुनी कर दी और बिना कुछ काई ही वे कहीं अन्यत्र यात्रामें चले गये।

उपकोसल्को इससे बड़ा क्लेश हुआ । उसने अनशन आरम्भ कर दिया । आचार्यपत्नीने कहा— 'ब्रह्मचारी ! तुम भोजन क्यों नहीं करते ।' उसने कहा— 'माँ ! मुझे बड़ा मानसिक क्लेश है, इसल्प्ये भोजन नहीं कल्गा !'

अग्नियोंने सोचा—'इस तपखी ब्रह्मचारीने मन लगाकर हमारी बहुत सेवा की है, अतएव इसे तलका उपदेश करके इसके मानसिक क्लेशको मिटा दिया जाय।' ऐसा विचार करके उन्होंने उपकोसलको ब्रह्मविद्यां यथोचित उपदेश दे दिया। तदनत्तर दुछ दिनों बाद उसके आचार्य सत्यकाम भी यात्रासे छेटे। इधर उपकोसलका मुखमण्डल ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रहा था। आचार्यने पूछा—'सौम्य! तेरा मुख ब्रह्मचेचा-जैसा तेजली दीख रहा है, बता, तुझे ब्रह्मका उपदेश किसने किया ?' उपकोसलने बड़े संकोचसे सारा ब्रतान सुनाया। इसपर आचार्यने कहा—'यह सब उपदेश तो लौकिक है। अब मुझसे तुम उस अलौकिक ब्रह्मतत्वका उपदेश सुनो, जिसे मली प्रकार जान लेनेपर, साक्षात् कर लेनेपर प्राणीको पाप-ताप उसी प्रकार स्पर्ध नहीं कर पाते, जैसे कमलके पत्तेको जल।'

इतना कहकर आचार्यने उपकोसलको ग्रुद्ध हस्तलको रहस्यका उपदेश किया और समावतन-संस्कारका उसे घर जानेकी आज्ञा दे दी।—जा० श० (छान्दोय० ४। १०-१५)

दृश्यजगत्की चैतन्यरूपता, अनिर्वचनीयता, असत्तां तथा ब्रह्मसे अभिन्नताका प्रतिपादन

श्रीविसष्ठिजी कहते हैं—रघुनन्दन! चिन्मय परमात्मा ही इस दश्य-प्रपञ्चके रूपमें ज्याप्त है। इसिल्ये ये घट, गहुं और पट आदि सब पदार्थ वस्तुत: ग्रुद्ध चैतन्यरूप ही हैं। जैसे खप्नमें ग्रुद्ध चेतना ही घट-पटादि पदार्थोंके रूपमें भासित होती है और जैसे जल ही-तरंगरूपमें प्रतीत होता है, वसे ही विश्रुद्ध चेतन-तत्त्व ही इस दश्य-रूपमें प्रकाशित हो रहा है। तत्त्वज्ञ पुरुष घट-पट आदि समस्त मौतिक पदार्थोंको ब्रह्मघन, चैतन्यघन, परमार्थम और शान्तखरूप एकरस आनन्दघनका ही प्रसार मानते हैं।

श्रीराम । आत्मस्याति, असत्स्याति, अस्याति और अन्यथास्याति—ये जो शब्दार्थ-दृष्टियाँ हैं, तत्त्वानी पुरुषके क्रिये खरहेके सींगकी माँति असत् मात्र हैं। हिन्देशे कोई कभी भी सम्भव नहीं है। केवक नेष्टाश्र्या

शान्तसक्रप, व्यावहारिक नाम आदिसे रहित, ज्ञाता (साझी) परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान हैं। वह जो विनाय प्रकाशके एफरणासे आकाशखळप शरीर (मूर्त जगत्), जो कि विना दीवालके चित्र-सा पदार्थोंकी सत्तामात्र है, प्रतीत होता है, वास्तवमें अविनाशी ही है। जैसे जलमें तरङ्गें होती हैं, उसी प्रकार शान्तखरूप परमात्मामें सदा और सर्वत्र यह जगत् चिन्मयरूपसे ही विद्यमान है । जगत् जिस रूपमें प्रतीत हो रहा है, वैसा प्रतीत होता हुआ भी चेतनाकाशरूप होनेके कारण न सर्वथा असत् है और न सत् ही। सारा दृत्य कुछ है और नहीं भी है । यह सर्वथा अनिर्वचनीय है। जिस रूपमें इस जगत्की स्थिति है, ऐसा ही इसका ह्रप है, या ऐसा नहीं है, यह सत् है या असत् है—संसारचक्रके विषयमें उठनेवाले इन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर—जगत्का यथार्थ खरूप तत्त्वज्ञानी महात्मा ही जानता है, दूसरा नहीं। 771715660....

अकाशका स्फरण हो रहा है, उसीने उसीको जगत् समझा है। तत्वज्ञान होनेके पश्चात् वह जगत् कहाँ टिक पाता है? पूर्णपरब्रह्म परमात्मासे ही यह पूर्ण ब्रह्मम्य जगत् उसके प्रकट न करनेपर भी प्रकट हुआ-सा प्रतीत होता है। यह प्रतीति भी ज्ञानखरूप परमात्मा ही है। जो खयं मेरे अनुभवमें आ रहा है, उस आत्मतत्त्वको इस प्रकार अत्यन्त विशदरूपसे बारंबार उच्चखरसे प्रकट कर रहा हूँ तो भी कुछ मन्दाधिकारी छोगोंके भीतर जो मूढ़ता घर किये बैठी है, वह खप्न-तुल्य जगत्में यह जाप्रत् सत्य ही है, ऐसे विश्वासका आज भी त्याग नहीं कर रही है। वह महान् खेदका विषय है। जो समझदार होनेके कारण तत्त्वज्ञानका अधिकारी है, वह भी उस भान्त धारणाको शीघ्र नहीं छोड़ रहा है। यह कैसा मोह है।

(योगवासिष्ठ, निर्वाणप्रकरण उ॰)

भगवत्तत्त्वके साधक-धर्म--जहाँ भगवान् रहते हैं

एक समय बहुत-से ब्राह्मणोंने भगवान् व्यासजीसे किसी ऐसे यज्ञकी विधि पृष्टी, जिसका अनुष्ठान समी वर्णोंके छोटे-बड़े सब छोग कर सकते हों और जिसके करनेसे मनुष्य देवताओंका भी पूज्य बन सकता हो। व्यासजीने उनका उत्तर देते हुए कहा —मैं आपछोगोंको पाँच आख्यान सुनाता हूँ। इन आख्यानोंके अनुसार व्यवहार करनेसे खर्ग, यश और मोक्षकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। (१) माता-पिताकी सेवा, (२) पित्र-द्रोह न करना और (५) मगवान् विष्णुकी मिक्त करना—ये पाँच महायज्ञ हैं।

हे ब्राह्मणो ! मनुष्य माता-पिताकी सेवासे जिस जो पुत्र माता-पिताक चर्प पुण्यको प्राप्त होता है वह पुण्य सैकड़ों यज्ञ और तीर्थ- उसके पाप नष्ट हो जा जबानसे मातापिताका अ यात्राहिसे भी नहीं मिळता रिट-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पिता धर्मः पिता खर्गः पिता ही परमं तपः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

'पिता ही धर्म है. पिता ही खर्ग है, पिता ही परम
तप है; पिताके प्रसन्न होने से सारे देवता प्रसन्न होते
हैं।' जिस पुत्रकी सेवासे और गुणोंसे माता-पिता
प्रसन्न होते हैं, वह गङ्गा-स्नानका फल पाता है।
माता सर्वतीर्थमयी और पिता सर्वदेवमय हैं। ऐसे मातापिताकी जो पुत्र प्रदक्षिणा करता है, वह पृथ्वीभरकी
प्रदक्षिणा कर लेता है। माता-पिताको प्रणाम करते
समय जिसके दोनों घुटने, दोनों हाथ और मस्तक
पृथ्वीपर टिकते हैं, वह अक्षय खर्ग प्राप्त करता है।
जो पुत्र माता-पिताके चरण धोकर चरणामृत लेता है,
उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो नीच मनुष्य कड़ी
जवानसे मातापिताका अपमान करता है, वह बहुत

कालतक नरकमें रहता है। जो अधम पुत्र माता-पिताकी सेवा किये जिना ही भोजन करता है, वह बरनेपर कृमिकूप नामक नरकमें जाता है। जो मनुष्य रोगी, युक, इत्तिहीन, अन्वे या बहरे पिताका त्याग कर देता है, वह रीरव-नरकमें जाता है। माता-पिताका पालन म करनेसे मनुष्यके समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं और हसे क्लेब्झ-चाण्डलादि योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। माता-पिताकी सेवा न करके तीथसेवा या देवाराधना करनेसे उनका फल नहीं मिलता। हे ब्राह्मणो ! इस सम्बन्धमें एक पुराना इतिहास कहता हूँ, मन क्याकर सुनो।

प्राचीनकालमें नरोत्तम नामक एक ब्राह्मण था । बष्ट माता-पिताकी सेवा छोड़कर तीर्थयात्राके छिये घरसे निकला। तीर्थसेवाके बलसे उसकी नहाकर धोयी हुई बोती प्रतिदिन बिना आधारके ही आकासमें छड़कार स्खने लगी । इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर एस ब्राह्मणको अहङ्कार हो गया और वह कड़ने क्या कि मेरे समान पुण्यवान् और यशकी मनुष्य संसारमें बुद्धहा मृहीं है। उसी समय एक बगुलेने उसके मुँहपर बीट कर दी। इससे उसको बड़ा क्रोध हुआ और उसने बगुलेको शाप दे डाळा । शाप देते ही बगुला पृथ्वीपर गिरकर भस्म हो गया । इस जीवहिंसाके फलसे ब्राह्मणके मनमें मोह हो गया । उसकी गीली घोती जो अवतक बिना आश्रारके ही आकाशमें सूखती हुई उसके साय **हड़**ती चळती थी, वह अब नहीं चळी । जीवहिंसाके पापसे उसकी यह सिद्धि जाती रही । इस घटनासे **ग्रा**सणको बड़ा दु:ख हुआ । तब यह आकारावाणी हुई कि है श्रह्मण ! तुम परम धार्मिक मूक चाण्डालके पास जाओ । वहाँ जानेपर तुम्हें धर्मके वास्तविक मर्मका पता छगेगा और उसके उपदेशसे तुम्हारा मङ्गल होगा ।'

इस आकाशवाणीको सुनकर ब्राह्मण मूक चाण्डाळके घर गया । वहाँ जाकर ब्राह्मणने देखा कि वह चाण्डाळ

सबेरेसे माता-पिताकी सेवामें खगा हुआ है। बाहेक दिनोंमें वह गर्म जल, तेल, अग्निताप, ताम्बूल और बहुत-सी रूईके विछोने आदिसे उनकी सेवा काला। बह चाण्डाल रोज उनको खानेके लिये मधुर अस और दूध देता । बसन्त-ऋतुर्ये मधु, सुगन्धित माडा और अन्यान्य इचिकर पदार्थोंसे तथा गर्मीके दिनोंमें पंढेते हवा करके उनकी सेवा करता ! नित्य उनकी सेवा करनेके वाद वह भोजन करता । इस प्रकार वह चाण्डाल सर्वदा माता-पिताकी थकावट मिटाने और उनको सुख पहुँचानेके काममें लगा रहता। इसके इस पुण्यबलसे विष्णुभगवान् उसके घरमें बहुत दिनींसे निवास करने छगे थे। ब्राह्मणने उस चाण्डाळके वर्षे एक ऐसे कमरेमें, जो विना ही खम्मोंके खड़ा था, निमुवनेश्वर, परमपुरुष, अन्य प्राणियोंसे अतुल्नीय सेपी-यय महातत्त्व विन्णुभगवान्को सुन्दर प्राक्षण-शरीरि चाण्डालके घरकी शोभा बढ़ारी हुए देखा। तदनसार एसने आश्रयमें भरकर मुक चाण्डाक्से कहा कि 'चाण्डाल ! तु मेरे पास आ । में तेरी सहायतारे परमपद पानेकी इच्छा करता हूँ । सब छोगोंके छिये, खासकर मेरे लिये जो हितकर हो, मुशको द वही उपदेश कर ।' सूकने कहा—'में इस समय अपने माता-पिताकी सेवामें लगा हूँ, आपके पास कैसे आउँ! इनकी सेवा कर चुकनेपर आपका काम करूँगा। भाप दरवाजेपर ठहरिये, मैं आपका आतिथ्य करूँगा।

चाण्डालकी यह बात मुनकर ब्राह्मणने कुद्ध होका कहा—'मैं ब्राह्मण हूँ, मुझको छोड़कर ऐसा कीन-सा श्रेष्ठ कार्य है जिसे त् करना चाहता है ! मूकने कहा—'हे ब्राह्मण! आप व्यर्थ ही क्यों कीय करते हैं ! मैं बगुला नहीं हूँ जो आपके क्रोधसे जल जाज । आकाशमें अब आपकी धोती नहीं स्वती, आप आकाशमें अब आपकी धोती नहीं स्वती, आप आकाशवाणी सुनकर यहाँ आये हैं, इस बातकी मैं

बानता हूँ। ज्ञाप जरा ठहरिये, में उपदेश हूँगा। शीव्रता हो तो ञ्राप पतिवताके पास जाइये, वहाँ जानेसे बापका कार्य सफल होगा।

इसके बाद मारागरूपी भगषान् विष्णुने पुक्तके बारी निकलकार नरोत्तमसे कहा कि 'चलो, मुझे भी हसी पतिमताके वर जाना है। नरोत्तम कुछ सोचता हुआ उनके साथ हो लिया । रास्तेमें आश्चर्य प्रकट करते हुए नरोत्तमने ब्राह्मण-वेषधारी विष्णुसे पूछा कि 'निप्रवर ! आप स्थियोंसे युक्त चाण्डालके घरमें सदा क्यों रहते हैं ?' हरिने कहा, 'अभी तुम्हारा चित्त शुद्ध नहीं हुआ है । पतित्रता आदिसे मिलनेके बाद तुम मुशे पड़चान सकोगे। गरोत्तमने कहा, 'हे द्विज! षद् पतिवता कौन है ! उसमें ऐसी कौन-सी महान् वात है जिसके छिये में वहाँ जा रहा हूँ ?' हरिने कहा, धीसे नदियोंमें मुझा, मनुष्योंमें राजा और देवताओंमें मनार्दन श्रेष्ट हैं, वेसे ही खियोंमें पतित्रता प्रधान है। को पतित्रता जी नित्य पतिके प्रियहित कार्यमें रत है बह दोगों कुळोंका उद्धार करती है और प्रख्यकाळ-पर्वन्त बर्गमें रहती है। उसका पति अगर खर्गसे गिरता है हो वह सार्वभौम राजा होकर पृथ्वीपर जन्म छेता है बौर पतिवता उसकी रानी होकर मुख-मोग करती है। इस प्रकार बारंबार खगराज्यका उपमोग करनेके अनन्तर वै दोनों मुक्त हो , जाते हैं। नरोत्तमने फिर पूछा कि 'यह पतित्रता कौन है ? उसके क्या उक्षण हैं ? मुखे ययार्थ रूपसे समझाइये । हरिने कहा, 'जो स्त्री पुत्रकी भपेक्षा सौं गुने स्नेहसे पतिकी सेवा करती है और शासनमें उसे राजाक समान मानती है, वही स्त्री पतित्रता है। कहा गया है--

कार्ये दासी रतौ रम्भा भोजने जननीसमा। विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता॥

'जो स्त्री काम-काजमें दासी, रतिकालमें रम्भा, मोजन करानेमें जननीके समान होती है और विपत्तिकालमें सत् परामर्श देनेवाली होती है, वहीं पतिवता है। जो श्री मन, वाणी, शरीर या कमसे कभी पतिके विरुद्ध आचरण नहीं करती, वही पतिवता है।

नाम विश्व अपने पितकी सेजपर ही सोती है, निस्य पितकी सेवा करती है, कभी मत्सरता, कृपणता या अभिमान नहीं करती, मान-अपमानमें पितको समानभावधे ही देखती है, वही साक्षात् पितकता है। जो सती जी सुन्दर वस्ताभूषणधारी पिता, भाता और पुत्रको देखकर भी उन्हें परपुरुष समझती है, वही ययार्ष पितक्रता है। हे द्विजवर ! तुम उस पितक्रताक पास जाकर अपनी मन:कामना उससे कहो। तुम जिसके घर जा रहे हो, उस ब्राह्मणकी आठ ब्रियाँ हैं, उनमें जो रूपयौवनसम्पन्ना, यशिखनी और दयावती है उसीका नाम शुमा है, वह प्रसिद्ध पितक्रता है। तुम उसके पास जाकर अपने द्वितकी बात उससे पूछो। उतना क्यूकर समबान हिर अन्तर्धान हो गये।

गरोशसको छनके अन्तर्वान होते देखकर बड़ा बाध्ययं द्वया । नरोत्तमने इस पतिनताके वर पहुँचकर एससे अपने हितकी बात पूछी । पतिनता सती अतिथि-क्षी बात सुनकर घरके बाहर आयी और ब्राह्मणको दिखकर दरवाजेपर खड़ी रह गयी ! ब्राह्मणने पतिव्रताको देखकर इपके साय कहा—'साव्वि ! आपको जो कुछ माछ्म है, उसे मेरे हितके लिये कहिये। पतिव्रताने कहा- 'इस समय तो मुझे पतिकी सेवा करनी है, मुझे अभी फुरसत नहीं है, पीछे आपका काम कहँगी; आज आप यहीं आतिथ्य ग्रहण करें। श्राह्मणने कहा, 'कल्याणि ! मुझे आज भूख, प्यास या थकावट कुछ भी नहीं है । मैं जिस विषयको जानना चाहता हूँ उसे आप बतला दें, नहीं तो आपको शाप दूँगा। इसपर पतित्रताने कहा कि—'हे द्विजोत्तम! मुझे आप वह बगुला न समझें ! आप धर्मतुलाधारके पास जाकर उससे अपने हितकी बात पूछें, वे आपको हितोपदेश करेंगे !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाभागा जुमा इतना कहका घरके अंदर चली गयीं । इसके बाद नरोत्तमने उसके घरमें जाकर देखा कि वही ब्राह्मण जो मूक चाण्डालके घरमें या और बहुत दूरतक साथ-साथ आया था, यहाँ भी बैठा हुआ है । नरोत्तमको इससे बड़ा अचम्मा हुआ, उसने ब्राह्मणरूपी विष्णुके पास जाकर कहा कि देशान्तरमें मेरे सम्बन्धमें जो घटना हुई थी, माल्रम होता है आपने ही इन लोगोंसे उसे कह दिया है, नहीं तो चाण्डाल भौर इस पतित्रताको मेरी उस घटनाका हाल कैसे माञ्चम होता ?' हरिने कहा—'भूतभावन महात्माछोग अपने पुण्य और सदाचारके बलसे सभी बातें जान सकते हैं। पतित्रताने तुमसे क्या कहा है वह मुझे बतलाओ । नरोत्तमने कहा, 'मुझे पतिव्रताने धर्म-तुलाधारके पास जाकर प्रश्न करनेका आदेश किया है। हरिने कहा- अच्छी बात है, तुम मेरे साथ चलो, मैं भी वहीं जाऊँगा। इतना कहकर हरि चलनेको तैयार हो गये। नरोत्तमने पूछा—'उस धर्मतुङाधारका मकान कहाँ है !' हरि बोले—'जहाँपर छोग बहुत-सी चीजें खरीदते-बेचते हैं, उसी वाजारमें तुलाधार रहते हैं। छोग धान, रस, तैल, अन्न आदि वस्तुएँ उसके धर्मकाँटेपर तौलाकर देते-लेते हैं । वह नरश्रेष्ठ प्राण जानेपर भी कभी झ्ठ नहीं बोळता। उसके इसी कामसे उसका नाम धर्मतुलाधार पड़ गया है। हरिके इतना कहते-कहते ही नरोत्तम तुलाधारके पास पहुँच गया । देखा. कि तुलाधार बहुत-सा रस बेच रहा है। उसका शरीर मैंछा-कुचैछा हो रहा है। वह लेन-देन-सम्बन्धी अनेक प्रकारकी वातें कर रहा है, अनेक प्रकारके नर-नारियोंने उसे चारों ओरसे घेर रखा है । तुळाधारने ब्राह्मणको देखते ही कहा, 'क्यों, क्यों ! क्या काम है !' यों उसकी बात सुनकर ब्राह्मणने मधुर वाणीसे कहा— 'भाई ! मैं तुम्हारे पास धर्मोपदेश प्रहण करने आया हूँ, तुम मुझे उपदेश करो । गुलाधारने कहा—'महाराज !

अभी तो मेरे प्राहकोंकी भीड़ लग रही है, एक पूर राततक मुझे फुरसत नहीं मिलेगी। आप मेरे कहनेसे धर्मीकरके पास जाइये । वगुलेकी हिंसाका दोष और आकाशमें धोती न सूखनेका कारण आदि सभी वातें वे आपको वतला सकते हैं। उनका नाम अद्रोहक है । वे बड़े ही सज्जन हैं । उनके उपदेशसे आएके सम्पूर्ण काम सफल हो सकेंगे। तुलाधार ब्राह्मणसे इतना कहकर फिर अपने लेनदेनमें लग गया। तव नरोत्तमने ब्राह्मण-वेषवारी हरिसे कहा -- 'महाराज ! वै त्रह्मधारके उपदेशसे अद्रोहकके पास जाऊँगा, परंत में उनका घर नहीं जानता; क्या आप बतला देंगे ! हरिने कहा —'आओ, आओ ! मैं भी तुम्हारे साय उनके घर चळूँगा ।' रास्तेमें नरोत्तमने हरिसे पूछा—'महाराज! यह तुलाधार समयपर स्नान या देवपितृ-तर्पण कुछ भी नहीं करता। इसका सारा शरीर मैला हो रहा है, कपड़ोंमें गन्ध आ रही है । यह अन्यत्र होनेवाली मेरी घटनाओंको कैसे जान गया ? यह सब देखकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है। आप इसका कारण बतलाइये। हरिने कहा—'सत्य और समदर्शनके प्रतापसे तुलाधारने तीनों लोकोंको जीत लिया है। इसीसे देव-पितर और मुनिगण भी इससे तृप्त हो गये हैं और इसी कारणसे यह भून, भविष्यत् और वर्तमानकी सब कुछ जानता है । कहा भी गया है—

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्। विशेषे समभावस्य पुरुषस्यानघस्य च॥ अरौ मित्रेऽप्युदासीने मनो यस्य समं व्रजेत्। सर्वपापक्षयस्तस्य विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्॥

'सत्यसे बढ़कर परम धर्म नहीं है और झूठसे बढ़का वड़ा पाप नहीं है। जो निष्पाप समदर्शी पुरूष हैं, शत्रु, मित्र और उदासीन सभी जिनके मनमें समान हैं, उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और वे विष्णुमगवार्क सायुज्य-(मोक्ष-)को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य सर्व

ही ऐसा व्यवहार करते हैं, वे अपने कुलोंका उद्भार करनेवाले होते हैं। सत्य, दम, शम, धैर्य, स्थिरता, अलोम, अनैश्वर्य और अनालस्य सभी उनमें रहते हैं। वे वर्मज्ञ देव और नरलोकके सभी विषयोंको जानते हैं, उनकी देहमें साक्षात् श्रीहरि निवास करते हैं, जगत्में उनके समान कोई नहीं होता । जो सत्य, सरल और समदर्शी हैं, वे साक्षात् धर्ममय हैं। वास्तवमें इस जगत्को वे ही धारण करते हैं । इसपर नरोत्तमने कहा— 'आपकी कृपासे मैंने तुलाधारका रहस्य तो जाना, अब यदि आप उचित समझें तो अद्रोहकका भी इतिहास बतला दें। हरिने कहा—-'किसी एक राजकुमारकी सुन्दरी नामकी एक परम सुन्दरी नवयुवती भार्या थी। वह अपने पतिको बड़ी ही प्यारी थी। राजकुमारको किसी खास कामसे अकस्मात् बाहर जानेकी आवश्यकता पड़ी। वह अपने मनमें चिन्ता करने लगा कि 'इस प्राणोंकी पुतली प्रियाको किसके पास छोड़कर जाऊँ, कहाँ इसकी रक्षा हो सकेगी ? अन्तमें उसने अद्रोहकके पास जाकर कहा कि 'मैं बाहर जाता हूँ, जबतक छोटकर न आऊँ तबतक मेरी इस नवयुवती सुन्दरी स्त्रीकी रक्षाका भार तुम प्रहण करो। ' राजकुमारके इस प्रस्तावसे आश्चर्यमें पड्कर अद्रोहकने कहा कि 'मैं तो आपका पिता, भाई या मित्र नहीं हूँ, ानआपके माता-पिताके कुलसे ही मेरा सम्बन्ध है, आपकी पत्नीसे भी मेरा कोई कौटुम्बिक सम्बन्ध नहीं है । इस अवस्थामें मेरे घर अपनी स्त्रीको खकर आप कैसे खस्थ रह सकेंगे ?' राजकुमारने कहा— 'संसारमें आपके समान धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय पुरुष दूसरा कोई नहीं है। अद्रोहकने कहा—'आप बुरा न मानें; देखिये, त्रैलोक्यमोहिनी भार्याकी कौन पुरुत्र रक्षा कर सकता है ?' राजकुमार बोले—'मैं अच्छी तरह सोच-समझकर ही आपके पास आया हूँ। मेरी स्त्रीको भाप ही रिखये, मैं अपने घर जाता हूँ।' राजपुत्रके ऐसा कहनेपर अद्रोहकने फिर कहा-- इस शोमायुक्त CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नगरीमें कामी पुरुषोंकी भरमार है; मैं कैसे तुम्हारी स्त्रीकी रक्षा कर सक्रूँगा ? राजकुमारने कहा—'आप जैसे ठीक समझें वैसे ही रक्षा करें, मैं चलता हूँ। गृहस्थ अद्रोहकने धर्मसंकटमें पड़कर राजकुमारसे कहा—'हे पित: ! मैं इस अरक्षिता स्त्रीकी रक्षाके निमित्त जो देखनेमें अनुचित होगा, वैसा कर्म भी उचित और हितकर समझकर कल्ँगा । मैं इसे रातको अकेली नहीं रख सकता, अतएव मैं अपनी भार्याके साथ जिस शय्यापर सोता हूँ, उसीपर इसे भी सोना पड़ेगा । आपको इसमें आपत्ति हो तो अपनी स्त्रीको वापस ले जाइये, नहीं तो छोड़ जाइये । राजकुमारने कुछ देरतक सोचकर कहा-- 'अच्छी बात है, आप जैसा उचित समझें वैसा ही करें। वदनन्तर राजकुमारने अपनी पत्नीसे कहा-'सुन्दरि ! इनके आज्ञानुसार सब काम करना; इसमें तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। राजपुत्र इतना कहकर अपने पिता नरेशके आज्ञानुसार वहाँसे चला गया। अद्रोहकने रातको वही किया । वह धार्मिक पुरुष रातको अपनी स्त्री और राजपुत्र-पत्नीके बीचमें एक शय्यापर सोने लगा, परंतु धर्मपथसे कभी नहीं डिगा । राजकुमारकी पत्नीका नींदमें कभी अङ्ग स्पर्श हो जाता तो उसे अपनी जननीके अङ्गके समान प्रतीत होता । वह इस प्रकार मन-इन्द्रियोंको जीतकर रहा कि उसकी स्त्री-सङ्ग-प्रवृत्ति ही जाती रही । इस प्रकार छ: महीने बीतनेपर राजकुमार विदेशसे छौटकार घर आया । बराबरीवाळींने पूछा--- 'तुम्हारी स्त्री तुम्हारी अनुपस्थितिमें कहाँ रही ? उसने कहा—'अद्रोहकके घर ।' कुछ युवकोंने ब्यंगसे कहा- अच्छा किया जो अपनी स्त्री अद्रोहकको दान कर गये, वह रातको उसके साथ सोता था। स्नी-पुरुषके एक साथ सोनेपर भी क्या कभी संयम रह सकता है ! इस तरह लोग तरह-तरहके दोष लगाने लगे। अद्रोहकको इस बातका पता लगा, तत्र उसने इस जनापवादकी निवृत्तिके लिये काठकी एक चिता बनाकर उसमें आग

लगा दी । इतनेमें ही राजपुत्र वहाँ आ पहुँचा । राजकुमारने अपनी स्त्रीको प्रसन्तमुख और अदोहकको वित्रादयुक्त देखकर अदोहकसे कहा—'भाई! मैं आपका मित्र बहुत दिनों बाद विदेशसे लौटकर आया हूँ, आप मुझसे बोलते क्यों नहीं हैं !'

अद्रोहकने कहा—'मैंने आपकी स्त्रीको घर एखकर बदनामी मोळ ले छी, उसे दूर करनेके लिये मैं आज अग्निमें प्रवेश कल्ँगा; सम्पूर्ण देवता मेरे कृत्यको देखें। इतना कहकार अद्रोहक धघकती हुई अग्निमें कूद पड़ा; परन्तु आश्वर्य कि उसका एक बाल भी नहीं जला ! देवता आकाशसे साधु-साधु कहूने लगे । चारों ओरसे पुष्पवृष्टि होने छगी। जिन छोगोंने अद्रोहकपर दोत्र लगाया था, उनके मुखोंपर कुछ रोग हो गया । देवताओंने आकर उसको अग्निसे निकाला । मुनियोंने विस्मित होकर सुन्दर पुष्पोंसे उसकी पूजा की । फिर महातेजस्वी अद्रोहकने भी उन सबकी पूजा की । सुर-असुर और मनुष्योंने मिलकर अद्रोहकका नाम सजनाद्रोहक रखा। उसकी चरणरजसे पृथ्वी इरीमरी हो गयी। तत्र देवताओंने राजकुमारसे कहा कि 'तुम अपनी स्रीको प्रहण करो, अद्रोहकके समान जगत्में दूसरा कोई नहीं है । जगत्में सभी छोग कामके वश हैं। काम, क्रोध, छोभ सभी प्राणियोंमें हैं; कामसे संसारमें बन्धन होता है, यह जानकर भी छोग अकामी नहीं होते । इस अद्रोहकने कर्तव्य-पालनके लिये कामको जीतकर मानो चौदह भुवनोंको जीत लिया है। इसके इदयमें नित्य वासुदेव विराजमान हैं। यों कहकर सब ब्रोग और राजपुत्र अपनी पत्नीसहित अपने-अपने घर चले गये । उस समय अद्रोहकको कामजयके प्रतापसे दिन्य दृष्टि प्राप्त हो गयी । वह तीनों छोकोंकी सभी बातोंको अनायास देखने और जाननेमें समर्थ हो गया।

इस प्रकार वातें होते-होते ही नरोत्तम ब्रह्मण अद्रोहकके घर आ पहुँचा । नरोत्तमने अद्रोहकसे धर्मका तस्व पूछा । अद्रोहकने कहा-- 'हे धर्मज्ञ विप्र ! आप प्रशोत्तम वैष्णवके घर जाइये, उनके दर्शनसे ही आपको मनःकामना पूर्ण हो जायगी । बगुलेकी मृत्यु और घोती सूखने आदिके सभी भेद ने आपको बता सकते हैं। नरोत्तम यह सुनकर ब्राह्मण-वेषचारी विष्णुके साथ पुरुषोत्तम वैष्णवके घर आया । नरोत्तमने देखा कि वैभ्णव परम शुद्ध, शान्त, समस्त उत्तम छक्षणोंसे युक्त और अपने तेजसे देदीप्यमान हो रहे हैं। धर्मात्मा नरोत्तमने उस ध्यानस्थ भगवद्भक्तसे कहा-- भें बहुत दरसे आपके पास आया हूँ; आप मुझे उपदेश दीनिये। पुरुषोत्तम बोले-- 'देवश्रेष्ठ भगवान् हरि सदा ही तुमप प्रसन्त हैं; हे ब्राह्मण ! आज तुम्हें देखकर मेरे मनमें बड़ा आह्नाद हो रहा है। मेरे घरमें भगवान्के दर्शनसे तुम्हारा अतुळनीय कल्याण होगा । तुम्हारा मनोरय पूर्ण होगा । नरोत्तमने कहा-- आपके घरमें विष्णु भगवान् कहाँ विराजमान हैं, कृपाकर मुझे दिखला दें। वैष्णवने कहा---'इस रमणीय देवमन्दिरमें प्रवेश करते ही तुम भगवान्के दर्शन कर घोर पाप और जन्म-कर्मके बन्धनोंसे छूट जाओगे। विष्णवके इन वचनोंको सुनकर नरोतमने मन्दिरमें प्रवेश करके देखा कि भगवान्की मूर्तिकी जगह वही ब्राह्मण-वेषधारी विष्णु उसी रूपमें पद्मासनसे बैठै हुए हैं। नरोत्तमने उनको देखते ही मस्तकद्वारा प्रणामकर उनके चरण पकड़ लिये और कहा—ह देवेश ! मैं आपको पहले पहचान न सका। अब आप मुझपर प्रसन्त होइये । हे प्रभो ! मैं इस लोक और परलोकमें आपका दास बना रहूँ । हे मधुसूदन ! मुङ्गपर कृपादृष्टि कीजिये । यदि वास्तवमें आपकी मुङ्गपर कृपा है तो अपने स्वरूपका मुझे दर्शन कराइये। भगवान्ते कहा—'हे भूदेव ! तुम्हारे प्रति सर्वदा ही मेरा लेह है। स्तेहके वश होकर ही मैं भक्तोंको दर्शन दिया करता हूँ। पुण्यात्मा पुरुषोंके एक बारके दर्शन, स्पर्श, व्यान, कीर्तन और सम्भाषणसे ही पुण्यलोकोंकी प्राप्ति होती है। उनके नित्यसङ्गसे सारे पाप छूट जाते हैं और अन्तमें वह उनका सङ्ग करनेवाला मुझमें मिल जाता है। तुम मेरे भक्त हो, बकवधसे तुम्हें जो पाप हुआ है उसकी निवृत्तिके लिये तुम फिर उसी मूकके पास जाओ। मूक चाण्डाल पुण्यात्माओं प्रधान तीर्थरूप है। उसके दर्शन और मेरे साथ सम्भाषण होनेके कारण ही तुम मेरे मन्दिरमें आ सके हो। जो करोड़ों जन्मोंतक निष्पाप रहते हैं, वे ही धर्मात्मा पुरुष प्रमा दर्शन करनेमें समर्थ हो सकते हैं, अतएव अब तुम द अपना इच्छित वर माँगो।

ब्राह्मणने कहा—'हे सर्वछोकेश्वर! में यही चाहता हूँ कि मेरा मन सर्वथा आपमें लगा रहे, आपके सिवा और किन्हीं भी पदार्थोमें मेरा प्रेम न हो। भगवान्ने कहा-'जब तुम्हारी बुद्धिका ऐसा विकास हो गया है, तब तुम्हारी इच्छा जरूर पूर्ण होगी; परंतु तुम्हारे माता-पिता अवतक तुम्हारी सेवासे वंचित हैं। तुम अपने माता-पिताकी सेवा कर चुकलेके बाद मुझमें विळीन हो सकोगे । तुम्हारे माता-पिताके दुःखभरे लंबे-लंबे श्वासोंकी वायुसे तुम्हारा तप नष्ट होता रहता है। अतएव तुम पहले उनकी पूजा करो । जिस पुत्रपर माता-पिताका कोप पड़ता है उसको नरकगामी होनेसे मैं, शिव या ब्रह्मा—कोई नहीं बचा सकते। इसलिये तुम अपने माँ-बापके पास जाकर वड़े यत्नसे उनकी पूजा करो; तदनन्तर उनके प्रसादसे तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे। भगवान्के ये वचन सुनकर ब्राह्मणने फिर हाथ जोड़कर कहा—'हे नाथ ! हे अच्युत ! आप यदि मुझपर

या प्रसन्न हैं तो एक बार अपने दिन्यरूपका दर्शन ही, कराइये। फिर प्रसन्नहृदय भगवान् ने प्रेमवरा ब्राह्मणको से अपने खरूपका दर्शन कराया। ब्राह्मणने देखा 'पुरुषोत्तम हिरि राङ्क, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं। उनके तेजसे समस्त जगत् परिपूर्ण हो रहा है; वे ही सम्पूर्ण छोकों के कारण हैं। उसने दण्डवत्-प्रणाम करके गद्गद वाणीसे कहा—'हे अच्युत! आज मेरा जन्म सफल हो गया। मेरे नेत्र प्रसन्न और दोनों हाथ रूलक्ष्य हो गये। मैं आज धन्य हो गया। आज मेरे कुलके लोग सनातन ब्रह्मलोकको चले गये। मेरा समस्त मनोरथ आज पूर्ण हो गया। परंतु नाथ! मेरा एक आश्वर्य अभी दूर नहीं हुआ है; वह यह कि स्कादि सज्जनोंने मेरा पूर्व वृत्तान्त क्योंकर जाना और आप सुन्दर विप्ररूप धरकर सूक, पितृता, तुलाधार, अदोहक और इन वैष्णवके घरमें क्यों नित्य निवास करते हैं!

भगवान्ने कहा—'हे ब्राह्मण ! सूक चाण्डाल सर्वदा अपने माता-पिताकी सेवामें रत है; ग्रुमा नामकी की अनन्य पितवता है; तुलाधार सत्यवादी और सर्वत्र समदर्शी है; अद्रोहक काम, लोमको जय कर चुका है तथा यह वैष्णव मेरा अनन्य भक्त है। इनके इन गुणोंसे प्रसन्न होकर ही मैं आनन्दपूर्वक इनके घर सदा लक्ष्मी और सरस्वतीसिहत निवास करता हूँ और इन्हीं गुणोंके प्रतापसे ये लोग सब बातें जाननेमें समर्थ हैं। यदि हमलोग भगवान्का अपने घरमें निवास चाहते हैं तो हमें भी ऐसा बनना चाहिये। भगवत्तत्वके ज्ञानके लिये अथवा भगवहर्शनके लिये उपर्युक्त धर्मोंका पालन नितान्त आवश्यक है। (यह आख्यायिका पद्मपुराणके आधारपर लिखी गयी है।)

भगवत्तत्वका स्वरूप

श्रीवसिष्ठजीने आत्मतत्त्वके विषयमें भगवान् श्रीरामसे कहा—'रघुनन्दन! आत्मा ही आत्माको जानता है, वह स्वयं ही अज्ञानके कारण अपने-आपको संसार-बन्धनमें बाँघे हुए है । विशुद्ध ज्ञानके द्वारा पवित्र होकर वह शुद्र सचिदानन्दखरूप खप्रकाश परमात्माको प्राप्त होता है। जो अज्ञान-जनित वासनाओं के बन्धनमें बँधा है, उसीको बद्ध जीव कहा गया है । वासनाका अभाव ही मोक्ष है । मन, बुद्धि आदिसे युक्त सम्पूर्ण वासनाओंका त्याग करके जिस वृत्तिके द्वारा उन सबका त्याग किया जाता है, तुम उस बुद्धि-वृत्तिका भी त्याग कर दो । इन सबका अभाव हो जानेपर जो एकमात्र नित्य सिंदानन्दघन परमात्मा शेष रहता है, तुम उसीमें निश्वलमावसे स्थित रहो। ग्रुद्ध बुद्धिसे युक्त रघुनन्दन ! प्राणोंके स्पन्दनपूर्वक कलना (चेष्टा एवं संकल्प), काल, प्रकाश एवं तिमिर आदिका तथा वासना और विषयोंका (इन्द्रियों तथा समूछ अहंकारका) सर्वथा त्यागकर उनसे सम्बन्धरहित होकर जो तुम आकाशके समान सौम्य (निर्मल), प्रशान्त-चित्त तथा चिन्मयरूपसे विराज रहे हो, उसी सर्वसम्मानित रूपमें स्थित रहो। जो परम बुद्धिमान् पुरुष सबका इदयसे परित्यागकर सब विक्षेपोंके कारणभूत अभिमानसे रहित हो जाता है, वह साक्षात् शुद्ध, मुक्तखरूप परमेश्वर है। जिसके हृदयमें अभिमानका अत्यन्ताभाव हो गया है, ऐसा विशुद्ध अन्तः करणवाला ज्ञानी महात्मा ध्यान, समाधि अथवा कर्म करे या न करे, सदा मुक्त ही है; क्योंकि जिसका मन सर्वथा वासनारहित हो गया है, उसे न तो कमें कि त्यागसे कोई प्रयोजन है और न कर्मोंके अनुष्ठानसे ही। जप, घ्यान और समाधि आदिसे भी उसका कोई प्रयोजन नहीं। मैंने शास्त्रका अच्छी तरह विचार किया और

चिरकाळतक सत्पुरुषोंके साथ परामर्श करके यही सार निकाळा कि सम्पूर्ण वासनाओंसे रहित हो सचिदानन्द्वन परमात्माके निरन्तर मननरूप मौनसे बढ़कर दूसरा कोई उत्तम पद नहीं है। दसों दिशाओंमें घूम-घूमकर मैंने सारी दर्शनीय वस्तुओंको देख ळिया। मुझे कुछ ही छोग ऐसे दिखायी दिये, जो परमात्माके खरूपका यथार्थ अनुभव करनेवाले हैं।

मनुष्यके जो कोई भी छौकिक ग्रुभ आयोजन हैं और जो भी उनके व्यावहारिक सत्कर्म हैं, वे सब केवल शारीरका निर्वाह करनेके लिये ही हैं, आत्माके छिये नहीं । पाताल, भूतल, खर्गलोक, ब्रह्मलोक और आकाशमें कुछ ही ऐसे प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें सचिदानन्द परमात्माका यथार्थ बोघ हो गया हो । जिस ज्ञानीके--- 'यह प्राह्य है, यह त्याज्य है, इस तरहके अज्ञानजनित निश्चय नष्ट हो गये हैं, वह कर्तव्याकर्तव्य-दृष्टिसे रिहत ज्ञानी महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। प्राणी चाहे छोकमें राज्य करे, चाहे मेघ या जलमें प्रवेश कर जाय, परंतु परमात्माकी प्राप्तिके बिना उसे परम शान्ति नहीं मिल सकती । जो इन्द्रियरूपी शत्रुओंका दमन करनेमें शूरवीर हैं, जन्मरूपी ज्वरका विनाश करनेके लिये उन्हीं महाबुद्धिमान् महापुरुषोंकी सेवा करनी चाहिये । पातालमें और स्वर्गमें सर्वत्र पाँच ही भूत हैं, छठा कुछ भी नहीं है। फिर धीर मनुष्योंकी बुद्धि कहाँ अनुरक्त हो, क्योंकि सर्वत्र क्षणभङ्गर पदार्थोंकी ही उपलब्ध होती है । शास्त्रके अनुसार निष्काम-भावरूप युक्तिसे व्यवहार करनेवाले विवेकी पुरुषके लिये संसार गौके खुरके समान अनायास ही लॉब जाने योग्य है । परंतु जिसने उपर्युक्त युक्तिका आश्रय नहीं प्रहण किया है, उस अज्ञानीके लिये यह संसार महाप्रख्यकालीन महासागरके समान दुस्तर है। पातालसे लेकर खर्गपर्यन्त इस जगत्में ज्ञानी महात्मा पुरुषके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है। जैसे मन्द-मन्द बायुके चलनेसे पर्वत नहीं हिल्ता, वैसे ही भोग-समूहोंसे भी तत्त्वज्ञानी पुरुष विचलित नहीं होता। जैसे बादल

आकाशमें बारंवार छा जानेपर भी उसे अपने रंगमें नहीं रँग सकते, उसी प्रकार संसारके ये विषय-भोगरूप पदार्थ पुन:-पुन: प्राप्त होनेपर भी विशाल इदय तत्त्वज्ञानी महात्मा पुरुषको कभी आसक्त नहीं कर सकते। (योगवासिष्ठ, स्थितिप्रकरण, सर्ग-५७)

--+<3+©→--

भगवत्तत्व आत्मतत्वसे अभिन्न है

(परमार्थ-तत्त्वका उपदेश और खरूपभूत परमात्मपदमें प्रतिष्ठित रहते हुए ब्यवहार करते रहनेका आदेशपूर्वक विसष्ठजीका श्रीरामके प्रश्नोंका उत्तर देना तथा संसारी मनुष्योंको आत्मज्ञान एवं मोक्षके लिये प्रेरित करना)

भीवसिष्ठजी कहते हैं-श्रीराम! तुम आकाशके समान विराद और तरवके ज्ञाता हो । एकमान्र सचिदानन्दघन परमात्मपदमें तुम्हारी स्थिति है। तुम सर्वत्र सम, सौम्य, सम्पूर्णानन्दमय हो; तुम्हारा अन्तः-करण ब्रह्मखरूप एवं विशाल है । निष्पाप रघुनन्दन ! जो पुरुष अपनी इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करके सदा ब्रह्मा-नन्दमें निमग्न हो आत्माराम, शान्त एवं उदारभावसे कार्य करता है, वह कर्तापनके दोषसे रहित हो जाता है। जो समस्त संकल्प-विकल्पोंसे रहित अपनी बुद्धि-गुहा — हृदयाकाशमें विराजमान परमात्मपदमें स्वेच्छा-नुसार स्थित रहता है, वह अपनी आत्मामें ही रमण करनेवाला परमेश्वररूप है। जो लोग सदा अन्तर्मुख रहकर बाहरके कार्योंका सम्पादन करते रहते हैं, उनके जीवित रहते हुए भी उनके मनमें उसी तरह वासना नहीं उत्पन्न होती, जैसे जड़ पत्थरोंमें नहीं होती। जगत् न तो द्वैतरूपमें है और न अद्वैतरूपमें ही।

श्रीरामजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! यदि ऐसी बात है तो अहंभावकी प्रतीतिरूप वसिष्ठ-नामक आप यहाँ कैसे स्थित हैं । यह बताइये ।

भीवाल्मीकिजी कहते हैं—भरद्वाज ! श्रीरघुनाय-जीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी

आघे मुहूर्ततक चुपचाप ही बैठे रह गये। उनकी यह चेष्टा सुरपष्ट ज्ञात हो रही थी। उनके चुप हो जानेपर समामें जो बड़े-बड़े लोग बैठे हुए थे, वे संशयके समुद्रमें गोते लगाने लगे। तब श्रीरामचन्द्रजीने फिर पूछा—'भगवन्! आप मेरी ही तरह चुपचाप क्यों बैठे हैं! संसारमें कोई ऐसा प्रश्न नहीं है, जिसका उत्तर आप-जैसे श्रेष्ठ पुरुष न दे सकें।'

श्रीवसिष्ठजीने कहा—निष्पाप रघुनन्दन ! मुझमें कुछ कहनेकी शक्ति न होनेके कारण मेरे पास युक्तियोंका अभाव हो गया हो, ऐसी बात नहीं है । परंतु यह प्रश्न जिस कोटिका है, उसमें चुप हो जाना ही इसका उत्तर है। प्रश्नकर्ता दो प्रकारके होते हैं—एक तत्त्वज्ञ और दूसरे अज्ञानी । अज्ञानी प्रश्नकर्ताको अज्ञानी बनकर ही उत्तर देना चाहिये और ज्ञानीको ज्ञानी बनकर । परमधुन्दर श्रीराम ! तत्त्वज्ञ पुरुषको असके प्रश्नका कल्डक्सयुक्त उत्तर नहीं देना चाहिये । परंतु कोई भी ऐसी वाणी नहीं है, जो निष्कलक्क हो और तुम केवल ज्ञानी ही नहीं, परमज्ञानी हो । अतः तुम्हारे प्रश्नका मौन ही उत्तर है । जो परमपद है, वह तत्त्वज्ञानके पूर्व इस रूपमें उपस्थित किया जाता है जिससे उसके विषयमें उपदेशवाणीकी प्रवृत्ति हो सके ।

अतः अज्ञानसे ही उसको ससंकल्प वाणीका विषय वताया गया है एवं उसका कल्पित खरूप ही उपरेशका विषय होता है। किंतु तत्वज्ञानके पश्चात् जो उसका यथार्थ खरूप प्रकट होता है, उसे मौन अर्थात् वाणीका अविषय ही कहा गया है। इसीलिये तुम-जैसे तत्त्वज्ञ-शिरोमणिको मौनके रूपमें ही सुन्दर उत्तर दिया गया है। प्रिय एयुनन्दन! वक्ता पुरुष खयं जैसा होता है, उसके अनुरूप ही वह उपदेश करता है। मैं ज्ञेय ब्रह्मरूप ही हूँ। अतः उस परमपदमें प्रतिष्ठित हूँ, जहाँ वाणीकी पहुँच नहीं है। जो वाणीसे अतीत पदमें प्रतिष्ठित है, वह वाणीरूप मलको कैंसे ग्रहण कर सकता है। मैं मौन रहकर उस तत्त्वका प्रतिपादन कर रहा हूँ, जो अनिर्वचनीय है—जिसका वाणीद्वारा ठीक-ठीक वर्णन हो ही नहीं सकता; क्योंकि वाणी संकल्परूप कल्ड्क्से युक्त होती है।

श्रीरामने पूछा—भगवन् ! वाणीमें जो-जो दोष आते हैं, उनका आदर न करके विधिरूपसे और निषेध रूपसे यह बताइये कि वास्तवमें आप कौंन हैं !

श्रीविसष्टजीने कहा—तत्ववेताओं में श्रेष्ठ रघुनन्दन! यदि तुम मुझसे मेरे खरूपका परिचय धुनना चाहते हो तो इस विषयको यथावत् धुनो । 'तुम कौन हो,' 'मैं कौन हूँ' और 'यह जगत् क्या है'— इसका विवेचन किया जा रहा है । तात ! जो निर्विकार अनन्त चिन्मय परमात्मा है, वही मैं हूँ । इसमें बाह्य और आम्यन्तर विषयोंका सर्वथा अभाव है तथा यह समस्त कल्पनाओंसे परे हैं । मैं निर्मल, अनन्त चेतन हैं, तुम अनन्त चेतन हो, सारा जगत् अनन्त चेतन है और सब कुछ अनन्त चेतनमात्र ही है । विशुद्ध ज्ञानखरूप परमात्मामें मैं विशुद्ध ज्ञानखरूप परमात्मा ही हूँ । मुझमें मेदज्ञानकी दृष्टि ही नहीं है । अतः मैं किसी भी वस्तुको अपनेसे मिन्न कहना नहीं जानता । जीवित रहकर व्यवहार-परायण होता हुआ भी जो परमशान्त है, उस ज्ञानी

पुरुषकी जो शवके समान स्थिति है, उसीको परमपद कहते हैं। जो वाहर-भीतरके साधनोंसे रहित, शान्त, अनन्त, साधनरूप और सम है, जिसे न सुख कहा जा सकता है न दु:ख, जो 'अहं' भी नहीं है तथा 'यत्र नान्यत् पश्यित' इत्यादि श्रुतिके द्वारा जिसके खरूपका निर्देश कराया गया है, वह कल्याणसूक्रप तत्त्व ही परमपद है। उसे मैं अपनेसे भिन्न नहीं समझता। वस्तुतः उसे दूसरा कोई नहीं जानता । लोकैषणासे विरक्त ज्ञानी पुरुषके द्वारा आत्मामें ज्ञातापनकी भाँति उसका खयं ही अनुभव किया जाता है। उस परम पदमें न अहंता ('मैंंपन) है, न त्वत्ता ('तू'पन), न अहंताका अभाव है और न अन्यताका ही । वह केवल निर्वाणसहूप विशुद्ध कल्याणमय कैवल्य ही है । इस चेतन जीवात्माका चेत्य विषयोंकी ओर उन्मुख होना ही चित्तरूपता है, यही इसका संसार है और यही महान् कष्ट देनेवाला बन्धन है । चेतन जीवात्माका चेत्य विषयोंकी ओर उन्मुख न होना ही अचेत्यरूपता है। इसीको मोक्ष समझो। यही शान्त एवं अविनाशी परमपद है। जो दिशा और देशकाल आदिकी सीमासे वँघा हुआ नहीं है, वह शान्तखरूप शान्तात्मा परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान है, उसमें चेत्य-(दश्य-)की सम्भावना ही नहीं है। फिर कौन, किसका और किस प्रकार चिन्तन करता है ! ये जो मन-बुद्धि आदि हैं, ये सब अन्तर्मुख दशामें चैतन्यहर ही हैं। मन-बुद्धि आदि शब्दोंके अर्थरूपसे भावित होनेपर वे ही जडरूप मानी गयी हैं। समस्त दृश्योंका वाध हो जानेपर जो विशुद्ध चैतन्यखरूप परमासा अवशिष्ट रह जाता है, उसमें और शून्य आकाशमें क्या अन्तर है—इसे साधारणलोग नहीं जानते— विद्वान् ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। उनका कहना है कि वह परमात्मा चिन्मय और निर्तिशयानन्दसहप है, इसलिये वाणीका विषय नहीं होता । करनेसे अन्धकारमें देखनेका प्रयत्न

सदसद्रूप आभास दीखता है, उसी प्रकार ब्रह्मों जो आभास परिलक्षित होता है, वही यह जगत् है। में अज्ञानी हूँ — इस रूपमें जो जीशोंको अपने अज्ञानका बोध होता है, उससे सुरक्षित अज्ञानका वायुका सहारा पाकर उनकी अविद्याग्नि प्रज्वलित होती रहती है। फिर जब उन्हें भें ब्रह्म हूँ — यह यथार्थ बोध होता है, तब वही वायु उस अविद्याग्निको दुवल पाकर बुझा देती है।

अनावृत खप्रकारा निरितरायानन्द-रूपसे श्वित हुए तत्त्वज्ञानी पुरुषोंकी संसारके भानसे रहित तथा दु:ख-ह्रप क्षोभसे शन्य जो स्थिति है, उसीको मोक्ष कहते हैं और वही अविनाशी पद है। परमात्मज्ञानके साथ सांसारिक पदार्थोंके ज्ञानसे युक्त हो मनुष्य मुनि बन जाता है। परंतु जो परमारमाके अज्ञानके साय-साय सांसारिक पदार्थोंके ज्ञानसे शून्य होता है, वह पशु एवं वृक्ष वन जाता है। जैसे सुषुप्तावस्थामें खप्नका छय हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानखरूप परमात्माका ययार्थ ज्ञान होनेपर उस तत्त्वज्ञके समाहित अन्तः-करणके भीतर सारे दृश्य-प्रपन्नका छय हो जाता है। फिर तो केवल अपना परमात्मखरूप ही लक्षित होता है। जैसे आकाशमें नील्रिमाकी प्रतीति भ्रममात्र ही है, उसी प्रकार कल्याणखरूप परमात्मामें पृथ्वी आदि पाइदमौतिक जगत्की प्रतीति भ्रमके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जैसे आकाश नील आदि वर्णीसे रिहत निर्मल है, उसी प्रकार शिवखरूप परमात्मा भी द्द्य प्रपन्नसे रहित एवं निर्मल है। जिस पुरुषकी वुद्धिमें यह निश्चय हो गया है कि यह सारा दृश्य-प्रपन्न असत् (मिथ्या) ही है, वह समस्त विशुद्ध वासनाओंसे युक्त होनेपर भी उन वासनाओंसे रहित ही है। सर्वन्यापी शुद्ध बुद्ध प्रमात्मामें कर्तृत्व और मोक्त्वका होना असम्भव है, इसिंख्ये यहाँ न दुःख हैन सुख; न पुण्य है न पाप है और न किसीका

विद्धान हो हुआ है। जिस अहंकारमें यह ममताबुद्धि होती है, वह भी दो चन्द्रमा और खप्नके नगरकी माँति असत् (मिथ्या) ही है; इसलिये सब कुछ निराकार एवं निराधार है। समस्त द्वैतसे रहित तत्त्वज्ञ पुरुष न्यवहारपरायण हो अथवा काष्ठ या पाषाणके समान निश्चल होकर चुपचाप बैठा रहे—सभी अवस्थाओं-में वह ब्रह्मखरूपताको ही प्राप्त है। रघुनन्दन! जो ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंद्वारा पूर्णरूपसे सेवित है, जिसे दूसरा कोई छीन नहीं सकता तथा जो ज्ञानखरूप निर्मल, शिव, अजन्मा, अविनाशी, नित्यसिद्ध, सम, परमार्थ सत्य तथा शान्त ब्रह्मपद है, बही तुम हो—'तत्त्वमिस्त'। तुम उस परमपद में निरय प्रतिष्ठित हो।

अहं मावना ही सबसे बड़ी अविद्या है, जो मोक्षकी प्राप्तिमें रुकावट डालनेवाली होती है। मुद मनुष्य उस अविद्याके द्वारा ही जो मोक्षका अन्वेषण करते हैं, वह उनकी पागछोंकी-सी चेष्ठा है। अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली अहंता ही अज्ञानकी सत्ताका पूर्ण परिचय देनेवाली है; क्योंिक जो तत्त्वज्ञानी शान्त पुरुष है, उसमें ममता या अहंता नहीं रहती। अहंताका भलीभाँति त्याग करके आकाशकी भाँति निर्मल तया मुक्त हुआ ज्ञानी पुरुष सदाके लिये निश्चिन्त हो जाता है; उसका शरीर रहे या न रहे, उसकी उपर्युक्त स्थितिमें कोई अन्तर नहीं आता । जो तत्त्ववेत्ता पुरुष भीतरकी मानसिक तरङ्गोंसे कभी क्षुब्य नहीं होता, बाहरसे भी अस्तंगत सूर्यकी भाँति शान्त रहता है और जिसमें सदा प्रसन्नता बनी रहती है, वह मुक्त कहळाता है । इष्ट और अनिष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होनेपर भी वह सदा शान्त बना रहता है—हर्ष और शोक्षके वशीभूत नहीं होता। व्यवहारमें संख्यन भी द्वैतमावका अनुभव नहीं करता तया भीतरसे पूर्ण प्रमानन्दमें निमन्न रहता है । जैसे समुद्रमें जलक्ष आधारकी सत्ता ही नावों या जहाजोंको क्रय-विक्रयकी वस्तुओंका दु:खद भार वहन करनेके छिये अवसर देती है, उसी प्रकार जीव और जगत्की जड सत्ता ही तृष्णाके पाशमें बँघे हुए मनुष्योंको इस जगत्में केवछ दु:खका भार वहन करनेके छिये प्रेरित करती है। जो-जो वस्तु संकल्पसे प्राप्त होती है, वह संकल्पसे ही नष्ट भी हो जाती है। इसछिये जहाँ इस संकल्पकी सम्भावना ही नहीं है, वहीं सत्य एवं अविनाशी पद है। विचार करनेसे जिन पुरुषोंके सम्पूर्ण विशेष

(मेदमाव) शान्त हो चुके हैं, उनके छिये केवल अहंताका नाश करनेवाळी मुक्तिका उदय होता है। उनका कुळ बिगड़ता नहीं। अज्ञानी पुरुषो ! मोक्षकी प्राप्तिके छिये भोगोंके त्याग, विवेक-विचार तथा मन और इन्द्रियोंके निम्रहरूप पुरुषार्थ इन तीनोंके सिवा चौथी किसी वस्तुका उपयोग नहीं है। अतः अनात्मवस्तुका त्यागकर तुमलोग शीघ्र अपने आत्माकी ही शरणमें आ जाओ। (आत्मतत्व ही भगवत्तत्व है।) (योगवासिष्ठ, निर्वाणप्रकरण उ॰)

'दीर्घायुष्य एवं मोक्षतस्यके हेतु शिवकी उपासना

प्राचीन कालमें इन्द्रयुग्न नामके एक दानी, व्यमज्ञ और सामर्थ्यशाली राजा थे । उनके तज्यमें सभी एकादशीव्रत करते थे। गङ्गाकी बालुका, वर्षाकी धारा और आकाशके तारे कदाचित गिने जा सकते हैं, पर इन्द्रचुम्नके पुण्योंकी गणना नहीं हो सकती। इन पुण्योंके प्रतापसे वे सशारीर ब्रह्मलोक चले गये। सौ कल्प बीत जानेपर ब्रह्माजीने उनसे कहा--'राजन् ! स्वर्गसाधनमें केवल पुण्य ही कारण नहीं है, अपितु त्रैलोक्यविस्तृत निष्कलङ्क यश भी अपेक्षित होता है। इधर चिरकालसे तुम्हारा यश क्षीण हो रहा है, उसे पुनः उज्ज्वल करनेके लिये तुम वसुधातलपर जाओ । ब्रह्माजीके ये शब्द समाप्त भी न हो पाये थे कि राजा इन्द्रशुम्नने अपनेको पृथ्वीपर पाया । वे अपने निवास-स्थळ काम्पिल्य नगरमें गये और वहाँके निवासियोंसे अपने सम्बन्धमें पूछ-ताछ करने लगे । उन्होंने कहा-'इमलोग तो उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते, आप किसी वृद्ध चिरायुसे पूछ सकते हैं। सुनते हैं नैमिषारण्यमें सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेय मुनि रहते हैं। कृपया आप उन्हींसे इस प्राचीन बातका .पता लगाइये ।

जब राजाने मार्कण्डेयजीसे प्रणामकर पूछा— 'मुने ! क्या आप इन्द्रशुम्न राजांको जानते हैं १,' तब

उन्होंने कहा—'नहीं, मैं तो नहीं जानता, पर मेरा मित्र नाडीजङ्क वक शायद उन्हें जानता हो, इसिलिये चिलये, उससे पूछा जाय ।' इनके वहाँ पहुँचनेपर खागतकर नाडीजङ्कने अपनी बड़ी विस्तृत कथा धुनायी और साथ ही अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपनेसे भी अति दीर्घायु प्राकारकर्म नामक उद्धकके पास चलनेकी सम्मति दी। इसी प्रकार सभी अपनेकी असमर्थ बतलाते हुए चिरायु गृध्रराज और मानसरोक्समें रहनेवाले कच्छप मन्थरके पास पहुँचे। मन्थरने इद्रद्युम्नको देखते ही पहचान लिया और कहा—आपलोगोंमें जो ये पाँचवें राजा इन्द्रद्युम्न हैं, इन्हें देखकर मुझे बड़ा भय लगता है; क्योंकि इन्होंके यहाँमें मेरी पीठ पृथ्वीकी उष्णतासे जल गयी थी।'

अब राजाकी कीतिं तो प्रतिष्ठित हो गयी, पर उन्होंने क्षियण्यु खर्गमें जाना ठीक न समझा और उन्होंने उनसे मोक्षतत्त्वकी जिज्ञासा की । एतदर्थ मन्यरने लोमराजीके पास चलना श्रेयस्कर बतलाया । लोमराजीके पास पहुँचकर यथाविधि प्रणामादि करनेके पश्चार्य मन्यरने निवेदन किया कि राजा इन्द्रसुम्न आपसे कुछ प्रश्न करना चाहते हैं ।



कल्याण 派



तत्त्वझ देवींच नारद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महर्षि लोमशकी आज्ञा लेनेके पश्चात् इन्द्रयुम्नने कहा—'महाराज! मेरा प्रथम प्रश्न तो यह है कि आप कभी कुटिया न बनाकर शीत, आतप तथा वृष्टिसे बचनेके लिये केवल एक मुट्टी तृण ही क्यों लिये हिते हैं ?' मुनिने कहा—'राजन्! एक दिन मरना अवस्य है, फिर शरीरका निश्चित नाश जानते हुए भी हम घर किसके लिये बनायें ? यौवन, धन तथा जीवन—ये सभी चले जानेवाले हैं। ऐसी दशामें जीवन्मुक्तिदायक 'ज्ञान' ही सर्वोत्तम भवन है।'

इन्द्रद्युम्नने पूछा—'मुने! यह आयु आपको ज्ञानके परिणाममें मिछी है अथवा तपस्याके प्रभावसे! यह मैं जानना चाहता हूँ।' छोमराजीने कहा —'राजन्! मैं पूर्वकालमें एक दरिंद्र श्रृद्ध था। एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिङ्ग देखा। मुखसे मेरे प्राण सूखे जा रहे थे। उस जलाशयमें

रनान करके मैंने कमलके सुन्दर फूलोंसे उस शिवलिङ्गका
पूजन किया और पुनः आगे चल दिया। क्षुधातुर
होनेके कारण मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी। दूसरे
जन्ममें मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। शिवोपासनाके
फललक्ष्प मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा और
मैंने जान-बूझकर मूकता धारण कर ली। पितादिकी
मृत्यु हो जानेपर सम्बन्धियोंने मुझ जीवन्मुक्तको गूँगा जानकर
सर्वथा परित्याग कर दिया। तबसे मैं रात-दिन मगवान्
शंकरकी आराधना करने लगा। इस प्रकार सौ वय
बीत गये। इसी बीच प्रमु चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष
होकर दर्शन दिया और मुझे इतनी बड़ी आयु दे दी।

यह जानकर इन्द्रचुम्न, बक, कच्छप, गीघ और उद्यक्तने भी छोमराजीसे शिव-दीक्षा लेकर तपपूर्वक शिवकी उपासना प्रारम्भ की और शीघ ही भगवान्की कृपासे मोक्षको प्राप्त कर लिया।
(स्कंदपुराण, माहेश्वरखण्ड, कुमारिकाखण्ड २६।४-१०)

भगवत्तत्त्वके उपासक

TOTOWO -

[8]

देवर्षि नारद

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्ति शार्क्षधन्वनः। गायन् माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥ (श्रीमद्रा०१।६।३९)

'अहो ! ये देवर्षि नारदजी धन्य हैं, जो वीणाकी खरलहरीके साथ शार्क्रधन्वा भगवान् श्रीहरिके गुणोंका गान करते हुए इस दुःखी संसारको आनन्दमग्न कर देते हैं। नारदजीका सभी युगों, लोकों, शास्त्रों एवं समाजोंमें प्रवेश है। ये भक्तिके प्रधान आचार्य माने गये हैं। इन्होंने प्रत्येक युगमें यूम-यूमकर भक्तिका संक्र प्रचार किया और अब भी अप्रत्यक्षरूपमें वे भक्तों-की सहायता करते रहते हैं। संसारपर इनका अमित हैपकार है। प्रह्लाद, ध्रुव, अम्बरीष आदि महान् भक्तों-

को इन्होंने भक्तिमार्गमें प्रवृत्त किया और श्रीमद्भागवत और वाल्मीकीय रामायण-जैसे अनेक अन्हें प्रन्थोंकी रचनाओंके मूछ प्रेरक भी ये ही हैं।

भागवतके अनुसार एक जन्ममें जब ये दासीपुत्र थे, तब भगवान् के अनुप्रहसे बचपनमें चातुर्मास्य बिताने के लिये आये संतोंका कुछ समयके लिये इन्हें समागम प्राप्त हुआ। इन्होंने उन महात्माओं के उन्छिष्ट भी खा लिये, जिसके प्रभावसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये। इनके हृद्यमें भक्तिका संचार हो गया। उन मुनियोंने जाते समय इन्हें भगवान् के कहे हुए अति गुप्त ज्ञानका उपदेश किया। इससे इनकी बुद्धि भगवत्खरूपमें स्थिर हो गयी। जब ये पाँच ही वर्षके थे, इनकी माताकी

अकस्मात् मृत्यु हो गयी और ये उत्तराखण्डके वर्नोमें निकल पड़े। वहाँ जाकर ये एक वृक्षके नीचे बैठकर भगवान्के खरूपका ध्यान करने छगे । घ्यान करते-करते इनकी वृत्तियाँ एकाप्र हो गयीं और इनके हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये। परंतु थोड़ी देरके लिये इन्हें अपने मनोमोहनीछविकी झलक दिखाकर भगवान् तुरंत अन्तर्धान हो गये । ये बहुत छटपटाये और मनको पुनः स्थिर करके भगवान्का ध्यान करने छगे, किंतु भगवान्का वह रूप उन्हें फिर न दीख पड़ा । इतनेहीमें आकाशवाणी हुई---'इस जन्ममें तुम्हें मेरा दर्शन न होगा । इस शरीरको त्यागकर मेरे पार्षदरूपमें तुम मुझे पुनः प्राप्त करोगे । भगवान्के इन वाक्योंको सुनकर इन्हें बड़ी सान्त्वना हुई और ये मृत्युकी बाट जोहते हुए नि:सङ्ग होक्र पृथ्वीपर विचरने छगे । समय आनेपर इन्होंने अपने पाञ्चभौतिक शरीरको त्याग दिया और फिर कल्पके अन्तमें ये दिव्य विप्रह धारणकर ब्रह्माजीके मानस पुत्रके रूपमें पुनः अवतीर्ग हुए और तबसे ये अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतको धारणकर भगवान्की दी हुई वीणाको बजाते हुए भगवान्के गुणोंको गाते रहते हैं और इन्हें सदा भगवान्का दर्शन होता रहता है।

महाभारतमें कहा है कि देवर्षि नारदजी समस्त वेदों तथा पुराण, शिक्षा-कल्प-व्याकरणके विशेनज्ञ, बृहस्पति-जैसे विद्वानोंकी शङ्काओंका समाधान करनेवाले, योगवलसे समस्त लोकोंकी बातोंका पता रखनेवाले, मोक्षाधिकारके ज्ञाता, संधि और विप्रहके सिद्धानोंको जाननेवाले, विधिका उपदेश करनेवाले, समस्त सद्गुणोंके आधार और अपार तेजस्ती हैं।

इनकी समस्त छोकों में अबाध गित है। ये भगवानके विशेष कृपापात्र और छीछा-सहचर हैं। जब-जब भगवान्का अवतार होता है तो ये उनसे निरन्तर सम्पर्क रखते हैं और उनकी सभी अन्य प्रकारकी सहायता करते हैं। इनका मङ्गळमय जीवन जगत्के मङ्गळके छिये ही है। श्रीराम और श्रीकृष्णकी छीछाओं के तो ये प्रमुख पात्रके रूपमें प्राप्त होते ही हैं। इनके व्यास-शुकादिको दिये भगवतत्त्व-सम्बन्धी उपदेश निरन्तर मननीय हैं। इसके छिये भागवत (१। ४-५) तथा महाभारतका मोक्षधमपूर्व देखना चाहिये।

[२]

महर्षि वसिष्ठ

महर्षि वसिष्ठकी उत्पत्तिका वर्णन पुराणोंमें विभिन्न-रूपसे प्राप्त होता है। ये कहीं ब्रह्माके मानसपुत्र और कहीं अग्निपुत्र तथा कहीं मित्रावरुणके पुत्र कहें गये हैं। कल्पमेदसे ये सभी बातें ठीक हैं। ब्रह्मशक्तिके मूर्तिमान् खरूप तपोनिधि महर्षि वसिष्ठके चरित्रसे हमारे धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण भरे पड़े हैं। इनकी सहधर्मिणी अरुंधतीजी हैं, जो सप्तर्षिमण्डलके पास ही अपने पतिदेवकी सेवामें निरत रहती हैं।

जब इनके पिता ब्रह्माजीने इन्हें सृष्टि करनेकी और भूमण्डलमें आकर सूर्यवंशी राजाओंका पौरोहित्य करनेकी आज्ञा की तब इन्होंने उस कार्यसे बड़ी हिचकिचाहट प्रकट की। फिर ब्रह्माजीने समझाया कि इसी वंशमें आगे चलकर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका पूर्ण अवतार होनेवाल है, अतः इसी कर्मके द्वारा तुम्हें महान् लाभ होगा। तब इन्होंने उसे सहर्ष खीकार कर लिया। यहाँ आकर इन्होंने सर्वदा अपनेको सर्वभूत-हितमें लगाये रक्खा। जब कभी अनादृष्टि हुई, दुर्भिक्ष पड़ा, तब इन्होंने तपोबलसे वर्षा करायी और जीवोंकी अकाल मृत्युसे रक्षा की। इन्होंने इक्ष्वाकु, निम्न आदिसे अनेकों यज्ञ कराये और विभिन्न महापुरुषोंके यज्ञोंमें सम्मिलित होबार उनके अनुष्ठानको पूर्ण किया। जब अपने पूर्वजोंके असफल हो जानेके कारण गङ्गाको लानेसे

भगीरथको निराशा हुई, तय इन्होंने उन्हें प्रोत्साहन देकार मन्त्र वतलाया और इन्हींके उपदेशके बलपर भगीरथने प्रयत्न करके गङ्गा—जैसी छोककल्याणकारिणी महानदीको हम लोगोंके लिये सुलम कर दिया। जब द्रिळीप संतानहीन होनेके कारण अत्यन्त दु:खी हो हि थे, तव उन्हें अपनी गौनन्दिनीकी सेवाविधि बताकर रघु-जैसे पुत्ररत्नका दान किया दशरथकी निराशामें आशाका संचार करनेवाले ये महर्षि वसिष्ठ ही थे। इन्हींकी सम्मतिसे पुत्रेष्टि यज्ञ हुआ और फलखरूप भगवान् श्रीरामने अवतार किया । भगवान् श्रीरामको शिष्यरूपमें पाकर वसिष्टने अपना पुरोहित जीवन सफल किया और न केवल वेद-वेदाङ्ग ही, बल्कि योगवासिष्ठ-जैसे—अपूर्व ज्ञानमय प्रन्थका उपदेशकर अपने ज्ञानको सफल किया। भगवान् श्रीरामके वनगमनसे छौटनेपर उन्हें राज्यकार्यमें सर्वदा परामर्श देते रहे और उनके अनेकों यज्ञ-यागादि करवाये।

महर्षि वसिष्ठसे काम-क्रोधादि रात्रु पराजित होकर उनकी चरणसेवा किया करते थे, इसके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ? एक बार विश्वामित्र उनके अतिथि हुए, इन्होंने वडे प्रेमसे अपनी कामघेतु सरलाकी सहायतासे अनेकों प्रकारकी भोजन-सामग्री आदि उपस्थित कर दी और विश्वामित्रने अपनी सेवाके साथ पूर्णतः तृप्ति-लाम किया । उस गौकी ऐसी अछौकिक क्षमता देखकर विश्वामित्रको वड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसे लेनेकी 😇 प्रकट की । गौ वसिष्ठजीके अग्निहोत्रके लिये आवस्यक थी, अतः जब उन्होंने देनेमें असमर्थता प्रकट की, तब विश्वामित्रने बलात् छीन ले जानेकी चेष्टा की । उस समय वसिष्ठजीने उस गौकी सहायतासे अपार सेनाकी सृष्टि कर दी और विश्वामित्रकी सेनाको मार भगाया । क्षत्रियबलके सामने इस प्रकार ब्रह्मबलका कक्षे देखकर उन्हें हार माननी पड़ी, परंतु इससे जिसी द्वेषभावना कम न हुई, बल्कि उन्होंने वसिष्ठको

त हरानेके लिये महादेवकी शरण प्रहण की । शंकरकी र कृपासे दिल्यास्त्र प्राप्त करके उन्होंने फिर विसष्टपर आक्रमण किया, परंतु विसष्टके ब्रह्मदण्डके सामने उनकी एक न चली और उनके मुँहसे वरवस निकल पड़ा—— धिग्वलं क्षत्रियवलं ब्रह्मतेजोवलं बलम् । एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥ अन्ततः पराजय स्वीकार करके उन्हें ब्राह्मणत्व-लाभके लिये तपस्या करने जाना पड़ा । महर्षि विसष्ट श्वमाकी भी मूर्ति थे । जब विश्वामित्रने इनके सौ पुत्रोंका संहार कर दिया, उस समय यद्यपि इन्होंने बड़ा शोक प्रकट किया, परंतु सामर्थ्य होनेपर भी विश्वामित्रके किसी प्रकारके अनिष्टका चिन्तन नहीं किया, बल्कि अन्तः करणके श्वणिक शोकाकुल होनेपर भी ये अपनी निर्लेपता और असंगताको न भूले ।

एक बार बात-ही-बातमें त्रिश्वामित्रसे इनका यह विवाद छिड़ गया कि तपस्या बड़ी है या सत्सङ्ग ? वसिष्ठजीका कहना था कि सत्सङ्ग बड़ा है और विश्वामित्रजीका कहना था कि तपस्या वड़ी है । अन्तमें दोनों महर्षि अपने विवादका निर्णय करानेके लिये ब्रह्माजीके पास उपस्थित हुए । सब बातें सुनकर ब्रह्माजीने कहा कि आप छोग पंच एकत्र करें। जाइये सूर्य, शेष, अगस्त्यादिको बुळा ळाइये। जब ये शेषनागके पास गये तो वे वोले 'भाई ! अभी तो मेरे सिरपर पृथ्वीका भार है, दोनोंमेंसे कोई एक योड़ी देरके छिये पृथ्वीको ले लें तो मैं निर्णय कर सकता हूँ। विश्वामित्रजी अपनी तपत्याके अहंकारमें फूले हुए थे, उन्होंने दस हजार वर्षकी तपस्याके फलका संकल्प किया और पृथ्वीको अपने सिरपर धारण करनेकी चेष्टा की । पृथ्वी काँपने लगी, सारे संसारमें तहलका मच गया । तत्र वसिष्ठजीने अपने सत्सङ्गके आघे क्षणके फलका संकल्प करके पृथ्वीको धारण कर लिया और बहुत देरतक धारण किये रहे । इसी प्रकार सूर्यादिके पास भी घटनाएँ हुईं। अन्तमें जब सभी ब्रह्माजीके पास पहुँचे तो ये निर्णयका आग्रह करने छंगे और कहा कि अभीतक आपने निर्णय तो सुनाया ही नहीं, इसपर सभी छोग हँस पड़े। उन्होंने कहा—'निर्णय तो अपने आप हो गया, आघे क्षणके सत्सङ्गकी बराबरी हजारों वर्षकी तपस्या नहीं कर सकती।' फिर क्या था, वे प्रसन्नताके साथ अपने-अपने आश्रमपर छौट आये। विश्वामित्रने तपपूर्वक ब्रह्मिवित्व भी प्राप्त कर छिया।

महर्षि विसष्ठ योगवासिष्ठके उपदेशके रूपमें ज्ञानकी साक्षात् मूर्ति हैं और अनेक यज्ञ-यागों तथा विषठ-संहिताके प्रणयनद्वारा उन्होंने कर्मके महत्त्व और आचरणका आदर्श स्थापित किया है। उनका जीवन तो भगवान् श्रीरामके प्रेमसे सरावोर है ही। इतिहास-पुराणोंमें इनके चित्रका बहुत वड़ा विस्तार है। महर्षि विसष्ठ आज भी सप्तर्षियोंमें रहकर सारे जगत्के कल्याणमें छगे हुए हैं।

[₹]

अष्टावक

प्रधानपुरुषच्यक्तकालानां परमं हि यत्। पर्द्यन्ति स्र्यः गुद्धास्तद् विष्णोः परमं पद्म्।* (अष्टायक्रगीता)

भगवान् अष्टावक्रके सम्बन्धमें पुराणोंमें ऐसी कथा आती है कि जब ये गर्भमें ही थे, तभी इन्हें समस्त वेदोंका बोध था। इनके पिता एक बार कुछ अग्रुद्ध पाठ कर रहे थे। इन्होंने गर्भमेंसे ही कहा—'अग्रुद्ध पाठ क्यों करते हो ?' पिताको यह बात कुछ बुरी छगी। उन्होंने शाप दिया कि 'अभीसे त् इतना टेढ़ा है तो जा, त् आठ अङ्गोंसे टेढ़ा हो जा।' पिताका वचन सत्य हुआ और ये आठ स्थानसे टेढ़े ही पैदा हुए। इसीछिये इनका नाम अष्टावक पड़ा। इन्होंने फिर विधिवत् वेद-वेदान्तका अध्ययन किया।

उन दिनों महाराज जनकके यहाँ एक पुरोहित रहता था। उसने यह नियम बना लिया था कि जो शास्त्राथमें मुझसे हार जायगा, उसे मैं जलमें डुबा दूँगा। बड़े-बड़े पण्डित जाते और हार जाते। हारनेपर वह पण्डितोंको जलमें डुबा देता। अष्टावक्रजीके पिता-मामा आदि भी इसी तरह जलमें डुबो दिये गये।

जब ये कुछ सयाने हुए तो इन्होंने इच्छा प्रकट की कि मैं भी उस पण्डितसे शास्त्रार्थ करने जाऊँगा। इनकी

बात सुनकर इनकी माता आदिने बहुत मना किया। किंतु ये माने ही नहीं । सीघे महाराजकी राजसमामें पहुँचे । इनके आठ स्थानसे टेढ़े शरीरको देखकर सभी समासद् हँस पड़े और उन्होंने जब यह सुना कि ये शाक्षार्थ करने आये हैं तब तो वे और भी जोरोंसे हँसे।

अष्टावक्रजीने कहा—'हम तो समझते थे कि विदेहराजकी समामें कुछ पण्डित भी होंगे। किंतु यहाँ तो सब चमार निकले।' यह सुनकर सभी उनके मुखकी ओर देखने लगे। राजाने पूछा—'ब्रह्मन्! आपने सभीको चमार कैसे बताया, यहाँ तो बड़े-बड़े श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण पण्डित हैं।'

अष्टावक्रजीने कहा—'देखों, आत्मा नित्य ग्रुड, निर्लेप और निर्विकार है । उसमें कोई विकार नहीं, दोष नहीं; वह मुझमें है । जिसे उसकी परीक्षा है, वही ज्ञानी या पण्डित है । उसे न पहचानकर जो चर्मसे ढके हुए इस अस्थि-मांसके शरीरको ही देखकर हँसता है उसे उस आत्माका तो बोध है नहीं, मात्र चमड़ेका ध्यान है । जिसकी ऐसी प्रवृत्ति हो, वह चमार ही तो है ।

इनकी ऐसी युक्तियुक्त बातें सुनकर महाराजको तथा समस्त सभासदोंको बड़ा संतोष हुआ। उन्होंने इनका अमिनन्दन किया, पूजा की और आनेका कारण पूछा।

[•] जो प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल इन चारोंसे परे है, जिसे ब्रह्मज्ञानी पण्डितजन ही देख पाते हैं, वही विष्णुका परम पद है।

उन्होंने कहा—'मैं आपके उस पण्डितसे शास्तार्थ कहाँगा, जो सबको जलमें डुवा देता है।' महाराजने वृद्धें बहुत मना किया, किंतु ये माने ही नहीं। विवश होकर महाराजने वृद्धी नामके उस पण्डितको बुलाया। इन्होंने उससे शास्तार्थ किया और शास्त्रार्थमें उसे परास्त्रा कर दिया। तब तो वह धबड़ाया। इन्होंने उसे पकड़ लिया और कहा—'जैसे तुमने सबको जलमें डुवोया है, उसी प्रकार मैं तुम्हें जलमें डुवोऊँगा।' यह कहकर उसे जलमें घसीट ले गये। उसने संतुष्ट होकर कहा— स्वस्त्र ! मैं आपकी विद्वत्ता और पाण्डित्यसे बहुत प्रसन्न में हूँ। रह गयी मुझे डुवानेकी वात, सो मैं जलमें इव उनहीं सकता। मैं वरुणका दूत हूँ। महाराज वरुण

पं एक यज्ञ कर रहे थे। उन्हें वहाँ श्रेष्ठ पण्डितोंकी अवश्यकता थी, इसीलिये मैंने यहाँसे सब पण्डितोंको वहीं मेजा है। जिन्हें मैंने जलमें डुबाया है, वे सब-के सब जीवित हैं और वरुणजीके यज्ञको सम्पन्न कराकर अब वापस आ रहे हैं। मैं उन सबको आपके सामने यहाँ लाता हूँ। वन्दीके इतना कहते-न-कहते सभी पण्डित दक्षिणासिहत वहाँ आ गये। सभीने प्रेमपूर्वक अष्टावक्रजी-का आलिक्नन किया और कहा—'इसीलिये तो ऋषियोंने सत्-पुत्रकी प्रशंसा की है। यदि समस्त कुलमें एक भी धर्मात्मा सत्पुत्र हो जाता है तो वह समस्त कुलका उद्धार कर सकता है।'

'अष्टावक्रगीता'में भगवतत्त्वपर अद्भुत प्रकाश है।

[8]

अगस्त्य

महर्षि अगस्य वेदोंके मन्त्रद्रष्टा ऋषि तथा भगवत्तत्त्वके मुख्य उपदेष्टाओंमेंसे एक हैं। इनकी उत्पत्ति-के सम्बन्धमें विभिन्न कथाएँ मिलती हैं। कहीं मित्रावरूणके द्वारा विसष्ठके साथ इनके घड़ेमें पैदा होनेकी बात आती है तो कहीं पुलस्यकी पत्नी हविभूके गर्भसे विश्रवाके साथ इनकी उत्पत्तिका वर्णन आता है। किसी-किसी प्रन्थके अनुसार खायम्भुव मन्वन्तरमें पुलस्यतनय दत्तोलि ही अगस्त्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। ये सभी बातें कल्पमेदसे मान्य हैं। वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्डके अनुसार ये सभी देवताओंके भी आराध्य रहे हैं।

कहते हैं, एक बार विन्ध्याचळने बढ़कर भगवान् सूर्यका मार्ग अवरुद्ध कर लिया । इससे संसारयात्रा एवं यज्ञादि कम अवरुद्ध हो गये । देवतागण महर्षि अगस्यके शरणमें गये । अगस्त्यने उन्हें आश्वासन दिया और खयं विन्ध्याचळके पास उपस्थित हुए । विन्ध्याचळने निकी बड़ी श्रद्धा-मिक्तसे आवभगतकी और साष्टाङ्ग नेमस्कार किया । अगस्त्यजीने उससे कहा— भैया ! मुझे तीथोंमें पर्यटन करनेके लिये दक्षिण जाना

है । पर तुम्हारी इतनी ऊँचाई ठाँघकर जाना बड़ा कठिन है ! अतः जबतक न छोटूँ, तवतक तुम इसी प्रकार पड़े रहो। विन्ध्याचलने उनकी आज्ञा मान छी। तबसे न महर्षि अगस्त्य छोटे, न विन्ध्याचल उठा। अगस्त्यने जाकर उज्जियनी नगरीके शूलेस्वर तीर्थके पूर्व दिशामें एक कुण्डके पास शिवजीकी आराधना की। भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। आज भी भगवान् शंकरकी मूर्ति वहाँ अगस्त्येस्वरके नामसे प्रसिद्ध है।

एक बार भ्रमण करते-करते महर्षि अगस्त्यने देखा कि कुछ छोग नीचे मुँह किये हुए कुएँमें छटक रहे हैं। पता छगानेपर ज्ञात हुआ कि ये उन्हींके पितर हैं और उनके उद्धारका उपाय यह है कि वे संतान उत्पन्न करें। ऐसा किये बिना पितरोंका कष्ट मिटना सम्भव न या। अतः उन्होंने विदर्भराजकी पुत्री छोपामुद्राको अपनी पत्नीके रूपमें खीकार किया। वे श्रीविद्याकी आचार्या हैं।

एक बार इल्वल और वातापी नामके दो दैत्योंने बड़ा उपद्रव मचाया । वे ऋषियोंको अपने यहाँ निमन्त्रित करते। वातापी खयं भोजनके रूपमें परिणत हो जाता और जब ऋषिलोग उसे खा चुकते, तब इल्वल उसे बाहरसे पुकारता। फिर वह उनका पेट फाड़कर निकल आता। इस प्रकार महान् ब्राह्मणसंहार चल रहा था। मला, महर्षि अगस्त्य इसे कैसे सहन कर सकते थे! वे भी एक दिन उनके यहाँ अतिथिके रूपमें उपस्थित हुए। मोजनके बाद इल्वल पुकारता रहा, पर अब तो वे सर्वदाके लिये उसे पचा चुके थे। इस प्रकार लोकका महान् कल्याण हुआ।

एक बार जब इन्द्रने वृत्रासुरको मार डाला तब कालेय नामके देंग्योंने समुद्रका आश्रय लेकर ऋषि-मुनियोंका विनाश करना शुरू किया। वे दैत्य दिनमें तो समुद्रमें रहते और रातमें निकलकर पवित्र जंगलोंमें रहनेवाले ऋषियोंको खा जाते। उन्होंने विसष्ठ, च्यवन, भरद्वाज समीके आश्रमोंपर जा-जाकर हजारोंकी संख्यामें ऋषि-मुनियोंका मोजन किया था। देवताओंने महर्षि अगस्त्यकी शरण-प्रहण की। उनकी प्रार्थनासे तथा लोगोंकी व्यथा तथा हानि देखकर उन्होंने अपने एक चुल्द्रमें ही सारे समुद्रको पी ल्रिया। देवताओंने फिर जाकर कुळ दैत्योंका वध कर दिया, कुळ दैत्य भागकर जैसे-तैसे पाताल चले गये।

एक बार ब्रह्महत्याके कारण इन्द्रके स्थानच्युत होनेके कारण राजा नहुष इन्द्र हुए । इन्द्र बननेपर अधिकारके मदसे मत्त होकर उन्होंने इन्द्राणीको अपनी पत्नी बनानेकी चेष्टा की । बृहस्पतिकी सम्मतिसे इन्द्राणीने उन्हें एक ऐसी सवारीसे आनेकी बात कही,

जिसपर अवतक कोई सवार न हुआ हो। मदमत नहुपने सवारी ढोनेके लिये ऋषियोंको ही बुलाया। ऋषियोंको तो सम्मान-अपमानका कुछ स्याल नहीं था और आकर सवारीमें जुत गये। पर नहुष जब सवारीपर चढ़कर चले, तब शीघातिशीघ्र पहुँचनेके लिये (सर्प सर्प) 'जल्दी चलो, जल्दी चलो' कहते हुए उन ब्राह्मणोंको पैरसे ताड़ित करने लगे। यह बात महर्षि अगस्त्यसे न देखी गयी। उन्होंने नहुषको सर्प होनेका शाप देकर समाजकी मर्यादा सुदृढ़ रखी तथा धनमद एवं पदमदके कारण अन्वे लोगोंकी आँखें खोल दी।

भगवान् श्रीराम वनगमनके समय इनके आश्रमण प्यारे थे। इन्होंने वडे प्रेमसे उनका सत्कार किया और उन्हें कई प्रकारके रास्त्राश्च दिये । लङ्काके युद्धों आदित्यहृदयका उपदेश दिया, जिससे श्रीरामने रायणका वध किया । सुतीक्ष्णजी इन्हींके शिष्य थे। उनकी तन्मयता और प्रेमकें स्मरणसे आज भी छोग भगवान्की ओर अग्रसर होते हैं। लङ्कापर विजय प्राप्त करके जब भगवान् श्रीराम अयोध्याको छौट आये और उनका राज्यामिषेक हुआ तब महर्षि अगस्य वहाँ आये और उन्होंने भगवान् श्रीरामको अनेकों प्रकारकी क्याएँ सुनायीं । वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डकी अधिकांश कथाएँ इन्होंके द्वारा कही हुई हैं। इन्होंने उपदेश और सत्य-संकल्पके द्वारा अनेकोंका कल्याण किया। इनके द्वारा रचित अगस्त्यसंहिता आदि अनेकों प्रन्थ हैं। जिज्ञासुओंको उनका अवलोकनकर भगवत्साक्षात्कारका मार्ग सीखना चाहिये।

[५]

धुतीक्ष्णजी महर्षि अगस्त्यजीके शिष्य थे। विद्याध्ययन समाप्त होनेपर गुरुने कहा—'अत्र तुम सत्र विद्याओंको पढ़ गये, तुम्हारा अध्ययन समाप्त हुआ।' धुतीक्ष्णजीने कहा—'गुरुदेव! विद्यासमाप्तिके पश्चात् तो गुरुके लिये कुछ गुरुदक्षिणा देनी ही चाहिये। इसपर गुरुजीने कुछ खीझते हुए-से कहा—'अच्छा देना ही चाहते हो तो सीतारामजीको यहाँ लेआओ।'

सुतीक्ष्णजी गुरुके चरणोंमें प्रणाम कर चुपचाप चल दिये और कुछ दूर एक जंगलमें रहकर घोर तपस्या करने लगे । वे श्रीकौशलकिशोरकी वनवासी छिकित तित्तर ध्यान करते थे। बहुत दिनोंके पश्चात् उन्होंने धुना राजीवलोचन भगवान् राम जगज्जननी सीताके साथ प्थार रहे हैं और वे इधर इसी रास्तेसे आ रहे हैं। तब तो उनके हर्षका ठिकाना न रहा, वे प्रभुकी कृपालुताका बार-बार स्मरण करने लगे। क्या वे दीनबन्धु भक्तवत्सल मुझ-जैसे दम्भी अभक्तपर भी कृपा करेंगे! यह सोचते-सोचते सुतीक्ष्णजीकी विचित्र दशा हो गयी। वे प्रेमके महाभावोंके प्रकट होनेसे परमोन्मादीकी माँति इथर-उधर फिरने लगे। किवने उनकी उन्मादी दशाका है सी। सजीव चित्रण किया है——

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा कबहुँक फिरि पार्छे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करै गुन गाई॥ अबिरल प्रेम भगति सुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई॥

जब प्रेमी-प्रेमके उद्देकमें अपने आपेको भूल जाता है, तब प्रभु दूर रह ही नहीं सकते, वे एकदम पास आ जाते हैं। एक बानि करूना निधानकी।सो प्रिय जाकें गति न आनकी॥

जब भगवान्ने देखा कि अब नाचना-गाना छोड़कर भक्त एकदम स्थिर होकर गम्भीर हो गया है, तब प्रमु उनके समीप चले गये। किंतु वे ध्यानानन्दमें मस्त थे। जब जगानेपर भी वे न जगे तो उन्होंने उनके हृदयसे अपने धनुषधारी रूपको गायब कर चतुर्मुज विष्णुरूप दिखाया। इसपर छुतीक्ष्णने व्याकुल होकर झट आँखें खोल दीं। फिर वे देखते क्या हैं कि वे जिस रूपका घ्यान कर रहे थे, वे ही श्रीसीता-लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीराम वाहर खड़े हैं। वस, फिर क्या था ! जिसकी आशा लगाये इतने दिनसे रास्ता रोके बैठे थे, वह तत्त्व प्राप्त हो गया। तपस्याका परम फल प्राप्त हुआ। वे लकुटकी तरह चरणोंमें गिर पड़े।

भगवान् प्रसन्न हुए । उन्हें सब सिद्धियाँ प्रदान कीं, अविरल भक्ति दी और सदा इसी रूपसे उनके हृदय-मन्दिरमें विराजे रहनेका वरदान दिया। सब प्रकार भक्तने उन्हें बाँघ लिया, तब पूछा—'प्रमो ! किघर जाना होगा !' भगवान् बोले—'हम महामुनि भगवान् अगस्यके दर्शनोंको जा रहे, हैं। मुनि जल्दीसे बोल उठे-- 'वहाँ तो मुझे भी चलना है। वे मेरे गुरु हैं। बहुत दिनसे गया नहीं । अब मुझे जाना ही चाहिये । यही तो उनके चरणोंमें जानेका अवसर है। भगवान् हँसे और उन्हें साथ ले लिया । अगस्त्य मुनिके आश्रममें जाकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् तो महर्षिकी आज्ञाकी प्रतीक्षामें खड़े रहे, किंतु स्रतीक्ष्णको तो आज्ञा लेनी नहीं थी । वे झटसे जाकर बोले-- 'गुरुदेव ! भगवान् प्रभु, आ गये, जिनकी आप प्रतीक्षा कर रहे थे, वे--'स्यामसरोजदामसम सुंदर' सरकार द्वारपर खड़े हैं। सुनते ही अगस्त्यजी दौड़ पड़े और प्रमुको ले आये।

धन्य हैं वे गुरु जिनके सुतीक्ष्ण-जैसे परमभक्त शिष्य हैं, जिन्होंने गुरुको साक्षात् अखिल ब्रह्माण्ड-नायक प्रमुको ही लाकर समर्पित कर दिया । (वाल्मीकीयरामायणकी कथा इससे भिन्न है।)

[६] महर्षि बासुदेव

वासुदेव महर्षि रैवतकके शिष्य थे। जब इनके इत्यमें तत्व जिज्ञासाकी तीव्र उत्कण्ठा जगी, तब ये घर, बार, कुटुम्बसे नाता तोड़कर सद्गुरुके अन्वेषणमें निकल पहे। इनका अन्तःकरण शुद्ध था। इनके मनमें पामात्माके साक्षात्कारके लिये सच्ची लगन थी। भावान् तो घट-घटवासी हैं ही, उन्होंने महर्षि वितकके अन्तस्तलमें प्रेरणा कर ही दी। महर्षि

इनके सामने तुरंत प्रकट हुए । उन्होंने इन्हें मन्त्र-साधना और सिद्धिका उपदेशकर मगवतत्त्वका साक्षात्कार करा दिया । इन्हें निरत्तर बोध रहने लगा कि भैं ब्रह्मसे अभिन्न हूँ । फिर ये उससे भी ऊपर उठ गये । और जगत्का ही अत्यन्ताभाव प्रतीत होने लगा । इन्हें क्रमशः जीवमुक्त और कैवल्य लाभ हुआ । [0]

परम भागवत उद्भव

पताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द् पव निखिलात्मनि रूढभावाः। वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च कि ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥* (श्रीमद्रा०१०।४७।५८)

श्रीउद्धवजी भगवान्के परम प्रिय सखा एवं भक्त थे। अक्रूरके साथ जब भगवान् व्रजसे मथुरा आ गये और कंसको मारकर सब यादवोंको सुखी बना दिया तो एक दिन भगवान्ने उन्हें एकान्तमें बुछाकर कहा—'उद्धवजी! व्रजकी गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोगमें व्याकुछ होंगी, उन्हें जाकर आप समझा आइये। उन्हें मेरा संदेश कह दें कि मैं तुम छोगोंसे अछग नहीं साथ ही हूँ।' उद्धवजी नन्द-व्रजमें गये। वहाँ इन्हें व्रजवासियोंने घेर छिया और भाँति-भाँतिके प्रश्न करने छगे। उद्धवजीने सबको यथायोग्य उत्तर दिया और सबको धैर्य बँधाया।

उन्होंने एकान्तमें गोपियोंको श्रीकृष्णका दिया ज्ञान-संदेश सुनाया । उन्होंने कहा—'भगवान् वासुदेव किसी एक जगह नहीं हैं, वे तो सर्वत्र व्यापक हैं । उनमें भगवत्-बुद्धि करो, सर्वत्र उन्हें देखो ।'

गोपियोंने कहा—'उद्भवजी! आप ठीक कहते हैं, किन्तु हम गँवार श्रियाँ इस गूढ़ भगवत्तत्वको भला कैसे समझें! हम तो उन श्यामसुन्दरकी भोली-भाली स्र्तपर ही अनुरक्त हैं। उनका वह हास्यसे युक्त मुखारविन्द, वह काली-काली घुँघराली अलकावली, वह वंशीकी मधुर ध्विन हमें हठात् अपनी ओर खींच रही है। वृन्दावनकी समस्त भूमिपर उनकी अनन्त स्मृतियाँ अङ्कित हैं। तिलभर भी जमीन खाली नहीं, जहाँ उनकी कोई मधुर स्मृति न हो।

हम इन यमुना-पुलिन, वन, पर्वत, वृक्ष और लताओंमें उन स्थामसुन्दरको देखती हैं। इन्हें देखकर उनकी स्पृति मूर्तिमान् होकर हमारे हृदयपटलपर नाचने लगती है।

उनके ऐसे अछौिकक प्रेमको देखकर उद्भवजी अपना समस्त ज्ञान भूल गये और अव्यन्त करुणाके खरमें कहने लगे—

वन्दे नन्दवजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णराः। यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥ (श्रीमद्भा० १०। ४७। ६३)

'में इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलिकी भक्तिभावसे वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी हुई हरि-कथा तीनों भुवनोंको पावन करनेवाली है। व्रजमें जाकर उद्भवजी ऐसे प्रभावित हुए कि वे अपनी सारी ज्ञान-गाथा भूल गये।

भगवान्के द्वारका पधारनेपर ये उनके साथ ही रहे। यदुवंशियोंके मन्त्रि-मण्डलमें इनका प्रधान स्थान था। इनकी भगवान्में अनन्य भक्ति थी। जब इन्होंने समझा कि भगवान् अब इस लोककी लीलाका संवरण करना चाहते हैं तब वे एकान्तमें जाकर बड़ी दीनताके साथ कहने लगे—

नाहं तवाङ्ब्रिकमलं क्षणार्धमिप केराव। त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामिप॥ (श्रीमद्भा०११।६।४३)

'भगवन् ! हे नाथ ! मैं आपके चरणोंसे एक क्षणके लिये भी अलग होना नहीं चाहता । मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये ।' भगवान् बोले—'उद्धव ! मैं इस लोकसे इस शरीरद्वारा अन्तर्हित होना चाहता हूँ । मेरे अन्तर्हित होते ही यहाँ घोर कलियुग आ जायगा ।

[#] उद्धवनी कहते हैं—'इस पृथ्वीमें जन्म लेना तो इन गोपाङ्गनाओंका ही सार्थक हुआ; क्योंकि इनकी विश्वात्मा भगवान् नन्दनन्दनमें प्रगाढ़ प्रीति है, निसे पानेके लिये मुनिगण तथा हमलोग भी सदा इच्छुक बने रहते हैं। जिनको भगवान्की कथामें अनुराग हो गया, उन्हें ब्राह्मणकुलमें नन्म, उपनयन अथवा यज्ञ-दीक्षा आदिकी क्या आवश्यकता ?'

क्षि तुम बदरिकाश्रमको चले जाओ और वहाँ ्या करो । तुम्हें कालियुगका धर्म नहीं ज्यापेगा । ज्ञान्की ऐसी ही इच्छा है यह समझकर उद्भवजी क्षेत्री गये, किंतु उनका मन भगत्रान्की लीलाओंमें ह्या रहा । वे द्वारकासे वद्रीवनके लिये चल पड़े । जब सब यादव प्रभासक्षेत्रको चले गये, तो ज्ञान्की अन्तिम लीलाको देखने विदुरजी भी असमें पहुँचे । तत्रतक समस्त यदुत्रंशियोंका संहार ो चुका था, विदुरजी ढूँढ़ते-<mark>हूँ</mark>ढ़ते भगवान्के पास 🙀 । भगवान् सरस्रती नदीके तटपर एक अक्कथके वे विराजमान थे, विदुरजीने रोते-रोते उन्हें प्रणाम क्षा। दैवयोगसे पराशरके शिष्य मैत्रेयजी भी वहाँ आ से। दोनोंको भगवान्ने इस समस्त जगत्की सृष्टि, र्शित, प्रलयका ज्ञान कराया और इस दुर्लभ ज्ञानको बिद्वाजीके प्रति उपदेश करनेके लिये भी भगवान् उन्हें दिंश देते गये।

भगवान्की आज्ञा पाकर उद्भवजी बद्दिकाश्रमको छ। उद्भवजीके हृद्यमें भगवान्का वियोग भर रहा ॥, किसी सहृद्यके सामने रोनेसे हृद्य हुळका होता है। दैवयोगसे उन्हें विदुरजी मिल गये । विदुरजीने । वि

[6]

भक्तवर्य ध्रवके वंशमें वेन नामका एक वड़ा दुराचारी एवं दुष्ट राजा हुआ। उसे मुनियोंने शापद्वारा दग्धं कर हाला। उसकी कोई संतान न होनेके कारण उन मियोंने उसके शरीरका ही मन्थन किया। इससे एक बी और एक पुरुषका युग्म (जोड़ा) उत्पन्न हुआ। मियोंने कहा—'यह पुरुष भगवान् विष्णुके अवतार ध्रु हैं और ये की लक्ष्मीका अवतार अर्चि हैं।' ध्रुके प्राकट्यसे हर्षित होकर गन्धर्वगण गान करने

कृष्णयुमणिनिम्छोचं गीणंष्वजगरेण ह। किं जुनः कुशलं बूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम्॥ दुर्भगो वत लोकोऽयं यदवो नितरामि। ये संवसन्तो न विदुर्हीरें मीना इवोडुएम्॥ (श्रीमद्रा०३।२।७-८)

'कृष्णरूपी मूर्यके अस्त होनेपर, काल्रूपी सर्पके प्रसे जानेपर हे विदुरजी! हमारे कुलकी अब कुराल क्या पूछते हो! यह पृथ्वी हतभागिनी है और उनमें भी ये यदुवंशी सबसे अधिक भाग्यहीन हैं, जो दिन-रात पासमें रहनेपर भी भगवान्को वैसे हीन पहचान सके, जैसे समुद्रमें रहनेवाले जीव चन्द्रमा (या जहाज)को नहीं पहचान पाते।' इसके बाद उद्भवजीने यदुवंशके श्वयकी बातें सुनायीं। उद्भवजी परम भागवत थे, ये भगवान्के अभिन्न विप्रह थे। इनके सम्बन्धमें भगवान्ने स्पष्ट कहा है—

असा ाल्लोका दुपरते मिय शानं मदाश्रयम् । अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः ॥ नोद्धवीऽण्विप मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः । अतो मद्धयुनं लोकं ग्राह्यक्षिष्ठ तिष्ठतु ॥ (श्रीमद्रा॰ ३ । ४ । ३०-३१)

भेरे इस लोकसे चले जानेके पश्चात् उद्भव मेरे ज्ञानकी रक्षा करेंगे। उद्भव मुझसे गुणोंमें तनिक भी कम नहीं हैं, अतः वे ही सबको इसका उपदेश करेंगे।

महाराज पृथु
राचारी लगे, सिद्धोंने पुष्पवृष्टि की और अप्सराएँ तृत्य करने
धंकर लगीं। देवताओं, ऋषियों और पितरोंके समूह महाराज
धंकर लगीं। देवताओं, ऋषियों और पितरोंके समूह महाराज
उन पृथुका दर्शन करनेके लिये उनकी नगरीमें आये।
एक जगद्गुरु ब्रह्माजी भी इन्द्रादि लोकपालोंके साथ वहाँ
आ। आये और उन्होंने राजाके दाहिने हाथ तथा चरणोंमें
आगे और उन्होंने राजाके दाहिने हाथ तथा चरणोंमें
विवार गदा, कमलादिके चिह्न देखकर निश्चय किया कि ये
बिहारिके ही अवतार हैं। ब्रह्मवादी ऋषियोंने उनके
अभिषेककी तैयारी की तथा सबने अपनी-अपनी योग्यताके

भि त र व र स्ट-०. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

[0]

परम भागवत उद्भव

पताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्यो
गोविन्द पव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
कि ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥*
(श्रीमद्रा० १० । ४७ । ५८)

श्रीउद्भवजी भगवान्के परम प्रिय सखा एवं भक्त थे। अक्रूरके साथ जब भगवान् ब्रजसे मथुरा आ गये और कंसको मारकर सब यादवोंको सुखी बना दिया तो एक दिन भगवान्ने उन्हें एकान्तमें बुलाकर कहा—'उद्भवजी! ब्रजकी गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोगमें व्याकुल होंगी, उन्हें जाकर आप समझा आइये। उन्हें मेरा संदेश कह दें कि मैं तुम लोगोंसे अलग नहीं साथ ही हूँ।' उद्भवजी नन्द-ब्रजमें गये। वहाँ इन्हें ब्रजवासियोंने घेर लिया और भाँति-भाँतिके प्रश्न करने लगे। उद्भवजीने सबको यथायोग्य उत्तर दिया और सबको धैर्य बँधाया।

उन्होंने एकान्तमें गोपियोंको श्रीकृष्णका दिया ज्ञान-संदेश सुनाया। उन्होंने कहा—'भगवान् वासुदेव किसी एक जगह नहीं हैं, वे तो सर्वत्र व्यापक हैं। उनमें भगवत्-बुद्धि करो, सर्वत्र उन्हें देखो।'

गोपियोंने कहा—'उद्भवजी! आप ठीक कहते हैं, किन्तु हम गँवार स्त्रियाँ इस गृद भगवत्तत्वको भला कैसे समझें! हम तो उन स्थामसुन्दरकी भोली-भाली सूरतपर ही अनुरक्त हैं। उनका वह हास्यसे युक्त मुखारविन्द, वह काली-काली घुँघराली अलकावली, वह वंशीकी मधुर ध्वनि हमें हठात् अपनी ओर खींच रही है। वृन्दावनकी समस्त भूमिपर उनकी अनन्त स्मृतियाँ अङ्कित हैं। तिलभर भी जमीन खाली नहीं, जहाँ उनकी कोई मधुर स्मृति न हो।

हम इन यमुना-पुलिन, वन, पर्वत, वृक्ष और खताओंमें उन स्यामसुन्दरको देखती हैं। इन्हें देखकर उनकी स्मृति मूर्तिमान् होकर हमारे इदयपटलपर नाचने लगती है।

उनके ऐसे अछौकिक प्रेमको देखकर उद्भवनी अपना समस्त ज्ञान भूछ गये और अत्यन्त करुणाके खरमें कहने छगे—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः। यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥ (श्रीमद्रा० १० । ४७ । ६३)

'मैं इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलिकी भक्तिमावसे वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी हुई हरि-कथा तीनों मुवनोंको पावन करनेवाली है। व्रजमें जाकर उद्धवजी ऐसे प्रभावित हुए कि वे अपनी सारी ज्ञान-गाथा मूल गये।

भगवान्के द्वारका पधारनेपर ये उनके साथ ही रहे। यदुवंशियोंके मन्त्र-मण्डलमें इनका प्रधान स्थान था। इनकी भगवान्में अनन्य मक्ति थी। जब इन्होंने समझा कि भगवान् अब इस लोककी लीलका संवरण करना चाहते हैं तब वे एकान्तमें जाकर बड़ी दीनताके साथ कहने लगे—

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमिप केशव। त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामिप॥ (श्रीमद्भा०११।६।४३)

'भगवन् ! हे नाथ ! मैं आपके चरणोंसे एक क्षणके लिये भी अलग होना नहीं चाहता । मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये ।' भगवान् बोले 'उद्भव ! मैं इस लोकसे इस शरीरद्वारा अन्तर्हित होना चाहता हूँ। मेरे अन्तर्हित होते ही यहाँ घोर कलियुग आ जायगा।

[#] उद्धवजी कहते हैं—'इस पृथ्वीमें जन्म लेना तो इन गोपाङ्गनाओंका ही सार्थक हुआ; क्योंकि इनकी विश्वाला भगवान् नन्दनन्दनमें प्रगाद प्रीति है, जिसे पानेके लिये मुनिगण तथा हमलोग भी सदा इच्छुक बने रहते हैं। जिनकी भगवान्की कथामें अनुराग हो गया, उन्हें ब्राह्मणकुलमें जन्म, उपनयन अथवा यज्ञ-दीक्षा आदिकी क्या आवश्यकता !

इसिलिये तुम बद्दिकाश्रमको चले जाओ और बहाँ तपस्या करो । तुम्हें कलियुगका धर्म नहीं ज्यापेगा । 'भगवान्की ऐसी ही इच्छा है' यह समझकर उद्भवजी चले तो गये, किंतु उनका मन भगवान्की लीलाओं में ही लगा रहा । वे द्वारकासे बद्दीवनके लिये चल पड़े ।

जन सन यादन प्रभासक्षेत्रको चले गये, तो भगनान्की अन्तिम लीलाको देखने निदुरजी भी प्रभासमें पहुँचे। तनतक समस्त यदुवंशियोंका संहार हो चुका था, निदुरजी ढूँढते-हूँढते भगनान्के पास पहुँचे। भगनान् सरखती नदीके तटपर एक अक्ष्यके नीचे निराजमान थे, निदुरजीने रोते-रोते उन्हें प्रणाम किया। दैनयोगसे पराशरके शिष्य मैत्रेयजी भी नहाँ आ गये। दोनोंको भगनान्ने इस समस्त जगत्की सृष्टि, स्थितं, प्रलयका ज्ञान कराया और इस दुर्लभ ज्ञानको निदुरजीके प्रति उपदेश करनेके लिये भी भगनान् उन्हें निर्देश देते गये।

भगवान्की आज्ञा पाकर उद्भवजी बदरिकाश्रमको चले । उद्भवजीके हृदयमें भगवान्का वियोग भर रहा था, किसी सहृदयके सामने रोनेसे हृदय हलका होता है । दैवयोगसे उन्हें विदुरजी मिल गये । विदुरजीने पूछा—-'यदुवंशका कुशल कैसा है !' इसपर उद्भवजी रोकर कहने लगे— कृष्णयुमणिनिम्लेष्चे गीर्णप्वजगरेण है। किं चु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम्॥ दुर्भगो वत लोकोऽयं यद्यो नितरामपि। ये संवसन्तो न विदुर्हिरें मीना इवोडुपम्॥ (श्रीमद्रा०३।२।७८)

'कृष्णक्रपी मूर्यके अस्त होनेपर, कालक्रपी सर्पके प्रसे जानेपर हे विदुरजी ! इमारे कुलकी अव कुशल क्या पूछते हो ! यह पृथ्वी हतभागिनी हैं और उनमें भी ये यदुवंशी सबसे अधिक भाग्यहीन हैं, जो दिन-रात पासमें रहनेपर भी भगवान्को वैसे ही न पहचान सके, जैसे समुद्रमें रहनेवाले जीव चन्द्रमा (या जहाज)को नहीं पहचान पाते।' इसके बाद उद्ववजीने यदुवंशके श्वयकी बातें सुनायीं। उद्ववजी परम भागवत थे, ये भगवान्के अभिन्न विप्रह थे। इनके सम्बन्धमें भगवान्ने स्पष्ट कहा हैं—

असा ाल्लोका दुपरते मिय श्वानं मदाश्रयम् । अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः ॥ नोद्धवो ऽण्विप मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः । अतो मद्ययुनं लोकं प्राह्यन्निष्ट् तिष्ठतु ॥ (भीमद्रा॰ ३ । ४ । ३०-३१)

'मेरे इस लोकसे चले जानेके पश्चात् उद्भव मेरे ज्ञानकी रक्षा करेंगे। उद्भव मुझसे गुणोंमें तनिक मी कम नहीं हैं, अतः वे ही सबको इसका उपदेश करेंगे।'

[6

महाराज पृथु

भक्तवर्य ध्रुवके वंशमें वेन नामका एक वड़ा दुराचारी एवं दुष्ट राजा हुआ । उसे मुनियोंने शापद्वारा दग्धं कर हाला । उसकी कोई संतान न होनेके कारण उन ऋषियोंने उसके शरीरका ही मन्यन किया । इससे एक बी और एक पुरुषका युग्म (जोड़ा) उत्पन्न हुआ । ऋषियोंने कहा—'यह पुरुष भगवान् विष्णुके अवतार एशु हैं और ये स्त्री लक्ष्मीका अवतार अर्चि हैं।' पृथुके प्राकट्यसे हर्षित होकर गन्धवंगण गान करने

लगे, सिद्धोंने पुष्पवृष्टि की और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। देवताओं, ऋषियों और पितरोंके समूह महाराज पृथुका दर्शन करनेके लिये उनकी नगरीमें आये। जगद्गुरु ब्रह्माजी भी इन्द्रादि लोकपालोंके साथ वहाँ आये और उन्होंने राजाके दाहिने हाथ तथा चरणोंमें गदा, कमलादिके चिह्न देखकर निश्चय किया कि ये श्रीहरिके ही अवतार हैं। ब्रह्मवादी ऋषियोंने उनके अभिषेककी तैयारी की तथा सबने अपनी-अपनी योग्यताके

अनुसार राजा पृथुको उपहार दिये। तदनन्तर स्त, मागध तथा वन्दियोंने राजाकी अनेक प्रकारसे स्तुति करना आरम्भ किया। इसपर राजाने उनसे कहा—'भाइयो! अवतक तो मैंने कोई ऐसे कर्म ही नहीं किये, जिनके कारण आपलोग मेरी स्तुति करें। अतः आपलोग अपनी वाणीको सार्थक करनेके लिये स्तुति करनेयोग्य भगवान् नारायणकी ही स्तुति करिये, जिनके गुण संसारमें विख्यात हैं। तथापि स्तूतोंने उनका गुणगान किया और उन्होंने उन्हें उचित पुरस्कार देकर विदा किया।

राजा वेनके अत्याचारोंसे पृथ्वी अन्नरहित हो गयी
थी। इससे प्रजा अत्यन्त दुःखी थी। अब पृथुजैसे धर्मात्मा राजाको सिंहासनारूढ़ देखकर प्रजा
उनके पास आयी और उनसे अपनी करुण कहानी
सुनायी। राजा बहुत दुखी हुए और ध्यानसे देखा
तो उन्हें पृथ्वीद्वारा ओषियों और बीजोंको प्रस्त करनेकी
बात ज्ञात हुई। इससे उन्हें पृथ्वीपर कोध आया और
उन्होंने धनुषपर बाण चढ़ाया। पहले तो पृथ्वी
भयभीत होकर गौरूप धारणकर भागी, किंतु फिर कहने
लगी—'राजन्! आप दोहनरूप उपायका अवलम्बन
कीजिये। इससे ये ओषियाँ पुन: उपलब्ध हो सकोंगी।

पृथ्वीके इन वचनोंको सुनकर राजाको वड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मनुको वस्स बनाकर अपने हाथरूप पात्रमें ब्रीहि, यव आदि सकल ओषधिरूप दूध दुहा और सकल मनोरधोंको पूर्ण करनेवाली पृथ्वीको वे पुत्रीरूपमें मानने लगे। तभीसे यह 'पृथ्वी' नामसे विख्यात हुई। इसके अनन्तर उन समर्थ राजाधिराजने अपने धनुपके अप्रभागसे पर्वतोंके शिखरोंको चूर्ण करके पृथ्वीको प्रायः समतल बना दिया और जहाँ-तहाँ लोगोंके रहनेके लिये यथोचित रीतिसे गाँव, पुर, नगर, नाना प्रकारक दुर्ग भीलोंके पल्लिप्राम, गीओंके योग्य

स्थान, सेनाक ठहरनेके स्थान किसानोंक गाँव आ बनवाये, जिससे सारी प्रजा निर्भय होकर सुखपूर्व रहने लगी।

महाराज पृथु विष्णुके अवतार होकर भी श्रेष्ठ भक्त थे । उन्होंने ब्रह्मावर्त क्षेत्रमें, जहाँ सरस नदी पूर्वकी ओर बहती है, सौ अश्वमेध यज्ञ कर लिये दीक्षा प्रहण की । उनके इस प्रयत्नको देख इन्द्रको भय हुआ कि उनका यह उद्योग इन्द्रत्वकी प्राप्तिके लिये तो नहीं है ! इस । उसने यज्ञमें कई त्रार विघ्न डाला । जब राजा निन्य यज्ञ समाप्त कर चुके और सौकी संख्या पूरी क उद्यत हुए, उस समय इन्द्रने फिर विवन करना किया । इसपर ऋत्विजोंने मन्त्रोंके बलसे इ बुछाकर होमनेका निश्चय किया, परंतु ब्रह उन्हें इस कमसे रोका और पृथुको निन्या संख्यासे ही संतोष कर छेनेको कहा। ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर यज्ञको आगे चलानेका छोड़ दिया और इन्द्रसे संधि कर ली। जब अवभृथ-स्नान करके उठे तो उस सयम उन्हें देनेके लिये अनेक देवताओंके साथ यज्ञ यज्ञभोक्ता साक्षात् भगवान् विष्णु वहाँ उ हुए और बोले—'हे राजन् ! तुम्हारे शान्त सम निर्मत्सरता आदि गुणोंको तथा तुम्हारे सद्भावको देखकर में तुमपर बहुत प्रसन हूँ दु:ख आदि द्वन्द्वोंमें समान बुद्धि रखनेवाले पुरु जितनी सुलभतासे प्राप्त होता हूँ, उतना यइ, त योगाभ्यासद्वारा भी नहीं होता ।'

भगवान् के इन प्रेमभरे वचनोंको सुनका गद्गद हो गये। वे अश्रुप्रवाहको रोकका प्रभो ! आप ब्रह्मादि वरदाताओंको भी वर हैं, अतः आपसे कोई भी बुद्धिमान् पुरुष है

भोगोंको वरदानके रूपमें नहीं माँगेगा । आपके चरणारविन्दमकरन्दसे रहित मोक्षपदको भी मैं नहीं चाहता । मुझे तो केंबल यही बरदान दीजिये कि आपका यश सुननेके लिये मुझे दस हजार कान प्राप्त हो जायँ । इच्छारहित साधु पुरुष ज्ञानकी प्राप्ति हो जानेपर भी आपकी भक्ति ही करते हैं। उन्हें निरन्तर. आपके चरणोंका स्मरण करनेके अतिरिक्त कोई दूसरा प्रयोजन नहीं रहता । आप जो मुझे 'वर माँगो' ऐसा कहते हैं, सो आपकी यह वाणी सारे जगत्को मोहित करनेवाळी है । इतना ही क्यों, आपकी वेदरूप वाणी भी छोगोंको मोहित करके बाँध लेती है, नहीं तो यह मनुष्य वार-वार फलोंकी अभिलापासे कर्म क्यों करता ! हे ईश्वर ! यह मूर्ख प्राणी स्त्री-पुत्रादिकी इच्छा करता है, इसीलिये आपकी मायाने इसे सत्यखरूप आपसे अलग कर रक्खा है । अतः मेरी तो यही प्रार्थना है कि मायाजालमें फँसे हुए इस जीवको आप और अधिक न फँसावें, किंतु जिस प्रकार पिता अपने पुत्रका हित करता है, उसी प्रकार आपको भी हमारा हित करना चाहिये।

राजाके इन वचनोंको धुनकर भगवान् बहे प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए अपने धामको चले गये। राजा अपने नगरको छौटकर न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने छगे। वे केवल अपने प्रारब्ध-कर्मोंके अनुसार प्राप्त हुए भोगोंको भोगते थे और मोगोंकी इच्छासे कोई नवींन कर्म नहीं करते थे। उनका भोग भोगना केवल पुण्यकर्मोंका क्षय करनेकी इच्छासे ही था, धुखपूर्वक आसक्तिसे नहीं। राजा पृथुने एक महासत्र करनेकी दीक्षा प्रहण की। इसमें देवता, कार्षि और राजिवियोंका बड़ा भारी समाज एकित हुआ। सबका यथायोग्य पूजन करके राजाने उपस्थित समाजको धर्मका उपदेश दिया, जिसे धुनकर सब को बहे प्रसन्न हुए और राजाकी भूरि-भूरि प्रशंसा

करने लगे। इतनेमें ही वहां सूर्यके समान ते सनकादि सिद्ध महपिं आकाशमार्गसे आ पहुँचे । उ दूरसे ही देखकर राजा अपने सेवकों और समा सिंहत उठ खड़ा हुआ और नम्रतासे सिर हुकाक उनकी विधिवत् पूजा की और चरण धोकर चरणोदव सिरपर चढ़ाया । फिर राजाके प्रक्त करनेपर उन्होंने भगवत्तत्त्वका बड़ा मार्मिक विवेचन किया, जिसे सुनकर राजा अपनेको कृतार्थ मानने छगे। ऋषियोंके चले जानेके बाद वे लोकन्यवहारके निमित्त देश, काल, धन और बलकी योग्यताके अनुसार सकल कर्म यथोचित रीतिसे ब्रह्मार्पणबुद्धिसे करने लगे । अखण्ड भूमण्डलके चकवर्ती सम्राट् और गृहस्थ होते हुए भी वह इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त नहीं होते थे, वे इन्द्रके समान अजेय, पृथ्वीके समान क्षमाशील, समुद्रके समान गम्भीर और मेरुके समान धैर्यवान् थे। निर्भयतामें वे सिंहके समान, प्रजावत्सलतामें मनुके समान और ब्रह्मका विचार करनेमें बृहस्पतिके समान थे।

इस प्रकार राज्य करते बहुत समय न्यतीत हो गया, तब उन्होंने वनमें जाकर तप करनेका निरुचय किया । पृथ्वीके शासनका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर वे श्रीसहित वनको चल पड़े । इससे प्रजाको बड़ा खेद हुआ । वहाँ जाकर उन्होंने भूख, व्यास आदि कछोंको सहकर, मौनव्रतको धारणकर, इन्द्रियोंका संयम कर, श्रीके पास रहते हुए भी ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन कर तथा प्राणवायुको जीतकर केवल परमेश्वरकी प्रीतिके लिये उत्तम तपका आचरण किया । उस तपके प्रभावसे प्राक्तन कर्म नष्ट हो जानेके कारण उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया और प्राणायामके द्वारा उन्होंने इन्द्रियों एवं मनको वशमें कर लिया तथा इस प्रकार वासनारूप बन्धनके टूट जानेपर उसने सनकादि महर्षियोंके द्वारा उपदिष्ट भक्तियोगका आचरण प्रारम्भ किया । भगवान्के सकल कर्म अर्पण करके गुद्ध किया । भगवान्के सकल कर्म अर्पण करके गुद्ध

चित्त और विश्वासक साथ निरन्तर भगवान्की सेवा करनेवाले राजा पृथुके हृदयमें ब्रह्मरूप भगवान्के प्रति एकनिष्ठ भक्ति उत्पन्न हुई और भक्तिके साथ-ही-साथ वैराग्यसहित ज्ञानका प्रादुर्भाव हुआ । इससे उनके हृद्यकी सारी प्रन्थियाँ अपने-आप कट गर्यो । फिर उन्होंने उस ज्ञानका भी परित्याग कर दिया और अपने मनको परमात्मामें स्थिरकर पूर्ण ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जानेपर भगवान्में ही लीन हो गये ।

[9]

आदिराज श्रीस्रायम्भुव मनुके पुत्रं उत्तानंपादेकी धुनीति और धुरुचि नामकी दो रानियाँ थीं । धुत्र बड़ी रानी सुनीतिके पुत्र थे। छोटी राह्नी सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम था । महाराज उत्तानपाद्गे सुरुचिसे अधिक ग्रेम करते थे। एक दिन महाराज, उन्नानुपाद उत्तमको गोद्में लेकर खेला रहे थे और पुरुचि वहीं बैठकर अपने पुत्रके प्रति इस लाइ-प्यारको देखकर अपने सौभाग्यपर फूली नहीं समा रही थी । खेलते-खेलते पाँच वर्पके वालक ध्रुव भी वहाँ आ पहुँचे और अपने छोटे माईको पिताकी गोदमें देखकर इनके मनमें भी इच्छा हुई कि मैं भी पिताकी गोदमें बैठकर अपने भाईकी भाँति खेळूँ । यद्यपि पिताके हृद्यमें वात्सल्य-स्नेह्सी कमी नहीं थी तथापि पुरुचिके भयसे वे ध्रुवको गोदमें लेनेमें हिचिकचाये, सुरुचि भी बोल उठी-'बेटा ! तुम्हारा जन्म मेरे गर्भसे नहीं है। तुम पहले भगवान्की आराधना करो और मेरे गर्मसे उत्पन्न हो तब राजाकी गोदमें चढ़नेकी अभिलाषा करो ।' ध्रुवको इससे बड़ा क्लेश हुआ। वे रोने लगे और अपनी माँके पास जाकर सारी बातें कहीं। माता रोती हुई ध्रुवसे कहने लगी-- 'बेटा ! तुम्हारी विमाताने सत्य ही कहा है कि भगवान्की आराधना करनेसे ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। तुम भगवान्की आराधना करो, जिनकी आराधनासे ब्रह्माको परमेष्टि-पद प्राप्त हुआ है, तुम्हारे पितामह चक्रवर्ती हुए हैं और बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी जिनके चरणोंकी धूलि ढूँढ़ा करते हैं, उन्हींके चरणोंकी पूजा करो, तुम्हारी लालसा पूर्ण होगी।

ध्रुवः अपनी माँकी बात सुनकर ध्रुवक हृदयमें उत्साहका संचार हो गया। वे अपने अन्तःकरणको नियन्त्रित कर घरसे निकल पड़े। उन पाँच वर्षके बालकको यह प्रता न था कि भगवान् कहाँ मिलेंगे और वे कैसे हैं। परंतु क्षत्रियोंका स्वाभाविक तेज उनके अंद्रर प्रस्कृदित हो उठा और उनके अन्तःकरणमें धर्मकी पूर्ण अभिन्यक्ति होते ही भगवान्ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया।

भगवान्के भक्त ऐसे अवसरोंकी प्रतीक्षामें चूमा ही करते हैं । जहाँ सन्चा त्याग, सन्ची उत्सुकता देखी वहीं आकर प्रकट हो गये और भगवान्तक पहुँचनेका मार्ग वतला दिया। ध्रुवके घरसे निकलते ही देवर्षि नारद आ पहुँचे । अपने पापहारी करकमछोंसे ध्रुवके सिरका स्पर्श करके उन्हें अपने निश्चयपर और दृढ़ करनेके छिये भगवन्मार्गकी कठिनता बतलायी और कहा— 'अभी तुम्हारी उम्र भगवत्प्राप्तिके लिये साधन करनेकी नहीं है, चलो, मैं राजासे तुम्हें सर्वदाके छिये सम्मान देनेकी वात कह देता हूँ। तुम अभी बाघ, सिंह आदिसे भरे हुए जंगलमें मत जाओ ।' परंतु ध्रुव अव इन वातोंमें भला कब आनेवाले थे ! घरसे निकलते ही देवर्षि नारदके दर्शनसे उनका उत्साह और भी बढ़ गया और वे अपने निश्चयपर अटल रहे । तत्र देवर्षि नारदने ध्रुवकी अटल निष्ठा और जिज्ञासा देखकर उन्हें द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश किया, पूजाविधि बतायी और यमुनाके पवित्र तटपर मथुराके पास जाकर चतुर्भुज भगवान् विष्णुके घ्यानकी





ध्रुवको भगवान् श्रीहरिका दर्शन

पद्धित बतलायी और उनके मनमें यह विश्वास जमा दिया कि जो निष्कपटभावसे भगवान्की आराधना करते हैं, उनपर भगवान् अवश्य कृपा करते हैं, इसमें संदेह नहीं।

धुवने नारदजीको प्रणाम करके मथुराके लिये प्रस्थान किया और देवर्षिने राजधानीमें जाकर उनके माता-पिनाको समझा दिया । धुत्रने मथुरा पहुँचकर भगवान्की आराधना प्रारम्भ की । एक महीनेतक वे तीन-तीन दिनोंके बाद जीवनरक्षाके छिये कैथ, बैर इत्यादि जंगली फलोंको खाकर अपना सारा समय भगवत्पूजन और ध्यानमें ही व्यतीत करने छगे। दूसरे महीनेमें हर छठे दिन सूखे तिनके और पत्तोंको खाकर, तीसरे महीनेमें हर नवें दिन पानी पीकर, चौथे महीनेमें हर बारहवें दिन हवा पीकर और पाँचवें महीनेमें स्वास रोककर एक पैरसे ठूँठकी भाँति खड़े होकर वे निरन्तर भगवचिन्तनमें ही लीन हो गये। उनके पैरके अँगूठेसे दवकर पृथ्वी काँपने लगी, स्वास बंद करनेसे त्रिलोकीका स्वास लेना बंद हो गया, क्योंकि अब उनका स्वास समष्टिके स्वाससे भिन्न न था। समस्त देवता घवड़ाकार भगवान्के पास गये। भगवान् श्रीहरि उन सवको आस्वासन देकर ध्रुवके सामने प्रकट हुए । उस समय ध्रुव घ्यानमें ऐसे लीन थे कि सम्मुख आये हुए भगवान्का

भी उन्हें पता न चला । तब भगवान्ने उनके घ्यानमेंसे खयंको खींच लिया । अन ध्रुनने धनड़ाकर अपनी आँखें खोलीं तो क्या देखते हैं कि भगवान् श्रीहरि सामने खड़े हैं । देखते ही वे पृथ्वीपर भगवान्के चरणोंमें गिर पड़े । वे भगवान्को इस तरह देख रहे थे, मानो नेत्रोंक द्वारा भगवान्को पी जायँगे । उनकी वाँहें इस तरह उठी हुई थीं मानो उन्हें आलिङ्गन करना चाहती हों और उनका मुख इस प्रकार उत्सुकतापूर्ण था, जैसे कोई नन्हा-सा बालक उन परमपिता भगवान्के वात्सल्यपूर्ण मधुर चुम्बनके लिये ललक रहा हो। उनकी इच्छा हुई कि वे भगवानकी स्तृति करें, पर वे निरुपाय-से केवल चुपचाप खड़े रहे । तब भक्तवत्सल भगवान्ने उनके कपोलसे अपना दिव्य शङ्क छुआकर सम्पूर्ण ज्ञान और समस्त शास्त्र उनके अन्तःकरणमें प्रस्फरित कर दिये । अत्र वे गद्गदकण्ठसे भगवान्की स्तुति करने छगे । ध्रवको स्तुतिसे संतुष्ट होकर भगवान्ने उन्हें अत्रिचलपद दिया —वह ध्रवलोक प्रदान किया, जिसे अवतक किसीने नहीं पाया था । भगवान्ने आज्ञा दी कि 'अपने पिताके पास जाकर इस जीवनमें ही चक्रवर्ती-पदका उपभोग करते हुए तुम मेरा भजन करो । तदनुसार भक्तराज ध्रुव अपने पिनाके पास लौट आये । इनके राजधानीमें पहुँचनेपर वड़ा उत्सव मनाया गया और अन्तमें इन्हें राज्य देकर महाराज उत्तानपाद वनको चले गये।

'हरिं शरणमाश्रयेत'

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः। एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥ (श्रीमद्रा॰ ४। ८। ४१) (श्रीनारद्जीने कहा---) 'जिस पुरुषको अपने लिये घर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्यकी अभिलापा हो उसके लिये उनकी प्राप्तिका उपाय एकमात्र श्रीहरिके चरणोंका सेवन ही है। यही बात नारदपाञ्चरात्रमें भी कही गयी है— . प्राप्तुमिच्छन् परां सिद्धि जनः सर्वोऽप्यिकश्चनः। श्रद्धया परया युक्तो हरिं शरणमाश्रयेत्॥ 'अकिंचन व्यक्ति भी यदि परमसिद्धि चाहता है तो उसे सर्वोत्तम अदासे भीहरिकी श्ररण ग्रहण करनी चाहिये।

भगवत्तत्व-चिंतक

[?]

महर्षि वेदय्यास

सर्वप्रथम तत्त्व-चिन्तन हमें वेदोंमें मिछता है। ऋग्वेदका नासदीयसूक्त भगवत्तत्त्वका चरमकोटिका चिन्तन है, उपनिषदोंमें खुलकार तत्त्व-चिन्तन किया गया है। किंतु इन बिखरे चिन्तनोंका सामञ्जस्यपूर्ण संप्रथन ब्रह्मसूत्रोंमें हुआ है । ब्रह्मसूत्रके प्रणेता भगवान् व्यास हैं, जिन्होंने वेदोंका व्यास—चतुर्धा-विभाजन — किया और इसीलिये 'वेदव्यास' नामसे प्रसिद्ध हुए । इन्हें पराशरपुत्र होनेके नाते पाराशर्य (पाराशिर), द्वीपमें उत्पन्न होने और कृष्णवर्णके होनेसे 'कृष्णद्वैपायन' एवं इसी प्रकार अन्यान्य कारणोंसे बादरायण, कानीन, सत्यभारत, सात्यवत, सत्यवतीस्रुत, सत्यरत आदि नामघेयोंसे भी कहा जाता है। इन्होंने और अध्यात्मरामायण-अष्टादरापुराण, महाभारत की भी रचना की है। कहा जाता है कि योगवासिष्ठ भी इन्हींका रचा हुआ है । ये विश्वके महान् ज्ञानी और प्रन्थ-प्रणेता माने जाते हैं। ये विशाल बुद्धिके धनी मान्य-मनीषी थे । महाभारत-कालमें इनके वर्तमान रहनेकी बात अन्त:साक्ष्यसे सिद्ध होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि इनका समय ईसासे प्रायः तीन हजार वर्ष पूर्व हो सकता है । महाभारतसे इनके जीवनकी कुछ वातें विदित होती हैं।

ये मत्स्यगन्धा या सत्यवती नामकी कन्यासे उत्पन्न हुए थे। पराशरमुनि इनके जनक थे। इनका जन्म यमुनागर्भस्थ एक द्वीपमें हुआ था और इनका रंग कृष्णवर्णका था, अतः कृष्णद्वैपायन कहलाये। यह शास्त्र-श्रुति है कि ये उत्पन्न होते ही माताकी आज्ञा लेकर तपस्याके लिये चले गये थे। जाते समय मातासे कह गये कि 'यदि तुम्हें कभी मेरी आवश्यकता

पड़े तो मुझे स्मरण करना, मैं सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा।

यथासमय सत्यवतीका विवाह चन्द्रवंशीय राजा शान्तनुसे हुआ, जिसे देवव्रत-(भीष्मिपितामह-) ने महान् त्यागकर सम्पन्न कराया था । शान्तनुके पुत्र विचित्रवीर्य थे । विचित्रवीर्यके देहान्तके बाद कोई चन्द्रवंशीय राज्याधिकारी न रहा । इसी समय सत्यवतीने ज्यासदेवको स्मरण किया । ज्यासदेवके योगबलके प्रभावसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरका जन्म हुआ ।

प्रमज्ञानी महामुनि शुक्तदेवजी भी इन्हीं व्यासदेवके पुत्र थे—जिन्होंने राजा परीक्षित्को श्रीमद्रागवतकी कथा सुनायी थी।

व्यासदेवने धर्मका हास होते देखकर वेदोंका ऋक्, यजु, साम, अथर्व-नामोंसे विभाजन किया और उन्हें अपने शिष्यों — सुमन्तु, जैमिनि और वैशम्पायनको तथा अपने आत्मज शुक्रदेवको पढ़ाया । इन्होंने महाभारतका उपदेश भी किया । पुराणोंकी रचनासे वेदार्थका उपबृंहण किया और आख्यायिका, आख्यान एवं उपाख्यानोंसे विषयवस्तुको स्पष्ट किया । जो श्रुतिगोचर नहीं थे, उन्हें वेदार्थकी अवगति करानेके लिये इन्होंने महान् प्रयास किया । इनकी-जैसी अछौकिक प्रतिभा और लेखन-क्षमतावाले आचार्य विश्वमें नहीं हुए। वेदान्तद्र्शन अथवा 'ब्रह्मसूत्र'में इनका पाण्डित्य-प्रक्षे अद्वितीयरूपमें दर्शनीय है । भगवत्तत्वका सुनिपुण चिन्तन इसमें जैसा है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है। इसे वेदान्तदर्शन कहते हैं; क्योंकि वेदान्त-भारण्यक, ब्राह्मण-उपनिषद्के दार्शनिक विचारीका सम्यक् समन्त्रय इसमें किया गया है। कर्मकाण्डका सम्बन्ध जैमिनिकृत पूर्वमीमांसासे है और ब्रह्मविवेचनका उत्तरमीमांसासे; क्योंकि वेदके उत्तरभागकी श्रुतियोंमें इस प्रन्थके ज्ञान-उपासनाके किय आते हैं। इन दोनों उपासनाओंकी मीमांसा करनेके कारण वेदान्तदर्शन या ब्रह्मसूत्रको 'उत्तरमीमांसा' नाम दिया गया है। यह प्रस्थानत्रयीका मुख्य प्रन्थ है। गीतामें 'ब्रह्मसूत्रपदेश्वेच हेतुमद्गिविनिदिचतेः' शब्दोंमें ब्रह्मसूत्रका नाम आता है। ब्रह्मसूत्रोंमें भी कुछ पूर्वाचार्योंके नाम आये हैं;

यथा—बादरि औडुछोमि, जैमिनि, आश्मरथ्य, काशकृत्स्र

और आत्रेय आदि । 'नादरायण' शब्द पुराणकालसे ही

श्रीवेदच्यासजीके लिये व्यवहृत होता आया है। अतः

ब्रह्मसूत्रके रचयिता निश्चितरूपसे बादरायण अर्थात्

वेद ज्यासजी ही हैं। ब्रह्मसूत्रको वेदान्तदर्शन कहते हैं। ब्रह्मसूत्रमें चार अध्याय हैं । प्रत्येक अध्यायमें चार पाद हैं । अतः कुछ १६ पाद हैं । पहला समन्वयाध्याय है, जिसमें वेदान्तवाक्योंका परब्रह्म-प्रतिपादनमें समन्वय दिखलाया गया है । दूसरेका नाम अविरोधाच्याय है; क्योंकि इसमें विरोधोंका निराकरण किया गया है। तीसरा अध्याय 'साधनाध्याय' है । इसमें परब्रह्मकी ब्रह्मविद्या और अन्यान्य साधनमृत प्राप्तिके उपासनाओं के विषयमें निर्णय किया गया है। चौथा अन्तिम अय्याय 'फलाय्याय' है । इसमें ब्रह्मविद्या आदि-द्वारा साथकोंके अभिकारानुरूप प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें निर्णय है । इस प्रन्थपर आचार्योक भाष्य, प्रौढ़ विद्वानोंकी टीकाएँ और आलोचनाएँ हुई हैं। वाचस्पति मिश्रकी भामती टीका अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रौढ़ है। भगवत्तत्व-चिन्तनका,यह सर्वोत्कृष्ट प्रन्य विश्वप्रसिद्ध है। इसका पहला सूत्र है—'अथातो ब्रह्मजिश्वासा' (अब यहाँसे ब्रह्मनिषयक विचार आरम्भ किया जाता है।), दूसरा सूत्र है __ 'जन्माचस्य यतः' अर्थात् — इस

जगत्के जन्मादि (उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय) जिससे होते हैं, यह ब्रह्म है । यह प्रस्थानत्रयीका मुख्य प्रन्य है । त्रयीमें उपनिपदों और गीताकी भी गणना की जाती है ।

'व्यास' शब्दको यौगिक (योगरूढ नहीं,) मानकर कुछ छोग 'व्यास' को उपाधि मानते हैं। उनके मतसे व्यासके नामकी सभी कृतियाँ एक ही व्यासकी नहीं होकर विभिन्न व्यासोंकी हो सकती हैं। पर अपनी मान्यतामें व्यासदेव ही वेदोंके विभाजक, पुराणों और महाभारतके रचियता एवं ब्रह्मसूत्रके प्रणेता हैं। 'व्यास' शब्द भले ही यौगिक भी हो, पर कृष्णद्वेपायन व्यास ही हमारे व्यासदेव हैं, जिनकी उपर्युक्त सभी रचनाएँ हैं। × × ×

कूर्मपुराण, वायुपुराण, और विष्णुपुराणमें अट्टाईस व्यासोंका उल्लेख मिलता है। उनके नाम ये हैं—
(१) खयम्भू, (२) प्रजापित या मनु, (३) उज्ञाना, (४) बृहस्पित, (५) सिवता, (६) मृत्यु या यम, (७) इन्द्र, (८) विसिष्ठ, (९) सारखत, (१०) त्रिधामा, (११) ऋषभ या त्रिवृत्रा, (१२) सुतेजा या भारद्वाज, (१३) अन्तरिक्ष या धर्म, (१४) वपृवा या सुचक्षुः, (१५) त्रय्यारुणि, (१६) धनस्रय, (१७) कृतस्रय, (१८) ऋतस्रय, (१९) मरद्वाज, (२०) गौतम, (२१) उत्तम, (२२) वाचश्रवाः या वेणु या नारायण, (२३) सोममुख्यायन या तृणिवन्दु, (२४) ऋक्ष या वाल्मीकि, (२५) शक्ति, (२६) पराशर, (२७) जातुवर्ण और (२८) कृष्णाद्वैपायन।

भारतीय वाद्यय एवं हिन्दू-संस्कृतिपर व्यासजीका बहुत बड़ा ऋण है। व्यासजी श्रुति-स्पृति-पुराणोक सनातन-धर्मके एक प्रधान व्याख्याता कहे जा सकते हैं। इनके उपकारसे हिंदू-जाति कहापि उऋण नहीं हो सकतो । जबतक हिंदू-जाति और भारतीय संस्कृति जीवित है, तबतक इतिहासमें त्यासजीका नाम अजर-अमर रहेगा। ये जगत्के एक महान् पश्रप्रदर्शक और उपदेशक कहे जा सकते हैं। इसीसे इन्हें जगहुरु कहलानेका गौरव प्राप्त है। गुरुपूर्णिमा-(आपाइ ग्रुक्ल पूर्णिमा-) के दिन प्रत्येक आस्तिक हिंदू-गृहस्थ इनकी पूजा करता है। भगवद्गीता-जैसा अनुपम रत्न भी संसारको त्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ। इन्होंने ही भगवान्क उस अमर उपदेशको अपनी महाभारतसंहितामें प्रथितकर उसे संसारके लिये सुलम बना दिया। व्यासस्मृतिमें आचार-विचारोंका विधान कर आपने जनकल्याणका मार्ग प्रदर्शित किया है।

महर्षि वेदव्यास त्रिकालदर्शी एवं इच्छागित हैं। वे प्रत्येकके मनकी बात जान लेते हैं और इच्छा करते ही जहाँ जाना चाहें, वहीं पहुँच जाते हैं। इनकी प्रज्ञा कितनी प्रखर थी और ये कितने कान्तदर्शी थे, इसका पता इनके सम्बन्धकी कुछ कथाओं या घटनाओंसे चल जाता है। यहाँ उनसे सम्बद्ध ऐसी कथाएँ दी जा रही हैं।

जन पाण्डन निदुरजीकी निवासी हुई युक्तिका अनुसरण कर लक्षाभननसे निकल भागे और एकचका नगरीमें जाकर रहने लगे, उन दिनों न्यासजी उनके

पास उनसे मिळनेके छिये आये । प्रसङ्गचश उन्होंने उन्हें द्रौपदीके पूर्वजन्मका कृतान्त सुनाकर यह बताया कि 'वह कन्या तुम्हीं छोगोंके छिये पहलेसे निश्चित है ।' इस वानको सुनकर पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता एवं उत्सुकता हुई और वे द्रुपदकुमारीके स्वयंवरमें सम्मिळित होनेके छिये पाञ्चाळनगरकी ओर चल पड़े । वहाँ जाकर जब अर्जुनने स्वयंवरको शर्त पूरी करके द्रौपदीको जीत छिया और माता कुन्तीकी आज्ञासे पाँचों भाइयोंने उससे विवाह करना चाहा, तब राजा द्रुपदने सामान्य सदाचारके नाते इसपर आपत्ति की । उसी समय व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने द्रुपदको द्रौपदीके पूर्वजन्मका कृतान्त सुनाकर पाँचों भाइयोंके साथ उनकी कन्याका विवाह करनेके छिये राजी कर छिया । * पूर्वजन्मके कृतान्तने विशेष परिस्थितमें विवाहका अनुमोदन करा दिया ।

महाराज युधिष्ठिरने जब इन्द्रप्रश्चमें राजसूय यज्ञ किया, उस समय भी वेदव्यासजी यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये अपनी शिष्यमण्डलीके साथ पधारे थे। यज्ञ समाप्त होनेपर वे विदा होनेके लिये युधिष्ठिरके पास आये और वातों-ही-बातोंमें उन्होंने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'आजसे तेरह वर्ष बाद क्षत्रियोंका महासंहार होगा, जिसमें दुर्योधनके अपराधसे तुम्हीं निमित्त बनोगे।' यह अद्वितीय अदूर-

- पूर्वजन्मके वृत्तान्तके सारांशका उपसंहार करते हुए व्यासजीने महाभारतके आदिपर्वके १९६ वे अध्यायमें कहा है कि --

एवमेते पाण्डवाः सम्बन्धुर्ये ते राजन् पूर्वमिन्द्रा बन्दुः। छक्ष्मीक्ष्मेषां पूर्वमेवोपदिष्टा भार्या येषा द्रौपदी दिव्यरूपा॥ कथं हि स्त्रीकर्मणा ते महीतलात् समुसिष्ठेदन्यतो दैवयोगात्। यस्या रूपं सोमसूर्यप्रकाशं गन्धश्चास्याः क्रोशमात्रात् प्रवाति॥

प्राजन ! इस प्रकार ये पाण्डव प्रकट हुए हैं (जैसा कि इस अध्यायके पूर्व इलोकों में वर्णित हुआ है) को पहले इन्द्र रह चुके हैं। यह दिव्यरूपा द्रौपदी वहीं स्वर्गलोककी लक्ष्मी है, जो पहलेसे ही इनकी पत्नी नियत हो चुकी है। महाराज ! यदि इस कार्यमें देवताओंका सहयोग न होता तो नुम्हारे इस यज्ञकर्मद्वारा यज्ञयेदीकी भूमिसे ऐसी दिव्य नारी कैसे प्रकट हो सकती थी, जिसका रूप मूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाश विन्वर रहा है और जिसकी सुगन्ध एक कोस तक फ़ैलती रहती है।

इससे द्वपटका समाधान हो गया। (विस्तारमे कथा भागनेके इच्छुक पाठक महाभारतका उक्त संदर्भ देखें।)

दर्शिता इतिहासका तथ्य वनका 'महाभारतं कार्में प्रसिद्ध हो गयी ।

× × × ×

पाण्डवोंका सर्वस्य छीनकर तथा उन्हें बारह क्योंकी लम्बी अवधिके लिये वन भेजकर भी दुर्योधनको सन्तोष नहीं हुआ । वह पाण्डवोंको वनमें ही मार डालनेकी बात सोचने लगा । अपने मामा राकुनि, कर्ग तथा दुःशासनसे सलाह करके उसने चुपचाप पाण्डवोंपर आक्रमण करनेका निश्चय किया और सब लोग राखास्रसे प्रसज्जित रथोंपर सवार होकर वनकी ओर चल पड़े। व्यासजीको अपनी दिव्यदृष्टिसे उनकी इस दूरमिसन्धिका पता लग गया । ये तुरंत उनके पास आये और उन्हें इस घोर दुष्कर्मसे निवृत्त किया । इसके बाद इन्होंने वृतराष्ट्रके पास जाकर उन्हें समझाया कि तुमने जुएमें हराकर पाण्डवोंको वनमें मेज दिया, यह अच्छा नहीं किया; इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम यदि अपना तथा अपने पुत्रोंका हित चाहते हो तो अब भी सँभल जाओ । भला, यह कैसी वात है कि दुरात्मा दुर्योधन राज्यके छोमसे पाण्डवोंको मार डालना चाहता है । मैं स्पष्टतः कह देता हूँ कि अपने इस लाइले बेटेको इस कामसे रोक दो। वह चुपचाप घर बैठा रहे। यदि उसने पाण्डवोंको मार डालनेकी चेष्टा की तो वह स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो वेठेगा । यदि तुम अपने पुत्रकी देश-चुद्धि मिटानेकी चेष्टा नहीं करोगे तो बड़ा अनर्थ होगा । मेरी सम्मित तो यह है कि दुर्योधन अकेला ही वनमें जाकर पाण्डवोंके पास रहे। सम्भव है कि पाण्डवोंके सत्सङ्गसे उसका द्वेषभाव दूर होकर प्रेमभाव जाप्रत् हो जाय । सत्संगति ही मनुष्योंमें सद्गुण हा सकती है। परंतु यह वात है बहुत कठिन; क्योंकि जन्मगत स्त्रभावका वर्ल जाना सहज नहीं है। यदि तुम कुरुवंशियोंकी रक्षा और उनका जीवन चाहते हो तो अपने पुत्रसे कहा कि बढ़ पाण्डवींके साथ मेळ कर ले।

व्यासजीने धृतराष्ट्रसे यह भी कहा कि भोड़ी ही देरमें महिंपें मैंनेयजी यहां आनेनाले हैं। वे तुम्हारे पुत्रको पाण्डवोंसे मेल कर लेनेका उपरेश देंगे। वे जैसा कहें, बिना सोचे-निचारे तुमलोगोंको वैसा ही करना चाहिये। यदि उनकी वान नहीं मानोगे तो वे क्रोधवश शाप देंगे। परंतु दुष्ट दुर्योधनने उनको बान नहीं मानी। फलतः उसे महिंपें मैनेयका क्रोपभाजन बनना पड़ा। व्यासदेवने सत्परामर्श देकर उसे न माननेपर आनेनाली आपित्तको भी सूचित कर दिया। वे निस्नकल्याण-कामी थे; अतः सबकी भलाईकी वात ही करते थे।

ज्यासजी त्रिकालदर्शी तो थे ही, उनको सामर्थ्य भी अद्भुत थी । जिस समय पाण्डवलोग वनमें रहते थे, उस समय इन्होंने एक दिन उनके पास जाकर युधिष्ठिरके द्वारा अर्जुनको प्रतिस्मृति-विद्याका उपदेश दिया, जिससे उनमें देवदर्शनकी योग्यता आ गयी । इतना ही नहीं, इन्होंने सञ्जयको दिव्य दृष्टि दे दी, जिसके प्रभावसे उन्हें न केवल युद्धकी सारी वातोंका ही ज्ञान हुआ, विल्क उनमें भगवान्के विश्वरूप एवं दिन्य चतुर्भुजरूपके देवदुर्लम दर्शनकी योग्यता भी आ गयी और वे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे भगवद्गीताके दिच्य उपदेशका भी श्रवण कर सके, जिसे अर्जुनके सित्रा और कोई भी नहीं सुन पाया था । जिस दिन्य दृष्टिके प्रभावसे सञ्जयमें इतनी वड़ी योग्यता आ गयी, उस दिव्य दृष्टिके प्रदान करनेवाले महर्षि वेदव्यासमें कितनी सामर्थ्य होगी—हम लोग इसका ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं लगा सकते। वे साक्षात् भगवान् नारायणको कला ही जो ठहरे। यही कारण है कि उनके दिव्य प्रन्थ त्रिकालसत्य एवं शास्त्रत ज्ञानके आकर हैं।

× × × × × × v. x. v.क. जार जार पृतराष्ट्र और गान्धारी बनमें रहते थे तथा महाराज युधिष्ठिर भी अपने परिवारके साथ उनसे

मिछनेके छिये गये हुए थे, व्यासजी वहाँ आये और यह देखका कि धृतराष्ट्र तथा गान्धारीका पुत्रशोक अभीतक दूर नहीं हुआ है एवं कुन्ती भी अपने पुत्रोंके वियोग से दुखी है, तब इन्होंन भृतराष्ट्रसे वर माँगनेको कहा । राजा धृतराष्ट्रने उनसे यह जानना चाहा कि महाभारत-युद्धमें उनके जिन कुटुम्बियों और मित्रोंका नाश हुआ है, उनकी क्या गति हुई होगी ! साथ ही उन्होंने व्यासजीसे उन्हें एक बार दिखला देनेकी प्रार्थना की । व्यासजीने उनकी प्रार्थना खीकार करते हुए गान्धारीसे कहा कि 'आज रातको ही तुम सब छोग अपने मृत बन्धुओंको उसी प्रकार देखोगे, जैसे कोई सोकर उठे हुए मनुष्योंको देखे । सायंकालका नित्यकृत्य करके व्यासजीकी आज्ञासे सब लोग गङ्गातटपर गङ्गाजीके व्यासजीने 1 द्रए जलमें घुसकर पाण्डव एवं कौरवपक्षके योद्धाओंको, जो युद्धमें मर गये थे, आवाज दी। उसी समय जलमें वैसा ही कोलाहल सुनायी दिया, जैसा कौरव एवं पाण्डवोंकी सेनाओंके एकत्र होनेपर कुरुक्षेत्रके मैदानमें सुन पड़ा था। इसके बाद भीष्म और द्रोणको आगे करके वह सत्र राजा और राजकुमार, जिन्होंने युद्धमें वीरगति प्राप्त की थी, सहसा जलमेंसे वाहर निकल आये । युद्धके समय जिस वीरका जैसा वेष था, जैसी ष्यजा थी, जो वाहन थे, वे सब ज्यों-के-त्यों वहाँ दिखायी दिये । वे दिव्य वस्त्र और दिव्य मालाएँ धारण किये हुए थे; सबने चमकते हुए कुग्डल पहन रखे थे और सबके शरीर दिव्य प्रभासे चम-चम कर रहे थे। सब-के सब निर्वेर, निरमिमान, क्रोधरहित और ईर्ष्यासे शून्य प्रतीत हुए । गन्धर्व उनका यश गा रहे थे और वन्दिजन स्तुति कर रहे थे। उस समय व्यासजीने धृतराष्ट्रको दिन्य नेत्र दे दिये जिनसे वे उन सारे योद्धाओंको अच्छी तरह देख सके । वह दृश्य अद्भुत, अचिन्य और रोमाञ्चकारी या । सब लोगोंने

निर्निमेष नेत्रोंसे उस दश्यको देखा । इसके बाद सब आये हुए योद्धा अपने-अपने सम्बन्धियोंसे क्रोध और वैर छोड़कर मिले । इस प्रकार रातभर प्रेमियोंका वह समागम जारी रहा । इसके बाद वे सब छोग जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार भागीरथीके जलमें प्रवेश करके अपने-अपने लोकोंमें चले गये । उस समय वेद्व्यासजीने जिन ब्रियोंके पति वीरगतिको प्राप्त हुए थे, उनको सम्बोधित करके कहा कि 'आपमेंसे जो कोई अपने पतिके लोकमें जाना चाहती हों, उन्हें गङ्गाजीके जलमें गोता लगाना चाहिये। इनके इस वचनको सुनकर बहुत-सी स्त्रियाँ जलमें घुस गयीं और मनुष्य-देहको छोड़कर अपने-अपने पतिके लोकमें चली गयीं । उनके पति जिस प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर आये थे, उसी प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंको धारणकर तथा विमानोंमें बैठकर वे अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंमें पहुँच गर्यो । इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् वेदव्यासजी अछौकिक शक्तिसम्पन्न थे।

इधर राजा जनमेजयने वैशम्पायनजीके मुखसे जव यह अद्भुत वृत्तान्त सुना तो उनके मनमें बड़ा कौत्रहरू हुआ और उन्होंने भी अपने स्वर्गवासी पिता महाराज परीक्षित्के दर्शन करने चाहे। व्यासजी वहाँ उपस्थित ही थे। उन्होंने राजाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय राजा परीक्षित्को वहाँ बुछा दिया। जनमेजयने यज्ञान्त-स्नानके अवसरपर अपने साथ अपने पिताको भी स्नान कराया और इसके बाद परीक्षित् वहाँसे चले गये। इस प्रकार महर्षि वेदव्यासजीने अपने अलौकिक सामर्थका प्रकाश किया। महर्षि वेदव्यास वास्तवमें एक अद्भुत शक्तिशाली महापुरुष थे, जिन्होंने भगवत्तत्व-चिन्तनद्वारा अभूतपूर्व सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी। भगवत्तत्व-चिन्तनका सुमनोहर फल व्यासदेवकी अलौकिक सिद्धियोंमें देखा जा सकता है। उसका वास्त्रयस्कूप वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र) है।

[२] आचार्य शंकर

भारतीय तत्त्वचिन्तकों में — विशेषकर अद्वेततत्त्व प्रति-पादकों में — आचार्यशंकरका स्थान उच्चतम है। प्राच्यदर्शनके प्रसिद्ध व्याख्याता श्रीराधाकृष्णान् के शब्दों में — 'वे एक नि:सङ्ग तपस्त्री और विचारक थे, जो गम्भीर ध्यानकी क्षमताके साथ कियात्मक जीवनमें भी गम्भीर थे।'

आचार्यका जन्म माळावारकी नम्बूदरी ब्राह्मण जातिमें ईसापूर्व ५वीं शताब्दीमें हुआ था। इनकी जन्मतिथि वैशाख शुक्क पश्चमी और जन्म-स्थान केरल-प्रदेशके पूर्णा नदीका तटवर्ती कालदी गाँव है। इनके पिताका नाम शिवगुरु तथा माताका नाम सुभद्रा था। शिवगुरु बड़े विद्वान् एवं धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। सुभद्रादेवी भी धर्मपरायणा विदुषी थीं। प्रौड़ावस्थातक दम्पतिको कोई संतान न होनेपर दोनोंने भगवान् शंकरकी आराधना की। वरदानस्वरूप सुभद्रादेवीको पुत्र हुआ, उसका नाम भगवान् शंकरके नामपर शंकर एखा गया।

बालककी प्रतिभा अद्भुत थी। शंकर दो वर्षोंकी अवस्था होते-होते मातासे पौराणिक कथाएँ सुनकर याद करने लग गये। तीसरे वर्षमें इनका चूड़ाकर्म हुआ। पाँचवें वर्षमें इनका यज्ञोपवीत-संस्कार करके इन्हें गुरुके घर पढ़नेके लिये मेजा गया। आठ वर्षकी अवस्था प्री होते-होते शंकरने वेद, वेदान्त और वेदाङ्गोंका अध्ययन समाप्त कर लिया। इनकी इस असाधारण प्रतिभासे उनके गुरु दंग रह गये।

शंकर घर आकर संन्यास छे छेना चाहते थे, परंतु माताकी अनुमति न होनेके कारण वे उस समय संन्यासी न हो सके। एक दिन जब शंकर अपनी माताके साथ

नदी स्नान करने गये थे तो उन्हें मगरने पकड़ लिया। माताको चिल्लाते देख शंकरने मातासे कहा कि मुझे संन्यास लेनेकी अनुमति दे दो तो मगर मुझे छोड़ देगा । माताने अनुमति दे दी और मगरने उन्हें छोड़ दिया ! फिर क्या था, वे उसी समय घरसे निकल गये, पर माताकी इच्छाके अनुसार माताकी मृत्युपर घरपर उपस्थित रहना खीकार कर लिया। इन्होंने नर्मदा तटवासी खामी गोविन्दभगवत्पादसे दीश्वा ली और गुरूपदिष्ट-पद्भतिसे साधना कर थोड़े ही समयमें योगसिद्ध महात्मा होनेमें सफलता प्राप्त कर ली । फिर ये गुरुकी आज्ञासे काशी आ गये । यहाँ इनकी ख्याति और इनके शिष्योंकी संख्या बढ़ने छगी। प्रसिद्ध है कि इनके प्रथम शिष्य सनन्दन हुए जो पद्मपादाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए । सत्रह दिन शास्त्रार्थ कर * इन्होंने मण्डन मिश्रको सुरेश्वराचार्य बनाया। वे काशीसे बदरिकाश्रम पहुँचे । आचार्य शंकर शिष्योंको पहानेके साथ-साथ प्रन्थ-रचना भी करते जाते थे। एक दिन शिष्योंको 🕇 ब्रह्मसूत्र पड़ाते समय भाष्य ल्रिख रहे थे, तय एक ब्राह्मणने उनसे एक सूत्रका अर्थ पूछा और उस सूत्रपर इनके साथ आठ दिनोंतक अनवरत शास्त्रार्थ चळता रहा। बादमें पता चला कि ये ब्राह्मणवेषधारी खयं व्यासदेव ही हैं। श्रीव्यासदेवने इन्हें अद्वैतके प्रचार करनेकी आज्ञा दी और सोछह वर्षकी अल्पायुको बत्तीस वर्षोंकी आयुमें परिवर्तित कर दिया।

इसके बाद शंकराचार्य अद्वैतवादकी विजयवैजयन्ती फहराते हुए दिग्विजयके लिये निकल पड़े। उनके उपलब्ध प्रन्थ काशी अथवा बदरिकाश्रम आदिमें लिखे

^{*} न दिवा न निहयपि च वादकथा विरराम नैयमिककाळमृते इति जरुपतोः सममनस्पियोः दिवसाश्च सप्तदश्च चात्यगमन् । (शंकरदिग्विजय ९ । ६५) † दिनाष्टकं वाक्कछहो विजृम्भे । (वही ७ । ९)

गये । बारह वर्षसे सोछह वर्षतककी अवस्थाने ही उन्होंने सभी प्रंथोंका निर्माण किया था ।

शंकराचार्यने मगध्यर विजय प्राप्तकर दक्षिणकी ओर प्रस्थान किया और महाराष्ट्रमें शैव एवं कापालिकोंसे शास्त्रार्थकर विजय प्राप्त की। फिर वहाँसे चलकर दक्षिणमें नुङ्गभद्राके तटपर उन्होंने एक मन्दिर वनवाकर उसमें शारदादेवीकी स्थापना की। साथ ही एक मटकी भी स्थापना की जिसे शृङ्गेरी (या शृङ्गिगिरि) मट कहते हैं। इस मटके आचार्यपदपर सुरेश्वराचार्य नियुक्त हुए थे।

रांकराचार अपनी माताकी वृद्धावस्था जानकर अपने घर आये और अपने समुदायके विकट विरोधके बावजूद एवं संन्यास-विधिकी उपेक्षा कर अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार माताकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की ।*

फिर शृङ्गेरी मठमें आये और वहाँसे पुरी आकर चोल और पाण्ड्यदेशक राजाओंकी सहायतासे दक्षिणमें फैले कितपय सम्प्रदायोंके अनाचारको दूर कर पुनः उत्तरभारतकी ओर चल पड़े। फिर उज्जैन आये एवं अपने मतकी वैजयन्ती फहरायी। गुजरात पहुँचकर दारकामें एक मठ स्थापित किया और उसके आचार्य-पदपर अपने शिष्य हस्तामलकाचार्यको प्रतिष्ठित किया। फिर गाङ्गेय प्रदेशके पण्डितोंसे शास्त्रार्थमें विजय प्राप्तकर करमीरके शारदाक्षेत्रमें आये। वहाँ भी पण्डितोंको परास्त कर अपने मतकी स्थापना की। आसाममें कामरूप स्थानमें आकर भी शास्त्रार्थ किया। फिर बदरिकाश्रम आकर ज्योतिर्मठकी स्थापना की। वहाँ तोटकाचार्यको मठाधीश्वर बनाया। फिर केदारक्षेत्रमें आये और कुल दिनों बाद अपनी बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मलीन हो गये। इस प्रकार

अद्वेत वेदान्तका प्रचण्ड मार्तण्ड अपनी प्रतिमाक्षी वह दिन्य ज्योति भारतवर्षकी सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक संस्कृतिको समुज्ज्वल बनाकर अस्त हो गया।

आचार्य शंकर प्रकाण्ड पण्डित, परम ज्ञानी, संत, आचार्य, त्यागी और प्रचण्ड धर्मप्रचारक थे। इनमें अनेक दिन्य गुणोंका विचित्र अपूर्व सामञ्जस्य था । वे युवावस्थामें प्रखर प्रतिभासे सम्पन्न और बौद्धिक महत्त्वाकाङ्काक आवेशसे पूर्ण एक अदम्य और निर्भय शास्त्रार्थमहारथी थे । वुछ लोग उन्हें जनताको एकताकी भावना समझानेवाला गम्भीर राजनीतिक प्रतिभा-सम्पन्न भी वताते हैं। पर बहुत लोग उन्हें प्रगल्भ शान्त दार्शनिक वतलाते हैं, जिनका प्रयत्न जीवन और विचारके विरोधोंका, अपनी असामान्य तीक्ष्ण बुद्धिके द्वारा, मेद खोल देनेके प्रति था। अन्य लोग उन्हें रहस्यवादी वतलाते हैं, जो यह प्रतिपादन करनेमें समर्थ हुए कि हम सत्र उससे कहीं अधिक महान् हैं, जितना हम अपनोंको जानते हैं । वस्तुतः हम उस अखण्ड, नित्य—, शाश्वत सत्ताके ही रूप हैं जो 'सर्वे खिट्चदं ब्रह्म' से समझा जाता है।

आचार्य शंकरन देशके दार्शनिक बौद्धिक स्तरको उच्चतर रूपमें प्रतिष्ठापित किया और अपने क्रियास्मक प्रयासोंसे देशके चारों दिशाओंमें आचार्यपीठोंकी स्थापना कर धर्मकी रक्षाका दूरगामी प्रबन्ध भी कर दिया। इन पीठोंमें मुख्य पूर्वोक्त मैसूर प्रान्तमें स्थित श्रृङ्गेरीमठ है। अन्य तीन क्रमशः पूर्वमें पुरीस्थित गोवर्धनपीठ, पश्चिममें द्वारकास्थित शारदापीठ और उत्तरक हिमालय प्रदेशमें बदरीनाथस्थित ज्योतिर्मठ हैं। यह उधर 'जोशीमठ' नामसे भी अभिहित होता है।

[#] कहा जाता है कि कुछ लक्ष्डियोंको चुनकर एकत्र किया और इन्होंने अपनी माताकी दाहिनी भुजाका मन्यन कर स्वयं ही आग निकाली और उसीसे उनका दाह संस्कार किया-संचिन्त्य काष्ठानि सुशुष्कवन्ति गृहोपकण्टे घृततोयपात्रः । सदक्षिणे टोश्णि ममन्य विद्व ददाह तां तेन च संयिताऽऽत्मा ॥

आचार्य शंकरने ३२ वर्गांकी अल्पायुमें कल्पनातीन कार्य किये। बौद्धिक क्षेत्रमें उनकी महान् उपलब्ध अद्देतदर्शन है जो, आज भी विश्वक तत्त्वचिन्तकोंको विमुग्ध बनाये हुए है। आचार्यने प्राचीन नेदान्तसूत्रों और उपनिषदोंके भाष्यद्वारा अद्देतदर्शनका परिनिष्टित-खरूप विकसित किया। आचार्य शंकर एक साथ और एक ही समयमें कहर सनातनधर्मके उत्साही रक्षक एवं धार्मिक सुधारकके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने पुराणोंके उज्ज्वल विलसमय युगके स्थानमें उपनिषदोंके रहस्यमय सत्यके युगको फिरसे लौटा लानेका प्रयत्न किया। आत्माको उच्चतर जीवनकी ओर मोड़नेकी जो शक्ति धर्ममें है, उसे उसके बलको परखनेकी करोटी माना।

इनके लिखे कुल २७२ प्रन्थ बताये जाते हैं। इनमें प्रमुख प्रन्थ ये हैं—१-ब्रह्मसूत्रभाष्य, २-उपनिषदों (ईश, केल, कठ, प्रस्न, मुण्डक, माण्ड्रक्य, ऐतरेय, तंतिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, चृसिंहपूर्वतापनीय, द्वेनाश्वतर इत्यादि-)क भाष्य, उपदेशसाहस्री, विवेक-चूड़ामणि, प्रपञ्चसार, प्रवोधसुधाकर, अपरोक्षानुभूति, शतरुलोकी, सर्ववेदान्तसंप्रह, दशरुलोकी, सर्ववेदान्त-सिद्धान्तसार-संप्रह, वाक्यसुधा, पञ्चीकरण, प्रपञ्चसारतन्त्र, आत्मबोध, मनीवा-पञ्चक, आनन्दलहरी-स्तोत्र इत्यादि।

शंकर अद्वेत सिद्धान्तको ही वास्तविक सत्य और न्यायोचित मानते थे। उनके सभी प्रन्थोंमें एक ही उद्देश्य झलकता है—ब्रह्मके साथ अपने एकत्वको पहचानना और इस प्रकार संसारसे मोक्ष-प्राप्तिका उपाय करना— 'संसारहेतुनिवृत्तिसाधनं ब्रह्मात्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये।'

अन्तमें हम उन्हें अमलानन्द सरस्रतीके शब्दोंमें प्रणाम करते हैं.....

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणाकरम्। नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्॥

[३]

आचार्य रामानुज

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तके भगवत्तत्वचिन्तक आचार्य रामानुजकी प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और सिद्धान्त-प्रतिपादनकी राँछी-प्रौद्धि अद्वैतसिद्धान्तके श्रेष्ठ आचार्य शंकरकी कोटिकी मानी जाती है। ये भारतके महान् तत्त्व-चिन्तक आचार्योंमें गिने जाते हैं। इन्होंने अपने प्रन्थोंमें भगवत्तत्व-सम्बन्धी चिन्तन बड़ी सूक्ष्मतासे किया है। ये भगवान् सङ्कर्षणके अवतार माने जाते हैं।

रामानुजाचार्यका जन्म भारतके भूतपुरी-(वर्तमान पेरुखुपुरम्') में सं० १०७४ विक्रमाब्दमें हुआ था। इनके पिताका नाम केशव सोमयाजी या केशवभट्ट विश्व माताका नाम कान्तिमती था। इनके बचपनका

विशेष विश्वरण उपलब्ध नहीं है, पर समझा जाता है कि ये बचपनमें ही पितृहीन हो गये थे । ये अपनी सामान्य शिक्षा समाप्त होनेपर काँजीवरम्में विद्याध्ययनहेतु गये और वहाँ यादवप्रकाशसे वेदान्तका अध्ययन करने लगे। यतः ये तीव्र प्रतिमा-सम्पन्न थे, अतः गुरुकी व्याख्या यथावत् न मानकर तर्ककी कसौटीपर कसते रहते थे। अपनी तर्कसिद्ध व्याख्यासे ये विद्वानोंको चमत्कृत कर देते थे। इनकी ख्याति बढ़ने लगी। जहाँ इनकी प्रतिभाका प्रकर्ष यामुनाचार्य-(आलम्बदार-) जैसे आचार्यकी प्रसन्नताका कारण था, वहाँ देवयोगसे गुरु यादवप्रकाश-की चिढ़का कारण बनता गया। यामुनाचार्य इन्हें गुप्तख्यसे देख गये थे और बहुत प्रसन्न हुए थे।

१—किसी-किसीका मत है कि इनके पिता इनकी सोलइ वर्षकी अवस्थामें शादी करनेके बाद स्वर्गीय हुए थे।

प्रतिपाद्न-क्षगतासे प्रभावित विद्वत्ता और इनकी आलम्बदार अपने उत्तराधिकारीके रूपमें इन्हें श्रीरंगम्-पीठके मठाधीश बनाना चाहते थे । यामुनाचार्य-(आलम्बदार-) ने अपने अन्तिम समयमें रामानुजाचार्यको बुलानेक लिये अपने शिष्य महापूर्ण खामीको मेजा। रामानुजाचार्य उनके साथ जब श्रीरंगम् पहुँचे तो देखा कि यामुनाचार्यका देहावसान हो चुका है और अन्तिम संस्कारकी तैयारी हो रही है। आचार्य आलम्बदारके मृत शरीरके पास जब ये दर्शनार्थ पहुँचे तो देखा कि उनके दायें हाथकी पाँच अंगुलियोंमेंसे तीन एक साथ मुड़ी हुई हैं । उनके शिष्योंने इसका अर्थ यह निकाला कि आलम्बदार गुरुदेवकी तीन इच्छाएँ अपूर्ण रह गयी हैं, जिनमेंसे एक मुख्य इच्छा यह है कि ब्रह्मसूत्रपर सरल सुबोध भाष्य लिखा जाय। कहा जाता है कि रामानुजाचार्यने तीनोंकी पूर्ति-हेतु वहीं प्रतिज्ञा की और तत्काल वे तीनों अंगुलियाँ सीधी हो गयीं । रामानुजाचारने यामुनाचार्यका अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया और कौँजीवरम् छीट गये।

श्रीरामानुजाचार काँजीवरम् छीट गये तथा वरदराज भगवान्की सेवामें लगे रहकर एवं ईखरके प्रति निष्ठावान् होकर समय बिताने लगे। एक बार उन्होंने मन्दिरके पुजारीसे प्रश्न किया कि 'आप मेरे भविष्यके सम्बन्धमें इखरेच्छाका निर्णय कीजिये।' जनश्रुतिके अनुसार ईखर-इच्छा अभिन्यक्त हुई जिसका भावार्य यह है कि 'मैं सर्वोपरि

यथार्थ सत्ता हूँ । मेरा विचार परस्पर भेद-विषयक है । आत्मसमर्पण मुक्तिका अमोघ कारण है, वैयक्तिक प्रयत्न करना इतना आवश्यक नहीं, अन्तमें मोक्ष मिल्रेगा। पैरियनाम्ब सर्वोत्तम शिक्षक हैं ।'

देवराज मन्दिरकं पुजारीकी आज्ञाको भगवान्का आदेश मानकर इन्होंने उसका पालन करना प्रारम्भ कर दिया। श्रीरंगम् जाते समय मार्गमें ये मधुरान्तकमें पेरियनाम्ब-(महापूर्ण स्वामी-)से मिले । उन्होंने रामानुजाचार्यको दीश्वा दी। वे श्रीरंगम् भी आये। फिर श्रीवरदराज भगवान्की सेवाके उद्देश्यसे महापूर्ण स्वामी श्रीरामानुजाचार्यके साथ उनके घरपर रहने लगे। महापूर्ण स्वामीने रामानुजाचार्यको व्यासकृत वेदान्त सूत्रोंके अर्थके साथ-साथ तीन हजार गाथाओंका भी उपदेश दिया।

महान् चिन्तकों, बड़े विचारकों और महापुरुषोंको कदाचित् ही उनके विचार और सिद्धान्तकी समर्थिका पत्नी मिलती हो। आचार्य रामानुजको भी अपनी पत्नीसे वैचारिक सहायता न मिली। फलतः इन्हें भी गौतम बुद्ध, आचार्य शंकर, पश्चिमी दार्शनिक प्लेटो तथा पालकी भाँति यह अनुभव हुआ कि मानव-जीवनकी लक्ष्यसिद्धि—मानवताकी उच्च भूमि या जीवनकी चरम सिद्धि—ईश्वर-प्राप्ति करनेमें त्याग आवश्यक सीदी है; क्योंकि 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।' अतः इन्होंने संसारका सर्वथा त्याग कर संन्यास ले लिया। संन्यास लेनेके

२—दूसरी और तीसरी इच्छाएँ ये बतायी जाती हैं—दिल्लीके उस समयके बादशाहके यहाँसे श्रीविष्णुमूर्तिका उदार और दिग्वजयपूर्वक विशिष्टाद्वेतका प्रचार। किसी-किसीके मतमें तीन इच्छाएँ ये कही जाती हैं—(१) ब्रह्मसूत्रकी भाष्य-रचनाः (२) द्राविडवेदका प्रचार और (३) दो मनुष्योंको पराशर और शठकोपकी उपाधि प्रदान करना।

३—श्रीमान् परं तत्त्वमहम् । मतं मे भेदः । प्रपत्तिरिपायहेतुः । नावश्यकी च स्मृतिः । अन्त्यका छे मोक्षी महापूर्ण इहार्यवर्यः ।' (-भारतीयदर्शनकी पाद-टिप्पणीमें उद्भृत)।

४—कहा जाता है कि पत्नीके साथ इनका मतमेद-सा बना रहता था । एक बार एक हीन जातिक भक्तके आतिथ्य-स्वीकार कर चले जानेपर इनकी पत्नीने उस स्थानको घो दिया । इन्हें दुःख हुआ । एक दिन एक

बाद इनकी साधना बढ़ी, प्रसिद्धि फैछी । इनके प्रशंसकोंने इन्हें 'यितराज' की उपाधिसे विभूषित किया। इनसे वेदान्तका अध्ययन करने बहुत-से विद्यार्थी भी छुटने छगे । यह भी कहा जाता है कि इनके गुरु यादवप्रकाशने भी इनसे दीक्षा छी और 'यितधर्म-समुच्चय' नामक प्रन्थकी रचना की । उन्हीं दिनों यामुनाचार्यके पुत्र वरदरंग आदिकी प्रार्थनापर इन्होंने श्रीरङ्गम्में पीटाष्यक्षता खीकार कर छी ।

यतिराज रामानुजाचार्य श्रीरङ्गम्मं रहने लगे । श्रीरामानुजाचार्यने श्रीरङ्गम्मॅ पुन: गोष्टीपूर्णसे दीक्षा छी। गोष्ठीपूर्णने इन्हें मन्त्ररहस्य वतलाकर आज्ञा दी कि वे दूसरोंको मन्त्र न दें। किंतु रामानुजाचार्य उस मन्त्रसे मुक्ति होनेकी सिद्धि जानकर गोष्ठीपूर्णके मन्दिरकी छतपर चढ़कर सैकड़ों नरनारियोंके सामने चिल्ला-चिल्लाकर मन्त्रोचारण करने लगे। गुरुके कोधको इनके इस उत्तरने शान्त कर दिया कि 'गुरुदेव । यदि ये सभी मुक्त हो जायँगे और अकेला में नरकमें रह जाऊँ तो मेरे लिये यही उत्तम है।' गुरुने प्रसन्न होकर कहा कि आजसे विशिष्टाद्वैत-दर्शन रामानुजदर्शन नामसे प्रसिद्ध होगा । इन्होंने तिस्वायमयीका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर खिया । अपने शिष्य कृतालवारकी सहायतासे, जिसे बोधायनवृत्ति कण्ठस्थ थी, रामानुजाचार्यने वेदान्तसार, वेदार्थसंग्रह और वेदान्तदीपिका-नामक प्रन्थोंकी रचना की। बोधायन-इत्तिकी प्राप्तिके लिये इन्हें अपने शिष्यक साथ कस्मीरतक जाना पड़ा था और वह देखनेभरके लिये मिली थी, जिसे कूत्तालवारने कण्ठस्थ कर लिया था। आचार्यने बहासूत्र और गीतापर अपनी महत्त्वपूर्ण टीकाएँ लिखीं। वैष्णवधर्मावलम्बी विद्वानोंने रामानुजके वेदान्तभाष्यको

मान्यता दी । 'श्रीभाष्य' वैष्णवोंका कण्ठहार वन गया । यह प्रन्थ इनका मुख्य मान्य सिद्धान्त-प्रन्य है ।

आचार्य रामानुजने सारे दक्षिण भारतकी यात्रा की और स्थान-स्थानपर स्थित अनेक मन्दिरोंका जीणींद्वार कराया । इसके सिवाय इन्होंने वैष्णवधर्मकी दीक्षा देकर वैष्णवधर्मावलिन्वयोंकी संख्या बढ़ायी । विशिष्टा-दैतका स्पीत प्रतिपादन किया और भक्तियोगकी सर्वसाधारण-सुलभ किया । इन्होंने भी आचार्य शंकरकी माँति गीता तथा ब्रह्मसूत्रोंके रहस्यका अपने ढंगपर उद्घाटन कर लोकका महान् उपकार किया । फिर भी इन्होंने यह अभिनिवेश नहीं रखा कि मैं अपने स्वतन्त्र दर्शनका प्रचार कर रहा हूँ, बल्कि यह प्रकाशित किया कि प्रसिद्ध प्राचीन तत्त्वज्ञ पुरुषोंके ज्ञानका ही प्रचार कर रहा हूँ । यही कारण है कि ये अद्वैतसम्प्रदायके सर्वश्रेष्ठ आचार्य शंकरकी कोटिमें परिगणित एवं मान्य अर्ब्य आचार्य हैं ।

यामुनाचार्यके शवके समक्ष की हुई अपनी प्रतिज्ञाओं की ओर जब इन्होंने विशेष ध्यान दिया तब अपने शिष्य कुरेशके साथ बोधायन वृत्तिकी खोजमें निकल पड़े। करमीरके एक पुस्तकाल्यसे पढ़ने भरके लिये मिली और कुरेशको तत्कालीन कण्ठाप्रकृत उस बोधायन वृत्तिकी सहायतासे आचार्यने श्रीभाष्यकी रचना की। श्रीभाष्य तैयार होनेपर वे पुनः करमीर गये। सरस्वती-पीठमें इनके भाष्यका बड़ा आदर हुआ। बहीं के विद्वानोंने भाष्यका नाम श्रीभाष्य रखा और हयग्रीवकी एक मूर्ति भेंट की। आज भी मैसूरके परकालमठमें उस मूर्तिकी पूजा होती है। दिल्ली जाकर तत्कालीन बादशाहके महलसे एक विष्णुमूर्तिका उद्धार किया।

भिक्षुकको भीख देनेकी इनकी आशासे इन्कार कर दिया। श्रीरामानुजकी अनुपिस्थितिमें इनकी पत्नीने गुरूपत्नीको कर्दिकारोंसे तिरस्कृत कर दिया जिससे वे रूठ गर्यी। इसपर गुरूदेव श्रीरंगम् चले गये। श्रीरामानुजने पत्नीको उनके मैके भेज दिया और बीतराग होकर भगवान् वरदराजकी अनुमितसे संन्यास ग्रहण कर लिया।

कहते हैं कि यतिराजक बुलाते ही मूर्ति स्वयमेत्र उनके पास चली आयी । आचार्यने उसको सम्पत्कुमार कहकर गोदमें ले लिया । तदनन्तर सारे देशमें अपने मतका प्रचार किया । यामुनाचार्यकी अन्तिम तीनों इच्छाएँ पूर्ण हुई ।

कुछ छोग कहते हैं कि रामानुजके शिष्य कुरेशके बहुत दिनों बाद दो पुत्र हुए । आचार्यकी आज्ञासे एक पुत्रका नाम पराशर रखा । सयाने होनेपर पराशरने विष्णुसहस्रनामका भाष्य छिखा । इस प्रकार यामुनाचार्यको पक्षान्तरंवाछी दूसरी इच्छा पूरी हुई । फिर दूसरे पुत्र पिछानने 'तिरुमयम्मछी' के ऊपर एक भाष्य छिखा । इस प्रकार यामुनाचार्यकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो गर्या ।

अन्तिम समयमें चोलदेशीय राजा कुलतुंगने या दूसरे राजेन्द्र चोलने जो संवत् ११२७ वि० में गद्दीपर बैठा था, आचार्यको षड्यन्त्रमें अभिमूत करनेके लिये अपने सम्प्रदायके कुछ लोगोंकी प्रेरणासे सभामें बुलाया था। दुरमिसन्धिकी आशंका होनेपर आचार्यके शिष्य कुरेश और महापूर्ण ही सभामें गये। राजाने उनकी आँखें निकलवा लीं। दुःखी आचार्य रामानुज श्रीरंगम्से मैसूर चले गये। बहाँके राजा वित्तिदेवने इन्हें सरकृत किया और स्वयं वैष्णव हो गया। उसकी सहायतासे रामानुजाचार्यने वैष्णवमतका खूव प्रचार किया।

कुलतुंगकी मृत्यु जब सं० ११७५ में हुई तो रामानुजाचार्य श्रीरङ्गम् आये और प्रायः सभी आलंबारोंकी मूर्तियाँ स्थापित कीं। अपने मामाकी मृत्यु होनेपर ये तीरुपति आये और समुद्रमें फेंकी हुई गोविन्दराजकी मूर्तिको निकलवाकर उसे पुनः स्थापित कराया। इसके बाद भ्रमण बन्द कर दिया। उत्तराधिकारीकी नियुक्तिकी एवं वैष्णवमतके प्रचारके लिये ७४ शिष्योंको बिनियुक्त किया। इस प्रकार आचार्यने अपने सम्पूर्ण जीवनको स्वाध्याय, अध्यापन,

साधन, भजन और धर्मप्रचारमें लगाकर एवं त्यागमयी १२० वर्षकी आयु पूरी कर सं० ११९४ विकास ब्द्रमें दिव्यलोकके लिये महाप्रस्थान कर लिया।

आचारिके जीवनकी कुछ घटनाएँ—

यह जनश्रुति है कि एक बार गुरु यादवप्रकाश 'सर्व सिंहवरं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन' की त्र्याख्या कर रहे थे। श्रीरामानुजाचार्य अपनी तर्करौलीसे 'ननु नच' कर रहे थे। इन्हें उनकी व्याख्या सटीक नहीं जँचती थी। विवाद कुछ उप्र हो गया और गुरु रुष्ट हो गये। उन्होंने इन्हें पढ़ाना वन्द कर दिया। यही क्यों, प्रत्युत यादव प्रकाश इनके अनिष्ट करनेपर उत्तर आये। श्रीरामानुजाचार्य अपने मौसरे भाईके साथ प्रयागकी यात्रामें बीचसे ही लौट जानेके लिये बाच्य हुए; क्योंकि मार्गमें घातक पड्यन्त्र होनेका पता लग गया। मार्ग बीहड़ था, अतः आचार्यने मगवान् वरदराजका स्मरण किया। भगवान् वरदराज व्हमीजी-सिंहत भील-भोलनीका रूप धारण कर इन्हें कांची पहुँचाने गये। समीप पहुँचनेपर वे दोनों ही अन्तर्धान हो गये।

x x x

आचार्य रामानुजकी विद्वता और अन्ही प्रतिपादनकी शैलीसे आकृष्ट हो दूर-दूरसे विद्वानोंके आने और इनसे सत्सङ्ग अथवा विचार-विमर्श करनेकी परिचर्चा चला करती थी । इन्हीं दिनों यज्ञमूर्तिनामक एक दिविजयी शास्त्रार्थीने श्रीरंगम्में आक्तर इन्हें शास्त्रार्थ करनेकी चुनौती दी । शास्त्रार्थ सोलह दिनोंतक चलता रहा, पर कोई विजयी अथवा विजित नहीं हुआ । अन्ततः आचार्य रामानुजने यामुनाचार्यके 'मायावाद-खण्डन'का सुनिपुण अध्ययन-मनन कर यज्ञमूर्तिको परास्त किया । यज्ञमूर्ति वैष्णव बन गये और तामिल भाषामें 'प्रमेयसार' तथा 'ज्ञानसागर' नामक दो प्रन्थोंकी रचना की ।

× × ×

एक यह भी घटना कही जाती है कि श्रीरंगनाथके जाति इनके फैलते यशकी ईर्ष्यासे इन्हें विष दे क्षेक्ष बढ्यन्त्र रच दिया था, पर उसीकी साध्वी स्त्रीने हो विफल कर दिया। पुजारीने पश्चात्तापपूर्वक क्षमा क्षी और इनकी शरण ली। आचार्यने क्षमा दे दी और सान्वनासे आश्वस्त कर दिया—'प्रणिपातप्रतीकारः संस्मो हि महात्मनाम्।'

× × ×

आचार्य रामानुजने अपने मतकी पुष्टि और प्रचारके श्रे श्रीमाष्यके अतिरिक्त वेदान्तसंग्रह, वेदान्तदीप, क्षानसार, वेदान्ततत्त्वसार, गीतामाष्य, गद्यत्रय और भगवदाराधनक्रमकी भी रचना की । इसके क्षतिरिक्त अष्टादश रहस्य, कण्टकोद्धार, क्ट्सन्दोह, शावास्योपनिषद्-भाष्य, गुणरत्नकोष, चक्रोल्लास, विव्यसूरिप्रभावदीपिका, देवतापारस्य, न्यायरत्नमाला, नारायणमन्त्रार्थ, नित्यपद्धति, नित्याराधनविधि, न्याय-

परिशुद्धि, न्यायसिद्धाञ्जन, पश्चपटल, प्रश्नोपनिषद्व्याख्या, मणिद्रपण, मतिमानुष, मुण्डकोप-निषद्व्याख्या, योगसूत्रभाष्य, रत्नप्रदीप, रामपटळ, रामपद्धति, रामपूजापद्धति, राममन्त्रपद्धति, रामरहस्य, रामायणव्याख्या, रामार्चापद्धति, वार्त्तामाला, विशिष्टा-द्वैतमाष्य, विष्णुविप्रहशंसनस्तोत्र, विष्णुसहस्रनानमाष्य, वेदार्थसंप्रह, वैकुण्ठगद्य, शतदूषणी, शरणागतिगद्य, श्वेताश्वतरोपनिषद् व्याख्या, सङ्कल्पसूर्योदय सचित्तिरक्षा, सर्वार्थिसिद्धि इत्यादि प्रन्योंकी भी रचना की । परंतु यह नहीं पता छगता कि कौन-सा प्रन्थ किस समयमें लिखा गया । उन्होंने अपने प्रन्थोंमें शाङ्कर-मतका खुब जोरदार शब्दोंमें खण्डन करनेकी चेष्टा की है। पर तत्त्व-चिन्तनके छस्य और शैछी दोनोंकी प्रायः समान हैं । आचार्थ शंकरका मत अद्वेतवाद है और इनका विशिष्टाद्वेत । वे संसारको मिथ्या मानते हैं और ये संसारको सत्य कहते हैं।

[8]

श्रीमध्वाचार्य

हैतवादी तत्त्वचिन्तक आचार्य मध्य गण्यमान्य गचार्योमें अन्यतम हैं । इन्हें पूर्णप्रज्ञ एवं आनन्दतीर्थसे गै जाना जाता है ।

मध्याचार्यका जन्म तुलुव देशके कनारा जिलेमें सीपिके समीप वेलिग्राममें एक वेद वेदाङ्ग-पारङ्गत क्षणके घर सं० १२५६ विक्रमाब्दमें आश्विन शुक्रा आमी-(विजयादशमी-)को हुआ था। इनके पिताका नाम किनी भट्ट और माताका नाम वेदवती था। दम्पतिने को पहलेके दो पुत्रोंके निधन हो जानेसे पुत्रकामना-कि श्रीनारायणकी उपासना की; फलतः एक होनहार किना जन्म हुआ। बालकका नाम वासुदेव खा विश्व में को गये। इनका मन पढ़नेमें नहीं लगता

था । ये विविध खेळोंमें निपुणता प्राप्त करनेके कारण 'भीम' कहलाने लगे। प्रसिद्धि है कि भगवान् नारायणकी आज्ञासे खयं वायुदेवता वासुदेवके रूपमें प्रकट हुए थे, अतएव भीम नाम भी सार्थक समझा जाता था।

यद्यपि इनका मन पढ़नेमें नहीं लगता या, पर ये थे विलक्षण प्रतिभाके बालक । प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर शीघ्र ही ये एक अच्छे विचक्षण हो गये । कुछ ही दिनों बाद अपनी ग्यारह वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने अद्वैतमतके संन्यासी आचार्य सनक-कुलोद्भव अच्युत प्रक्षाचार्य या अच्युत पक्षाचार्य-(अपरनाम शुद्धानन्द-)से संन्यासकी दीक्षा ले ली । इनका दीक्षानाम पूर्णप्रज्ञ हो गया । ये अपने गुरुसे वेदान्त पढ़ने लगे । वेदान्तकी व्याख्यामें अपने गुरुसे ये प्रायः

भे॰ त॰ अ॰ २६— CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असहमत होकर प्रतिवाद कर उठते थे। प्रखर प्रतिभासे जिनत इनकी प्रज्ञा और विद्वत्ताकी ख्याति बढ़ने छगी। वेदान्तके पारगामी विद्वान् हो जानेपर इनके गुरुने इन्हें आनन्दतीर्थ नाम देकर मठाधीश बना दिया। अनेक वर्षोतक प्रार्थना, उपासना, खाध्याय और समाधिमें छगे रहकर भी कभी-कभी पण्डितोंसे शास्त्रार्थ भी कर छिया करते थे। इन्हें आनन्दज्ञान, ज्ञानानन्द और आनन्दगिरि आदि नामोंसे भी जाना जाता था।

एक बार ये सं० १२८५ वि० में दक्षिण-विजयके लिये निकले। इनके गुरु अच्युतपक्ष भी कुछ अन्य साथियोंके साथ दक्षिण आये और मंगलौरसे २७ मील दक्षिण विष्णुमंगलम् स्थानमें ठहर गये। कहा जाता है कि यहाँ आचार्यने नाना प्रकारकी सिद्धियाँ दिखलायी।

कुछ दिनों वाद ये वहाँसे त्रिवेन्द्रम् आये । वहाँ राजसमामें शृङ्गेरी मठके अध्यक्षके साथ शास्त्रार्थ किया। त्रिवेन्द्रम्से रामेश्वरम् और फिर वहाँसे श्रीरंगम् आकर ये फिर पला नदीके तटवर्ती उदीपिमें आ गये। यहींपर इन्होंने गीताभाष्य लिखा और उसमें अपने मतका सारांश निवेशित किया । इसके बाद उसीको आधार बनाकर इन्होंने वेदान्तसूत्रका भाष्य छिखा । कहते हैं कि गीताभाष्यकी रचना कर वे बदरिकाश्रम गये और भगवान् नेदन्यासके प्रत्यक्ष दर्शन होनेपर उन्हें गीताभष्य समर्पित कर दिया। व्यासजीने प्रसन्न होकर इन्हें शालप्रामकी तीन मूर्तियाँ दीं । इन्हीं तीन मूर्तियोंको आचार्यजीने सुब्रह्मण्य, उदीपि और मध्यतल्रमें प्रतिष्ठित किया । आपने एक कृष्णमूर्तिकी स्थापना भी उदीपिमें की थी। कहा जाता है कि किसी व्यापारीका एक जहाज द्वारकासे मलावार जा रहा था । वह तुलुवके समीप डूब गथा । उस जहाजमें गोपीचन्दनसे आवृत एक कृष्ण-विग्रह भी था, उसकी भी जल-समाघि हो गयी। मध्याचार्यने भगवदादेशसे उसे जलसे निकलवा कर उदीपिमें स्थापित

किया। तभीसे उदीपि मध्यमतानुयायियोंका तीर्थ हो गया।

भगवदादेशसे आप वैष्णव-सम्प्रदाय और भिक्ति प्रचारमें लग गये। प्रचारके सिलिसिलेमें ही ये चालुक्य साम्राज्यकी राजधानी कल्याणमें पहुँचे। वहाँ इनके प्रधान शिष्य शोभन भट्टने इनसे दीक्षा ली। उनका नाम पद्मनाभ तीर्थ हुआ और वे अपने गुरुके बाद मठाधीश हुए।

आचार्य कल्याणसे उदीपि छोट आये, जहाँ कहते हैं कि इनके गुरु अन्युतपक्षाचार्यने भी वैष्णवमत खीकार कर छिया। जो हो, इन्होंने वैष्णवधर्म और मिक्तका विशेष प्रचार किया। उदीपिमें इन्होंने अपने शिष्योंकी धुविधाके छिये कृष्णमन्दिरके सिवाय और मन्दिर स्थापित किये, जिनमें श्रीराम-सीता, छक्ष्मण-सीता, द्विभुज काल्यि-दमन, चतुर्भुज काल्यि-दमन, विट्ठल कुल आठ मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा की। ये मूर्तियाँ दर्शनीय हैं और आज भी इस सम्प्रदायवाले वहाँ जाकर उनका दर्शन भक्तिभावसे करते हैं।

पण्डित श्रीत्रिविक्रमको दीक्षा देकर आचार्यने उन्हें एक कृष्णमूर्ति उपहृत की जो आज कोचीन राज्यमें विद्यमान है। इन्हींके पुत्र नारायणने मध्वविजय और 'मणिमंजरी'की रचना की थी। इनसे इनके जीवनपर प्रकाश पड़ता है। आचार्यके जीवनचरित्र मेंसे चामल्कारिक एवं अप्राकृतिक घटनाओंको छाँट देनेपर उनके जीवन और उद्देश्यका खुलासा ऐतिहासिक तथ्य उमर आता है।

संभवतः इनके पिताका देहावसान सं० १३३२ वि० में हुआ। उसके बाद इनके भाईने भी संन्यास है लिया, जिनका दीक्षानाम विष्णुतीर्थ प्रसिद्ध हुआ। अन्तिम समयमें मध्याचार्य 'सरिदन्तर' नामक स्थानपर रहने लग गये थे। वहींपर द्वैतवादी तत्त्वचिन्तक आचार्य मध्यने अपनी उनहत्तर वर्षकी पूर्णायु पूरी कर बैकुण्ठवास किया। इनके मतानुयायियोंका कहना है कि आचार्यने १९ वर्षोतक धर्मप्रचारादि कार्योमें ब्रिताये। इस हिसाबसे इनका वैकुण्ठवास १३६० बिक्रमाब्द होता है।

देहत्यागके समय आप अपने शिष्य श्रीपद्मनाभतीर्थको श्रीरामजीकी मूर्ति और व्यासजीकी दी हुई शालग्राम शिला देकर कह गये कि तुम मेरे मतका प्रचार करना । गुरुके आदेशानुसार श्रीपद्मनाभतीर्थने चार मठौंकी स्थापना की ।

मध्वाचार्यके सिद्धान्तके प्रतिपादक इनके रचे हुए प्रत्य ही हैं। इन्होंने भी ब्रह्मसूत्रपर भाष्यकी रचना की है। 'अनुव्याख्यान' नामक प्रत्थमें इन्होंने अपने भाष्यकी युक्तियुक्तता प्रदर्शित की है। भगवद्गीता तथा हपनिषदोंपर भी भाष्य छिखा है। महाभारतका सार भारततात्पर्यनिर्णय' नामसे इनकी अन्य कृति है। भागवतपर भी इनकी टीका है। ये सभी प्रन्य इनके सिद्धान्तके अनुमोदक हैं। ऋग्वेदके प्रथम चाछीस मन्त्रोंपर भी इन्होंने टीका छिखी है। अपने प्रकरणोंमें अनेक दार्शनिक एवं अन्य विषयोंपर भी समीक्षा की है। प्रस्थानत्रयीकी अपेक्षा इन्होंने पुराणोंका अधिक अभिप्राय प्रहण किया है—-ऐसा आधुनिक प्रसिद्ध दार्शनिक भातते हैं। इनके सूत्रभाष्य एवं अनुव्याख्यानके ऊपर

जयतीर्थका न्यायसुधानामक भाष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रन्य है और जयतीर्थके इस भाष्यपर व्यासरायका भाष्य है। उसका नाम चन्द्रिका है। पूर्णानन्दकी तत्त्व-मुक्तावादमें अद्वैतवादकी समाछोचना की गयी है।

श्रीमध्वाचार्यने अपने जीवनके प्रायः ३० वर्ष प्रन्यलेखनमें व्यतीत किये। इस बीच उन्होंने गीतामाष्य,
ब्रह्मसूत्रभाष्य, अनुभाष्य, अनुन्याख्यान, प्रमाणलक्षण,
कथालक्षण, उपाविखण्डन, मायावादखण्डन, प्रपञ्चमिथ्याखवादखण्डन, तत्वसंख्यान, तत्त्वविवेक, तत्त्वचीत,
कर्मानिर्णय, विण्णुतत्विनिर्णय, श्रूरभाष्य, दशोपनिषद्(ईश, केन, कठ, प्रक्त, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय,
तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक)—भाष्य, गीतातात्पर्यानिर्णय, न्यायविवरण, यमकभारत, द्वादशस्तीत,
कृष्णामृतमहार्णव, तन्त्रसारसंप्रह, सदाचारस्पृति,
भागवततात्पर्यनिर्णय और महाभारततात्पर्यनिर्णय, जयन्तीकल्प, संन्यासपद्धित, उपदेशसाहभीटीका, उपनिषद्धस्थान
आदि अनेकों प्रन्थोंकी रचना की।

श्रीमध्याचार्यके मतसे ब्रह्म सगुण और सविशेष है। जीव अगुपरिमाण है। जीव भगवान्का दास है। वेद नित्य और अपौरुषेय हैं। प्रपन्न सत्य है। जीवको पान्नरात्रशास्त्रका आश्रय लेना चाहिये। यहाँतक आचार्य रामानुजसे पूर्णतः संगति है, पर पदार्थ-निर्णय या तस्व-निर्णयमें दोनोंमें मतैक्य नहीं है।

[५] श्रीनिम्बार्काचार्य

आचार्य निम्बार्क रामानुजाचार्यके पश्चात् और मध्वाचार्यसे पहले हुए थे। ये वैष्णव-धर्मावलम्बी कि तेल्या ब्राह्मण थे। इनकी स्थिति ग्यारहवीं शतान्दीमें भी जाती है। इनका दूसरा नाम नियमानन्द था।

112

इनका नाम पहले भास्कराचार्य था—यह भी कहा जाता है। इनके सम्बन्धमें माना जाता है कि ये दक्षिणमें गोदावरीके तटपर वैदुर्यपत्तनके पास अरुणाश्रममें श्रीअरुणमुनिकी पत्नी श्रीजयन्तीदेवीके गर्भसे उत्पन इए

रै-निम्बार्कसम्प्रदायकी मान्यता है कि आचार्य पाँचवीं शताब्दीमें हुए ये। भक्तोंका विश्वास है कि आपका प्राकट्य मिखुगमें हुआ था। आधुनिक अन्तेषक इन्हें ग्बारहवीं शताब्दीमें मानते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ये। कुछ छोग इनके पिताका नाम जगन्नाथ बतलाते हैं। कहा जाता है कि इनके उपनयन-संस्कारके समय खयं देवर्षि नारदजीने इन्हें गोपालमन्त्रकी दीक्षा और श्रीभू-लीलासहित श्रीकृष्णोपासनाका उपदेश दिया था।

निम्बार्काचार्यने ब्रह्मसूत्र- (वेदान्तदर्शन-)के ऊपर 'वेदान्तपारिजातसौरम' नामका एक छोटा-सा भाष्य लिखा है । ब्रह्मसूत्रके अपने भाष्यमें आपने ब्रह्मके परिणामवादके सिद्धान्तका परिष्कार किया है । यह संक्षिप्त होनेपर भी सारगर्भित है । इस प्रन्थको विशद करनेका श्रेय निम्बार्काचार्यके शिष्य श्रीनिवासाचार्यको दिया जाता है । इनके प्रन्थका नाम 'वेदान्तकौस्तुभ' है । इस प्रन्थका आधार लेकर श्रीकेशवाचार्यने एक अच्छी टीका लिखी, जो प्रचलित है । श्रीकेशवाचार्य निम्बार्क-सम्प्रदायके सिद्ध आचार्य माने जाते हैं । वे श्रीमन्महाप्रमुके समकालीन माने जाते हैं । निम्बार्काचार्यके श्रीमद्भगवद्गीतापर लिखे भाष्यकी तत्त्वप्रकाशिका टीका केशव काश्मीरीकी है । इन्होंने निम्बार्काचार्यके मतकी पृष्टि की है ।

निम्बार्काचार्यकी दूसरी पुस्तक 'दशरुलोकी' है। इस छोटी-सी पुस्तकमें आपने जीव, जगत् और ईश्वर-सम्बन्धी अपने विचार या मत अमिन्यक्त किये हैं। आपका सिद्धान्त 'द्वैताद्वैत' कहा जाता है जो मेदामेश्वाद-जैसा है। इसके अनुसार द्वैत भी सत्य है और अद्वैत भी सत्य है। वेदान्तसूत्रकी इसी प्रकारकी व्याख्या दसवीं शताब्दीके भास्कराचार्यने मेदामेद नामसे की है। किन्तु मेदामेद-परक व्याख्या ब्रह्मपरक है, शिव या विष्णुपरक नहीं। निम्बार्काचार्यकी व्याख्या विष्णुपरक है। निम्बार्क-सम्प्रदाय वैष्णवोंके प्रमुख चार सम्प्रदायोंमें अन्यतम है। इसे सनकादि-सम्प्रदाय भी कहते हैं।

ब्रह्माके मानसपुत्र इसके आद्य आचार्य माने जाते हैं— सनक, सनन्दन, सनातन और सनन्कुमार । निम्बार्क-सम्प्रदायको चतुःसनसम्प्रदाय भी कहते हैं । इसे ऋषि-सम्प्रदाय नामसे भी जाना जाता है । छान्दोग्योप-निषद्में सनत्कुमार-नारद-आख्यायिकामें कहा गया है कि नारदने सनत्कुमारसे ब्रह्म विद्या सीखी थी । नारदजीने ही निम्बार्कको उपदेश दिया है। निम्बार्काचारने अपने भाष्यमें सनत्कुमार और नारदके नामोंका उल्लेख किया है। निम्बार्क-सम्प्रदाय प्राचीन हैर-यद्यपि उसका विशद परिष्कार निम्बार्काचार्यने ही किया । इस सम्प्रदायकी एक विशेषता यह है कि इसके आचार्य दूसरे मतोंका खण्डन नहीं करते। निम्बार्क-सम्प्रदायकी गद्दी मथुराके पास यमुनाके तटवर्ती ध्रुवक्षेत्रमें है । वैष्णवोंका यह पवित्र तीर्थ माना जाता है। इस सम्प्रदायके लोग विशेषतः पश्चिमी भारतमें हैं; पर बंगालमें भी कुछ लोग मिलते हैं।

निम्बादित्य-सम्प्रदायकी दो श्रेणियाँ हैं—(१) विरक्त-सम्प्रदाय और (२) गृहस्थ-सम्प्रदाय । आचार्यके दो शिष्यों—केशवमह और हरिव्यासके अनुसार ये दोनों मेद प्रचिलत हुए । इस सम्प्रदायमें राधाकृष्ण-की पूजा होती है और पूजक-साधक गोपीचन्दनका तिलक लगाते हैं । व्रजधाम इस सम्प्रदायका केन्द्र है । रामानुजी साधुओंकी अपेक्षा इनकी संख्या न्यून है । श्रीमद्भागवत इस सम्प्रदायका मुख्य प्रन्थ है ।

साम्प्रदायिक जनश्रुतियाँ

निम्बार्काचार्य या निम्बादित्य सूर्यके अवतार थे। वे पाखण्डरूप अन्धकारका नारा करनेके लिये भूमण्डलप अवतरित थे। कुछ लोग इन्हें विष्णुके आयुष्

२-ब्रह्मसूत्रमें भी द्वैताद्वैतवाद और उसके आचार्यका नामोल्लेख मिलता है। ३-केवल देवाचार्यके प्रन्थोंमें शांकरमतकी आलोचना देखनेको मिलती है। श्रीसुदर्शनचक्रका अवतार कहते हैं। इस सम्बन्धकी एक घटना प्रसिद्ध है।

भास्कराचार्य वृन्दावनके पास रहते थे। एक वार एक दण्डी (किसीके मतसे एक जैन उदासीन) इनके आश्रमपर आये। दोनोंमें सन्ध्याकाळतक तात्विक विचार-विमर्श चळता रहा। भास्कराचार्य अतिथिको मोजन कराना चाहते थे, पर सूर्यास्त हो जानेसे अतिथिने सत्कार स्वीकार नहीं किया। फिर भास्कराचार्यने अपनी योगसिद्धिसे सूर्यकी गित रोक दी। सूर्य समीपके एक नीम वृक्षपर स्थित हो गये। अतिथिको सूर्यके अस्त न होनेकी वात वतळायी गयी। अतिथिको सत्कार स्वीकार कर ळिया। जव उन्होंने भोजन किया, तब सूर्य अस्त हो गये। कहा जाता है कि तभीसे भास्कराचार्य निम्बादित्य या निम्बार्काचार्य हो गये। वे एक महान् योगी थे। नामसे छगता है कि वे संन्यासी थे।

वेदान्तसूत्रके भाष्यभूत आपके 'वेदान्तपारिजातसौरम'-के सिवा कृष्णस्तवराज, गुरुपरम्परा, वेदान्ततत्त्ववोध, वेदान्तसिद्धान्तप्रदीप, खधर्माववोध, ऐतिह्यतत्त्वसिद्धान्त आदि कई प्रन्थ माने जाते हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यकृत भाष्य वृन्दावनवासी साधु श्रीकिशोरीदास वाबाके उद्योगसे मुद्रित होनेपर भी विक्रयमें न' होनेसे सर्वसाधारण-सुल्म नहीं है। श्रीनिम्बार्कके मतानुयायी श्रीनिवासाचार्यका ग्रन्थ 'वेदान्तकौस्तुम' उसी भाष्यके आधारपर रचित है।

सिद्धान्तका सार

निम्बार्कके सिद्धान्तमें पुरुषोत्तमकी खतन्त्र यथार्थता भौर जीव तथा प्रकृतिकी परतन्त्र यथार्थताओंमें मेद वतलाया गया है । ईश्वर एवं जीव दोनों ही आत्मचेतन हैं; भेद इतना ही है कि जीव परिमित राक्तिका और ईश्वर अपरिमित राक्तिवाला है । जीव भोक्ता है, संसार भोग्य है और ईश्वर सर्वोच्च नियन्ता है ।

दश्यमान जगत् और जीव दोनों ही मूळतः 'ब्रह्म' हैं, किन्तु उसकी सत्ता जगत् और जीवतक ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इन दोनोंको अतिकान्त कर उसकी सत्ता है; यही अतीतखरूप—अतिव्याप्त सत्ता—जगत्का उपादान कारण है और जगत् तथा जीव ब्रह्मके अंश-मात्र हैं (द्रष्टव्य वे० द० २ । ३ । ४२, ३ । २ । २२ सूत्रका भाष्य) । अंशके साथ अंशीका जैसा भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सम्बन्ध है, जगत् और जीवके साथ ब्रह्मका भी वैसा ही सम्बन्ध है । अंश सम्पूर्ण अवयवोंसे अंशीका अङ्गीभृत है, अतएव अभिन्न है; परंतु अंशीको अतिक्रमण करके भी है, अंशमात्रमें अंशीकी सत्ता पर्याप्त नहीं है, अतएव अंशी अंशसे भिन्न भी है । अतः दोनों सम्बन्ध मेदाभेद है, अंशाशि-सम्बन्ध अथवा द्वैताद्वैत-सम्बन्ध दोनों एक ही तार्ह्ययाले हैं ।

ब्रह्म चिदानन्दरूप अद्वेत सत्पदार्थ है । अपने चिदंशके द्वारा निज खरूपगत आनन्दका वह अनुमव (भोग) करता है। चिदंश ही दर्शनशक्ति, ईक्षणशक्ति, ज्ञानशक्ति और अनुभवशक्ति है। उसका खरूपगत आनन्द भूमा (अनन्त) है। इस आनन्दमें अनन्तरूपसे युक्त (दश्य, ज्ञात) होनेकी योग्यता है एवं तत्खरूपगत चित्शक्तिमें भी अनन्तभावसे प्रसारित होकर इस आनन्दका अनन्तरूपसे अनुमव करनेकी योग्यता है (द्रष्टव्य वे० द० १।१।५-२० सूत्रका भाष्य)।

४-यह पक्षान्तरमें प्रसिद्ध है कि आचार्यने निम्बब्धपर चढ़कर सुदर्शनचक्रका आह्वान किया। सुदर्शनचक्रके एवं से समान प्रतिभात होनेसे उन आये हुए यतियोंने भोजन प्रहण कर किया। भोजनोत्तर सुदर्शनके चले जानेपर यतियोंने बेतुभव किया कि रात्रिका चत्रयीका बीत चुका है। (इस पक्षमें आश्रमपर बहुतसे यति पहुँचे थे।)

[६] जाचार्य नहाभ

वल्कभाचार्य तेलग् हाह्यण-कुळसे **छश्पब** हुए थे । इनका सभय सं० १४५८ विकामान्द माना गया है। इन्होंने तेरहवीं शतीके विष्णुस्वामीके मतका परिष्कार किया और उत्तर भारतमें उसे प्रचारित किया । ये न केवल उपनिषदों, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्रोंको ही प्रामाणिक मानते थे, अपितु श्रीमद्भागवत प्रराणको भी प्रामाणिक मानते थे। इन्होंने श्रीमद्भागवतको समाधिभाषाका आप्त प्रन्थ माना है । इन्होंने अपने प्रन्यों वेदान्तसूत्रोंके भाष्य (अणुभाष्य), सिद्धान्तरहस्य और श्रीमद्भागवतकी सुबोधिनी टीकामें शंकराचार्य और रामानुजाचार्यकी व्याख्याओंसे भिन्न ईश्वर-ज्ञानविषयक व्यास्या की है। इनका मत शुद्धाद्देत (अर्थात् विशुद्ध भद्देतवाद) कहा जाता है । इस मतके अनुसार जगत् ययार्थ है और वह सूक्ष्मरूपमें ह्या है जगत्का सूक्ष्मरूप भगवत्तत्व है और स्थूलरूप विश्वप्रपञ्च है। जीवात्माएँ और जडजगत् तात्विकरूपमें ह्या ही हैं। इनके सिद्धान्तमें जीव, काल, प्रकृति अथवा माया सब नित्य वस्तुएँ हैं, वे ब्रह्मके ही तत्त्वसे सम्बद्ध हैं। ब्रह्मके अतिरिक्त उनकी पृथक् सत्ता नहीं है। इनका कथन है कि मायावी शक्तिको जगत्का कारण माननेपर शुद्ध अद्वेतवादिता नहीं रह जाती; क्योंकि एक ओर मायाकी सत्ता भी माननी पड़ती है।

इञ्च खतः सुतराम् जगत्-सृष्टिमें समर्थ है। इसके छिये मायाकी सत्ता माननेकी आवश्यकता **नहीं । आचार्य** वल्लभ शास्त्रको परम प्रमाण मानते हैं और यह मानते हैं कि शास्त्रके विरुद्ध हमारा तर्क अप्रामाणिक है, अमान्य है । भगवत्तत्व या ईश्वर सचिदानन्दखरूप है और प्रशस्त विश्व-कल्याणकारी गुणोंसे युक्त है। भिर्मुण' का तारपर्य प्राकृतिक गुर्णोके अ<mark>भावसे है,</mark> कोकोत्तर कोक-कल्याणकारी गुणोंके क्षभावसे नहीं। ईश्वर देहघारी श्रीकृष्ण हैं ! उनमें ज्ञान और क्रियाका आधान है । वे जगत्-म्नष्टा हैं । वे अपनी इच्छाशक्तिसे सारे विश्वकी रचना करते हैं। वे कर्ता तो हैं ही, भोक्ता भी हैं । यद्यपि उन्हें शरीर धारण करनेकी ख्यंके लिये आवश्यकता नहीं होती है, फिर भी वे 🤇 भक्तोंक भाववस्य होकर अपनेको विविधरूपोंमें प्रकाशित करते हैं। उनका सर्वश्रेष्ठरूप यज्ञ है, जो कर्ममय है। कमसे ही उनकी पूजा होती है, यही बात ब्राह्मणग्रन्योंमें कही गयी है। जब वे ज्ञानसे सम्बद्ध होते हैं तो नहा हैं और उन्हें ज्ञानसे ही प्राप्त किया जा सकता है।

उनकी पूजा-अर्चा गीता और भागवतके निमयोंके अनुसार होनी चाहिये। यही आचार्य वल्लभके भगवत्तत्व-विन्तनका निष्कर्ष है।

[७] मण्डन मिश्र अथवा सुरेश्वराचार्य

मण्डन मिश्र प्रकाण्ड पण्डित एवं लोकोत्तर प्रतिभा-शाली एवं अपने समयके मूर्धन्य विद्वान् और प्रीढ़ तत्त्व-चिन्तक थे। ये अद्वैतसे मिन्न मतवालोंके प्रबल पक्षपाती तथा नेता थे। इनकी प्रतिमा अप्रतिम थी। इनकी पत्नी भारती भी अत्यन्त विदुषी थीं। भारतीका व्यक्ति-गत नाम अम्बा या उम्बा था। शास्त्रमें अप्रतिहत गतिके कारण इन्हें भारती अथवा उभयभारती कहा जाता था। ये शोणनदके तटवासी विष्णुमित्रकी कत्या थीं और सरखतीका अवतार मानी जाती थीं। इनका एक नाम शारदा भी था। आचार्य शंकरके साथ इन दोनोंका शास्त्रार्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है।

मण्डनका व्यक्तिगत नाम विश्वरूप था। माधवके शंकरदिविजय- (३।५७) के अनुसार इनके पिताका नाम हिमिमिश्र था। माधवने अपने शंकर-दिग्विजयमें इन्हें माहिष्मतीका निवासी बताया है। वहाँ के जलाशय पर स्नानार्थ आये स्त्री-समूहमेंसे मण्डन मिश्रकी एक दासीने ही आचार्यको मण्डन मिश्रके घरका पता निम्नाङ्कित स्लोकोंमें बताया था—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥ फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥ जगद्धुवं स्याज्ञगद्धुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥ द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥ (शं० दि० ८।६८)

अर्थात्—'वेद खतः प्रमाण है या परतः प्रमाण, कर्म आप ही फल देता है या ईश्वर कर्मका फल देता है, जगत् नित्य है या अनित्य ! इस प्रकार जिनके द्वारके आगे पिंजरेंमें बैठी मैना बोलती है, वही मण्डन मिश्रका घर है।'

शंकराचार्यने मण्डन मिश्रके घर पहुँचकर शास्त्रार्थ किया । मध्यस्थ थीं मण्डन मिश्रकी पत्नी भारती। भारतीने निष्पक्ष निर्णय दिया। मण्डन मिश्र विजित हुए और शंकराचार्य विजयी। रांकराचारने शास्त्रार्थके उपक्रममें अपनी प्रतिज्ञा इस प्रकार घोषित की—'इस जगत्में ब्रह्म एक, सत्, चित्, निर्मल तथा यथार्थ वस्तु है। वह खयं इस जगत्के रूपसे उसी प्रकार भासित होता है, जिस प्रकार शिक्त (सीप) चाँदीका रूप धारण कर भासित होती है। शिक्तमें चाँदीके समान ही यह जगत् नितान्त मिथ्या है। उस ब्रह्मके ज्ञानसे ही इस प्रपन्नका नाश होता है और जीव बाहरी पदार्थोंसे हटकर अपने विशुद्ध रूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। उस समय वह जन्म-मरणसे रहित होकर मुक्त हो जाता है। यही हमारा सिद्धान्त है और इसमें खयं उपनिषद् ही प्रमाण हैं। यदि मैं इस शास्त्रार्थमें पराजित हो जाऊँगा तो संन्यासीके कथाय वस्त्रको फेंक-कर गृहस्थका सफेद वस्त्र धारण कर छूँगा। इस विवादमें जय-पराजयका निर्णय खयं भारती करें।'*

मीमांसक मण्डन मिश्रकी प्रतिज्ञा इस प्रकार थी— 'वेदका कर्मकाण्ड भाग ही प्रमाण है । उपनिषद्को मैं प्रमाण कोटिमें नहीं मानता; क्योंकि वह चैतन्य खरूप ब्रह्मका प्रतिपादन कर सिद्ध वस्तुका वर्णन करता है । वेदका तात्पर्य है—विधिका प्रतिपादन करना, परंतुं उपनिषदें विधिका वर्णन न कर ब्रह्मके खरूपका प्रतिपादन करती हैं । अतः वे प्रमाण-कोटिमें कथमपि नहीं आ सकतीं । शब्दोंकी शक्ति कार्य-मात्रके प्रकट करनेमें है । दुःखोंसे मुक्ति कर्मके द्वारा ही होती है और इस कर्मका अनुष्ठान प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवन-भर करते रहना चाहिये । मीमांसक होनेके नाते यही मेरी प्रतिज्ञा है । यदि इस शास्त्रार्थमें मेरी पराजय होगी

* ब्रह्मेकं परमार्थसिव्यस्त विश्वप्रपञ्चात्मना ग्रुक्ती रूप्यपरात्मनेव बहलाज्ञानावृतं भासते । तज्ज्ञानान्निखिलप्रपञ्चनिलया स्वात्मव्यवस्थापर निर्वाणं जनिमुक्तमम्युपगतं मानं श्रुतेर्मस्तकम् ॥ बाढं जये यदि पराजयभागइ स्यां संन्यासमञ्ज परिद्धत्य कषायचैलम् । ग्रुक्लं वसीयवसनं द्वयभारतीयं वादे जयाजयपत्रस्प्रतिदीपिकास्तु ॥

(माधव-शं० दि० ८ । ६१-६२)

[६] जाबार्य नष्टभ

वल्कभाचार्य तेलग् नासण-कुळमें **ल्यप्स** हुए थे । इनका सभय सं० १४५८ विकामान्द माना गया है। इन्होंने तेरहवीं शतीके विष्णुखामीके मतका परिष्कार किया और उत्तर भारतमें उसे प्रचारित किया । ये न केवल उपनिषदों, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्रोंको ही प्रामाणिक मानते थे, अपितु श्रीमद्भागवत पुराणको भी प्रामाणिक मानते थे। इन्होंने श्रीमद्भागवतको समाधिमाषाका आप्त प्रन्य माना है । इन्होंने अपने प्रन्यों वेदान्तसूत्रोंके भाष्य (अणुभाष्य), सिद्धान्तरहस्य और श्रीमद्भागवतकी सुबोधिनी टीकामें शंकराचार्य और रामानुजाचार्यकी व्याख्याओंसे मिन्न ईश्वर-ज्ञानविषयक व्यास्या की है। इनका मत शुद्धाद्देत (अर्थात् विशुद्ध बद्देतवाद) कहा जाता है । इस मतके अनुसार जगत् यथार्थ है और वह सूक्ष्मरूपमें ह्या है जगत्का सूक्ष्मरूप भगवत्तत्व है और स्थूलरूप विश्वप्रपञ्च है। जीवात्माएँ और जडजगत् तात्विकरूपमें ह्या ही हैं। इनके सिद्धान्तमें जीव, काल, प्रकृति अथवा माया सब नित्य वस्तुएँ हैं, वे ब्रह्मकें ही तत्त्वसे सम्बद्ध हैं। ब्रह्मके अतिरिक्त उनकी पृथक् सत्ता नहीं है। इनका कथन है कि मायावी शक्तिको जगत्का कारण माननेपर शुद्ध अद्वैतवादिता नहीं रह जाती; क्योंकि एक ओर मायाकी सत्ता भी माननी पड़ती है।

हुआ खतः सुतराम् जगत्-सृष्टिमें अपर्ध है। इसके छिये मायाकी सत्ता माननेकी आवश्यकता न**हीं । आचा**र्य वल्लभ शास्त्रको परम प्रमाण मानते हैं और यह मानते हैं कि शास्त्रके विरुद्ध हमारा तर्क अप्रामाणिक है, अमान्य है । भगवत्तत्व या ईश्वर सचिदानन्दखरूप है और प्रशस्त विश्व-कल्याणकारी गुणोंसे युक्त है । क्षिर्मण' का तारपर्य प्राकृतिक गुर्गोक अभावसे है, लोकोत्तर कोक-कल्याणकारी गुर्णोके क्षमावसे नहीं। ईश्वर देहधारी श्रीकृष्ण हैं ! उनमें ज्ञान और क्रियाका आधान है । वे जगत्-म्नष्टा हैं । वे अपनी इच्छाशक्तिसे सारे विश्वकी रचना करते हैं। वे कर्ता तो हैं ही, भोक्ता भी हैं । यद्यपि उन्हें शरीर धारण करनेकी खयंके लिये आवश्यकता नहीं होती है, फिर भी वे भक्तोंक भाववस्य होकर अपनेको विविधरूपोंमें प्रकाशित करते हैं । उनका सर्वश्रेष्ठरूप यज्ञ है, जो कर्ममय है । कमसे ही उनकी पूजा होती है, यही बात ब्राह्मणप्रन्योंमें कही गयी है। जब वे ज्ञानसे सम्बद्ध होते हैं तो नवा हैं और उन्हें ज्ञानसे ही प्राप्त किया जा सकता है।

उनकी पूजा-अर्चा गीता और भागवतके निमयोंके अनुसार होनी चाहिये। यही आचार्य वल्लभके भगवत्तत्व-चिन्तनका निष्कर्ष है।

[७] मण्डन मिश्र अथवा सुरेश्वराचार्य

मण्डन मिश्र प्रकाण्ड पण्डित एवं लोकोत्तर प्रतिभा-शाली एवं अपने समयके मूर्धन्य विद्वान् और प्रीढ़ तत्त्व-चिन्तक थे। ये अद्वैतसे मिन्न मतवालोंके प्रबल पक्षपाती तथा नेता थे। इनकी प्रतिभा अप्रतिम थी। इनकी पत्नी भारती भी अस्यन्त विदुषी थीं। भारतीका व्यक्ति-गत नाम अम्बा या उम्बा था। शास्त्रमें अप्रतिहत गतिके कारण इन्हें भारती अथवा उभयभारती कहा जाता था। ये शोणनदके तटवासी विष्णुमित्रकी कन्या थीं और सरखतीका अवतार मानी जाती थीं। इनका एक नाम शारदा भी था। आचार्य शंकरके साथ इन दोनोंका शास्त्रार्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है।

मण्डनका व्यक्तिगत नाम विश्वरूप था। माधवके रांकरदिग्विजय- (३।५७) के अनुसार इनके पिताका नाम हिममिश्र था। माधवने अपने रांकर-दिग्विजयमें इन्हें माहिष्मतीका निवासी बताया है। वहाँ के जलाराय पर स्नानार्थ आये स्नी-समूहमेंसे मण्डन मिश्रकी एक दासीने ही आचार्यको मण्डन मिश्रके हरका पता निम्नाङ्कित रलोकोंमें बताया था—

खतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति। द्वार स्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितीकः॥ कर्म फलप्रद फलपदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥ जगद्धुवं स्याजगद्धुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति। द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः॥ (शं० दि० ८। ६८)

अर्थात्—'वेद खतः प्रमाण है या परतः प्रमाण, कर्म आप ही फल देता है या ईश्वर कर्मका फल देता है, जगत् नित्य है या अनित्य ! इस प्रकार जिनके द्वारके आगे पिंजरेंमें बैठी मैना बोलती है. वही मण्डन मिश्रका घर है।'

शंकराचार्यने मण्डन मिश्रके घर पहुँचकर शास्त्रार्थ किया । मध्यस्थ थीं मण्डन मिश्रकी पत्नी भारती। भारतीने निष्पक्ष निर्णय दिया। मण्डन मिश्र विजित हुए और शंकराचार्य विजयी। रांकराचार्यने शास्त्रार्थके उपक्रममें अपनी प्रतिज्ञा इस प्रकार घोषित की—'इस जगत्में ब्रह्म एक, सत्, चित्, निर्मल तथा यथार्थ वस्तु है। वह स्वयं इस जगत्के रूपसे उसी प्रकार भासित होता है, जिस प्रकार शुक्ति (सीप) चाँदीका रूप धारण कर भासित होती है। शुक्तिमें चाँदीके समान ही यह जगत् नितान्त मिथ्या है। उस ब्रह्मके ज्ञानसे ही इस प्रपन्नका नाश होता है और जीव बाहरी पदार्थोंसे हटकर अपने विशुद्ध रूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। उस समय वह जन्म-मरणसे रहित होकर मुक्त हो जाता है। यही हमारा सिद्धान्त है और इसमें स्वयं उपनिषद् ही प्रमाण हैं। यदि मैं इस शास्त्रार्थमें पराजित हो जाऊँगा तो संन्यासीके कन्नाय वस्त्रको फेंक-कर गृहस्थका सफेद वस्त्र धारण कर स्वँगा। इस विवादमें जय-पराजयका निर्णय स्वयं भारती करें।**

मीमांसक मण्डन मिश्रकी प्रतिज्ञा इस प्रकार थी— 'वेदका कर्मकाण्ड भाग ही प्रमाण है । उपनिषद्को मैं प्रमाण कोटिमें नहीं मानता; क्योंकि वह चैतन्य खरूप ब्रह्मका प्रतिपादन कर सिद्ध वस्तुका वर्णन करता है । वेदका तात्पर्य है—विधिका प्रतिपादन करना, परंतु उपनिषदें विधिका वर्णन न कर ब्रह्मके खरूपका प्रतिपादन करती हैं । अतः वे प्रमाण-कोटिमें कथमि नहीं आ सकतीं । शब्दोंकी शक्ति कार्य-मात्रके प्रकट करनेमें है । दुःखोंसे मुक्ति कर्मके द्वारा ही होती है और इस कर्मका अनुष्ठान प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवन-भर करते रहना चाहिये । मीमांसक होनेके नाते यही मेरी प्रतिज्ञा है । यदि इस शास्त्रार्थमें मेरी पराजय होगी

^{*} ब्रह्मेकं परमार्थसिद्धदमलं विश्वप्रपञ्चात्मना ग्रुकी रूप्यपरात्मनेव बहलाज्ञानाष्ट्रतं भासते। तज्ज्ञानान्निखिलप्रपञ्चनिलया स्वात्मव्यवस्थापर निर्वाणं जनिमुक्तमम्युपगतं मानं श्रुतेर्मस्तकम्। बाढं जये यदि पराजयभागह स्यां संन्यासमङ्ग परिद्धत्य कथायचेलम्। बाढं जये यदि पराजयभागह स्यां संन्यासमङ्ग परिद्धत्य कथायचेलम्। ग्रुक्लं वसीयवसनं द्वयभारतीयं वाहे ज्याजयपत्लप्रतिदीपिकास्तु॥

तो मैं गृहस्थ धर्मको छोड़कर संन्यासी बन जाऊँगा। **
शास्त्रार्थ कई दिनोंतक सौहार्दके वातावरणमें
बड़ी प्रगल्भताके साथ चळता रहा। अन्तमें 'तत्त्वमिसं'
महावाक्यको छेकर निर्णायक शास्त्रार्थ हुआ।

× × ×

शारदाने दोनों पण्डितोंको माला पहनाकर घोषित कर दिया था कि जिसकी माला मिलन पड़ जायगी, वह परास्त समझा जायगा । शास्त्रार्थके अन्तिम क्षणोंमें मण्डनकी माला मिलन हो गयी और शारदाने निर्णय घोषित कर दिया । आचार्य शंकर विजयी हो गये ।

मण्डन मिश्र शास्त्रार्थकी शर्तके अनुसार शंकराचार्यका शिष्यत्व प्रहणकर संन्यासी हो गये और सुरेक्षराचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए । आचार्य सुरेक्षर संन्यास लेकर गुरु शंकराचार्यके साथ लोकसंप्रहार्थ देशका भ्रमण करते रहे और जब शंकराचार्यने श्रक्केरी मठकी स्थापना की तब ये वहाँके पीठाधीस्वर बने । श्रक्केरी मठके प्राचीन लेखोंसे इनके दीर्घतम जीवनकी आश्चर्यप्रद बात कही जाती है, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिल्रती, अतः प्रमाण कोटिमें नहीं आती ।

सुरेश्वराचार्य पाण्डित्यके अगाध सागर थे। उनके प्रन्थोंमें विचारकी प्रौढ़ता एवं सुसंगत श्रृङ्खला पायी जाती है। उनके वाक्योंको चित्सुख, विद्यारण्य, सदानन्द, गोविन्दानन्द, अप्पय्यदीक्षित प्रमृति प्रायः समी परवर्त्ती आचार्योने प्रमाणके रूपमें उपन्यस्त किया है। शांकरमतके आचार्योमें सबसे अधिक प्रतिष्ठा सुरेश्वराचार्यको ही प्राप्त हुई।

सुरेश्वराचार्य होनेके पहले मण्डन मिश्रने आपस्त-म्बीयमण्डनकारिका, भावनाविवेक और काशीमोक्ष-निर्णय नामक प्रन्थोंकी रचना की थी । संन्यास लेनेके वाद इन्होंने तैत्तिरीयश्रुतिवार्त्तिक, नैष्कर्म्य-सिद्धि, इष्टसिद्धि या खाराज्यसिद्धि, पश्चीकरण-वार्त्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्वार्तिक, ब्रह्मसिद्धि, ब्रह्मसूत्र भाष्यवार्त्तिक, विधिविवेक, मानसोल्लास या दक्षिणा-मूर्तिस्तोत्र, वार्त्तिक, लघुवार्तिक, वार्त्तिकसार और वार्त्तिकसारसंग्रह इत्यादि प्रन्थ लिखे । सुरेश्वराचार्यने संन्यास लेनेके बाद शाङ्करमतका ही प्रचार किया और अपने प्रन्थोंमें प्रायः उसी मतका समर्थन किया । भगवत्तत्त्व चिन्तकोंमें इनका अन्यतम उच्च स्थान है ।

[6]

अन्यतम भगवत्तन्त्व-चिन्तक एवं भावुक भक्त मधुद्धदन सरस्वती

भगवत्तत्त्व-चिन्तक अर्वाचीन आचार्योमें मधुसूदन सरस्वतीका उच्च स्थान है। ये अद्वेत सिद्धान्तके प्रौढ़ प्रतिपादक होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णके परम मक्क थे। ये महात्मा तुळसीदासके समकाळीन थे। इन्होंने तुळसीदासजीके सम्बन्धमें लिखा था— आनन्द कानने श्वस्थिन् जङ्गमस्तुळसीतरुः।

कवितामजरी यस्य रामस्रमरभूषिता॥

[#] वेदान्तो न प्रमाणं चिति वपुषि पदे तत्र सङ्गत्ववोगात् पूर्वो भागः प्रमाणं पद्चनगक्षिते कार्ववस्तुन्यशेषे । शन्दानां कार्यमात्रं प्रति समविगता शक्तिरम्युवतानां कर्मन्यो मुक्तिरिष्टा तदिह ततुप्रतापाशुवः स्थात् समान्तेः ॥ (शं० दि० ८ । ६४)

ये बंगालप्रान्तके फरीदपुर जिलेके अन्तर्गत कोटाल-पाड़ा प्रामके निवासी प्रमोदन पुरन्दरके तृतीय पुत्र थे। इनका पितृदत्त नाम कमलनयन था। इन्होंने न्यायके अगाध विद्वान् गदाधर भट्टके साथ नवद्वीपके हरिनाम तर्कवागीशसे न्यायका अध्ययन किया था। वहाँसे काशीमें आकर प्रसिद्ध पण्डितोंसे शालार्थ किया और सुकीर्ति अर्जित की। इसी समय दण्डिखामी श्री-विश्वेश्वराश्रम सरखती से इन्होंने वेदान्तका श्रवण किया और ब्रह्मचर्याश्रमसे ही सीधे संन्यास प्रहण कर लिया। फिर तो इन्होंने अद्वैत-सिद्धान्तके अनेक प्रन्थ वनाये, जिनके कारण दार्शनिक समाज इनका चिरऋणी रहेगा।

ये अद्वैतवेदान्तके प्रकाण्ड पण्डित एवं तत्त्वज्ञ तो थे ही, पर श्रीकृष्णके परम मक्त भी थे। इनकी गीताकी टीका, मिक्तरसायन (एवं भागवतकी अप्राप्य टीका) इसके साक्षात् प्रमाण हैं। इन प्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर भक्तिका निरूपण और विवेचन मिळता है। भक्तिरसायन तो भक्तिका ही प्रन्थ है।

इनके समयका अभी ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है; परन्तु कुछ आधारोंपर कहा जा सकता है कि हनका जन्म ईसाकी सोल्हवीं शताब्दीके चतुर्थ चरणमें हुआ था और सन् १६५० तक ये विद्यमान थे।

जब ये काशीमें रहते ये तब पहले इन्हें शास्त्रार्थकी बड़ी घुन थी। जो कोई आता उसीको ये अपने तर्क,

युक्ति एवं शास्त्रके बलपर परास्त कर देते थे। इस प्रकार सैकड़ों विद्वान् इनसे अपमानित होकर दु:खी हुए । एक दिन एक नंगे परमहंस इनके पास आये। इनका खागत-सत्कार खीकार करनेके पश्चात् उन्होंने पूछा—'खामीजी ! आप असङ्ग तो बनते हैं, परन्तु हृदयपर हाथ रखकर वताइये तो सही कि पण्डितोंको जीतनेका घमण्ड आपको होता है या नहीं ! यदि होता है तो उन्हें दु:खी करनेका पाप भी आपको छगेगा ही। ऐसा यदि कोई दूसरा कहता तो सम्भव है, श्रीमधुसूदनजी हँसकर उसे फटकार देते । परन्तु उन परमहंसका तेज कुछ ऐसा था कि उनके वाक्योंसे ये प्रभावित हो गये और इनका मुँह मलिन हो गया। उस समय परमहंसजीने इन्हें समझाया कि 'भैया ! यह पुस्तकोंका पाण्डित्य और युक्तियोंका प्राबल्य बहुत बड़ा विक्षेप है—ल्ख्य प्राप्तिमें बाधक है । उपासना करके इसे नष्ट न करोगे तो वास्तविक रसकी अनुमूति न होगी। फिर तो मधुसूदनजीने उनके चरण पकड़ लिये और उनसे मन्त्रदीक्षाके लिये बड़ी प्रार्थना की । उन दयाल संतने इन्हें श्रीकृष्णमन्त्र वताकर घ्यान और उपासनाकी पद्धति बतायी एवं कह दिया कि श्रद्धा-विश्वासके साथ उपासना करोगे तो तीन महीनेमें तुम्हें भगवान् श्री-कृष्णके दर्शन हो जायँगे । इन्होंने परमहंसजीकी आज्ञा मानकर तीन महीनेतक उपासना की, परन्तु सफलता न हुई । इसपर इन्हें बड़ा उद्देग हुआ और ये काशी छोड़कार निकल पड़े।

१-किंतु निम्नाङ्कित रहोकसे सिद्ध होता है कि मधुसूदन सरस्वतीके विद्यागुरु श्रीमाघव सरस्वती थे। अद्वैतसिद्धिकी षमाप्ति करसे हुए वे हिन्नसे हैं—

भीमाघवसरस्तरो अवन्ति विमां वराः । वर्षं पेषां प्रसादेन शास्त्रायं परिनिष्ठिताः ॥ इससे सिद्ध होता है कि उद्यक्ते अभिष्ठासुक्त भीमाक्षक किस्साती थे क्षेत्र दीवागुरु भीक्षियेश्वर सरस्तती थे ।

कपिक्रभाराके पास पहुँचनेपर इन्हें एक नीच जातिका साधारण-सा मनुष्य मिळा। उसने कहा-'सामीजी ! छोग भगवरप्राप्तिके छिये अनेक जन्मतक **छप्र तपस्या करते हैं, फिर भी उनके दर्शन बड़ी** किंठनाईसे प्राप्त होते हैं और आप तीन महीनोंमें ही वबरा गये ! यह धुनकर खामीजी आश्चर-चिकत हो गये । उन्होंने सोचा कि यह नीची जातिका देहाती भादमी मेरी उपासनाकी बात कैसे जान गया ! फिर तो उनके इदयमें स्फरणा हुई और वे उसके चरणोंपर गिर पड़े । डठनेपर देखते हैं कि इस रूपमें तो बही प्रमहंसजी हैं। उन्होंने कहा—'इस बार तीन महीनों तक और प्रेमसे जप, घ्यान, पूजा एवं पाठ करो। अवस्य दर्शन होगा । खामीजीने छीटकर वैसा ही किया और उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके साक्षात् दर्शन हुए; भगवान्की ही आज्ञासे उन्होंने गीतापर टीका लिखी, जिसमें कर्म, भक्ति एवं ज्ञानका सुन्दर वर्णन करके समस्त साधनाओं, धर्मों एवं मार्गोका शरणागतिमें उपसंदार किया गया है । उसके बादका इनका जीवन भक्तिमय ही रहा । भक्तिरसाष्ट्रत हृदयसे निकले श्रीकृष्णभक्तिकी अनन्यताका बोधक और उनके रूपका मार्मिक चित्रण करनेवाला यह उद्गार कितना भाव-भरित है कि-

> वंशी विभूषितकराम्नवनीरदाभात् पीताम्बराद्दणबिम्बफलाधरोष्ठात्। पूर्णेन्दुसुन्द्रसुखाद्दरिन्द्नेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमद्दं न जाने॥

अर्थात्—'वंशीसे धुशोमित हाथवाले, नये मेघकी कान्तिवाले, पीताम्बर धारण किये हुए, लाल बिम्बाफलके समान अधरवाले, पूर्णचन्द्रमाके समान धुन्दर मुखवाले एवं कमलके समान नेत्रवाले श्रीकृष्णसे परे भी कोई तस्त्र है—ऐसा मैं नहीं जानता।'

मधुसूदन सरखती बड़े भारी योगी थे। वीरसिंड नामक एक राजाको संतान नहीं थी। उसने एक रातको खनमें देखा कि मधुसूदन नामक एक यति है, उसकी सेवासे पत्र अवस्य होगा । तदनुसार राजाने मधुसूदनका पता छगाना ग्रुख्त किया । कहते हैं कि उस समय मधुसूदनजी एक नदीके किनारे जमीनके अंदर समाधिस्थ थे । राजा खोजते-खोजते वहाँ पहुँचा । वहाँकी मिट्टी खोदनेपर अंदर एक तेज:पुद्ध महात्मा समाधिस्य दिखायी दिये । राजाने खप्नके खरूपसे मिलाकर निश्चित किया कि ये ही मधुसूदन यति हैं। राजाने वहाँ एक मन्दिर बनवा दिया । कहा जाता है कि इस घटनाके तीन वर्षोंके बाद मधुसूदनजीकी समाधि टूटी थी । इसीसे उनकी योगसिद्धिका पता क्रगता है । परंतु वे इतने विरक्त थे कि समाधि खुक्नेपर इस स्थान, राजप्रदत्त भोग तथा मन्दिरको ब्रोडकर तीर्थाटनको चल दिये।

मधुसूदन सरखती अद्वैत सिद्धान्तके महारथी थे। प्रवल युक्तियोंसे अद्वैतसिद्धान्तका प्रौढ समर्थन इनके प्रसिद्ध मान्य प्रन्थ अद्वैतसिद्धिमें है। इनके पूर्वके आचार्योमें उक्तियाँ—शास्त्रप्रमाणकी ही प्रधानता थी, किंतु इन्होंने युक्तियाँ एवं अनुमानप्रमाणका अधिक उपयोगकर शास्त्र और तर्क—दोनोंसे अपने सिद्धान्तकी पृष्टि की। इनका युक्तिकौशल सचमुच असूतपूर्व है।

अद्वैतसिद्धान्तके इतने बड़े आचार्य होकर भी इन्होंने सिगुण भक्तिका महत्त्व खीकार किया और ये अपने छोचनोंकी चमत्कृतिके छिये काछिन्दीके क्रूछपर दौड़नेवाछे अनिवचनीय नीले तेजका ही ध्यान करते रहे । इन्होंने गीताकी अपनी गूढ़ार्थदीपिकामें स्पष्ट छिखा कि 'ध्यानके अम्याससे जिनका चित्त वशमें हो गया है, वे योगिजन

यदि उस निर्गुण और निष्क्रिय किसी परमञ्योतिको देखते हैं तो देखा करें, किंतु हमारे नेत्रोंको तो काळिन्दीकूळ-विहारीका नीला तेज ही चिरकालतक चमत्कृत करता रहे।

गीताकी गूढ़ार्थदीपिकामें ही सर्वप्रथम गीताके तीन अध्याय-षट्कोंको क्रमशः कर्म, उपासना और ज्ञान-काण्डोंमें विमाजितकर साधनत्रयका सामञ्जस्य दिखळाया गया है।

गूढार्थदीपिकाके लिखनेका उद्देश्य यद्यपि शाङ्कर-भाष्यको विशद करना बताया गया है^र, पर इन्होंने शरणागति-सिद्धान्तभूत 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं वज' की व्याख्या सर्वथा अपने ढंगसे की है।

आचार्य मधुसूदन सरस्रतीका विश्वास था कि 'प्रमाणोंसे भी निर्णात किये हुए श्रीकृष्णके अद्भुत माहात्म्यको जो मूढ सह नहीं सकेंगे, वे नरकगामी होंगे'—

त्रमाणतोऽपि निर्णीतं कृष्णमाद्यात्म्यमद्भुतम् । न राष्ट्रावन्ति ये सोद्धं ते मूढा निरयंगताः॥

इनके 'भिक्तिरसायन' प्रन्यसे इनकी असाधारण भगवद्रसञ्जता और भावुकताका अद्भुत परिचय मिळता है । इसी प्रकार ध्रुप्रसिद्ध महिम्नःस्तोत्रकी शिव एवं विष्णु— उभयपरक व्याख्या कर इन्होंने हार और हरका सैद्रान्तिक अभेद-प्रतिपादन स्फुट कर दिया है । वस्तुतः मधुसूदन सरखती जैसे भगवत्तत्व-चिन्तक थे वैसे ही तत्त्वनिष्ठ भगवद्भक और उच्चकोटिक आचार्य थे । ऐसे ही महापुरुषोंकी वाणी कल्याणकारिणी होती है ।

आपके लिखे हुए सिद्धान्तिबन्दु या सिद्धान्ततत्त्विबन्दु, वेदान्तकल्पलितका, संक्षेपशारीरकच्याख्या, अद्वैतसिद्धि, गूढार्थदीपिका (गीताव्याख्या), अद्वैतरत्नरक्षण, प्रस्थानभेद, मिहम्न:स्तोत्रकी व्याख्या, मिक्तरसायन और भागवतव्याख्या नामक प्रन्थ प्रसिद्ध हैं।—रा॰ ब॰ त्रिपाठी

२-च्यानाभ्यासवशिकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं, ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते । अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाचिरं कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नील्महो घावति॥ (गीता-गूढार्थदीपिकाके तेरहवें अध्यायके आरम्भमें उद्धृत)

३—गृढार्थदीपिकाके उपोद्धातके निम्नाङ्कित श्लोकोंमें उक्त संदर्भ मुस्पष्ट हें—
सिचदानन्दरूपं तत् पूर्णे विष्णोः परं पदम् । यत्प्राप्तये समारव्धा वेदाः काण्डत्रयात्मकाः ॥३॥
कर्मोपास्तिस्तथा ज्ञानमिति काण्डत्रयं क्रमात् । तद्भूपाष्टादशाच्यायैगीता काण्डत्रयात्मिका ॥४॥
पक्रमेकेन षट्केन काण्डत्रयोपळक्षयेत् । कर्मनिष्ठाज्ञाननिष्ठे कथिते प्रथमान्त्ययोः ॥५॥
यतः समुच्चयो नास्ति तयोरतिविरोधतः । भगवद्भक्तिनिष्ठा तु मध्यमे परिकीर्तिताः ॥६॥

तात्पर्य यह कि विष्णुका परमपद सिचदानन्दरूप है। उसकी प्राप्तिके लिये त्रिकाण्डात्मक वेदोंका आविर्भाव हुआ। कर्म, उपासना और ज्ञान—ये तीन काण्ड हैं। उन्हींके रूपमें अठारह अध्यायोंवाली गीता भी तीन काण्डोंवाली है। प्रत्येक हैं: अध्यायोंसे कर्मनिष्ठा, उपासना या भक्ति-निष्ठा और ज्ञाननिष्ठा वतलायी गयी है। यतः कर्म और ज्ञानका अति-विरोध होनेसे कर्म ज्ञानका समुञ्चय नहीं हो सकता, अतः भगवान्की भक्तिनिष्ठाको मध्यमें मध्यषट्क (७ वें अध्यायसे १२ वें तक्में) निरूपित किया गया है।

¥—भगवत्पादभाष्यार्थमालोच्यातिप्रयत्नतः । प्रायः प्रत्यक्षरं सर्वे गीतागृदार्थदीपिकाम् ॥१॥ (गी० त० दी० का उपोद्धात)

[९] श्रीगौडपादाचार्य

गौड़पादाचार्यजीके जीवनके विषयमें कोई विशेष वात नहीं मिळती। आचार्य शङ्करके शिष्य सुरेश्वराचार्यजीके नैष्कम्यसिद्धि नामक प्रन्थसे केवळ इतना पता ळगता है कि वे गौड़देशके रहनेवाले थे। इससे प्रतीत होता है कि उनका जन्म बंगाळ-प्रान्तके किसी स्थानमें हुआ होगा। श्रीशङ्करके जीवनचरितसे इतना माळ्म होता है कि गौड़पादाचार्यके साथ उनकी भेंट हुई थी। परंतु इसके अन्य प्रमाण नहीं मिळते।

आचार्य गौड्पादके प्रन्थोंमें बौद्धमतका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिळता, केवळ आभासमात्र मिळता है । इससे माछम होता है, उन्होंने जब प्रन्थ ळिखा था, उस समय देशमें बौद्धधर्मका कोई प्राधान्य नहीं था।

श्रीगौड़पादाचार्यका सबसे प्रधान प्रन्थ है माण्डूक्योपनिषत्कारिका, इसका श्रीशङ्कराचार्यने भाष्य छिला है। इस कारिकाकी मिताक्षरा नामकी एक टीका भी मिळती है। परवर्त्ता आचार्योंने इस कारिकाको प्रमाणरूपसे खीकार किया है। गौड़पादाचार्यप्रणीत सांख्यकारिकाका भाष्य भी मिळता है। परंतु इसमें संदेह है कि यह भाष्य उनका है या दूसरेका। उनका तीसरा ग्रन्थ मिळता है—उत्तरगीताभाष्य। उत्तरगीता महाभारतेंमें नहीं मिळता।

आचार्य गौड़पाद अद्वैतसिद्धान्तके प्रधान आचार्य थे । उन्होंने अपनी कारिकामें जिस सिद्धान्तको बीजरूपसे प्रकट किया, उसीको श्रीशङ्कराचार्यने अपने प्रन्योंमें और भी विस्तृतरूपसे समझाकर संसारके सामने रक्खा है । कारिकाओंमें उन्होंने जिस मसका

प्रतिपादन किया है, उसे अजातवाद कहते हैं। सृष्टिके विषयमें भिन्न-भिन्न मतावलिक्वयोंके भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई कालसे सृष्टि मानते हैं, कोई प्रकृतिको प्रपन्नका कारण मानते हैं, कोई परमाणुओंसे ही जगत्की उत्पत्ति मानते हैं और कोई भगवान्के सङ्कल्पसे इसकी रचना मानते हैं। इस प्रकार कोई परिणामवादी हैं और कोई आरम्भवादी हैं। किन्तु श्रीगौड़पादाचार्यके सिद्धान्तानुसार जगत्की उत्पत्ति ही नहीं हुई। केवल एक अखण्ड चिद्धनसत्ता ही मोहवरा प्रपन्नवत् भास रही है। यही बात आचार्य इन राब्दोंमें कहते हैं—

मनोद्दश्यमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः। मनसा ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते॥

अर्थात्—'यह जगत् हैत है जो मनका ही दृश्य है, प्रमार्थतः तो अहैत ही है; क्योंकि मनके मन-शून्य हो जानेपर हैतकी उपलब्धि नहीं होती।' आचार्यने अपनी कारिकाओंमें अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे यही सिद्ध किया है कि सत्, असत् अथवा सदसत् किसी भी प्रकारसे प्रपन्नकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं हो सकती। अतः प्रमार्थतः न उत्पत्ति है, न प्रलय है, न बद्ध है, न साधक है, न मुमुक्षु है और न मुक्त ही है—

न निरोधो न चोत्पत्तिन वद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुनं वे मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

बस, जो समस्त विरुद्ध कल्पनाओंका अधिष्ठान, सर्वगत, असङ्ग, अप्रमेय और अविकारी आत्मतत्त्व है, एकमात्र वही सद्वस्तु है। मायाकी महिमासे रज्जुमें सर्प, शुक्तिमें रजत और सुवर्णमें आमूषणादिके समान उस सर्वसङ्गर्ग्य निर्विशेष चित्तत्वमें ही समस्त पदार्थोंकी प्रतिति हो रही है।

[१०] श्रीहर्ष मिश्र

श्रीशङ्कराचार्य और सुरेश्वराचार्यके बाद प्रायः बारहवीं शताब्दीतक अद्वैतमतके जितने आचार्य हुए, उन्होंने प्रायः व्याख्या या वृत्ति ही लिखी। किसीने कोई प्रमेयबहुल प्रकरण प्रन्थ नहीं लिखा। बारहवीं शताब्दीमें श्रीहर्ष मिश्र हुए, जिन्होंने अन्यमतोंका खण्डन करनेके लिये एक प्रकरण प्रन्थ लिखा और इस प्रकार अद्वैतजगत्में नवयुग उपस्थित कर दिया। इनकी देखा-देखी इनके समसामयिक आनन्दबोध महाचार्य तथा बादके चित्सुखाचार्य आदिने भी प्रकरण-प्रन्थोंकी रचना की। श्रीहर्ष दार्शनिक और किय दोनों थे।

सुना जाता है कि इनके पिताका नाम श्रीहरिपण्डित तथा माताका नाम मामछदेवी था। इनके पिता भी कवि थे। परंत उनका कोई प्रन्थ या वर्णन नहीं मिळता । कहते हैं कि श्रीहर्षके पिता श्रीहरिपण्डितको राजसभामें किसी पण्डितने शास्त्रार्थमें हरा दिया । इससे उन्हें बड़ा दु:ख हुआ और वे भगवतीकी उपासना करने लगे । भगवतीने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया कि तुम्हें एक दिग्विजयी पुत्र प्राप्त होगा । उसीके कुछ दिन बाद श्रीहर्षका जन्म हुआ । श्रीहरिपण्डितके मनमें हारका दु:ख जन्मभर बना रहा, शान्त नहीं हुआ। जब वे मृत्यु-राय्यापर पड़ गये, तब उन्होंने श्रीहर्षको बुलाकर अपने पराभवका वृत्तान्त सुनाया और पराजित करनेवाले पण्डितका परिचय देकर कहा कि यदि तुम उस पण्डितको हरा दोगे तो परलोकमें मुझे शान्ति मिलेगी । पुत्रने पिताके अन्तिम वाक्यको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा की।

पिताकी मृत्युके बाद उनका श्राद्ध आदि करके श्रीहर्ष विभिन्न स्थानोंमें घूम-घूमकर विद्याध्ययन करने छो । इन्होंने पिताकी अन्तिम अभिलाषा पूर्ण करना

अपने जीवनका मुख्य व्रत बना लिया। इससे इनके अनन्य पितृभक्त और दृढप्रतिज्ञ होनेका परिचय मिळता है । जब इन्होंने सर्वत्र घूमकर पूर्णरूपसे अध्ययन कर लिया, तब एक सुयोग्य साधकसे दीक्षा ली और उनसे चिन्तामणि मन्त्र लेकर ये किसी नदी-तटपर एक पुराने मन्दिरमें भगवतीकी आराधना करने छगे। भगवतीने इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर यह वर प्रदान किया कि तुम समस्त विद्याओं में पारङ्गत हो जाओगे तथा तुम्हें असाधारण वाक्चातुरी प्राप्त होगी । इस प्रकार देवीकी कृपा पा करके ये कान्यकुब्जके राजाकी सभामें आये। वहाँ इन्होंने अपने पिताको पराजित करनेवाले पण्डितको शास्त्रार्थमें हराया । राजाने इनके प्रकाण्ड पाण्डित्यसे सन्तुष्ट होकर इनका खूब सम्मान किया। तबसे ये प्रायः राजाके ही आश्रित रहे । राजाका नाम जयचन्द्र, जयन्त-चन्द्र था । इन्होंने अपने एक प्रन्थमें राजाका कुछ परिचय भी दिया है।

मतवाद

श्रीहर्ष जिस समय हुए थे, उस समय देशमें न्याय-दर्शनका कुछ विशेष प्रचार हो रहा था। दूसरी ओर वैष्णव छोगोंका मत बढ़ रहा था, दक्षिण और उत्तर भारतमें श्रीरामानुज और श्रीनिम्बार्कके मतका प्रचार हो रहा था। ऐसे समयमें श्रीहर्षने अपनी अपूर्व प्रतिमासे अद्वैतमतका समर्थन और अन्य मतोंका खूब जोरदार खण्डन करके अद्वैतमतकी रक्षा की। न्यायमतपर इनका इतना कठोर प्रहार हुआ जितना शायद ही किसी दूसरेने किया हो। इनका 'खण्डनखण्डखाद्य' अपने ढक्नका एक ही प्रन्थ है। इनका दूसरा काव्यप्रन्थ 'नैषधचरित' है। इसमें उनकी अपूर्व कितव्लक्ष्य और पाण्डित्य प्रस्फटित हुआ है। इनके सिवा अर्णवर्णन, शिवशक्तिसिद्धि, साहसाङ्कचम्पू छन्द:प्रशस्ति, विजयप्रशस्ति, गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, ईश्वराभिसन्धि और स्थैयविचारण-प्रकरण, ये सब उनके अन्यान्य प्रन्थ हैं। श्रीहर्षने अपने प्रन्थोंमें अद्वेतका प्रतिपादन किया है और विशेषतः उदयनाचार्यके न्यायमतका खण्डन किया है। आचार्य श्रीहर्षके 'खण्डनखण्डखाद्य'का दूसरा नाम 'अनिवचनीयसर्वख' है। वास्तवमें यह नाम सार्थक है। भगवान् शङ्करका मायावाद अनिवचनीय ख्यातिके उपर ही अवलम्वत है। इनके सिद्धान्तानुसार कार्य

और कारण भिन-अभिन अथवा भिनामिन भी नहीं हैं, अपितु अनिर्वचनीय ही हैं। इस अनिर्वचनीयताके कारणसे ही कारण सत् है और कार्य मायामात्र है। श्रीहर्षने खण्डनखण्डखाद्यमें सब प्रकारके विपक्षोंका बड़े रोबके साथ खण्डन किया है तथा उनके सिद्धान्तका ही नहीं, बल्कि जिनके द्वारा वे सिद्ध होते हैं, उन प्रत्यक्ष-आदि प्रमाणोंका भी खण्डन कर एक अप्रमेय अद्वितीय एवं अखण्ड वस्तुकी ही स्थापना की है।

[११] श्रीमाधवाचार्य या विद्यारण्यम्रुनि

श्रीमन्माधवाचार्य प्रायः चौदहवीं शताब्दीमें हुर् थे । इनके जीवनचिरतके विषयमें भी बड़ा मतभेद है । कल लोगोंका कहना है कि इनका जन्म संवत् १३२४ विक्रमीमें तुङ्गभदा नदीके तटवर्ती हाम्पी नगरके पास एक गाँवमें हुआ था। इन्होंने 'पराशरमाधव' नामक अपने प्रन्थमें अपना जो परिचय दिया है, उससे मालुम होता है कि इनके पिताका नाम मायाण, माताका नाम श्रीमती तथा दो भाइयोंका नाम सायण और भोगनाथ था। सूत्र बोधायन, गोत्र भारद्वाज और यजुर्वेदी ब्राह्मण-कुलमें इनका जन्म हुआ था । इन्हींके प्रन्थोंसे माछ्म होता है कि इनका कुळनाम भी सायण ही था और इनके भाई वेदभाष्यकार सायण अपने कुलनामसे ही प्रसिद्ध हुए थे । श्रीमाधवाचार्यके गुरुके विषयमें पहले वर्णन आ चुका है । उन्होंने गुरुरूपसे विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ और श्रहरानन्दको नमस्कार किया है। सायणाचारने भी वेदभाष्यके आरम्भमें विद्यातीर्थकी ही वन्दना की है। ह्मर भारतीतीयने भी विद्यातीर्थको ही अपना गुरु लिखा है। इससे माछम होता है कि माधवाचार्य, सायण और भारतीतीर्थ—तीनोंने विद्यातीर्थसे ही शिक्षा प्राप्त की थी। विषातीर्थके अवसानके बाद माधवने सम्भवतः भारतीतीर्थ और शहरानन्दसे भी शिक्षा प्राप्त की । इस तरह तीनोंको उन्होंने गुरु माना है।

श्रीमाधवाचार्य विजयनगर राज्यके संस्थापक थे। संवत् १३९२ विक्रमीके लगभग विजयनगरके राजसिंहासनपर महाराज वीर बुकको अभिषिक्त कर ये उनके प्रधान मन्त्री बने। ये उचकोटिके राजनीतिज्ञ और प्रबन्धपटु थे। इन्होंने कितने ही यवन-राज्योंको खायत्तकर विजयनगर राज्यकी सीमावृद्धि की थी। सुप्रसिद्ध विशिष्टाद्धैताचार्य श्रीवेदान्तदेशिकाचार्य इनके समकालीन और बालसखा थे। इनको प्रतिमा सर्वतोमुखी थी। इनके समान विभिन्न गुण-सम्पन्न व्यक्ति बहुत दुर्लभ हैं; इन्होंने जिस कामको हाथमें लिया, उसीमें अपूर्व सफलता प्राप्त की। अब हम इनकी रचनाओंका संक्षिप्त परिचय देनेका प्रयत्न करते हैं—

१—माधवीय धातुवृत्ति—यह व्याकरण-प्रन्य है।
२—जैमिनीय न्यायमाला और उसकी टीका 'विवरण'—
यह पूर्वमीमांसा-सम्बन्धी प्रन्थ है। ३—पराशरमाधव—
यह पराशरसंहिताके ऊपर एक निबन्ध है। स्पृतिशास्त्रका ऐसा उपयोगी प्रन्थ सम्भवतः दूसरा नहीं है।
पराशर-संहितामें जिन विषयोंपर प्रकाश नहीं डाका
गया, वह सब अंश दूसरी स्पृतियोंसे लेकर उसे स्लोकबद्धकर 'पराशरमाधव'में जोड़ दिया गया है। ४—
सर्वदर्शनसंप्रह—इसमें समस्त दर्शनोंका सार संगृहीत
किया गया है। ५—विवरणप्रमेयसंप्रह—यह श्रीप्य-

पादाचायंकृत पञ्चपादिका-विवरणके ऊपर एक प्रमेयप्रधान निबन्ध है । ६-सूतसंहिताकी टीका-सूतसंहिता स्कन्दपुराणके अन्तर्गत है। उसमें अद्वैत वेदान्तका निरूपण है । उसके ऊपर माधवाचार्यने विशद टीका लिखी है। ७-पञ्चदशी--यह अद्वैत वेदान्तका एक प्रधान प्रकरण-प्रन्थ है। इसमें पन्द्रह प्रकरण और प्राय: पन्द्रह सौ श्लोक हैं। ८-अनुभूतिप्रकाश-इसमें उपनिषदों की आख्यायिकाएँ रलोकबद्ध करके संप्रह की गयी हैं। ९-अपरोक्षानुभूतिकी टीका-'अपरोक्षानुभूति' भगवान् शङ्कराचार्यकी रचना है । उसपर विद्यारण्य खामीने बहुत सुन्दर टीका की है। १०-जीवन-मुक्तिविवेक-इस प्रन्थमें संन्यासियोंके समस्त धर्मीका निरूपण किया गया है। ११-ऐतरेयोपनिषदीपिका-यह ऐतरेयोपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है । १२-तै त्तिरीयोपनिष--दीपिका--यह तैत्तिरीयोपनिषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी-रीका है । १३-छान्दोग्योपनिषद्दीपिका-यह छान्दोग्योप-निषद्की शाङ्करभाष्यानुसारी टीका है। ११-बृहदारण्यक वार्त्तिकसार-आचार्य राङ्करके बृहदारण्यक भाष्यपर जो श्रीसुरेश्वरा चार्यकृत वार्तिक है; यह उनका खोकबद एवं संक्षिप्त सार है। १५-शङ्करदिग्विजय-यह भगवान् शङ्कराचार्यका जीवनचरित है और एक उत्कृष्ट कोटिका काव्य है । १६-कालमाधव-यह एक स्मृतिशास्त्र-सम्बन्धी प्रन्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीविद्यारण्य खामीकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। ये एक साथ ही किव और दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और तत्विनष्ठ तथा महान् संग्रही और पूर्ण त्यागी थे। जिस प्रकार ये सफल राजसंस्थापक थे, वैसे ही संन्यासियोंमें भी अप्रगण्य थे। संन्यास प्रहणके पीछे ये श्वक्तेश्वरीमठके राष्ट्रराचार्यकी गद्दीपर आसीन हए थे। इस प्रकार सौ वर्षसे भी अधिक आयु लामकर उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की।

मतवाद

चतुर्विध चेतन—श्रीविद्यारण्य खामी मगवान् राङ्कराचार्यके ही अनुयायी हैं। इनकी गणना अद्वैत-सम्प्रदायके प्रधान आचार्योमें है। अद्वैतवादमें जीव और ईश्वरके खरूपके विषयमें अवच्छेदवाद, आमासवाद, प्रतिबिम्बवाद आदि कई मत प्रचिछत हैं। इनमेंसे विद्यारण्य खामी प्रतिबिम्बवादके समर्थक हैं। इनके मतमें चेतनके चार मेद हैं। xxx पश्चदशीके चित्रदीपमें वे छिखते हैं—

क्दस्थे ब्रह्मजीवेशावित्येवं च चतुर्विधा। घटाकाशमहाकाशौ जलाकाशाश्रसे यथा॥

अर्थात्—'घटाकारा, महाकारा, जलाकारा और मेधाकाराके समान कूटस्थ, ब्रह्म, जीव और ईश्वर-भेद्से चेतन चार प्रकारका है । व्यापक आकाशका नाम महाकाश है। 'घटावच्छिन' आकाराको घटाकारा कहते हैं और मेघके जलमें प्रतिबिम्बित होनेवाले आकाशका नाम 'मेघाकारा' है । इन्हींके समान जो अखण्ड और व्यापक शुद्ध चेतन है, उसका नाम 'ब्रह्म' है । देहरूप उपाधिसे परिच्छिन चेतनको 'कूटस्थ' कहते हैं, देहान्तर्गत अविद्यामें प्रतिविम्बित चेतनका नाम 'जीव' है और मायामें प्रतिविम्बित चेतनको 'ईश्वर' कहते हैं ।' माया और अविद्या, ये दो प्रकारकी प्रकृति हैं, इसल्यि उसके आश्रित जीव अल्पज्ञ और अल्पशक्ति है तया माया रज-तमसे रहित गुद्ध सत्त्वमयी है, इसलिये तदुपाधिक ईखर सर्वज्ञ है । किंतु माया और अविद्या इन दोनोंसे रहित जो शुद्ध चेतन है, वह सर्वथा प्रपञ्चलेश-शून्य है । देहरूप दश्यमान उपाधिके कारण ही ब्रह्म और कूटस्थरूप मेदकी कल्पना की गयी है। किंतु उपाधि तो अविद्याजनित है, इसिलये वस्तुतः उनमें कोई मेद नहीं है। उसीसे ब्रह्म और कूटस्थका मुख्य समानाधिकरण माना गया है और ईश्वर तथा जीवका बाध-समानाधिकरण।

साक्षी तस्व — कर्तृत्व-मोक्तृत्व जीवके ही धर्म हैं,
कृटस्थ केवल साक्षिमात्र है। पञ्चदशीके नाटकदीपमें
इसका वर्णन करते हुए विद्यारण्य खामी लिखते हैं कि
जिस प्रकार नृत्यशालास्थ-दीपकमाला सूत्रधार, पात्र,
दर्शक और रङ्गमञ्च सभीको प्रकाशित करती है और
उन सबके न रहनेपर भी उनके अभावको प्रकाशित
करती रहती है, उसी प्रकार साक्षी भी अहंप्रत्यय
सिद्धि-कर्त्ता, इन्द्रियवृत्ति, बुद्धिवृत्ति एवं विषय—इन सभीको
प्रकाशित करता रहता है तथा उनके अभावमें खयं
देटीप्यमान रहता है।

अविद्याधिष्ठान अद्वैतसिद्धान्तानुसार प्रपञ्चकी जननी अविद्या है। अविद्याके कारण ही सम्पूर्ण प्रपञ्चकी प्रतीति होती है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि वह अविद्या किसके आश्रित है ! इस सम्बन्धमें दो मत हैं। कोई उसे अन्तः करणके आश्रित मानते हैं और कोई ग्रुद्ध चेतनके। विद्यारण्यखामी उसे चेतनके आश्रित खीकार करते हैं। खन्नप्रपञ्चके अधिष्ठानके विषयमें भी इसी प्रकार मतमेद है। कोई अहङ्कारोपिहत चेतनको खन्नका अधिष्ठान मानते हैं और कोई अनवच्छिन चेतनको। इस विषयमें भी विद्यारण्यखामीको द्वितीय मत ही खीकार है। ये कहते हैं कि अहङ्कारोपिहत चेतन देहसे बाहर खन्न-प्रपञ्चका अधिष्ठान नहीं हो सकता। अतः

[१२] अप्पच्य दीक्षित

भगवान् राङ्कराचार्यद्वारा प्रतिष्ठापित अद्वैतसम्प्रदाय-परम्परामें जो सर्वश्रेष्ठ आचार्य हुए हैं, उन्हींमेंसे एक अपय्य दीक्षित भी हैं। विद्वत्ताकी दृष्टिसे इन्हें वाचस्पित मिश्र, श्रीहर्ष एवं मधुसूदन सरखतीके समकक्ष कहा जा सकता है। ये एक साथ ही आल्ङ्कारिक, वैयाकरण और दार्शनिक थे। इन्हें सर्वतन्त्रखतन्त्र कहा जाय तो कुल भी अत्युक्ति न होगी। केवल भारतीय साहित्य ही नहीं, इन्हें विश्वसाहित्याकाशका एक देदीप्यमान नक्षत्र

जिस प्रकार जाग्रदवस्थामें वृत्तिका सम्प्रयोग होनेपर शक्तिके इदमंशाविष्ठिन चैतन्यमें स्थित अविद्या रौप्यप्रतीतिका स्फुरण करती है, उसी प्रकार निद्रादिदोषोपहित अन्तःकरण-वृत्तिका संयोग होनेपर अनविष्ठिन चैतन्यनिष्ठ अविद्या स्वप्न-प्रपञ्चके आकारमें विवर्तित हो जाती है।

साधनविचार-विद्यारण्यस्वामीके मतमें मुख्य साधन सांख्यरूप या विचार है, जो क्रमशः श्रवण, मनन और निदिध्यासन कहा जाता है। इससे पूर्व चित्तशुद्धिके लिये निष्कामकर्म और उपासनाकी भी आवश्यकता है। उपासनाओं में यों तो सभी प्रकारकी उपासनाएँ चित्तशुद्धिमें सहायक हैं, किंतु उनमें निर्गुणो-पासना प्रधान है। निर्गुणोपासनाको इन्होंने संवादी भ्रम कहा है तथा अन्य उपासनाओंका विसंवादी भ्रम। जो भ्रम भ्रम होनेपर भी परिणाममें इष्ट वस्तुकी प्राप्ति करानेवाला होता है, उसे संवादी भ्रम कहते हैं। ब्रह्म अनुपास्य है, अतः यद्यपि वह उपासनाका विषय नहीं हो सकता, तो भी जो छोग मनः-समाधानपूर्वक उसकी उपासनामें तत्पर होते हैं, उन्हें उसकी प्राप्ति हो जाती है। यह क्रम मन्द और मध्यम अधिकारियोंके लिये है। उत्तम अधिकारियोंके लिये तो श्रवणादि ही मुख्य साधन हैं।

कह सकते हैं । मुगलसम्राट् अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँका शासनकाल भारतीय साहित्यका मुवर्णयुग कहा जा सकता है। इस समयमें अलङ्कार, नाटक, कान्य एवं दर्शन, सभी प्रकारके प्रन्थोंका बहुत विस्तार हुआ था। सम्भव है, इस समयकी राजनीतिक मुन्यवस्था ही इसमें कारण हो। अप्पय्य दीक्षित अकबर और जहाँगीरके शासनकालमें हुए थे। इनका जन्म संवत् १६०८ में हुआ था और मृत्यु ७२ वर्षकी आयुमें संवत् १६८० में । इनके जीवनमें जिस साहित्यिक प्रतिभाका विकास हुआ, उसे देखकर चित्त चिकत हो जाता है ।

पहले यह वतलाया जा चुका है कि इनके पितामह आचार्य दीक्षित और पिता रङ्गराजाध्वरि थे। ऐसे प्रकाण्ड पण्डितोंके वंशधर होनेके कारण इनमें अद्भुत प्रतिमाका विकास होना खामाविक था। ये दो भाई थे। इनके छोटे भाईका नाम अचान दीक्षित था। अपपय दीक्षितने अपने पितासे ही विद्या प्राप्त की थी। पिता और पितामहके संस्कारानुसार इन्हें भी अद्वैतमतकी ही शिक्षा मिळी थी, तथापि ये परम शिवभक्त थे। इनका हृदय भगवान् शङ्करके प्रेमसे भरा हुआ था। अतः शैवसिद्धान्तकी स्थापनाके लिये ये प्रन्य-रचना करने लगे। इस उद्देश्यकी पूर्तिके छिये इन्होंने शिवतत्त्वविवेक आदि पाण्डित्यपूर्ण प्रन्थोंकी रचना की। इसी समय इनके समीप नर्मदातीर-निवासी श्रीनृसिंहाश्रम खामी उपस्थित हुए । उन्होंने इन्हें सचेत करते हुए अपने पिताके सिद्धान्तका अनुसरण करनेके लिये प्रोत्साहित किया, तब उन्हींकी प्रेरणासे इन्होंने परिमल, न्यायरश्लामणि एवं सिद्धान्तलेश नामक प्रन्थोंकी रचना की ।

अप्पय्य दीक्षितके पितामह विजयनगर राज्यावीश्वर कृष्णदेवके आश्रित थे, किंतु सं० १६२१ में तालीकोट-युद्धके पश्चात् उस राजवंशका अन्त हो गया था। इस समय दीक्षितकी आयु केवल १५ वर्षकी थी। इस राजवंशका अन्त होनेपर एक नवीन वंशका उदय हुआ, जो तृतीय वंशके नामसे विख्यात है। उस वंशके राजाओंका निर्देश अप्पय्य दीक्षितने किया है। अप्पय्य दीक्षितका विजयनगर-राज्यमें बहुत सम्मान था।

सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजि दीक्षितने अपने गुरुरूपसे शिवभक्त थे तथाप उनकार के निकास के निकास है। कुछ काछतक इन दोनों भी प्रमाण मिछता है। कई र किया के निकास किया था। अप्पय्य दीक्षित विष्णुकी ही वन्दना की है किया था। अप्पय्य दीक्षित विष्णुकी ही वन्दना की है СС-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिवभक्त थे और भट्टोजि दीक्षित वैष्णव थे, तो भी इन दोनोंका सम्बन्ध अत्यन्त मधुर था । ये दोनों ही शास्त्रज्ञ थे, अतः इनकी दृष्टिमं वस्तुतः शिव और विष्णुमें कोई भेद नहीं था ।

कुछ काल काशीमें रहकर दीक्षित दक्षिणमें लौट गये। वहाँ अपना मृत्युकाल समीप जानकर इन्होंने चिदम्बरम् जानेकी इच्छा की। उस समय इनके हृदयमें जो भाव जाप्रत् हुए, उन्हें इन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया है—

चिद्ग्यरिमदं पुरं प्रथितमेव पुण्यस्थलं सुताइच विनयोज्ज्वलाः सुकृतयइच काश्चित् कृताः । वयांसि मम सप्तते हपरि नैव भोगे स्पृहा न किञ्चिद्दमर्थये शिवपदं दिद्दक्षे परम् ॥ आभाति हाटकसभानटपाद्पद्मो ज्योतिर्मयो मनसि मे तहणाहणोऽयम् ।

इस प्रकार दूसरा क्लोक समाप्त नहीं हो पाया था कि इन्होंने श्रीमहादेवजीके दर्शन करते-करते अपनी जीवन-छीछा समाप्त कर दी। यह उनकी जीवनःयापिनी साधनाका ही फल था। मृत्युके समय उनके ग्यारह पुत्र और छोटे भाईके पीत्र नीलकण्ठ दीक्षित पास ही थे। उस समय उन्होंने सबसे अधिक प्रेम नीलकण्ठपर ही प्रकट किया। उनका जो क्लोक अध्रुरा रह गया था, उसकी उनके पुत्रोंने इस प्रकार पूर्ति की—

नूनं जरामरणघोरपिशाचकीणीं संसारमोहरजनी विर्रति प्रयाता॥ मतवाद

दार्शनिक दृष्टिसे अप्पय्य दीक्षित अद्वैतवादी या निर्गुण ब्रह्मवादी थे। सगुणोपासनाको वे निर्गुण ब्रह्मकी उपलब्धिके साधनरूपसे स्वीकार करते हैं। वे यद्यपि शिवभक्त थे तथापि उनकी रचनाओं से उनकी विण्णुभक्तिका भी प्रमाण मिलता है। कई स्थानोंपर उन्होंने भक्तिमाबसे विष्णुकी ही वन्दना की है, तो भी उनका अधिक आकर्षण भगवान् चन्द्रमौलिकी ही ओर देखा जाता है। उन्होंने स्वयं ही कहा है.-'तथापि भक्तिस्त वणेन्दु शेखरे।'

उनके प्रन्थोंसे उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभाका परिचय मिलता है । मीमांसाके तो वे घुरन्वर पण्डित थे । उनकी 'शिवार्कमणिदीपिका' नामकी पुस्तकमें उनका मीमांसा, न्याय, व्याकरण और अलङ्कार-शास्त्र-सम्बन्धी प्रगाद पाण्डित्य पाया जाता है । शाङ्करसिद्धान्तमें वाचस्पति मिश्रने, रामानुजमतमें सुदर्शनने और मध्वमतमें जयतीर्थने जो काम किया है, वहीं काम दीक्षितने शिवार्कमणि-दीपिका नामका पुस्तक रचकर श्रीकण्ठ-सम्प्रदायमें किया। कहीं-कहीं तो दीपिकामें उनकी अपेक्षा भी अधिक मौलिकता है। इस निबन्धनको टीका न कहकर यदि मौलिक प्रन्य कहा जाय तो अत्रिक उपयुक्त होगा। उन्होंने अद्वैतवादी होकर भी द्वैतवादकी स्थापनामें जैसी उदारताका परिचय दिया है, वह वस्तुतः बहुत ही प्रशंसनीय है । जिस प्रकार वाचस्पति छहों दर्शनोंकी टीका करके प्रत्येक दर्शनके सिद्धान्तकी पूर्णतया रक्षा करके अपनी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रताका परिचय दिया वैसी ही स्थिति अप्पय्य दीक्षितकी है। उन्होंने जिस प्रकार शिवार्कमणिदीपिकादिमें विशिष्टा हैतके पक्षका पूर्णतंया समर्थन किया, उसी प्रकार परिमल एवं सिद्धान्तलेशादिमें अद्वैतसिद्धान्तकी पूर्णतया रक्षा की है।

सिद्धान्तलेशमें उन्होंने अद्वैतवादी आचायोंका मतभेदोंका दिग्दर्शन कराया है। अद्वैतवादी आचायोंका एक जीववाद, नाना जीववाद, विम्व-प्रतिविम्ववाद, अवच्छेदवाद एवं साहित्य आदि विषयोंमें बहुत मतभेद है। उन सबका स्पष्टतया अनुभव कर आचार्य अप्पय्य दीक्षितने उनपर अपना विचार प्रकट किया है। सिद्धान्तलेशमें ब्रह्मसूत्रकी तरह चार अध्याय हैं—समन्वय, अविरोध, साधन और फल । इसे शाङ्कर-सम्प्रदायका कोश कहा जा सकता है। इसमें ऐसे बहुत-से प्रन्थ और प्रन्थकारोंका विवरण

है, जिनका इस समय कोई पता नहीं चलता । किंतु उनकी स्थिति-कालके विषयमें कोई उल्लेख न होनेके कारण यह ऐतिहासिक उपयोगकी सामग्री नहीं है ।

सिद्धान्तलेशमें सब आचार्यांके मतोंका केवल उल्लेख मात्र है, उनकी समालोचना करके अपना कोई मत निश्चित नहीं किया गया है। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि खयं अप्पय्य दीक्षितको कौन मत इष्ट था। तो भी अधिकांशमें उन्हें एक जीववादी या विम्ब-प्रतिविम्बवादी कह सकते हैं।

ग्रन्थ-विवरण—अप्पय दीक्षितके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयोंपर १०४ प्रन्थ लिखे थे। वे सब इस समय प्राप्य नहीं हैं। उनमेंसे जो प्राप्य हैं, उनका संक्षित विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है—

अलङ्कार

१-कुचलयानन्द—यह 'चन्द्रालोक' नाम अलङ्कार प्रन्थकी विस्तृत व्याख्या है। २-चित्रमीमांसा—इस प्रन्थमें अर्थचित्रका विचार किया गया है। इसका खण्डन करनेके लिये ही पण्डितराज जगन्नाथने 'चित्र-मीमांसा-खण्डन' नामक प्रन्थकी रचना की थी। २-चृत्तिवार्त्तिक—इस प्रन्थमें केवल अभिधा और लक्षणा दो ही चृत्तियोंका विचार किया गया है। ४-नामसंग्रहमाला—यह प्रन्थ कोशके सदश है। इसमें अनुराग, स्नेह आदि परस्पर पर्यायवाची प्रतीत होनेवाले शब्दोंके तात्पर्यका भेद प्रदर्शित किया गया है।

व्याकरण

५—नक्षत्रवादावली अथवा पाणिनितन्त्रवादनक्षत्र-वादमाला—यह प्रन्थ को इपत्रके समान है। इसमें सत्ताईस सन्दिग्ध विषयोंपर विचार किया गया है। ६—प्राकृतचन्द्रिका—इस प्रन्थमें प्राकृत शब्दानुशासनकी आलोचना की गयी है।

मीमांसा

७-चित्रपुट--यह प्रन्य अप्रकाशित है ।

८-विधि-रसायन—इसमें विवित्रयका विचार है।

९-सुखोपयोजनी-यह विधिरसायनकी व्याख्या है।

१०-उपक्रमपराक्रम—उपक्रम एवं उपसंहारादि वड्विधि लिङ्गसे शास्त्रका निर्णय किया जाता है। इस ग्रन्थमें यह दिखलाया गया है कि उनमें उपक्रम

ही सबसे अधिक प्रवल है।

११-चादनक्षत्रमाला—इसमें पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसाके सत्ताईस विपयोंकी आलोचना है ।

वेदान्त

१३-न्यायरक्षामणि—इसमें अद्वैतसम्प्रदायके आचार्याके मिन्न-भिन्न मतोंका निरूपग है।

१४-मतसारार्थसंग्रह—इसमें श्रीकण्ठ, राङ्कर, रामानुज, मध्य प्रमृति आचार्योंके मतोंका संक्षिप्त परिचय है।

१५-सिद्धान्तलेश—इसमें अद्वैतसम्प्रदायके आचार्योंके भिन्न-भिन्न मतोंका निरूपण है।

शाङ्करसिद्धान्त

१६-न्यायमञ्जरी-यह प्रन्य अप्राप्य है।

मध्यमत

१७-न्यायमुक्तावली—इसपर अप्पय्य दीक्षितने खयं ही टीका भी लिखी है ।

रामानुजमत

१८-नियमयूथमालिका--इसमें रामानुजमतका दिग्दर्शन है।

श्रीकण्ठमत

१९-शिवार्कमिणदीपिका—यह ब्रह्मसूत्रके श्रीकण्ठ-कृत भाष्यकी व्याख्या है । २०-रत्नत्रयपरीक्षा—इसमें हरि, हर और शक्तिकी उपासनाका विषय दिखलाया गया है।

२१-मिणमालिका—यह शिवविशिष्टद्वैतपर हरदत्त-प्रमृति आचार्यांके सिद्धान्तका अनुसरण करनेवाला निवन्य है।

२२-शिखरिणीमाला--इसमें ६४ शिखरिणी छन्दोंमें भगवान् शङ्करके सगुण खरूपका गुणगान है।

२३-शिवतस्विवेक--यह उपर्युक्त शिखरिणी-मालाका व्याख्या-प्रन्य है । इसमें भगवान् शिवकी प्रधानताका प्रतिपादन किया गया है ।

२४-शिवतर्कस्तव इसमें भी श्रुति, स्मृति एवं पुराणादिके द्वारा शिवका प्राचान्य निश्चय किया गया है।

२'५-ब्रह्मतर्कस्तव—यह प्रन्य वसन्तितल्कावृत्तमें लिखा गया है । इसमें भी शिवजीकी प्रधानताका प्रतिपादन किया गया है।

२६-शिवार्चनचित्रका इस निबन्धमें शिवपूजनकी विधिका विचार है । इसके ऊपर दीक्षितने खयं ही वालचित्रका नामकी टीका लिखी है ।

२७-शिवध्यानपद्धति—इसमें पुराणादिसे वाक्य उद्भृत कर शिवजीके ध्यानकी विभिक्ता विचार किया गया है।

२८-आदित्यस्तवरत्न--यह सूर्यके मिपसे अन्तर्यामी शिवका ही स्तव है।

· २९-मध्यतन्त्रमुखमर्दन—इस प्रन्थमें मध्य-सिद्धान्तका खण्डन है ।

३०-यादवाम्युद्यका भाष्य-श्रीवेदान्तदेशिका-चार्यने 'यादवाम्युद्य' नामक काव्य की रचना की थी। यह उसीका भाष्य है।

इसके सिना शिनकर्णामृत, रामायणतात्पर्यसंप्रह, भारत-तात्पर्यसंप्रह, शिनद्वेतनिर्णय, पश्चरात्रस्तन और उसकी व्याख्या, शिवानन्दलहरी, दुर्गाचन्द्रकलास्तुति और उसकी आत्मार्पण आदि निवन्ध भी उनकी उन्कृष्ट कृतियाँ व्याख्या, कृष्णध्यानपद्गति और उसकी व्याख्या तथा हैं। सभी कृतियों ने उनकी विद्वत्ता झलकती है। [१३]

श्रीचित्सुखाचार्य

आचार्य चित्सुखका आविर्माव प्रायः तेरहवीं शताब्दीमें हुआ था। इन्होंने 'तत्त्वप्रदीपिका' नामक प्रन्थमें न्यायछीछावतीकार बल्छमाचार्यके मतका खण्डन किया है, जो वारहवीं शताब्दीमें हुए थे। उस खण्डनमें इन्होंने श्रीहर्षके मतका उद्धरण दिया है, जो इस शताब्दीके अन्तमें हुए थे। उधर चौदहवीं शताब्दीके विचारण्य खामीने इनका अपने प्रन्थमें उल्लेख किया है। इससे माछम होता है कि वे तेरहवीं शताब्दीमें ही हुए थे। इनके जन्म-स्थान आदिके विषयमें कहीं कोई उल्लेख नहीं मिछता। इन्होंने 'तत्त्वप्रदीपिका' के मङ्गरू चरणमें अपने गुरुका नाम ज्ञानोत्तम छिखा है।

जिन दिनों चित्सुखाचार्यका आविर्भाव हुआ था, उन दिनों पुन: न्यायमतका जोर बढ़ रहा था।

> [१४] भद्रोजि दीक्षित

अचार्य भट्टोजि दीक्षित सुप्रसिद्ध वैयाकरण थे। इनकी रची हुई वैयाकरण सिद्धान्तकौ मुदी और प्रौढमनोरमा इनकी दिगन्तव्यापिनी अक्षुण्ण कीर्तिकौ मुदीका विस्तार करनेवाळी हैं। वेदान्तशास्त्रमें ये आचार्य अप्पय्य दीक्षितके शिष्य थे तथा इनके व्याकरणके गुरु प्रक्रियाप्रकाशकार श्रीकृष्ण दीक्षित थे। मट्टोजि दीक्षितकी प्रतिभा असाधारण थी। इन्होंने मनोरमामें अपने गुरुके मतका खण्डन किया है। एक वार शास्त्रार्थ होते समय इन्होंने पण्डितराज जगनाथको म्लेच्छ कह दिया था। इससे पण्डितराजका इनके प्रति स्थायी वैमनस्य हो गया और उन्होंने मनोरमाका खण्डन करनेके लिये मनोरमाकुचमर्दन नामक प्रन्थकी रचना की। पण्डितराज उनके गुरु कृष्ण दीक्षितके पुत्र वीरेश्वर दीक्षितके शिष्य थे।

द्वादरा राताब्दीमें श्रीहर्षने न्यायमतका खण्डन किया था । अब तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें बङ्गेशने हर्षके मतको काटकर न्यायमतका प्रचार किया । दूसरी ओर द्वैतवादी वैष्णव आचार्य भी अद्वैतमतका खण्डन कर रहे थे । ऐसे समयमें चित्स्रखाचार्यने अद्वैतमतका समर्थन और न्याय आदि मतोंका खण्डन कर शाङ्कर-मतकी रक्षा की । इन्होंने इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये 'तत्त्वप्रदीपिका'. 'न्यायमकरन्द'की टीका 'खण्डनखण्डखाद्य' की टीका लिखी। तत्त्वप्रदीपिकाका दूसरा नाम चित्सुखी भी है । अपनी प्रतिभाके कारण चित्सुखाचार्यने थोड़े ही समयमें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। चित्सुख भी अद्वैतवादके स्तम्भ माने जाते हैं। परवर्त्ती आचार्योने उनके वाक्योंको भी प्रमाणके रूपमें उद्धृत किया है।

भद्दोजि दीक्षितके रचे हुए प्रन्थोंमें सिद्धान्तकौमुदी और प्रौढ़मनोरमा जगत्प्रसिद्ध हैं । सिद्धान्तकौमुदी पाणिनीय व्याकरणसूत्रोंकी सोदाहरण वृत्ति है और मनोरमा सिद्धान्तकौमुदीकी व्याख्या है । इनका तीसरा प्रन्थ 'शब्दकौस्तुम' है । इसमें इन्होंने पातञ्जल महामाष्यके विषयका युक्तिपूर्वक समर्थन किया है । चौथा प्रन्थ दैयाकरणभूत्रण है । इसका प्रतिपाद्य विषय भी व्याकरण ही है । इन व्याकरण-प्रन्थोंके अतिरिक्त इन्होंने तत्त्वकौस्तुम और वेदान्ततत्त्वविवेकटीकाविवरण नामक दो वेदान्तप्रन्थ भी रचे थे। इनमें केवल तत्त्वकौस्तुम प्रकाशित हुआ है । इसमें द्वैतथादका खण्डन किया गया है ।

भगवत्तत्त्व-दर्शनके आधुनिक साधक और व्याख्याता

[मगवत्तत्त्व एक दुर्बोध तत्त्व है । इसकी सम्यक् अनुभूतिके छिये अनवरत साधनाकी सतत आत्मान्वेषण एवं निद्ध्यासनकी आवश्यकता होती है । हम आस्तिकजनोंका दृढ़ विश्वास है कि हमारे वेद ही इस तत्त्वके आदि उद्गाता अथ च प्रधान 'आकर'-ज्ञानराशि हैं । वेद 'अपौरुषेय' हैं; क्योंकि 'शब्द' नित्य है । जो भारतीय दर्शन वेदोंको अपौरुषेय नहीं मानते और शब्दकी नित्यताको भी स्वीकार नहीं करते, वे भी वेदोंको ईश्वरकृत मानकर उनके 'अभ्यहितस्त्व' (प्रमाण-विषयक प्राथमिकता)में सन्देह नहीं करते । अस्तु !

हमारे प्राचीन ऋषियोंने भगवत्तत्वकी जिज्ञासामें आजीवन तपश्चरण करके उन नित्य श्रुतिमन्त्रोंका साक्षात्कार किया और उन्हींके अर्थ-विस्तार-हेतु, जन-सामान्य एवं संसारासक्त मनुष्योंपर कृपा करके उपबृंहण-खरूप, स्मृति-पुराण आदि व्याख्या-विधायक प्रन्थोंकी रचना की। इस 'व्याख्यासाहित्य'की मूल प्रवृत्ति भी हमारे यहाँ अनादि ही मानी जाती है। जैसे हमें यह ज्ञात नहीं कि इस परिहस्यमान संसार-चक्रका चङ्कमण (घूमना) कव आरम्भ हुआ, उसी प्रकार तत्त्वजिज्ञासारूप ज्ञानकी उद्भूति कब हुई, इसे भी हम तिथिनिर्देश-पूर्वक बतलानेमें अक्षम हैं। यही कारण है कि ज्ञानक्षेत्रमें आर्ष विचारधाराने तात्विकताकी तुल्नामें ऐतिहासिक दिश्को उतना महत्त्व नहीं दिया।

समयके साथ आस्था और विचारोंमें भी परिवर्तन होता है। भारतीयोंने सनातनधर्म और भगवत्तत्वकी सूक्ष्म वातोंको जब मात्र रूढिके रूपमें प्रतिष्ठित कर दिया और तत्त्वविषयक सूक्ष्मेक्षिका-(वारीकीसे देखने-)से पृथक् छड़ने-झगड़नेकी ही परम्परा आरम्भ कर दी, तब इसी देशमें वेदविरोधी अनेक शाखाओंका उदय हुआ। आधुनिक कालमें विदेशियोंकी चिरकालिक पराधीनतामें पड़कर हमने संस्कृति, धर्म और दर्शनकी बची-खुची विरासत भी खो दी। हमपर शासन करनेवाले पाश्चात्त्योंने हमारी इस दुवलताका लाभ उठाया और हमारे वेदों, पुराणों, स्मृतियों आदिके खाभीप्सित संस्करण और व्याख्याग्रन्थोंका प्रकाशन आरम्भ कर दिया। 'आर्य अभियान,' 'विकासवाद' जैसे कल्पनाश्चित सिद्धान्तों तथा नयी सम्यताकी चकाचौंध उत्पन्न कर ये हम भारतीयोंको अपने वेदों और तज्जन्य संस्कृतिक वित्रयमें संशयापन्न कि वा व्यामुग्ध करने लगे। उनके ही पदचिह्नोंपर चलनेवाले आधुनिक भारतीयोंने उन्हींके स्वरमें खर मिलाना आरम्भ कर दिया। फलतः चिरकालसे संचित भारतीय भावना और सची राष्ट्रियता—जिनको शिक्षाके द्वारा संवर्धित होना चाहिये था, क्रमशः उसीके माध्यमसे भारतीय मिलाक्समें ही सिद्ध होने लग गयी।

ऐसी विषम स्थितिमें तत्कालीन भारतके जिन मनीषियोंने धर्म-दर्शनके भटकते अश्वकी लगाम थामकर उसे 'संस्कृति-स्यन्दन'से जोड़नेका कार्य किया, उनके पवित्र चरितका चिन्तन-मनन हमारे जीवनको कुळ दिशा दे सकता है—-यह सोचकर उनमेंसे कुळके संक्षिप्त जीवन-चरित यहाँ दिये जाते हैं—]

(?)

योगिराज अरविन्द

श्रीअरविन्दका जन्म पंद्रह अगस्त सन् १९०२ ई० में कलकत्ताके प्रतिष्ठित चिकित्साधिकारी श्रीकृष्णधन घोषके यहाँ हुआ था। उन्नीसवीं राताब्दीके परतन्त्र भारतके महत्त्वाकाङ्क्षी पिताने 'कहीं पुत्रको इस असम्य-अविकसित देशकी हवा न लग जाय'—यह सोचकर सात वर्षकी अवस्थामें ही इन्हें पढ़नेके लिये इङ्गलैण्ड मेज दिया। कुशाप्रबुद्धि अरविन्दने वहाँ आरम्भसे लेकर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयकी उपाधि 'ट्रिपास' तक शिक्षा प्राप्त की।

किशोरावस्थामें ही इन्हें अंग्रेजीके साथ-साथ यूरोपकी अन्य भाषाओंका भी ज्ञान हो गया और उन भाषाओंमें काव्य-रचना करके इन्होंने कई पुरस्कार भी प्राप्त किये। उच्चतम शिक्षा प्राप्तकर ये आई० सी० एस्०' (इण्डियन सिविल सर्विस)की परीक्षामें सिम्मिलित हुए, किंतु तबतक इस सम्यता और संस्कृतिसे ऊच जानेके कारण इन्होंने जान-बूझकर घुइसवारीकी परीक्षा नहीं दी और उस समय सम्मुख प्रस्तुत उच्चतम पदकी उपेक्षा कर दी। उस समय वड़ौदाके नरेशने इनकी प्रतिभासे प्रभावित होकर अपने राज्यके एक उच्च पदपर आमन्त्रित किया। ये भारत आ गये और वड़ौदा कालेजमें फांसीसी और अंग्रेजी साहित्यके प्रवक्ता वनकर काम करने लगे।

भारत आते ही इनका स्वदेशके प्रति सुप्त अनुराग जाग पड़ा। अंग्रेजी संस्कृतिमें पले अरविन्द घोषको वह संस्कृति काटने-सी छग गयी और तब इन्होंने अत्यन्त अध्यवसाय-पूर्वक भारतीय धर्मदर्शन, संस्कृति, साहित्य तथा इतिहास आदिका गहन अध्ययन किया। इसी समय धीरे-धीरे योगाभ्यासका क्रम भी आरम्भ हो गया । अब इनकी चेतनामें 'विश्वगुरु भारत'की कल्पना जगने लगी; किंतु इसके लिये आवश्यक था कि भारत पहले पराधीनतासे मुक्त हो । इसिलये प्रोफ्रेसर अरविन्द घोषने देशकी खतन्त्रताके लिये राज-नीतिक मञ्ज्ञका सूत्रधार बनना आरम्भ किया । अव उनका प्रमुख कार्य हो गया राष्ट्रकी स्वतन्त्रता-हेत् भारतीय चेतनाका वैचारिक उद्बोधन, जिसे इन्होंने 'वन्दे मातरम्' और 'कर्मयोगिन्' नामक दो पत्रिकाओंके माध्यमसे सम्पन्न किया; किंतु अरविन्दकी समस्त राजनीति और राष्ट्रियताके मूलमें इनकी एक गहन आध्यात्मिक अनुभूति ही कार्य कर रही थी। इनके हृदयमें प्रतिपछ यह बोध जाप्रत् हो रहा था कि 'भारतमाता एक भूखण्ड-मात्र नहीं, वह एक राक्ति है, और वह राक्ति

भागवती शक्ति है। उस शक्तिकी उपासनाके रूपमें इनकी गतिविधियाँ क्रान्तिका सन्देश फैलाने लगी। अंग्रेजोंको इस 'शाक्त उपासक' के वर्च लसे भय होने लगा; अतः सन् १९०८में मिथ्या अभियोग लगाकर उन्हें वंदी बना लिया गया। अलीपुर जेलमें विभिन्न यातनाओं के साथ इन्हें एक वर्षतक कालकोठरीमें रक्खा गया और इस कारावासने उन्हें कंसकी कारामें पैदा हुए कुणाके अत्यन्त निकट लाकर इन्हें मानो सखा बना दिया।

भगवत्कृपा हुई । अभियोग प्रमाणित न हो सका और कारागारसे मुक्ति मिछी । जनसमूहने इनका खागत किया और अरविन्दने प्रत्युत्तरमें संदेश दिया कि एकमात्र भगवान्के हाथोंमें समर्पित कर देनेपर ही भारतका कल्याण होगा ।

सन् १९१० में अरविन्द पाण्डिचेरी पधारे और एकान्त-वास करते हुए योगसाधनामें संलग्न हो गये। इसी साधनाके सुवासित पुष्पोंके रूपमें इनकी लेखनीने धर्म और दर्शनके अभूतपूर्व कतिपय प्रन्थरत्न उद्भावित किये।

अरिवन्दको योगकी अत्युच सिद्धि २४ नवम्बर, १९२६को प्राप्त हुई । तत्रसे सन् १९५० तक अनवरत विश्वात्मयोगकी साधनामें इनका जीवन-दीप एक ही कक्षमें स्थित होकर सम्पूर्ण जगत्में ज्योति विखेरता रहा और ५ दिसम्बर, १९५० को निर्वाणकी मुद्रामें उस परमञ्योतिसे मिल गया, जिसके प्राप्ति-हेतु उन्होंने अवतक इतनी साधना की थी।

योगिराज अरविन्दके जीवनवृत्तकी इन घटनाओंसे परिचय प्राप्त करना 'भगवत्तत्त्व'की साधनाका एक सोपान प्राप्त कर लेना है। अतएव साधनापथके पथिकोंके लिये उसका अनुस्मरण एक मंजुल पाथेयकी भाँति आज भी हृद्य तथा स्पृहणीय है। मगवत्तत्त्वदर्शी योगिराज अरविन्दकी ज्योतिमें भगवत्तत्त्वका अन्वेषण किया जा सकता है।

(?) स्वामी रामतीर्थ

खामी रामतीर्थका जन्म पंजावके मुखीवाला नामक गाँवमें एक उत्तम गोखामी ब्राह्मणके घर सन् १८७३की दीपावलीको हुआ था । दैवका विधान, जन्मके कुछ ही दिनों वाद आपकी माताका खर्गवास हो गया और आपके पाछन-पोषणका भार आपकी बुआपर आ पड़ा। बुआ बड़ी ही साध्वी तथा मक्तिमती महिला थीं; वे बालक 'तीर्थराम'को लेकर कथाकीर्तन तथा मन्दिरों आदिमें जातीं और बालकको भगवान्के श्रीविग्रहों, पूज्य संत-महात्माओंक दर्शन करातीं । तीर्थरामके ये संस्कार क्रमशः ददः-दृक्तर होते चले गये।

गाँवकी पढ़ाई समाप्तकर ये 'गुजराँवाठा' आये और वहाँ भक्त धन्नारामकी देख-रेखमें आगेकी

of Humanity, On the Ved, Foundations of Indian Culture और 'सावित्री' महाकाल्य इत्यादि ।

शिक्षा आरम्भ हुई । घरकी आर्थिक स्थिति शोचनीय थी । समयपर अत्यन्त आवश्यक मोजन भी नहीं मिलता था। फिर भी तीर्यरामके अध्ययनक्रममें कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं हुआ । भूखसे व्याकुछ प्राणेन्द्रियोंसे पृथक् परिपूर्ण आत्मदर्शनसे छके, आत्मतत्त्वकी ज्योतिसे यहीं इनका प्रथम साक्षात्कार हुआ । तीर्थराम गणितके विद्यार्थी थे, गणितके नियमोंकी ध्रुवसत्यता एवं नियमितताने इन्हें किसी सत्ताके प्रति उन्मुख होनेको वाध्य कर दिया । इनका निरुचय भी गणितके उत्तरकी ही तरह अटल होने लगा । दुवले-पतले विद्यार्थीमें आत्मवलकी कर्जा पूर्ण होने लगी।

इन्हीं दिनोंकी एक घटना है। गणितके प्रश्नोंको हल करते हुए रात्रिमें इन्होंने संकल्प किया कि---- जब-तक प्रश्न हल नहीं हो जायेगा, तबतक शयन-विश्राम कुछ भी नहीं करना है।' ये प्रयत्नपूर्वक ज्यों-ज्यों हल खोजते, त्यों-त्यों प्रश्नका सही उत्तर दूर भागता जा रहा था। अन्तमें इन्होंने महासंकल्प किया कि 'यदि प्रातः ब्राह्ममुहूर्ततक मैं प्रश्नका हल नहीं खोज पाऊँगा तो अपने इस मस्तकको धड़से पृथक कर दूँगा। इनका यह निश्चय अनुकरणीय तो नहीं है, पर इससे इनका अदम्य आत्म-विश्वास द्योतित हुए विना नहीं रहता । आखिर, प्रश्नका हल नहीं निकला; उधर प्राचीमें परिहासकी मुद्रामें ही मानो ऊषा मुस्कराने लगी । अटल निश्चयी 'राम' ने अपने पणपर आँच नहीं आने दी । तुरंत एक तीक्ष्ण अस्त्र (जिसे इन्होंने पहले ही अपने पास रख लिया था) उठाया और अपना संकल्पित कार्य करने-हेतु छतपर आ पहुँचे । विना किसी शैथिल्यके अपनी ही गर्दनपर अपना ही सशस्त्र हाय उठा ... और आश्चर्य ! नेत्रोंके सामने प्रश्नका सही

* The Life of Divine, Synthesis of Yoga, Essays on the Gita, The Human Cycle, The Ideal

उत्तर ज्योतिर्मयी लिपिमें चमक गया । प्राचीमें ऊषाकी अरुणिमा अभी तरुण नहीं हो पायी थी---अवधिके रूपमें स्तीकृत प्रभात अभी भी कुछ पग दूर था। 'तीर्थराम' यहीं परमात्मतत्त्वसे अभिभूत हुए । अब इनका भीं 'त्' है,---'त् ही है' इस रूपमें वदल गया। साधनाके सोपान क्रमशः व्यतीत होने लगे । तीर्थरामने गणितमें एम्०ए० किया और उसी कालेजमें प्रोफेसर हो गये । इनमें श्रीकृष्ण-प्रेमका नशा लगा । 'राबी' नदीके तटपर घंटों एकान्तमें बैठकर भगवत्रेममें छके रहते; जब होशमें आते तब 'हा कृष्ण ! हा कृष्ण !! कहकर रोने-तड़पने छगते। छुट्टियोंमें वृन्दावन पहुँचकर प्राणसखाके प्रणयकी पुण्यतीयामें निर्भर अवगाहन करते हुए अव तीर्थराम विश्वको पावन कर देनेवाले 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'के उत्कृष्ट निद्र्शनके रूपमें खयं एक भावतीर्थ वन चुके थे । आगे चलकर इनका यह तीर्थत्व भी 'क्रवल' राममें अन्तर्जीन हो गया। अब ये राम ही राम थे-राम बादशाह ! इनके छिये अपने ख़रूप 'रामत्व'कं अतिरिक्त और कुछ भी शेप नहीं था।

उपनिषद् और वेदान्तके अन्यान्य ग्रन्थोंके अनुशीलनके साथ-साथ उत्तराखण्डमें एकान्त-सेवनका चस्का वहा। सन् १९०० ई०में 'तीर्थराम' नौकरी आदि छोड़-छाड़कर संन्यासी—'खामी रामतीर्थ'—हो गये। गङ्गामें यमुनाका अद्भुत मिलन—'मैं सूर्य हूँ—मैं ज्योति हूँ, मैं अध्याहत-अनाहत ओंकार हूँ'—यह अनुभूति प्रतिपल अपनी अलैकिक विभा विखेरने लगी।

लोगोंके विशेष आग्रहपर 'विश्वधर्म परिषद्'में सम्मिलित होने स्वामीजी जापान और अमेरिका भी गये। इनकी मस्ती मुखकारिणी थी। सारे, जापान और अमेरिकामें आप एक भगवज्ज्योतिके रूपमें समादत हुए। अमेरिकी पत्रोंने आपको 'वर्तमान ईसा' की संज्ञासे अभिहित किया। ढाई वर्ष विदेशोंमें विताकर

आप पुनः उत्तराखण्ड लौट आये । सन् १९०६ की दीपावलीके ही दिन गङ्गाकी प्रखरधारामें बहता हुआ खामीजीका दिव्य जीवन-दीप, अखण्ड ओंकार-ज्योतिसे समीकृत हो गया । खामीजी पार्थिव शरीरको त्यागकर दिव्य ज्योतिके देशमें प्रविष्ट हो गये । अब हमारे लिये उनकी पवित्र जीवनकथा और उनके महत्त्वशाली उपदेश उनकी स्मृतिके प्रधान उपकरण हैं । उनकी वीसों पुस्तकें ब्रह्मज्योति और भगवत्तत्वकी अनुभूतिकी छलकती वाणीमें उद्शैलीमें पटनीय हैं ।

(3)

महामना पूज्य पं० मदनमोहनजी मालवीय

हिन्दूधर्मके अर्वाचीन ऋषि, हिन्दूविश्वविद्यालयके पुण्यसंस्थापक महामनीषी, परमभागवत महामना पूज्यपाद पण्डित मदनमोहन मालवीयकी पुण्यकीर्तिसे कौन परिचित न होगा ! जीवनभर विश्वरूप भगवान्की सेवा-उपासनाद्वारा जिन्होंने भगवत्तत्त्वका सामान्यजन-सुल्भ खरूप विवृत किया, जो संघर्षकी भीषण परिस्थितियोंमें इ्वती भारतीय संस्कृति नौकाके कर्णधार वने और भगवान्के 'भूमा' खरूप जगत्को जिन्होंने अनवरत अपनी उपासनाका अर्चा-विग्रह खीकार किया, उन लोकोत्तर मनीषीके दिगन्तव्यापी धवल यहाको आज भी कौन-सा सच्चा भारतीय होगा जो विस्मृत कर द ।

आपका जन्म प्रयागमें वर्तमान भारतीभवनके पास
एक प्रसिद्ध भागवतमर्भज्ञ नैष्ठिक ब्राह्मणकुलमें सं०
१९१८ की पौष कृ० ८, बुधवार अर्थात् २५ दिसम्बर
१८६१ ई० को हुआ था। (अद्वारह सौ इकसठ
वर्ष पहले 'बैथलहम'में ठीक इसी दिन महात्मा ईसाका भी
जन्म हुआ था।) इनके पिता पं० श्रीव्रजनाथ भी प्रसिद्ध
भागवत-कथावाचक और भगवद्भक्त थे। राधाकृष्णकी
लिलत उपासना और श्रीमद्भागवतके पारायणमें ही
उनका अधिकांश समय बीतता था। जीविकाका साधन
भी अयाचित वृत्तिजन्य कथावाचनका पारिश्रमिक ही

था; नि:स्पृही ब्राह्मण-परिवारने भगवद्विश्वासके वलपर कभी संप्रह-वृत्तिको महत्त्व नहीं दिया। अस्तु!

मदनमोहन इनके सात पुत्र-पुत्रियों मेंसे पाँचवें थे। प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही इनके पिताजीद्वारा सम्पन्न हुई। फिर 'धर्मज्ञानोपदेशपाठशाला' तथा 'विद्याधर्मप्रवर्धिनी' आदि संस्कृत पाठशालाओं में अध्ययन किया। विद्याधर्मप्रवर्धिनी पाठशालाके इनके गुरु पं० देवकीनन्दनजी, इन्हें सात वर्षकी अवस्थामें ही धर्मविषयक न्याख्यान देना सिखाने लगे थे। सात वर्षका वालक सारे राष्ट्रकी नींका खेनेका पहला पाठ त्रिवेणी-संगमपर सीखने लगा। नव वर्षमें उपनयन सम्पन्न हुआ और युवक न होते-होते विवाह भी कर दिया गया।

घरकी आर्थिक स्थिति कमजोर होनेपर भी महत्त्वाकाङ्की मदनमोहनने गवर्नमेन्ट हाईस्कूलसे १८ वर्षकी अवस्थामें 'एन्ट्रेन्स' परीक्षा पास कर ही । अव इनका मन कालेजमें पढ़नेको हुआ; किंतु दरिद्रता मुँह वाये खड़ी थी। आखिर, पिताने हिम्मत न हारी और मदनमोहनका नाम 'म्योर सेन्ट्रल कालेज'में लिखा दिया। इस प्रकार क्रमशः बी० ए० और एल्० एल्० बी० हुए । कुछ दिन स्कूलमें अध्यापक रहे और कुछ दिन वकालत भी की। सरकारी नौकरी करते हुए ही वे कांग्रेसमें सम्मिलित हुए थे। सन् १८८५ में 'भारतीय राष्ट्रिय महासभा'की स्थापना हुई, जिसमें मालवीयजी अपने निर्मीक गुरु पं० आदित्यराम भद्दाचार्यके साथ सन् १८८६ ई० में कांग्रेसकी बैठकमें पहुँचे। वहींसे मालवीयजीका जीवन वदला । अपनी अहर्निराकी लोकयात्रा पूरी करते हुए वे राष्ट्रकी प्रगतिके साथ जुड़ गये । कुछ दिन 'कालाकांकर'के महाराजके अनुरोधपर 'हिन्दुस्तान' पत्रका तथा त्रादमें 'अम्युदय'का सम्पादन भी किया।

भारतकी भारती हिंदी श्री एक सेवा-शृङ्खलाके रूपमें वहुत दिनोंतक नागरी-प्रचारका कार्य भी करते रहे। वादमें 'हिंदी-साहित्य सम्मेलन'का सभापतित्व मी किया और भारतकी सर्वाङ्गीण आराधनामें जुट गये। इनकी देशसेवाका प्रधान खर धर्ममूलक था। भारतीय संस्कृति और हिंदूधर्मको ये हमेशा एक दूसरेका पर्याय ही मानते रहे। सन् १९०६ ई०में प्रयागके कुम्भके अवसरपर माल्त्रीयजीने सनातनधर्मका बिराट् अधिवेशन कराया और यहीं हिंदूबिश्विचालयकी स्थापनाका निश्चय भी हुआ। उसके बाद अनवरत लगन और निष्टासे विभिन्न राजा-महाराजाओं, मनीषियों आदिकी सहायतासे अखिल विश्वमें हिंदूधर्म और दर्शनके प्रचार-प्रसार-हेतु ४ फरवरी सन् १९१६को काशीमें गङ्गाके पावन कूलके अत्यन्त संनिकट 'हिंदूबिश्विचालय'का शिलान्यास सम्राट्के प्रतिनिधि और भारतके गवर्नर जनरल लाई हार्डिङ्गदारा सम्पन्न हुआ।

आज यह विश्वविद्यालय अपनी अनन्तानन्त शाखा-प्रशाखाओं के रूपमें सम्पूर्ण संसारमें एक बोधिवृक्षके रूपमें समादत है। किंतु इसके मूलमें महामनाकी वह छोटी-सी आस्था ही अनुप्राणित है, जिसे भगवत्तस्व-बोधकी संज्ञा दी जाती है। ये भगवत्तस्वके साधनको धर्म मानते थे और धर्म इनका विश्वजनीन सनातन था, जिसके तास्विक विवेचन भगवत्तस्वपर ही आश्रित हैं।

महामना परम भागवत थे। गीता, महाभारत और श्रीमद्भागवत इनके जीवनके आधारभृत, नित्य सहचर थे। आजीवन एक सरछ, नि:स्पृह, सनातनी ब्राह्मणका जीवन जीते हुए भी माछवीयजीने, तत्काळीन राजनीति और समाज-सेवाके क्षेत्रमें वे कार्य कर दिखाये, जिन्हें बहुत कम छोग कर पाते हैं। इनका जीवन करुणाकी एक अजस्र स्रोतिखनी था। मानवमात्र किंवा प्राणिमात्रके प्रति इनकी 'घट-घट व्यापक राम'की भागवती दृष्टि, सतत सेवाहेतु जाप्रत् थी। ये विश्वकत्त्याणकारी शिव थे, शिवकी ही अनवरत उपासना करते हुए ११ नवम्बर सन् १९४६ ई० में ये 'शिव-तत्त्व'में ही छीन हो गये।

पर उनकी कृतियोंकी कीर्तियाँ आज भी जीवित हैं; और कीर्तिर्यस्य स जीवित के अनुसार वे भी अमर हैं।

उनके जैसा वीतस्रह, कर्मयोगी और भगवत्तत्वदर्शी गृहस्थ सन्त होना नितान्त दुर्छभ है । आज उनकी स्मृति, उनके विचार एवं उनका यशोविग्रंह ही हम-सबका मार्गेंदर्शक-सम्बछ है।—'विनय! एम्० ए०

(8)

त्रह्मलीन स्वामी श्रीअच्युतग्रुनिजी महाराज िक]

स्वामी श्रीअच्युतमुनिजीका पूर्वाश्रमका नाम पं० श्री-दौलतराम शास्त्री था । इनका अध्ययन विशेषरूपसे काशीमें ही हुआ था । ये संस्कृत-त्र्याकरणके प्रकाण्ड विद्वान् थे । लाहौरमें डी० ए० बी० कालेजमें संस्कृताध्यापक थे। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी वे परम एकान्तसेवी एवं महान् चिन्तक थे । अपने कार्यसे निवृत्त होकर जब इन्हें समय मिल्ला तब ये सीघे रावी नदीके तटपर पहुँच जाते; वहीं घंटों भगविचन्तन करते थे।

सेवानिवृत्तिके अनन्तर गृहस्थाश्रमका त्यागकर गढ़मुक्तेश्वरसे लेकर फतेहगढ़तक पैदल ही विचरण करते थे। भिक्षावृत्तिसे जीवन-निर्वाह होता था। भिक्षा-प्राप्तिके लिये दूर-दूरतक जाना पड़ता था। भिक्षा कभी नहीं भी मिलती थी। फिर विद्यार्थिंगण अध्ययनके लिये इनके निकट आने लगे तो भिक्षा ले आनेका कार्य उन्होंने सँभाल लिया।

एक बार बहुत अधिक बीमार पड़े तो आतुर-संन्यास ले लिया । नाम अच्युत पड़ा । भगवा, लंबा चोंग पहनते थे । दण्डग्रहण नहीं किया ।

गङ्गाजीके तटपर कई जमींदारों, तालुकेदारोंने तत्-तत् स्थानोंमें कई कुटियोंका निर्माण करा दिया था। कुछ दिन रहनेके बाद उनका परित्यांग कर दिया

करते थे —कहते थे जब हम इनपर मोह करेंगे तो हममें और गृहस्थोंमें अन्तर ही क्या होगा। उनमें कुछ कुटियाँ अब भी विद्यमान होंगी।

कुछ समयके वाद खुर्जीके ख्यातनामा सेठ गौरीशंकर गोयनकासे, जिनका अनूपशहरसे भी सम्बन्ध था, अनूपशहरमें ही श्रीखामीजी महाराजकी मेंट हुई । सेठजी अध्ययनाश्रमी, संस्कृतसेवी तथा साधु-सन्त-महापुरुषोंके सेवक थे । वे खामीजी महाराजसे अध्ययनमें रत हुए । इसी अवसरपर वम्बईके प्रसिद्ध सेठ जमनाछाछ बजाजका श्रीखामीजीके निकट अध्ययनार्थ आगमन हुआ । अनूपशहरके ही श्रीसेठ गौरीशंकरजीके मित्र पं० रामशंकर मेहता तथा पं० गङ्गाप्रसाद मेहता (तत्काछीन काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार) भी अध्ययनमें सम्मिछित हुए । वेदान्तमें पञ्चदशी, दग्दश्यविवेक, रत्नप्रभा, भामतीसहित ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य एवं भागवत आदिका पाठ चळता था ।

सेठ गौरीशंकर गोयनकाने श्रीखामीजीके गङ्गामें निवासके छिये दो नावें वनवा दी थीं । भोजनकी सुव्यवस्थाके छिये एक पाचक तथा एक कारिन्दा नियुक्त कर दिया था।

अनूपशहर, रामघाट, नरवर, कर्णवास, राजघाट इत्यादि स्थानोंमें गङ्गाजीके ही सुरम्य सैकतमय मध्यमें उनका निवास होता था । अध्ययनाध्यापनकालके अतिरिक्त वे बालूमें एकान्तमें बैठकर ब्रह्मचिन्तन करते थे।

खामीजीके शिष्योंमें एक विजनौर-निवासी श्रीरामावतार शर्मा भी थे। उन्होंने खामीजीसे अध्ययन कर कई प्रन्थोंका अनुवाद एवं विरचना की थी। उनमें गीतापर भी उनका उन्कृष्ट लेख विद्यमान है।

ये प्रायः कहा करते थे— नैषिक सुख तो कूकर-ज्ञाकर सभी योनियोंमें भी प्राप्त होता है; किंतु ब्रह्मज्ञान केवल मानवमें ही सम्भव है । वे उपदेशार्थ भागवत-(११ । ९ । २८) का यह क्लोक सुनाया करते थे-स्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या बृक्षान् सरीस्पपशून् खगदंशमत्स्यान्। तस्तेरतुष्टहृद्यः पुरुषं विधाय व्रह्मावलोकधिषणं मुद्माप देवः॥ भगवान्ने अपनी सर्वोत्कृष्ट अजया शक्तिसे विविध

शरीर वनाये । बहुविध वृक्ष, साँप, मृगादि पशु, भाँति-भाँतिके पक्षी, डाँस, मक्खी, मच्छर आदि तथा मत्स्य, मकर आदि जलजीव वनाये; पर उन्हें सन्तोष नहीं हुआ । मनुष्यकी रचना कर उन्हें महान् आनन्द हुआ; क्योंकि उसमें ब्रह्मज्ञानकी बुद्धि है।' इसीलिये मन्ष्यजीवनकी सार्थकता ब्रह्मज्ञानमें ही है।

अन्तसमयमें ये काशी आ गये । शहरसे वारह-तेरह मीछ दूर सेठ गौरीशंकर गोयनकाजीने बहुत बड़ी गोचरभूमि गोचारणके छिये खरीद रखी थी; उसीके एक टीलेपर कुटिया एवं एक सुन्दर पक्का कुआँ वनवाकर वहीं निवास किया । सेठ गौरीशंकरजीकी ओरसे इनके खान-पान, भृत्य और कारिन्दाका जो व्यय वँघा था, वह वरावर चलता रहा । काशी आकर नावें उन्होंने श्रीगौरीशङ्करजीको सौंप दीं।

काशी आनेपर काशी-हिन्द्विश्वविद्यालयके कतिपय विद्वानों एवं छात्रोंका भी उनके साथ सम्पर्क हो गया। वे उन्हें कई वार काशीहिन्दूविश्वविद्यालय ले गये एवं उनके व्याख्यान कराये । काशी शहरमें भी उनके कई व्याख्यान हुए।

कलकत्तेके सम्मानित उद्योगपति सर हरीराम गोयनकाजीने, जो काशीवास करते थे, काशीमें इनके सत्सङ्गका लाभ उठाया। सम्भवतः श्रीहरीराम गोयनकाजीके आग्रहसे ये कलकत्ता भी गये। वहाँ इनका खूब स्वागत-सम्मान हुआ; इनके दो पुत्र जो इनका खूब खागत-सन्तार डि. अपने घर ले गये। वेदान्तके ममज्ञ आचाय य कलकत्तामें इंजीनियर थे, इन्हें अपने घर ले गये। वेदान्तके ममज्ञ आचाय य CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुनते हैं, वहाँ इन्होंने अपनी पत्नीको देखकर कहा था कि क्या यह अभी जीकित्हें !!

ये वड़े अस्तिक थे। देवी-देवती शिक् दर्शन ये वड़ी कठि हैं सहकर भी अवश्य करणे थे। सारे जीवनमें क्होंने अध्यापन कर बहुत-से बात्र तैयार किये थे । सन्पास-जीवनमें इन्होंने वहुत-से छात्रोंको वेदान्त-सुधाका आसार कराया या और वहुत-से प्रन्थ रचकर अज्ञानान्धकारका निरसन किया था।

इनका अन्तिम समय वाराणसी ज्ञानवापी कोठीमें श्रीविश्वनाथजीके सानिध्यमें गौरीशङ्करजी प्रभृति शिष्य-मण्डलीके मध्य हुआ । मणिकर्णिका घाटपर पत्थरका सन्द्रक वनवाकर खूब विधि-विधानसे उनका पार्थिव शरीर गङ्गाजीमें विसर्जित किया गया । वे वेदान्तके प्रकाण्ड पण्डित और व्याख्याता तो थे ही, उचकोटिके संन्यासी और ब्रह्मज्ञानी भी थे । उनका तत्त्वविवेचन इतना प्रभावक होता था कि उचकोटिके विद्वान् भी उनकी संनिधिका लाभ उठानेमें गौरवका अनुभव करते थे । वस्तुतः वे आधुनिक युगके महान् भगवत्तत्व-चिन्तक थे । वे ब्रह्मनिष्ठ माने जाते थे।

—श्रीराघेश्यामजी खेमका, एम् ० ए०, साहित्यरत्न [磚]

अच्युत मुनिजीकी ब्रह्मनिष्ठताकी कथा

आधुनिक ब्रह्मचिन्तकोंमें भी अच्युत मुनिजीका उत्कृष्ट स्थान रहा । वे वेदान्तके पारदर्शी विद्वान् तो थे ही, उनकी ज्ञाननिष्ठाने उन्हें नैष्ठिक ज्ञानियोंकी श्रेणीमें छा दिया था । मुनिजीका शरीर पंजावी था । आप संस्कृतके उद्भट विद्वान् थे । कहा जाता है कि आप पहले लाहौरमें अच्यापनकार्य करते थे । विभिन्न शास्त्रोंका आपने अत्यन्त सूक्ष्मरीतिसे गहन अध्ययन किया था । उपनिपद और ब्रह्मसूत्र तो आपको कण्ठगत ही हो गये थे । आप वेदान्तके मर्मज्ञ आचार्य थे।

आपका सारा जीवन सहज वैराग्य और अखण्ड निर्छिताका प्रत्यक्ष निर्दर्शन था। आप एकान्तमें रावी-तटपर घण्टों बैठकर आत्मिचन्तन करते तथा श्रुतिप्रोक्त सिद्धान्तोंका स्वयं अनुभव किया करते थे। 'ब्रह्मात्म्यक-साधना'के साथ-ही-साथ भगवान्की छीछा, खरूप आदिका चिन्तन भी आपकी साधनाका अविभाज्य अङ्ग था। भगवन्नाम-जपपर तो आपकी अछोक-सामान्यनिष्ठा थी। फछतः उन्हीं दिनों 'हरे कृष्ण' मन्त्रके ५ करोड़ जप पूरे करके इन्होंने नाम-ब्रह्मकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर छी और जब मन प्रपंचसे हटने छगा तो सब कुछ त्यागकर सच्चे संन्यासी बन गये। यहींसे ब्रह्मनिष्ठताका श्रीगणेश हुआ जो परिनिष्ठित होकर इनकी चरमसिद्धि बन गयी।

वहुत दिनोंतक अनूपराहरके पास भृगुक्षेत्रमें भी इनका निवास रहा, वहाँ आप गङ्गाजीके बीच एक भावग्में रहा करते थे। बादमें आप काशी आ गये। इनकी प्रकृति सरल तथा स्वभाव बालकों-जैसा निश्लल था, फिर भी बैदुष्य ऐसा कि तत्कालीन अच्छे-अच्छे पण्डित भी इनसे शास्त्राभ्यास और सत्सङ्ग-हेतु उत्सुक रहते थे। इनका मधुर भाषण एवं तेजोमय व्यक्तित्व प्रथम दृष्टिमें ही सबको आवर्जित कर लेता था। वेदान्तके आप पारदश्वा थे और भक्तिके गृढ़ चातकवती। काशीके उबकोटिक विद्वान् भी आपसे वेदान्तकी गृढ़ गृत्थियोंको सुलझाने-हेतु सत्सङ्ग करते थे।

अन्तिम समयमं आप कुछ दिन काशीके समीप रामेश्वरनामक स्थानमं रहने छगे थे । वहाँ समय-समयपर भगवत्तत्त्वके उपदेशोंद्वारा छोकमङ्गळ करते रहे । १२ दिसम्बर १९३५ को काशीधाममें आनन्द-काननके दिव्य अधिष्टाता भगवान् श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरके सामने श्रीगौरीशङ्कर गोयनकाके मकानमें आपने योगियोंकी माँति इहछोक छीळाका संवरण किया । अच्युतप्रन्थमाळाके नामसे प्रकाशित शास्त्रोंका भण्डार

मुनिजीके पूत जीवनवृत्तका सूक साक्ष्य देता हुआ प्रतीत होता है। भगवान् और भगवत्तक ऐसे ही पवित्रचेता मनीषियोंके हृदय-देशमें आविभूत हुआ करते हैं।

(4)

म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीका जन्म राजस्थानके जयपुर नगरमें प्रसिद्ध राजमान्य पण्डित-परिवारमें पौष शुक्का १० विक्रम संवत् १९३८ में हुआ था। इनके पिता श्रीगोकुळचन्द्रजी जयपुर राज्यके ही हिण्डोन नामक नगरके निवासी थे और अपने मातुळ जीवनळाळजीके दत्तकपुत्रके रूपमें जयपुरमें ही वस गये थे। इनके सात पुत्रोंके वाल्यावस्थामें ही नष्ट हो जानेके कारण मेवाड़ देशस्थ श्रीरूपचतुर्भुजजीके मन्दिरमें संतानहेतु प्रार्थना की गयी, फलतः आठवें पुत्र श्री-गिरिधरजीका जन्म हुआ। ये महान् पण्डित, भगवतत्त्वके विशिष्ट व्याख्याता और लेखक थे।

गिरिधर शर्मा प्रारम्भसे ही बड़े प्रतिभाशाली थे। इनकी आरम्भिक शिक्षा जयपुरकी पाठशालाओंमें ही सम्पन्न हुई। आगे इन्होंने व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि शास्त्रोंका अध्ययन भी तत्कालीन गुरु-परम्परासे सविध सम्पन्न किया।

अत्यन्त अल्प वयसे ही चतुर्वेदीजीका साधक-जीवन आरम्भ हो गया था। इनके परम्परागत दीश्वागुरु एवं साहित्य-वेदान्त आदिके शिक्षक पं० जीवनाथजी ओझाने इन्हें भगवती आद्याके कुलमें दक्षिणाम्नायसे शाक्त दीक्षा प्रदान की। तभीसे इनमें अनवरत उपासना एवं तत्त्व-जिज्ञासाका कम मुखरित होने लगा। तत्कालीन प्रथाके अनुसार इनका प्रथम विवाह बचपनमें ही हो गया था। कालान्तरमें जयपुर संस्कृत कालेजमें अध्ययन करते समय श्रीलक्ष्मीनाथ शास्त्री तथा विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदन ओझा-जैसे गुरुओंके सांनिध्यमें इनकी तत्त्वोन्मेत्रिका प्रतिभाको एक अद्भुत दिशा मिछी। श्रीओझाजी-द्वारा आविष्कृत विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तोंके तात्त्विक अर्थ तथा वेदविज्ञानको इन्होंने अध्यवसाय-पूर्वक अधिगत कर छिया, जो आगे चलकर खानुभूत साधना और चिन्तनसे द्विगुणित होकर इनके सम्पूर्ण साहित्यमें अभिव्यक्त हुआ। बचपनसे ही तीर्थयात्रा तथा वक्तृताके अभ्यासके कारण अपने युगके कुश्च प्रवचनकर्ता तथा शास्त्रार्थ-महारथीके रूपमें ये पूरे भारतमें विख्यात हो गये थे। विक्रम सं०१९६१में इनके सहयोगसे संस्कृतका एक प्रौढ़ मासिकपत्र 'संस्कृत-रत्नाकर' आविभूत हुआ, जिसने तत्काछीन साहित्य तथा संस्कृत शास्त्रोंकी बड़ी ही सेवा की।

प्रयागमें 'कुम्भ'के अवसरपर इनका काशीकी प्रसिद्ध सनातनी संस्था 'भारतधर्ममहामण्डल' तथा भारत एवं भारतीकी आदर्शविभूति महामना माल्वीयजीसे सम्पर्क हुआ, जो जीवनपर्यन्त बना रहा।

हरिद्वारके 'ऋषिकुळ'में रहकर बहुत कालतक इन्होंने सनातनधर्मकी पद्धितसे अध्यापन किया तथा उसी समय 'ब्रह्मचारी' नामक मासिक पत्रद्वारा मातृभाषा हिंदीकी भी सेवा करते रहे । उस समय 'आर्यसमाज'में सनातनधर्मकी मान्य परम्पराओंका खण्डनपक्ष अत्यन्त उदम्र था । अतएव धर्मरक्षा तथा सत्यरक्षाके हेतु आपको 'आर्यसमाज'के साथ कई विवादास्पद प्रक्तोंपर शास्त्रार्थ भी करने पड़े । शास्त्रार्थमें खण्डन-मण्डन-प्रणालीका उपयोग किये जानेसे परस्पर रागद्वेषकी वृद्धि होती देखी जाती है । किंतु तत्त्वबोधके अभिलाषी चतुर्वेदीजी इन संघर्षमयी परिस्थितियोंमें अतल समुद्र-गाम्भीय एवं मधुरिम ध्यक्तित्वसे युक्त रहे । कभी प्रति-पक्षके प्रति इनके द्वारा अपमान-व्यञ्जना नहीं हुई—

इसे तत्कालीन कई 'आर्यसमाजी' विद्वानोंने भी खीकार किया था। व्यक्तित्वमें इस प्रकारकी गम्भीरता साधनाके विना नहीं आ पाती।

समय-समयपर विभिन्न सन्त-महात्माओंसे इनका सम्पर्क बढ़ा और इन्होंने सनातन धर्मके मूलभूत तत्त्वोंका प्रन्थरूपमें उद्घाटन करना आरम्भ कर दिया । इनके-जैसे विनम्र और अपरिप्रही संस्कृत पण्डित प्रायः कम ही देखे जाते हैं। सम्मानसे ये वचते रहे, फिर भी इन्हें अपने जीवनमें पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ। महामहोपाध्यायजीने संस्कृत और हिंदीमें प्रभूत धार्मिक साहित्य लिखकर भगवत्तत्त्वका उद्भावन किया है; जिनमें - 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति', 'गीता-प्रवचन', 'पुराणपरिशीलन', 'पुराणपारिजात' (संस्कृत) इत्यादि इनके प्रकाशित प्रन्थ हैं। शेष कुछ प्रकाशन-प्रकान्त तथा अन्य बहुत-से अभीतक अप्रकाशित हैं। चतुर्वेदीजीने इस साहित्यद्वारा न केवल भगवत्तरको ही विदृत किया है, अपितु बड़ी ही युक्तिके साथ धर्मके आचारपक्षपर भी वैज्ञानिक विवेचन उपन्यस्त किया है । इनके साहित्यको पढ़कर बड़ा-से-बड़ा तार्किक आलोचक भी वर्णन्यवस्था, श्राद्ध, मूर्तिपूजा प्रभृति आक्षेप-विन्दुओंको तथ्य माननेके छिये विवश हो जाता है । श्रीकृष्णतत्त्व, शिवतत्त्व तथा त्रिपुरारहस्य आदिपर लिखे गये पण्डितजीके प्रकीर्ण लेख भगवन्तरवकी अन्यत्र दुर्लभ व्याख्याहेतु सर्वदा मननीय रहेंगे।

अखण्ड वैदुष्य, अप्रतिहत कर्मय्ता एवं सतत साधनाके साथ मूर्तिमान् विनयके साक्षात् विग्रह महामहोपाध्यायजीका वन्दनीय यशःशरीर आज भी जिज्ञासु साधकोंका प्रेरणास्रोत है। —(श्रीविनय) एम० ए॰

जर्मनदार्शनिक कॉन्ट और उनके तत्त्व-चिन्तनका संक्षिप्त परिचय

(लेखक - श्रीकौदालिकशोरजी पाण्डेय, एम्० ए० (द्वय)

आचार्य शंकरके अद्देतवादसे मिळते-जुळते सिद्धान्त-वाले एक युगप्रवर्त्तक महान् जर्मन दार्शनिक हुए हैं, जिन्हें कॉन्ट कहा जाता है। इनका पूरा नाम इमैन्युअलकॉन्ट था । इनका जन्म २२ अप्रैल सन् १७२४ को शनिवारके दिन प्रातः ५ वजे प्रशिया प्रान्तके कोसिंग्सवर्ग नगरमें हुआ था, जो आज सोवियत संघक शासनमें है और कालिनिग्राड कहा जाता है। इनके पिताका नाम जोहानजार्ज कॉन्ट और माताका अन्नाटेगिना था । ये अपने माता-पिताकी चौथी संतान थे । इनके पिता और माता--दोनों मोचीका काम करते थे । पिता चारजामा वनाते थे और माता जूता। इनके पितामह पेशेसे मोची ही थे, पर जातिसे स्काट थे और स्काटलैण्डसे आकर प्रशियामें वस गये थे। कॉन्टकी तेरह वर्षकी अवस्थामें इनकी माँका और वाईस वर्षकी अवस्थामें पिताका देहान्त हो गया। इन्हें उत्तराधिकारमें कोई सम्पत्ति नहीं मिली; क्योंकि इनके पिता निर्धन थे---इतने निधन कि उनका अन्तिम संस्कार सरकारी खर्चसे किया गया था।

कॉन्टकी शिक्षा धर्मशास्त्रके प्रो० शुल्जकी देख-रेखमें हुई। प्रो० शुल्ज कॉन्टके पिताके मित्र थे। प्रारम्भिक शिक्षा छातीनी भाषामें हुई। इसके बाद ये कोसिंग्सवर्ग विश्वविद्यालयमें मर्ती हुए। १७५५ में इन्हें डॉक्टरेटकी उपाधि मिली और उसके बाद १५ वर्षोतक ये प्राध्यापक रहे। १७७० ई० में ये तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्रके प्रोफेसर नियुक्त हुए। उत्कर्प क्रममें ये १७८६ में रेक्टर (उपकुलपित) हुए। सन् १७९७ में कॉन्टने विश्वविद्यालयकी सेवासे अवकाश प्रहण किया। सन् १८०४ में २५ फरवरी-

को इन्होंने सदाके लिये आँखे बन्द कर लीं । २८ फरवरी १८०४ को इनका पार्थिव दारीर प्रोफेसरोंके कब्रिस्तानमें दफनाया गया ।

कॉन्ट आजीवन अविवाहित रहे । इनके चिन्तनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियोंके नाम 'आलोचना'से सम्बद्ध हैं—— (१) शुद्ध-बुद्धिकी आलोचना (२) व्यावहारिक बुद्धिकी आलोचना और (३) निर्णयकी आलोचना ।

कॉन्ट ईश्वरके अस्तित्वके विश्वासी थे । कॉन्ट ईश्वरके सम्बन्धमें अजेयबाद और ईश्वरबाद—दोनोंको मानते थे । वे अपने विश्वासमें और नीति-शास्त्रके प्रन्थोंमें ईश्वरबादी और शुद्ध बुद्धिकी आलोचनामें अजेयबादी थे । वे ईश्वरमें चार प्रकारके गुण मानते थे—

- (१) दृष्टान्तम् लक गुण; (यथा—ईश्वर समस्त मनुष्योंसे वैसे ही प्रेम करता है और उन्हें पालता है जैसे कोई पिता अपनी सन्तानसे प्रेम करता है तथा उसे पालित करता है।)
- (२) औपचारिक गुण (जैसे सर्वज्ञता);
- (३) निबोधात्मक गुण (जैसे कालातीततत्त्व) और
- (४) नैतिक गुण (जैसे—सत्यिनष्ठत्व, न्यायिनष्ठत्व, पूर्णत्व, ग्रुभत्व इत्यादि) । ईश्वर उल्लेख्य नैतिक गुणोंके कारण मर्यादापुरुषोत्तम है ।

कॉन्ट मानते हैं कि आत्मा जीवात्माके रूपमें ही श्रेय है। जीवात्मा प्रपञ्च या आभास है। विषयोंके ज्ञानमें कल्पनाके संश्लेषणकी भाँति जीवात्माके ज्ञानमें भी कल्पनाका संश्लेषण निहित है। इसका ज्ञान अन्तःकरणद्वारा होता है। अन्तःकरणका आकार

काल है । अन्तःकरण कल्पनाके संश्लेषण और आत्मज्ञानकी एकतासे अनिवार्यतः सम्बद्ध है। जीवात्माका ज्ञानकाल कल्पनाके संश्लेपण आत्मज्ञानकी एकताके विना सम्भव नहीं। काँन्टका कहना है कि आत्मज्ञानकी एकता आभास-जगत्का मूलाधार है और आत्मा परमार्थतः एक स्रतः सद्वस्तु है, किन्तु वह अज़ेय है, अनिवचनीय है। उसका ज्ञान शुद्ध बुद्धिसे नहीं हो सकता (न मेधया)। उसे हम किसी तरह नैतिक ज्ञानसे समझते हैं। पर नैतिक ज्ञानकी यह सम्बन्ध-बुद्धि नियमानुसार नहीं है। सामान्य आत्मज्ञान हमारे समस्त वौद्धिक ज्ञानमें निहित है, जो हमारे त्रिपय-ज्ञानको संभव वनाता है। किन्तु यह केवल 'मैं हूं'का बोध है—'मैं हूँ,' यह क्या है—इसे नहीं वताता। कॉन्ट इसे ही शुद्ध आत्मा या 'मैं सोचता हूँ' (चेतन) कहते हैं।

कॉन्टकी ख्याति पित्वमी जगत्में उच्चकोटिके दार्शनिकके रूपमें है—प्रायः जैसे भारतमें आचार्य शंकरकी है। दोनों दार्शनिकोंके त्रिचारों (सिद्धान्तों)-में सारगर्भित दूरगामी साम्य पाया जाता है। डा॰ राधाकृष्णन् अपने 'भारतीयदर्शन'में लिखते हैं कि 'शंकरके ज्ञान-विषयक सिद्धान्तकी तुलना प्रायः कॉन्टके सिद्धान्तके साथ की जाती है। किन्तु इन दोनोंमें जहाँ अद्भुत समानताएँ हैं, वहाँ बहुत दूरतक मेद भी है। लेक-मान्य तिलकके कॉन्टके नीतिशाक्षसे गीताके निष्काम-कर्मयोग या लोकसंप्रही कर्तन्यकी तुलनासे यह निष्कर्प निकलता है कि गीताका निष्कामकर्ममार्ग कॉन्टके 'कर्तन्यके लिये कर्त्तन्यके सिद्धान्तसे सर्वथा मिलता-जुलता है। निःसंदेह कॉन्टका दर्शन भारतीय दर्शनसे प्रभावित है और उसका चिन्तन शांकर-सिद्धान्तानुसार है—यद्यपि शैलीमें सूक्षम दृष्ट्या भेद भी है।

क्षमा-याचना एवं नम्र निवेदन

मानसके उपजीन्यभूत अध्यात्मरामायणपर विशेषाङ्क प्रकाशित करनेके प्राथमिक प्रस्तावक्ने साध्यक व्यक्ति प्रशीपर विचार-विमर्शके बाद भगवत्तत्वाङ्क निकालनेका निर्णय किया गया और तदनुरूप विषयसूची प्रस्तुतकर उसे पूज्य आचार्यों, श्रद्धेय सन्त-महात्माओं एवं मान्य मनीषी लेखकोंकी सेवामें तदनुसार लेखार्थ प्रेषित किया गया। फलतः कृपालु आचार्यों, महात्माओं एवं लेखकोंने अनुप्रहकर लेखादि प्रेषित किये। हमने वैषयिक, क्रमिक तारतम्यका ध्यान रखते हुए प्राप्त लेखोंको संयोजित किया। भगवत्तत्त्वाङ्क अब आपकी लेखोंको संयोजित किया। भगवत्तत्त्वाङ्क अब आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें जो कुछ अच्छाई है वह भगवत्कृपा-लभ्य आचार्यों, सन्तों, महात्माओं और मनीषी लेखकोंके अनुप्रहसे प्रसूत है और जो त्रुटियाँ, क्रमियाँ हैं वे सब हमारी अल्पज्ञता या कमजोरीकी प्रतिप्रसूत है। हम तदर्थ क्षमा-प्रार्थी हैं।

शास्त्रों परिशीलनसे यही निचोड़ निकलता है कि
तरवद्शियोंने इस दश्यमान सृष्टिके मूलमें जिस अद्वितीय
नित्य तर्चिक अनुभूति की उसे ही भगवत्त्वसे जाना
गया । वह मूलमें शास्त्रत सत्यके अर्थमें 'सत्' था
अथवा अव्यक्त तर्चिक अर्थमें 'असत्' से कहा गया ।
वह 'चित्' और 'आनन्द'का उपलक्षक मी था । अतः
वह तर्चिन्तन-सरणींमें 'सिच्चदानन्द'रूपमें परिनिष्ठित
हुआ । फलतः भगवत्त्व सिच्चदानन्दरूप माना गया, जो
'ब्रह्म'के खरूप-निर्वचनमें सांकेतिकरूपसे व्यवहृत होता
चला आ हा है । आगे चलकर ब्रह्म भगवत्तासे
परिचेय होनेके कारण भक्तोंके लिये 'भगवान्' बना;
क्योंकि सिच्चदानन्दघनका साकार विकास 'सोइ
सिच्चदानन्दघन' श्रीराममें एवं 'पूर्ण ब्रह्म सनातनम्'
वाले श्रीकृष्णमें देखा गया । अन्य अवतारोंमें भी
भगवत्त्वके प्रत्यक्ष दर्शन अंशकलादि रूपोंमें हुए ।

यत्र-तत्र क्या अतएव शास्त्रों—विशेषतः पुराणोंमें सर्वत्र भगवत्तत्वके सन्दर्भमें भगवान् अनेक रूपोंमें अवतीर्ण वर्णित हुए । 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहनेवाले भागवतकार श्रीव्यासजीने और तदुत्तरवर्ती व्याख्याकारोंने तो शास्त्र-प्रमाणसे श्रीकृष्णभगवान्को ही प्रमतत्त्व प्रसिद्ध किया । आचार्य मधुसूदन सरस्वती-जैसे अद्वैत-सिद्धान्तके प्रौढ़ व्याख्याकारकी भावुकताने तो कृष्णसे परे किसी अन्य परमतत्त्वकी मान्यता ही नहीं दी । स्त्रयं श्रीमगवान्ने भी अपनी दिव्यवाणी-(गीता-) में इसके पोपक वाक्य--- भत्तः परतरं नान्यत्किचिद्स्ति धनखय' आदि वहकर आधार-भूमिका प्रस्तुत कर दी है । यही कारग है कि हमारे अर्च्य आचार्यों, श्रद्भेय संतों एवं मान्य मनीषी लेखकोंने भगवत्तत्त्वके इस पक्षपर भी विवेचन प्रस्तुत किया है, जिससे भगवत्तत्त्वके प्रत्येक पक्षका प्रतिनिधित्व हो पाया है। वस्तुतः शास्त्रकारोंने भगवत्तरवकी जहाँ भी अनुभूति की है वहीं 'भगवान्' शब्दका व्यवहार किया है; इसीलिये मूलमें सूक्ष्म, सूक्ष्मतररूपमें अनुभूत भगवत्तत्व साकाररूपमें भगवत्खरूप वन गया और भगवत्तत्त्वका व्यापक क्षेत्र ज्ञान, कर्म और भक्तिके लिये समानरूपसे उपादेय हो गया । इस प्रकार भगवत्तत्त्वाङ्कका भी विषयक्षेत्र विपुछ हो गया और उसको सँवारनेके लिये विषयस्चीको व्यापकदृष्टिसे बनाना पड़ा।

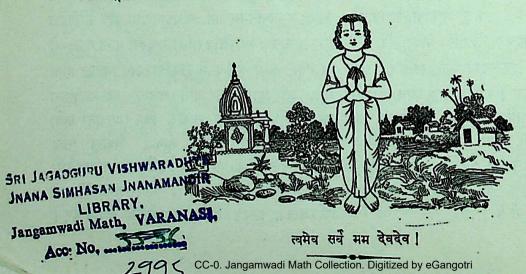
यद्यपि सूचीके प्रस्तावित कतिपय शीर्षकोंपर समयसे

लेख नहीं आ पाये, फिर भी अपेक्षित विषयों के विवेचन करनेवाले कुछ संकलित लेख देकर उनकी यथाशक्य पूर्ति करनेकी चेष्टा की गयी है। भगवत्तत्त्वके विविध पश्चोंपर आये लेख अपने-आपमें पूर्ण हैं और पठनीय सामग्री उपस्थित करते हैं—यह संतोपका विषय है। चित्र और कथाएँ कम आयीं, अतः हम उन्हें साधारण पाठकों के लिये अपेक्षित मात्रामें न दे सके।

जिन विभागीय सहयोगी विद्वानों, कुशल मुद्रण-कर्मियों तथा अन्य सम्बद्ध कर्मरत अन्तरङ्ग जनोंने विशेषाङ्कके सम्पादन-प्रकाशन-मुद्रण-कार्योमें योग दिया है, उन्होंने वस्तुतः इस ज्ञानयज्ञमें अपने कर्तव्यद्वारा सहयोग देकर प्रमुक्रपा प्राप्त की है। अतः उनके लिये साधुवाद सुतराम् पुरस्कृत है। हाँ, जिन पूज्य आचार्यों, श्रद्धेय महात्माओं-संतों तथा विद्वान् लेखकों एवं भगवरप्रेमी सज्जनोंने जिस किसी प्रकारकी सहायता की है या सहयोग दिया है, उन सबके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन-पुरस्सर हम सादर साधुवाद उपद्वत कर रहे हैं।

अन्तमें यह निवेदन करते हुए कि कल्याण-विशेषाङ्कका कार्य प्रभुका कार्य है, उसमें हमारी प्रवृत्ति चाहे जैसी भी रही हो, सर्वथा कल्याण-कारिणी ही सिद्ध होगी, हमें अपनी अल्पज्ञनाजनित त्रुटियोंके लिये सबसे करबद्ध क्षमा-याचना करनी है। शम्।

—मोतीलाल जालान (सम्पादक)



'कल्याण'के नियम

. उद्देश्य-भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित केलोद्वारा जनताको कल्यागके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

- (१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आक्षेपरिहत लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख प्रायः नहीं प्रकाशित होते । लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख विना माँगे प्रायः नहीं लौटाये जाते । लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं होंगे ।
- (२) डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित, कल्यागंका अग्रिम मूल्य भारतवर्षमें २०.०० रुपये वार्षिक और भारतवर्षसे बाहरके लिये ३६.१५ रु० (दो पोंड) नियत है।
- (३) 'कल्याण'का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरमें समाप्त होता है; अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं और जनवरीके अङ्कके वाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें बिना मूल्य दिये जाते हैं। 'कल्याण'के वर्षके बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनोंके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी द्रमें प्रकाशित नहीं किये जाते ।

- (५) कार्यालयसे 'कल्याग' प्रत्येक ग्राहकके नामसे दो तीन बार जाँच करके भेजा जाता है। यदि किसी मासका अक्क समयपरन पहुँचे तो अपने डाक बरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाक अरका जवाय शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति विना मूल्य भेजनेमें अङ्चन हो सकती है।
- (६) पता-यदलनेकी सूचना कम-सेकम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। पत्र लिखते समय प्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम और पता साफ-साफ लिखना चाहिये। महीने-दो-महीनेके लिये पता यदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रवन्य कर लेना चाहिये। पता-यदलीकी सूचना न मिलनेपर अद्ध पुराने पतेसे चले पता-यदलीकी सूचना न मिलनेपर अद्ध पुराने पतेसे चले जानेपर वूसरी प्रति विना मृत्य न मेजी जा सकेगी। जानेपर वूसरी प्रति विना मृत्य न मेजी जा सकेगी।

चित्रोंत्राला तथा विशिष्ट विषय संदर्भभूत चाल् वर्षका विशेषां हु दिया जाता है। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होता है। फिर फरवरीसे दिसम्बरत कके ११ अङ्क बिना मूल्य दिये जाते हैं। (किसी अनिवार्य कारणवश 'कल्याण' वंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही संतोष करना चाहिये; क्योंकि केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य २०.०० रुपये है। प्राहकोंको दिये जानेवाले वाकी ११ अङ्क बिना मूल्यके होते हैं।

आवइयक सूचनाएँ (८) 'कल्याणमें किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याणम्

की एजेन्सी किसीको भी देनेका नियम नहीं है। (१) ब्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट खिखनेके साय-साय ब्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आवश्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(१०) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक वातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथितया विगयका उल्लेख होना चाहिये।

(११) नये प्राहकोंको वार्षिक सूल्य मनीआईर-द्वारा भेजना चाहिये। यथासमय वी० पी० द्वारा विशेषाह्र भेजनेमें लाचारी रहती हैं।

(१२) प्रेस-विभाग, 'कल्याण'-च्यवस्था-विभाग तथा सम्पादन-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। नियमानुसार कल्याण के साय पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। (प्रेससे १.०० रु० से कमकी वी०पी०प्रायः नहीं मेजी जाती।)

(१३) कल्याणके पूर्व प्रकाशित कोई भी विशेषाञ्च

प्राप्य नहीं है । उसके लिये माँग-पत्र न भेजें ।

(१४) मनीआईरके क्पनपर मेजे गये रुपयोंकी संख्या, रुपये मेजनेका उद्देश, प्राहक-संख्या (नये ग्राहक हों तो 'नया' शब्द), पूरा पता इत्यादि सब वार्ते साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१५) प्रवन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक-'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)के नामसे और सम्पादकसे सम्बद्ध लेख-पत्रादि सम्पादक-'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)के नामसे भेजने चाहिये ।

(१६) कार्यालयमें स्वयं आकर अङ्क ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालेंसे मृस्य कम

नहीं लिया जाता ।

प्रातरमि-(भग-)सूक्तम्

श्रातरिनं प्रातिन्द्रं हवामहे
प्रातिमंत्रावरणा प्रातरिश्वना।
श्रातभंगं पूषणं ब्रह्मणस्पति
प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम॥१॥
श्रातःकाल्मं हम अग्निदेवता, इन्द्र देवता
तथा अहोरात्रके अभिमानी देवता मित्रावरुणको आमन्त्रित करते हैं। (इनके अतिरिक्त) हम प्रातःकाल्में देवेंकि विकत्सक अश्वनीकुमारों, भगदेवता, पूषादेवता, मन्त्राभिमानी ब्रह्मणस्पतिदेवता, सोमदेवता एवं रुद्र-देवताको आहूत कर रहे हैं।

प्रातिज्ञंतं भगमुत्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयों विधर्ता। प्राप्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

हम उन भगदेवताका आवाहन करते हैं, जो विश्वका धारण करते हैं, जयशील हैं, उम्र हैं तथा अदितिके पुत्र हैं—जिन भगदेवताकी स्तुति राजा और दिद्र भी करते हैं तथा जो विश्वके रक्षक एवं ज्यकर्ता कहे गये हैं।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो
भगेमां धियमुद्द्या द्द्नः।
भग प्रणो जनय गोभिरइवैभग प्रणो जनय गोभिरइवैभग प्र नृभिर्नुवन्तः स्याम॥३॥
हे भगदेव! तुम प्रणेता हो; हे प्रणेतः! हे मग!
आप सत्यधन हैं। हे भगदेव! आप हमारे मनोरथों की पूर्ति
करते हुए हमारी इस स्तुतिको सफल करें। हे भग!
आप गोधन और वाजिधनको हमारे लिये उत्पन्न करें।
हे भग! आपकी कृपासे हमलोग पुत्र-पौत्रादिसे युक्त

खतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रिपत्व उत मध्ये अद्वाम् । खतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

होकर प्रजावान् वनें।

हे भगदेव ! उक्तरूपसे आपका आशीर्वाद प्राप्त हो जानेपर हमलोग भग अर्थात् ऐश्वयसे युक्त रहें । इस प्रकार चाहे दिनका पूर्वभाग हो अथवा मध्यभाग, हमलोग ऐश्वयंवान् बने रहें । हे मघवन् (भगवन्) भगदेव ! सम्पूर्ण चराचरके प्रेरक स्पृयंदेवके उदित होनेपर आपकी हापासे इन्द्र इत्यादि देवताओंका अनुप्रह हमपर रहे । भग पव भगवाँ अस्तु देवा-स्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर पता भवेह ॥ ५ ॥ हे देवताओं ! भग देवता ही भगवान् बने रहें ॥ उनके ऐश्वयंवान् होनेसे हम सब भी ऐश्वयंवान् वनेंगे ॥ हे भग ! आपकी प्रसिद्धिके कारण सम्पूर्ण जनता आपको बारंबार आमन्त्रि कर रही है । हे भगदेव ! आप इस

समध्वरायोषसो नमन्त द्धिकावेव शुच्चे पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथिमवाश्वा वार्जिन आ वहन्तु ॥६॥ भगदेवता ! आप पवित्र गन्तव्य स्थानतक अश्वगतिसे पधारें। जिस प्रकार द्वतगामी अश्व रथका वहन करते हैं, उसी प्रकार उपादेवता धनप्रदाता भगदेवताको खींचकर हमें प्राप्त करा दें।

यज्ञमें हमारे मार्गदर्शक वनें।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सद्मुच्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ७॥ जल्र-सेचनके द्वारा सर्वगुणसम्पन्न, कल्याणप्रदाता हे उषादेवता! गोधन, वाजिधन तथा प्रजाधनसे युक्तः होकर सर्वदा नैश अन्धकारका विखण्डन करते हुए आप

सदा हमारा पालन करें। (ऋक्संहिता ७।४१।८)।
—-डॉ॰ श्रीभागीरथप्रसादजी त्रिपाठी, 'वारोहा शास्त्री

th Collection, Digitized by eGangotr